व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण

(Micro Economic Analysis)

एम.ए. अर्थशास्त्र (पूर्वार्द्ध)

M.A. Economics (Previous)

प्रश्न पत्र-1

Paper-1

Directorate of Distance Education
Maharshi Dayanand University, Rohtak

व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण

(Micro Economic Analysis)

एम. ए. अर्थशास्त्र (पूर्वार्द्ध)

M.A. Economics (Previous)

प्रश्न पत्र -1

Paper 1

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय

रोहतक—124 001

Copyright © 2003, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system
or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or
otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

eveloped & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110

विषय सूची

Unit-I

अध्याय 1	अर्थशास्त्र का स्वरूप, क्षेत्र तथा महत्त्व	5
अध्याय 2	आर्थिक विश्लेषण तथा सिद्धान्त में पूर्वकल्पनाओं की भूमिका तथा महत्त्व	20
अध्याय 3	सन्तुलन की धारणाएं	22
अध्याय 4	मांग फलन तथा मांग का नियम	41
अध्याय 5	गणनावाचक सिद्धान्त	67
अध्याय 6	क्रमवाचक सिद्धान्त एवं तटस्थता वक्र विश्लेषण	100
अध्याय 7	प्रकट अधिमान सिद्धान्त	152
अध्याय 8	बॉड वोगन, सनोब और वैबलेन प्रभाव	158
अध्याय 9	मांग की मूल्य सापेक्षता का अर्थ, विकास तथा माप	161
अध्याय 10	उपभोक्ता की बेशी का प्रारम्भिक विचार	188
अध्याय 11	उत्पादन फलन	198
अध्याय 12	उत्पादन के नियम: अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन	219
अध्याय 13	आन्तरिक तथा बाह्य बचतें तथा हानियां	247
अध्याय 14	ईष्टतम उत्पादन संयोग	255
अध्याय 15	उत्पादन लागत की धारणा तथा अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन लागत वक्रों में सम्बन्ध	261

Unit-II

अध्याय 16	पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के अन्तर्गत फर्म तथा उद्योग का सन्तुलन तथा कीमत प्रक्रिया	284
अध्याय 17	अल्पाधिकार–विकुंचित मांग वक्र	304
अध्याय 18	एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता	317
अध्याय 19	द्विधिकार मॉडल	327
अध्याय 20	सीमांतक वाद–विवाद	333
अध्याय 21	औसत लागत कीमत सिद्धान्त	337
अध्याय 22	बेन्त का सीमा कीमत मॉडल	341
अध्याय 23	बॉमल का अधिकतम बिक्री आय सिद्धान्त	349
अध्याय 24	व्यावहारिक सिद्धान्त – सिरट तथा मार्च मॉडल	378
अध्याय 25	सूचना की खोज का अर्थशास्त्र तथा असमान सूचनाओं का बाजार	382

Unit-III

अध्याय 26	प्रतियोगी मार्किट में साधन–कीमत निर्धारण का मॉडल	385
अध्याय 27	वस्तु तथा साधन बाजार में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता तथा द्विपक्षीय एकाधिकार के अन्तर्गत साधन कीमत निर्धारण	391
अध्याय 28	वितरण का नव–प्रतिष्ठित सिद्धान्त और तकनीकी प्रगति व आय में अंश	397
अध्याय 29	लगान	402
अध्याय 30	ब्याज	419
अध्याय 31	लाभ	436
अध्याय 32	सामान्य सन्तुलन विश्लेषण के मुद्दे	446
अध्याय 33	कल्याण का अर्थशास्त्र	461
अध्याय 34	पैरेटो का ईष्टतम मान तथा कार्यकुशलता की शर्तें	463
अध्याय 35	बर्गसन का सामाजिक कल्याण फलन	470
अध्याय 36	काल्डोर–हिक्स क्षतिपूर्ति सिद्धान्त	476
अध्याय 37	सामाजिक कल्याण–पूर्ण व अपूर्ण प्रतियोगिता	479
अध्याय 38	द्वितीय सर्वश्रेष्ठ के सिद्धान्त का विचार	483
अध्याय 39	ऐरो का असम्भावना सिद्धान्त	486

M.A. (Previous)
Micro Economic Analysis

Paper-I

Max. Marks : 100
Time : 3 Hours

Note : (i) *Question paper will consist of two sections A and B.*

(ii) *Section A will consists of two compulsory questions spread over the whole of syllabus. The first questions will consists of 7 parts and the candidate will be required to attempt 5 parts. Answers will be very short type about 35 words carrying 4 marks each. The second question will consist of 3 parts and the candidate will be required to attempt 2 parts. Answer will be short type of about 200 words carrying 10 marks each.*

(iii) *Section B of the paper will consist of 6 questions taking two from each unit, and the candidate will be required to attempt 3 questions selecting one from each Unit. The answers will be full length essay type carrying 20 marks each.*

Unit-I Nature and scope of Micro Economics. Role and significance of assumptions in economic analysis and appraisal of economic theories. Concepts of equilibrium, partial and general, static, comparative static and dynamic.

Analysis of consumer behaviour, demand function, law of demand-Cardinal, Ordinal and Revealed preference approaches. Meaning, types and measurement of elasticity of demand: elementary idea of consumer's surplus. Bandwogon, snob and veblen effect. Consumer behaviour under conditions of uncertainty. Intertemporal consumption choice.

Production function. Laws of Production: short period and long period: Internal and External economics and diseconomies. Concept of cost of production. Derivation of short and long run cost curves and their interrelationship. Optimum input combinations. Multiproduct firm. Technical progress and production function; Hick's classification. Concepts of elasticity of substitution. Properties of CD and CES production functions. Empirical evidence on cost curves.

Unit-II Pricing process and equilibrium of firm and industry under perfect competition, monopoly (including discriminating monopoly and bilateral monopoly); monopolistic competition, oligopoly (including non-collussive eligopoly, duopoly models of Cournot and Bertrand and collussive models dealing with joint profit maximization, market sharing and leadership phenomena). Kinked demand model and price rigidily. Welfare effects of price control, price support and production quotas.

Marginalist debate. Average cost pricing principle. Bain's limit pricing model. Baumol's sales revenue maximisation hypothesis (Simple Static model). Behavioural approach (Cyert and March model).

Economics of search for information. Markets with asymmetric information.

Unit-III Neoclassical Theory of factor pricing: under competitive conditions, in case of monopolistic power in product the factor market, bilateral monopoly and in case of monopoly union. Product Exhaustion problem. Rent and quasi rent, interest and profits. Technical process and factor shares.

Issues in General equilibrium analysis. Welfare economics.

Concept of social welfare-some early criteria-pareto optimality creterion and efficiency conditions-Kaldor-Hicks compensation criterion-Bergson's Social Welfare Function. Idea of theory of second best and Arrow's Impossibility theorem. Perfect competition and welfare maximisation, imperfect competition. Market failure and ways of correcting it.

UNIT-I

अध्याय-1

अर्थशास्त्र का स्वरूप, क्षेत्र तथा महत्व

(Scope, Nature and Importance of Economics)

अर्थशास्त्र के क्षेत्र का परिचय
(Introduction to Scope of Economics)

अर्थशास्त्र के क्षेत्र को समझना अति आवश्यक समझा जाता है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्र के क्षेत्र का ज्ञान प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित तीन बातों का अध्ययन आवश्यक है:

1. अर्थशास्त्र की विषय–सामग्री
   (Subject-Matter of Economics)
2. अर्थशास्त्र की प्रकृति
   (Nature of Economics)
3. अर्थशास्त्र की सीमाएं
   (Limitations of Economics)

1. **अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री (Subject matter of Economics):** अर्थशास्त्र में जिन–जिन तथ्यों का अध्ययन किया जाता है उन्हे अर्थशास्त्र की विषय–सामग्री कहा जाता है। अर्थशास्त्र में किन–किन तथ्यों का अध्ययन किया जाता है? इस प्रश्न के उत्तर के संबंध में अर्थशास्त्रियों के मध्य बहुत अधिक मतभेद पाया जाता है। श्रीमती बारबरा वूटन ने इस संबंध में ठीक ही कहा है कि "जहां छः अर्थशास्त्री इक्ट्ठे होते हैं वहां सात मत होते है।" विभिन्न अर्थशास्त्रियों के मतों के अनुसार अर्थशास्त्र की विषय–सामग्री का अध्ययन निम्न प्रकार से विभाजित किया गया है:

   (A) ***विभिन्न मत (Different Views):*** अर्थशास्त्र विषय के जन्मदाता एडम स्मिथ तथा अन्य परंपरावादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार धन से संबंधित तथ्य ही अर्थशास्त्र की विषय सामग्री हैं। उनके अनुसार धन, जिसका स्वरूप भौतिक है, उसमें वृद्धि के कारणों की जांच ही अर्थशास्त्र की विषय–सामग्री है। डॉ. मार्शल तथा इसके अन्य नवपरंपरावादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्र की विषय सामग्री सामाजिक मनुष्यों की वे क्रियाएं है जिनका संबंध कल्याणकारी भौतिक पदार्थों की प्राप्ति तथा उनके उपयोग से है। डॉ. मार्शल आदि के अनुसार भौतिक कल्याण से सम्बन्धित क्रियाओं का अध्ययन ही अर्थशास्त्र की विषय–सामग्री है। प्रो. रोबिन्ज के अनुसार मनुष्य के वे प्रयत्न या क्रियाएं जिनसे वह अपनी असीमित आवश्यकताओं (unlimited wants) को विभिंन्न उपयोग वाले दुर्लभ साधनों से संतुष्ट करने का प्रयास करता है, अर्थशास्त्र की विषय–सामग्री बनाते हैं। उनके मतानुसार मनुष्य की जब एक आवश्यक संतुष्ट हो जाती है तो उसका स्थान दूसरी आवश्यकता ले लेती है और यह चक्र चलता रहा है। अर्थशास्त्र में यह चक्र आर्थिक चक्र (Economic Circle) के नाम से जाना जाता हैं ज्यों ही व्यक्ति प्रयत्न करके धन कमाता है तथा किसी आवश्यकता को संतुष्ट करता है तो एक और आवश्यकता सामने आ खड़ी होती है और इस प्रकार यह चक्र चलता रहता है जैसा कि अगले पृष्ठ के चित्र में दर्शाया गया है। एक अन्य अर्थशास्त्री जैकब वाइनर के अनुसार "अर्थशास्त्र वह है जो अर्थशास्त्री करते हैं।" (Economics is what Economists do – Jacob Vinor)

   (B) ***विभिन्न आर्थिक पहलू (Different Economic Aspects):*** सैम्युलसन, बोल्डिंग आदि आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्र की विषय सामग्री (i) आर्थिक क्रियाओं, (ii) आर्थिक प्रणालियों तथा (iii) आर्थिक नीतियों को मिलाकर बनती हैं:

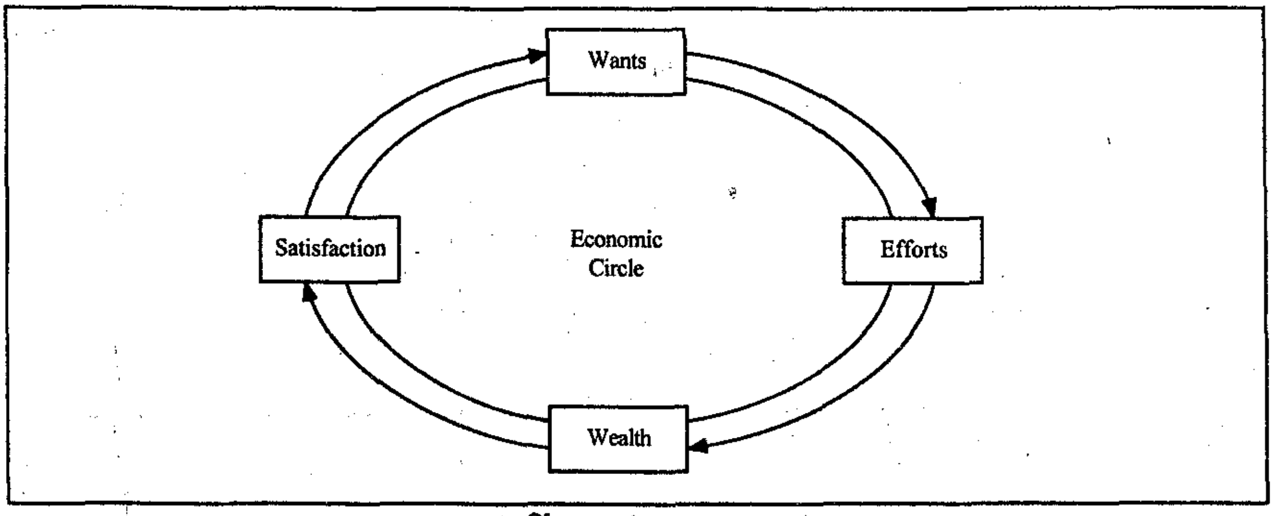

(आर्थिक चक्र (Economic Circle))

(i) आर्थिक क्रियाएं (Economic Activitiesa): आर्थिक क्रियाएं अर्थशास्त्र की विषय–सामग्री का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। इनका अध्ययन दो भागों में किया गया है –

1. आर्थिक क्रियाओं के प्रकार, तथा
2. आर्थिक क्रियाओं के उद्देश्य।

1. *आर्थिक क्रियाओं के प्रकार (Kinds of Economic Activitiesa):* प्रो. बोल्डिंग तथा प्रो. चैपमेंन ने आर्थिक क्रियाओं को निम्न चार भागों में बांटा है–

   1. उपभोग (Consumption): विभिन्न आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए वस्तु व सेवाओं का किया गया प्रत्यक्ष उपयोग उपभोग कहलाता है। यह उपभोग आर्थिक क्रियाओं को जन्म देता है। जैसे उपभोग के लिए कपड़े का क्रय, फर्नीचर का क्रय, फल खाने व दूध पीने पर व्यय आदि सभी उपभोग से सम्बन्धी आर्थिक क्रियाएं हैं।

   2. उत्पादन (Production): वस्तु व सेवाओं में तुष्टिगुण ;नजपसपजलद्ध या मूल्य ;अंसनमद्ध उत्पन्न करना या इनमें वृद्धि करना उत्पादन कहलाता है। यह उपभोग आर्थिक क्रिया है। अनाज उगाना, कपड़ा बुनना, मछली पकड़ना, खान से कोयला निकालना आदि उत्पादन क्रियाएं हैं। ये उत्पादन की क्रियाएं विभिन्न वस्तुओं व सेवाओं में तुष्टिगुण या मूल्य उत्पन्न करती हैं या इन्हे बढ़ाती हैं। इससे विभिन्न उत्पादन के साधनों को आय प्राप्त होती है। इसलिए सभी उत्पादन की क्रियाएं होती हैं। भूमि, श्रम, पूंजी तथा उद्यमी ये चार उत्पादन के मुख्य साधन माने जाते हैं।

   3. विनिमय (Exchange): वस्तु व सेवाओं का परस्पर लेन–देन विनिमय कहलाता है। परंतु यह लेन–देन या क्रय–विक्रय उनकी कीमतों के आधार पर किया जाता है। इसलिए कीमत निर्धारण (Price Determination) विनिमय या क्रय–विक्रय का आधार है। कीमत–निर्धारण के दो महत्वपर्ण भाग है: वस्तु कीमत निर्धारण (Product-Price Determination) और साधन कीमत निर्धारण। (Factor-Price Determination) के अंतर्गत ये दोनों प्रकार के कीमत निर्धारण बाजार के विभिन्न रूपों जैसे पूर्ण प्रतियोगिता एकाधिकार आदि में किए जाते हैं।

   4. वितरण (Distribution): वितरण की क्रिया भी आर्थिक क्रिया है। इसके अंतर्गत हम यह देखते हैं कि राष्ट्रीय आय का वितरण विभिन्न उत्पादन के साधनों में किस प्रकार होता है। इसके लिए साधन कीमत का निर्धारण आवश्यक है। इसलिए साधन कीमत का निर्धारण विनिमय की क्रिया में भी शामिल होता है तथा वितरण की क्रिया में भी शामिल हो सकता है।

अतः प्रो. चेपमैन ने ठीक ही कहा है , "अर्थशास्त्र ज्ञान की वह शाखा है जो धन के उपयोग, उत्पादन, विनिमय तथा वितरण का अध्ययन करती है।" (Economics is the branch of knowledge that studies consumption, production, exchange and distribution of wealth." - Chapman)

2. *आर्थिक क्रियाओं का उद्देश्य (Objectives of Economic Activitiesa):* आर्थिक क्रियाओं के उद्देश्य के आधार पर 1933 में सर्वप्रथम प्रो. रेगनर फ्रिश (Prof. Ranger Frisch) ने अर्थशास्त्र को दो भागों में बांटा – (1) व्यष्टिगत अर्थशास्त्र (Micro Economics) तथा (2) समष्टिगत अर्थशास्त्र (Macro Economics)। उद्देश्य के आधार पर आर्थिक क्रियाओं का उपरोक्त विभाजन भी अर्थशास्त्र की विषय–सामग्री को प्रकट करता है। इसकी व्याख्या निम्न प्रकार से व्यक्त की गई है –

   1. व्यष्टिगत अर्थशास्त्र (Micro Economics): व्यष्टिगत अर्थशास्त्र में आर्थिक इकाइयों की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। जैसे किसी एक उपभोक्ता की संतुष्टि, एक वस्तु की मांग, एक उत्पादक का उत्पादन, एक उत्पादक की लागत, एक वस्तु की कीमत आदि। इस प्रकार व्यष्टिगत अर्थशास्त्र में मांग का सिद्धांत (Theory of Demand), उत्पादन का सिद्धांत (Theory of Production), वस्तु–कीमत निर्धारण का सिद्धांत (Theory of Product Price Determination), साधन–कीमत निर्धारण का सिद्धान्त (Theory of Factor-Price Determination), आर्थिक कल्याण का सिद्धांत (Theory of Economic Welfare) आदि सिद्धांतों का अध्ययन किया जाता है।

   2. समष्टिगत अर्थशास्त्र (Macro Economics): इसके अंतर्गत अर्थव्यवस्था की विभिन्न सामूहिक आर्थिक इकाईयों का अध्ययन किया जाता है। जैसे राष्ट्रीय आय (National Income), पूर्ण रोजगार (Full Employment), कुल बचत (Total Saving), कीमत स्तर (Price-Level), कुल आयात या कुल निर्यात (Total imports and total exports), सरकारी आय तथ व्यय (Government Income and Expenditure), मुद्रा (Money), आर्थिक विकास (Economic Growth), व्यापार चक्र (Trade Cycles) आदि का अध्ययन किया जाता है।

(ii) ***आर्थिक प्रणालियां (Economic Systems):*** आर्थिक क्रियाओं को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए विभिन्न देश अलग–अलग आर्थिक प्रणाली (Economic System) अपनाते हैं। कौन–सा देश किस आर्थिक प्रणाली को अपनाता है यह उस देश की आर्थिक आवश्यकताओं तथा विचारधारा पर निर्भर करता है। आर्थिक प्रणालियों को मुख्यतः तीन भागों में बांटा जाता है – 1. पूंजीवाद (Capitalism): इस प्रणाली में लोगों को आर्थिक क्रियाएं करने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है। सरकार आर्थिक क्रियाओं में किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप नहीं करती। व्यक्ति किसी भी वस्तु व सेवा को क्रय या विक्रय कर सकते हैं तथा किसी भी वस्तु का उत्पादन कर सकते हैं। सभी आर्थिक क्रियाओं का संचालन कीमत संयंत्र (Price Mechanism) के द्वारा स्वतः होता रहता है। 2. समाजवाद (Socialism): इस आर्थिक प्रणाली में उत्पादन के साधनों पर सरकार का स्वामित्व होता है। इस प्रणाली में लोग निजी संपत्ति नहीं रख सकते। उपभोग, उत्पादन आदि आर्थिक क्रियाओं पर सरकार का नियंत्रण होता है। 3. मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Exonomy): मिश्रित अर्थव्यवस्था के अंतर्गत कुछ आर्थिक कार्य सरकार द्वारा तथा कुछ निजी व्यक्तियों द्वारा किए जाते हैं। यह पूंजीवाद तथा समाजवाद के बीच का रास्ता है। प्रत्येक देश इन तीनों में से किसी एक आर्थिक प्रणाली को अपनाए हुए है।

(iii) ***आर्थिक नीतियां (Economic Policies):*** प्रत्येक देश चाहे वह किसी भी आर्थिक प्रणाली को अपनाता है, उसको विभिन्न आर्थिक समस्याओं जैसे–बेरोज़गारी, गरीबी, धन की असमानता, कीमत वृद्धि, मंदी आदि का सामना करना पड़ता है। इन समस्याओं के समाधान के लिए बनाई तथा अपनाई गई नीतियां आर्थिक नीतियां कही जाती हैं। मुख्य आर्थिक नीतियां निम्न प्रकार हैं:

1. *मौद्रिक नीति (Monetary Policy):* मौद्रिक नीति का प्रमुख उद्देश्य मुद्रा–बाजार में संतुलन बनाए रखना है। देश में मुद्रा की मांग को ध्यान में रखते हुए मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि पर नियंत्रण करना मौद्रिक नीति का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। मौद्रिक नीति का उद्देश्य देश में पूर्ण रोज़गार, कीमत स्थिरता, विनिमय दर में स्थिरता, आर्थिक विकास आदि प्राप्त करना है।

2. *राजस्व (Fiscal Policy):* राजस्व (Fiscal) का संबंध सरकारी आय तथा सरकारी व्यय से होता है। इस नीति के अंतर्गत सरकारी आय तथा व्यय पर नियंत्रण इस प्रकार किया जाता है ताकि देश की आर्थिक समस्याएं, जैसे बेरोज़गारी, कीमतों में तीव्र वृद्धि, गरीबी, धन की असमानता आदि का समाधान किया जा सके। कर (Tax) सरकार की आय का प्रमुख स्रोत होता है, परंतु सरकार सार्वजनिक ऋण, घाटे के वित्त आदि को अपना कर भी अपने साधनों में वृद्धि करती है। फिर सरकार समाज कल्याण, सुरक्षा, कानून व्यवस्था आदि पर अपनी आय को व्यय करती है। सरकार की आय तथा व्यय पर नियंत्रण राजस्व के अंतर्गत आता है।

3. *कीमत नीति (Price Policy):* कीमत–स्थिरता की अवस्था को प्राप्त करना प्रत्येक कीमत–नीति का उद्देश्य होता है। कीमतों में निरंतर वृद्धि (Inflation) या गिरावट (Deflation) दोनों ही आर्थिक समस्याओं को बनाती हैं।

4. *आय नीति (Income Policy):* इस नीति का उद्देश्य देश में उपलब्ध साधनों का इस प्रकार प्रयोग करना होता है ताकि आय को अधिकतम किया जा सके।

5. *आर्थिक योजना (Economic Planning):* समयबद्ध ढ़ंग से विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति तथा नीतियों को कार्यान्वित करने के लिए आर्थिक योजना लागू की जाती है। जैसे भारत में पंचवर्षीय योजना अपनाइ हुई है।

संक्षेप में, एनातोल मुराद के अनुसार, "अर्थशास्त्र की विषय–सामग्री अर्थव्यवस्था या आर्थिक प्रणाली की प्रकृति तथा व्यवहार के वर्णन से सम्बन्धित है। अर्थशास्त्र का मुख्य विषय आर्थिक समस्याओं की *जांच पड़ताल करना तथा उनके विषय में सुझाव देना है।"* ("The Subject Matter of Economics is the desacription of nature and behaviour of an economy or of an economic system and invesatigation of economic problems with the object of offering solutions – Anatol Murad).

2. **अर्थशास्त्र की प्रकृति (Nature of Economics):** अर्थशास्त्र हो या कोई और शास्त्र, प्रत्येक शास्त्र या विषय की प्रकृति इस बात से स्पष्ट होती है कि क्या यह विषय विज्ञान है या कला या विज्ञान और कला दोनों ही हैं। अर्थशास्त्र की प्रकृति ज्ञात करने के लिए *यह मालूम करना होगा कि क्या अर्थशास्त्र* विज्ञान है या कला है *या* दोनों ही है? यदि यह विज्ञान है तो किस प्रकार का विज्ञान है– क्या यह वास्तविक विज्ञान (Positive Science) है या आदर्शात्मक विज्ञान (Normative Science) या दोनों ही है।

क्या अर्थशास्त्र विज्ञान है? (Is Economics a Science?): यह ज्ञात करने के लिए कि अर्थशास्त्र विज्ञान है या नहीं इससे पहले (i) विज्ञान का अर्थ तथा (ii) विज्ञान की विशेषताएं समझ लेना अति आवश्यक है:

(i) ***विज्ञान का अर्थ (Meaning of Science):*** विज्ञान का अर्थ इसकी निम्न परिभाषा से स्पष्ट होता है – 'विज्ञान ज्ञान की एक क्रमबद्ध शाखा है जो किसी विशेष घटना के कारण तथा परिणामों के पारस्परिक संबंध को प्रकट करती है।" (Science is a systematic body of knowledge concerning the relationship between causesa and effects of a particular phenomenon).

विज्ञान तथ्यों (Facts) से बना है। परंतु विज्ञान केवल तथ्यों का समूह नहीं होता है। इन तथ्यों के बीच पाए जाने वाले कारण और परिणाम का संबंध इन को विज्ञान का रूप देता है। ये तथ्य किसी भी घटना से संबंधित हो सकते है। उदाहरणतः जब किसी वस्तु की कीमत बढ़ती है तो उस वस्तु का उत्पादन भी बढ़ता है। यहां प्रथम तथ्य वस्तु की कीमत का बढ़ना है तथा दूसरा तथ्य वस्तु का उत्पादन बढ़ना है। विज्ञान की दृष्टि से दोनों बेकार हैं। जब तक इन दोनों तथ्यों में संबंध स्थापित नहीं होता है कि वस्तु की कीमत बढ़ने (कारण) के कारण उस

वस्तु के उत्पादन में वृद्धि (परिणाम) होती है। यह कारणात्मक संबंध स्थापित होने से यह घटना विज्ञान का भाग बन जाती है। इस संबंध में पाइनकेयर ने ठीक ही कहा है कि "विज्ञान तथ्यों से इसी प्रकार निर्मित होता है जिस प्रकार मकान ईंटों से निर्मित होता है। परंतु तथ्यों को एकत्रित करना मात्र ही विज्ञान उसी प्रकार नहीं है जिस प्रकार से ईंटों का एक ढेर मकान नहीं है।" (Science is built up of facts as house is built of stones; but an accumulation of facts is no more a science than a heap of stones is house.–M. Poincare.)

(ii) ***विज्ञान की विशेषताएं (Features of Science):*** विज्ञान की मुख्य विशेषताएं निम्न प्रकार से हैं:

1. *क्रमबद्ध अध्ययन (Systematic Study):* विज्ञान तथ्यों का क्रमबद्ध ढंग से अध्ययन करता है।
2. *माप (Measurement):* विज्ञान तथ्यों के सही माप पर आधारित होता है।
3. *नियम (Laws):* विज्ञान के अपने नियम होते हैं जो किसी भी विषय के तथ्यों में परस्पर संबंध स्थापित करते हैं। इन नियमों को वैज्ञानिक नियम (Scientific Laws) भी कहा जाता है क्योंकि ये कारण तथा परिणाम में संबंध स्थापित करते हैं।
4. *सत्यता की जांच (Verification of Validity of the Laws):* वैज्ञानिक नियमों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इनको वास्तविक जीवन में लागू करके देखा या जांचा जा सकता है कि वे ठीक हैं या नहीं।
5. *सार्वभौमिक नियम (Universal Laws):* विज्ञान की अंतिम विशेषता यह है कि इसके नियम सार्वभौमिक होते हैं। अर्थात् वैज्ञानिक नियम सभी देशों तथा सभी समय पर लागू होते हैं।

क्या अर्थशास्त्र एक विज्ञान है?
(Is Economics a Science?):

अर्थशास्त्र विज्ञान है या नहीं यह इस बात पर निर्भर करता है कि क्या अर्थशास्त्र में विज्ञान बनने की उपरोक्त विशेषताएं या गुण हैं? इस प्रश्न की जांच निम्न प्रकार से की गई है:

1. **अर्थशास्त्र में क्रमबद्ध अध्ययन (Systematic Study in Economics):** अर्थशास्त्र में आर्थिक क्रियाओं का क्रमबद्ध ढंग से अध्ययन किया जाता हैं इसमें पहले उपभोग फिर उत्पादन इसके बाद कीमत निर्धारण आदि आर्थिक तथ्यों का क्रमबद्ध तरीके से अध्ययन किया जाता है।
2. **अर्थशास्त्र में माप (Measurement in Economics):** अर्थशास्त्र में आर्थिक तथ्यों का माप मुद्रा की सहायता से किया जाता है यद्यपि मुद्रा आर्थिक तथ्यों को मापने का स्थिर पैमाना नहीं है। कीमतों में उतार–चढ़ाव से मुद्रा का मूल्य बढ़ता व घटता रहता है। इसलिए हम आर्थिक तथ्यों को वास्तविक रूप में (वस्तुओं में) भी मापते हैं। जैसे, वास्तविक आय, वास्तविक बचत, वास्तविक उत्पादन आदि के रूप में आर्थिक तथ्यों का सही माप भी किया जाता है।
3. **अर्थशास्त्र के नियम (Laws of Economics):** अर्थशास्त्र के नियम आर्थिक तथ्यों के कारण तथा परिणाम में संबंध स्थापित करते हैं। जैसे मांग का नियम व्यक्त करता है कि अन्य बातें समान रहने पर किसी वस्तु की कीमत गिरने के कारण उस वस्तु की मांग में वृद्धि होती है। वस्तु की कीमत तथा उस वस्तु की मांगी गई मात्रा में कारणात्मक संबंध है। यद्यपि यह सही है कि अर्थशास्त्र के नियम इतने सत्य नहीं पाए जाते जितने रसायन शास्त्र आदि के नियम। इसका कारण यह है कि एक ओर तो अन्य बातें स्थिर नहीं रहती तथा दूसरा कारण मानव व्यवहार स्थाई नहीं है।
4. **आर्थिक नियमों की जांच (Verification of Economic Laws):** आर्थिक नियम वास्तविकता के अनुकूल हैं या नहीं? आर्थिक नियमों की सत्यता की जांच इतनी सही नहीं हो सकती जितनी कि प्राकृतिक विज्ञानों के नियमों की हो सकती है। इसका कारण यह है कि भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान आदि की प्रयोगशालाएं तो चार दीवारी में बंद होती हैं तथा बाहरी तत्वों को उनके प्रयोग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अर्थशास्त्र की इस प्रकार की कोई प्रयोगशाला न होकर खुली अर्थव्यवस्था ही इसकी प्रयोगशाला है जिसमें बाहरी तत्वों या तथ्यों का प्रभाव प्रयोगों पर पड़ता रहता है।
5. **आर्थिक नियमों की सार्वभौमिकता (Universality of Economic Laws):** अर्थशास्त्र के सभ नियम इतने सार्वभौमिक नहीं कहे जा सकते। जैसे किसी वस्तु पर मांग का नियम समय व स्थान के बदलने के साथ लागू नहीं होता। परंतु कुछ

नियम जैसे घटते सीमांत तुष्टिगुण का नियम, आनुपतिकता का नियम आदि सार्वभौमिक नियम हैं। ये हर समय व स्थान पर लागू होता है।

अतः स्पष्ट है कि उपरोक्त विशेषताओं के आधार पर अर्थशास्त्र एक विज्ञान है। परंतु कुछ विचारकों के अनुसार अर्थशास्त्र विज्ञान नहीं है। क्योंकि:

(i) अर्थशास्त्रियों में प्रत्येक आर्थिक तथ्य या समस्या पर मतभेद (Difference of Opinion) पाया जाता है। इसलिए अर्थशास्त्र में अनिश्चितता बनी रहती है, परंतु विज्ञान के नियम तो निश्चित होते हैं।

(ii) अर्थशास्त्र के नियमों का भौतिक विज्ञानों की तरह प्रयोगशाला में प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

(iii) अर्थशास्त्र की भविष्यवाणी (Prediction) इतनी सही नहीं होती है जितनी कि भौतिक विज्ञानों की भविष्यवाणियां।

(iv) अर्थशास्त्र का मुद्रा रूपी माप–दण्ड (Measuring Rod), विश्वसनीय नहीं है क्योंकि मुद्रा के मूल्य में (कीमतों में आए उतार–चढ़ाव के कारण) परिवर्तन होता रहता है।

सारांश में उपरोक्त तर्क कि अर्थशास्त्र विज्ञान नहीं है इतने वास्तविक नहीं है। अर्थशास्त्र विज्ञान के कई महत्वपूर्ण गुण या विशेषताएं रखता है। इसलिए यह विज्ञान है। इसके विरोध में तर्क कि इसमें प्रयोग नहीं हो सकते इतना सही नहीं। वास्तव में अर्थशास्त्र में भी प्रयोग होते हैं। स्वतंत्र व्यापार, बैंकों का निजीकरण आदि प्रयोग ही हैं। अंतर इतना है कि अर्थशास्त्र के लिए सारा संसार इसकी खुली प्रयोगशाला है। आर्थिक तथ्यों का मुद्रा में माप भी लगभग ठीक हो जाता है। इसलिए इसके विज्ञान न होने के पक्ष में तर्क ठीक नहीं है। अतः अर्थशास्त्र एक विज्ञान है।

अर्थशास्त्र वास्तविक विज्ञान है या आदर्शात्मक विज्ञान
(Economics – a Positive Science or a Normative Science?)

यह सिद्ध होने के पश्चात् कि अर्थशास्त्र एक विज्ञान है अब यह जानना आवश्यक है कि अर्थशास्त्र किस प्रकार का विज्ञान है? अर्थात्:

1. क्या अर्थशास्त्र एक वास्तविक विज्ञान है?
(Is Economics a Positive Science?)

2. क्या अर्थशास्त्र आदर्शात्मक विज्ञान है?
(Is Economics a Normative Science?)

इस संबंध में कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्र केवल वास्तविक विज्ञान (Positive Science) है तथा कुछ अन्य के अनुसार अर्थशास्त्र वास्तविक और आदर्शात्मक विज्ञान दोनों है। इन विचारों की जांच निम्न प्रकार की गई है–

1. **क्या अर्थशास्त्र एक वास्तविक विज्ञान है? (Is Economics a Positive Science?):** सीनियर, रोबिन्ज, फीडमेंन आदि अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्र एक वास्तविक विज्ञान (Positive Science) हैं। वास्तविक विज्ञान वह विज्ञान होता है जिसमें किसी विषय की घटनाओं का सही तथा वास्तविक अध्ययन किया जाता है। वास्तविक विज्ञान क्या है, कैसे है आदि प्रश्नों को हल करता है। प्रो.आर.टी. बाई के शब्दों में, "वास्तविक विज्ञान अपने आप को किसी घटना के सही वर्णन तक सीमित रखता है, यह व्याख्या करता है कि यह घटना क्या है, यह कैसे घटी तथा इसके प्रभाव क्या हैं?" ("Positive Science confines itself to accurate description of phenomena, it explains what is, how it works and what are its effects." R.T. Bye)। इस प्रकार वास्तविक विज्ञान केवल वास्तविकता का अध्ययन करता है कि क्या क्यों और कैसे है? इसमें ऐसे तथ्यों का अध्ययन नहीं होता कि क्या होना चाहिए।

इस अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्र एक वास्तविक विज्ञान है जो किसी आर्थिक घटना के बारे में यह जांच करता है कि इसकी आर्थिक क्रियाएं क्या हैं? (What is?), क्यों हैं? (Why ?), क्या थीं (What was), इसके प्रभाव क्या हैं? (What are its effects?) अर्थशास्त्र यह तो अध्ययन करता है कि कीमत स्तर (Price Level) क्या है? परंतु यह अध्ययन नहीं करता कि कीमत स्तर क्या होना चाहिए। प्रो. रोबिन्ज के शब्दों में, "एक अर्थशास्त्री का कार्य खोज करना और व्याख्या करना है तथा न कि समर्थन या आलोचना करना।" (The function of an economist is to explore and explain and not to advocate or condemn.- Prof. Robbins).

पक्ष में तर्क (Arguments in favour): यदि अर्थशास्त्र केवल वास्तविक विज्ञान ही रहे तो यह अधिक उपयोगी विषय बन सकता है। अर्थशास्त्र के केवल वास्तविक विज्ञान होने के पक्ष में उपरोक्त अर्थशास्त्रियों द्वारा निम्न तर्क दिए जाते हैं–

(i) ***तर्कपूर्ण (Logical):*** यदि अर्थशास्त्र केवल वास्तविक विज्ञान बन जाता है तो यह अधिक तर्कपूर्ण हो जाएगा। इसका कारण यह है कि वास्तविक विज्ञान का आधार तर्क होता है, परंतु आदर्शात्मक विज्ञान का आधार भावनाएं होती हैं। *वास्तविक विज्ञान तर्क पर आधारित होने के कारण, किसी घटना के कारण तथा परिणाम में सही संबंध* प्रकट कर पाता है। इसलिए वास्तविक विज्ञान अधिक निश्चित विज्ञान होता है। यदि अर्थशास्त्र को हम अधिक तर्कपूर्ण और निश्चित विज्ञान देखता चाहते हैं तो इसे केवल वास्तविक विज्ञान ही बने रहना होगा।

(ii) ***सहमति (Uniformity):*** यदि अर्थशास्त्र केवल वास्तविक विज्ञान ही बने रहता है तो यह आर्थिक क्रियाओं या घटनाओं की वास्तविकता का अध्ययन कर सकेगा। इससे अर्थशास्त्रियों में मतभेद कम हो जाएगा तथा उनका समय व्यर्थ के वाद–विवाद से बच कर अर्थशास्त्र विषय के विकास पर लग सकेगा।

(iii) ***कुशलता (Efficiency):*** *क्या है और क्या होना चाहिए ये किसी आर्थिक घटना के दो अलग–अलग पहलू हैं।* कोई आर्थिक क्रिया या घटना क्या है यह वास्तविक विज्ञान का विषय है और क्या होना चाहिए यह आदर्शात्मक विज्ञान का विषय है। इसलिए यदि इन दोनों का अध्ययन अलग–अलग किया जाता है तो श्रम–विभाजन के लाभ प्राप्त होंगे तथा कार्यकुशलता बढ़ेगी।

(iv) ***अर्थशास्त्र का विकास (Development of Economics):*** यदि अर्थशास्त्र आर्थिक समस्याओं व क्रियाओं की केवल वास्तविकता का अध्ययन करता है कि क्या है और सुझाव देने का कार्य कि क्या होना चाहिए राजनीतिज्ञों, समाजशास्त्रियों आदि पर छोड़ देता है तो अर्थशास्त्र विषय का विकास अधिक तीव्र गति से हो सकेगा। इसका कारण यह है कि अर्थशास्त्र केवल वास्तविक विज्ञान ही रहने से अर्थशास्त्रियों में सहमति अधिक रहेगी और वे अपना ज्यादा ध्यान व समय अर्थशास्त्र विषय के सिद्धांतों की रचना में लगा सकेंगे। इतना ही नहीं जब अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक समस्याओं व घटनाओं के केवल वास्तविक पक्ष का ही अध्ययन करना है, न कि आदर्शात्मक का भी, तो श्रम–विभाजन के अनुसार उनकी कार्यक्षमता और भी बढ़ जाएगी। अतः अर्थशास्त्र वास्तविक विज्ञान रहने पर इस विषय का विकास अधिक तीव्र गति से हो सकेगा।

(v) ***सिद्धांतों का निर्माण (Formulation of Theories):*** यदि अर्थशास्त्र केवल वास्तविक विज्ञान ही रहता है तो इसके सिद्धांत या नियम उत्तम किस्म के हो सकेंगे तथा उनकी संख्या भी अधिक हो सकेगी। इसका कारण यह है कि अर्थशास्त्र केवल वास्तविक विज्ञान होने से अर्थशास्त्रियों की शक्ति तथा समय आर्थिक सिद्धांतों की रचना पर ही केन्द्रित रहेगा तथा उत्तम सिद्धांतों की रचना हो सकेगी।

(vi) **निष्पक्षता (Neutrality):** यदि कोई अर्थशास्त्री क्या है तथा क्या होना चाहिए इन दोनों पहलुओं पर एक साथ ध्यान देगा तो वह निष्पक्ष नहीं रह सकेगा। फिर वह वास्तविकता में अपने भाव का मिश्रण करेगा। अर्थशास्त्री के अनुसार क्या होना चाहिए इसके अनुरूप ही वह तथ्यों की व्याख्या करेगा कि क्या है? अतः तथ्यों की सही जानकारी के लिए अर्थशास्त्र को केवल वास्तविक विज्ञान ही होना चाहिए।

2. **अर्थशास्त्र एक आदर्शात्मक विज्ञान भी है (Economics is also a Normative Science):** डॉ. मार्शल, केनन, पीगू आदि अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र को एक आदर्शात्मक विज्ञान भी मानते हैं। आदर्शात्मक विज्ञान वह विज्ञान है जिसका उद्देश्य अच्छाई बुराई के आधार पर आदर्शों का निर्धारण करना है। यह विज्ञान समस्याओं के समाधान के लिए सुझाव या परामर्श भी देता है। इस प्रकार आदर्शात्मक विज्ञान का मुख्य कार्य उद्देश्यों या लक्ष्यों का निर्धारण करना है। अर्थशास्त्र एक आर्दशात्मक विज्ञान के रूप में आदर्शात्मक उद्देश्यों जैसे लोगों के कल्याण के लिए धन का समान बंटवारा होना चाहिए, कीमतें स्थिर रहनी चाहिए, पूर्ण रोजगार होना चाहिए। इस प्रकार अर्थशास्त्र तथ्यों का अध्ययन ही नहीं करता बल्कि आर्थिक तथ्यों या उद्देश्यों को निर्धारित भी करता है। प्रो. पीगू के अनुसार, "अर्थशास्त्र का प्रमुख उपयोग एक बौद्धिक व्यायाम अथवा सत्य की सत्य के लिए खोज करने में नहीं बल्कि नीति शास्त्र से सेविका और व्यवहार में नौकरानी के रूप में है।" (Economics is chiefly valuable not as an intellectual gymnastic nor as a means of

winning truth for its own sake, but as a handmaid of Ethics and a servant of practice. -Prof. Pigou) परंतु आदर्शात्मक कथनों के सही या गलत की जांच नहीं की जा सकती है (Normative Statement are not verifiable).

पक्ष में तर्क
(Arguments in Favour)

अर्थशास्त्र एक आदर्शात्मक विज्ञान भी है, इसके पक्ष में निम्न मुख्य तर्क दिए जाते हैं:

1. **मानव कल्याण (Human Welfare):** मानव कल्याण में वृद्धि करने के लिए अर्थशास्त्र को आदर्शात्मक विज्ञान (Normative Science) भी होना पड़ेगा। कल्याण में वृद्धि करने के लिए अर्थशास्त्र को उद्देश्यों की अच्छाई व बुराई के बारे में अपनी सलाह देनी होगी। उदाहरणातः यह अर्थशास्त्र को बताना होगा कि अर्थव्यवस्था के लिए स्वतंत्र व्यापार का उद्देश्य उचित है या अनुचित है आदि।

2. **व्यावहारिक (Practical):** मनुष्य की आर्थिक क्रियाएं केवल तर्क पर आधारित नहीं होती हैं। बहुत सी आर्थिक क्रियाओं का आधार भावना (Feelings) भी होती है। इसलिए अर्थशास्त्र में आर्थिक क्रियाओं का सही–सही अध्ययन करने के लिए केवल तर्क का ही नहीं बल्कि भावनाओं का अध्ययन (कि क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए) भी करना पड़ेगा। ऐसा करने पर ही अर्थशास्त्र अधिक व्यावहारिक (Practical) तथा आर्दशात्मक विज्ञान बन पाएगा।

3. **उपयोगी (Useful):** अर्थशास्त्र अधिक उपयोगी विज्ञान तभी बन पाएगा जब यह हमारे ज्ञान में वृद्धि के साथ–साथ हमारी आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए सलाह भी देगा। अर्थशास्त्र को एक आदर्शात्मक विज्ञान के रूप में सुझाव देना चाहिए कि मनुष्य की कौन सी क्रियाएं अच्छी हैं तथा कौन सी बुरी हैं। ऐसा होने पर अर्थशास्त्र अधिक उपयोगी विज्ञान बन जाएगा।

4. **बचतपूर्ण (Economical):** जब अर्थशास्त्री को आर्थिक समस्या के अध्ययन से ज्ञात हो जाता है कि इसके कारण क्या है तो वह तुरंत इसके समाधान के लिए सुझाव भी दे सकता है और समस्या हल कर दी जाती है। परंतु यदि इस आर्थिक समस्या के समाधान के लिए किसी दूसरे व्यक्ति या संस्था के पास जाना पड़े तो इसमें समय व शक्ति की बरबादी होती हैं। ऐसा करना बचतपूर्ण (Economical) नहीं कहा जा सकता है। इसलिए यह उचित तथा बचतपूर्ण होगा कि जो व्यक्ति आर्थिक तथ्यों या क्रियाओं या समस्याओं का अध्ययन करता है तो वह इनसे संबंधित उद्देश्यों तथा नीतियों के संबंध में भी निर्णय ले।

5. **यथार्थपूर्ण (Realistic):** अर्थशास्त्र का आदर्शत्मक विज्ञान होना यथार्थपूर्ण भी है। जिस डॉक्टर (Physician) ने किसी व्यक्ति की बीमारी की जांच की है वह डॉक्टर ही दवाई संबंधी उचित सलाह भी दे सकता है। इसी प्रकार जब अर्थशास्त्र किसी आर्थिक समस्या के कारणों की जांच कर लेता है तो यथार्थपूर्ण यही है कि वह उस समस्या के समाधान के लिए उचित सुझाव भी दे।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि अर्थशास्त्र एक वास्तविक तथा आदर्शात्मक दोनों प्रकार का विज्ञान है।

क्या अर्थशास्त्र एक कला है?
(Is Economics an Art ?)

इस प्रश्न पर अर्थशास्त्रियों में विवाद रहा है। रोबिन्ज, वालरस आदि अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्र कला नहीं है। परंतु डॉ. मार्शल, प्रो. पीगू आदि के अनुसार अर्थशास्त्र विज्ञान ही नहीं बल्कि कला भी है। यह जांच करने से पहले कि अर्थशास्त्र कला है या नहीं यह जानना आवश्यक है कि कला का क्या अर्थ है? आक्सफोर्ड शब्दकोष के अनुसार, "अध्ययन के वे विषय कला हैं जिनमें काल्पनिक तथा रचनात्मक कार्य करने की योग्यता विज्ञान में चाहने वाले सही माप तथा गणना की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण होते हैं।" (Arts are the subjects of study in which imaginative and creative skills are more important than the exact measurement and calculation needed is sciencesa.– Oxford Dictionary)

वैगनर के अनुसार, "कला एक निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए तरीकों और साधनों की जांच है।" (Art is the examination of ways and means for attaining a definite aim.– Wagner). अतः किसी निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ज्ञान का

व्यावहारिक प्रयोग कला कहलाता है। अर्थशास्त्र कला केरूप में हमारी आर्थिक समस्याएं सुलझाने में सहायक होता है। इसलिए जे.एन. केन्ज ने अर्थशास्त्र को कला कहने की बजाए व्यावहारिक अर्थशास्त्र (Applied Economics) कहा है। अर्थशास्त्र के कला होने के पक्ष में निम्न तर्क दिए जाते है:

1. **पक्ष में तर्क (Arguments is Favour):** बहुत से अर्थशास्त्री निम्नलिखित कारणों से अर्थशास्त्र को कला मानते हैं:

   (i) ***कल्पनाओं का महत्व (Importance of Assumptions):*** कला में कल्पनाओं का विशेष महत्व होता है। अर्थशास्त्र के सिद्धांत कल्पनाओं पर ही आधारित हैं। जैसे मांग का नियम, घटते सीमांत तुष्टिगुण का नियम आदि। आर्थिक समस्या के समाधान के लिए प्रथम इसके कारणों के बारे में कल्पना की जाती है तथा फिर उनकी जांच की जाती है। उचित कारण ज्ञात होने पर ही आर्थिक समस्या का समाधान संभव है।

   (ii) ***सिद्धांतों की रचना (Creation of Theoriesa):*** कला में रचनात्मक कार्यों को विशेष महत्व दिया जाता है। अर्थशास्त्र आर्थिक तथ्यों में संबंध स्थापित करने के लिए नए–नए सिद्धांतों की रचना करता रहता है, ताकि आर्थिक समस्याओं के कारण तथा हल ज्ञात किए जा सकें।

   (iii) ***सिद्धांत को अधिक महत्व (More Importance to Theory):*** अर्थशास्त्र में माप व गणना की तुलना में सिद्धांत को अधिक महत्व दिया जाता है। माप व गणना या हिसाब (Mathematics) सिद्धांत की सत्यता को मापने के साधन मात्र हैं। हम जानते हैं कि कला में सिद्धांत माप व गणना से अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। इसलिए अर्थशास्त्र कला होने का यह गुण या विशेषता भी रखता है।

   (iv) ***आर्थिक सिद्धांतों की जांच (Verification of Economics Theoriesa):*** अर्थशास्त्र कला होने के कारण ही इसके सिद्धांतों की सत्यता के बारे में जांच संभव हो सकी है। जैसे कि मांग के सिद्धांत अनुसार किसी वस्तु की कीमत गिरने पर उस वस्तु की मांग बढ़ जाती है। यह सिद्धांत ठीक है या नहीं, इसकी जांच तभी होगी जब हम इसे व्यावहारिक रूप से प्रयोग करेंगे। यदि व्यवहार में यह सत्य नहीं पाया जाता तो इसके स्थान पर कोई नया सिद्धांत खोजने का प्रयास किया जाएगा।

   (v) ***आर्थिक समस्याओं का समाधान (Solution of Economic Problems):*** आज का मानव और राष्ट्र आर्थिक समस्याओं से घिरा हुआ है। इन आर्थिक समस्याओं का हल कैसे किया जा सकता है? अर्थशास्त्र के सिद्धांतों को लागू करके ही इनका हल हो सकता है। इन सिद्धांतों को लागू करके आर्थिक समस्याओं का समाधान करना ही कला का व्यावहारिक अर्थशास्त्र कहलाता है।

   (vi) ***वास्तविकता (Reality):*** वास्तविकता भी यही है कि एक अर्थशास्त्री अपना अधिकतर समय गरीबी, बेरोजगारी, आर्थिक विकास, कीमत वृद्धि आदि समस्याओं के समाधान की तलाश में लगाता है। प्रो. स्टिगलर के अनुसार, "नब्बे प्रतिशत से अधिक अर्थशास्त्री अपने समय का आधे से अधिक भाग आर्थिक समस्याओं के समाधान में ही लगाते हैं।"

   (vii) ***अर्थशास्त्र का कला -संकाय में अध्ययन होता है (Economics is studied in the Faculty of Arts):*** विश्वविद्यालयों में अर्थशास्त्र विषय कला–संकाय में शामिल किया जाता है। इससे भी सिद्ध होता है कि अर्थशास्त्र एक कला भी है।

कला न होने के पक्ष में तर्क
(Arguments against Economics being an Art)

कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्र कला नहीं है। इसके कला न होने के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं:

1. **आर्थिक समस्याओं की प्रवृति (Nature of Economic Problems):** आर्थिक समस्याओं की प्रकृति ऐसी है कि उन पर दूसरे शास्त्रों के ज्ञान का प्रभाव भी पड़ता है। जैसे गरीबी की समस्या केवल आर्थिक ही नहीं है बल्कि सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक भी है। इसलिए इस समस्या का सही समाधान भी तभी हो सकता है जब सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक शास्त्रों के सिद्धांतों का आर्थिक सिद्धांत के साथ लागू किया जाए। इसलिए अर्थशास्त्र को पूर्ण कला का नाम नहीं दिया जा सकता, क्योंकि अकेले इसके सिद्धांत से समस्या हल नहीं होती है।

2. **अनिश्चितता (Uncertainty):** आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए विभिन्न अर्थशास्त्री अलग–अलग सुझाव व मत प्रकट करते हैं। किस सुझाव या सिद्धांत को लागू करने से समस्या का समाधान हो सकता है या नहीं। इस संबंध में अनिश्चितता का सामना करना पड़ता है।

3. **समय अंतराल (Time Lag):** आर्थिक समस्या का समाधान तत्काल नहीं किया जा सकता। आर्थिक समस्या उत्पन्न हो जाती है, परंतु अधिकारी पहले यह मानने में समय गंवा देते हैं कि यह आर्थिक समस्या है। आर्थिक समस्या की स्वीकृति होने के बाद फिर आर्थिक सिद्धांत के आधार पर नीति बनाई जाती है जो समय लेती है। आर्थिक नीति बनने के बाद इसको लागू करने में बहुत सा समय निकल जाता है। अतः आर्थिक समस्या पैदा होने तथा इसका समाधान होने के मध्य काफी समय अंतराल पाया जाता है। यह समय अंतराल अर्थशास्त्र के कला होने पर प्रश्न चिन्ह (?) है।

4. **कला तथा विज्ञान की अलग-अलग प्रकृति (Different Nature of Arts and Science):** इन दोनों संकाय (Faculties) की प्रकृति अलग–अलग होती है। कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार यदि अर्थशास्त्र एक कला है तो यह विज्ञान नहीं हो सकता और यदि यह विज्ञान है तो कला नहीं हो सकता।

संक्षेप में, अर्थशास्त्र को कला तथा विज्ञान दोनों माना जाता है। कोसा के अनुसार, "विज्ञान को कला की जरूरत है तथा कला को विज्ञान की जरूरत है, दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं।" (Science requires art, art requires science, each being complementary to each other. - Cossa) प्रो. चैपमेंन के अनुसार, "अर्थशास्त्र एक वास्तविक विज्ञान है जो आर्थिक तत्वों की वास्तविकता का अध्ययन करता है, एक आदर्शात्मक विज्ञान है जो इस बात की जांच करता है कि तथ्य कैसे होने चाहिए और एक कला है जो उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उपाय और साधनों की खोज करता है।"

(Economics is a positive science dealing with economic facts as they are, a normative science enquiring facts as they ought to be and an art finding out the ways and means by which the desired ends can be reached. - Prof. Chapman).

अर्थशास्त्र की सीमाएं
(Limitations of Economics)

अर्थशास्त्र के क्षेत्र की पूरी जानकारी प्राप्त करने के लिए अर्थशास्त्र की सीमाओं को भी ज्ञात करना अति आवश्यक है। इसकी मुख्य सीमाएं निम्न प्रकार है:

1. **केवल मानव की क्रियाओं का अध्ययन (Study of only Human Activitiesa):** प्रथम सीमा तो यह है कि अर्थशास्त्र में केवल मनुष्यों की क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है न कि पशु–पक्षियों या निर्जीव पदार्थों आदि का। हर विषय में उस विषय से संबंधित तथ्यों का ही अध्ययन किया जाता है

2. **वास्तविक मानव का अध्ययन (Study of Real Man):** अर्थशास्त्र में केवल वास्तविक मनुष्यों के व्यवहार या क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है न कि किसी काल्पनिक व्यक्ति का। एडम स्मिथ ने अर्थशास्त्र का अध्ययन आर्थिक मानव, जो काल्पनिक व्यक्ति ही हो सकता है, को माना जाता है। परंतु इसके लिए स्मिथ की बहुत आलोचना की गई कि मनुष्य हमेंशा अपने स्वार्थ के लिए ही धन नहीं कमाता है। इस तथ्य पर सहमति रही है कि अर्थशास्त्र में केवल वास्तविक व्यक्ति, जिसमें परिवार, समाज और देश के लिए अपने स्वार्थ के त्याग की भावना भी विद्यमान है, का ही अध्ययन किया जाता है।

3. **सामान्य मानव का अध्ययन (Study of Average Man):** अर्थशास्त्र की एक सीमा यह भी है कि इसमें केवल सामान्य मनुष्यों का ही अध्ययन किया जाता है। असामान्य व्यक्तियों का नहीं। अर्थात् अर्थशास्त्र में पागल, नशेबाज, जुआरी, कंजूस व अपराधी आदि का अध्ययन नहीं किया जाता, क्योंकि ये सभी असामान्य व्यक्ति होते हैं। परंतु इन असमान्य व्यक्तियों जैसे तस्करी आदि का सामान्य व्यक्ति की क्रियाओं पर प्रभाव पड़ता है इसलिए ऐसी क्रियाओं का अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाने लगा है।

4. **सामाजिक मानव का अध्ययन (Study of Social Man):** अर्थशास्त्र की इस सीमा पर अर्थशास्त्रियों में मतभेद पाया जाता है। डॉ. मार्शल आदि के अनुसार अर्थशास्त्र में केवल उन्हीं व्यक्तियों का अध्ययन किया जाता है जो समाज में

रहते हैं। परंतु प्रो. रोबिन्ज के अनुसार अर्थशास्त्र में मानव का अध्ययन किया जाता है चाहे वह समाज में रहता है तथा जंगलों में रहता है। अर्थात् रोबिन्ज के अनुसार अर्थशास्त्र में सभी व्यक्तियों का अध्ययन किया जाता है।

5. **आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन (Study of Economic Activities):** अर्थशास्त्र की एक सीमा यह भी है कि इसमें केवल आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। आर्थिक क्रियाएं वे क्रियाएं हैं जिनका संबंध धन कमाने व खर्च करने से है।

6. **आर्थिक नियम (Economic Laws):** अर्थशास्त्र की यह भी सीमा है कि इसके नियम वैज्ञानिक होते हुए भी कम लागू होते हैं। अर्थात् आर्थिक नियम अनिश्चित तथा सापेक्षिक पाए जाते हैं। इनकी तुलना में प्राकृतिक विज्ञानों के नियम अधिक निश्चित होते हैं। इसका कारण यह है कि अर्थशास्त्र के नियम बहुत ही अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित हैं।

7. **विज्ञान तथा कला (Science and Art):** अर्थशास्त्र विज्ञान तथा कला दोनों है। यह सामाजिक विज्ञान होने के साथ–साथ वास्तविक और आदर्शात्मक विज्ञान भी है।

8. **स्थैतिक तथा गत्यात्मक अध्ययन (Static and Dynamic Study):** अर्थशास्त्र में स्थैतिक तथा गत्यात्मक दोनों प्रकार की क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। स्थैतिक किसी समय बिन्दु पर आर्थिक तथ्यों की अवस्था को दर्शाता है जबकि गत्यात्मक समय अवधि में आर्थिक तत्वों में परिवर्तन का अध्ययन करता है।

9. **मत-भेद (Different Views):** अर्थशास्त्रियों के विचार समरूप नहीं होते हैं। इसके दो कारण हैं – प्रथम, प्रत्येक अर्थशास्त्री के किसी आर्थिक समस्या के बारे में विचार भिन्न होते हैं, दूसरे मानव व्यवहार अस्थिर है तथा इस बारे में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है।

10. **दुर्लभ साधन (Scarce Means):** अर्थशास्त्र की एक सीमा यह भी है कि साधन दुर्लभ होने के कारण इसकी सभी समस्याएं हल नहीं की जा सकती हैं। संक्षेप में, अर्थशास्त्र की उपरोक्त सीमाओं के कारण यह विषय सार्वभौमिक (Universal) तथा सर्वव्यापक (Omnipresaent) नहीं बन सका है।

क्या अर्थशास्त्र उद्देश्यों के प्रति तटस्थ है?
(Is Economics Neutral as Regards Ends?)

अर्थशास्त्र उद्देश्यों के प्रति तटस्थ है या नहीं? इस प्रश्न पर अर्थशास्त्री सहमत नहीं है। प्रो. रोबिन्ज, सीनियर, फ्रीडमेंन आदि अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र को वास्तविक विज्ञान मानते हैं। इनके अनुसार अर्थशास्त्र आर्थिक घटनाओं व समस्याओं आदि की वास्तविकता का अध्ययन करता है कि वे क्यों उत्पन्न हुई तथा उनके क्या प्रभाव होंगे आदि। ये प्रभाव अच्छे हैं या बुरे हैं? इन आर्थिक समस्याओं का हल करना कल्याणकारी है या अकल्याणकारी? इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार इस प्रकार के प्रश्नों से अर्थशास्त्र का कोई संबंध नहीं है। अर्थशास्त्र का संबंध लक्ष्यों की अच्छाई या बुराई से नहीं है। अतः अर्थशास्त्र उद्देश्यों के प्रति तटस्थ है। (Economics is neutral as regards ends.) अर्थात् अर्थशास्त्र एक वास्तविक विज्ञान है। परंतु इसके विपरीत डॉ. मार्शल, पीगू, रवेली आदि के अनुसार अर्थशास्त्र एक आदर्शात्मक विज्ञान भी है। अर्थशास्त्र लक्ष्यों की अच्छाई–बुराई का भी अध्ययन करता है। अर्थशास्त्र इस प्रकार के निर्णय भी लेता है कि जैसे कि आर्थिक विकास और धन के समान बंटवारे दोनों लक्ष्यों में से कौन सा लक्ष्य अच्छा है तथा अपनाना चाहिए। बहुत से आर्थिक लक्ष्य प्रतियोगी (Competitive) होते हैं इसलिए उनमें से मूल्यांकन (Value Judgement) के आधार पर किसी एक को ही अपनाना होता है। जैसे कीमत स्थिरता तथा पूर्ण रोजगार के लक्ष्य दोनों साथ–साथ नहीं अपनाए जा सकते। उनकी अच्छाई व बुराई के आधार पर उनमें से चयन करना पड़ता है। अतः इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्र आदर्शात्मक विज्ञान भी है।

अर्थशास्त्र उद्देश्यों के प्रति तटस्थ है
(Economics is Neutral as regards Ends)

प्रो. रोबिन्ज़ के अनुसार, "अर्थशास्त्र उद्देश्यों के प्रति बिल्कुल तटस्थ है।" (Economics is entirely neutral as regards ends. – Prof. Robbins) अर्थात् अर्थशास्त्र उद्देश्यों को उनकी अच्छाई बुराई के आधार पर चुनने के प्रति तटस्थ है।

किसी भी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जब मानव के पास साधन दुर्लभ होते हैं तो वह उस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जो व्यवहार या आर्थिक क्रियाएं करता है वह अर्थशास्त्र में अध्ययन किया जाता है। उद्देश्यों की प्राप्ति जब तक दुर्लभ साधनों पर निर्भर करती है वे उद्देश्य अर्थशास्त्र के अध्ययन का विषय होते हैं। ये उद्देश्य अच्छे हैं या बुरे इस बात का अर्थशास्त्र से कोई संबंध नहीं है। अर्थशास्त्र केवल यह जांच करता है कि दुर्लभ साधनों से उद्देश्यों की पूर्ति कैसे होती है? मानव की आवश्यकताएं या उद्देश्य असीमित होते हैं तथा वह दुर्लभ साधनों को मद्देनज़र रखते हुए चयन करके कुछ उद्देश्यों को ही पूरा करना चाहता है। अर्थशास्त्र जांच करता है कि अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मनुष्य दुर्लभ साधनों का प्रयोग किस प्रकार करता है। उदाहरणतः युद्ध के अंतर्गत राष्ट्र के सामने ज्यादा से ज्यादा हथियार खरीदने या उनका उत्पादन करने का उद्देश्य होता है। परंतु इसके लिए साधन दुर्लभ होते हैं। दुर्लभ साधनों से यह उद्देश्य पूरा करने के लिए आर्थिक क्रियाएं की जाती हैं, जो आर्थिक नियम या नीतियां अपनाई जाती हैं आदि वे सभी अर्थशास्त्र में अध्ययन की जाती हैं। अर्थशास्त्र का कार्य यह देखना नहीं है कि युद्ध अकल्याणकारी है। मान लीजिए अब यदि दुश्मन राष्ट्रों में स्थाई शांति समझौते हो जाते हैं, तो राष्ट्र के उद्देश्य में परिवर्तन आ जाता है कि उन दुर्लभ साधनों का कैसे प्रयोग किया जाए ताकि आय में वृद्धि अधिकतम हो सके। इस प्रकार अर्थशास्त्र का कार्य तो दुर्लभ साधनों और उद्देश्यों के मध्य संबंध स्थापित करना होता है ये उद्देश्य अच्छे हैं या बुरे इस बात से अर्थशास्त्र का कुछ लेना–देना नहीं होता। इस प्रकार का अध्ययन अर्थशास्त्र को वास्तविक विज्ञान (Positive Science) बना देता हैं। जैसे रसायन शास्त्र का कार्य यह बताना तो है कि जहर बनाने के लिए भिन्न तत्व कितनी–कितनी मात्रा या अनुपात में मिश्रित किए जाते हैं, परंतु यह बताना नहीं है कि जहर अच्छा नहीं है।

विकस्टीड के अनुसार, "अर्थशास्त्र सभी उद्देश्यों को दिया हुआ मानता है।" (Economics takes all ends for granted.– Wickstead). इन उद्देश्यों में चुनाव इसलिए करना पड़ता है क्योंकि साधन दुर्लभ होने के कारण उन सभी को संतुष्ट नहीं किया जा सकता है। उद्देश्यों में यह चुनाव उनकी अच्छाई–बुराई के आधार पर नहीं होता है। यह चुनाव राजनीतिक कारणों आदि पर निर्भर कर सकते हैं।

प्रो. रोबिन्ज अर्थशास्त्र को एक वास्तविक विज्ञान मानता है। उनके अनुसार यह उद्देश्यों की अच्छाई या बुराई से कोई संबंध नहीं रखता है। अर्थशास्त्र उद्देश्यों के संबंध में किसी प्रकार के नैतिक निर्णय (Value Judgements) नहीं करता है। इसका कारण यह है कि नैतिक निर्णय भावगत व व्यक्तिगत (Subjective) होते हैं। परंतु विज्ञान हमेशा वस्तुगत (Objective) होता है। इसलिए अर्थशास्त्र विज्ञान होने के नाते इसका अध्ययन वस्तुगत या वास्तविक होता है, जो इसको उद्देश्यों की अच्छाई या बुराई के प्रति तटस्थ बना देता है। सीनियर के अनुसार, "अर्थशास्त्री सलाह का एक शब्द भी नहीं जोड़ सकता।" (Economist cannot add-even a single word of advice. – Senior) इसके अनेक लाभ हो सकते हैं।

अर्थशास्त्र की तटस्थता के लाभ
(Advantages of the Neutrality of Economics as regards Ends)

1. **तर्कपूर्ण (Logical):** यदि अर्थशास्त्र उद्देश्यों की अच्छाई या बुराई के वाद–विवाद में न फंसे तो यह विषय अधिक वैज्ञानिक बन सकेगा। विज्ञान हमेंशा तर्कपूर्ण होता है। अतः अर्थशास्त्र यदि वास्तविक विज्ञान ही रहता है तो यह अधिक तर्कपूर्ण विषय बन जाएगा।
2. **सहमति (Agreement):** जब आर्थिक समस्याओं का वस्तुगत (Objective) अध्ययन किया जाएगा तो सभी अर्थशास्त्रियों में सहमति शीघ्र हो सकेगी।
3. **कुशलता (Efficiency):** अर्थशास्त्र उद्देश्यों के प्रति तटस्थ होने से इसका कार्य छोटा हो जाता है। इससे अर्थशास्त्रियों की सिद्धांत निर्माण संबंधी कार्यकुशलता बढ़ेगी।
4. **निष्पक्षता (Impartiality):** जब अर्थशास्त्र का संबंध उद्देश्यों की अच्छाई या बुराई से नहीं रहेगा तो इसके निणर्य अधिक निष्पक्ष हो सकेंगे।
5. **विज्ञान का सही स्वरूप (True nature of Science):** अर्थशास्त्र विज्ञान का सही स्वरूप तभी धारण कर सकेगा जब यह रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र (Physics) की तरह उद्देश्यों की अच्छाई या बुराई से संबंध में तटस्थ बन जाएगा।

अर्थशास्त्र उद्देश्यों के प्रति तटस्थ नहीं है
(Economics is not Neutral as regards Ends)

डॉ. मार्शल आदि अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्र उद्देश्यों की अच्छाई–बुराई के प्रति तटस्थ नहीं है। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्र उद्देश्यों की अच्छाई व बुराई से संबंधित है। अर्थशास्त्र आर्थिक समस्याओं के केवल कारणों का अध्ययन ही नहीं करता बल्कि यह भी बताता है कि पहले किस आर्थिक समस्या को हल करने से देश का हित हो सकता है। साधन सीमति होने के कारण सभी आर्थिक समस्याएं एक साथ हल नहीं की जा सकती। इसलिए अर्थशास्त्रियों का कार्य नैतिक निर्णय (Value Judgements) करना भी है। ऐरिक रोल (Eric Roll) के अनुसार, "जनता अर्थशास्त्रियों से सामान्यतः यह जानना चाहती है कि क्या करना सही है। अर्थशास्त्री हमेशा इस प्रश्न से बचे नहीं रह सकते।" (The Public generally wants to know from the economists what is the right thing to do. Economists cannot always shirk this question. – Eric Roll) इसी प्रकार हाट्रे ने इस संबंध में ठीक ही कहा है कि, "अर्थशास्त्र को नीतिशास्त्र से अलग नहीं किया जा सकता।" (Economics cannot be disassociated from ethics. – Harotrey) अर्थात् हाट्रे के अनुसार अर्थशास्त्र भी नीतिशास्त्र की तरह उद्देश्यों की अच्छाई और बुराई का अध्ययन करता है।

उदाहरणतः एक देश के उद्देश्यों तथा सीमित साधनों को मद्देनज़र रखते हुए अर्थशास्त्र को बताना होगा कि वह देश आर्थिक विकास के लिए कृषि क्षेत्र को प्राथमिकता दे या औद्योगिक क्षेत्र को प्राथमिकता दे, वह स्वतंत्र विदेशी व्यापार (Free Trade) अपनाए या संरक्षण (Protection) की नीति अपनाए।

इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्र का उद्देश्य मानव कल्याण में वृद्धि करना है। इसके लिए अर्थशास्त्र को नैतिक निर्णय (Value Judgement) करने पड़ते हैं। पीगू के अनुसार, "हमारी भावना एक दार्शनिक की भावना नहीं होती कि ज्ञान को केवल ज्ञान के लिए प्राप्त किया जाए, बल्कि एक डॉक्टर जैसी भावना होती है कि ज्ञान रोगी को ठीक करने में सहायता करे।"

(Our impulse is not the philosopher's impulse, knowledge for the sake of knowledge, but rather than physiologist's knowledge for the feeling that knowledge may help to bring – Pigou)

यदि अर्थशास्त्र उद्देश्यों के प्रति तटस्थ नहीं रहे तो इसके अनेक लाभ हो सकते हैं जो निम्न प्रकार हैं–

1. **मानव कल्याण (Human Welfare):** जब अर्थशास्त्र उद्देश्यों की अच्छाई व बुराई भी ज्ञात कर सकेगा तो अधिक कल्याणकारी सिद्धांतों को लागू किया जा सकेगा। इससे मानव–कल्याण में वृद्धि होगी।
2. **उपयोगी (Useful):** अर्थशास्त्र आदर्शात्मक विज्ञान भी होने के कारण आर्थिक समस्याओं के समाधान में इसका अधिक उपयोग होने लगेगा। अर्थात् यह एक अधिक उपयोगी विज्ञान बन जाएगा।
3. **बचतपूर्ण (Economical):** अर्थशास्त्री को आर्थिक समस्या के कारण ज्ञात होने के साथ–साथ इसका निदान भी मालूम होता है। इसलिए वह इसके समाधान के लिए तुरंत सुझाव दे सकता है, परंतु यदि सुझाव देने का कार्य कोई और करे तो अधिक समय तथा साधन व्यर्थ होंगे।
4. **यथार्थवादी (Realistic):** अर्थशास्त्र अधिक यथार्थपूर्ण हो सकेगा यदि उद्देश्यों की अच्छाई व बुराई के आधार पर उनका चयन किया जाए। इससे मानव कल्याण में वृद्धि होगी। इनकी अच्छाई व बुराई का ज्ञान भी सबसे अधिक अर्थशास्त्रियों को ही होता है। अतः इनका अच्छाई के आधार पर चयन अर्थशास्त्री ही कर सकते हैं।
5. **व्यावहारिक (Practical):** अर्थशास्त्र उद्देश्यों के प्रति तटस्थ न रहने से उनकी अच्छाई व बुराई की ओर संकेत कर सकेगा। इससे आर्थिक समस्याओं का समाधान सरल बन जाएगा तथा अर्थशास्त्र अधिक व्यावहारिक विज्ञान बन सकेगा।

अतः अर्थशास्त्र उद्देश्यों के प्रति तटस्थ रह कर एक अधिक निश्चित विज्ञान का रूप तो ले सकता है। परंतु अधिक उपयोगी विज्ञान बनने के लिए इसको उद्देश्यों की अच्छाई व बुराई का अध्ययन भी करना होगा।

अर्थशास्त्र का महत्व
(Importance of Economics)

वर्तमान भौतिकवादी युग में अर्थशास्त्र व्यक्ति तथा राष्ट्र के लिए अति महत्वपूर्ण विषय है। यह केवल ज्ञानवर्धक (Light giving) ही नहीं बल्कि फलवर्धक (Fruit Bearing) भी है। अर्थात् अर्थशास्त्र का सैद्धांतिक महत्व होने के साथ–साथ इसका

ावहारिक महत्व भी है। इसके महत्व को ध्यान में रखते हुए सामाजिक शास्त्रों में अभी तक अकेले अर्थशास्त्र के लिए ही ाबेल पुरस्कार (Noble Prize) देने का प्रावधान रखा गया है। इसके महत्वों या लाभों (Advantagesa) को दो भागों में बांटा ा सकता है: (क) सैद्धांतिक महत्व तथा (ख) व्यावहारिक महत्व।

(क) **सैद्धांतिक महत्व (Theoretical Advantages):** अर्थशास्त्र के मुख्य सैद्धांतिक लाभ निम्नलिखित हैं:

(ii) ***ज्ञान में वृद्धि (Increase in Knowledge):*** अर्थशास्त्र के अध्ययन से मानव के ज्ञान में वृद्धि होती है। अर्थव्यवस्था कैसे कार्य करती है? गरीबी, बेरोजगारी, मंदी–तेजी, धन की असमानता आदि समस्याओं के क्या कारण हैं? देश में कितने प्राकृतिक तथा मानवीय साधन उपलब्ध हैं? अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार कि बातों पर निर्भर करता है? उपभोग, उत्पादन विनिमय तथा वितरण किन नियमों के अनुसार किया जाता है? अर्थशास्त्र के अध्ययन से उपरोक्त सभी प्रश्नों आदि का ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

(ii) ***तर्क शक्ति में वृद्धि (Increase in Reasoning Power):*** तर्क–शक्ति के द्वारा किसी आर्थिक घटना या समस्या के प्रत्यक्ष और परोक्ष कारणों की भली–भान्ति जानकारी प्राप्त हो जाती है। तर्क उस क्रिया को कहते हैं जिसके द्वारा दिए हुए यह ज्ञात हुए तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष निकाले जाते हैं। उदाहरणतः यदि जनसंख्या में वृद्धि की दर तीव्र है तो यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अनाज की मांग भी तेज़ी से बढ़ेगी। इसी प्रकार यदि शिक्षा का प्रसार अधिक तेज़ी से हो रहा है तो यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जनसंख्या शहरीकरण तेजी से होगा।

(iii) ***सिद्धांतों में वृद्धि (Increase in Theories):*** अर्थशास्त्र के अध्ययन से ज्ञान तथा तर्क में वृद्धि होती है। इन दोनों पहलुओं में हुई वृद्धि से नए–नए सिद्धांतों का निर्माण होता है। इस प्रकार सिद्धांतों में वृद्धि होती जाती है जिससे मानव की समस्याओं का समाधान शीघ्र हो पाता है।

(iv) ***विश्लेषण शक्ति में वृद्धि (Increase in Analytical Power):*** अर्थशास्त्र के अध्ययन से घटनाओं का विश्लेषण करने की शक्ति बढ़ती है। विश्लेषण एक ऐसी क्रिया है जिसके द्वारा किसी घटना के कारण तथा परिणामों में परस्पर संबंध स्थापित किया जाता है।

(v) ***अन्य शास्त्रों से संबंध का ज्ञान (Knowledge of the relation with other Sciences):*** अर्थशास्त्र के अध्ययन से ज्ञात होता है कि यह विषय अन्य विज्ञानों जैसे गणित, समाज–शास्त्र राजनीति शास्त्र आदि से किस प्रकार संबंधित है। इतना ही नहीं यह आर्थिक क्रियाएं राजनीतिक क्रियाओं, धार्मिक क्रियाओं आदि से भी संबंधित है। इन सभी का ज्ञान अर्थशास्त्र के अध्ययन से भली–भांति हो जाता है।

(ख) **व्यावहारिक लाभ (Practical Advantages):** अर्थशास्त्र के अध्ययन से निम्नलिखित व्यावहारिक लाभ प्राप्त होते हैं:

(i) ***उपभोक्ताओं को लाभ (Advantage to Consumers):*** प्रत्येक उपभोक्ता वस्तु व सेवाओं के उपभोग से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करना चाहता है। वह अपनी सीमित आय विभिन्न वस्तु व सेवाओं पर इस अनुपात में खर्च करना चाहता है ताकि अधिकतम संतुष्टि प्राप्त हो सके। उपभोक्ता के इस उद्देश्य की प्राप्ति में अर्थशास्त्र का सम–सीमांत तुष्टिगुण का नियम (Law of Equi-Marginal Utility) सहायक सिद्ध होता है। इस महत्वपूर्ण नियम के अनुसार प्रत्येक उपभोक्ता को अपनी सीमित आय विभिन्न वस्तुओं पर इस प्रकार व्यय करनी चाहिए ताकि सभी वस्तुओं से प्रांत सीमांत तुष्टिगुण बराबर हो सके। इस नियम अनुसार उपभोग करने से उपभोक्ता का कुल तुष्टिगुण अधिकतम होता है।

(ii) ***उत्पादकों को लाभ (Advantage to Producers):*** अर्थशास्त्र के अध्ययन से उत्पादकों को अनेक लाभ प्राप्त होते हैं। उत्पादक का उद्देश्य दीर्घकाल में अपने लाभ को अधिकतम करना होता है। अर्थशास्त्र के अध्ययन से वह अपनी उत्पादन लागतों को कम करने तथा उत्पादन से प्राप्त आय (Revenue) को अधिकतम करने में कामयाब हो जाता है। उत्पादक को क्या उत्पादन करना चाहिए? कितना उत्पादन करना चाहिए? किस कीमत पर बिक्री करनी चाहिए? इन सभी प्रश्नों का हल अर्थशास्त्र के अध्ययन से प्राप्त हो जाता है।

(iii) ***श्रमिकों को लाभ (Advantage to the Labourers):*** अर्थशास्त्र के अध्ययन से श्रमिकों को उचित मजूदरी प्राप्त हो सकती है। उचित मजदूरी व शोषण से बचने के लिए उनमें सौदा करने की शक्ति (Bargaining Power) का

पाठ अर्थशास्त्र ही पढ़ाता है। श्रमिकों को उनकी औसत तथा सीमांत उत्पादकता के बराबर मजदूरी प्राप्त होनी चाहिए। श्रम संघों (Trade Unions) को यह प्राप्त स्थिति करने की प्रेरणा अर्थशास्त्र से ही प्राप्त होती है।

(iv) ***व्यापारियों को लाभ (Advantage to Traders):*** अर्थशास्त्र के अध्ययन से व्यापारियों को बहुत लाभ होता है। इसके अध्ययन से व्यापारियों को विभिन्न स्थानों व देशों में वस्तुओं की मांग की स्थिति की जानकारी हो जाती है। उनको यह भी ज्ञात हो जाता है कि कम कीमत पर वस्तुएं कहां खरीदी जा सकती हैं।

(v) ***सरकार को लाभ (Advantage to Government):*** राजस्व को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए अर्थशास्त्र का अध्ययन विशेष महत्व रखता है। सरकारी व्यय का वितरण (Allocation of Government Expenditure) तथा करों की सरंचना (Structure of Taxesa) निर्धारित करने के लिए तथा बजट व आर्थिक योजनाएं तैयार करने के लिए अर्थशास्त्र सरकार की विशेष सहायता करता है।

(vi) ***समाज सुधारकों को लाभ (Advantage to Social Reformers):*** अर्थशास्त्र के अध्ययन से समाज सुधारकों को भी लाभ पहुंचता है। बहुत सी सामाजिक बुराईयां और समस्याएं जैसे तलाक, वेश्यावृत्ति, चोरी तथा रिश्वतखोरी आदि आर्थिक कारणों से ही जन्म लेती हैं। इनका हल करने के लिए आर्थिक विकल्प ढूंढना होगा जो अर्थशास्त्र के अध्ययन से ही ज्ञात हो सकता है।

(vii) ***राजनीतिज्ञों को लाभ (Advantage to the Politicians):*** राष्ट्र को केवल वह राजनीतिक पार्टी स्वीकार होती है जो राष्ट्र की आर्थिक समस्याओं को ठीक से समझ कर उनको हल कर सके। इसके लिए अच्छा मंत्रिमंडल होना चाहिए। विपक्ष भी अपनी भूमिका ठीक से तभी निभा सकती है जब उसे गरीबी, बेरोज़गारी, धन की असमानता, मुद्रा स्फीति आदि आर्थिक समस्याओं का ज्ञान हो। इन समस्याओं का सही ज्ञान अर्थशास्त्र के अध्ययन से ही प्राप्त हो सकता है।

(viii) ***राष्ट्रों को लाभ (Advantage to Nations):*** देश विकसित है या अल्प विकसित है, यह उसकी आर्थिक स्थिति के अध्ययन से ही ज्ञात हो सकता है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) आदि संस्थाएं इसी आधार पर आर्थिक सहायता प्रदान करती हैं। अतः विभिन्न देशों के लिए अर्थशास्त्र के अध्ययन का बहुत अधिक महत्व है।

(ix) ***विद्यार्थियों को लाभ (Advantage to Students):*** विद्यार्थियों को भविष्य में उत्पादक, व्यापारी, उद्योगपति, राजनेता आदि बनना है। उसकी सफलता के लिए अर्थशास्त्र का ज्ञान अति आवश्यक है। रोज़गार प्राप्त करने या अपना व्यवसाय स्थापित करने में अर्थशास्त्र काफी सहायक सिद्ध हुआ है।

अध्याय-2

आर्थिक विश्लेषण तथा सिद्धान्त में पूर्वकल्पनाओं की भूमिका तथा महत्त्व

(Role and Significance of Assumptions in Economic Analysis and Appraisal of Economic Theory)

आर्थिक जगत बहुत जटिल है क्योंकि किसी आर्थिक तत्व या आर्थिक निर्णय को प्रभावित करने वाले अनेक तत्व मौजूद रहते हैं। किसी एक तत्व (factor) का किसी अन्य तत्व पर प्रभाव जानने के लिए अनेक पूर्वकल्पनाएं तथा मान्यताएं लेकर चलना होता है। इनके महत्व तथा भूमिका को समझने से पहले मुख्य धारणाओं की व्याख्या निम्न प्रकार से की गई है:

मुख्य धारणाएँ या पूर्वकल्पनाएं
(Main Assumption)

आर्थिक सिद्धान्त तथा आर्थिक विश्लेषण में निम्न मुख्य पूर्वकल्पनाएं की जाती हैं:

1. उपभोक्ता, उत्पादक या किसी अन्य व्यवसाय में लिप्त व्यक्ति अपने उद्देश्य फलन (objective function) को अधिकतम करना चाहता है। अर्थात् एक उपभोक्ता अपनी संतुष्टि, एक उत्पादक अपने उत्पादन तथा बिक्रेता अपने लाभ, आदि को अधिकतम करना चाहता है। यह पूर्वकल्पना आर्थिक विश्लेषण सिद्धान्त की आधारभूत कल्पना है।
2. आय सीमित होने की पूर्वकल्पना की जाती है।
3. यह भी कल्पना की जाती है कि कीमत या सम्बन्धित कीमतें (relative prices) स्थिर रहती है।
4. व्यक्तियों के व्यवहार में संक्रमकता (consistency) पाई जाती है।
5. जनसंख्या में कोई परिवर्तन नहीं होता।
6. तकनीकी में परिवर्तन नहीं होता।
7. साधनों की मात्रा स्थिर रहती है।
8. बंद अर्थव्यवस्था (closed economy) की कल्पना भी की जाती है।
9. जलवायु, फैशन आदि में कोई परिवर्तन नहीं होता।

भूमिका तथा महत्त्व
(Role and Significance)

पूर्वकल्पनाओं का आर्थिक विश्लेषण तथा आर्थिक सिद्धान्तों की रचना तथा उनकी समीक्षा करने में विशेष महत्त्व पाया जाता है। बेरोजगारी, गरीबी, राष्ट्रीय आय, मुद्रास्फीति, आर्थिक असमानता आदि समस्याओं का विश्लेषण करते समय सम्बन्धित समस्या के कारणों तथा उसके प्रभावों के बारे में हमारी कुछ पूर्वधारणाएं या कल्पनाएं बन जाती हैं। ये पूर्वधारणाएं सत्य भी हो सकती है तथा गलत भी हो सकती है। चाहे कुछ भी हो उन धारणाओं के आधार पर ही हम विभिन्न समस्याओं का विश्लेषण

करके उनके निदान की बात सुझाते हैं। समस्या के समाधान में यह निदान (solution) सही सिद्ध होता है या नहीं। यह निर्भर करता है कि हमारी पूर्वकल्पनाएं कितनी सही थी।

आर्थिक स्थिति भी पूर्व कल्पनाओं पर आधारित होता है। यह आर्थिक सिद्धान्त चाहे मांग का सिद्धान्त, उत्पादन का सिद्धान्त, पूर्ति का सिद्धान्त, पूर्ति, वितरण आदि का सिद्धान्त हो ये सबके सब पूर्व कल्पनाओं पर निर्भर करते हैं। सिद्धान्त कितना सही है कि व कितना गलत है, कितना व्यवहारिक व सैद्धान्तिक है यह सब सम्बन्धित सिद्धान्त की वास्तविकता पर निर्भर करता है।

इसलिए आर्थिक विश्लेषण तथा आर्थिक सिद्धान्त की रचना तथा उनकी समीक्षा में पूर्वकल्पनाओं की हमेशा विशेष भूमिका पाई जाती है। इतना ही नहीं विश्लेषण की सार्थकता तथा महत्व पूर्वकल्पनाओं की व्यवहारिकता पर निर्भर करती है। अतः आर्थिक जगत में समस्याओं का विश्लेषण करने, सिद्धान्तों का निर्माण करने तथा उनकी समीक्षा करते समय पूर्वकल्पनाओं के बिना एक कदम भी नहीं बढ़ा सकते।

अध्याय-3
सन्तुलन की धारणाएँ
(Concepts of Equilibrium)

अर्थशास्त्र में सन्तुलन की अवस्था को एक स्वाभाविक स्थिति समझा जाता है जिसमें आर्थिक शक्तियों के परिवर्तन की कोई प्रवृत्ति नहीं होती है। विभिन्न आर्थिक क्रियाएं चाहे उपयोग है या उत्पादन या कोई अन्य सभी सन्तुलन की ओर स्वतः अग्रसित होती हैं। इसलिए सन्तुलन की धारणा अर्थशास्त्र 'केन्द्रीय बिन्दु' (Focal Point) का स्थान रखती है। इसी कारण अर्थशास्त्र को 'सन्तुलन विश्लेषण का विज्ञान' (Science of Equilibrium Analysis) भी कहा जाता है।

सन्तुलन का अर्थ
(Meaning of Equilibrium)

सन्तुलन (Equilibrium) शब्द की उत्पत्ति लेटिन भाषा के शब्दों 'Acquus' अर्थात् समान + 'Libra' अर्थात् साम्य (Balance) से हुई है। अतः सन्तुलन (Equilibrium) शब्द का शाब्दिक अर्थ समान साम्य (Equal Balance) होता है।

यद्यपि अर्थशास्त्र में सन्तुलन शब्द भौतिक विज्ञान (Physics) से लिया गया है, परन्तु फिर भी अर्थशास्त्र में सन्तुलन शब्द का अर्थ भौतिक विज्ञान से कुछ भिन्न है। भौतिक विज्ञान के अनुसार, सन्तुलन विश्राम की वह स्थिति (The state of rest) है जिसमें कोई गति या परिवर्तन नहीं होता। भौतिक विज्ञान के अनुसार जब दो विरोधी शक्तियाँ समान बल का प्रयोग कर रही हों परन्तु स्थिति में किसी प्रकार का परिवर्तन न आए तो वह स्थिति सन्तुलन की अवस्था कहलाती है। उदाहरणतः रस्सा–कशी (Tug of war) में जब दोनों विरोधी टीमें बराबर बल का प्रयोग कर रही होती हैं, तो रस्सा विराम की स्थिति में या स्थिर स्थिति में आ जाता है। इस स्थिति में किसी प्रकार का परिवर्तन या गति नहीं होती है। यह स्थिति भौतिक विज्ञान में सन्तुलन की स्थिति कही जाती है।

अर्थशास्त्र में सन्तुलन का अर्थ वह स्थिति है जिसमें गति (Movement) तो होती है परन्तु परिवर्तन का अभाव पाया जाता है या जिसमें वृद्धि या कमी की प्रवृत्ति नहीं पाई जाती (Equilibrium is a state in which there is absence of change or in which there is no tendency to expand or contract).

अर्थशास्त्र में सन्तुलन एक ऐसी अवस्था को कहा जाता है जिसमें मुख्य चर (Variables) बदलने की प्रवृत्ति नहीं रखते। जैसे मांग व पूर्ति के सन्तुलन में मांग, पूर्ति तथा कीमत बदलने की प्रवृत्ति नहीं रखते हैं।

ध्यान देने की बात यह है कि अर्थशास्त्र में सन्तुलन की अवस्था को स्थिर अवस्था या गतिहीनता (Absence of movement) की अवस्था भी नहीं कहा जा सकता। इसका कारण यह है कि इसमें आर्थिक चर या शक्तियां निरन्तर गति करती रहती हैं परन्तु उनमें वृद्धि या कमी नही होती है। उदाहरणतः सन्तुलन की स्थिति में हर वर्ष राष्ट्रीय उत्पादन पहले जितना ही बना रहता है, जिसके अन्तर्गत आर्थिक क्रियाएं तो होती हैं (जैसे मज़दूरों को मज़दूरी मिलती है, किसान अनाज उगाते हैं, उद्योगपति लाभ कमाते हैं आदि) तथा कुछ वस्तुओं का उत्पादन घट रहा होता है तथा अन्य का उत्पादन बढ़ रहा होता है परन्तु अर्थव्यवस्था इकाई के रूप में गतिहीन होती है, क्योंकि राष्ट्रीय उत्पादन नहीं घट बढ़ रहा होता है।

परिभाषाएँ (Definitions)

1. प्रो. जे. के. मेहता के शब्दों में, "सन्तुलन अर्थशास्त्र में गति में परिवर्तन की अनुपस्थिति व्यक्त करता है जबकि भौतिक विज्ञानों में यह गति की अनुपस्थिति व्यक्त करता है।" (Equilibrium denotes in economics absence of change in movement, while in physical sciences it denotes absence of movement itself –J.K. Mehta)
2. प्रो. हैन्सन के अनुसार, "सन्तुलन एक ऐसी स्थिति होती है जिसमें उस समय की आर्थिक शक्तियों में परिवर्तन की कोई प्रवृत्ति नहीं होती।" (Equilibrium is a situation in which economic forces as the exist at the time have no tendency to change – Prof. Hanson)
3. स्टीगलर के अनुसार, "सन्तुलन एक ऐसी स्थिति है जिससे हटन की कोई प्रवृत्ति नहीं होती है।" (Equilibrium is a position from which there is no tendency to move – Stigler)

अतः अर्थशास्त्र में सन्तुलन की स्थिति एक आदर्श या ईष्टतम (optional) स्थिति होती है जिससे आर्थिक चरों या शक्तियों की हटन की कोई प्रवृत्ति नहीं होती है। इसलिए अर्थशास्त्र में सन्तुलन की स्थिति की दो मुख्य विशेषताएं (Features) हैं: प्रथम, सन्तुलन की स्थिति में गति तो होती है परन्तु गति की दर में कोई परिवर्तन नहीं होता जैसे उत्पादन में वृद्धि की दर स्थिर रहना सन्तुलन की अवस्था का सूचक है। द्वितीय, सन्तुलन की अवस्था में आर्थिक इकाइयाँ अपनी ईष्टतम स्थिति में होती हैं। जैसे उपभोक्ता सन्तुलन की स्थिति में अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त कर रहा होता है तथा उत्पादक सन्तुलन की स्थिति में अधिकतम लाभ या कम हानि उठा रहा होता है। सभी आर्थिक इकाइयों व सारी अर्थव्यवस्था का उद्देश्य सन्तुलन बिन्दु को प्राप्त करना होता है। सन्तुलन में आर्थिक शक्तियाँ अपने आप को दोहराती रहती हैं तथा उनके मूल्यों में कोई परिवर्तन नहीं आता है।

सन्तुलन के प्रकार
(Kinds of Equilibrium)

सन्तुलन के मुख्य प्रकार निम्नलिखित हैं:

स्थिर, अस्थिर तथा तटस्थ सन्तुलन
(Stable, Unstable and Neutral Equilibrium)

1. **स्थिर सन्तुलन (Stable Equilibrium):** जब कोई आर्थिक इकाई किसी कारण से अपने प्रारम्भिक सन्तुलन बिन्दु से विचलित या हट जाती है तो आर्थिक तत्वों या शक्तियों में स्वतः इस प्रकार का परिवर्तन होता है कि वह सन्तुलन की पहले वाली अवस्था को पुनः प्राप्त कर लेती है, उसको स्थिर सन्तुलन कहा जाता है। जैसे मटके में रखी गेंद को हिलाने से वह पुनः अपनी पहले वाली स्थिति में आ जाती है। सामान्य मांग व पूर्ति का सन्तुलन एक स्थिर सन्तुलन को दर्शाता है।

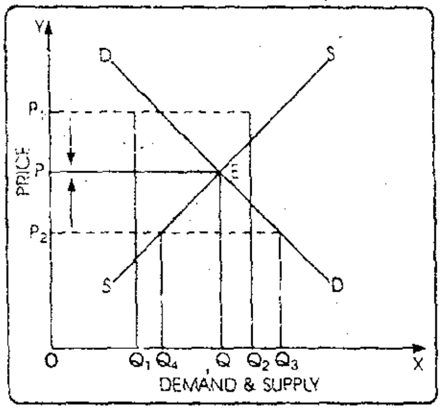

चित्र 2.1

स्थिर सन्तुलन की स्थिति को निम्न चित्र की सहायता से समझा जा सकता है। चित्र के OX अक्ष पर एक वस्तु की मांग व पूर्ति की मात्रा वक्र को DD वक्र तथा पूर्ति वक्र को SS वक्र द्वारा दर्शाया गया है। E बिन्दु पर मांग तथा पूर्ति में सन्तुलन उनके एक दूसरे को काटने से स्थापित होता है तथा OP कीमत सन्तुलित कीमत निर्धारित होती है। OP कीमत पर वस्तु की मांग व पूर्ति बराबर है अर्थात् OQ मात्रा के समान है। यदि कीमत बढ़कर OP_1 हो जाती है तो वस्तु की मांग OQ_I तथा पूर्ति OQ_{II} हो जाती है। OP_1 कीमत पर वस्तु की पूर्ति मांग से अधिक होने के कारण कीमत गिरने की प्रवृत्ति रखती है तथा गिर कर OP हो जाती हैं। इसके विपरीत यदि कीमत OP से गिरकर OP_2 हो जाए तो मांग की मात्रा OQ_{III} तथा पूर्ति की मात्रा OQ_{IV} हो जाती है। यहां मांग पूर्ति से अधिक होने के कारण कीमत बढ़ने की प्रवृत्ति रखती है तथा वह OP_2 से बढ़ कर फिर OP हो जाती है। अतः मांग व पूर्ति की शक्तियां स्वतः इस प्रकार कार्य करती है कि पहले वाली सन्तुलन अवस्था पुनः प्राप्त हो जाती है। कीमत, मांग व पूर्ति में कोई परिवर्तन नहीं आता है। अतः यह स्थिर सन्तुलन कहा जाता है।

2. **अस्थिर सन्तुलन (Unstable Equilibrium):** जब कोई आर्थिक इकाई किसी कारण से अपने प्रारम्भिक सन्तुलन बिन्दु से विचलित या हट जाती है तो आर्थिक तत्वों या शक्तियों में इस प्रकार का परिवर्तन होता है कि वह प्रारम्भिक सन्तुलन की स्थिति से निरन्तर दूर हटती चली जाती है, इसको अस्थिर सन्तुलन (Unstable Equilibrium) कहा जाता है। इसके अन्तर्गत सन्तुलन यदि भंग हो जाता है तो कुछ ऐसी शक्तियां पैदा होती हैं जो व्यवस्था को सन्तुलन से दूर ले जाती हैं। प्रो. पीगू के अनुसार, "एक आर्थिक प्रणाली उस समय अस्थिर सन्तुलन में होती है जब जरा सा परिवर्तन आगे शक्तियों में इस प्रकार परिवर्तन करता है कि इस प्रणाली को प्रारम्भिक स्थिति से निरन्तर दूर ले जाता है।" (An economic system is in unstable equilibrium if the small disturbances call out for further disturbing forces which act in a cumulative manner to drive the system away from its initial position -Pigou).

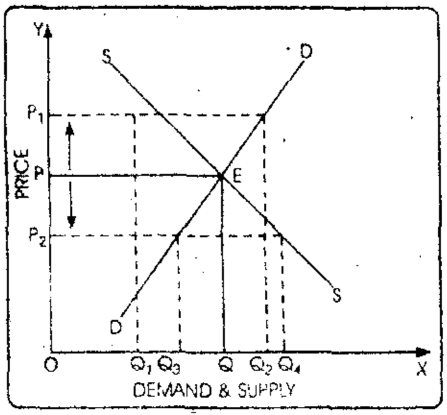

चित्र 2.2

अस्थिर सन्तुलन की अवस्था को असामान्य मांग व पूर्ति वक्रों की सहायता से समझा जा सकता है। रेखाचित्र नं. 2 में OX अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा OY अक्ष पर उसी वस्तु की कीमत मापी गई है। चित्र में SS वक्र पूर्ति वक्र है (जिसका ढाल ऋणात्मक है) तथा DD वक्र मांग वक्र है (जिसका ढाल घनात्मक है)। OP कीमत सन्तुलित कीमत है, जिस पर मांग व पूर्ति दोनों बराबर तथा सन्तुलन में हैं। यदि कीमत बढ़ कर OP_1 हो जाती है तो पूर्ति OQ_1 तथा मांग OQ_2 हो जाती है। यहां मांग की मात्रा पूर्ति से अधिक होने के कारण कीमत बढ़ती जाएगी। कीमत दोबारा अपनी प्रारम्भिक सन्तुलन अवस्था की ओर लौटने की प्रवृत्ति नहीं रखती है। इसके विपरीत यदि कीमत कम होकर OP_2 हो जाती है तो मांग कम होकर OQ_3 तथा पूर्ति बढ़ कर OQ_4 हो जाएगी। अतः पूर्ति मांग से अधिक (S>D) होने के कारण कीमत निरन्तर गिरती ही जाएगी और अपने प्रारम्भिक सन्तुलन बिन्दु से दूर हटती जाएगी। मांग व पूर्ति की आर्थिक शक्तियां इस प्रकार क्रिया करती हैं कि प्रारम्भिक सन्तुलन कीमत OP से प्रवृत्ति निरन्तर दूर होती जाती है।

3. **तटस्थ सन्तुलन (Neutral Equilibrium):** तटस्थ सन्तुलन एक ऐसी अवस्था है, जिसमें कोई आर्थिक इकाई अपने प्रारम्भिक सन्तुलन से विचलित होने पर जो नई अवस्था प्राप्त करती है वह उसी पर कायम रहती है। प्रारम्भिक सन्तुलन से विचलित या हटने से ऐसी आर्थिक शक्तियों का उदय नहीं होता जो आर्थिक प्रणाली को अपने प्रारम्भिक सन्तुलन पर पुनः स्थापित कर सकें या इससे निरन्तर दूर होती जाएँ। सन्तुलन भंग होने पर जो नई अवस्था बनती है उससे प्रारम्भिक सन्तुलन की ओर आने की या उससे दूर हटने की प्रवृत्ति नहीं होती। ऐसी अवस्था को ही हम तटस्थ सन्तुलन (Neutral Equilibrium) कहते हैं।

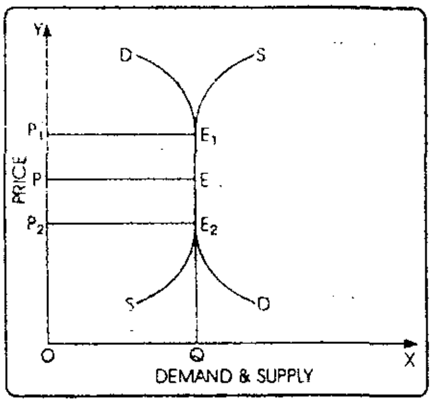

चित्र 2.3

तटस्थ सन्तुलन की अवस्था उस समय उत्पन्न हो सकती है जब मांग व पूर्ति वक्रों के ढाल समान हों। इसको चित्र 3 *की सहायता से समझा जा सकता है।* चित्र 3 में *OX अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा OY अक्ष पर उस वस्तु की कीमत* मापी गई है। DD मांग वक्र तथा SS पूर्ति वक्र हैं। चित्र में दर्शाया गया है कि जब कीमत OP होती है तो मांग व पूर्ति E बिन्दु पर सन्तुलन में तथा मांग व पूर्ति बढ़कर OP_1 हो जाती है तो सन्तुलन की नई अवस्था E_1 पर स्थापित हो जाती•है तथा यह कायम रहती है इसके विपरीत जब कीमत गिरकर OP_2 हो जाती है तो नया सन्तुलन E_2 पर, स्थापित होता है तथा यह भी कायम रहता है। E_2 बिन्दु पर मांग तथा पूर्ति की मात्राएं समान हैं।

सन्तुलन की उपरोक्त तीनों अवस्थाओं को एक बर्तन और गेद के उदाहरण से चित्र 4 में स्पष्ट किया गया है:

i. एक गोल–तले वाले बर्तन में पड़ी गेंद स्थिर (Stable) सन्तुलन की अवस्था में होती है। क्योंकि यदि गेंद को हिला दिया जाता है तो वह इधर–उधर हिलने के बाद अपने प्रारम्भिक सन्तुलन की अवस्था प्राप्त हो जाती है।

ii. यदि बर्तन को उल्टा करके गेंद इसके सबसे ऊँचे वाले भाग पर रखदी जाती है तो अस्थिर (Unstable) सन्तुलन की अवस्था होती है। क्योंकि यदि गेंद को वहां से हिला दिया जाता है तो वह अपनी प्रारम्भिक अवस्था में नही आ सकती बल्कि उसे दूर हटती जाती है।

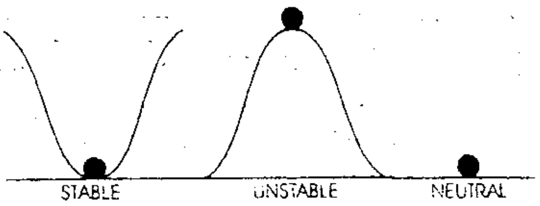

चित्र 2.4

iii. समतल ज़मीन पर रखी गेंद तटस्थ (Neutral) सन्तुलन की अवस्था को व्यक्त करती है। गेंद को यदि इस स्थिति से हिला दिया जाता है तो वह नई अवस्था प्राप्त करती है फिर वहीं पर स्थिर हो जाती है वह अपनी प्रारम्भिक अवस्था से न दूर हटने की प्रवृति रखती है तथा न ही वह उसको प्राप्त करने की प्रवृत्ति रखती है। इस स्थिति में गेंद की प्रवृत्ति तटस्थ (Neutral) है। ऐसी स्थिति को ही तटस्थ सन्तुलन कहा जाता है।

एकाकी तथा बहु-सन्तुलन
(Single and Multiple Equilibrium)

1. **एकाकी सन्तुलन (Single Equilibrium):** ऐसी स्थिति जिसमें सन्तुलन की केवल एक ही अवस्था या स्थिति उत्पन्न होती हो तो वह एकाकी सन्तुलन (Single Equilibrium) कहलाता है। एकाकी सन्तुलन एक स्थिर सन्तुलन होता है। यदि आर्थिक शक्तियाँ इस सन्तुलन से विचलित हो जाती हैं तो स्वयं इस प्रकार की प्रक्रिया उत्पन करती हैं कि दोबारा वही सन्तुलन की अवस्था प्राप्त हो जाती है। प्रो. काल्डोर के अनुसार, "जब किसी वस्तु की मांग और पूर्ति किसी एक ही कीमत पर सन्तुलन में हो तो वह एकाकी सन्तुलन कहलाता है।" (When demand and supply of any commodity are in equilibrium only at a single price, it denotes singlr equilibrium. – Kaldor). एकाकी सन्तुलन की स्थिति को चित्र 5 द्वारा दर्शाया जा सकता है।

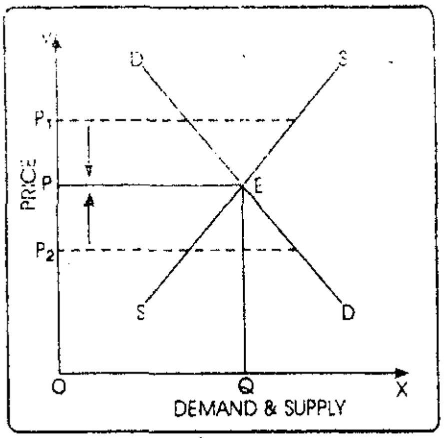

चित्र 2.5

चित्र 5 में OX अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा OY अक्ष पर इस वस्तु की कीमत मापी गई है। DD मांग वक्र तथा SS पूर्ति वक्र हैं जो E बिन्दु पर एक दूसरे को काटते हैं तथा एक दूसरे के समान हैं। मांग तथा पूर्ति में E बिन्दु पर सन्तुलन dey OP कीमत पर ही होता है। OP_1 तथा OP_2 कीमतों पर मांग और पूर्ति में सन्तुलन स्थापित नहीं होता है। ऐसी स्थिति में जहां एक ही अवस्था में सन्तुलन होता है वह एकाकी सन्तुलन कहलाता है।

2. **बहु-सन्तुलन (Multiple Equilibrium):** जब सन्तुलन अनेक अवस्थाओं में स्थापित हो सकता हो तो उसे बहु–सन्तुलन (Multiple Equilibrium) कहा जाता है। जैसे कीमत, मांग और पूर्ति के अनेक समूह हो सकते हैं जो सभी सन्तुलन की अवस्थाओं को प्रकट कर सकते हैं। प्रो. स्टिगलर के अनुसार, "बहु–सन्तुलन उस समय होता है जब कीमतों तथा मात्राओं के विभिन्न समूह सन्तुलन की शर्तों को सन्तुष्ट करते हैं।" (Multiple positions of equilibrium exist when serval different sets of prices and qunatities meet the equilibrium conditions - Stigler). बहु–सन्तुलन उस समय होता है जब मांग व पूर्ति वक्र सरल रेखीय (Linear) न होकर टेढ़े–मेंढ़े (Non-Linear) हों। इसको चित्र–6 द्वारा दर्शाया गया है:

चित्र 2.6 में SS पूर्ति वक्र तथा DD मांग वक्र टेढ़ी–मेंढ़ी (Non=ilinear) ढाल वाले दर्शाए गऐ हैं। मांग तथा पूर्ति की स्थितियां E, E_1 तथा E_2 पर सन्तुलन की स्थितियां हैं, क्येंकि इन बिन्दुओं पर मांग तथा पूर्ति एक दूसरे के बराबर हैं।

E बिन्दु पर स्थाई (Stable Equilibrium) है, क्योंकि यदि कीमत व्व से कम या अधिक होती है तो वह दोबारा व्व पर पुनः मांग और पूर्ति में सन्तुलन स्थापित कर देती है। परन्तु E_1 तथा E_2 दोनों अस्थिर सन्तुलन को दर्शाते हैं। अतः ध्यान देने की बात यह है कि चित्र–6 में दर्शाई गई आकृतियों वाले मांग तथा पूर्ति वक्र अनेक सन्तुलन बिन्दु स्थापित कर सकते हैं जिनको बहु–सन्तुलन (Multiple Equilibrium) कहा जाता है।

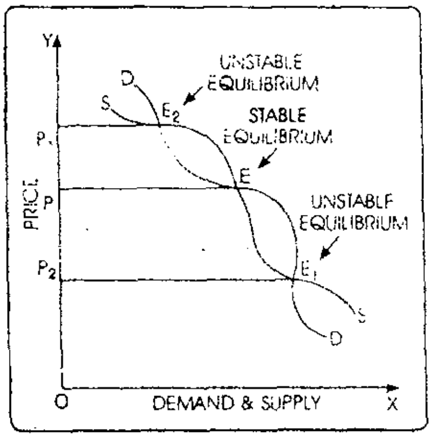

चित्र 2.6

अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन सन्तुलन (Short Run and Long Run Equilibrium)

अर्थशास्त्र में अल्पकाल तथा दीर्घकाल किसी निश्चित समय अवधि को व्यक्त नहीं करते हैं। इनका संबंध तो चरों की व्यवस्था से होता है। अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन सन्तुलन की धारणाओं का प्रतिपादन करने वाले प्रथम अर्थशास्त्री डॉ. मार्शल हैं। इनकी व्याख्या निम्नलिखित है:

1. **अल्पकालीन सन्तुलन (Short Run Equilibrium):** अल्पकाल में स्थापित होने वाला सन्तुलन अल्पकालीन सन्तुलन कहलाता है। अल्पकाल समय की अवधि का अर्थ एक घण्टा या दो घण्टे या एक दिन आदि नहीं होता बल्कि एक ऐसी अवस्था है जिसमें इतना समय नहीं होता कि किसी आर्थिक घटना को प्रभावित करने वाले सभी तत्वों में परिवर्तन किया जा सके। उदाहरणतः उत्पादन में अल्पकाल के दौरान कम–से–कम एक साधन अवश्य स्थिर रहता है। जैसे उत्पादन की मांग बढ़ने पर उत्पादन में वृद्धि करने के लिए कच्चे माल तथा श्रमिकों की मात्रा तो बढ़ाई जा सकती है परन्तु मशीनों और भवन की संख्या में वृद्धि करने के लिए पर्याप्त समय नहीं होता है। इस प्रकार उत्पादन केवल श्रमिक तथा कच्चे माल की मात्रा में वृद्धि करके बढ़ाया जा सकता है और बढ़ी हुई मांग को सन्तुष्ट किया जाता है। इस प्रकार की परिस्थिति में मांग तथा पूर्ति के मध्य जो सन्तुलन स्थापित होता है वह अल्पकालीन सन्तुलन कहलाता है। अल्पकाल के अन्तर्गत पूर्ति को बढ़ने का पूर्ण अवसर प्राप्त नहीं होता है क्योंकि सभी साधनों को नहीं बढ़ाया जा सकता। इसलिए उस वस्तु की कीमत अधिक बढ़ जाती है तथा मांग और पूर्ति के बीच अल्पकालीन सन्तुलन ऊंची कीमत पर स्थापित होता है। चित्र – 7 में DD मांग वक्र तथा SS पूर्ति वक्र प्रारम्भिक वक्र हैं जो OP कीमत पर सन्तुलन स्थापित करते हैं जिसको E बिन्दु द्वारा दर्शाया गया है। अब यदि मांग बढ़ कर D_1D_1 हो जाती है तो अल्पकालीन सन्तुलन S_1S_1 अल्पकालीन पूर्ति वक्र (Short Run Supply Curve) की सहायता से OP_1 कीमत पर स्थापित होता है जिसको E_1 बिन्दु द्वारा दर्शाया गया है।

2. **दीर्घकालीन सन्तुलन (Long Run Equilibrium):** दीर्घकाल में स्थापित होने वाला सन्तुलन दीर्घकालीन सन्तुलन कहलाता है। दीर्घकाल समय की अवधि का अर्थ एक वर्ष या दस वर्ष नहीं होता बल्कि एक ऐसी अवस्था है जिसमें किसी आर्थिक घटना के सभी तत्वों को परिवर्तित करने का पर्याप्त समय होता है। उदाहरणतः उत्पादन में सभी उत्पादन के साधन परिवर्तनशील होते हैं तथा मांग के बढ़ने पर पूर्ति को बढ़ाने के लिए सभी तत्वों (श्रमिक, कच्चा माल, मशीन, भवन आदि) की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। चित्र–7 में जब मांग वक्र DD से बढ़कर D_1D_1 हो जाता

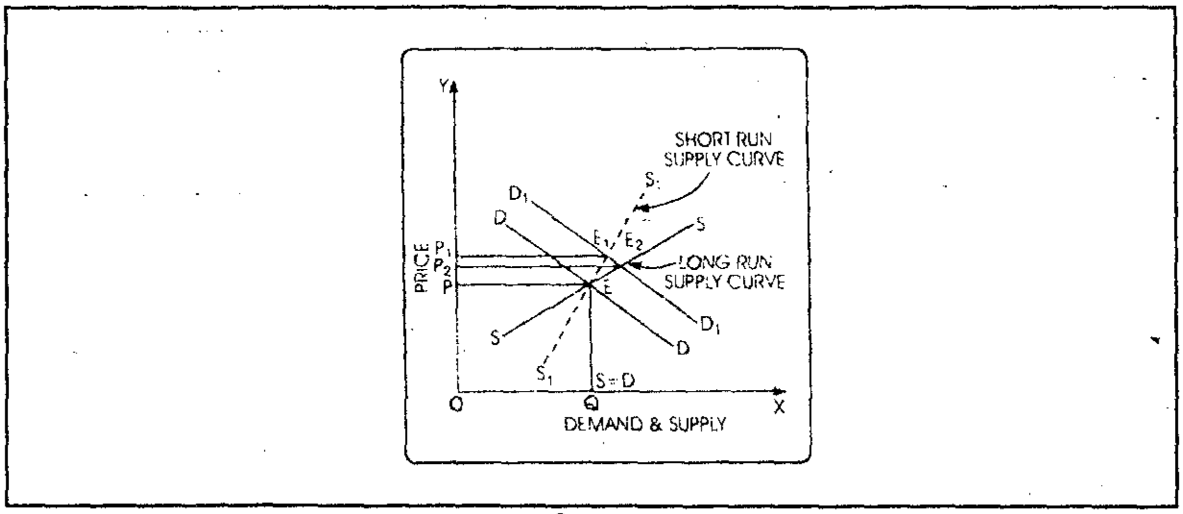

चित्र 2.7

जो दीर्घकालीन पूर्ति वक्र SS के साथ मिलकर E_2 बिन्दु पर सन्तुलन स्थापित करता है तथा OP_2 तथा कीमत निर्धारित होती है। OP_2 कीमत OP_1 अल्पकालीन कीमत से कम है। इसका कारण यही है कि दीर्घकालीन सन्तुलन में पूर्ति को अल्पकालीन सन्तुलन की अपेक्षा अधिक बढ़ाया जा सकता है।

स्थैतिक, तुलनात्मक स्थैनिक तथा गत्यात्मक सन्तुलन (Static, Comparative Static and Dynamic Equilibrium)

1. **स्थैतिक सन्तुलन (Static Equilibrium):** जैसा हम देख चुके हैं कि सन्तुलन को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है। माचलप के अनुसार किसी सैद्धान्तिक मॉडल में कुछ चुने हुए परस्पर संबंधित चरों का समूह होता है tks,d&nwjsl sbl idkj lelbf;r (Adjusted) होते हैं कि उनमें परिवर्तन की नीहित प्रवृत्ति नहीं होती है। इस परिभाषा में कुछ शब्द महत्वूपर्ण हैं: (1) इसमें चुने हुए चर से अभिप्राय है कि सन्तुलन का संबंध मॉडल में चुने गए या शामिल किए गए चरों से ही है अन्य चरों से नहीं। जैसे किसी मॉडल में मांग, पूर्ति, कीमत चुने हुए चर हो सकते हैं, (2) इसमें परस्पर संबंधित चर से अभिप्राय है कि मॉडल में सम्मिलित सभी चर साथ–साथ सन्तुलन प्राप्त करते हैं अर्थात् विराम की अवस्था में होते हैं, तथा (3) इसी प्रकार इसमें नीहित शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अभिप्राय यह है कि सन्तुलन या स्थिरावस्था मॉडल के केवल आन्तरिक चरों (जिनको मॉडल में ही निर्धारित किया जाता है) में ही होता है न कि बाह्य चरों (जो मॉडल के बाहर निर्धारित होते हैं) में सन्तुलन होता है। बाह्य चरों जैसे जनसंख्या, जलवायु, तकनीकी आदि को स्थिर माना जाता है।

   स्थैतिक सन्तुलन वह सन्तुलन है जो किसी एक समय बिन्दु पर किसी निश्चित मॉडल में पाया जाता है तथा चरों में बदलने की प्रवृत्ति नहीं होती या वे स्थिरावस्था में होते हैं। यह स्थिरावस्था ही स्तैनिक सन्तुलन का धातक है। इसके अन्तर्गत विभिन्न बाह्य चर जैसे आय, संबंधित वस्तुओं की कीमतें, श्रम, पूँजी, तकनीक, जनसंख्या आदि जो सन्तुलन को प्रभावित कर सकते हैं वे सभी स्थिर रहते हैं। उनके स्थिर रहने के कारण किसी वस्तु के मांग व पूर्ति वक्र भी स्थिर रहते हैं तथा सन्तुलन की अवस्था ज्यों–की–त्यों बनी रहती है। इसको स्थिर सन्तुलन कहा जाता है।

   जब किसी आर्थिक विश्लेषण में हमारा ध्यान किसी समय पर सन्तुलन बिन्दु पर ही केन्द्रित होता है वह स्थैतिक सन्तुलन कहलाता है। इसके अन्तर्गत इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया जाता कि सन्तुलन की अवस्था प्राप्त करने में कितना समय लगा, किन–किन चरों को बदलना पड़ा आदि। इसकी बजाय यह कल्पना की जाती है कि सन्तुलन को निर्धारित करने वाले प्रत्यक्ष चर जैसे मांग तथा पूर्ति और अप्रत्यक्ष चर जो मांग और पूर्ति को प्रभावित करते हैं। जैसे कुल उपभोग, निवेश, श्रम पूर्ति, तकनीक आदि सभी स्थिर रहते हैं।

   हैरोड (Harrod) के अनुसार, "स्थैतिक उस अवस्था को कहते हैं जिसमें उत्पादन की दर स्थिर रहती है, अर्थात् सभी आर्थिक चर जैसे जनसंख्या, साधन, संगठन, तकनीक, पूंजी स्टॉक, रूचि आदि समान दर पर बने रहते हैं ताकि आर्थिक

प्रणाली में अनिश्चित उत्पन्न न हो। "अतः आर्थिक स्थैतिक किसी समय बिन्दु पर सन्तुलन की वह अवस्था है जिसमें सन्तुलन निर्धारित करने वाले चरों को स्थिर माना गया है। ध्यान रहे स्थैतिक सन्तुलन का सम्बन्ध किसी समय बिन्दु से होता है। जैसे कि चित्र–8 में दर्शाया गया है।

चित्र–8 में E बिन्दु पर मांग व पूर्ति के बीच स्थैतिक सन्तुलन है जिस पर OP कीमत निर्धारित होती है। इस सन्तुलन की अवस्था में कीमत, मांग तथा पूर्ति में बदलने की प्रवृत्ति नहीं है।

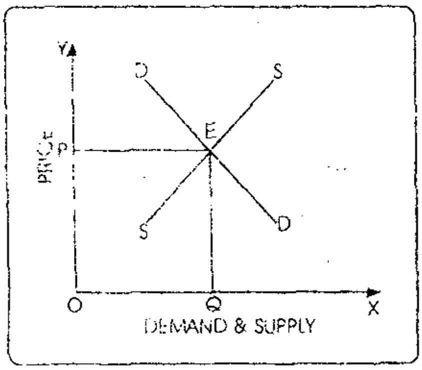

चित्र 2.8

मान्यताएँ (Assumptions): व्यष्टि अर्थशास्त्र में स्थैतिक सन्तुलन की कुछ मान्यताएं निम्न हैं:

1. आय स्थिर रहती है।
2. सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहती हैं।
3. जनसंख्या स्थिर रहती है।
4. तकनीकी स्थिर रहती है।
5. विज्ञापन आदि स्थिर रहते हैं।
6. जलवायु, लोगों की रूचि, फैशन आदि स्थिर रहते हैं।
7. सन्तुलन प्राप्त करने वाली आर्थिक इकाई विवेकशील है।
8. उत्पादन साधनों में परिवर्तन नहीं होता है।

स्थैतिक सन्तुलन की सीमाएं
(Limitations of Static Equilibrium)

स्थैतिक सन्तुलन का अध्ययन करते समय हमारा पूरा ध्यान मॉडल के आन्तरिक चरों में सन्तुलन प्राप्त करने पर केन्द्रित रहता है। ऐसे विश्लेषण में एक आधारभूत तथ्य की अवेहलना हो जाती कि इसके अन्तर्गत चरों में वास्तव में समन्वय या पुनर्समन्वय कैसे होता जिससे सन्तुलन की अवस्था प्राप्त होती है। स्थैतिक सन्तुलन से यह तो ज्ञात होता है कि सन्तुलन की अवस्था में चरों के क्या मूल्य होंगे, परन्तु यह मालूम नही होता है कि इस अवस्था तक पहुंचने तक क्या–क्या घटित हुआ तथा कितना समय लगा है।

इसलिए स्थैतिक सन्तुलन दो महत्त्वपूर्ण समस्याओं का ध्यान नहीं रख सका:

1. स्थैतिक सन्तुलन किसी समय बिन्दु पर प्राप्त होने वाले सन्तुलन तक सीमित है। परन्तु वास्तव में सन्तुलन अवस्था प्राप्त होने में काफी लम्बा समय लग सकता है। इतने लम्बे समय में यह सम्भव है कि वह सन्तुलन की अवस्था जिसको प्राप्त करना चाहते हैं। अपना महत्त्व ही खो दें। क्योंकि हो सकता है मॉडल के बाह्य चरों में इस दौरान परिवर्तन होने से अब हमारे लिए वह सन्तुलन जिसको हम प्राप्त करना चाहते थे अर्थहीन बन गया हो। अर्थात् अब कोई अन्य सन्तुलन बिन्दु महत्त्वपूर्ण बन गया है।

2. चरों में निरन्तर परिवर्तन होते रहने से वे सन्तुलन की अवस्था को पर कर सकते हैं तथा अन्य सन्तुलन बिन्दुओं की ओर अग्रसर होते रहते हैं, जैसा कि हमने अस्थिर सन्तुलन (Unstable Equilibrium) की अवस्था में देखा है।
3. मॉडल के बाह्य चरों में परिवर्तन होते रहने से सन्तुलन की स्थिति विवर्तित (Shift) होती रहती है, जिसको हम तुलनात्मक स्थैतिक सन्तुलन (Comparative Statics) के अन्तर्गत अध्ययन करते हैं। इतना ही नहीं सन्तुलन बिन्दुओं में परिवर्तन होते रहने के कारण हम अध्ययन करते हैं कि कौन–कौन से सन्तुलन प्राप्त हो सकते हैं तथा उनमें स्थिरता (Stability) कैसे आ सकती है, इनका अध्ययन हम गत्यात्मक सन्तुलन (Dynamic equilibrium) के अन्तर्गत अध्ययन करते हैं।

तुलनात्मक स्थैतिक सन्तुलन

(Comparative Static Equilibrium)

विभिन्न सन्तुलन अवस्थाओं, जो बाह्य चरों को विभिन्न मूल्य से सम्बन्धित होते हैं, का अध्ययन तुलनात्मक स्थैतिक विश्लेषण कहलाता है। ऐसे तुलनात्मक अध्ययन के लिए हम एक प्रारम्भिक सन्तुलन स्थिति की कल्पना करते हैं। अब किसी बाह्य चर में परिवर्तन होने से मॉडल में असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है तथा सम्बन्धित चरों, जैसे कीमत, मांग, पूर्ति में परिवर्तन होकर एक नया सन्तुलन बिन्दु प्राप्त हो जाता है तथा आन्तरिक चरों में समन्वय होता है। नये सन्तुलन बिन्दु के चरों की तुलना प्रारम्भिक सन्तुलन बिन्दु के चरों से की जाती है तथा इसी को तुलनात्मक स्थैतिक सन्तुलन कहा जाता है। इसकी व्याख्या आगे दिये गया चित्र की सहायता से की जा सकती है:

इस चित्र में प्रारम्भिक सन्तुलन E बिन्दु पर स्थापित होता है। मान लो जनसंख्या में वृद्धि होने से कुल मांग D बढ़कर D_1 हो जाती है तथा नया सन्तुलन बिन्दु E_1 पर स्थापित होता है। E बिन्दु पर मॉडल के चरों (P,D,S) की तुलना E_1 सन्तुलन बिन्दु के चरों P_1, D_1, $S_1(Q_1)$ से की जाती है तो यह तुलनात्मक सन्तुलन कहा जायेगा।

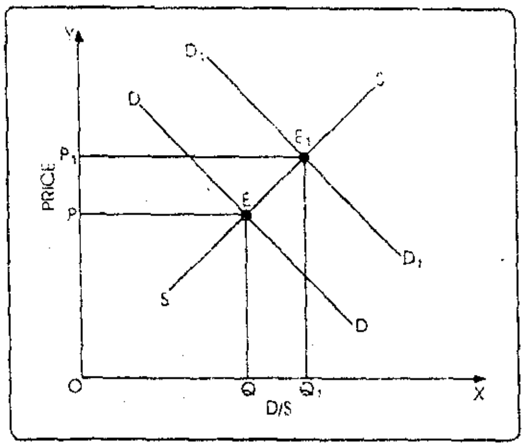

चित्र 2.9

इस मॉडल में बाह्य चर (जनसंख्या में परिवर्तन) होने से कीमत, मांग, तथा पूर्ति कितनी बदलती है इसका अध्ययन Derivative की सहायता से किया जाता है। इससे हम परिवर्तन की दर ज्ञात कर सकते हैं। इस सन्तुलन से परिवर्तन की दर का अध्ययन होता है।

सीमाएं (Limitations)—तुलनात्मक स्थैतिक सन्तुलन की सीमाएं निम्न हैं:–

1. आन्तरिक चरों में परिवर्तन की प्रक्रिया का ज्ञान नहीं हो पाता है।
2. सन्तुलन के विवर्तन का ज्ञान भी नहीं होता कि आगे होगा या नहीं।

गयात्मक सन्तुलन

(Dynamic Equilibrium)

एक आर्थिक सन्तुलन से दूसरे आर्थिक सन्तुलन को कैसे प्राप्त किया जाता है यह गत्यात्मक अर्थशास्त्र का विषय है। गत्यात्मक सन्तुलन के अन्तर्गत किसी समय अवधि में चरों में होने वाले परिवर्तन का अध्ययन किया जाता है। इस समय अवधि में सभी

आर्थिक चरों को परिवर्तनशील माना जाता है। आर्थिक चरों में समय के साथ–साथ एक सन्तुलन से दूसरे सन्तुलन बिन्दु तक पहुंचने में जो गति और परिवर्तन होता है उसका विश्लेषण गत्यात्मक विश्लेषण कहलाता है एक सन्तुलन बिन्दु से दूसरे बिन्दु तक चरों में समय के साथ समन्वय (adjustment) कैसे और कितना होता है यह गत्यात्मक विश्लेषण के अध्ययन का विषय है।

इस विश्लेषण की आधारभूत विशेषता यह है कि इसमें चरों के साथ समय (dating) अंकित किया जाता है। यह दो प्रकार से किया जाता है, समय निरन्तर (Continuous) या भिन्न (Discerete) हो सकता है। पहली अवस्था में चर निरन्तर बदल रहा होता है जैस राष्ट्रीय उत्पादन। दूसरी अवस्था में चर अलग–अलग समय पर भिन्न–भिन्न होता है जैस राष्ट्रीय उत्पादन की गणना हर वर्ष के अन्त में करना आदि। व्यापार चक्रों (Business Cycles) का अध्ययन गत्यात्मक अर्थशास्त्र का ही भाग है। इसकी व्याख्या चित्र–10 के माध्यम से की जा सकती है।

चित्र–10 दर्शा रहा है कि प्रारम्भ में E बिन्दु पर सन्तुलन तथा OP कीमत निर्धारित होती है। अब यदि मांग वक्र DD से बढ़कर D_1D_1 हो जाता है तो अति अल्पकाल में पूर्ति नही बढ़ सकती तथा अति अल्पकाल के दौरान पूर्ति ES_1 का रूप धारण करेगी जो D_1D_1 के साथ मिलकर E_1 बिन्दु पर सन्तुलन स्थापित करती है तथा OP_1 कीमत निर्धारित करती है। इसके बाद समय अवधि कुछ लम्बी या अल्पकाल होने पर कुछ उत्पादन के साधनों की मात्रा को बढ़ाकर उत्पादन या पूर्ति को बढ़ाया जा सकता है। इस कारण पूर्ति वक्र की आकृति ES_2 हो जाती है जो E_2 पर सन्तुलन स्थापित करती है तथा OP_2 कीमत पर निर्धारित करती है। इसके उपरान्त यदि समय अवधि और भी लम्बी या दीर्घकाल होती है, जिसमें उत्पादन के सभी साधनों की मात्रा को बढ़ाया जा सकता है, तो पूर्ति वक्र का आकार ES बन जायेगा। ES पूर्ति वक्र D_1D_1 मांग वक्र के साथ मिलकर E_3 पर सन्तुलन स्थापित करता है तथा OP_3 कीमत निर्धारित होती है। अतः सन्तुलन बिन्दु E से E_1, E_1 से E_2 तथा E_2 से E_3 गत्यात्मक सन्तुलन का निर्माण करता है।

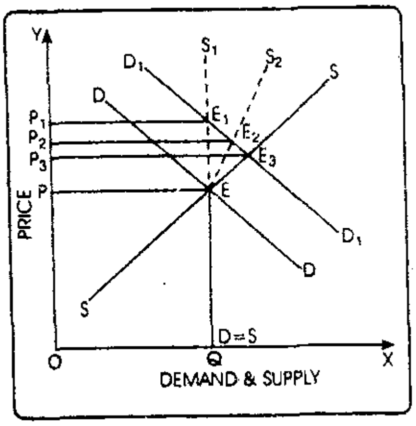

चित्र 2.10

महत्त्व (Significance)

1. एक सन्तुलन बिन्दु से दूसरे सन्तुलन बिन्दु पर पहुंचन में जो प्रक्रिया होती है, उसका ज्ञान गत्यात्मक सन्तुलन से प्राप्त होता है, जो हमें तुलनात्मक सन्तुलन से नहीं होता है। प्रारम्भिक सन्तुलन में परिवर्तन किसी बाह्य चर या किसी स्थिर मूल्य (Parameter) में परिवर्तन के कारण हो सकता है।
2. गत्यात्मक विश्लेषण से हमें यह भी ज्ञात हो जाता है कि प्रारम्भिक सन्तुलन में परिवर्तन आने पर चर दूसरे सन्तुलन बिन्दु तक पहुंचने में सरल या टेढ़ा–मेढ़ा या उतार–चढ़ाव वाला रास्ता अपनाता है।
3. गत्यात्मक सन्तुलन के अन्तर्गत चरों में जो समन्वय (Adjustment) होती है, उसका ज्ञान भी हमें प्राप्त हो जाता है।
4. किसी चर में समय के साथ परिवर्तन की दर की भी जानकारी केवल गत्यात्मक सन्तुलन विश्लेषण से ही होती है।
5. यह विश्लेषण वास्तविकता के अधिक नजदीक है क्योंकि इसमें सभी चरों को परिवर्तनशील माना गया है।

सीमाएं
(Limitations)

गत्यात्मक विश्लेषण की कुछ सीमाएं भी हैं जो निम्न प्रकार हैं:-

1. गत्यात्मक मॉडल प्रायः सरल रेखीय समीकरणों (Linear equations) के रूप में तैयार किये जाते हैं जो वास्तविकता से दूर होते हैं। चरों में परिवर्तन अधिकतर टेढ़ी–मेढ़ी रेखा (Non-Linear) का पालन करते हैं न कि सरल रेखा का।
2. गत्यात्मक मॉडलों के समीकरणों जो स्थिर गुणक (Co-efficient constants) की कल्पना की जाती है, वह भी वास्तविकता से दूर है, क्योंकि इनमें भी परिवर्तन आता रहता है।
3. गत्यात्मक सन्तुलन विश्लेषण जटिल है क्योंकि इससे सभी चर परिवर्तनशील होने के कारण निष्कर्ष निकालने कठिन हैं।

आंशिक तथा सामान्य सन्तुलन
(Partial and General Equilibrium)

आंशिक सन्तुलन (Partial Equilibrium): अर्थव्यवस्था अनेक आर्थिक इकाइयों का समूह होती है। सारी अर्थव्यवस्था सन्तुलन में न होकर जब कोई एक आर्थिक इकाई सन्तुलन में होती तो ऐसी अवस्था को आंशिक सन्तुलन (Partial Equilibrium) कहा जाता है। जैसे कोई एक उपभोक्ता, एक उत्पादक या फर्म, एक उद्योग, एक वस्तु का बाजार आदि के सन्तुलन का अध्ययन किया जाये तो वह आंशिक सन्तुलन का अध्ययन कहा जायेगा। किसी आंशिक सन्तुलन का अध्ययन करते समय सम्बन्धित अन्य तत्त्वों को स्थिर (Other things being equal) माना जाता है तथा केवल एक ही आर्थिक तत्त्व को परिवर्तनशील (Variable) माना जाता है। किसी वस्तु की मांग और पूर्ति के बीच हुआ सन्तुलन उस वस्तु की कीमत का निर्धारण करता है। यह आंशिक सन्तुलन का एक उदाहरण है। इस आंशिक सन्तुलन में उस वस्तु की मांग व पूर्ति को प्रभावित करने वाली कीमत को छोड़ कर अन्य सभी तत्त्वों, जैसे आय, तकनीकी जनसंख्या आदि को स्थिर माना गया है। ये अन्य सभी तत्त्व स्थिर रहते हुए केवल वस्तु की कीमत में उतार–चढ़ाव उस वस्तु के बाजार में या उस वस्तु की मांग व पूर्ति में सन्तुलन स्थापित करता है। इसको ही आंशिक सन्तुलन कहा जाता है।

प्रो० स्टिगलर के अनुसार, "एक आंशिक सन्तुलन वह होता है जो केवल सीमित तत्वों पर आधारित होता है। किसी एक वस्तु की कीमत का निर्धारण इसका एक अच्छा उदाहरण है। इस विश्लेषण के अन्तर्गत अन्य सभी वस्तुओं की कीमतों को स्थिर रखा जाता है।" (A partial equilibrium is one which is based only on a restricted range of data, the standard example is the price of a single product, the prices of all other products being held fixed during the analysis.—Stigler)

आंशिक सन्तुलन को एक बाजार मॉडल या किसी पृथक किये हुए बाजार में कीमत निर्धारण के मॉडल के रूप में दर्शाय जा सकता है। इस बाजार मॉडल में आंशिक सन्तुलन की मुख्य समस्या आन्तरिक चरों (जैसे कीमत, मांग व पूर्ति) के मूल्यों के उस समूह (Set) की प्राप्त करने की होती है, जो इसमें सन्तुलन की शर्तों को सन्तुष्ट करता हो।

किसी एक बाजार मॉडल में एक ही वस्तु कीमत का निर्धारण होता है। इसलिए इसमें तीन चर होते हैं: उस वस्तु की कीमत (P), वस्तु की मांगी गई मात्रा (Q_d), वस्तु की पूर्ति की गई मात्रा (Q_s), ये तीनों चर मॉडल के आन्तरिक चर (Endagenous variable) कहलाते हैं क्योंकि इनका निर्धारण मॉडल के अन्दर ही होता है। इन तीनों चरों के सन्तुलन मूल्य (equilibrium values) ज्ञात करने के लिए हमें कुछ पूर्वकल्पनाएं करनी होंगी। हमारी पूर्व कल्पना है कि बाज़ार में सन्तुलन केवल उस समय प्राप्त होगा जब बाज़ार में मांग पूर्ण रूप से सन्तुष्ट होती है या मांग पूर्ति के बराबर होने से मांग अधिक्य (Excess demand) शून्य ($Q_d - Q_s = O$) होता है। यह सन्तुलन प्राप्त करने के लिए हम आगे कल्पना करते हैं कि मांग क़ीमत का गिरता फलन या नक़ारात्मक ढाल वाला (Negatively sloped) वक्र है, अर्थात् कीमत गिरने से मांग बढ़ती है या कीमत बढ़ने पर मांग गिरती है। इसके विपरीत पूर्ति कीमत का बढ़ता फलन या घनात्मक ढाल (Positively sloped) वाला वक्र माना गया है। अब हम उपरोक्त तीनों चरों के सन्तुलन मूल्यों (Equilibrium values) को निम्न चित्र की सहायता से ज्ञात कर सकते हैं:

निम्न चित्र से मान लीजिए प्रारम्भिक कीमत P_1 है जिस पर मांगी गई मात्रा (Q_d) है तथा पूर्ति (Q_s) पूर्ति की मांग पर अधिकता होने के कारण कीमत गिरेगी तथा गिरती रहेगी जब तक कीमत P_0 पर स्थापित नहीं हो जाती है। जहां वस्तु की मांग व पूर्ति परस्पर बराबर ($Q_d = Q_s$) हैं। इसके विपरीत मान लो कीमत P_2 है जिस पर मांग Q'_d की पूर्ति Q'_s पर अधिकता होने के कारण

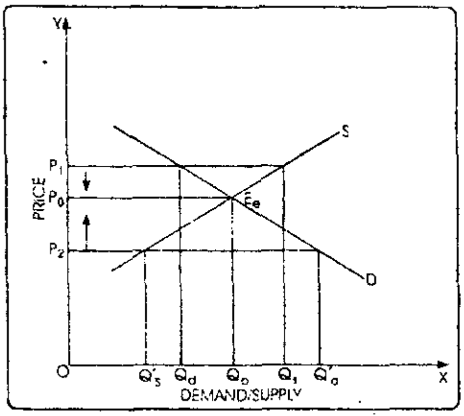

चित्र 2.10

कीमत बढ़ती है तथा बढ़ती रहती है जब तक यह बढ़कर P_0 कीमत स्थापित नहीं हो जाती है, जहां मांग व पूर्ति बराबर है। इस प्रकार चित्र में E_0 सन्तुलन बिन्दु है जहां P_0 सन्तुलित कीमत, Q_0 मांग तथा Q_0 पूर्ति परस्पर बराबर होने के कारण सन्तुलन में हैं अतः इस मॉडल के उपरोक्त तीनों चरों के मूल्य ज्ञात किए जा सकते हैं।

मान्यताएं (Assumptions)

1. अन्य वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहती हैं।
2. जनसंख्या स्थिर रहती है।
3. लोगों की रुचि, फैशन आदि स्थिर रहते हैं।
4. उत्पादन तकनीक स्थिर रहती है।
5. आय स्थिर रहती है।
6. एक बन्द अर्थव्यवस्था की कल्पना की गई है।
7. जलवायु स्थिर रहती है।

इन्हीं मान्यताओं के आधार पर एक उपभोक्ता के सन्तुलन का अध्ययन कि वह अपनी सीमित आय को, अन्य बातें समान रहते हुए किसी एक या विभिन्न वस्तुओं पर इस प्रकार खर्च करता है ताकि उसको अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो। इसी प्रकार एक फर्म का सन्तुलन भी अन्य बातें समान रहने की पूर्व कल्पना पर आधारित है। ये सभी आंशिक सन्तुलन कहे जाते हैं।

आंशिक सन्तुलन विश्लेषण की सीमाएँ व आलोचनाएँ
(Limitations or Criticism of Partial Equilibrium Analysis)

आंशिक सन्तुलन की मुख्य सीमाएं व आलोचनाएं निम्न प्रकार से हैं:

1. आंशिक सन्तुलन विश्लेषण में अन्य चरों या बातों को स्थिर माना (Other things remaining the same) गया है। परन्तु वास्तविक जगत में सम्बन्धित चर (जनसंख्या, अन्य वस्तुओं की कीमतों, जलवायु आदि) बदलते रहते हैं। इसलिए यह विश्लेषण अवास्तविक है।
2. आंशिक सन्तुलन के अन्तर्गत उपभोक्ता के सन्तुलन का भी अध्ययन किया जाता है, जिसमें प्रमुख मान्यता यह होती है कि उपभोक्ता की आय स्थिर रहती है। परन्तु उपभोक्ता की आय इस बात पर निर्भर करती है कि वह कितने श्रम तथा अन्य उत्पादन के साधनों का स्वामी है तथा इन साधनों (श्रम, पूँजी, भूमि आदि) की बाज़ार कीमत (मज़दूरी, ब्याज, लगान आदि) क्या है। साधन कीमतें साधन बाज़ार में निर्धारित होती हैं जो बदलती रहती हैं। परन्तु इस विश्लेषण में इनको स्थिर माना गया है।

इसी प्रकार आंशिक सन्तुलन विश्लेषण में उत्पादन तकनीक को स्थिर माना गया है, परन्तु तकनीकी प्रगति होती रहती है, जो उत्पादन लागत को कम कर देती है। इससे वस्तु का पूर्ति वक्र परिवर्तित या विवर्तित होता है। परन्तु इस विश्लेषण में पूर्ति वक्र स्थिर माना गया है, जो उचित नहीं है।

बाज़ारों में परस्पर निर्भरता पाई जाती है परन्तु आंशिक सन्तुलन बाज़ारों का एक–दूसरे से पृथक या स्वतंत्र मान कर विश्लेषण किया जाता है।

5. साधन बाज़ारों में साधनों की मांग व पूर्ति में परिवर्तन होते रहते हैं जिससे साधनों की कीमतें (मज़दूरी आदि) परिवर्तित होती रहती हैं इससे वस्तुओं की उत्पादन लागत तथा पूर्ति वक्र विवर्तित होती रहती हैं। परन्तु आंशिक सन्तुलन में इन सबको स्थिर माना गया है।

6. वस्तु बाज़ार व साधन बाज़ार की परस्पर निर्भरता (interdependence) की भी इस विश्लेषण में अवहेलना की गई है जबकि इनमें गहरा संबंध पाया जाता है।

7. यह विश्लेषण सैद्धान्तिक अधिक तथा व्यवहारिक कम है।

संक्षेप में, इस विश्लेषण की आधारभूत विशेषता यह है कि प्रत्येक आर्थिक इकाई के बाज़ार में सन्तुलित कीमत व मात्रा का निर्धारण उसकी मांग व पूर्ति वक्र द्वारा उस आधार पर होता है कि अन्य सभी बातें स्थिर रहती है।

सामान्य सन्तुलन
(General Equilibrium)

जब किसी अर्थव्यवस्था की सभी आर्थिक इकाई या सारी अर्थव्यवस्था सन्तुलन की स्थिति में होती है तो वह स्थिति सामान्य सन्तुलन (General equilibrium) की स्थिति कहलाती है। सामान्य सन्तुलन में यह माना जाता है कि प्रत्येक आर्थिक इकाई प्रत्येक दूसरी इकाई को प्रभावित कर रही होती है। अतः आर्थिक इकाइयों की परस्पर निर्भरता (Mutual interdependence) के आधार पर अर्थव्यवस्था में जब सभी आर्थिक इकाइयां सन्तुलन में होती हैं तो वह स्थिति सामान्य सन्तुलन की स्थिति होती है। प्रो. लेफ्टविच के अनुसार, "किसी सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का सामान्य सन्तुलन केवल तभी हो सकता है जब सभी आर्थिक इकाइयां अपना आंशिक सन्तुलन एक साथ प्राप्त कर लें।" (General equilibrium for the entire economy could exist only if all economic units were to achieve simultaneous partial equilibrium adjustment. – Leftwitch)

सामान्य सन्तुलन का प्रथम विश्लेषण प्रसिद्ध अर्थशास्त्री लियाने वालरस (Leon Walras) ने समीकरणों की सहायता से किया। इसके बाद सामान्य सन्तुलन का एक अन्य महत्वपूर्ण विश्लेषण नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री प्रो. लियोन्टीफ (Leontief) द्वारा उपादान–उत्पादन विश्लेषण (Input-output Analysis) की सहायता से किया गया है।

व्याख्या (Explanation): सामान्य सन्तुलन का सार (essence) यह है कि किसी भी आर्थिक व्यवस्था (Economic Systejm) में इसके विभिन्न अंग परस्पर अन्तरनिर्भर (interdependent) होते हुए सभी सन्तुलन में होते हैं। प्रत्येक अर्थव्यवस्था में सभी वस्तुओं के बाज़ार तथा सभी उत्पादन साधनों के बाज़ार एक–दूसरे पर निर्भर करते हैं तथा सभी बाज़ारों में वस्तुओं व साधनों की कीमतें एक साथ निर्धारित होती हैं। जैसे विभिन्न वस्तु व सेवाओं के लिए उपभोक्ता की मांग उनकी आय पर निर्भर करती है तथा उपभोक्ताओं की आय उनके अपने साधनों की मात्रा तथा इन साधनों की कीमतों पर निर्भर करते हैं– साधनों की कीमतें उनकी मांग व पूर्ति पर निर्भर करते हैं– साधनों की मांग उन द्वारा उत्पादित की गई वस्तुओं की मांग पर निर्भर करती है – वस्तुओं की मांग उपभोक्ताओं की आय पर निर्भर करती है तथा आय उनके साधनों की मांग व साधन कीमत पर निर्भर करती है इस प्रकार वस्तु व सेवाओं के बाज़ार तथा साधनों के बाज़ार तथा इनकी कीमतें परस्पर जुड़ी हुई हैं तथा एक–दूसरे पर निर्भर करती हैं। किसी आर्थिक व्यवस्था में आर्थिक क्रियाओं की यह चक्रीय निर्भरता (circular interdependence) को एक साधारण अर्थव्यवस्था के उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लो इस अर्थव्यवस्था के केवल दो क्षेत्र (Two sectors) है:

(1) उपभोक्ता क्षेत्र (Consumer sector) जिसमें गृहस्थ (households) लोग हैं तथा (2) व्यावसायिक क्षेत्र (business sector) जिसमें फर्में (Firms) हैं।

यहां कल्पना की गई है कि: (a) सभी वस्तुओं का उत्पादन व्यावसायिक क्षेत्र में होता है, (b) सभी साधनों पर गृहस्थियों (households) का स्वामित्व होता है, (c) सभी साधनों को पूर्ण रोज़गार प्राप्त होता है तथा (d) सारी अर्जित आय खर्च कर दी जाती है।

ऐसी व्यवस्था में उपभोक्ता क्षेत्र तथा व्यावसायिक क्षेत्र के बीच आर्थिक क्रियाएं दो प्रकार के प्रवाहों को जन्म देती हैं: एक, वास्तविक प्रवाह (flow) तथा दूसरा मौद्रिक प्रवाह (monetary flow), जैसा कि चित्र द्वारा दर्शाया गया है:

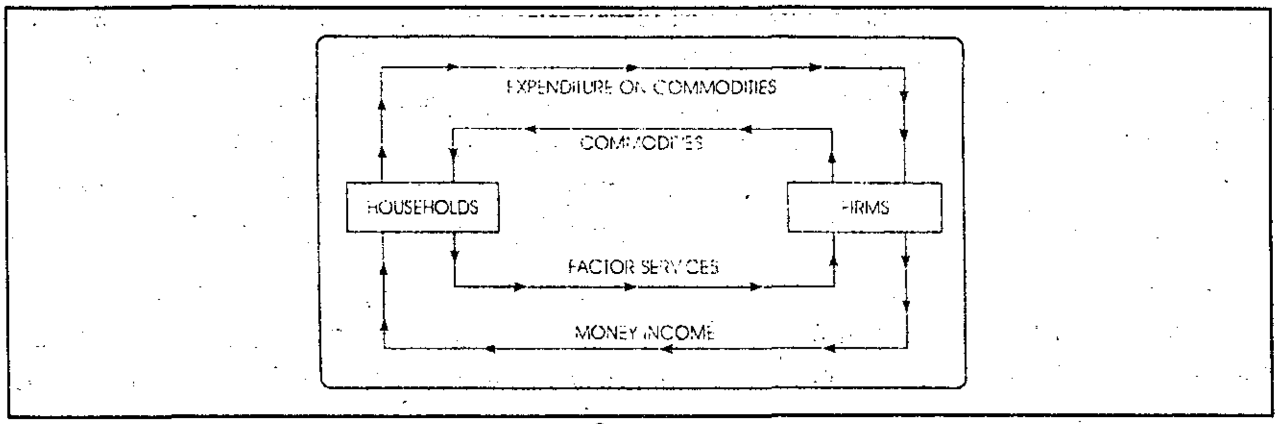

चित्र 2.11

चित्र में वास्तविक प्रवाह दर्शाता है कि वस्तुओं का साधन–सेवाओं के बदले लेन–देन या विनिमय हो रहा होता है, जिसमें फर्में वस्तुओं का उत्पादन करती हैं तथा उपभोक्ताओं को बेचती हैं तथा उपभोक्ता साधनों के स्वामी होने के कारण साधन सेवाओं को बेचते हैं।

वास्तविक प्रवाह को मुद्रा के रूप में व्यक्त करने से यह मौद्रिक प्रवाह (monetary flow) कहलाता है। इस प्रवाह में उपभोक्ता अपने साधनों की सेवाएं व्यावसायिक क्षेत्र को बेचकर मौद्रिक आय कमाते हैं तथा यह सारी आय उपभोक्ता व्यावसायिक क्षेत्र से वस्तुओं की खरीद पर खर्च कर देते हैं।

ध्यान से देखने पर ज्ञात होता है कि वास्तविक तथा मौद्रिक क्षेत्र दोनों विरोधी दिशाओं में प्रवाहित होते हैं। वस्तुओं की कीमतें तथा साधन सेवाओं की कीमतें इन दोनों क्षेत्रों को परस्पर जोड़ती है। यह आर्थिक व्यवस्था उस समय सामान्य सन्तुलन में कही जाएगी जब वस्तु कीमतों के किसी समूह तथा साधन कीमतों के किसी समूह पर व्यावसायिक क्षेत्र से उपभोक्ता क्षेत्र का आय के प्रवाह का आकार उस मुद्रा खर्च के प्रवाह आकार के बराबर होगा जो उपभोक्ता क्षेत्र से व्यावसायिक क्षेत्र की ओर प्रवाहित होता है।

आंशिक सन्तुलन में बाज़ारों की अन्तः निर्भरता को एक कर विश्लेषण किया जाता है जो वास्तविकता से दूर है। वस्तुतः विभिन्न वस्तुओं व साधारण सेवाओं के क्रेता तथा विक्रेता करोड़ों होते हैं जो अपने स्वहित को ध्यान में कर निर्णय लेते हैं तथा इनके निर्णय एक–दूसरे बाज़ार को प्रभावित कर रहे होते हैं।

सामान्य सन्तुलन सिद्धान्त की समस्या यह जांच करना है कि प्रत्येक व्यक्तिगत, उपभोक्ता, उत्पादक, व्यापारी आदि प्रत्येक अपने–अपने स्वहित में निर्णय लेते हुए क्या ऐसी स्थिति (position) को प्राप्त कर सकते हैं जिसमें सभी सन्तुलन में हों। अब हम सामान्य सन्तुलन को परिभाषित कर सकते हैं। सामान्य सन्तुलन एक ऐसी स्थिति है जिसमें सभी बाज़ार तथा आर्थिक इकाइयां साथ–साथ सन्तुलन में होते हैं। सामान्य सन्तुलन की समस्या का समाधान वालरा (Walra) जैसे अर्थशास्त्रियों ने साथ–साथ समीकरण वाले मॉडल (simultaneous equation model) का प्रयोग करके करने का प्रयास किया है।

वालरा का मॉडल (The Walrasian Model)

लीओन वालरा (Leon Walra) ने अपने प्रसिद्ध लेख 'Elements of Pure Economics' (1874) में अपने सामान्य सन्तुलन सम्बन्धी विचार व्यक्त किए थे। उन्होंने तर्क दिया कि सभी बाज़ारों में सभी कीमतें तथा मात्राएं (quantities) एक दूसरे को प्रभावित (interaction) करते हुए साथ–साथ निर्धारित होती हैं। इसके लिए उसने साथ–साथ समीकरणों वाली व्यवस्था (system of

simultaneous equations) का प्रयोग किया, जिसमें उसने सभी बाजारों में व्यक्तिगत विक्रेताओं तथा क्रेताओं की अन्तः क्रिया की व्याख्या की तथा सिद्ध करने का प्रयास किया कि सभी बाज़ारों में सभी वस्तुओं व साधनों की कीमतें तथा मात्राएं, साथ–साथ निर्धारित की जा सकती है।

वालरा के मॉडल में प्रत्येक क्रेता तथा विक्रेता या प्रत्येक व्यक्तिगत निर्णायक (each individual decision maker) के व्यवहार को समीकरणों के समूह द्वारा पेश किया गया है। यह व्यक्तिगत निर्णायक एक उपभोक्ता, एक फर्म या एक क्रेता कोई भी हो सकता है। उदाहरणतः प्रत्येक उपभोक्ता की दोहरी भूमिका (double role) होती है, क्योंकि वह फर्मों को साधनों की सेवाएं बेचकर आय कमाता है तथा उससे वस्तुएं खरीदता है। इस प्रकार प्रत्येक उपभोक्ता का अपना एक समीकरणों का समूह (set subset) होते हैं। इनमें से एक उसकी विभिन्न वस्तुओं की मांगों को व्यक्त करता है, और दूसरा समीकरणों का उपसमूह उसके साधनों की पूर्तियों को प्रकट करता है। ठीक इसी प्रकार प्रत्येक फर्म (firm) का व्यवहार उसके अपने समीकरणों के समूह जिसमें दो उपसमूह होते हैं के द्वारा व्यक्त किया जाता है। इनमें से एक उपसमूह फर्म द्वारा उत्पादित वस्तुओं की पूर्तियों को व्यक्त करता है तथा दूसरा प्रत्येक उत्पादित की गई वस्तु के लिए साधनों की मांगों को प्रकट कर रहा होता है।

इस समीकरणों की महत्वपूर्ण विशेषता इनका साथ–साथ परस्पर अन्तरनिर्भरता (interdependence) होना है। हम जानते हैं कि अर्थव्यवस्था में करोड़ो उपभोक्ताओं तथा फर्में होती है जिनके अरबों समीकरण हो सकते हैं। इन अरबों साथ–साथ समीकरणों की व्यवस्था का हल (solution) मॉडल को अज्ञातों (unknowns) को परिभाषित करता है। ये अज्ञात (unknowns) सभी वस्तुओं तथा साधनों की कीमतें तथा मात्राएं (quantities) होती हैं।

वालरा द्वारा प्रस्तुत समान्य समीकरण की व्यवस्था में उतने ही बाज़ार होते हैं, जितने कि अर्थव्यवस्था में वस्तुओं एवं उत्पादन के साधनों की संख्या होती है। प्रत्येक बाज़ार (Market) में तीन प्रकार के फलन (function) होते हैं: मांग फलन (Demand function), पूर्ति फलन (Supply function) तथा मांग–पूर्ति में समानता (D-S = O) का समीकरण जो व्यक्त करता है कि मांगी गई मात्रा पेश की गई पूर्ति की मात्रा के समान है।

वस्तु बाज़ार (Commodity market) में मांग फलनों की संख्या फर्मों की संख्या को उन द्वारा उत्पादित वस्तुओं की संख्या से गुणा करने पर जो संख्या आती है उसके समान होती है। पूर्ति फलनों की संख्या उपभोक्ताओं जो साधनों के स्वामी है कि संख्या के बराबर होती है।

वालरा ने आगे तर्क दिया कि किसी सामान्य सन्तुलन के लिए एक अनिवार्य (पर्याप्त नहीं) शर्त यह है कि व्यवस्था में इतना ही स्वतन्त्र समीकरण (independent equations) होने चाहिए जितने की अज्ञातों की संख्या है। इस प्रकार सामान्य सन्तुलन को स्थापित करने के लिए प्रथम कार्य अर्थव्यवस्था का विवरण समीकरणों की व्यवस्था (system of equations) के रूप में करना चाहिए, जो यह बताएगा कि व्यवस्था के हल के लिए कितने समीकरणों की जरूरत है।

उदाहरण के रूप में मान लो एक अर्थव्यवस्था में A तथा B दो उपभोक्ता हैं जिनके पास K तथा L अपने उत्पादन के साधन है। ये साधन X तथा Y वस्तु का उत्पादन करने वाली दो फर्मों द्वारा प्रयोग किए जाते हैं। यह एक सरल 2 x 2 x 2 सामान्य सन्तुलन मॉडल है जिसमें कल्पना की गई है कि प्रत्येक फर्म एक–एक वस्तु का उत्पादन करती है, तथा प्रत्येक उपभोक्ता दोनों वस्तुओं की कुछ मात्रा खरीदते हैं। यह कल्पना भी की गई है कि दोनों उपभोक्ता दोनों साधनों की कुछ–कुछ मात्रा के स्वामी हैं तथा उनका साधनों पर स्वामित्व का बंटवारा मॉडल के बाहर निर्धारित होता है। इस सरल मॉडल में हमारे पास निम्न अज्ञात (unknowns) हैं:

उपभोक्ताओं द्वारा X तथा Y वस्तु की मांगी गई मात्रा	:	2 x 2 = 4
उपभोक्ताओं द्वारा K तथा L की मांगी गई मात्रा	:	2 x 2 = 4
फर्मों द्वारा K तथा L की मांगी गई मात्रा	:	2 x 2 = 4
फर्मों द्वारा X तथा Y की गई पूर्ति की मात्रा	:	2
X तथा Y वस्तुओं की कीमतें	:	2
K तथा L साधनों की कीमतें	:	2
कुछ अज्ञातों (unknowns) की संख्या	**:**	**18**

इन अज्ञातों को ज्ञात करने के लिए समीकरणों की निम्न संख्या तैयार की जा सकती है:

उपभोक्ताओं के मांग फलन	:	2 x 2 = 4
साधनों के पूर्ति फलन	:	2 x 2 = 4
साधनों के मांग फलन	:	2 x 2 = 4
वस्तुओं के पूर्ति फलन	:	2
वस्तुओं की मांग–पूर्ति में समानता	:	2
साधनों की मांग–पूर्ति में समानता	:	2
समीकरणों की कुल संख्या	:	**18**

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि समीकरणों की संख्या अज्ञातों की संख्या के समान है। इसलिए सामान्य सन्तुलन का हल हो सकता है। परन्तु समीकरणों की संख्या तथा अज्ञातों की संख्या में समानता सामान्य सन्तुलन की शर्त न तो अनिवार्य है तथा न ही पर्याप्त है। वालरा के मॉडल में समस्या यह है समीकरणों में से एक समीकरण अन्य समीकरणों से स्वतंत्र नहीं है। इसलिए स्वतंत्र समीकरणों की संख्या से अज्ञातों की संख्या अधिक हो जाती है। व्यवस्था में एक समीकरण बहुतायत (Redundant equation) में हो जाता है जो व्यवस्था को सामान्य सन्तुलन के हल से दूर रखता है। इस मॉडल में निरपेक्ष कीमत स्तर (absolute level of prices) निर्धारित नहीं हो सकता इसके हल के लिए कुछ अर्थशास्त्रियों ने मनमाने ढंग से किसी एक वस्तु को कीमत की गणना के रूप में स्वीकार है तथा बाकि सभी कीमतें इस वस्तु के रूप में आंकी हैं। इस तरीके से वस्तुओं की कीमतों को अनुपातों में मापा है। इससे अज्ञातों की संख्या भी 17 रह जाती है क्योंकि X तथा Y वस्तु की कीमतें एक–दूसरे में निर्धारित होने से 2 के स्थान पर 1 (एक) अज्ञात रह जाता है।

परन्तु स्वतंत्र समीकरणों की संख्या तथा अज्ञातों की संख्या में समानता होने पर भी सामान्य सन्तुलन संभव नहीं है। सामान्य सन्तुलन को सिद्ध करना बड़ा कठिन है। स्वयं वालरा सामान्य सन्तुलन की विद्यमानता को कभी भी सिद्ध नहीं कर सके। बाद में 1954 में ऐरो तथा डैबरू ने पूर्ण प्रतियोगी बाज़ारों में सामान्य की विद्यमानता का सबूत पेश किया है।

मान्यताएं (Assumptions): सामान्य सन्तुलन की कुछ मुख्य मान्यताएं निम्न हैं:

1. वस्तु बाज़ारों में पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है।
2. वस्तुओं की विभाजनशीलता पाई जाती है।
3. साधन बाज़ार में पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है।
4. मुद्रा रहित अर्थव्यवस्था की कल्पना की गई।
5. 2 x 2 x 2 मॉडल की कल्पना की गई है।
6. उत्पादन में पैमाने का स्थिर प्रतिफल लागू होता है।

महत्व (Significance)

1. बाज़ारों के परस्पर अन्तः निर्भर होने के कारण आर्थिक जगत की व्यवस्था कितनी जटिल है। इस बात का ज्ञान सामान्य सन्तुलन के अध्ययन से होता है।
2. कुछ विशेष परिस्थितियों में सामान्य सन्तुलन संभव हो सकता है। जिससे विश्व के संाधनों का ईष्टतम बंटवारा होता है।
3. बाज़ारों के अध्ययन से यह तुलना की जा सकती है कि वास्तविक जगत् सामान्य सन्तुलन की आदर्श स्थिति से कितना दूर है।
4. सामान्य सन्तुलन के अध्ययन से समष्टि आर्थिक समस्याओं का हल हो सकता है।
5. इसके आधार पर समष्टि सिद्धांतों की तुलना की जा सकती है।

सीमाएं (Limitations): सामान्य सन्तुलन एक जटिल समस्या है। सामान्य सन्तुलन स्थापित करने में अनेक कठिनाइयों तथा सीमाओं का सामना करना पड़ता है। कुछ मुख्य सीमाएं इस प्रकार हैं:

1. *अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों (कीमतें, मांगें, पूर्तिया आदि) की परस्पर अन्तः निर्भरता* (***mutually interdependence***) का सही–सही ज्ञान नहीं हो सकता। इस कारण सामान्य सन्तुलन ज्ञात करना तथा स्थापित करना असम्भव कार्य है।
2. पूर्ण प्रतियोगिता बाज़ार की विद्यमानता वास्तविक जगत् में नहीं है जोकि सामान्य सन्तुलन की प्रमुख मान्यता है।
3. सामान्य सन्तुलन में वस्तु तथा साधनों को विभाजनशील माना है। परन्तु अनेक वस्तुएं तथा साधन विभाजनशील नहीं होते हैं।
4. इसमें उत्पादन में पैमाने के प्रतिफल की कल्पना की गई है। परन्तु वास्तविक जगत में अधिकतर घटते प्रतिफल का नियम लागू होता है।
5. सामान्य सन्तुलन एक अवास्तविक धारणा है, क्योंकि अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंग निरन्तर बदल रहे होते हैं।

क्या सन्तुलन वास्तव में प्राप्त किया जा सकता है?
(Can Equilibrium be actually attained?)

कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार सन्तुलन की धारणा काल्पनिक है तथा यह वास्तविक जीवन में नहीं पाई जाती है। कुछ अन्य अर्थशास्त्रियों के अनुसार आर्थिक शक्तियां सन्तुलन प्राप्त करने का प्रयास कर रही होती हैं तथा वे वास्तव में सन्तुलन को प्राप्त होती हैं। परन्तु आर्थिक शक्तियों में निरन्तर परिवर्तन होते रहने के कारण वह सन्तुलन अस्थिर सन्तुलन ही होता है। यदि सन्तुलन प्राप्त करने के बाद आर्थिक शक्तियाँ (मांग व पूर्ति) समान अनुपात से परिवर्तित होती हैं तो दीर्घकाल तक सन्तुलन की स्थिति विद्यमान् रह सकती है।

सभी आर्थिक इकाइयों के लिए सन्तुलन एक आदर्श स्थिति होती है क्योंकि वे इस स्थिति में अपने उद्देश्य को प्राप्त कर रही होती हैं। सन्तुलन की अवस्था में फ़र्म अधिकतम लाभ अर्जित करती है, उपभोक्ता अपने सन्तुष्टि स्तर को अधिकतम करता है आदि। सन्तुलन प्राप्त करने के प्रयास में किसी समय वे अवश्य सफल होती हैं। क्या सन्तुलन का अध्ययन महत्वपूर्ण है? सन्तुलन का महत्त्व इस बात में नहीं है कि यह कैसे प्राप्त किया जाता है। सन्तुलन वास्तव में प्राप्त किया जाता है या नही बल्कि इस बात में है कि यह आर्थिक शक्तियों को सही दिशा प्रदान करता है। लेफ्टविच के अनुसार, *"सन्तुलन की धारणाओं का महत्व इस कारण नहीं है कि वास्तव में सन्तुलन कभी प्राप्त किया जाता है, बल्कि इस कारण है कि वे हमें उन दिशाओं को स्पष्ट करती हैं जिनकी ओर आर्थिक परिवर्तन अग्रसर होते हैं।"* (Equilibrium concepts are important, not because equilibrium is ever infact attained but because they show us the directions in which economic changes proceed. – Leftwitch)

सन्तुलन का महत्व (Significance of Equilibrium)

आर्थिक विश्लेषण में सन्तुलन की धारणा का बहुत अधिक महत्व है। इसका मुख्य महत्त्व निम्न प्रकार से है:

1. **आर्थिक क्रियाओं का लक्ष्य (Goal of Economic Activities):** सभी आर्थिक क्रियाओं का लक्ष्य सन्तुलन प्राप्त करना होता है। इसका कारण यह है कि सन्तुलन का आदर्श (Optimum) स्थिति स्वीकार किया गया है। इससे आर्थिक क्रियाओं को सही दिशा में निर्देशित किया जा सकता है। सन्तुलन की अवस्था का अध्ययन करने से यह भी ज्ञात हो सकता है कि कोई आर्थिक इकाई अपने लक्ष्य (Goal) से कितना दूर है तथा उसे प्राप्त करने के लिए कितने आर्थिक प्रयासों की जरूरत है।
2. **कीमत निर्धारण (Price Determination):** बाज़ार में किसी वस्तु की कीमत का निर्धारण (Price Determination) उस वस्तु की मांग तथा पूर्ति के बीच सन्तुलन की अवस्था से होता है। मांग व पूर्ति के सन्तुलन द्वारा जो कीमत निर्धारित होती है, वह स्थाई कीमत होती है। मांग या पूर्ति वक्र में परिवर्तन से सन्तुलन की अवस्था परिवर्तित हो जाती है तथा कीमत भी बदल जाती है।
3. **अधिकतम सन्तुष्टि (Maximum Satisfaction):** प्रत्येक उपभोक्ता अपनी आय को विभिन्न वस्तुओं पर इस प्रकार

खर्च करना चाहता है ताकि उसको अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो सके। उपभोक्ता को अधिकतम सन्तुष्टि सन्तुलन की अवस्था में ही प्राप्त होती है। अतः सन्तुलन की धारणा उपभोक्ताओं के लिए एक महत्वपूर्ण धारणा है।

4. **अधिकतम लाभ (Maximum Profit):** उत्पादन के अंतर्गत फ़र्म, उद्योग आदि सभी का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है। इन आर्थिक इकाइयों को अधिकतम लाभ केवल सन्तुलन की अवस्था में ही प्राप्त हो सकता है।

5. **साधन कीमत निर्धारण (Factor Price Determination):** श्रम, भूमि, पूँजी आदि सभी उत्पादन के साधनों की कीमतों (मज़दूरी, लगान, ब्याज आदि) का निर्धारण भी साधन–बाज़ार में सन्तुलन की अवस्था में ही निर्धारण होता है। इसलिए साधन–कीमत निर्धारण में ही सन्तुलन का महत्व कम नहीं है।

6. **आर्थिक समस्याओं का कारण (Cause for Economic Problems):** सन्तुलन की धारणा से विभिन्न आर्थिक समस्याओं के कारणों का ज्ञान भी प्राप्त होता है। अति–उत्पादन, बेरोज़गारी, मुद्रास्फीति, मन्दी आदि आर्थिक समस्याएं सन्तुलन की अवस्था प्राप्त न होने (असन्तुलन) के कारण ही उत्पन्न होती हैं।

7. **नीति निर्धारण में महत्व (Importance in Policy Determination):** उत्पादन, निवेश, बचत, निर्यात आदि में वृद्धि करने सम्बन्धी सरकारी नीति का निर्धारण उनकी सन्तुलन की अवस्था को ध्यान में रखते हुए ही किया जाता है। उचित नीति की परख यही होती है कि यह विभिन्न आर्थिक इकाइयों को सन्तुलन की ओर ले जाने वाली होती है।

8. **पारस्परिक निर्भरता का ज्ञान (Knowledge of Inter-dependence):** सामान्य सन्तुलन के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंग या तत्व एक दूसरे पर निर्भर होते हैं। यह जानना कितना महत्वपूर्ण है कि एक तत्व में परिवर्तन होता है तो सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसलिए सामान्य सन्तुलन को ध्यान में रखते हुए आर्थिक क्रियाएं की जानी चाहिए।

9. **आर्थिक विश्लेषण तथा सिद्धांतों का आधार (Basis of Economic Analysis and Theories):** सभी आर्थिक विश्लेषण तथा सिद्धांतों का निर्माण आर्थिक सन्तुलन को मद्देनज़र रखते हुए ही किया जाता है। इस प्रकार सन्तुलन का महत्व केवल व्यावहारिक ही नहीं बल्कि सैद्धान्तिक महत्व भी है।

10. **वित्तीय बाज़ार में महत्व (Importance in Financial Market):** मुद्रा–बाज़ार तथा पूँजी बाज़ार, जिनको मिलाकर वित्तीय बाज़ार कहा जाता है इन में सन्तुलन की धारणा का विशेष महत्व है। इन बाज़ारों में असन्तुलन होने से कीमतें, ब्याज–दरों आदि में परिवर्तन होता है जिनके अनेक आर्थिक प्रभाव होते हैं।

सन्तुलन की धारणा केवल काल्पनिक तथा सैद्धान्तिक हो सकती है क्योंकि वास्तविक जगत् में इसको प्राप्त करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। इसका कारण यह है कि वास्तविक जगत् में आर्थिक परिस्थितियां निरन्तर परिवर्तित होती रहती हैं, परन्तु फिर भी सन्तुलन एक आदर्श स्थिति होने के कारण इसका आर्थिक विश्लेषण में विशेष महत्व है। आर्थिक समस्याओं के अध्ययन में यह केन्द्र–बिन्दु (Focal Point) का कार्य करता है।

प्रश्न
(Questions)

I. निबन्ध रूपी प्रश्न
(Essay Type Questions)

1. अर्थशास्त्र में सन्तुलन की व्याख्या कीजिए। वह कितने प्रकार का होता है? आर्थिक विश्लेषण में इसका महत्व बताओ। Explain the meaning of equilibrium as used in economics. What are its kinds? Give its significance in economic analysis.

2. सन्तुलन की धारणा से आपका क्या अभिप्राय है? आर्थिक विश्लेषण में सन्तुलन का महत्व बताओ। What do you mean by concept of equilibrium? Explain its significance in economic analysis.

3. Explain Walrarian Model of General Equilibrium.

4. What is general equilibrium? How the different parts of an economy are inter-related?

II. लघु उत्तर प्रश्न
(Short Answer Type Questions)

1. सन्तुलन तथा असन्तुलन की धारणा की व्याख्या कीजिए।
What is meant by the concept of equilibrium and disequilibrium.

2. सन्तुलन के निम्न प्रकारों की रेखाचित्र तथा उदाहरण की सहायता से व्याख्या करें (1) स्थिर (2) अस्थिर (3) तटस्थ।
Explain the following types of Equilibrium with the help of a diagram and example.
(1) Stable (2) Unstable (3) Neutral

3. अल्पकलीन तथा दीर्घकालीन सन्तुलन में अन्तर बताइये।
Differentiate between short run and long run equilibrium.

4. स्थिर तथा अस्थिर सन्तुलन में विभेद कीजिए।
Distinguish between stable and unstable equilibrium.

5. सक्षिप्त टिप्पणी लिखिए (i) आंशिक सन्तुलन (ii) सामान्य सन्तुलन (iii) अनेक वित्तीय सन्तुलन।
Write short notes on (i) Partial Equilibrium (ii) General Equilibrium (iii) Multiple Equilibrium.

6. अगत्यात्मक तथा गत्यात्मक सन्तुलन में अन्तर बताइए।
Differentiate between Static and Dynamic Equilibrium.

7. स्थैतिक तथा तुलनात्मक स्थैतिक में अन्तर बताएँ।
Differentiate between Static and comparative static equilibrium.

8. अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंग कैसे अन्तःनिर्भर हैं?
How are different parts of an economy interdependent?

III. वस्तुनिष्ठ प्रश्न तथा उनके उत्तर
(Objective Type Questions)

(i) बताइये कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत।
State if the following Statements are true or false?

1 यदि परिवर्तन के पश्चात् प्रारम्भिक अवस्था पुनः प्राप्त होती है तो सन्तुलन स्थायी होता है।
The equilibrium is unstable if the initial position is not regained after the change.

2. यदि कोई व्यवस्था अपनी प्रारम्भिक स्थिति से हटाने के पश्चात् उस स्थिति से दूर होती है जाती है तो यह स्थिति अस्थिर सन्तुलन की है।
The equilibrium is said to be unstable if the system moves away further and further from its initial position.

3. सामान्य सन्तुलन एक ऐसी स्थिति है जिसमें किसी आर्थिक इकाई में परिवर्तन की प्रवृत्ति नहीं पाई जाती।
General Equilibrium is a situation in which no economic unitd has a tendency to change.

4. आंशिक सन्तुलन एक ऐसी स्थिति है जिसमें सभी आर्थिक इकाइयां सन्तुलन में होती है।
Partial Equilibrium is a situation in which all economic units are in equilibrium.

5. अर्थशास्त्र में सन्तुलन से अभिप्राय गति में परिवर्तन की प्रवृत्ति की अनुपस्थिति से है।
In Economics equilibrium means absence of the tendence of change in movement.

6. सन्तुलन शब्द दो लैटिन शब्दों Acquus तथा Libra से लिया गया है।
The term equilibrium has been derived from two Latin words, Acquus and Libra

अध्याय-4

मांग फलन तथा मांग का नियम
(Demand Function and Law of Demand)

अर्थशास्त्र में मांग की धारणा अति महत्वपूर्ण हैं। व्यष्टि अर्थशास्त्र में मांग के बिना उपभोक्ता का संतुलन, उद्योग का संतुलन, कीमत का निर्धारण, व्यवसाय (Business) आदि सभी असंभव कार्य हैं। समष्टि अर्थशास्त्र में भी मांग की धारणा कुल मांग Aggregatie Demand के रूप में आय तथा रोजगार के निर्धारण में प्रयोग की जाती है। इसलिए मांग की धारणा अति–आवश्यक तथा उपयोगी होने के कारण इसका विस्तृत विश्लेषण निम्न प्रकार से किया गया है:

मांग का अर्थ
(Meaning of Demand)

साधारणतः इच्छा, आवश्यकता तथा मांग शब्दों का एक ही अर्थ समझा जाता है। ये शब्द एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग किए जाते हैं या ये एक दूसरे के विकल्प (Alternatives) समझे जाते हैं। परंतु अर्थशास्त्र में मांग शब्द का प्रयोग विशेष अर्थ को प्रकट करता है।

इच्छा (Desire) किसी वस्तु को प्राप्त करने की लालसा (Temptation) मात्र होती है तथा इसको पूरा करने के लिए उपभोक्ता या मनुष्य के पास साधन होना आवश्यक नहीं होते हैं। मान लीजिए आप कार खरीदना चाहते हैं परंतु आप के पास उसको खरीदने के लिए धन या साधन नहीं हैं तो आपकी यह चाहत केवल इच्छा (Desire) ही रहेगी मांग नहीं। यदि आपके पास धन भी है परंतु आप उस धन को कार पर खर्च करने को तैयार नहीं है तो यह इच्छा आपकी आवश्यकता (want) मात्र ही कहलाएगी मांग नहीं। यह इच्छा मांग का रूप तभी धारण कर सकती है जब आप कार की निश्चित कीमत तथा निश्चित समय पर धन खर्च करने को तैयार होते हों या इसको खरीदने के लिए तैयार हो जाते हैं।

मांग किसी पदार्थ की वह मात्रा होती है जिसको उपभोक्ता एक निश्चित कीमत पर तथा एक निश्चित समय बिन्दु पर खरीदने के लिए तैयार होता है। (Demand is the quantity of a commodity which a consumer is not only desiring to purchase and able to purchase but is also ready to purchase at a given price and point of time)

अतः मांग के पांच प्रमुख तत्व हैं:

(i) पदार्थ की निश्चित मात्रा प्राप्त करने की इच्छा।

(ii) क्रय शक्ति या धन का होना।

(iii) धन को खर्च करने के लिए तत्परता।

(iv) वस्तु की दी हुई कीमत।

(v) मांगी गई मात्रा का समय।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते हैं कि प्रत्येक मांग (Demand) इच्छा भी होती है, परंतु प्रत्येक इच्छा (Desire) मांग नहीं होती है। इन तीनों का तुलनात्मक अध्ययन करने से ज्ञात होगा कि इच्छाओं का क्षेत्र सबसे बड़ा है तथा मांग का क्षेत्र सबसे छोटा है।

मांग की परिभाषाएं
(Definitions of Demand)

(1) फर्गूसन के अनुसार, "अन्य बातें समान रहने पर मांग एक वस्तु की उन विभिन्न मात्राओं को व्यक्त करती है जिनको उपभोक्ता प्रत्येक संभव कीमत पर तथा एक निश्चित समय अवधि के अंतर्गत खरीदने के इच्छुक तथा योग्य होते हैं।" (Demand refers to the quantities of a commodity that the consumers are able and willing to buy at each possible price during a given period of time, other things being equal. – Ferguson).

(2) प्रो. बेन्हम के अनुसार, "किसी वस्तु की मांग उस वस्तु की वह मात्रा है जो उसकी दी हुई कीमत तथा निश्चित समय पर खरीदी जाएगी।" (The demand for anything at a given price is the amount of it which will be bought per unit of time at that price. – Benham)

संक्षेप में, किसी वस्तु की मांग उस वस्तु की वह मात्रा होती है जिसको उपभोक्ता उस वस्तु की निश्चित कीमत तथा निश्चित समय पर खरीदने के लिए तैयार होते हैं। अतः मांग का संबंध हमेशा एक निश्चित कीमत तथा समय से होता है। (Demand is always at a given price and time).

मांग के प्रकार
(Types of Demand)

मांग मुख्यतः छः प्रकार की हो सकती है:

1. **कीमत मांग (Price Demand):** कीमत मांग किसी वस्तु की वह मात्रा होती है जिसका संबंध उसकी कीमत से ही स्थापित किया जाता है। यद्यपि किसी वस्तु की मांग अन्य बातों जैसे उपभोक्ता की आय, जनसंख्या आदि से भी संबंधित तथा प्रभावित होती है, परंतु कीमत मांग का अध्ययन करते समय इन अन्य बातों को स्थिर मान लिया जाता है। अतः अन्य बातें समान रहने पर जब किसी वस्तु की मांग तथा उस वस्तु की कीमत में संबंध व्यक्त किया जाता है तो वह कीमत मांग कहलाती है। (Price demand expresses the relationship between the price and demand for a commodity) कीमत मांग फलन (Price demand function) को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है:

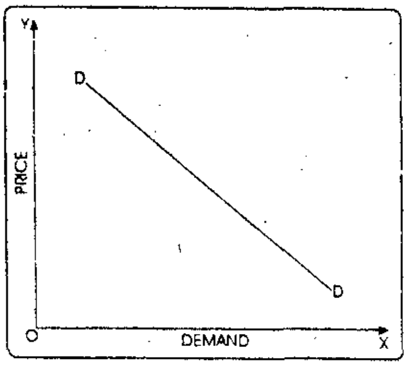

चित्रः 1

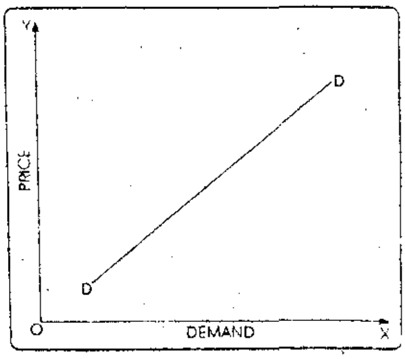

चित्रः 2

$$D_A = f(P_A)$$

Demand for commodity 'A' is a function of Price of A

सामान्यतः किसी वस्तु की मांग तथा कीमत में व्युत्क्रम या विपरीत (inverse relationshiip) संबंध पाया जाता है। अर्थात् कीमत कम होने पर मांग बढ़ती है तथा कीमत बढ़ने पर मांग घटती है। इस संबंध के अनुसार मांग वक्र दायीं ओर नीचे को झुकता है जैसा की चित्र 1 में दर्शाया गया है। सामान्य वस्तुओं के संबंध में ऐसा ही देखा गया है कि वस्तु की कीमत तथा मांग में विपरीत संबंध होता है।

परंतु कई बार उपरोक्त संबंध इसके विपरीत होता है। विशेष परिस्थितियों में ऐसा देखा गया है कि किसी वस्तु की कीमत कम होने पर मांग भी कम तथा कीमत बढ़ने पर मांग भी बढ़ जाती है। ऐसी अवस्था में मांग वक्र दायीं ओर ऊपर को उठता हुआ होता है जैसे चित्र 2 में दर्शाया गया है। ऐसा उस समय होता है:

(i) जब वस्तु की कीमत को ही वस्तु के गुण का सूचक मान लिया जाता है।

(ii) कीमत गिरने पर इसके और गिरने की आशा हो या कीमत बढ़ने पर इसके और बढ़ने की आशा हो,

(iii) अधिक घटिया वस्तुओं जैसे कि गिफ्फन पदार्थों (Giffen's Goods) के मामले में भी ऐसा ही होता है।

2. **आय मांग (Income Demand):** अन्य बातें समान रहते हुए जब उपभोक्ता की आय तथा किसी वस्तु की मांग में संबंध व्यक्त किया जाता है तो उसे आय मांग कहते हैं। (Income demand expresses the relationship between income of the consumer and demand for a commodity.) अतः मांग आय का फलन होता है। (Demand is a function of income):

$$D_x = f(y)$$

अर्थात् Demand for Commodity X is a function of income (Y) of the consumer

अन्य बातें समान रहने पर सामान्यतः उपभोक्ता की आय तथा किसी वस्तु की मांग का घनात्मक संबंध (+ ve Relation) होता है। अर्थात् आय कम होने पर मांग भी कम तथा आय बढ़ने पर मांग भी अधिक की जाती है। जैसा कि चित्र 3 में दर्शाया गया है।

उपभोक्ता की आय तथा वस्तु की मांग में यह घनात्मक संबंध प्रायः सामान्य वस्तुओं के मामले में पाया जाता है। परंतु कई बार वस्तुएं सामान्य वस्तुएं नहीं होती हैं। अनेक वस्तुएं ऐसी होती हैं जिनको घटिया वस्तु का दर्जा दिया

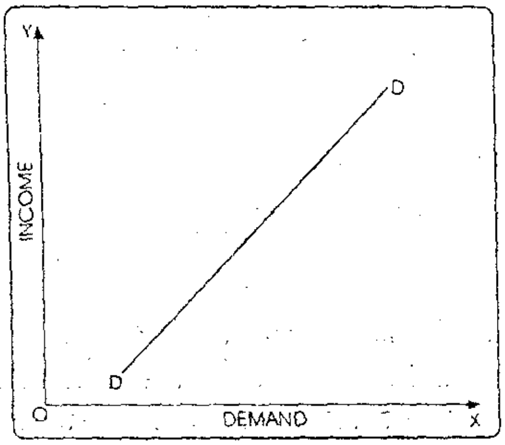

चित्रः 3

जाता है, जैसे चीनी की तुलना में गुड़, देशी घी की तुलना में सरसों का तेल, गेहूं की तुलना में बाजरा, ज्वार आदि घटिया वस्तुएं हैं। इन घटियां वस्तुओं को कम आय वाले गरीब व्यक्ति ही खरीदते हैं। ज्यों ही इन गरीब लोगों की आय बढ़ती है तो वे इन घटिया वस्तुओं की मांग कम कर देते हैं तथा बढ़िया वस्तुओं की मांग बढ़ा देते हैं। ऐसी घटिया

या निम्न कोटि की वस्तुओं को गिफ्फन वस्तुएं (Giffen Goods) कहा जाता है। इनको गिफ्फन वस्तुएं इसलिए कहा जाता है क्योंकि गिफ्फन नामक अर्थशास्त्री ने इनका अध्ययन किया था। इन वस्तुओं की मांग और उपभोक्ता की आय में विपरीत संबंध चित्र 4 द्वारा दर्शाया गया है।

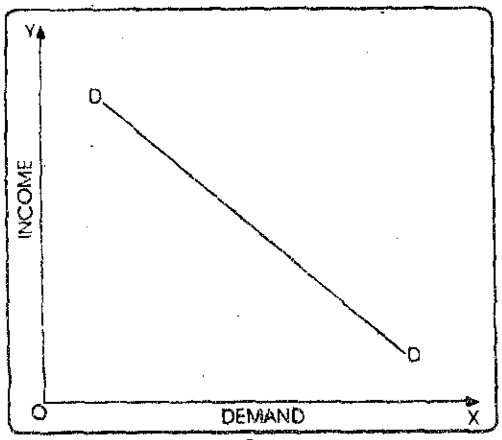

चित्र: 4

जब निम्न आय वाले उपभोक्ता की आय बढ़ती है तो वे इन पदार्थों की मांग कम कर देते हैं क्योंकि वे इन के स्थान पर बढ़िया वस्तुएं खरीदते हैं। इसके विपरीत ज्यों उपभोक्ता की आय कम होती है, तो वे गिफ्फन पदार्थों की मांग बढ़ा देते हैं क्योंकि वे सस्ती होती हैं, तथा बढ़िया वस्तुओं की मांग गिरा देते हैं। उपभोक्ता के ऐसे व्यवहार को गिफ्फन विरोधाभास (Giffen's Paradox) कहा जाता है।

3. **क्रॉस/तिरछी मांग (Cross Demand):** जब एक वस्तु की मांग का किसी अन्य वस्तु की कीमत से संबंध स्थापित किया जाए तो वह तिरछी मांग (Cross -Demand) कहलाती है। इसको इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि अन्य बातें समान रहने पर जब एक वस्तु की मांग तथा अन्य वस्तु की कीमत में संबंध स्थापित किया जाता है तो उसे तिरछी मांग कहती हैं। अर्थात् एक वस्तु की मांग किसी अन्य वस्तु की कीमत का फलन होती है:

$$D_x = f(P_y)$$

Demand for commodity 'X' is a function of price of commodity 'Y' अतः तिरछी मांग (Cross Demand) दो संबंधित वस्तुओं की कीमत तथा उनकी मांग में संबंध को व्यक्त करती है। संबंधित वस्तुएं दो प्रकार की होती हैं:

(i) **स्थानापन्न वस्तुएं (Substitute Go ods)**

(ii) **पूरक वस्तुएं (Complementary Goods)**

(i) ***स्थानापन्न वस्तुओं की मांग (Demand for Substitute Goods):*** जब वस्तुएं एक दूसरी वस्तु का स्थान ग्रहण कर सकती हों वे स्थानापन्न वस्तुएं कहलाती हैं। जैसे चाय–कॉफी, लक्स–रैक्सोना साबुन, कोका कोला–कैम्पा कोला, कोलगेट–बिनाका दंत क्रीम आदि पदार्थ एक दूसरे के प्रतिस्थापन्न पदार्थ हैं। प्रतिस्थापन्न पदार्थों के संबंध में ऐसा होता है कि जब कभी उनमें से किसी एक वस्तु की कीमत कम हो जाती है तो दूसरी वस्तु की मांग कम होती है। जैसे, यदि चाय की कीमत कम हो जाती है तो कॉफी की मांग कम हो जाएगी, क्योंकि लोग कॉफी की मांग कम कर देंगे तथा इसके स्थान पर चाय की मांग बढ़ा देंगे। अतः स्थानापन्न वस्तुएं के बीच कीमत और मांग का घनात्मक सह–संबंध (Positive Corelation) पाया जाता है। ऐसी वस्तुओं का मांग वक्र हमेशा बाएं से दाएं ऊपर को उठता हुआ होता है। चित्र 5 में यह संबंध स्पष्ट किया गया है।

(ii) ***पूरक वस्तुओं की मांग (Demand for Complementary Goods):*** जब वस्तुएं एक साथ ही प्रयोग की जा सकती हों तथा एक के बिना दूसरी निरर्थक हो तो वे पूरक वस्तुएं कहलाती हैं। जैसे, कार–पैट्रोल, सुई–धागा, पैन–स्याही आदि परस्पर पूरक वस्तुएं हैं। इन वस्तुओं का कीमत तथा मांग का संबंध इस प्रकार का होता है

कि जब एक की कीमत गिरती है तो इसकी पूरक वस्तु की मांग का ऋणात्मक सह–संबंध (Negative co-relation) पाया जाता है। ऐसी स्थिति में मांग वक्र बाएं से दाएं नीचे की ओर झुकता हुआ होगा। पूरक वस्तुओं की कीमत और मांग का संबंध चित्र 6 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

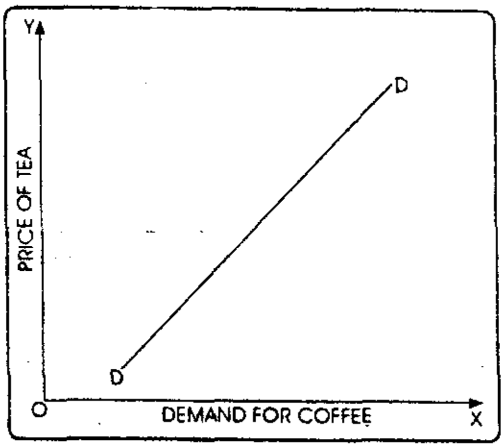

चित्र: 5

4. **संयुक्त मांग (Joint Demand):** किसी एक आवश्यकता को संतुष्ट करने के लिए जब अनेक वस्तुओं की मांग एक साथ की जाती है तो उन वस्तुओं की मांग संयुक्त मांग कहलाती है। जैसे चाय बनाने या तैयार करने के लिए चीनी, चायपत्ती, पानी तथा अग्नि की मांग एक साथ करनी पड़ती है। इसको चित्र 7 द्वारा दर्शाया गया है।

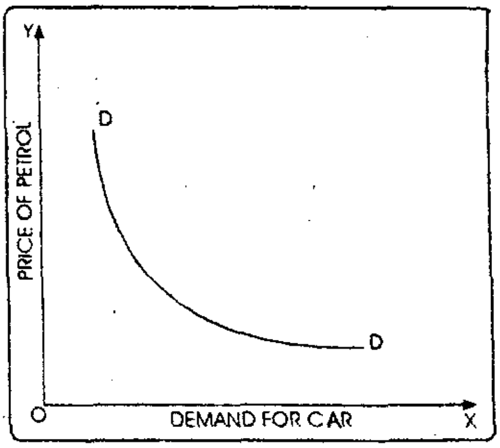

चित्र: 6

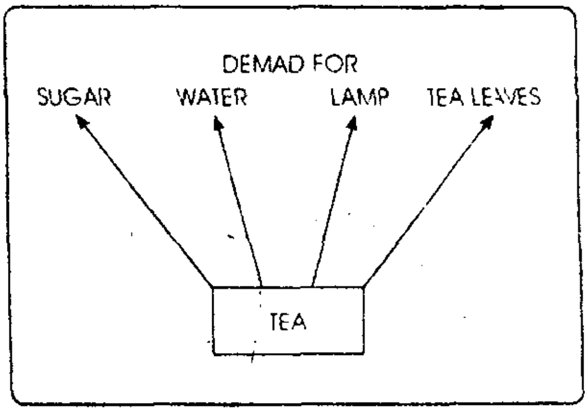

चित्र: 7

5. **सामूहिक मांग (Composite Demand):** जब एक वस्तु की मांग अनेक उपयोगों के लिए की जाती है तो वह सामूहिक मांग कहलाती है। जैसे दूध की मांग दही बनाने, दूध पीने, मिठाई बनाने, चाय बनाने आदि के लिए सामूहिक तौर पर की जाती है। इस प्रकार की मांग चित्र 8 में दर्शाई गई है।

चित्र: 8

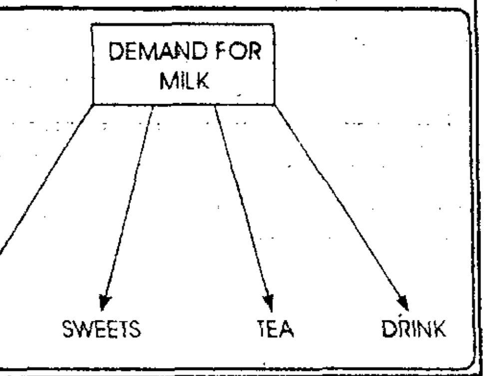

6. **प्रत्यक्ष एवं परोक्ष मांग (Direct and Indirect or Derived Demand):** जब वस्तुओं की मांग उपभोक्ताओं को सीधी (Direct) संतुष्टि प्रदान करती है तो वह प्रत्यक्ष मांग कहलाती है। जैसे पहनने के लिए कोट की मांग, जूते की

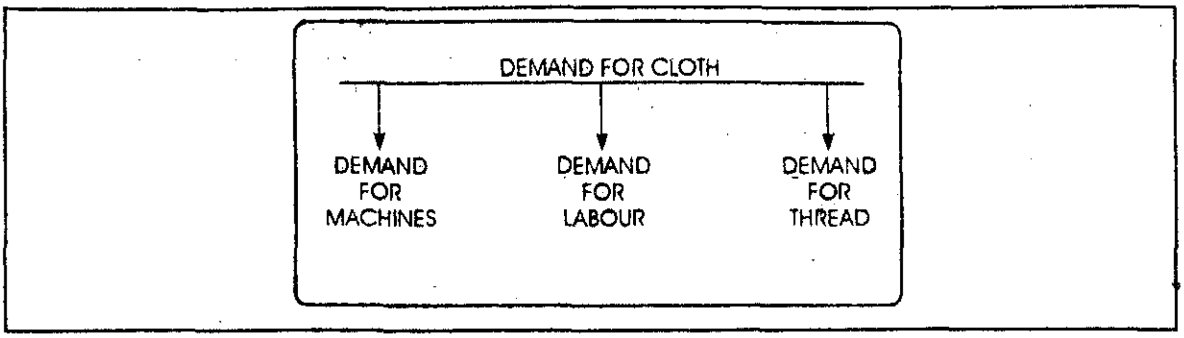

चित्र: 9

मांग आदि, खाने के लिए भोजन की मांग, फल की मांग, कपड़े की मांग आदि सभी प्रत्यक्ष मांग कहलाती है। परंतु कुछ वस्तुओं व सेवाओं की मांग में वृद्धि करती है। जैसे कपड़े की मांग से मशीनों की मांगए मजदूरों की मांग, आय की मांग आदि उत्पन्न होती हैं। मशीनों की मांग, धागे की मांग, मजदूरों की मांग आदि परोक्ष मांग कहलाती हैं। यह चित्र 9 में दर्शाया गया है।

7. **स्वतंत्र और प्रेरित मांग (Autonomous and Induced Demands):** जब किसी वस्तु की मांग किसी मुख्य वस्तु की मांग से जुड़ी (Tied) हो तो यह प्रेरित मांग (Induced Demand) कहलाती है, जैसे सीमेंट की मांग, मकानों की मांग से बंधी तथा जुड़ी हुई है। पुरक पदार्थों की मांग भी प्रेरित मांग है जैसे पेट्रोल की मांग कार की मांग से प्रेरित होती है। स्वतंत्र मांग प्रेरित या मांग से निकली मांग (Derived Demand) नहीं होती है। वैसे ऐसी मांग वाली वस्तुओं को बताना कठिन है, क्योंकि किसी भी अकेली वस्तु का उपभोग स्वतंत्र रूप से नहीं किया जाता है। फिर भी प्रत्यक्ष मांग वाली वस्तुओं जैसे जूता, दूध की मांग आदि को स्वतंत्र मांग (Autonomous Demand) कहा जा सकता है।

8. **अंतिम तथा मध्यस्थ मांग (Final and Intermediate Demands):** कच्चे माल या ऐसी वस्तुओं की मांग जिनका उत्पादन में आगे प्रयोग होता है मध्यस्थ मांग कहलाती है। इसके विपरीत ऐसी वस्तुओं की मांग जिनका प्रत्यक्ष उपभोग किया जाता है अंतिम मांग कहलाती है।

9. **कंपनी तथा उद्योग मांग (Company and Industry Demands):** एक उद्योग एक ही प्रकार की सभी फर्म या कंपनियों (Companies) का जोड़ होता है। इसलिए कंपनी की मांग व्यक्तिगत मांग के समान होती है। जबकि उद्योग की मांग (Industry Demand) उद्योग की सभी कंपनियों की मांग का जोड़ (Aggregate) होता है।

मांग का निर्धारण
(Specification of Demand)

हम किसी वस्तु की मांग उस वस्तु का उपभोग (Consumption) करने के लिए ही करते हैं। आवश्यकता की संतुष्टि के लिए किसी वस्तु (विशेषकर इसके तुष्टिगुण) का प्रयोग उपभोग कहलाता है। आर्थिक शब्दों में उपभोक्ता के लिए वस्तु में तुष्टिगुण होता है, अर्थात् वस्तु में उपभोक्ता के लिए उपयोगिता (Value in use) होती है। जब तक वस्तु में उपयोगिता नहीं होती कोई भी उपभोक्ता उसको प्राप्त करने के लिए त्याग (Sacrifice) करने को तैयार (Willingness to pay) नहीं होता है क्योंकि उपयोगिता के बिना वस्तु से संतुष्टि (Satisfaction) प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिए उपभोक्ता हमेशा उपयोगिता वाली वस्तु के लिए ही कुछ त्याग करने को तैयार होता है। वस्तु के लिए कीमत के रूप में कितना त्याग किया जाता है यह वस्तु की उपयोगिता (Value-in-use) पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि उस वस्तु की दुर्लभता (Value in exchange) पर भी निर्भर करता है। यदि किसी वस्तु में उपयोगिता अधिक है तथा वह अधिक दुर्लभ है तो उस वस्तु की कीमत भी अधिक देनी होगी। सेवाओं पर भी यही सिद्धांत लागू होता है। इस प्रकार किसी वस्तु की मांग उस वस्तु की उपयोगिता (Value-in-use) तथा दुर्लभता (Value in exchange) दोनों को व्यक्त कर रही होती है। मांग की गहनता (Intensity) उस वस्तु की दी गई कीमत के रूप में स्वतः व्यक्त होती है। प्रायः यह सुनने को मिलता है कि:

'Demand is alwasy at a price'

परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि मांग केवल कीमत द्वारा ही निर्धारित होती है। मांग के कुछ और निर्धारत तत्त्व भी हैं। मांग के आकार (Size of Demand) के निर्धारक तत्व आर्थिक विश्लेषण की विषय–सामग्री का एक महत्वूपर्ण अंग हैं:

मांग फलन तथा मांग वक्र
(Demand Function and Demand Curve)

वस्तुतः वस्तु की मांग अनेक तत्वों पर निर्भर करती है। मांग फलन (Demand function) उन तत्वों को निश्चित (specifies) करता है जो किसी एक वस्तु की मांग को निर्धारित करते हैं उदाहरणतः

$D_x = f(P_x, P_y, P_z, I, W, A, E, T, C, U)$

Here D_x = X वस्तु की मांग जैसे कार आदि

P_x = X वस्तु की कीमत

P_y = X की प्रतिस्थापन वस्तु (Substitute) की कीमत

Pz = X की पूरक (Complementary) वस्तु Z की कीमत

I = क्रेता (user/consumer) की आय

W = क्रेता का धन

A = वस्तु (कार) की विज्ञापन

E = वस्तु (कार) की कीमत में परिवर्तन संबंधी क्रेता की आशा

T = क्रेता की वस्तु (कार) के लिए रुचि

C = जलवायु

U = अन्य दूसरे सभी तत्व जो वस्तु (कार) की मांग को प्रभावित कर सकते हैं।

सामान्य परिस्थितियों में उपरोक्त सभी तत्व (Factors) वस्तु की मांग पर सकारात्मक या नकारात्मक प्रभाव छोड़ते हैं।

उदाहरणतः

X वस्तु की मांग का इसकी अपनी कीमत (Px) से व्युत्क्रम या विपरीत संबंध होता है। ज्यों X या किसी वस्तु की कीमत गिरती है, मांग बढ़ने की प्रवृति रखती है तथा ज्यों कीमत बढ़ती है तो मांग गिरने की प्रवृत्ति रखती है। यदि X, वस्तु की कीमत में कमी को ∂P_x द्वारा तथा मांग वृद्धि को ∂D_x द्वारा प्रकट किया जाए तो इस संबंध को गणितीय ढंग (Mathematical Technique) से निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:

$$\frac{\partial D_x}{\partial P_X} < 0 \qquad ...(1)$$

समीकरण (1) वस्तु की मांग पर कीमत प्रभाव (Price effect) को दर्शाता है जिसको कीमत–मांग संबंध (Price-demand relation) कहा जाएगा। उदाहरणतः यदि X वस्तु की कीमत में 10% की कमी ($\partial P_x = 10\%$) होने का कारण X वस्तु की मांग 20% से बढ़ ($\partial P_x = +20\%$) जाती है, अर्थात्

$$\text{कीमत प्रभाव} = \frac{+20\%}{-10\%} = -2 < 0 \qquad ...(2)$$

इसके विपरीत X वस्तु की कीमत 10% बढ़ ($\partial P_x = +10\%$) जाती है तथा इसके परिणामस्वरूप मांग 5% कम ($\partial P_x = -5\%$) हो जाती है, अर्थात्:

$$\text{कीमत प्रभाव} = \frac{-5\%}{+10\%} = -\frac{1}{2} < 0$$

अतः हर अवस्था में कीमत प्रभाव या कीमत मांग संबंध (Price-demand relation) नकरात्मक या विपरीत है। अर्थात् कीमत घटती है तो मांग बढ़ती है तथा कीमत बढ़ती है तो मांग गिरने की प्रवृत्ति रखती है।

उपभोक्ता की आय या बजट की स्थिति एक अन्य महत्त्वपूर्ण तत्त्व या चर है जो मांग को प्रभावित करता है। ज्यों–ज्यों आय बढ़ती है लोग सामान्य वस्तु (Normal Good) की अधिक मात्रा खरीदते हैं। इस प्रकार सामान्य वस्तु की मांग पर आय प्रभाव घनात्मक होता है। अर्थात् आय बढ़ती है तो मांग भी बढ़ती है तथा आय गिरती है तो वस्तु की मांग भी गिर जाती है। इसको मांग पर आय प्रभाव (Income effect) या आय मांग, संबंध कहा जा सकता है। इसको गणितिय ढ़ंग से निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

$$\text{आय प्रभाव} = \frac{\partial D_x}{\partial B} > 1 \qquad ...(2)$$

समीकरण (2) व्यक्त करता है कि उपभोक्ता की आय में वृद्धि (∂B) से X वस्तु की मांग में भी वृद्धि (∂D_x) होती है, अर्थात् $\frac{\partial D_x}{\partial B} > 1$ होती है। मान लीजिए आय 5% में बढ़ती ($\partial B = +5\%$) है तो इस कारण X वस्तु की मांग 2% से बढ़ती है ($\partial Dx = +2\%$) है तो इसका शुद्ध परिणामः

$$\text{आय प्रभाव } \frac{+2\%_x}{+5\%} = \frac{2}{5} > O; \text{ अर्थात् संबंध घनात्मक है।}$$

इसी प्रकार वस्तु की मांग पर अन्य तत्वों के प्रभावों का भी विश्लेषण किया जा सकता है। जैसे धन (W) की मात्रा में परिवर्तन का वस्तु की मांग पर प्रभाव घनात्मक $\left(\frac{\partial D_x}{\partial W} > 1\right)$ होगा। अर्थात् ज्यों किसी व्यक्ति का धन बढ़ता है तो वह वस्तु की मांग भी अधिक करता है तथा धन की मात्रा कम होने पर वह वस्तु की मांग भी कर देता है आदि–आदि।

अतः अब स्पष्ट है कि मांग के अनेक निर्धारक तत्व (Determininants) हैं जिनको स्पष्ट रूप से मांग फलन में स्पष्ट किया गया है। मांग के अध्ययन को सरल बनाने के दृष्टिकोण से इन सभी निर्धारकों को दो भागों में बांटा जाता है। (i) वस्तु (जिसकी मांग का अध्ययन किया जा रहा है) की अपनीकीमत, तथा (ii) अन्य तत्व (Factors) जो उस वस्तु की मांग को प्रभावित करते हैं।

मांग वक्र (Demand curve): मांग वक्र वस्तु की केवल अपनी कीमत तथा उसी वस्तु की मांग के संबंध को प्रकट करता है अन्य तत्वों (Other things) को स्थिर मानता है। यह कीमत मांग संबंध (Price-demand relation) एक अनुसूची, जिसको मांग अनुसूची कहा जाता है, के रूप में दर्शाया जा सकता है तथा इन अनुसूची (Table) के आंकड़ों को चित्र में ढ़ाल कर मांग वक्र (Demand curve) की आकृति दी जा सकती है। अन्य शब्दों में एक सामान्य मांग फलन एक बहु–चर (Multivariate) फलन है जबकि मांग वक्र एक एकांकी चर फलन (a single variable function) है। अतः मांग वक्र को निम्न मांग फलन (Demand function) के रूप में दर्शाया जा सकता है:

$$D_x = D(P_x)$$

अर्थात् X वस्तु की मांग X वस्तु की कीमत पर निर्भर करती है। (Demand for X is the function of price of X). हम जानते है कि X वस्तु की मांग X वस्तु की कीमत से विपरीत संबंध रखती है। यह कहा जा सकता है कि अन्य बातें समान रहने पर

ज्यों कीमत बढ़ती है, मांग का संकुचन होता है तथा ज्यों–ज्यों कीमत गिरती है तो मांग का विस्तार होता है। कीमत मांग के संबंध को निम्न मांग तालिका (Demand Schedule) व मांग वक्र द्वारा प्रकट किया जा सकता है:

(तालिका: 1)

मांग तालिका P_x (in Rs.)	(Demand Schedule D_x (in units)
5	0
4	2
3	4
2	6
1	8
0	10

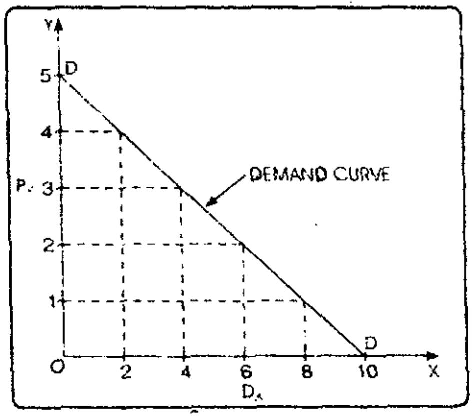

चित्र: 10

चित्र 10 में DD मांग वक्र एक सरल रेखीय मांग वक्र है, जिसको सरल रेखीय मांग फलन Linear Demand Function) भी कहा जा सकता है। सरल रेखीय मांग फलन को निम्न समीकरण द्वारा दर्शाया गया है:

$$D_x = \alpha + \beta P_x$$

α (intercept) है जो व्यक्त करता है कीमत के शून्य होने पर मांग की कुल मात्रा क्या है। यह उपरोक्त मांग वक्र में 10 इकाई है।

β मांग वक्र DD के ढाल (Slope) को प्रकट करता है जो नकारात्मक (Negative) है। वक्र का ढ़ाल हमेशा आधार लंब के सूत्र द्वारा निकालना जाता है। इसलिए उपरोक्त मांग पर β (Slope) $-\frac{5}{10} = -.5$ होगा।

मांग तथा कीमत का संबंध मांग के नियम (Law of Demand) के रूप में दर्शाया जाता है।

मांग वक्र निकझलने संबंधी समस्याएं
(Difficulties Relating to Drawing a Demand curve)

मांग वक्र मांग तालिका के आधार पर निकाला जाता है। परंतु मांग तालिका तैयार करते समय निम्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

1. यह सही–सही ज्ञात करना बड़ा कठिन है कि विभिन्न कीमतों पर वस्तु की वास्तविक मांग कितनी होगी। वस्तुतः पिछले अनुभवों के आधार पर अनुमान ही लगाया जा सकता है कि वस्तु की किस कीमत पर कितनी मांग होगी। परंतु अनुमान पूर्ण सही नहीं होते।

वर्तमान में परिस्थितियां बदल चुकी होती हैं। जो मांग को प्रभावित करती है। इसलिए भूतकाल के अनुभव वर्तमान और भविष्य की मांग तथा कीमत का सही संबंध प्रकट नहीं कर सकते।

मांग तालिका तथा मांग वक्र तैयार करते समय यह कल्पना की जाती है कि वस्तु की कीमत के अतिरिक्त अन्य बातें समान रहती हैं। परंतु वास्तव में वे समान नहीं रहतीं, जैसे उपभोक्ता की आय, रुचि आदि बदलती रहती है। ये भी मांग को प्रभावित करती है।

अतः मांग तालिका तथा मांग वक्र कल्पना के आधार पर ही तैयार किए जा सकते हैं।

मांग का नियम
(Law of Demand)

मांग का नियम अति महत्वूपर्ण नियम है। यह कीमत तथा मांग के विपरीत संबंध (Inverse Relationship) को व्यक्त करता है। मांग का नियम जांच करता है कि वस्तु की केवल कीमत में परिवर्तन का उस वस्तु की मांग पर क्या प्रभाव पड़ता है। इसमें मांग को प्रभावित करने वाले अन्य तत्वों या बातें जैसे उपभोक्ता की आय, उपभोक्ता का धन, संबंधित वस्तुओं की कीमतें, रुचि, फैशन आदि को समान या स्थिर मान लिया जाता है। मांग का नियम व्यक्त करता है कि यदि 'अन्य बातें समान रहे' तो वस्तु की कीमत घटने पर उसकी मांग का विस्तार होता है तथा वस्तु की कीमत बढ़ने पर उसकी मांग का संकुचन होता है। मांग के नियम को निम्न फलन द्वारा ही प्रकट किया जा सकता है:

$$D_x = f(P_X, \bar{P}_Y, \bar{P}_Z, \bar{I}, \bar{T} ....); \qquad \frac{\partial D_X}{\partial P_X} < 0$$

अर्थात् X वस्तु की मांग X वस्तु की कीमत का फलन है तथा संबंधित वस्तुओं की कीमतें (P_y, P_z), उपभोक्ता की आय (I) उपभोक्ता की रुचि आदि बातें स्थिर रहती हैं। फलन में जिन अक्षरों के ऊपर रेखा खींची गई है वह इन तत्वों के स्थिर मानने का सूचक है। अतः D_x is a function of P_X; where prices of related goods Y and Z (P_Y, P_Z), income (I) and taste (T) etc. remain constant. मांग फलन व्यक्त करता है कि X वस्तु की कीमत तथा मांग में विपरीत संबंध (inverse relationship) पाया जाता है। अर्थात् कीमत बढ़ती है तो मांग का संकुचन होता है तथा कीमत घटती है तो मांग का विस्तार होता है। इस नकारात्मक संबंध (Negative or Inverse relationship) को $\frac{\partial D_X}{\partial P_X} < 0$ के रूप में प्रकट किया गया है। अर्थात् ∂Px और ∂Dx इन दोनों में से एक नकरात्मक अवश्य होता है, इसलिए $\frac{\partial D_X}{\partial P_X} < 0$ होता है।

परिभाषाएं (Definitions)

1. डॉ. मार्शल के अनुसार, 'मांग का नियम व्यक्त करता है कि अन्य बातें समान रहने पर कीमत में कमी के कारण मांग बढ़ती है तथा कीमत में वृद्धि के कारण मांग कम हो जाती है। (The Law of Demand states that amount demanded increases with a fall in price and diminishes when price increases, other things being equal. – Marshal).
2. प्रो. सैम्युअलसन के अनुसार, "मांग का नियम व्यक्त करता है कि अन्य बातें समान रहने पर लोग कम कीमतों पर अधिक मात्रा खरीदेंगे तथा ऊंची कीमतों पर कम मात्रा खरीदेंगे (Law of demand states that peiople will buy more at lower prices and buy less at higher prices, other things remaining the same. – Samuelson)

मान्यताएं (Assumptions): मांग का नियम कुछ मान्यताओं पर आधारित है। यह नियम तभी लागू होता है जब ये मान्यताएं विद्यमान् हों। मांग के नियम की परिभाषा में 'अन्य बातें समान रहें' वाक्यांश इन मान्यताओं का द्योतक है। अतः मांग के नियम की कुछ मुख्य मान्यताएं निम्नलिखित हैं:

1. जिस वस्तु की मांग पर यह नियम लागू किया जा रहा है उस वस्तु से संबंधित वस्तुओं (प्रतिस्थापन्न तथा पूरक पदार्थों) की कीमतों में परिवर्तन नहीं होता।
2. उपभोक्ता की आय में कोई परिवर्तन नहीं होता।
3. उपभोक्ता के धन की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होता।
4. वस्तु के विज्ञापन में कोई परिवर्तन नहीं होता।
5. भविष्य में वस्तु की कीमत में परिवर्तन संबंधी आशा में कोई परिवर्तन नहीं होता।
6. उपभोक्ता की वस्तु के प्रति रुचि में कोई परिवर्तन नहीं होता।
7. जलवायु में कोई परिवर्तन नहीं होता।
8. जनसंख्या की मात्रा (size) स्थिर रहती है।
9. सरकार की आर्थिक नीतियों में कोई परिवर्तन नहीं होता।
10 देश में सामान्य परिस्थितियां होनी चाहिए।
11. सामान्य वस्तु (Normal Good) होनी चाहिए।

व्याख्या (Explanation)

मांग का नियम किसी वस्तु की कीमत तथा मांग में विपरीत संबंध को व्यक्त करता है। परंतु यह संबंध निश्चित रूप में व्यक्त नहीं किया जाता। अर्थात् यह संबंध आनुपतिक या गैर –आनुपातिक (Proportional or Nonproportional) दोनों हो सकता है। वस्तुतः मांग का नियम किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप मांग में होने वाले परिवर्तन की दिशा मात्र (only direction of change in demand) व्यक्त करता है। मांग के नियम की व्याख्या मांग तालिका तथा मांग वक्र द्वारा की जा सकती है:

मांग तालिका (Demand Schedule)

मांग तालिका (Table) वह तालिका है जो किसी वस्तु की विभिन्न कीमतों पर वस्तु की मांगी गई मात्राओं को प्रकट करती है। मांग तालिका दो प्रकार की होती है:

1. **व्यक्तिगत मांग तालिका (Individual Demand Schedule)**
2. **बाज़ार मांग तालिका (Market Demand Schedule)**

(1) **व्यक्तिगत मांग तालिका (Individual Demand Schedule):** व्यक्तिगत मांग तालिका वह तालिका है जो यह प्रकट करती है कि कोई एक व्यक्ति किसी वस्तु की विभिन्न कीमतों पर कितनी–कितनी मात्राओं की मांग करता है। (Individual demand schedule is a schedule which shows the different quantities of a commodity demanded by a single person at its different prices)

निम्न तालिका 2 व्यक्तिगत मांग तालिका है जो किसी समय किसी एक व्यक्ति द्वारा दूध की विभिन्न कीमतों पर मांगी गई मात्राओं को दर्शाती है।

तालिका 2: व्यक्तिगत मांग तालिका

दूध की प्रति किलो कीमत (रुपयों में)	दूध की मांग (किलो में)
25	1
20	2
15	3
10	4

तालिका 2 से स्पष्ट होता है कि ज्यों–ज्यों दूध की कीमत गिरती जाती है या दूध सस्ता होता जाता है तो एक व्यक्ति की दूध की मांग बढ़ जाती है। दूसरे शब्दों में ज्यों दूध की कीमत बढ़ती जाती है तो एक व्यक्ति दूध की कम मांग करता जाता है।

2. **बाज़ार मांग तालिका (Market Demand Schedule):** बाजार मांग तालिका वह तालिका होती है जो किसी वस्तु की विभिन्न कीमतों पर बाज़ार के सभी ग्राहकों द्वारा खरीदी गई मात्राओं को दर्शाती है। बाज़ार तालिका किसी वस्तु की बाज़ार में सभी व्यक्तियों की व्यक्तिगत मांग को जोड़ कर तैयार की जाती है। मान लो बाज़ार में A और B दो ही व्यक्ति हैं जो दूध की मांग करते हैं। दूध की विभिन्न कीमतों पर दोनों व्यक्तियों की व्यक्तिगत मांग को जोड़ कर बाज़ार मांग ज्ञात की गई है, जिसको बाज़ार मांग तालिका कहा जाता है। निम्न तालिका 3 में बाज़ार मांग तालिका दर्शाई गई है:

तालिका:3 बाज़ार मांग तालिका

दूध की कीमत (रु.)	'A' की मांग (किलो)	'B' की मांग (किलो)	बाज़ार मांग (किलो)
25	1	2	1 + 2 = 3
20	2	3	2 + 3 = 5
15	3	4	3 + 4 = 7
10	4	5	4 + 5 = 9

तालिका 3 स्पष्ट होता है कि जब दूध की कीमत 25 रु. प्रति किलो होती है तो 'A' उपभोक्ता 1 किलो और 'B' उपभोक्ता 2 किलो की मांग करता है। अतः इस कीमत पर बाज़ार मांग 3 (1+2) किलो होगी। जब कीमत गिरकर 20 रु. प्रति किलो होती है तो A की मांग बढ़ कर 2 किलो तथा B की मांग बढ़ कर 3 किलो हो जाती है, और बाज़ार मांग बढ़कर 5 (2+3) किलो हो जाती है, इत्यादि।

मांग वक्र (Demand Curve)

मांग वक्र वह वक्र है जो किसी वस्तु की विभिन्न कीमतों तथा मांगी गई मात्राओं में संबंध प्रकट करता है। प्रो. लेफ्टविच के अनुसार, "मांग वक्र उन अधिकतम मात्राओं को दर्शाता है जिन्हें उपभोक्ता समय की प्रति इकाई तथा विभिन्न कीमतों पर खरीदेंगे।"

(The demand curve represents the maximum quantitites per unit of time that consumers will take at various prices. – Prof. Leftwitch)

मांग तालिका को रेखाचित्र द्वारा प्रकट करने से मांग वक्र प्राप्त होता है। इसलिए मांग तालिका की भांति मांग वक्र भी दो प्रकार का होता है: 1. व्यक्तिगत मांग वक्र और 2. बाज़ार मांग वक्र।

1. **व्यक्तिगत मांग वक्र (Individual Demand Curve):** व्यक्तिगत मांग वह मांग वक्र होता है जो किसी वस्तु की विभिन्न कीमतों पर किसी एक व्यक्ति द्वारा उस वस्तु की मांगी गई मात्राओं को प्रकट करता है। यह व्यक्तिगत मांग तालिका के आधार पर निकाला जा सकता है। रेखाचित्र 11 तालिका 2 के अनुसार तैयार करके मांग वक्र निकाला गया है:

चित्र 11 में OX अक्ष पर वस्तु की मांगी गई मात्राएं तथा OY– अक्ष पर कीमत मापी गई हैं। DD व्यक्तिगत मांग वक्र है। DD मांग वक्र का प्रत्येक बिन्दु कीमत तथा मांग में संबंध दर्शाता है। इस चित्र में दर्शाया गया है कि जब कीमत 25 रु. है तो मांगी गई मात्रा 1 इकाई है तथा ज्यों–ज्यों कीमत गिरती जाती है तो मांग बढ़ती जाती है। अतः कीमत तथा मांग में नकारात्मक संबंध है। अर्थात् कीमत गिरती (Negative) है तो मांग बढ़ती है, तथा कीमत बढ़ती है तो मांग गिरती (Negative) होती है। अर्थात् दोनों (कीमत तथा मांग) में से एक नकारात्मक होता है। इसलिए कीमत–मांग संबंध नकारात्मक होता है। इसका ढ़ाल नीचे दाईं ओर होता है।

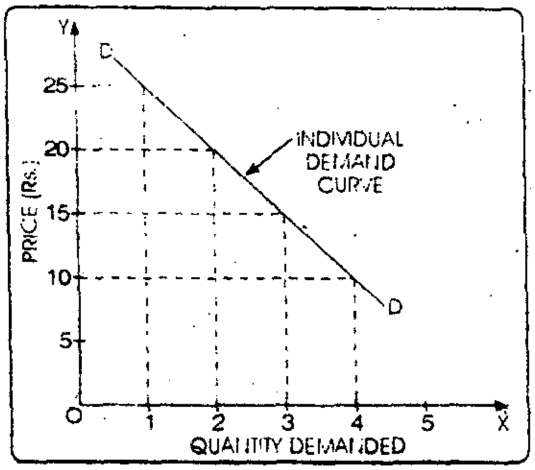

चित्र: 11

2. बाज़ार मांग वक्र (Market Demand Curve): किसी वस्तु की विभिन्न कीमतों पर विभिन्न व्यक्तियों द्वारा मांगी गई मात्राओं के जोड़ को दर्शाने वाले वक्र को बाज़ार मांग वक्र कहते हैं। बाज़ार मांग वक्र व्यक्तिगत मांग वक्र के जोड़ द्वारा प्राप्त किया जाता है। तालिका 3 के आधार पर रेखा चित्र 12 बाजार मांग वक्र को निम्न प्रकार प्रकट किया गया है:

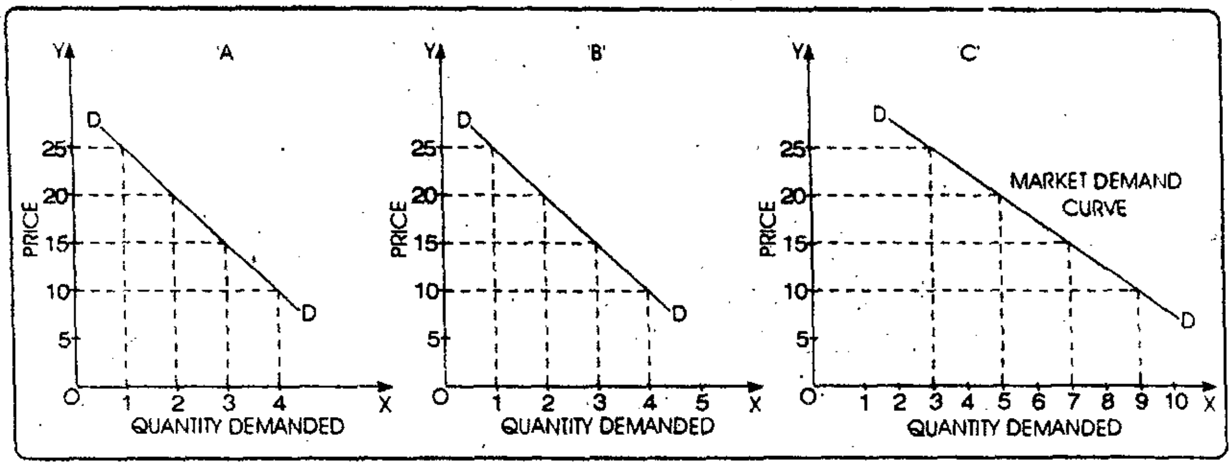

चित्र 12 से स्पष्ट है कि बाजार मांग वक्र व्यक्तिगत मांग वक्रों का समस्तरीय जोड़ होता है। (It is horizontal summations of all individual demand curves) चित्र में OX अक्षों पर वस्तु की मांगी गई मात्राएं तथा OY अक्षों पर कीमतें मापी गई हैं। चित्र 'A' तथा 'B' में व्यक्तिगत मांग वक्र दर्शाए गए हैं तथा इन दोनों के जोड़ के आधार पर बाजार मांग वक्र निकाला गया है। ध्यान देने की बात यह है कि बाज़ार मांग वक्र भी सदैव ऋणात्मक ढाल वाला होता है।

मांग के नियम के लागू होने के कारण
(Causes of the Applicability of the Law of Demand)
या
मांग वक्र नीचे दाईं ओर क्यों झुकता है?
(Why does Demand curve slope downwards to right?)

मांग के नियम के लागू होने या मांग वक्र के नीचे दाईं ओर झुकने के मुख्य कारण निम्नलिखित है:

1. **घटते सीमांत तुष्टिगुण का नियम (Law of Diminishing Marginal Utility):** घटते सीमांत तुष्टिगुण के नियम के अनुसार जैसे–जैसे एक व्यक्ति के पास किसी वस्तु का स्टॉक बढ़ता जाता है वैसे–वैसे उस वस्तु से प्राप्त सीमांत तुष्टिगुण कम होता जाता है। इसका कारण यह है कि ज्यों–ज्यों किसी व्यक्ति के पास किसी वस्तु की मात्रा या स्टॉक बढ़ता जाता है त्यों–त्यों उस व्यक्ति की उस वस्तु के लिए इच्छा संतुष्ट होती जाती है। इसलिए प्रत्येक अगली इकाई या सीमांत इकाई से प्राप्त होने वाला तुष्टिगुण (Marginal Utility) गिरता जाता है। वह किसी वस्तु की कितनी इकाई मांग करेगा?

   यह वस्तु की कीमत तथा सीमांत तुष्टिगुण पर निर्भर करता है यदि सीमांत इकाई की कीमत सीमांत तुष्टिगुण से अधिक है ($P > MU$) तो वह कम इकाइयां खरीदेगा इसके विपरीत यदि कीमत सीमांत तुष्टिगुण से कम है ($P < MU$) तो वह मांग की मात्रा अधिक करेगा। अर्थात् वह वस्तु की उतनी ही मात्रा खरीदेगा या मांग करेगा जिससे वस्तु की कीमत सीमांत तुष्टिगुण के बराबर होगी ($P = MU$)। अतः यदि उपभोक्ता किसी वस्तु की अधिक मात्रा खरीदता है तो उस वस्तु का सीमांत तुष्टिगुण कम हो जाएगा। इसलिए वह अधिक मात्रा वास्तव में तभी खरीदेगा या मांग करेगा जब वस्तु की कीमत गिर जाए और सीमांत तुष्टिगुण के बराबर पुनः हो जाए। इसी कारण अधिक मांग कम कीमत पर तथा कम मांग अधिक कीमत पर की जाती है। इसलिए मांग वक्र नीचे दाईं ओर झुकता है तथा मांग का नियम लागू होता है।

2. **आय प्रभाव (Income Effect):** मांग के नियम लागू होने का आय प्रभाव एक महत्वपूर्ण कारण है। आय प्रभाव क्या है? उपभोक्ता जिस वस्तु को खरीद रहा होता है, उस वस्तु की कीमत में परिवर्तन के कारण उपभोक्ता की वास्तविक आय में परिवर्तन होता है तथा इस कारण वह उस वस्तु की मांग में परिवर्तन कर देता है, इसी को आय प्रभाव कहते हैं। जब वस्तु की कीमत बढ़ती है तो उपभोक्ता की वास्तविक आय घटती है, क्योंकि अब उपभोक्ता को पहले जितनी मात्रा खरीदने के लिए उस वस्तु पर अधिक खर्च करना पड़ता है। इसलिए उसके पास कम वास्तविक आय बच जाती है तथा वह उस वस्तु की इसी कारण मांग भी कम करेगा। अतः कीमत के बढ़ने से आय प्रभाव के कारण वस्तु की मांग गिरेगी तथा कीमत गिरने पर आय प्रभाव के कारण वस्तु की अधिक मांग की जाएगी।

3. **स्थानापन्न प्रभाव (Substitution Effect):** वस्तुओं की सापेक्षिक कीमतों (Relative Prices) में परिवर्तन के कारण किसी वस्तु की मांग पर जो प्रभाव पड़ता है वह स्थानापन्न प्रभाव (Substitution Effect) कहलाता है। जैसे चाय तथा कॉफी (जो लगभग समान संतुष्टि देती हैं) में से चाय की कीमत कम हो जाती है तो कुछ लोग कॉफी के स्थान पर चाय पीना शुरू कर देंगे। इससे चाय की मांग में जो वृद्धि होगी उसको प्रतिस्थापन्न प्रभाव कहा जाता है। जब कभी संबंधित वस्तुओं की कीमतों में सापेक्षिक परिवर्तन होता है तो उपभोक्ता हमेशा महंगी वस्तु के स्थान पर सस्ती वस्तु का प्रतिस्थापन्न करता है। अतः उपभोक्ता हमेशा महंगी वस्तु की मांग कम कर देता है तथा सस्ती वस्तु की मांग बढ़ा देता है। इसलिए मांग का नियम लागू होता है कि कीमत गिरने पर वस्तु की मांग बढ़ती है तथा कीमत बढ़ने पर मांग गिर जाती है।

4. **विभिन्न प्रयोग (Different Uses):** कुछ वस्तुओं के अनेक प्रयोग हो सकते हैं। ऐसी वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि से इनको कम प्रयोगों में उपयोग किया जाने लगता है तथा इनकी मांग कम हो जाती है। इसके विपरीत ऐसी वस्तुओं की कीमतों में कमी होने से इनको अनेक प्रयोगों में उपयोग किया जाने लगता है तथा इनकी मांग बढ़ जाती है। उदाहरणतः यदि दूध की कीमत बहुत बढ़ जाती है तो मध्यम वर्ग के लोग दूध की मांग केवल चाय बनाने और बच्चों

को पिलाने के लिए ही करते हैं। ज्यों दूध कुछ सस्ता होता है तो दूध की मांग परिवार के सभी सदस्यों को पिलाने के लिए भी की जाने लगती है तथा दूध की मांग बढ़ जाती है। अब यदि दूध की कीमत और भी गिर जाती है तो दूध की मांग दही के लिए भी बढ़ा दी जाती है। अतः इस प्रकार ज्यों–ज्यों एक वस्तु की कीमत गिरती है तो उसकी मांग अनेक उपयोगों के लिए की जाने लगती है तथा कुछ मांग बढ़ जाती है। इसके विपरीत ज्यों–ज्यों कीमत बढ़ती है तो केवल जरूरी प्रयोगों के लिए ही मांग की जाती है तथा कुल मांग गिर जाती है।

5. **वस्तु के नए उपभोक्ता (New customers of the commodity):** यदि अंगूर सस्ते हो जाते हैं तो कुछ उपभोक्ता, जो पहले अंगूर महंगे होने के कारण नहीं खरीदते थे, अंगूर की कीमतें गिरने के कारण अब खरीदने लग जाते हैं। इस प्रकार कीमत गिरने पर नए उपभोक्ताओं के कारण वस्तु की मांग बढ़ जाती है तथा वस्तु महंगी होने पर इसकी मांग कम हो जाती है।

मांग के नियम की सीमाएं अथवा अपवाद
(Limitations or Exceptions of the Law of Demand)

कुछ परिस्थितियों में मांग का नियम लागू नहीं होता है इन परिस्थितियों में कीमत कम होने पर मांग कम तथा कीमत बढ़ने पर मांग बढ़ती है। इन परिस्थितियों में कीमत–मांग संबंध (Price- Demand Relation) नकारात्मक न होकर सकारात्मक होता है। अतः इन परिस्थितियों को ही मांग के नियम के अपवाद (Exceptions) या सीमाएं (Limitations) कहा जाता है। अपवाद की परिस्थितियों में मांग वक्र का ढाल घनात्मक अथवा नीचे से ऊपर दाईं ओर उठता हुआ होता है। चित्र 13 में दर्शाया गया है कि P_0 कीमत पर किसी वस्तु की मांग O_0 मात्रा होती है। परंतु जब कीमत बढ़कर P_1 होती है तो मांग भी बढ़ कर Q_1 हो जाती है। इसके विपरीत ज्यों कीमत P_1 से घटकर P_0 होती है तो मांग Q_0 से घटकर Q_1 हो जाती है।

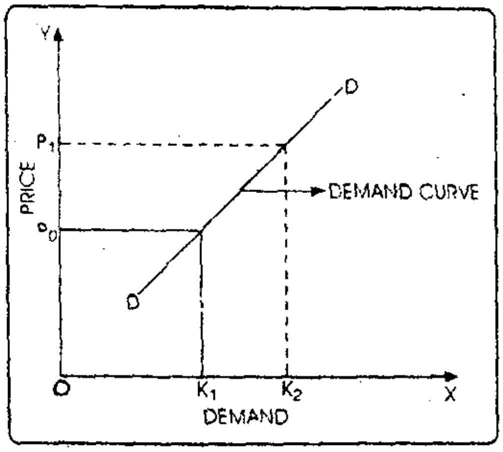

चित्रः 13

1. **भविष्य में वस्तुओं की दुर्लभता का डर (Fear of shortage in Future):** यदि लोगों को यह डर हो कि भविष्य में कोई वस्तु उपलब्ध नहीं होगी या दुर्लभ हो जाएगी तो वर्तमान में बेशक इस वस्तु की कीमत बढ़ गई हो फिर भी वे इस वस्तु की मांग बढ़ा देंगे। अतः ऐसी परिस्थितियों में मांग का नियम लागू नहीं होगा। जैसे, लोगों को डर हो जाए कि भविष्य में पैट्रोल, चीनी, कुकिंग गैस आदि भविष्य में उपलब्ध नहीं होंगे तो वे वर्तमान में इनकी कीमत बढ़ने पर भी पदार्थों की मांग बढ़ा देंगे। अर्थात् ऐसी अवस्था में कीमत बढ़ने पर भी मांग बढ़ती है तथा मांग का नियम लागू नहीं होता तथा मांग वक्र ऊपर दाईं ओर उठता हुआ होता है।

2. **अनिवार्य वस्तुएं (Necessary Goods):** जीवन की अनिवार्य वस्तुओं की मांग पर मांग का नियम लागू नहीं होता है। इसका कारण यह है कि उपभोक्ता इन वस्तुओं की मात्रा आवश्यकतानुसर अवश्य खरीदता है। चाहे इन वस्तुओं की कीमतें बढ़े या घटें। अतः कीमत घटने पर जीवन की अनिवार्य वस्तुओं जैसे नमक, हल्दी, आटा इत्यादि की मांग नहीं बढ़ती है तथा इनकी कीमत बढ़ने पर न ही इनकी मांग कम होती है।

3. **आर्थिक प्रगति (Economic Progress):** आर्थिक प्रगति के साथ लोगों की मांग बढ़ती जाती है। उनकी आय बढ़ने के कारण वे बढ़ी हुई कीमतों पर भी मांग बढ़ाते रहते हैं। भारत में स्कूटर, कार आदि की कीमतें बढ़ते रहने के साथ–साथ इनकी मांग भी बढ़ रही है। इसका कारण उनकी आय में वृद्धि तथा आर्थिक प्रगति है। अतः आर्थिक प्रगति के कारण भी मांग का नियम लागू नहीं होता है।

4. **गिफ्फन वस्तुए (Giffen Goods):** रॉबर्ट गिफ्फन (Robert Giffen) ने कुछ ऐसी वस्तुओं को खोज निकाला जिन पर मांग का नियम लागू नहीं होता। तब से ये वस्तुएं गिफ्फन पदार्थ (Giffen's Goods) के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये वस्तुएं ऐसी निम्न कोटि या घटिया किस्म की वस्तुएं होती हैं कि इस पर मांग का नियम लागू नहीं होता है। उदाहरणतः यदि ज्वार व बाजरें आदि निम्न कोटि के अनाज की कीमत कम हो जाती है तो इनका उपयोग करने वाले लोग इन पदार्थों की मांग बढ़ाने की बजाए कम कर देते हैं। इसका कारण यह है कि इन पदार्थों का उपभोग करने वाले लोग गरीब वर्ग से संबंध रखते हैं जिनकी अधिकतर आय इन वस्तुओं के उपभोग पर व्यय होती है। जब ऐसे पदार्थों की कीमतें कम हो जाती हैं तो इन लोगों की वास्तविक आय बढ़ जाती है, क्योंकि इन पदार्थों को खरीदने के लिए अब उनको कम खर्च करना पड़ता है तथा उपभोक्ता से अपने आप को उत्तम (Better) आर्थिक स्थिति में समझते हैं। इसलिए वे इन निम्न कोटि पदार्थों (ज्वार बाजरा) की मांग घटा देते हैं तथा बढ़िया (superior) पदार्थों की मांग जैसे गेहूं, चावल आदि की मांग बढ़ा देते हैं। अतः गिफ्फन पदार्थों की कीमत गिरती है तो इनकी मांग कम हो जाती है तथा इन पदार्थों की कीमत बढ़ने पर इनकी मांग बढ़ती है। अर्थात् इन पर मांग का नियम लागू नहीं होता तथा मांग वक्र नीचे से ऊपर उठ रहा होता है।

5. **प्रतिष्ठासूचक पदार्थ (Articles of Distinction):** कुछ वस्तुएं समाज में प्रतिष्ठा सूचक मानी जाती हैं। जैसे हीरे, जवाहरात, कीमती वस्त्र आदि रखने वाले लोग समाज में अधिक प्रतिष्ठित माने जाते हैं। ज्यों ऐसे पदार्थों की कीमतें बढ़ती हैं तो इनकी मांग भी बढ़ जाती है क्योंकि महंगी वस्तु को रखना कुछ लोग प्रतिष्ठा का चिन्ह मान लेते हैं। इन पदार्थों की कीमतें गिरने पर ये लोग इनकी कम मांग करते हैं तथा इनकी कीमतें बढ़ने पर मांग बढ़ा देते हैं।

6. **उपभोक्ता की अज्ञानता (Ignorance of consumers):** अनेक बार ऐसा होता है कि उपभोक्ता को वस्तु के गुण का सही ज्ञान नहीं होता। इसलिए लोग वस्तु की कीमत को ही उसके गुण का सूचक मान लेते हैं। वे महंगी वस्तु को बढ़िया तथा सस्ती वस्तु को घटिया मान लेते हैं, जैसे कपड़ा खरीदते समय अनेक बार ऐसा होता है। इसलिए एक प्रकार के कपड़े की ऊंची कीमत रखी जाए तो उसकी मांग बढ़ सकती है तथा कीमतें कम रखी जाएं तो मांग कम हो सकती है। अतः अज्ञानता के कारण भी यह नियम लागू नहीं होता है।

7. **जलवायु और मौसम में परिवर्तन (Change in Climate and Seasons):** जलवायु तथा मौसम में परिवर्तन के कारण भी मांग का नियम लागू नहीं होता है। उदाहरणः गर्मियों में ऊन (Wool) तथा गर्म कपड़ों की कीमतें गिरने पर भी इनकी मांग नहीं बढ़ती हैं। परंतु इसको मांग के नियम का अपवाद मानना उचित नहीं होगा, क्योंकि इसकी कल्पना नियम में पहले ही की गई है कि जलवायु आदि में परिवर्तन नहीं होता है।

8. **फैशन में परिवर्तन (Change in Fashion):** जब किसी वस्तु का फैशन बदल जाता है तो भी यह नियम लागू नहीं होता है। जिस वस्तु का फैशन प्रचलन में होता है तो उस वस्तु की कीमत बढ़ने पर भी उसकी मांग बढ़ती रहती है। जैसे ऊंची ऐड़ी के जूते आदि। वैसे यह भी वास्तविक अपवाद नहीं कहा जा सकता क्योंकि फैशन भी नियम के साथ जुड़े 'अन्य बातें समान रहें' वाक्यांश में सम्मिलित होता है।

उपरोक्त अपवाद विषम स्थितियों को ही प्रकट करते हैं तथा कुछेक पर ही लागू हो सकते हैं। व्यक्तिगत मांग वक्र पर ये अपवाद लागू हो सकते हैं। सामान्यतः बाज़ार मांग वक्र ऊपर से नीचे दाईं ओर ही झुकी हुई होती है।

मांग के नियम का महत्व
(Importance of the Law of Demand)

मांग का नियम अर्थ–शास्त्र का आधारभूत नियम है। इस नियम का महत्व मुख्यतः निम्न क्षेत्रों में देखा ज़ा सकता है:

1. **उपभोग क्षेत्र में महत्व (Importance in the field of Consumption):** उपभोग के क्षेत्र में उपभोक्ता इस नियम

पर चल कर अपनी सन्तुष्टि को अधिकतम कर सकता है। उपभोक्ता किसी वस्तु की इतनी मात्रा की मांग करता है जिससे वस्तु से प्राप्त सीमांत तुष्टिगुण (Marginal Utilitiy) वस्तु की कीमत के बराबर हो सके। ऐसा करने से उसका कुल तुष्टिगुण या संतुष्टि अधिकतम हो जाती है। जैसा की निम्न चित्र से स्पष्ट है:

जब वस्तु की कीमत OP होती है तो मांग OQ के समान ही होती है। अब यदि मांग ज्यादा अर्थात् OQ_1 की जाती है तो कीमत अधिक देनी पड़ती है तथा सीमांत तुष्टीगुण कम प्राप्त होता है। अतः OQ_1 मात्रा की मांग वह कम कीमत अर्थात OP_1 पर ही कर सकता है। ऐसा करके वह मांग के नियम पर चल रहा होता है तथा अपनी संतुष्टि को अधिकतम कर रहा होता है।

2. **उत्पादन के क्षेत्र में महत्त्व (Importance in the field of Production)**: उत्पादन के क्षेत्र में उत्पादकों को मांग के नियम से ज्ञात होता है कि कीमत में कमी करके ही उत्पादन की मांग में वृद्धि की जा सकती है। अतः यदि वे उत्पादन की मांग को बढ़ाना चाहते हैं तो कीमत कम करनी होगी।

3. **व्यापार में महत्त्व (Importance in Trade)**: मांग के नियम से व्यापारियों को ज्ञान प्राप्त होता है कि जब किसी वस्तु की कीमत गिर जाती है तो उस वस्तु की मांग बढ़ जाती है। इसलिए वे अधिक वस्तु खरीदते तथा बेचते हैं और लाभ कमाते हैं।

4. **विदेशी व्यापार में महत्त्व (Importance in Foreign Trade)**: विदेशी व्यापार में भी मांग के नियम का विशेष महत्त्व है। इस नियम से ज्ञान प्राप्त होता है कि यदि हम निर्यात (Exports) बढ़ाना चाहते हैं तो निर्यात वस्तुओं की कीमतें कम करनी होंगी।

5. **वित्त-मंत्री को महत्त्व (Importance of Finance Minister)**: वित्त मंत्री बिक्री कर लगाते समय मांग के नियम को ध्यान में रखता है। मंत्री महोदय को ज्ञात है कि बिक्री कर लगाने या इसमें वृद्धि करने से वस्तुओं की कीमतें बढ़ जाती हैं तथा उनकी मांग कम हो जाती है। इसलिए वह ऐसी वस्तुओं पर ही कर लगाते हैं जिनकी कीमत बढ़ने से मांग कम घटती हो या नहीं घटती हो।

6. **कीमत-निर्धारण में महत्त्व (Importance in Price Determination)**: किसी भी वस्तु की कीमत का निर्धारण उसके मांग वक्र को ज्ञात किए बिना नहीं हो सकता। प्रतियोगिता वाले बाज़ार में प्रत्येक वस्तु की कीमत का निर्धारण उसकी मांग व पूर्ति की शक्तियां द्वारा ही होता है।

7. **निवेशकों को महत्त्व (Importance to Investors)**: निवेशक भी मांग के नियम को मद्देनजर रख कर निवेश करते हैं। वे ऐसी वस्तुओं में निवेश करना पसंद करते हैं। जिनकी कीमत घटने पर मांग अधिक बढ़ जाती है।

8. **योजनाओं के लिए महत्त्व (Importance in Planning)**: योजना बनाते समय मांग का नियम मद्देनजर रखा जाता है जिन वस्तुओं की मांग अधिक बढ़ने की संभावना होती है, उनका उत्पादन अधिक बढ़ाने की योजना बनाई जाती है।

मांग को निर्धारित करने वाले तत्त्व
(Determinants of Demand)

वैसे तो मांग फलन से ही ज्ञात हो जाता है कि किसी वस्तु की मांग को निर्धारित करने वाले अनेक तत्त्व होते हैं। इन तत्त्वों का यहां विस्तृत अध्ययन निम्न प्रकार से किया गया है।

Dx = (Px, Py, Pz, I, W, A, T, E, C, Id)

Dx = x वस्तु की मांग, Px = x वस्तु की कीमत, Py = संबंधित वस्तु y की कीमत, Pz = संबंधित वस्तु Z की कीमत, I = उपभोक्ता की आय, W = उपभोक्ता के पास धन की मात्रा, A = वस्तु का विज्ञापन, T = उपभोक्ता की रुचि, E = वस्तु की कीमत में परिवर्तन की संभावना, C = मौसम, Id = आय का वितरण।

1. **वस्तु की कीमत (Price of the Commodity)**: प्रत्येक वस्तु की मांग निर्धारित करने वाला प्रमुख तत्त्व वस्तु (x) की अपनी कीमत (Px) होती है। यदि अन्य निर्धारक तत्त्व स्थिर रहें या अन्य बातें समान रहें तो किसी वस्तु की कम कीमत

पर उसकी अधिक मांग तथा अधिक कीमत पर कम मांग की जाती है। चित्र 14 से स्पष्ट है कि किसी वस्तु की कीमत OP से कम होकर OP_1 हो जाती है तो मांग OQ मात्रा से बढ़ कर OQ_1 हो जाती है तथा OP_1 से कीमत बढ़कर OP होती है तो मांग कम होकर OQ हो जाती है। अतः किसी भी वस्तु की मांग उसकी अपनी कीमत द्वारा निर्धारित होती है।

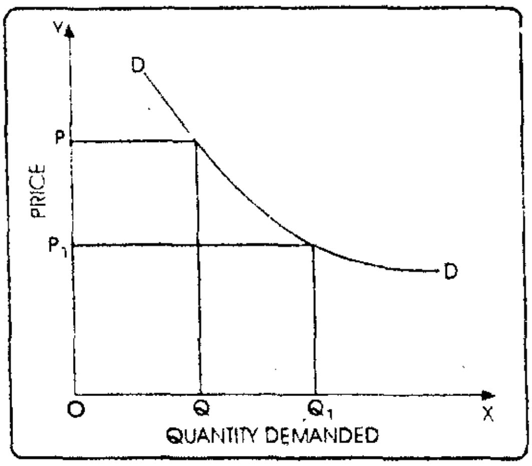

चित्र 14

2. **संबंधित वस्तुओं की कीमतें (Price of Related Goods):** हम जानते हैं कि किसी वस्तु की संबंधित वस्तुएं दो प्रकार की होती हैं: (i) प्रतिस्थापन्न पदार्थ (Substitute Goods), (ii) पूरक पदार्थ (Complementary Goods)। किसी वस्तु की मांग केवल उसकी अपनी कीमत पर ही निर्भर नहीं करती बल्कि उसकी संबंधित वस्तुओं की कीमतों **(Py, Pz)** पर भी निर्भर करती है:

(i) ***प्रतिस्थापन्न वस्तुएं (Substitute Goods)***: वे पदार्थ या वस्तुएं जिनको एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग किया जा सकता है प्रतिस्थापन्न पदार्थ कहलाते हैं जैसे चाय तथा कॉफी, कैम्पा कोला तथा कोका कोला आदि। मान लो x वस्तु चाय है तथा y वस्तु कॉफी हैं। यदि कॉफी की कीमत (Py) बढ़ जाती है तो चाय की मांग (Dx) बढ़ जाएगी क्योंकि कुछ लोग कॉफी के स्थान पर चाय का उपभोग करने लग जाएंगे। इसके विपरीत यदि कॉफी की कीमत कम हा जाती है तो चाय की मांग कम हो जाएगी। अतः एक वस्तु की मांग उसकी प्रतिस्थापन्न वस्तु की कीमत से प्रत्यक्ष संबंध रखती है। इसको अग्र चित्र की सहायता से समझा जा सकता है:

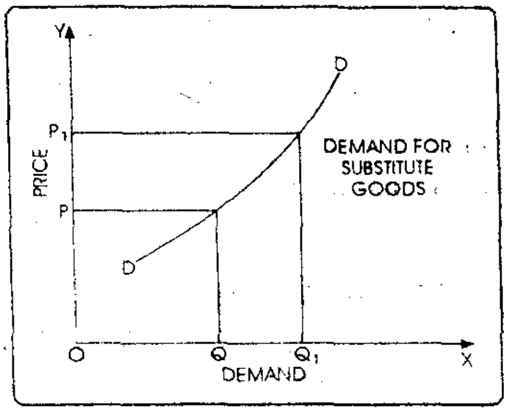

चित्र 15

चित्र 15 से स्पष्ट है कि जब कॉफी की कीमत OP है तो चाय की मांग OQ होती है। परंतु जब कॉफी की कीमत OP से बढ़ कर OP_1 होती है तो चाय की मांग OQ से बढ़ कर OQ_1 हो जाती है। ऐसा सभी प्रतिस्थापन्न वस्तुओं के संबंध में होता है।

(ii) ***पूरक वस्तुएं (Complementary Goods):*** जिन वस्तुओं को एक साथ प्रयोग किया जाता है तथा जिनकी उपयोगिता एक दूसरे पर निर्भर करती है वे पूरक वस्तुएं कहलाती हैं। जैसे कार तथा पैट्रोल, सुई तथा धागा, पैन तथा स्याही आदि। एक पूरक वस्तु की कीमत दूसरी पूरक वस्तु की मांग को प्रभावित करती है। इनकी कीमत तथा मांग में विपरीत संबंध (Inverse Relationship) पाया जाता है। उपरोक्त मांग फलन में z वस्तु x वस्तु की पूरक वस्तु के रूप में व्यक्त की गई है। जब z वस्तु की कीमत (Pz) में परिवर्तन होता है तो x वस्तु की मांग में परितर्वन होता है। इसी प्रकार जब x वस्तु की कीमत में परिवर्तन होता है जो z वस्तु की मांग में परिवर्तन होगा। इसको चित्र 16 द्वारा समझा जा सकता है।

चित्र 16 से स्पष्ट है कि जब कार की कीमत Po से कम हो कर P_1 हो जाती है तो कारों की मांग बढ़ती है, इसलिए पैट्रोल की मांग Qo से बढ़कर Q_1 हो जाती है।

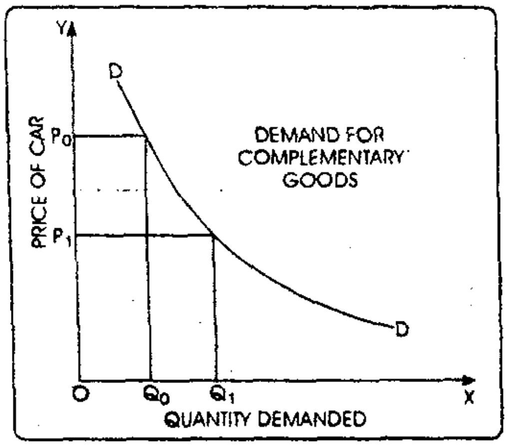

चित्र 16

अतः पूरक पदार्थों की मांग वक्र का ढाल ऋणात्मक (Negative Slope) होता है।

3. **उपभोक्ता की आय (Income of the Consumer):** उपभोक्ता की आय में परिवर्तन का वस्तुओं की मांग पर क्या प्रभाव पड़ता है? यह इस बात पर निर्भर करता है कि वह किस प्रकार की वस्तु की मांग कर रहा है। वस्तुएं सामान्यतः तीन प्रकार की हो सकती हैं: (i) सामान्य वस्तुएं (Normal Goods), (ii) निम्नकोटि की वस्तुएं (Inferior Goods), अनिवार्य वस्तुएं (Necessities)। आय में परिवर्तन का इन पर अलग–अलग प्रभाव पड़ता है:

(i) ***सामान्य वस्तुए (Normal Goods):*** वे वस्तुएं जिनकी मांग उपभोक्ता की आय बढ़ने पर बढ़ती है तथा आय घटने से घटती है सामान्य वस्तुएं (Normal Goods) कहलाती हैं। इन वस्तुओं की मांग आय से धनात्मक संबंध (Positive Relation) रखती हैं। इसको चित्र 17 द्वारा दर्शाया गया है:

चित्र 17 में दर्शाया गया है कि जब उपभोक्ता की आय का स्तर Io होता है तो मांग की मात्रा Qo होती है तथा जब आय का स्तर बढ़कर I_1 हो जाता है तो मांग बढ़कर Q_1 हो जाती है।

(ii) ***निम्न कोटि या घटिया वस्तुएं (Inferior Goods):*** जिन वस्तुओं की मांग आय बढ़ने से कम तथा आय कम होने से बढ़ जाती हो उनको निम्नकोटि या घटियां वस्तुएं कहा जाता है। इन वस्तुओं की मांग उपभोक्ता की

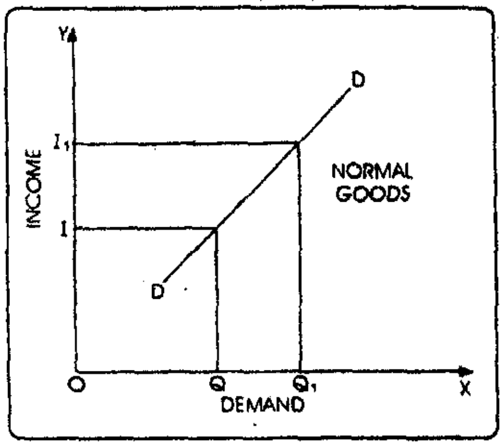

चित्र 17

आय से विपरीत (Inverse) संबंध है। इसको चित्र 18 द्वारा प्रकट किया जा सकता है:

चित्र 18 से स्पष्ट है कि उपभोक्ता की आय जब I_0 से बढ़कर I_1 होती है तो किसी घटिया वस्तु की मांग D_0 से कम होकर D_1 रह जाती है। अतः इन दोनों में विपरीत संबंध होता है।

(iii) ***अनिवार्य वस्तुएं (Necessities)***: वे वस्तुएं जिनके उपभोग के बिना उपभोक्ता का जीवन कठिन तथा मुश्किल

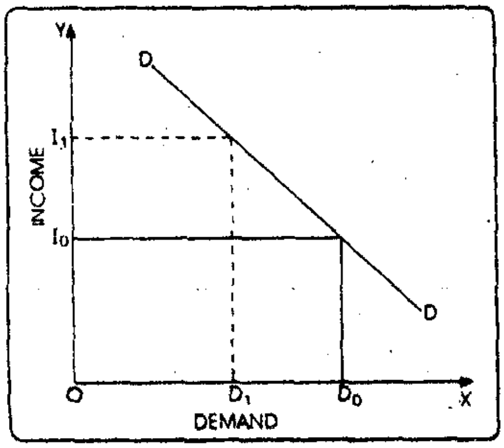

चित्र 18

हो जाता है उनको अनिवार्य वस्तुएं कहा जाता है, जैसे नमक, आटा, दालों, हल्दी आदि। इन वस्तुओं की मांग पर आय वृद्धि का एक सीमा तक धनात्मक प्रभाव पड़ता है तथा आय की इस सीमा के बाद कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इसको चित्र 19 द्वारा प्रकट किया गया है:

चित्र 19 में दर्शाया गया है कि आय जब I_{11} से बढ़कर I_0 होती है तो किसी अनिवार्य पदार्थ की मांग D_{11} से बढ़कर D_0 हो जाती है। परंतु जब आय I_0 से बढ़कर I_1 होती है तो यह मांग D_0 पर ही स्थिर रहती है।

4. **धन की मात्रा (Wealth)**: उपभोक्ता के पास धन की मात्रा भी उसकी मांग को प्रभावित करती है। यदि किसी व्यक्ति के पास धन अधिक है या हो जाता है तो वस्तुओं की मांग बढ़ जाती हैं। इसके विपरीत यदि कम हो जाता है तो वस्तुओं की मांग भी कम हो जाती है।

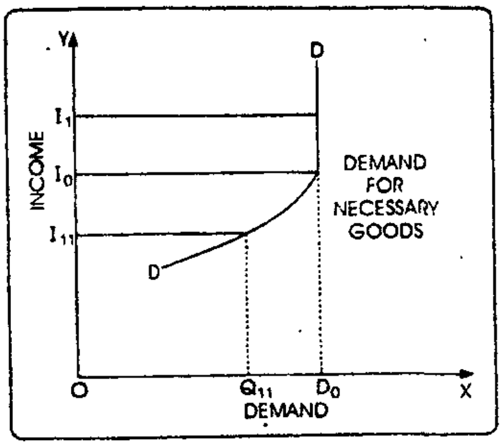

चित्र 19

5. **विज्ञापन (Advertisement):** किसी वस्तु की मांग इस बात पर भी निर्भर करती है कि उस वस्तु की प्रसिद्धि के लिए कितना धन खर्च किया जा रहा है। यदि किसी वस्तु का विज्ञापन अधिक किया जाता है तो उसकी मांग बढ़ जाएगी तथा कम विज्ञापन से उसकी मांग कम हो सकती है। अतः इनमें घनात्मक संबंध पाया जाता है।

6. **उपभोक्ता की रुचि (Taste of the Consumers):** उपभोक्ता की रुचि भी किसी वस्तु की मांग को प्रभावित करती है यदि किसी वस्तु के लिए लोगों की रुचि बढ़ जाती है जो उसकी मांग बढ़ जाती है। उदाहरणतः विद्यार्थियों में मोटर साइकिल के प्रति रुचि बढ़ने से इसकी मांग बढ़ जाएगी। अतः उपभोक्ताओं की रुचि तथा वस्तुओं की मांग में घनात्मक संबंध होता है।

7. **संभावनाएं (Expectation):** यदि उपभोक्ताओं को यह डर हो कि भविष्य में वस्तुओं की कीमतें कम हो जाएगी तो वे वर्तमान में वस्तुओं की कम मांग करेंगे। इसी प्रकार यदि आशा हो कि भविष्य में कीमतें बढ़ेंगी तो वर्तमान में मांग बढ़ जाएगी।

8. **मौसम तथा जलवायु (Season and Climate):** मौसम तथा जलवायु में परिवर्तन से वस्तुओं की मांग भी बदलती है। जैसे सर्दी के मौसम में गर्म कपड़ों की मांग बढ़ जाती है तथा गर्मी में मांग कम हो जाती है।

9. **आय का वितरण (Distribution of Income):** समाज में आय का वितरण भी बाज़ार मांग को प्रभावित करता है। यदि आय का वितरण असमान हो जाता है तो धनी लोग रंगीन टी.वी., कार, वातानुकूल मशीनों आदि की मांग बढ़ा देंगे। इसके विपरीत यदि आय का वितरण समान है तो आवश्यक तथा आरामदाय वस्तुओं की मांग अधिक हो जाएगी।

10. **नई वस्तुएं (New Goods):** नए आविष्कारों के कारण नई–नई वस्तुएं बनती हैं तथा उनकी मांग बढ़ जाती है।

11. **कर (Taxes):** जिन वस्तुओं पर बिक्री कर अधिक लगता है उसकी कीमत अधिक बढ़ जाती है तथा मांग कम हो जाती है।

मांग का नियम तथा मांग में परिवर्तन
(Law of Demand and Changes in Demand)

अब मांग संबंधी कुछ सरल भेदों का समझना महत्वपूर्ण है। मांग का नियम मांग के विस्तार या मांग के संकुचन से संबंध रखता है। परंतु मांग में परिवर्तन मांग में कमी या मांग में वृद्धि से संबंध रखता है। मांग का नियम मांग वक्र पर गति करने तक सीमित है। परंतु मांग में परिवर्तन मांग वक्र में स्थान परिवर्तन को व्यक्त करता है। साधारणतः मांग के विस्तार (Extension of Demand) या मांग में वृद्धि (Increase in Demand) और मांग के संकुचन (Contraction of Demand) या मांग में कमी (Decrease in Demand) से एक ही अर्थ लिया जाता है। परंतु अर्थ–शास्त्र के दृष्टिकोण से इन धारणाओं में विशेष अंतर है।

इनमें अंतर समझने के लिए मांग में होने वाले परिवर्तनों को मुख्य दो भागों में बांटा जा सकता है।

1. **मांग का विस्तार तथा संकुचन (Extension and Contraction of Demand)**
2. **मांग में वृद्धि तथा कमी (Increase and Decrease in Demand)**

मांग का विस्तार तथा संकुचन (Extension and Contraction of Demand)

जब मांग के नियम (Law of Demand) के अनुसार वस्तु की मांग में परिवर्तन होता है तो वह मांग का विस्तार तथा मांग का संकुचन कहा जाता है। अर्थात् अन्य बातें समान रहते हुए जब किसी वस्तु की केवल अपनी कीमत में परिवर्तन के कारण उसकी मांग में परिवर्तन होता हो तो उसे मांग का विस्तार अथवा मांग का संकुचन कहा जाता है। जब हम एक ही मांग वक्र पर ऊपर की ओर या नीचे की ओर जाते हैं तो वह मांग का संकुचन तथा मांग का विस्तार कहलाता है। मांग के विस्तार तथा मांग के संकुचन में वस्तु की मांगी गई मात्रा (Quantity Demanded) में अंतर आता है। इसकी व्याख्या निम्न प्रकार की जा सकती है:

1. **मांग का विस्तार (Extension of Demand):** अन्य बातें समान रहते हुए जब किसी वस्तु की कीमत गिरने से उसकी मांग बढ़ जाती है तो उसको मांग का विस्तार कहा जाता है। इसके अंतर्गत हम मांग वक्र के नीचे की ओर जाते हैं, अर्थात् वस्तु की कीमत गिरती है जिससे वस्तु भाग की मांग का विस्तार होता है जैसे कि निम्न तालिका तथा चित्र 20 द्वारा प्रकट किया गया है।

मांग का विस्तार

सेब की कीमत (रु.)	मांग किलो
10	1
5	2

उपरोक्त तालिका तथा चित्र से प्रकट होता है कि जब सेब की कीमत 10 रु. से कम होकर 5 रु. हो जाती है तो मांग 1 किलो से बढ़कर 2 किलो हो जाती है। इसको ही मांग का विस्तार कहते हैं। इसमें एक ही मांग वक्र पर ऊपर से नीचे की ओर गति होती है। चित्र में A बिन्दु से B की ओर जाने को मांग का विस्तार कहा जाता है।

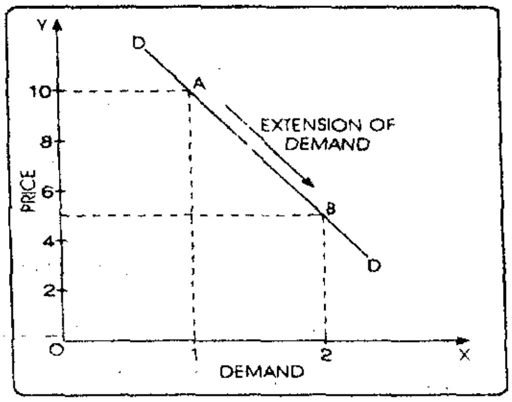

चित्र 20

2. **मांग का संकुचन (Contraction of Demand):** अन्य बातें समान रहते हुए जब किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि के कारण मांग कम हो जाती है तो इसको मांग का संकुचन कहा जाता है। मांग का संकुचन भी मांग के नियम अनुसार ही हो रहा होता है। इसके अंतर्गत हम एक ही मांग वक्र पर ऊपर की ओर गति कर रहे होते हैं जैसे कि निम्न तालिका

तथा चित्र में स्पष्ट किया गया है।

मांग का संकुचन

सेब की कीमत (रु.)	मांग (किलो)
5	2
10	1

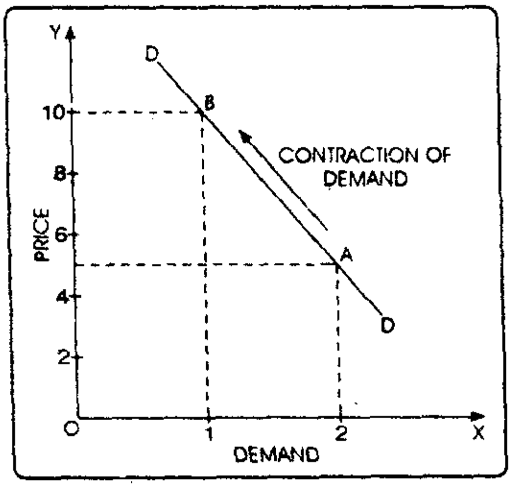

चित्र 21

उपरोक्त तालिका तथा चित्र 21 से स्पष्ट है कि जब सेब की कीमत 5 रु. से बढ़कर 10 रु. हो जाती है तो सेब की मांग 2 किलो से कम होकर 1 किलो ही रह जाती है। इसको ही मांग का संकुचन (Contraction of Demand) कहा जाता है। इसके अंतर्गत मांग को प्रभावित करने वाले अन्य तत्व स्थिर रहते हैं। अतः हम मांग के नियम अनुसार ही मांग वक्र पर ऊपर की ओर, जैसे कि चित्र 21 में A बिन्दु से B बिन्दु की ओर गति कर रहे होते हैं, जो मांग का संकुचन कहलाता है।

मांग में वृद्धि तथा मांग में कमी
(Increase and Decrease in Demand)

जब वस्तु की अपनी कीमत की अपेक्षा अन्य कारणों जैसे संबंधित वस्तुओं की कीमतें, आय, धन, विज्ञापन, रुचि, फैशन, मौसम इत्यादि में परिवर्तन (Change in Non-price Factors) के कारण उस वस्तु की मांग बदलती है तो उसको मांग में वृद्धि तथा मांग की कमी कहा जाता है। इसमें वस्तु की अपनी कीमत स्थिर रहती है परंतु अन्य बातें बदलती हैं।

इसमें क्रेता की गति एक मांग वक्र से दूसरे मांग वक्र पर होती है तथा मांग में परिवर्तन मांग के नियम अनुसार नहीं होता है।

1. **मांग में वृद्धि (Increase in Demand):** जब वस्तु की अपनी कीमत की अपेक्षा कुछ अन्य तत्वों, जैसे – आय, धन, विज्ञापन, फैशन आदि में वृद्धि के कारण किसी वस्तु की मांग बढ़ जाती है तो इसको मांग में वृद्धि (Increase in Demand) कहा जाता है अतः मांग में वृद्धि को निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है:

   समान कीमत पर अधिक मांग (More Demand at same Price)

   अधिक कीमत पर समान मांग (Same Demand at More Price)

   मांग में वृद्धि को अग्र तालिका द्वार स्पष्ट किया गया है:

समान कीमत पर अधिक मांग

सेब की कीमत (रु.)	मांग (किलो)
5	2
10	2

अधिक कीमत पर समान मांग

सेब की कीमत (रु.)	मांग (किलो)
10	2
15	2

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि सेब की कीमत 10 रु. स्थिर रहते हुए भी आय आदि अन्य तत्व में वृद्धि के कारण सेब की मांग 1 कि. से बढ़ कर 2 कि. हो गई है। दूसरी तालिका दर्शाती है कि कीमत 10 रु. से बढ़कर 15 रु. हो जाती है परंतु सेब की मांग पहले जितनी अर्थात समान बनी रहती है। इसको ही मांग में वृद्धि कहा जाता है। इसको निम्न रेखाचित्र द्वारा भी प्रकट किया जा सकता है।

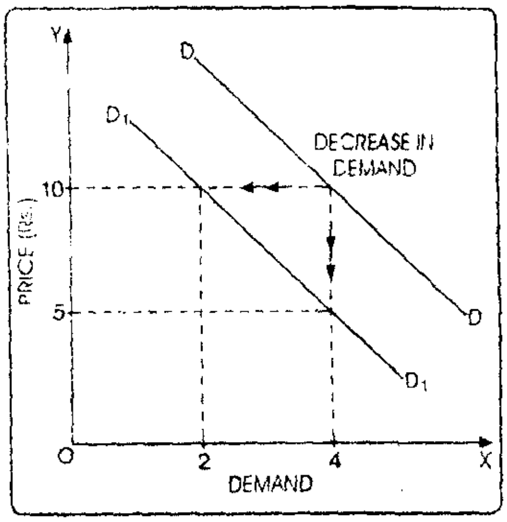

चित्र 23

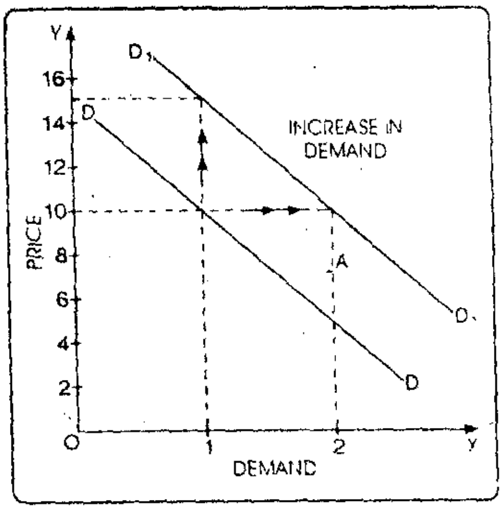

चित्र 24

रेखा चित्र 22 में DD मांग वक्र प्रारम्भिक मांग वक्र है। अब आय आदि बढ़ने के कारण मांग वक्र दाईं ओर सरक कर D_1D_1 हो जाती है। अब उसकी कीमत (10 रु.) पर अधिक (2 कि.) मांग हो जाती है। इतना ही नहीं नई मांग वक्र दर्शाती है कि अधिक कीमत (15 रु.) पर वही अथवा पहले जितनी (1 कि.) मांग बनी रहती है। इसको मांग में वृद्धि कहा जाता है। इसमें मांग वक्र ऊपर दाईं ओर खिसक जाता है।

2. **मांग में कमी (Decrease in Demand):** जब वस्तु की अपनी कीमत की अपेक्षा किसी अन्य कारणों जैसे – आय, रुचि, धन, विज्ञापन इत्याहित में परिवर्तन के कारण वस्तु की मांग घट जाती है तो उसे मांग में कमी कहा जाता है। मांग में कमी (Decrease in Demand) को निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:

   समान कीमत पर कम मांग (Less Demand at Same Price)

   कम कीमत पर समान मांग (Same Demand at Less Price)

   मांग में कमी Decrease (in Demand) को निम्न तालिका तथा चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है

समान कीमत पर कम मांग

सेब की कीमत (रु.)	सेब की मांग
10	4
10	2

कम कीमत पर समान मांग

सेब की कीमत (रु.)	सेब की मांग
10	4
5	4

प्रथम तालिका दर्शा रही है कि सेब की कीमत स्थिर या समान रहते हुए आय आदि तत्वों में परिवर्तन के कारण सेब की मांग 4 कि. से कम होकर 2 कि. ही रह जाती है। दूसरी तालिका दर्शाती है कि कीमत कम होने पर भी मांग समान बनी रहती है। अर्थात् जब सेब की कीमत 10 रु. है तो भी मांग 4 कि. तथा जब कीमत कम होकर 5 रु. रह जाती है तो भी मांग 4 कि. ही रहती है, क्योंकि आय आदि कम होने पर ऐसा हो सकता है। इसके अंतर्गत मांग वक्र नीचे की ओर सरक आता है। अतः इसको मांग में कमी कहा जाता है।

मांग में कमी चित्र 23 की सहायता से स्पष्ट की जा सकती है।

चित्र 23 में DD प्रारम्भिक मांग वक्र है। इस मांग वक्र के अनुसार जब कीमत 10 रु. होती हैं तो मांग 4 इकाई के समान है, जो आय आदि में परिवर्तन के कारण घट कर, कीमत के स्थिर रहते हुए भी, 2 इकाई रह जाती है। अर्थात् उसी कीमत पर कम मांग करना। अब यदि कीमत कम होकर 5 रु. रह जाती है तो अन्य तत्व इस प्रकार परिवर्तित होते हैं कि मांग 4 इकाई ही रहती है तथा बढ़ती नहीं है। अर्थात् कम कीमत पर समान मांग बनी रहती है।

अतः मांग में कमी के अंतर्गत मांग वक्र नीचे खिसक जाता है। इसमें एक मांग वक्र से नीचे वाली मांग वक्र पर गति होती है।

अंतर
(Distinction)

मांग में विस्तार तथा संकुचन और मांग में कमी तथा वृद्धि में निम्न अंतर है:

मांग का विस्तार तथा संकुचन	मांग में वृद्धि तथा कमी
1. वस्तु की केवल अपनी कीमत में परिवर्तन के कारण होता है।	1. वस्तु की अपनी कीमत की अपेक्षा अन्य तत्वों में परिवर्तन के कारण होती है।
2. मांग का नियम इसकी व्याख्या करता है।	2. मांग के नियम का उल्लंघन इसकी व्याख्या करता है।
3. इसको मांगी गई मात्रा में परिवर्तन कहते हैं।	3. इसको मांग में परिवर्तन कहा जाता है।
4. चलन एक ही मांग वक्र पर होता है।	4. चलन भिन्न मांग वक्र पर होता है।

गिफिन का विरोधाभास
(Giffen's Paradon)

कुछ वस्तुएं ऐसी हैं जो मांग के नियम का विरोध करती हैं, अर्थात् उन वस्तुओं पर मांग का नियम लागू नहीं होता। वे कौन–सी वस्तुएं हैं? इन वस्तुओं का आविष्कार 19वीं शताब्दी में सर राबर्ट गिफिन (Sir Robert Giffen) ने किया था। उनके अनुसार ये ऐसी वस्तुएं हैं जिनको हीन वस्तुएं कहा जाता है तथा निर्धन वर्ग इनका उपभोग करता है। जब इन वस्तुओं की कीमत कम होती है तो इनकी मांग बढ़ने की बजाए कम हो जाती है तथा जब इनकी कीमत में वृद्धि होती है तो इनकी मांग में भी वृद्धि हो जाती है। अतः इन वस्तुओं पर मांग का नियम लागू नहीं होता है। मांग के नियम का यह विरोधाभास गिफिन ने ज्ञात किया था। इसलिए यह गिफिन विरोधाभास के नाम से प्रसिद्ध हुआ। हीन या निम्नकोटि की (Inferior Goods) वस्तुएँ क्या हैं?

वे वस्तुएं जिनमें निम्न गुण या विशेषताएं पाई जाती हैं वे हीन वस्तुएं कहलाती हैं: (i) इन वस्तुओं को मुख्यतः निर्धन वर्ग के लोग उपभोग करते हैं, (ii) निर्धन वर्ग की आय का अधिकतर भाग इन्हीं वस्तुओं के उपभोग पर व्यय होता है, तथा (iii) इन

वस्तुओं की बाजार में निकट प्रतिस्थापन्न वस्तुएं (Close substitutes) भी उपलब्ध नहीं होती हैं। ज्वार–बाजरे को निर्धन वर्ग भोजन के लिए प्रयोग करता है तथा इनकी आय का अधिकतर भाग इन्हीं की खरीद पर व्यय होता है। अब यदि ये वस्तुएं सस्ती हो जाती हैं तो ये लोग इन पर कम खर्च करके अपनी आवश्यकतानुसार पहले जितनी ज्वार–बाजरे की मात्रा खरीदते है तथा कुछ आय बचा पाते हैं। उनकी कुछ आय बच जाती है तो वे अपनी वास्तविक आय बढ़ी हुई पाते हैं। उनकी बढ़ी हुई वास्तविक आय के कारण वे अब बढ़िया वस्तुओं जैसे गेहूं की खरीद करेंगे तथा ज्वार–बाजरे की मांग कम कर देंगे। अतः ज्वार –बाजरे की कीमत कम होने पर इनकी मांग भी कम हो गई। इसका अर्थ है कि आय बढ़ने पर इन घटिया वस्तुओं की मांग पर नकारात्मक प्रभाव (Negative effect) पड़ता है। यद्यपि ये वस्तुएं सस्ती हो गई हैं और उपभोक्ता हमेशा महंगी वस्तु के स्थान पर सस्ती वस्तु खरीदता है तथा इस प्रतिस्थापन्न प्रभाव के कारण तो इन घटिया वस्तुओं की मांग बढ़ती है, परंतु नकारात्मक आय प्रभाव अधिक शक्तिशाली होने के कारण मांग पर शुद्ध प्रभाव (आय प्रभाव + प्रतिस्थापन्न प्रभाव) नकारात्मक पड़ता है। अर्थात् इन वस्तुओं की कीमत गिरने पर इनकी मांग भी गिर जाती है। अतः इनका कीमत–मांग संबंध घनात्मक होता है जो मांग के नियम के विरूद्ध है।

प्रश्न
(Questions)

1. What is a demand curve? Why does the demand curve Slope downwards to the right? Are there any exceptions to it?

   मांग वक्र क्या है? मांग वक्र दाहिनी ओर नीचे की ओर क्यों झुकी होती है? क्या इसके कोई अपवाद हैं?

2. What is meant by demand? Mention factors which influence the demand for a commodity.

   मांग का क्या अर्थ है? उन तत्वों का वर्णन करें जो मांग को प्रभावित करते हैं।

3. Explain the Law of Demand. Why does Demand curve slope downwards to the right? Explain the circumstances in which demand curve slope upwards.

   मांग के नियम की व्याख्या करें। मांग वक्र का ढलान दाईं और नीचे की ओर क्यों होता है? उन परिस्थितियों की व्याख्या करें जिनमें मांग वक्र का ढलान ऊपर की ओर होता है।

   or

   What is law of demand? Explain its exceptions.

   मांग का नियम क्या है? उसके अपवादों का वर्णन कीजिए।

4. Why does a normal demand curve slope downwards? Also explain the exceptions to this situation.

   मांग वक्र का ढलान ऋणात्मक क्यों होता है? इस स्थिति के अपवादों को समझाइए।

5. Explain the difference between increase in demand and extention of demand and decrease in demand and *contraction of demand. Discuss the conditions under which increase in price leads to increase in demand.*

   मांग में वृद्धि और मांग का विस्तार तथा मांग में कमी और मांग में संकुचन के अंतर का वर्णन कीजिए। उन दिशाओं को बताइए जिसमें कीमत में वृद्धि होने से मांग में वृद्धि होती है।

6. Explain increase and extension in demand with the help of diagrams. Differentiate between extension and increase in demand.

   मांग में वृद्धि व माँग के विस्तार की व्याख्या रेखाचित्रों की सहायता से कीजिए। दोनों के अंतर स्पष्ट कीजिए।

7. (a) Explain Contraction and decrease in demand with the help of diagram.

   (b) Explain law of demand with the help of schedule.

   (a) मांग में संकुचन तथा मांग में कमी की चित्रों सहित व्याख्या।

   (b) मांग के नियम की व्या०ख्या तालिका तथा चित्रों सहित करो।

अध्याय-5
गणनावाचक सिद्धान्त
(Cardinal Approach)

पिछले अध्याय से ज्ञात होता है कि किसी वस्तु की कीमत उस वस्तु की मांग को निर्धारित करने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। वास्तव में मांग के प्रत्येक सिद्धान्त का कार्य किसी वस्तु की मांगी गई तथा उसकी कीमत में सम्बन्ध स्थापित करना और इसकी व्याख्या करना है। समय–समय पर अर्थशास्त्रियों ने मांग की व्याख्या की है कि कम कीमत पर अधिक मांग तथा अधिक कीमत पर कम मांग क्यों की जाती है? मांग का सिद्धांन्त इसकी व्याख्या करता है। मांग की व्याख्या करने वाला तथा मांग के नियम को स्थापित करने वाला सबसे पुराना सिद्धान्त तुष्टिगुण विश्लेषण न केवल मांग के सिद्धान्त की व्याख्या करता है। बल्कि यह कल्याणकारी अर्थशास्त्र (Welfare Economics) का आधार भी है। अर्थशास्त्रियों ने मांग के सिद्धान्त के रूप में निम्न तीन प्रमुख विश्लेषण प्रतिपादित किए हैं :

1. गणनावाचक तुष्टिगुण विश्लेषण
   (Cardinal Utility Analysis)
2. तटस्थता वक्र विश्लेषण
   (Indifference Curve Analysis)
3. प्रकट अधिमान विश्लेषण
   (Revealed Preference Analysis)

इस अध्याय में केवल गणनावाचक तुष्टिगुण विश्लेषण (Cardinal Utility Analysis) की व्याख्या की गई है।

गणनावाचक तुष्टिगुण विश्लेषण
(Cardinal Utility Analysis)

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डॉ० मार्शल (Dr. Alfred Marshal) ने बीसवीं शताब्दी में मांग के सिद्धान्त (Theory of Demand) की व्याख्या करने के लिए गणनावाचक तुष्टिगुण विश्लेषण का प्रतिपादन किया। डॉ० मार्शल के अनुसार तुष्टिगुण को गणनावाचक संख्याओं (Cardinal Numbers) जैस 1, 2, 3, 12, 20 आदि में मापा जा सकता है। तुष्टिगुण को इकाइयों में माप कर इसको जोड़ा तथा घटाया जा सकता है। तुष्टिगुण को मापने के लिए इकाइयों के स्थान पर यूटिल (Util) शब्द का प्रयोग किया गया। अतः यह कहा जा सकता है कि एक आम (Mango) से 20 यूटिल, ऐ सेब से 15 यूटिल तुष्टिगुण प्राप्त होता है।

तुष्टिगुण का अर्थ
(Meaning of Utility)

प्रारम्भिक प्रश्न यह है कि उपभोक्ता किसी वस्तु की इच्छा क्यों करता है? मार्शल के अनुसार वह किसी वस्तु की इच्छा इसलिए करता है कि यह उसको तुष्टिगुण या सन्तुष्टि प्रदान करती है। अर्थशास्त्र में तुष्टिगुण का अर्थ किसी वस्तु अथवा सेवा का वह गुण है जिससे मानव की किसी आवश्यकता की सन्तुष्टि होती है। जैसे रोटी में भूख मिटाने का गुण, कैम्पा–कोला में प्यास बुझाने का गुण, प्रोफैसर में पढ़ाने का गुण आदि तुष्टिगुण कहलाते हैं तुष्टिगुण इन पदार्थों के प्रयोग से सम्बन्ध रखता है। इसलिए तुष्टिगुण को प्रयोग–मूल्य (Value-in-use) भी कहा जाता है। आवश्यकता को सन्तुष्ट करने वाला वस्तु का गुण तुष्टिगुण कहलाता है। (Utility is want satisfying power of a commodity)।

परिभाषाएं
(Definitions)

एम०एम० बाबर के अनुसार, किसी वस्तु यह सेवा का वह गुण जिससे किसी आवश्यकता की सन्तुष्टि होती है तुष्टिगुण कहलाता है।" (Utility is the power of a good or service to satisfy a want M.M. Bobber) प्रो० हिब्डन के अनुसार, "तुष्टिगुण किसी वस्तु का वह गुण होता है जो किसी आवश्यकता को सन्तुष्ट करता है।" (Utility is the quality of a good to satisfy a want Hibdon)

विशेषताएं
(Features or Characteristics)

तुष्टिगुण की मुख्य विशेषताएं अग्रलिखित है।

1. **तुष्टिगुण भावगत है (Utility is Subjective)**: तुष्टिगुण वस्तु में छुपा हुआ या इसमें निहित गुण नहीं होता है। यदि ऐसा होता तो एक वस्तु में सभी के लिए तुष्टिगुण होता। परन्तु उदाहरणतः सिगरेट में सिगरेट न पीने वाले के लिए कोई तुष्टिगुण नहीं होता, शराब न पीने वाले के लिए शराब में कोई तुष्टिगुण नहीं है इत्यादि। जबकि सिगरेट पीने वाले के लिए सिगरेट में तुष्टिगुण है, शराब पीने वाले के लिए शराब में तुष्टिगुण है। ऐसा क्यों ? तुष्टिगुण वस्तु में छुपा हुआ गुण होता तो एक वस्तु में सभी के लिए तुष्टिगुण होता। परन्तु ऐसा नहीं है अर्थात् तुष्टिगुण वस्तुगत (Objective) नहीं है। तुष्टिगुण किसी वस्तु के लिए मनुष्य की इच्छा पर निर्भर करता है। यदि हमारी इच्छा किसी वस्तु को उपभोग करने की है तो उस वस्तु में हमारे लिए तुष्टिगुण है अन्यथा नहीं है। अतः तुष्टिगुण भावगत (Subjective) होता है।

2. **तुष्टिगुण सापेक्षिक है (Utility is Relative)**: प्रत्येक वस्तु का तुष्टिगुण सापेक्षिक होता है। अर्थात् वस्तु का तुष्टिगुण हमेशा एक समान नहीं रहता। यह वस्तु का स्थान बदनले से यहाँ इसके उपभोग का समय बदलने से बदलता रहता है। जैसे सर्दी में गर्म कपड़ों का तुष्टिगुण बढ़ जाता है। इसी प्रकार भूमध्य रेखा के आसपास के स्थानों पर बर्फ का तुष्टिगुण बहुत अधिक तथा उत्तरी व दक्षिणी ध्रवों पर यह शून्य के बराबर होता है। अतः तुष्टिगुण सापेक्षिक होता है।

3. **तुष्टिगुण और लाभदायकता (Utility and Usefulness)**: तुष्टिगुण लाभदायक हो सकता है और नहीं भी। बहुत–सी ऐसी वस्तुएं हैं जिनमें तुष्टिगुण तो प्राप्त होता है परन्तु वे लाभदायक नहीं हैं। जैसे शराब, अफीम, सिगरेट आदि वस्तुओं में तुष्टिगुण तो है परन्तु वे मनुष्य के लिए हानिकारक हैं। इसके विपरीत दूध, अनाज आदि वस्तुएं तुष्टिदायक भी हैं तथा लाभदायक भी।

4. **तुष्टिगुण और सन्तुष्टि (Utility and Satisfaction)**: तुष्टिगुण वह गुण या शक्ति होती है जो वस्तु के उपभोग के दौरान प्राप्त होती है, परन्तु सन्तुष्टि वह है जो वस्तुओं के उपभोग करने के बाद प्राप्त होती है। अतः सन्तुष्टि तुष्टिगुण प्राप्त करने का परिणाम है। जैसे अंगूर का उपभोग करने से पहले या उपभोग के अन्तुर्गत तुष्टिगुण प्राप्त होता है। परन्तु जब हम अंगूर का उपभोग कर चुके होते हैं तो हमें सन्तुष्टि प्राप्त होती है।

5. **तुष्टिगुण और नैतिकता (Utility and Morality)**: तुष्टिगुण का नैतिकता से कभी कोई समबन्ध नहीं होता। कुछ वस्तुएं ऐसी होती हैं जिनका उपभोग करने से तुष्टिगुण तो प्राप्त होता है परन्तु उनको नैतिक दृष्टिकोण से उचित नहीं समझा जाता। जैसे शराब, भांग, अफीम, स्मैक आदि के उपभोग से इनका सेवन करने वाले व्यक्तियों को तुष्टिगुण तो प्राप्त होता है परन्तु इनका उपभोग नैतिक दृष्टिकोण से उचित नहीं माना जाता।

6. **तुष्टिगुण और स्वदिष्टता (Utility and Tastefulness)**: शतुष्टिगुण का किसी वस्तु की स्वादिष्टता से भी कोई सम्बन्ध नहीं होता है। जैसे मलेरिया के रोगी के लिए कुनैन में तुष्टिगुण तो है परन्तु यह स्वादिष्ट नहीं होती है।

7. **तुष्टिगुण और वैधता (Utility and Legality)**: बिना लाईसेन्स के कार चलाने में तुष्टिगुण तो प्राप्त होता है परन्तु यह वैध (Legal) नहीं है। अतः बहुत–सी ऐसी वस्तुएं हैं जिनके सेवन से तुष्टिगुण तो प्राप्त होता है परन्तु वे वैधानिक दृष्टिकोण से उचित नहीं होता है। इसलिए तुष्टिगुण और वैधता में कोई सम्बन्ध नहीं है।

तुष्टिगुण की धारणाएं
(Concepts of Utility)

तुष्टिगुण की मुख्य तीन धारणाएं अति महत्त्वपूर्ण हैं। इनकी व्याख्या निम्न प्रकार से की गई है:

1. **प्रारम्भिक तुष्टिगुण** (Initial Utility)
2. **सीमान्त तुष्टिगुण** (Marginal Utility)
3. **कुल तुष्टिगुण** (Total Utility)

(i) **प्रारम्भिक तुष्टिगुण (Initial Utility)**: किसी वस्तु की पहली इकाई उपभोग करने से जो तुष्टिगुण प्राप्त होता है, उसे प्रारम्भिक तुष्टिगुण कहा जाता है। (Utility gained from the consumption of the first unit of a commodity is called Initial Utility) मान लो कोई व्यक्ति केले खाना या उपभोग करना शुरू करता है तो पहले केले या केले की प्रथम इकाई का उपभोग करने से जो तुष्टिगुण प्राप्त होता है वह प्ररम्भिक तुष्टिगुण कहलाता है। अतः प्रारंम्भिक तुष्टिगुण वह तुष्टिगुण है जो किसी वस्तु की प्रथम इकाई का उपभोग करने से प्राप्त होता है। यह हमेशा घनात्मक (Positive) होता है।

(ii) **सीमान्त तुष्टिगुण (Marginal Utility)**: किसी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई के उपभोग से प्राप्त तुष्टिगुण सीमान्त तुष्टिगुण कहलाता है। दूसरे शब्दों में, किसी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई का उपभोग करने से कुल तुष्टिगुण में जो वृद्धि होती है वह सीमान्त तुष्टिगुण कहलाता है। (The addition made to total utiltiy by consuming one more unit of a commodity is called marginal utility). मान लो उपभोक्ता का पहला सेब खाने से 25 इकाई तुष्टिगुण प्राप्त होता है और दूसरा सेब खाने से उसका कुल तुष्टिगुण (Total utility) बढ़कर 45 इकाई हो जाता है तो दूसरे सेब जो पहले सेब के बाद अतिरिक्त इकाई है, का सीमान्त तुष्टिगुण 45–25=20 होगा। इसके बाद यदि उपभोक्ता तीसरा सेब खाता है तो (तीसरे सेब की इकाई अब अतिरिक्त इकाई कही जाएगी) उसका कुल तुष्टिगुण बढ़कर मान लो 60 हो जाता है तथा तीसरे सेब का सीमान्त तुष्टिगुण 60–45 = 15 होगा। प्रो० बोल्डिंग के अुनसार, "सीमान्त तुष्टिगुण कुल तुष्टिगुण में वह वृद्धि है जो उपभोग में एक इकाई की वृद्धि के फलस्वरूप प्राप्त होती है।" (The marginal utility is the increase in total utility which results from a unit increase in consumption—Prof. Boulding)

सीमान्त तुष्टिगुण को निम्न सूत्र की सहायता से ज्ञात किया जा सकता है:

$$MU_{nth} = TU_n - TU_{n-1}$$

MUnth=nth इकाई का सीमान्त तुष्टिगुण,

TUn=n इकाइयों का कुल तुष्टिगुण, तथा

TUn-1=n-1 इकाइयों का कुल तुष्टिगुण।

n-1 अर्थात् अतिरिक्त या आखिरी इकाई। मान लो n=3 है तो तीसरी इकाई nth इकाई कहलाती है। nth या तीसरी इकाई का सीमान्त तुष्टिगुण (MUnth) उपरोक्त उदाहरण के अनुसार 60–45=15 होगा।

गणितीय विधि से किसी वस्तु (x) का सीमान्त (MUx) निम्न सूत्र के द्वारा ज्ञात किया जाता है।

$$MUx = \frac{\Delta TUx}{\Delta X} = \frac{d(TUx)}{dx}$$

यहां MUx = x वस्तु का सीमान्त तुष्टिगुण

d (TUx) or ΔTUx = x वस्तु के कुल तुष्टिगुण में परिवर्तन

d x or Δx = x वस्तु की मात्रा में परिवर्तन तथा x वस्तु कोई भी वस्तु हो सकती है।

सीमान्त तुष्टिगुण के प्रकार: सीमान्त तुष्टिगुण तीन प्रकार का हो सकता है: (1) घनात्मक (Positive), (2) शून्य

(Zero) तथा (3) ऋणात्मक (Negative)

(i) **घनात्मक सीमान्त तुष्टिगुण (Positive Marginal Utility):** जब सीमान्त तुष्टिगुण शून्य से अधिक होता है तो वह घनात्मक सीमान्त तुष्टिगुण कहलाता है। जब सीमान्त तुष्टिगुण घनात्मक होता है तो इस कारण कुछ तुष्टिगुण बढ़ जाता है।

(ii) **शून्य सीमान्त तुष्टिगुण (Zero Marginal Utility):** जब सीमान्त तुष्टिगुण शून्य होता है तो कुल तुष्टिगुण में कोई वृद्धि नहीं होती। अतिरिक्त इकाइयों का उपभोग करने से जब कुल तुष्टिगुण में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता तो इसका अर्थ है कि सीमान्त तुष्टिगुण शून्य है।

(iii) **ऋणात्मक सीमान्त तुष्टिगुण (Negative Marginal Utility):** जब सीमान्त तुष्टिगुण शून्य से कम हो जाता है तो वह ऋणात्मक सीमान्त तुष्टिगुण कहलाता है। अनेक बार हम आवश्यकता से अधिक इकाइयों को उपभोग करते हैं जिससे हमें बेचैनी तथा दुःख महसूस होता है। ऐसी इकाइयों का सीमान्त तुष्टिगुण ऋणात्मक होता है।

3. **कुल तुष्टिगुण (Total Utility):** किसी वस्तु की उपभोग की गई सभी इकाइयों से प्राप्त होने वाले तुष्टिगुणों के योग को कुल तुष्टिगुण कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, किसी वस्तु की विभिन्न इकाइयों के उपभोग से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुणों का जोड़ कुल तुष्टिगुण कहलाता है। प्रो० लेफ्टविच के अनुसार, "किसी वस्तु की विभिन्न इकाइयों का उपभोग करने से जो कुल सन्तुष्टि प्राप्त होता है वह कुल तुष्टिगुण कहलाता है। (Total utility refers to the entire amout of satisfaction obtained from consuming various quantities of a commodity - Prof. Leftwitch) अतः कुल तुष्टिगुण किसी वस्तु की विभिन्न इकाइयों के उपभोग का फलन है:

$$TU = f(Nx)$$

यहां TUx=X वस्तु के उपभोग से प्राप्त कुल तुष्टिगण

f=फलन

Nx=X वस्तु की उपभोग की गई कुल इकाइयों की संख्या या मात्रा।

अर्थात् x वस्तु से प्राप्त कुल तुष्टिगुण (TUx) x वस्तु की संख्या (Nx) का फलन (f) या इस पर निर्भर करता है।

कुल तुष्टिगुण को निम्न सूत्र से ज्ञात किया जा सकता है:

$$TUx = MU_1 + MU_2 + \dots\dots\dots + MUn$$

Or

$$TUx = \sum_{x=0}^{n} MUx$$

यहां TUx=कोई वस्तु x का कुल तुष्टिगुण

MU_1, MU_2------ का अर्थ है x वस्तु की प्रथम, दूसरी-----------और nवीं अर्थात् अन्तिम इकाई की संख्या से प्राप्त होने वाला सीमान्त तुष्टिगुण। x वस्तु की शून्य से लेकर n इकाइयों तक प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुणों का योग $\left(\sum_{x=0}^{n} MUx\right)$ कुल तुष्टिगुण कहलाता है।

सीमान्त तुष्टिगुण तथा कुल तुष्टिगुण में सम्बन्ध (Relation between Marginal Utility and Total Utility): सीमान्त तुष्टिगुण तथा कुल तुष्टिगुण में गहरा सम्बन्ध है। कुल तुष्टिगुण सीमान्त तुष्टिगुण पर ही निर्भर करता है। वस्तुतः कुल तुष्टिगुण सीमान्त तुष्टिगुण का ही योग है। इतना ही नहीं कुल तुष्टिगुण में परिवर्तन भी सीमान्त तुष्टिगुण पर निर्भर करता है। इन दोनो में निम्न सम्बन्ध पाया जाता है:

1. जब सीमान्त तुष्टिगुण घनात्मक होता है तो कुल तुष्टिगुण बढ़ता है।
2. जब सीमान्त तुष्टिगुण शून्य होता है तो कुल तुष्टिगुण अधिकतम होता है।
3. जब सीमान्त तुष्टिगुण ऋणात्मक होता है तो कुल तुष्टिगुण घटता है।

इन दोनो के सम्बन्ध को निम्न तालिका द्वारा व्यक्त किया गया है:

तुष्टिगुण (Utility) की इकाइयों को यूटिल (Utils) कहा जाता है जिसको मुद्रा में पाया जाता है।

सीमान्त तुष्टिगुण तथा कुल तुष्टिगुण में सम्बन्ध

वस्तु की इकाइयां	सीमान्त तुष्टिगुण	कुल तुष्टिगुण
1	10 ⎤	10 Initial Utility
2	8 ⎥	18
3	6 ⎥ Positive MU	24
4	4 ⎥	28
5	2 ⎦	30
6	0 Zero MU	30
7	-2 Negative Muq	28

सीमान्त तुष्टिगुण तथा कुल तुष्टिगुण में सम्बन्ध उपरोक्त तालिका के आधार पर निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है।

(i) वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों के उपभोग से प्रथम इकाई से 5वीं इकाई तक सीमान्त तुष्टिगुण घटता जाता है परन्तु घनात्मक है। सीमान्त तुष्टिगुण 5वीं इकाई तक घनात्मक होने के कारण कुल तुष्टिगुण (Total Utility) बढ़ता जाता है।

(ii) छठी इकाई के उपभोग से सीमान्त तुष्टिगुण शुन्य (Zero MU) प्राप्त होता है। इसलिए कुल तुष्टिगुण में और वृद्धि नहीं हो पाती है तथा यहां पर यह अधिकतम (30) है। इस अवस्था को पूर्ण सन्तुष्टि का बिन्दु (Point of satiation) भी कहते हैं। अतः जब सीमान्त तुष्टिगुण शून्य होता है ता कुल तुष्टिगुण अधिकतम होता है।

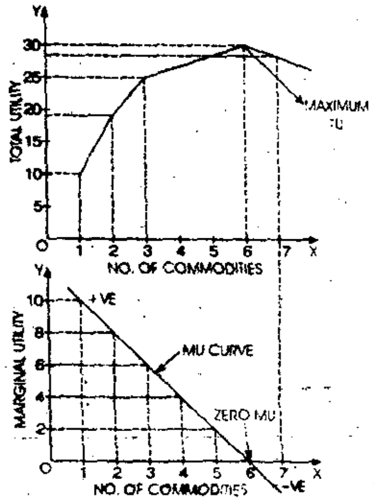

चित्र 1

(iii) जब उपभोक्ता 7वीं इकाई का उपभोग करता है तो सीमान्त तुष्टिगुण घट कर नकारात्मक (-2) हो जाता है, जिससे कुल तुष्टिगुण भी गिरकर 28 रह जाता है। अतः ज्यों सीमान्त तुष्टिगुण नकारात्मक होता है तो कुल

तुष्टिगुण गिरने लग जाता है।

सीमान्त तुष्टिगुण तथा कुल तुष्टिगुण में इन सम्बन्धों को रेखाचित्र 1 में दर्शाया गया है:

चित्र के ऊपर वाले भाग में कुल तुष्टिगुण वक्र तथा नीचे वाले भाग में सीमान्त तुष्टिगुण वक्र उपरोक्त तालिका के आधार पर निकाला गया है। वस्तु की एक से पांचवीं इकाई तक कुल तुष्टिगुण बढ़ता जाता है तथा सीमान्त तुष्टिगुण वक्र गिरता जाता है। परन्तु 5 से 6 इकाई तक कुल तुष्टिगुण अधिकतम है और स्थिर है क्योंकि सी० तुष्टिगुण शून्य हो जाता है। 7 वीं इकाई पर कुल तुष्टिगुण भी गिरने लग जाता है क्योंकि सीमान्त तुष्टिगुण वक्र नकारात्मक (Negative) हो जाता है।

कुल तथा सीमान्त तुष्टिगुण में अन्तर का महत्त्व
(Significance of the Difference between Total and Marginal Utility

सीमान्त तुष्टिगुण तथा कुल तुष्टिगुण में अन्तर का बहुत अधिक व्यवहारिक महत्त्व है। इस अन्तर का महत्त्व निम्न विश्लेषण से स्पष्ट होता है:

1. **मूल्य का विरोधाभास (Paradox of Value)**: सामान्यतः ऐसा समझा जाता है कि किसी वस्तु का मूल्य उससे प्राप्त होने वाले कुल तुष्टिगुण द्वारा निर्धारित होता है। इस विचारधारा के अनुसार जिन वस्तुओं से कुल तुष्टिगुण अधिक प्राप्त होता है उनका मूल्य अधिक तथा जिन वस्तुओं से कुल तुष्टिगुण कम प्राप्त होता है उनका मूल्य कम निर्धारित होता है। परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं होता। उदाहरण के लिए पानी तथा हीरे के मूल्य–निर्धारण की जांच की जा सकती है। वास्तविक जीवन में पानी से प्राप्त कुल तुष्टिगुण हीरों (Diamonds) से प्राप्त कुल तुष्टिगुण से अधिक है। इसलिए पानी का मूल्य हीरे के मूल्य से अधिक होना चाहिए। परन्तु वस्तुतः पानी का मूल्य हीरों के मूल्य से बहुत कम होता है। ऐसी स्थिति को ही मूल्य का विरोधाभास (Paradox of Value) कहा जाता है। अन्य वस्तुओं के मूल्य का निर्धारण भी यदि उससे प्राप्त कुल तुष्टिगुण के आधार पर किया जाता है तो वहां भी मूल्य का विरोधाभास उत्पन्न हो सकता है। यह विरोधाभास क्यों उत्पन्न होता है ? इस प्रश्न का हल प्रो० जेवन्स ने सीमान्त तुष्टिगुण तथा कुल तुष्टिगुण में अन्तर स्थापित करके किया। यह व्यक्त किया गया कि पानी का जीवन में बहुत अधिक महत्त्व है तथा इसकी काफी मात्रा उपभोग की जाती है। इसलिए शीघ्र ही पानी से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण शून्य हो जाता है तथा कुल तुष्टिगुण अधिकतम हो जाता है। पानी का सीमान्त तुष्टिगुण लगभग शून्य होने के कारण इसका मूल्य या कीमत भी लगभग शून्य होती है। परन्तु हीरे कम मात्रा में उपलब्ध व उपभोग होने के कारण इनका सीमान्त तुष्टिगुण अधिक होता है तथा कुल तुष्टिगुण पूर्ण सन्तुष्टि बिन्दु (Satiaty point) पर या अधिकतम स्तर पर नहीं पहुंच पाता। हीरों का सीमान्त तुष्टिगुण अधिक ऊंचा रहने के कारण (क्योंकि मुश्किल से इनकी एक या दो इकाइयों का उपभोग कर पाते हैं) हीरों की कीमत अधिक होती है।

2. **उपभोक्ता की बचत की व्याख्या (Explanation of Consumer's Surplus)**: इन दोनों का अन्तर उपभोक्ता की बचत की व्याख्या भी करता है। अनेक बार उपभोक्ता किसी वस्तु की अधिक कीमत देने को तैयार होता है परन्तु वह कम कीमत में प्राप्त हो जाती है। उपभोक्ता उस वस्तु के कुल तुष्टिगुण को ध्यान में रखते हुए अधिक कीमत देने को तैयार होता है। परन्तु वह वस्तु वास्तव में उसको कम कीमत पर प्राप्त हो जाती है क्योंकि कीमत वस्तु से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण के आधार पर निर्धारित होती है। इन दोनों कीमतों (जो कीमत उपभोक्ता देने को तैयार होता है तथा जिस कीमत पर वास्तव में वस्तु प्राप्त होती है) का अन्तर उपभोक्ता की बचत कहलाती है। ये दोनों कीमतें अर्थात् उपभोक्ता जो कीमत देने का तैयार होता है तथा जो वास्तव में वह देता है कुल तुष्टिगुण तथा सीमान्त तुष्टिगुण पर क्रमशः निर्भर करती हैं। अतः उपभोक्ता की बचत ज्ञात करने के लिए कुल तुष्टिगुण तथा सीमान्त तुष्टिगुण में अन्तर करना अति महत्त्वपूर्ण है।

3. **प्रयोग मूल्य तथा विनिमय मूल्य में अन्तर (Difference between Value in use and Value in exchange)**: किसी वस्तु का प्रयोग–मूल्य (Value-in-use) उस वस्तु से प्राप्त तुष्टिगुण पर निर्भर करता है तथा विनिमय–मूल्य (Value-in-Exchange) उस वस्तु से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण पर निर्भर करता है। इन दोनों मूल्यों, जो पहले समान या एक ही समझे जाते थे, में अन्तर सीमान्त तुष्टिगुण तथा कुल तुष्टिगुण में अन्तर के आधार पर स्थापित किया जा सका।

गणनावाचक तुष्टिगुण विश्लेषण की आधारभूत मान्यताएं
(Basic Assumptions of Utility Analysis)

मांग का गणनावाचक तुष्टिगुण विश्लेषण कुछ आधारभूत मान्यताओं (Assumptions) पर आधारित है। इनकी व्याख्या निम्न प्रकार से की गई है।

1. **तुष्टिगुण को मापा जा सकता है (Utility can be measured):** किसी वस्तु की इकाइयों का उपभोग करने से कितना तुष्टिगुण प्राप्त होता है यह उपभोक्ता की मानसिक स्थिति से सम्बन्धित है जिसका सही–सही माप करना कठिन प्रतीत होता है। परन्तु डा० मार्शल के विचारानुसार तुष्टिगुण का संख्यात्मक माप किया जा सकता है। तुष्टिगुण विश्लेषण के प्रतिपादक डा० मार्शल मानते हैं कि किसी वस्तु के तुष्टिगुण को इकाइयों या यूटिल (Utils) में इसी प्रकार मापा जा सकता है जिस प्रकार दूध को लीटर में, अनाज को क्विंटल में, तापमान को थर्मामीटर में मापा जाता है इत्यादि। केलों का उपभोग करने से जो सीमान्त तथा कुल तुष्टिगुण प्राप्त होता उसको 5, 10, 15, 20 आदि इकाइयों या यूटिल में मापा जा सकता है।

   तुष्टिगुण का माप केवल सैद्धान्तिक रूप से ही नहीं बल्कि इसका व्यवहारिक रूप से भी माप किया जा सकता है। जैसे यदि कोई विद्यार्थी एक कापी के 20 रुपये तथा पैन के 10 रुपये देने को तैयार है तो कापी से 20 यूटिल तथा पैन से 10 यूटिल (Util) के बराबर तुष्टिगुण मिलता माना जा सकता है। अतः तुष्टिगुण को मुद्रा की सहायता से मापा जा सकता है।

2. **मुद्रा तुष्टिगुण का मापदण्ड है (Money is the Measuring Rod of Utility):** डा० मार्शल ने मुद्रा को तुष्टिगुण का मापदण्ड माना है। उनके अनुसार किसी वस्तु की एक इकाई प्राप्त करने के लिए एक व्यक्ति मुद्रा की जितनी इकाइयां देने को तैयार है उतनी मुद्रा की मात्रा के बराबर तुष्टिगुण का मूल्य होता है। अतः तुष्टिगुण को मुद्रा की सहायता से माप जा सकता है तथा मुद्रा तुष्टिगुण का मापदण्ड (Measuring Rod) है।

3. **मुद्रा का सीमान्त तुष्टिगुण स्थिर रहता है (Marginal Utility of Money Remains constant):** तुष्टिगुण विश्लेषण की एक अति महत्त्वपूर्ण कल्पना यह है कि मुद्रा का सीमान्त तुष्टिगुण स्थिर रहता है। वैसे तो यह कल्पना उचित नहीं मानी जा सकी क्योंकि मुद्रा भी वस्तु है तथा जैसे अन्य वस्तुओं की मात्रा बढ़ने से उनका सीमान्त तुष्टिगुण कम होता जाता इसी प्रकार मुद्रा की मात्रा बढ़ने से इसका सीमान्त तुष्टिगुण भी कम होता जाता है। परन्तु मुद्रा को तुष्टिगुण का स्थाई मापदण्ड बनाने के लिए मार्शल आदि अर्थशास्त्रियों ने यह कल्पना की है कि मुद्रा का सीमान्त तुष्टिगुण स्थिर रहता है।

4. **तुष्टिगुण स्वतन्त्र होते हैं (Utilities are Independent):** गणनावाचक तुष्टिगुण विश्लेषण की एक आधारभूत मान्यता यह है कि सभी वस्तुओं के तुष्टिगुण एक दूसरे से स्वतन्त्र होते हैं। अर्थात् एक वस्तु से प्राप्त तुष्टिगुण उसी वस्तु की मात्रा पर ही निर्भर करता है न कि अन्य वस्तुओं के तुष्टिगुण या उनकी मात्रा पर। इसी कारण भिन्न वस्तुओं के अलग–अलग तुष्टिगुणों को जोड़ा जा सकता है, घटाया जा सकता है आदि।

5. **आत्म-आवलोकन विधि (Introspective method):** गणनावाचक तुष्टिगुण विश्लेषण में सामान्य तथ्यों (General Facts) की जानकारी के लिए सामान्य आत्म–अवलोकन विधि का प्रयोग किया गया है। अर्थात् एक व्यक्ति आने स्वयं के अनुभव या भावनाओं के आधार पर अनुमान लगाता है कि अन्य व्यक्ति भी तुष्टिगुण के सम्बन्ध में ऐसा ही महसूस या अनुभव करते हैं जैसा वह स्वयं अनुभव कर रहा है। जैसे ज्यों एक व्यक्ति किसी वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों का उपभोग करता जाता है तो उस वस्तु का तुष्टिगुण उस व्यक्ति के लिए गिरता जाता है। अपने इस अनुभव के आधार पर या आत्म–अवलोकन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि अन्य व्यक्तियों के साथ भी ऐसा होता है। इसी से घटते सीमान्त तुष्टिगुण के नियम का प्रतिपादन हो सका।

तुष्टिगुण विश्लेषण के नियम
(Laws of Utility Analysis)

तुष्टिगुण विश्लेषण के नियमों के आधार पर यह ज्ञात किया जा सका कि हम किसी वस्तु की एक निश्चित मात्रा की ही मांग क्यों करते हैं? इससे कम या अधिक क्यों नहीं करते हैं? इतना ही नहीं बाज़ार में उपभोक्ता के व्यवहार सम्बन्धी तुष्टिगुण विश्लेषण के नियमों के आधार पर ही मांग का नियम (Law of Demand) भी प्रतिपादित किया गया। उपभोक्ता के व्यवहार से सम्बन्धित तुष्टिगुण विश्लेषण के दो मुख्य नियम हैं:

1. घटते सीमान्त तुष्टिगुण का नियम
   (Law of Diminishing Marginal Utility)
2. सम–सीमान्त तुष्टिगुण का नियम
   (Law of Equi-Marginal Utility)

घटते सीमान्त तुष्टिगुण का नियम
(Law of Diminishing Marginal Utility)

घटते सीमान्त तुष्टिगुण का नियम उपभोग का अति महत्त्वपूर्ण नियम है। आत्म–अवलोकलन (Introspection) के आधार पर जर्मन अर्थशास्त्री गौसन ने व्यक्त किया कि जैसे–जैसे एक उपभोक्ता के पास किसी वस्तु के भण्डार में वृद्धि होती जाती है, वैसे वैसे उस वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों से मिलने वाला सीमान्त तुष्टिगुण क्रमशः घटता जाता है। इसी प्रवृत्ति को घटते सीमान्त तुष्टिगुण का नियम कहा जाता है। इस नियम को गौसन का पहला नियम (Gossen's First Law) भी कहा जाता है।

प्रत्येक उपभोक्ता इस नियम को उपभोग के दौरान अनुभव कर सकता है। उदाहरण के लिए मान लो किसी उपभोक्ता को भूख लगी है और वह केलों का उपभोग करता है। उपभोक्ता को पहले केले से बहुत अधिक तुष्टिगुण प्राप्त होता है। दूसरे केले के उपभोग से उपभोक्ता को पहले की तुलना में कम तुष्टिगुण प्राप्त होता है। इसी प्रकार जैसे–जैसे उपभोक्ता अतिरिक्त केले का उपभोग करता जाता है वैसे–वैसे उनसे मिलने वाला तुष्टिगुण कम होता जाता है क्योंकि उसकी केला खाने की इच्छा सन्तुष्ट होती जाती है तथा प्रत्येक अगली इकाई की इच्छा कम–कम होती जाती है।

परिभाषा
Definition

डा० मार्शल के अनुसार, "एक व्यक्ति के पास किसी वस्तु की दी हुई मात्रा वृद्धि करने से जो उसको अतिरिक्त लाभ प्राप्त होता है वह वस्तु की मात्रा में प्रत्येक वृद्धि के साथ–साथ घटता जाता है।" (The additional benefit which a person derives from a given stock of a thing diminishes with every increase in the stock that he already has–Dr. Marshall)

प्रो० चैपमैन के अनुसार," किसी वस्तु की जितनी अधिक मात्रा हम अपने पास रखते हैं उसकी उतनी ही हम कम अतिरिक्त वृद्धि करना चाहते हैं यह उसकी अतिरिक्त वृद्धि करना हम उतनी ही अधिक नहीं चाहते हैं। (The more we have of a thing. The less we want additional increments of it or the more we want not to have additional increments of it–Prof. Chapman)

प्रो० सैम्युअलसन के अनुसार, "जैसे–जैसे किसी वस्तु की उपभोग की गई मात्रा बढ़ती है, उस वस्तु की सीमान्त तुष्टिगुण गिरने की प्रवृत्ति रखता है।" (As the amount consumed of a good increases, the marginal utility of the good tends to decrease–Prof. Samuelson)

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि किसी वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों का निरन्तर उपभोग करने से वस्तु की प्रत्येक अगली इकाई से प्राप्त होने वाला सीमान्त तुष्टिगुण अन्य बातें समान रहने पर, कम होता जाता है। इसी प्रवृत्ति को घटते सीमान्त तुष्टिगुण का नियम कहते हैं। इस नियम में अन्य बातें समान रहने की मान्यता की गई है।

नियम से सम्बन्धित अन्य बातों के सम्बन्ध में निम्न मान्यताएँ की गई है:

मान्यताएं
Assumptions

वे कौन–सी अन्य बातें हैं जिनको समान माना गया है? यह नियम तभी लागू हो सकता है जब निम्न बातों या शर्तें विद्यमान् हों तथा समान बनी रहें:

1. तुष्टिगुण का यूटिल में माप अथवा गणनावचक माप सम्भव है।

(Utility can be measured in the cardinal number system)

2. प्रत्येक वस्तु का सीमान्त तुष्टिगुण स्वतन्त्र है।

   (Marginal Utility of every commodity is independent)

3. मुद्रा का सीमान्त तुष्टिगुण स्थिर रहता है।

   (Marginal Utility of money remains constant)

4. जिस वस्तु को उपभोग किया जाना है उसकी सभी इकाइयों का गुण तथा आकार समान रहता है।

   (All the units of a commodity being consumed are of same quality and size)

5. वस्तु की इकाई का आकार उचित होता है।

   (Proper size of units of the commodity)

6. वस्तु की उपभोग निरन्तर किया जाता है।

   (There is continuous consumption of a commodity0

7. उपभोक्ता की आय में परिवर्तन नहीं होता।

   (No change in the income of the consumer)

8. उपभोगता की जाने वाली वस्तु की कीमत तथा इसकी सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतों में कोई परिवर्तन नहीं होता।

   (No Change in the price of the commodity being consumed and the prices of its related goods)

9. उपभोक्ता की रूचि में परिवर्तन नहीं।

   (No change in the taste of the consumer)

10. फैशन तथा मौसम में परिवर्तन नहीं।

    (No Change in the fashion and and season)

नियम की व्याख्या
Explanation of the Law

घटते सीमान्त तुष्टिगुण का नियम आवश्यकता (Want) की एक आधारभूत विशेषता पर आधारित है। आवश्यकता की आधारभूत विशेषता (Fundamental Feature) यह है कि प्रारम्भ में किसी भी आवश्यकता की गहनता (Intensity of want) बहुत अधिक होती है तथा ज्यों–ज्यों हम किसी वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों का उपभोग करते जाते हैं त्यों–त्यों हमारी आवश्यकता की गहनता कम–कम होती जाती है। आवश्यकता की पूर्ण सन्तुष्टि (Complete Satisfaction) होने पर इसकी गहनता शून्य हो जाती है। इसलिए किसी वस्तु की प्रत्येक इकाई के उपभोग से मिलने वाला तुष्टिगुण इससे पहले की इकाई के तुष्टिगुण से कम होता है। (Therefore, the utility obtained from the consumption of every unit of the commodity is less than that of the units consumed earlier), इस नियम को निम्न तालिका तथा चित्र की सहायता से और अच्छी प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है।

मान लीजिए किसी व्यक्ति को भूख लगी है और वह सेब (Apples) खाना चाहता है। इस अवस्था में प्रथम सेब से उसको बहुत अधिक तुष्टिगुण प्राप्त होता है क्योंकि प्रारम्भ में उसकी आवश्यकता की गहनता बहुत अधिक है। मान लो इस तुष्टिगुण का माप यूटिल या इकाई के समान हैं। प्रथम इकाई का उपयोग करने के बाद उपभोक्ता इतना भूखा नहीं रहेगा जितना पहले था। इसलिए दूसरे सेब के उपभोग से उपभोक्ता को तुष्टिगुण की कम इकाइयां प्राप्त होंगी। मान लीजिए दूसरे सेब से उसको 25 इकाई तुष्टिगुण प्राप्त होता है। इस प्रकार तीसरे, चौथे, पांचवे तथा छठे सेब के उपभोग से उसको क्रमशः 20, 15, 10, 5 इकाई तुष्टिगुण प्राप्त होता है। सातवी इकाई के उपभोग से उसको शून्य इकाई तुष्टिगुण प्राप्त होता है तथा उसकी

आवश्यकता या भूख पूर्णतः सनतुष्ट हो जाती है। इसको पूर्ण तृप्ति बिन्दु (Complete satisfaction of want) कहा जाता है। इसके बाद यदि उपभोक्ता आठवीं इकाई का उपभोग करता है उसको बैचनी होती है तथा इससे उसको नकारात्मक तुष्टिगुण (-5 इकाई) प्राप्त होता है। नियम के उपरोक्त उदाहरण को तालिका तथा रेखाचित्र में दर्शाया गया है।

तालिका 2: घटते सीमान्त तुष्टिगुण के नियम की व्याख्या

Units of Apples	Marginal Utiliy
First	30
Second	25
Third	20
Fourth	15
Fifth	10
Sixth	5
Seventh	0 Point of Satiation
Eighth	-5

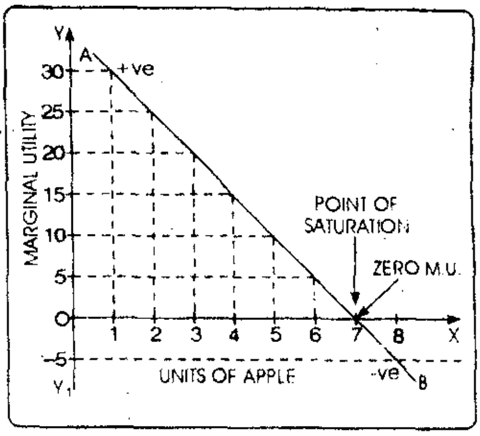

चित्र २

घटते सीमान्त तुष्टिगुण का नियम निम्न चित्र 2 की सहायता से भी प्रकट किया जा सकता है। चित्र 2 के OX अक्ष पर सेब की इकाइयां तथा Oy अक्ष पर सीमान्त तुष्टिगुण (Marginal Utility) की इकाइयाँ को मापा गया है। AB सीमान्त तुष्टिगुण वक्र है जा विभिन्न सेब की इकाइयों से प्राप्त होने वाली सीमान्त तुष्टिगुण को दर्शाता है। यह वक्र बाएं से दाईं ओर नीचे को झुकता चला गया है।

सेब की पहली इकाई से 30, दूसरी से 25, तीसरी से 20, चौथी से 15, पांचवी से 10, छठी से 5, सातवीं से शून्य तथा आठवीं से –5 प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण मापा गया है। सातवीं इकाई से पहले की इकाइयों पर घनात्मक (Positive or + ve) सीमान्त तुष्टिगुण है, सातवीं इकाई पर सीमान्त तुष्टिगुण शून्य तथा आठवीं इकाई पर सीमान्त तुष्टिगुण नकारात्मक (Negative or – Ve) अर्थात –5 मापा गया है।

नियम के अपवाद अथवा सीमाएं
(Exceptions or Limitations of the Law)

घटते सीमान्त तुष्टिगुण के नियम के कुछ अपवाद अथवा सीमाएं है अर्थात् कुछ ऐसी परिस्थितियां हैं जहां ये नियम लागू नहीं होता है। इनका वर्ण निम्न प्रकार से किया गया है:

1. **कंजूस व्यक्ति (Miser Persons)**: यह नियम कंजूस व्यक्तियों पर लागू नहीं होता। ऐसा देखा गया है कि कंजूस

व्यक्तियों के पास जितना अधिक धन एकत्रित होता जाता है उतना ही वे और अधिक धन प्राप्त करना चाहते हैं। इसका कारण यह है कि कंजूस व्यक्तियों के लिए धन का सीमान्त तुष्टिगुण गिरने के स्थान पर धन में वृद्धि के साथ बढ़ता जाता है। अतः कंजेस व्यक्ति इस नियम के अपवाद हैं।

2. **दुर्लभ तथा विचित्र वस्तुएं (Curious and Rare Collections)**: दुर्लभ तथा विचित्र वस्तुओं के संग्रह करने पर भी यह नियम लागू नहीं होता है। जो व्यक्ति दुर्लभ व पूराने सिक्के, डाक टिकट या दुर्लभ चित्र व कविताएं एकत्रित करने का शौक रखते हैं उनके पास इसका स्टॉक बढ़ने से इनका सीमान्त तुष्टिगुण बढ़ता जाता है। इसलिए वे लोग इन वस्तुओं की अधिका अधिक मात्रा स्टॉक करना चाहते हैं। परन्तु वह सीमा के बाद एक अपवाद अवास्तविक बन जाता है।

3. **नशेबाज (Intoxicated Persons)**: यह नियम नशेबाज व्यक्तियों पर लागू नहीं होता है। जैसे शराबी व्यक्ति को प्रत्येक अगले या अतिरिक्त पैग से पहले पैग की अपेक्षा अधिक तुष्टिगुण प्राप्त होता है। परन्तु इसकी एक सीमा होती है जिसके बाद वह स्वयं और पैग पीना बन्द कर देता है तथा उस समय यह नियम लागू होगा। इसलिए फिर यह अपवाद भी अवास्तविक बन जाता है।

4. **दिखावे की वस्तुएं (Goods for Display)**: यह नियम दिखावे की वस्तुओं पर भी लागू नहीं होता। इसका कारण यह है कि ज्यों एक व्यक्ति के पास दिखावे की वस्तुओं का स्टॉक बढ़ता जाता है तो स्टॉक में प्रत्येक वृद्धि के साथ सीमान्त तुष्टिगुण कम नहीं होता बल्कि बढ़ता जाता है। जैसे मंहगे जेवरात, कीमती वस्त्र आदि का संग्रह। परन्तु एक सीमा के बाद यह नियम लागू होता है तथा यह अपवाद भी अवास्तविक बन जाता है।

5. **प्रारम्भिक अवस्था (Initial Stage)**: किसी वस्तु की प्रारम्भिक इकाइयों के उपभोग से मिलने वाला सीमान्त तुष्टिगुण बढ़ता है। इसका कारण यह है कि प्रारम्भिक पहली तथा दूसरी इकाई के उपभोग करने से उस वस्तु को पाने की आवश्यकता और गहन हो जाती है तथा सीमान्त तुष्टिगुण गिरने के स्थान पर बढ़ जाता है। परन्तु कुछ इकाइयों का उपभोग करने के उपरान्त यह नियम अवश्य लागू होता है। एक सीमा के बाद यह अपवाद अवास्तविक बन जाता है।

6. **सुन्दर कविता तथा अच्छी पुस्तक एवं संगीत (Good Peom, Book and Music)**: यह नियम सुन्दर कविता, अच्छी पुस्तक तथा अच्छे संगीत पर लागू नहीं होता। इसका कारण यह है कि इनके बार–बार सुनने तथा पढ़ने से पहले की अपेक्षा अधिक तुष्टिगुण प्राप्त होता है। परन्तु कुछ समय बाद यह नियम अवश्य लागू होता है तथा यह अपवाद भी अवास्तविक बन जाता है।

7. **प्रयोगकर्त्ताओं की संख्या में वृद्धि (Increase in the number of users)**: जब किसी वस्तु के प्रयोग करने वालों की संख्या बढ़ती है तो भी उसका सीमान्त तुष्टिगुण बढ़ जाता है। जैसे दूरभाष लगवाने वालों की संख्या बढ़ जाती है तो सभी दूरभाष वालों का तुष्टिगुण बढ़ता है तथा यह नियम लागू नहीं होता है।

8. **प्रेम (Love)**: यह नियम सच्चे–पवित्र प्रेम भी लागू नहीं होता । जब आप किसी व्यक्ति, राष्ट्र या प्रभु से सच्चा पवित्र प्रेम बढ़ाते हैं तो प्रेम के बदले प्रेम प्राप्त होने लगता है तथा और अधिक प्रेम करने की इच्छा उत्पन्न होती जाती है और तुष्टिगुण बढ़ता जाता है। वाटसन (Watsan) के अनुसार भी यह नियम प्रेम पर लागू नहीं होता।

संक्षेप में, घटते सीमान्त तुष्टिगुण के उपरोक्त अपवाद नाममात्र के ही माने जाते हैं। यह नियम सर्वव्यापी (Universal) तथा व्यावहारिक (Practical) जीवन में लागू होने वाला नियम माना गया है। टांजिग (Taussing) ने इस सम्बन्ध में ठीक ही कहा है कि, "घटते सीमान्त तुष्टिगुण का नियम इतने कम अपवादों के साथ इतने अधिक व्यापक रूप में लागू होता है कि इसको सर्वव्यापी कहने में कोई बड़ी गलती नहीं है।"

नियम के लागू होने के कारण
(Causes of Application of the Law)

घटते सीमान्त तुष्टिगुण के नियम के लागू होने में निम्न कारण सहायक है:

1. **प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ण सन्तुष्टि (Saturation of Every Want)**: यह प्राकृतिक नियम है कि हम प्रत्येक आवश्यकता को पूर्णतः सन्तुष्ट कर सकते हैं। जब वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों का उपभोग किया जाता है ता

सम्बन्धित आवश्यकता सन्तुष्ट होने लग जाती है तथा उस वस्तु को पाने की आवश्यकता की गहनता कम होती जाती है। इससे सीमान्त तुष्टिगुण कम होता जाता है।

2. **वस्तुएँ पूर्ण स्थानापन्न नहीं होती (Commodities are not perfect substitutes of each other)**: प्रो० बोल्डिंग (Boulding) के अनुसार घटते सीमान्त तुष्टिगुण के लागू होने का प्रमुख कारण यह है कि वस्तुएं एक दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न नहीं होती हैं। जैसे कॉफी और दूध एक दूसरे के पूर्ण स्थापन्न नहीं हैं। यदि कॉफी में दूध की मात्रा या इकाइयां बढ़ाते चले जायें तो उस कॉफी को पीने से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त नहीं हो सकती। अर्थात दूध और कॉफी को निश्चित अनुपात में ही प्रयोग करने से बढ़िया कॉफी तैयार होती है। इसलिए दूध की अतिरिक्त इकाइयां कॉफी की निश्चित मात्रा के साथ प्रयोग करने या मिलाने से कम–कम तुष्टिगुण प्राप्त होगा क्योंकि दूध कॉफी का स्थान नहीं ले सकता। अतः इस नियम के लागू होने का यह प्रमुख कारण माना जाता है।

3. **वैकल्पिक प्रयोग** (Alternative Uses): प्रत्येक वस्तु के एक से अधिक अर्थात् वैकल्पिक प्रयोग होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति किसी वस्तु का पहला वह प्रयोग करता है जिससे उसको अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होती है। उसके बाद उस वस्तु का प्रयोग पहले से कम सन्तुष्टि देने वाले उपभोग में प्रयोग किया जाता है। जैसे दूध पहले बच्चों को पिलाने के प्रयोग में लाया जाता है। ज्यों दूध की मात्रा बढ़ती है तो इससे फिर चाय भी तैयार की जाने लगती है। इसके बाद दूध की और मात्रा बढ़ती है तो उसका उपभोग कम महत्त्व वाले प्रयोगों में किया जाने लगता है। इसलिए दूध की मात्रा बढ़ने इसका सीमान्त तुष्टिगुण गिरता जाता है।

नियम का महत्त्व
(Importance of the Law)

इस नियम के बहुत से सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक महत्त्व हैं। निम्न क्षेत्रों में घटते सीमान्त तुष्टिगुण के महत्त्व की जांच की जा सकती है:

1. **मांग के नियम का आधार (Basis of the Law of Demand)**: घटते सीमान्त तुष्टिगुण का नियम मांग के नियम का आधार है। मांग के नियम के अनुसार किसी वस्तु की कीमत कम होने पर उसकी अधिक मांग की जाती है। इसका कारण यह है कि ज्यों वस्तु की ज्यादा मात्रा खरीदी जाती है तो उसका सीमान्तु तुष्टिगुण नियमानुसार गिर जाता है। वस्तु की ज्यादा मात्रा तभी मांगी जा सकती है जब उसकी कीमत कम हो जाए ताकि वस्तु की कीमत उस वस्तु के सीमान्त तुष्टिगुण के बराबर हो सके।

2. **सम-सीमान्त तुष्टिगुण के नियम का आधार (Basis of the Law of the Equi-Marginal Utlity)**: घटते सीमान्त तुष्टिगुण का नियम सम–सीमान्त तुष्टिगुण के नियम को भी आधार प्रदान करता है। यदि विभिन्न वस्तुओं से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण समान नहीं है तो घटते सीमान्त तुष्टिगुण के नियम का अनुसरण करके उपभोग की जा रही वस्तुओं के सीमान्त तष्टिगुण समान किये जा सकते हैं। इससे सम–सीमान्त तुष्टिगुण का नियम लागू हो सकता है।

3. **उपभोग तथा उत्पादन में विविधता (Variety in Consumption and Production)**: यदि उपभोक्ता एक ही वस्तु का उपभोग करता है तो इस नियम के अनुसार शीघ्र ही वस्तु का सीमान्त तुष्टिगुण शून्य पहुंच जाता है। इसलिए उपभोक्ता विभिन्न वस्तुओं का उपभोग करता है ताकि उनका सीमान्त तुष्टिगुण शून्य या काफी अधिक न गिर सके और कुल तुष्टिगुण को अधिक–से–अधिक किया जा सके। इसलिए उपभोक्ता उपभोग में विविधता रखते हैं। उत्पादक भी इसी कारण वस्तु के उत्पादन में विविधता लाने का प्रयास रखता है।

4. **प्रयोग मूल्य तथा विनियम मूल्य में अन्तर (Difference between value-in-use and value-in-Exchange)**: प्रयोग मूल्य तथा विनियम मूल्य में अन्तर स्थापित करके मूल्य के विरोधाभास (Paradox of Value) की व्याख्या की जा सकती है। 'मूल्य का विरोधाभास' यह है कि पानी की उपयोगिता हीरे से अधिक होने पर भी पानी की कीमत हीरों की कीमत से कम क्यों होती है। इसकी व्याख्या करने के लिए मूल्य को दो भागों में बांटा गया है : (1) प्रयोग मूल्य (Value-in-use) तथा (2) विनियम मूल्य (Value-in-Exchange)। जीवन में हम देखते हैं कि जिन वस्तुओं का प्रयोग मूल्य अधिक होता है उनकी कीमत कम तथा जिनका विनिमय मूल्य अधिक होता उनकी कीमत अधिक होती है। परन्तु ऐसा क्यों? इस समस्या का समाधान घटते सीमान्त तुष्टिगुण के नियम के आधार पर किया जा सकता है। हम जानते हैं कि कुछ वस्तुओं का उपभोग बहुत अधिक मात्रा में किया जाता है जैसे पानी, हवा आदि का उपभोग। इसलिए ऐसी वस्तुओं का सीमान्त तुष्टिगुण काफी कम हो जाता है तथा इस कारण उनकी कीमत या विनिमय मूल्य भी कम होता

है। इसके विपरीत बहुत–सी वस्तुएं जैसे सोने, चांदी, हीरे आदि की बहुत कम इकाइयों का उपभोग किया जाता है इसलिए इनका सीमान्त तुष्टिगुण बहुत अधिक होता है तथा इस कारण इनकी कीमत या विनिमय मूल्य भी अधिक होता है।

5. **कर नीति में सहायक (Helpful in Taxation)**: कर लगाने की नीति भी इसी नियम पर आधारित है। कर लगाते समय वित्त मंत्री अमीरों पर कर की दर अधिक तथा गरीबों पर कर की दर कम लगाता है। इसका कारण यह है कि अमीरों के लिए गरीबों की अपेक्षा धन की सीमान्त तुष्टिगुण कम होता है। इसलिए यह नियम प्रगतिशील कर प्रणाली का आधार माना जाता है कि अमीरों पर कर दर अधिक तथा गरीबों पर कम दर होनी चाहिए।

6. **कीमत निर्धारण में सहायक (Helpful in Price Determination)**: यह नियम वस्तुओं की कीमत निर्धारण में भी सहायक है। यदि कोई विक्रेता किसी वस्तु की अधिक बिक्री करना चाहता है तो वह उस वस्तु की कीमत कम कर देता है। इसका कारण यह है कि विक्रेता को ज्ञात है कि यदि लोग इस वस्तु की अधिक मात्रा का उपभोग करेंगे तो उस वस्तु का सीमान्त तुष्टिगुण कम हो जाएगा। इसलिए लोग इस वस्तु की अधिक मांग तभी कर सकते हैं जब इस वस्तु की कीमत कम कर दी जाती है। अतः घटते सीमान्त तुष्टिगुण का नियम विभिन्न वस्तुओं की कीमत निर्धारण में सहायक है।

7. **उपभोक्ता के सन्तुलन में सहायक (Helpful in Consumers Equilibrium)**: घटते सीमान्त तुष्टिगुण का नियम उपभोक्ता के सन्तुलन को स्थापित करने में सहायक होता है। इस नियम का अनुकरण करते हुए उपभोक्ता किसी वस्तु के उपभोग से अधिकतम सन्तुष्टि तभी प्राप्त कर सकता है जब वह उस वस्तु की केवल उतनी ही इकाइयां खरीदता है जिससे वस्तु से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण की कीमत के बराबर हो सके।

8. **समाजवाद का आधार (Basis of Socialism)**: यह नियम समाजवाद (धन के समान बंटवारे) के हक में है। इसका कारण यह है कि अमीरों के लिए धन की सीमान्त तुष्टिगुण कम होता है तथा गरीबों के लिए धन का सीमान्त तुष्टिगुण अधिक होता है। इसलिए अमीरों पर अधिक कर लगाकर गरीबों में बांट दिया जाये या उन पर इस प्रकार खर्च कर दिया जाए कि सभी के पास धन की मात्रा समान हो जाए तथा धन का सभी के लिए सीमान्त तुष्टिगुण भी समान हो जाए तो इससे समाज के कुल तुष्टिगुण भी समान हो जाए तो इससे समाज के कुल तुष्टिगुण में वृद्धि होगी।

9. **कल्याण-सम्बन्धी सिद्धान्तों का आधार (Basis of Welfare-Theories):** घटते सीमान्त तुष्टिगुण का नियम बहुत से कल्याण सम्बन्धी सिद्धान्त जैसे सामाजिक कल्याण फलन (Social Welfare Function) आदि को आधार प्रदान करता है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में महत्त्व (Importance in International Trade): यह नियम हमारा मार्ग दर्शन करता है कि जिस वस्तु का घरेलू मांग से अधिक उत्पादन होता है तो उसका निर्यात करना चाहिए। इसके विपरीत यदि किसी वस्तु का उत्पादन उसकी मांग से कम है तो उसका आयात करना चाहिए। ऐसा करने से समाज का कुल तुष्टिगुण बढ़ सकेगा।

क्या यह नियम मुद्रा पर लागू होता है ?
(Does this Law Apply to money?)

प्रो० मार्शल के अनुसार घटते सीमान्त तुष्टिगुण का नियम मुद्रा पर लागू नहीं होता है। अन्य अर्थशास्त्रियों के अनुसार यह नियम मुद्रा पर भी लागू होता है क्योंकि मुद्रा भी एक वस्तु है। जैसे किसी अन्य वस्तु की मात्रा बढ़ने से उसका सीमान्त तुष्टिगुण घटता जाता है ठीक इसी प्रकार एक व्यक्ति के पास ज्यों–ज्यों मुद्रा की मात्रा बढ़ती जाती है तो मुद्रा का सीमान्त तुष्टिगुण भी घटता जाता है। सामान्य जीवन में हम देखते हैं कि एक गरीब व्यक्ति के लिए 100 रु० का महत्त्व अधिक है परन्तु अमीर व्यक्ति के लिए 100 रु० का महत्त्व नगण्य है। अतः मुद्रा की मात्रा में वृद्धि होने से उसका महत्त्व या सीमान्त तुष्टिगुण घटता जाता है तथा यह नियम मुद्रा पर भी लागू होता है।

प्रो० मार्शल ने मुद्रा के सीमान्त तुष्टिगुण को स्थिर माना है। इसका कारण यह था कि उन्होंने मुद्रा को तुष्टिगुण मापने का एक पैमाना (Measuring Rod) बनाना चाहा। मुद्रा रूपी पैमाना वस्तुओं के तुष्टिगुणों को सही–सही तभी माप सकता था जब मुद्रा का अपना तुष्टिगुण या मूल्य स्थिर रहे। यदि ऐसा नहीं होता है तो मुद्रा रूपी पैमाना सही माप नहीं दे सकेगा।

आलोचना
(Criticism)

घटते सीमान्त तुष्टिगुण की मुख्य आलोचनाएं निम्नलिखित है:

1. **वस्तु के गुण में परिवर्तन (Change in Quality of the Commodity):** वस्तु के गुण में परिवर्तन होने पर यह नियम लागू नहीं होता है। जैसे यदि पहला आम खट्टा हो तथा दूसरा आम मीठा हो तो सीमान्त तुष्टिगुण गिरने के स्थान पर बढ़ेगा।

2. **वस्तु का अनुपयुक्त आकार (Unsuitable size of the commodity):** जिस वस्तु का उपभोग किया जा रहा है यदि उसकी इकाइयों का आकार सामान्य से बहुत छोटा है तो यह नियम लागू नहीं होगा। इसका कारण यह होता है कि ऐसी अवस्था में उस वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा और भड़क उठती है तथा सीमान्त तुष्टिगुण गिरने के स्थान पर बढ़ने लग जाता है। जैसे प्यासे व्यक्ति को पानी चम्मच से पिलाया जाए तो हर अगला पानी का चम्मच पीने से सीमान्त तुष्टिगुण बढ़ जाएगा।

3. **आय में परिवर्तन (Change of Income):** उपभोक्ता की आय में परिवर्तन होने पर भी नियम लोगू नहीं होता है। जैसे किसी व्यक्ति की आय अंगूर का उपभोग करने के दौरान बढ़ जाती है तो अंगूर से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण बढ़ जायेगा क्योंकि अंगूर खाने की इच्छा आय बढ़ने के साथ बढ़ जाती है। अतः आय में परिवर्तन होने पर भी नियम लागू नहीं होता है।

4. **उपभोग के समय में परिवर्तन (Change in time of Consumption):** यदि उपभोक्ता किसी वस्तु का उपभोग निरन्तर न करके अलग–अलग समय पर करता है तो भी यह नियम लागू नहीं होगा। जैसे उपभोक्ता एक रोटी सुबह खाता है, दूसरी रोटी दोपहर तथा तीसरी सायं के समय खाता है तो यह आवश्यक नहीं कि सीमान्त तुष्टिगुण कम हो, अर्थात् यह बढ़ भी सकता है।

5. **आदत (Habits):** जब किसी वस्तु के उपभोग की आदत पड़ जाती है तो भी यह नियम लागू नहीं होता। जैसे सिगरेट की आदत पड़ने पर सिगरेट का सीमान्त तुष्टिगुण बढ़ सकता है।

6. **रुचि में परिवर्तन (Change in Taste):** जब किसी वस्तु के प्रति उपभोक्ता की रुचि में परिवर्तन आ जाता है तो भी यह नियम लागू नहीं होता है। जैसे यदि किसी फल के लिए आप की रुचि बढ़ जाती है तो इसकी अतिरिक्त इकाइयों का तुष्टिगुण बढ़ सकता है।

7. **फैशन में परिवर्तन (Change in Fashion):** जो वस्तु फैशन में है उस वस्तु पर भी यह नियम लागू नहीं होता है। फैशन वाली वस्तु की अतिरिक्त इकाई का तुष्टिगुण बढ़ता रहता है तथा यह नियम लागू नहीं होता है।

8. **नशा (Intoxication):** नशे की स्थिति में भी यह नियम लागू नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि नशे के प्रभाव से उपभोक्ता का स्वभाव आदि बदल जाते हैं।

9. **वस्तु तथा सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन (Change in the price of the commodity and its Related Goods):** जिस वस्तु का उपभोग किया जा रहा है उस वस्तु की कीमत तथा उस वस्तु से सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतों में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होना चाहिए। यदि कीमतों में परिवर्तन हो जाता है तो उपभोक्ता की इन वस्तुओं के लिए इच्छा में परिवर्तन हो जाता है तथा यह नियम लागू नहीं होता है।

10. **तुष्टिगुण को मापा नहीं जा सकता (Utility cannot be measured):** इस नियम की आलोचना इसलिए भी की जाती है कि यह नियम इस तथ्य पर आधारित है कि वस्तुओं के तुष्टिगुणों का माप किया जा सकता है। परन्तु वास्तव में तुष्टिगुण एक मानसिक अवस्था का द्योतक है जिसको मापा नहीं जा सकता।

घटते सीमान्त तुष्टिगुण के नियम द्वारा मांग वक्र निकलना (Derivation of Demand Curve through the Law of Diminishing Marginal Utility)

उपभोक्ता किसी वस्तु की निश्चित मात्रा की क्यों मांग करता है? इस मात्रा से अधिक या कम क्यों नहीं मां करता है? या

उपभोक्ता कम कीमत पर अधिक मांग तथा अधिक कीमत पर कमा मांग क्यों करता है? इसका कारण घटते सीमान्त तुष्टिगुण का नियम है जो व्यक्त करता है कि एक उपभोक्ता किसी वस्तु की जितनी अधिक मात्रा खरीदता जायेगा उस वस्तु का सीमान्त तुष्टिगुण उतना ही कम होता जाएगा। वस्तुतः एक उपभोक्ता किसी वस्तु की उतनी ही कीमत देने को तैयार होता है जितनी उस वस्तु से सीमान्त तुष्टिगुण प्राप्त होता है। यदि किसी वस्तु से कम सीमान्त तुष्टिगुण प्राप्त हो रहा होता है तो उपभोक्ता उस वस्तु की कम कीमत देने को तैयार होता है। इसके विपरीत यदि किसी वस्तु से अधिक सीमान्त तुष्टिगुण प्राप्त होता है तो उपभोक्ता उस वस्तु की अधिक कीमत देने को तैयार होता है। अतः मांगी गई मात्रा पर कीमत (P)=सीमान्त तुष्टिगुण (MU) होता है।

$$P=MU$$

वस्तु की अधिक मात्रा खरीदने से, घटते सीमान्त तुष्टिगुण के नियम अनुसार, उसका सीमान्त तुष्टिगुण कम हो जाता है। इसलिए उपभोक्ता उस वस्तु की अधिक मात्रा तभी खरीदेगा जब उसकी कीमत कम हो जायेगी। अर्थात् उपभोक्ता वस्तु की कीमत तथा सीमान्त तुष्टिगुण में तुलना करता रहता है। यदि सीमान्त तुष्टिगुण कीमत से ज्यादा है तो वह वस्तु की कीमत बढ़ा देता है तथा बढ़ता रहता है जब तक सीमान्त तुष्टिगुण गिर कर कीमत के बराबर नहीं हो जाता। इसके विपरीत यदि सीमान्त तुष्टिगुण वस्तु की कीमत से कम है तो वह वस्तु की मांग घटा देता है तथा उतनी ही मांग करता है जिससे वस्तु की कीमत सीमान्त तुष्टिगुण के बराबर हो जाये। यदि MU को मुद्रा की इकाइयों में मापा जाए तो किसी वस्तु की मांग वक्र उस वस्तु के MU वक्र के धनात्मक माप के समान होगा। यह निम्न तालिका तथा चित्र से स्पष्ट होता है: यहां कल्पना की गई है कि एक इकाई मुद्रा = एक इकाई सीमान्त तुष्टिगुण।

तालिका 3

Units of Commodity	MU	Price
1	20	20
2	15	15
3	10	10
4	5	5

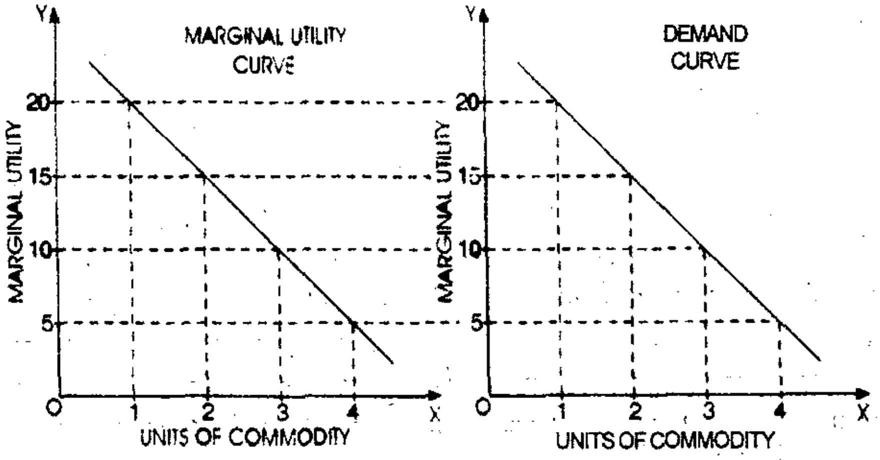

चित्र 3

सीमान्त तुष्टिगुण बराबर हैं। उपभोक्ता दो इकाइयों की मांग तभी कर सकता है जब कीमत गिर 15 हो जाए क्योंकि दो इकाई की मांग करने पर उपभोक्ता का सीमान्त तुष्टिगुण गिर कर 15 हो जाता है। परन्तु यदि कीमत 20 ही बनी रहती है और तुष्टिगुण गिर कर 15 हो जाये तो वह दो इकाई की मांग नहीं करेगा क्योंकि उसको हानि होती है। इसलिए दो इकाइयों की मांग तभी की जायेगी जब कीमत गिरकर 15 हो जाती है। इसी कारण उपभोक्ता कम कीमत पर अधिक मांग और अधिक कीमत पर कम मांग करता है। अतः मांग वक्र घटते सीमान्त तुष्टिगुण के नियम पर आधारित है।

सम-सीमान्त तुष्टिगुण का नियम
(Law of Equi-Marginal Utility)

तुष्टिगुण विश्लेषण की सहायता से उपभोक्ता की मांग की व्याख्या करने वाला सम–सीमान्त तुष्टिगुण का नियम उपभोग का दूसरा महत्त्वपूर्ण नियम है। यह नियम भी 19वीं शताब्दी में एक फ्रेंच इन्जीनियर गौसन द्वारा प्रतिपादित किया गया था। इसलिए यह नियम गौसन का द्वितीय नियम (Second Law of Gossen) भी कहा जाता है। जब उपभोक्ता दो या दो से अधिक वस्तुओं का उपभोग कर रहा होता है तो यह नियम मार्ग दर्शन करता है कि वह विभिन्न वस्तुओं को किस अनुपान में खरीदे ताकि उसका कुल तुष्टिगुण अधिकतम हो सके। अर्थशास्त्र में सम–सीमान्त तुष्टिगुण का नियम अनेक नामों जैसे अधिकतम सन्तुष्टि का नियम (Law of Maximum Satisfaction), प्रतिस्थापन का नियम (Law of Substitution), अनुपातिकता का नियम (Law of Proportionality) आदि से जाना जाता है।

इस नियम के अनुसार एक उपभोक्ता को अपनी सीमित आय विभिन्न वस्तुओं पर इस प्रकार खर्च करनी चाहिए ताकि सभी वस्तुओं से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण समान हो। ऐसा करने से उपभोक्ता को अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होगी, जिस कारण इस नियम को अधिकतम सन्तुष्टि का नियम (Law of Maximum Satisfaction) कहा जाता है। इस नियम को प्रतिस्थापन का नियम इसलिए कहा जाता है क्योंकि इस नियम के अनुसार एक उपभोक्ता अधिक सीमान्त तुष्टिगुण देने वाली वस्तु का कम सीमान्त तुष्टिगुण देने वाली वस्तु के लिए तब तक प्रतिस्थापन करेगा जब तक वस्तुओं का सीमान्त तुष्टिगुण बराबर नहीं हो जाता।

इस नियम को अनुपातिका का नियम इसलिए कहा जाता है क्योंकि इस नियम के अनुसार एक उपभोक्ता को अपनी सीमित आय विभिन्न वस्तुओं पर इस अनुपात से खर्च करनी चाहिए ताकि सभी वस्तुओं से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण समान हो सके। इस नियम का महत्त्व इतना व्यापक है कि यह नियम अर्थशास्त्र के प्रत्येक क्षेत्र जैसे उपभोग, उत्पादन, विनिमय, वितरण, राजस्व आदि सभी में लागू होता है। इसीलिए प्रो० रोबिन्ज ने इसको अर्थशास्त्र का नियम (Law of Economics) भी कहा है।

परिभाषाएं
(Definitions)

1. डा० मार्शल के अनुसार, "यदि किसी व्यक्ति के पास एक ऐसी वस्तु है जिसको वह अनेक उपभोगों में प्रयुक्त कर सकता है तो वह इसका अनेक उपभोगों में वितरण इस प्रकार करेगा ताकि प्रत्येक उपभोग में इसका सीमान्त तुष्टिगुण समान हो।" (If a Person has a thing which he can put to several uses he will distribute it among these uses in such a way that it has the same marginal utility in all.—Dr. Marshall)
2. प्रो० लिप्सी के अनुसार, "कोई गृहस्थी अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए अपने व्यय को वस्तुओं पर इस प्रकार बाटेंगे ताकि प्रत्येक वस्तु पर खर्च होने वाली मुद्रा की अन्तिम इकाई से मिलने वाला तुष्टिगुण बराबर–बराबर हो।" (The household maximising its utility will so allocate its expenditure between commodities that the last penny spent on each is equal—Lipsey)

मान्यताएं
(Assumptions)

सम–सीमान्त तुष्टिगुण का नियम निम्न मुख्य मान्यताओं पर आधारित है:

1. **गणनावचक (Cardinal)**: तुष्टिगुण को गणनावाचक संख्याओं जैसे: 1, 2, 3, 4, ... इत्यादि संख्याओं में मापा जा

सकता है।

2. **मुद्रा का स्थिर सीमान्त तुष्टिगुण (Constant Marginal Utility of Money)**: x मुद्रा का सीमान्त तुष्टिगुण स्थिर रहता है।
3. **विवेकशील उपभोक्ता (Rational Consumer)**: उपभोक्ता विवेकशील है अर्थात् वह अपनी आय को इस प्रकार खर्च करना चाहता है ताकि उसको अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो।
4. **स्थिर आय (Constant Income)**: उपभोग के दौरान उपभोक्ता की आय स्थिर रहती है।
5. **स्थिर कीमतें (Constant Prices)**: वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहती हैं।
6. **विभाज्य वस्तुएं (Divisible Goods)**: इस नियम की मान्यता के अनुसार वस्तुओं की इकाइयों को छोटे छोटे भागों में बांटा जा सकता है।
7. **रुचि, फैशन व रीति-रिवाज स्थिर (Constant Taste, Fashion and Customs)**: कल्पना की गई है कि उपभोक्ता की रुचि, फैशन व रीति–रिवाज स्थिर रहते हैं अर्थात् उनमें उपभोग के दौरान कोई परिवर्तन नहीं होता।
8. **हिसाबी उपभोक्ता (Calculating Consumer)**: इस नियम की यह भी मान्यता है कि उपभोक्ता हिसाबी व्यक्ति है अर्थात वह हिसाब लगाता रहता है कि सभी वस्तुओं पर खर्च किए गए अन्तिम रुपये से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण समान हुआ है या नहीं।

व्याख्या

(Explanation)

इस नियम की व्याख्या एक उदाहरण द्वारा की जा सकती है। मान लीजिए किसी उपभोक्ता की सीमित आय पांच रुपए है। इस सीमित आय को वह दो वस्तुओं सेब तथा आम पर इस प्रकार खर्च करना चाहता है ताकि अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त कर सके। यहां कल्पना की गई है कि दोनों वस्तुओं की कीमत एक रुपया प्रति इकाई है। अब उपभोक्ता अपने 5 रुपये व्यय को आम तथा सेब पर किस प्रकार बांटे ताकि उसका कुल तुष्टिगुण अधिकतम हो सके? इसकी व्याख्या निम्न तालिका की सहायता से की गई है:

तालिका 4

मौद्रिक आय की इकाई	सेबों से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण	आय से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण
1st	20 (3rd)	25 (Ist)
2nd	15 (4th)	20 (2nd)
3rd	10	15 (5th)
4th	5	10
5th	0	5

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि उपभोक्ता अपनी सीमित मौद्रिक आय को एक–एक रुपया करके खर्च करता है। यदि वह पहला रुपया (Ist) आम पर खर्च करता है तो उसको 25 इकाई सीमान्त तुष्टिगुण प्राप्त होता है तथा सेब पर खर्च करने से उसको केवल 20 इकाई सीमान्त तुष्टिगुण प्राप्त होता है। इसलिए पहला रुपया वह आम खरीदने पर खर्च करेगा। दूसरा रुपया वह आम पर भी खर्च कर सकता है तथा सेब पर भी खर्च कर सकता है क्योंकि दोनों अवस्थाओं में उसको 20 इकाई सीमान्त तुष्टिगुण प्राप्त होता है। मान लीजिए वह दूसरा रुपया (2nd) आम पर ही खर्च करता है। अब तीसरा रुपया (3rd) वह अवश्य ही सेब पर खर्च करेगा क्योंकि सेब से अधिक सीमान्त तुष्टिगुण अर्थात् 20 इकाई तथा आम से कम सीमानत तुष्टिगुण अर्थात् 15 इकाई ही प्राप्त होगा। इसी प्रकार वह चौथा रुपया (4th) सेब पर तथा पांचवां रुपया (5th) आम पर खर्च करेगा। उपभोक्ता द्वारा दोनों वस्तुओं पर इस प्रकार खर्च किया गया है ताकि प्रत्येक वस्तु पर खर्च किया गया अन्तिम रुपया समान सीमान्त तुष्टिगुण दे सके। सीमित आय को इस प्रकार खर्च करने से दोनों वस्तुओं से सीमान्त तुष्टिगुण सामान प्राप्त

होता है तथा उपभोक्ता का कुल तुष्टिगुण अधिकतम होता है। कैसे?

उपभोक्ता को आमों से मिलने वाला कुल तुष्टिगुण:

=25+20+15=60

उपभोक्ता को सेबों से मिलने वाला कुल तुष्टिगुण:

=20+15=35

आमों तथा सेब दोनों से मिलने वाला कुल तुष्टिगुण:

60+35=95 इकाइयां

सम सीमान्त तुष्टिगुण का नियम पालन करने पर उपभोक्ता का कुल तुष्टिगुण 95 इकाइयां प्राप्त होता है। अब यदि उपभोक्ता इस नियम का पालन नहीं करता तथा वह 2 रुपए की इकाइयां आम पर और 3 रुपए की इकाइयां सेब पर खर्च करता है तो उसका कुल तुष्टिगुण निम्न प्रकार ज्ञात किया जाता है:

आम का कुल तुष्टिगुण = 25+20=45

सेब का कुल तुष्टिगुण = 20 +15 + 10 = 45

आम तथा सेब दोनों का कुल तुष्टिगुण = 90 इकाइयां

कुल तुष्टिगुण की 90 इकाइयां कुल तुष्टिगुण की 95 इकाइयों से कम हैं इसलिए अब उपभोक्ता को अधिकतम कुल तुष्टिगुण प्राप्त नहीं हो रहा है। अतः इससे सिद्ध होता है कि यदि उपभोक्ता सम–सीमान्त तुष्टिगुण के नियम पर चलकर 3 इकाई आम तथा 25 इकाई सेब खरीदता है तो उपभोक्ता को दोनों वस्तुओं से समान सीमान्त तुष्टिगुण प्राप्त होता है तथा उसका कुल तुष्टिगुण अधिकतम (95 इकाइयां) होता है।

यह नियम रेखाचित्र की सहायता से भी दर्शाया जा सकता है।

उपरोक्त चित्र 7.5 के Part A में आमों से मिलने वाला सीमान्त तुष्टिगुण तथा Part B में सेबों से मिलने वाला सीमान्त तुष्टिगुण वक्र दर्शाये गए हैं। इस चित्र में स्पष्ट है कि यदि उपभोक्ता 3 रुपए आमों पर तथा 2 रुपए सेबों पर खर्च करता है तो दोनों वस्तुओं से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण समान (15 इकाई) होता है। सम–सीमान्त रेखा (Equi-M.U.Line) दोनों वस्तुओं पर खर्च किये गए रुपए की अन्तिम इकाई से मिलने वाले सीमान्त तुष्टिगुण को समान प्रकट कर रही है। इस अवस्था में उपभोक्ता को अधिकतम तुष्टिगुण या सन्तुष्टि (Maximum Satisfaction) प्राप्त हो रहा है।

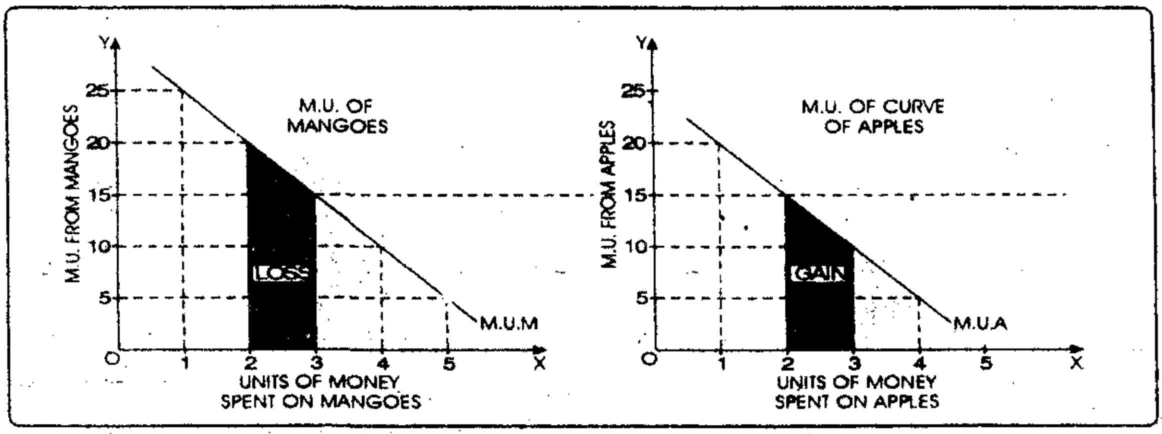

परन्तु यदि उपभोक्ता आमों पर 2 रुपए तथा सेब पर 3 रुपए खर्च करता है तो दोनों से मिलने वाला सीमान्त तुष्टिगुण समान नहीं होगा। इस अवस्था में आमों से 20 इकाई सीमान्त तुष्टिगुण तथा सेब से 10 इकाई सीमान्त तुष्टिगुण प्राप्त होगा। अर्थात् उपभोक्ता को लाभ (Gain) कम तथा हानि (Loss) अधिक होगी जिसको आच्छादित आकृतियों में दर्शाया गया है। सीमित आय को इस प्रकार खर्च करने से अधिकतम से कम तुष्टिगुण प्राप्त होगा। अर्थात् पहले 95 इकाई TU मिलती थी तथा अब केवल 90 इकाई TU प्राप्त होगी।

नियम का सामान्य कथन
(General Statement of the Law)
Or
नियम की आधुनिक व्याख्या
(Modern Statement of the Law)

सम–सीमान्त तुष्टिगुण के नियम को आधुनिक अर्थशास्त्री आनुपातिकता के नियम (Law of Proportionality) के नाम से पुकारते हैं। आनुपातिकता के नियम के अनुसार जब व्यक्ति अपनी सीमित आय को विभिन्न वस्तुओं पर इस अनुपात में खर्च करता है कि प्रत्येक वस्तु पर खर्च किया गया अन्तिम रुपये का सीमान्त तुष्टिगुण समान हो तो उसका कुल तुष्टिगुण अधिकतम होगा। अन्य शब्दों में विभिन्न वस्तुओं पर इस प्रकार खर्च किया जाना चाहिए ताकि उनसे प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण तथा उनकी कीमत के अनुपात में समानता हो सके। इस नियम में वस्तुओं को पूर्ण विभाजनशील माना गया है। मान लीजिए उपभोक्ता सेब का उपभोग कर रहा है तथा सेब की कीमत 5 रुपये प्रति इकाई है। मान लो सेब की अन्तिम इकाई से प्राप्त तुष्टिगुण या सेब का सीमान्त तुष्टिगुण 25 इकाई है। इसलिए सेब की अन्तिम इकाई से मिलने वाला प्रति रुपया सीमान्त तुष्टिगुण अग्र सूत्र से ज्ञात किया जा सकता है:

$$\frac{MUA}{PA}=\frac{25}{5}=5$$ इकाई प्रति रुपया सीमान्त तुष्टिगुण

सूत्र में MUA = सेब से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण तथा PA = सेब की कीमत है। मान लो उपभोक्ता एक अन्य वस्तु सन्तरे (Orange) का उपभोग कर रहा है जिसकी कीमत 4 रुपये प्रति इकाई है। मान लो सन्तरे की अन्तिम इकाई से प्राप्त तुष्टिगुण या सीमान्त तुष्टिगुण 20 इकाई है। सूत्र के अनुसार सन्तरे से प्राप्त प्रति रुपया सीमान्त तुष्टिगुण कितना होगा?

इसकी व्याख्या निम्न प्रकार है:

$$\frac{MU_A}{P_A}=\frac{20}{4}=5$$ इकाई प्रति रुपया सीमान्त तुष्टिगुण

सूत्र में MUo = सन्तरे से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण तथा Po = सन्तरे की कीमत।

सेब तथा सन्तरे दोनों वस्तुओं से प्रति रुपया समान सीमान्त तुष्टिगुण प्राप्त हो रहा है। नियम के अनुसार इसी अनुपात में खर्च किया जाना चाहिए ताकि प्रति रुपया सीमान्त तुष्टिगुण सभी वस्तुओं से समान प्राप्त हो। परन्तु यदि वह सेब पर अधिक खर्च करता है तो प्रति रुपया सेब का सीमान्त तुष्टिगुण सन्तरे की तुलना कम हो जायेगा तथा कुल तुष्टिगुण अधिकतम नहीं हो सकेगा और नियम लागू नहीं होगा।

इसलिए अधिकतम सन्तुष्टि करने के लिए उपभोक्ता को विभिन्न वस्तुओं पर इस अनुपात में खर्च करना चाहिए ताकि सभी वस्तुओं से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण तथा उनकी कीमत का अनुपात समान हो सके। अतः

$$\frac{MU_O}{P_O}=\frac{MU_B}{P_B}=\frac{MU_C}{P_C}=\ldots\ldots\frac{MU_n}{P_n}$$

अर्थात् एक व्यक्ति A, B, C .... n इत्यादि अनेक वस्तुओं का उपयोग करते समय एक वस्तु से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण का उनकी कीमत से अनुपात तथा अन्य सभी वस्तुओं से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण का उनकी कीमत के अनुपात परस्पर बराबर होने चाहिए।

नियम का महत्त्व
(Importance of the Law)

सम–सीमान्त या प्रतिस्थापन के नियम का महत्त्व केवल, उपभोग में ही नहीं है बल्कि अर्थशास्त्र के प्रत्येक क्षेत्र में इसके महत्त्व को देखा जा सकता है। इसी कारण प्रो० रोबिन्ज ने इसको अर्थशास्त्र का नियम (Law of Economics) कहा है। इसी बात से प्रभावित होकर प्रो० मार्शल ने कहा कि, "प्रतिस्थापन का नियम प्रायः आर्थिक जांच के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में लागू होता है।" (The Application of the Principle of Substitution extends over almost every field of economic inquiry—Prof. Marshall)

1. **उपभोग में महत्त्व (Importance in Consumption)**: इस नियम का उपभोग के क्षेत्र में विशेष महत्त्व है। इस नियम पर चल पर प्रत्येक उपभोक्ता अपने अधिकतम सन्तुष्टि के उद्देश्य को शीघ्र प्राप्त कर सकता है। यह नियम उपभोक्ता का मार्गदर्शन करता है कि उसे कम सीमान्त तुष्टिगुण देने वाली वस्तु की इकाइयों के स्थान पर अधिक सीमान्त तुष्टिगुण देने वाली वस्तु की इकाइयों को प्रतिस्थापन करते रहने चाहिए जब तक उनका सीमान्त तुष्टिगुण समान नहीं हो जाता। ऐसा करने से उपभोक्ता का कुल तुष्टिगुण अधिकतम हो जाता है।
2. **उत्पादन में महत्त्व (Importance in Producution)**: यह नियम उत्पादक के अपने अधिकतम उत्पादन के उद्देश्य को प्राप्त करने का आधार है। इस नियम के अनुसार उत्पादक को अपने साधन भूमि, श्रम, पूंजी आदि इस अनुपात में लगाने चाहिए ताकि सभी की सीमान्त उत्पादकता समान हो। ऐसा करने से उत्पादक का कुल उत्पादन अधिकतम हो जाता है।
3. **विनिमय में महत्त्व (Importance in Exchange)**: इस नियम का विनिमय के क्षेत्र में भी विशेष महत्त्व है। विनिमय से अभिप्राय वस्तुओं के लेन–देन से है। प्रत्येक व्यक्ति कम सीमान्त तुष्टिगुण देने वाली वस्तु देकर उसके बदले अधिक सीमान्त तुष्टिगुण देने वाली वस्तु लेता है। प्रत्येक व्यक्ति यह प्रक्रिया या क्रय–विक्रय या लेन–देन उस समय तक करता रहता है जब तक विनिमय की जाने वाली वस्तुओं का सीमान्त तुष्टिगुण समान नहीं हो जाता है।
4. **वितरण में महत्त्व (Importance in Distribution)**: अर्थशास्त्र में वितरण से अभिप्राय राष्ट्रीय आय के वितरण से है। यदि राष्ट्रीय आय का वितरण विभिन्न साधनों (जैसे भूमि, श्रम आदि) तथा वर्गों में वितरण सम–सीमान्त तुष्टिगुण के आधार पर होता है तो समाज का वितरण से अधिकतम लाभ या कल्याण होगा। राष्ट्रीय आय का वितरण विभिन्न साधनों तथा वर्गों में इस प्रकार किया जाना चाहिए ताकि सभी को आय से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण समान हो। ऐसा होने से समाज का कुल तुष्टिगुण अधिकतम हो सकेगा।
5. **राजस्व में महत्त्व (Importance in Public Finance)**: राजस्व से अभिप्राय सरकार की आय तथा व्यय से है। सरकार के लिए कर (Taxation) आय का प्रमुख स्रोत है। जब सरकार लोगों पर कर लगाती है तो उनको त्याग (Sacrifice) करना पड़ता है। इस नियम के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति पर कर इतना लगाना चाहिए जिससे कर के रूप में सभी व्यक्तियों का सीमान्त त्याग (Marginal Sacrifice) बराबर हो सके। ऐसा तभी हो सकता है जब सरकार अमीर व्यक्तियों पर कर की दर ऊंची तथा निर्धनों पर कर की दर नीची या कम लगाई जाए। इसी प्रकार सरकारी व्यय का वितरण इस प्रकार किया जाना चाहिए ताकि प्रत्येक प्रकार के खर्च से प्राप्त सीमान्त कल्याण बराबर हो। इस नियम को उपरोक्त अनुसार लागू करने पर अधिकतम सामाजिक लाभ (Maximum Social Advantage) प्राप्त होगा।
6. **आय का बचत तथा उपभोग में बंटवारा (Allocation of Income between Saving and Consumption)**: इस नियम के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति तथा समाज को अपनी–अपनी आय का बचत तथा उपभोग में बंटवारा इस अनुपात में करना चाहिए ताकि दोनों से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण समान हो सके। आय के इस प्रकार बंटवारे से व्यक्ति तथा समाज को अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होगी।
7. **परिसम्पति के वितरण में महत्त्व (Importance in the Distribution of Assets)**: इस नियम के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने धन का विभिन्न परिसम्पतियों (Assets) जैसे बैंक जमा, जमीन, शेयरों, बाण्डों या जेवरात आदि में इस प्रकार वितरण करना चाहिए ताकि प्रत्येक परिसम्पति (Assets) से प्राप्त सीमान्त आय समान हो सके। ऐसा होने पर उसकी कुल आय या सन्तुष्टि अधिकतम हो सकेगी।

8. **निवेश में महत्त्व (Importance in investment):** इस नियम के अनुसार निवेश क्षेत्रों में इस प्रकार करना चाहिए ताकि क्षेत्र में पूंजी की सीमान्त उत्पादकता समान हो सके। निवेश की इकाइयों को कम लाभ वाले क्षेत्रों से हटाकर अधिक लाभ वाले क्षेत्रों में लगाना चाहिए। यह प्रतिस्थापन की प्रक्रिया उस समय तक जारी रखनी चाहिए जब तक सभी क्षेत्रों से सीमान्त लाभ बराबर–बराबर नहीं हो जाता। ऐसा करने से निवेशक के कुल लाभ अधिकतम हो जाते हैं।
9. **समय वितरण में महत्त्व (Importance in Time Distribution):** समय सीमित तथा मूल्यवान् होता है। समय का विभिन्न कार्यों में वितरण इस प्रकार करना चाहिए ताकि सभी कार्यों से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण या सीमान्त उत्पादकता समान प्राप्त हो सके। ऐसा करने से व्यक्ति का अधिकतम कल्याण होता है।
10. **विदेशी व्यापार में महत्त्व (Importance in Foreign Trade):** वस्तुओं के आयात–निर्यात का आधार भी सम सीमान्त तुष्टिगुण का नियम है। हम निर्यात इसलिए करते हैं ताकि जो वस्तु हमारे पास आवश्यकता से अधिक है, उसको बेचकर अधिक सीमान्त तुष्टिगुण वाली वस्तु का आयात किया जा सके। इससे समाज का कुल तुष्टिगुण नियम अनुसार अधिकतम हो सकता है।

संक्षेम में हम कह सकते हैं कि इस नियम का अर्थशास्त्र के सभी क्षेत्रों में विशेष महत्त्व है।

सीमाएं या आलोचना
(Limitations or Criticism)

सम–सीमान्त तुष्टिगुण का नियम अति महत्त्वपूर्ण होने के साथ–साथ इसकी अनेक सीमाएं भी हैं अथवा इसकी आलोचनाएं भी की जाती है:

1. **उपभोक्ता पूर्ण विवेकशील नहीं होते (Consumers are not fully Rational):** इस नियम में यह कल्पना की गई है कि उपभोक्ता पूर्ण रूप से विवेकशील होता है। परन्तु उपभोक्ता पूर्ण विवेकशील नहीं होता है। अनेक बार उपभोक्ता अपनी आदतों, रीति–रिवाजों आदि के कारण कुछ वस्तुओं की मात्रा बहुत अधिक खरीदते हैं तथा अन्य वस्तुओं की कम इकाइयां खरीदते हैं। इससे उनका कुल तुष्टिगुण अधिकतम नहीं हो पाता क्योंकि वस्तुओं का उस परिस्थिति में सीमान्त तुष्टिगुण समान नहीं हो सकता।
2. **उपभोक्ता कम हिसाबी होता है (Consumer is less calculating):** इस नियम के अनुसार उपभोक्ता हिसाब लगाता रहता है कि वस्तुओं की खरीद से कितना–कितना सीमान्त तुष्टिगुण प्राप्त हो रहा है तथा वह खरीद में फेर बदल करता रहता है जब तक सभी वस्तुओं से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण समान नहीं हो जाता। परन्तु वास्तव में उपभोक्ता इतना हिसाबी नहीं होता है।
3. **तुष्टिगुण को इकाइयों में नहीं मापा जा सकता (Cardinal Measurement of Utility is not possible):** यह नियम इस मान्यता पर आधारित है कि तुष्टिगुण को संख्याओं में मापा जा सकता है। परन्तु वास्तव में तुष्टिगुण का इकाइयों में माप नहीं हो सकता क्योंकि यह उपभोक्ता की मानसिक अवस्था को व्यक्त करता है जिसका इकाइयों में माप सम्भव नहीं है।
4. **मुद्रा का सीमान्त तुष्टिगुण स्थिर नहीं रहता (Marginal Utility of Money does not remain constant):** यह नियम इस मान्यता पर आधारित है कि मुद्रा का सीमान्त तुष्टिगुण स्थिर रहता है। परन्तु वास्तव में मुद्रा का सीमान्त तुष्टिगुण भी इसकी मात्रा में वृद्धि के साथ गिरता जाता है क्योंकि मुद्रा भी वस्तु है। इसलिए इस नियम की यह भी एक महत्त्वपूर्ण सीमा या आलोचना है।
5. **सभी वस्तुएं विभाजनशील नहीं होती (All Goods are not Divisible):** यह नियम इस मान्यता पर आधारित है कि वस्तुएं पूर्ण विभाजनशील होती हैं। ऐसा होने पर वस्तुओं की मात्रा कम व अधिक करके उनके सीमान्त तुष्टिगुण समान किये जा सकते हैं। परन्तु घड़ी (Watch), गाय (Cow), पंखा (Fan) आदि अविभाजनशील। इसलिए ऐसी वस्तुओं पर यह नियम लागू नहीं हो सकता है।

6. **कीमतों तथा आय में परिवर्तन (Change in Prices and Income):** इस नियम की एक सीमा यह भी है कि उपभोक्ता की आय तथा खरीदी जाने वाली वस्तुओं की कीमतें स्थिर मानी गई हैं। परन्तु वास्तविक जीवन में हम देखते हैं कि वस्तुओं की कीमतें तथा आय में परिवर्तन होते रहते हैं। इसलिए यह नियम सही–सही लागू नहीं हो सकता।

7. **वस्तुओं की कमी (Shortage of Goods):** जिन वस्तुओं को उपभोक्ता खरीदना चाहता है यदि वे बाजार में उपलब्ध नहीं होती तो यह नियम लागू नहीं हो सकता। फिर उपभोक्ता इन वस्तुओं के प्रतिस्थापन्न पदार्थों को खरीदता है जो उसके तुष्टिगुण को अधिकतम नहीं कर सकते। जैसे कुकिंग गैस की कमी के कारण इसके स्थान पर मिट्टी का तेल खरीदना पड़ सकता है जो उपभोक्ता के कुल तुष्टिगुण को अधिकतम नहीं कर सकता।

8. **पूरक वस्तुऐं (Complementary Goods):** यह नियम पूरक वस्तुओं की खरीद पर भी लागू नहीं होता है क्योंकि इन वस्तुओं का प्रयोग एक निश्चित अनुपात में ही किया जाता है। अर्थात् इनमें से एक वस्तु की मात्रा करके दूसरी वस्तु की मात्रा नहीं बढ़ाई जा सकती। उदाहरण के लिए स्कूटर के साथ पेट्रोल अवश्य प्रयोग करना पड़ेगा।

9. **फैशन, आदत तथा रीति-रिवाज का प्रभाव (Influence of Fashion, Customs and Habits):** वस्तु उपभोक्ता की खरीद पर फैशन, रीति–रिवाज व आदतों आदि में परिवर्तन का भी प्रभाव पड़ता है जिससे यह नियम लागू नहीं होता क्योंकि इस नियम में इन सबको स्थिर माना गया है।

10. **उपभोक्ता की अज्ञानता (Ignorance of the Consumer):** यह नियम उपभोक्ता की अज्ञानता के कारण भी लागू नहीं होता है। उसको बाजार का पूर्ण ज्ञान नहीं होता कि बाजार में कौनसी–कौनसी वस्तुएँ उपलब्ध हैं और उनकी क्या कीमतें हैं।

11. **निश्चित समय अवधि (No Fixed Period):** वास्तव में कोई ऐसी निशिचत समय अवधि नहीं होती जिसके अन्तर्गत उपभोक्ता को अपनी सीमित आय वस्तुओं की खरीद पर खर्च करनी पड़ती है। परन्तु इस नियम की मान्यता है कि एक निश्चित समय अवधि के अन्तर्गत ही उपभोक्ता को अपनी आय वस्तुओं की खरीद पर निरन्तर खर्च करनी पड़ती है। यह अवास्तविक तथा अव्यवहारिक है।

संक्षेप में हम कह सकते है कि इस नियम की अनेक सीमाएं हैं। परन्तु फिर भी प्रत्येक उपभोक्ता इस नियम पर चल कर अपने कुल तुष्टिगुण को अधिकतम करने का प्रयास अवश्य करता है।

उपभोक्ता का सन्तुलन-तुष्टिगुण विश्लेषण
(Consumer's Equilibriums—Utility Analysis)

एक ऐसी स्थिति जिसमें उपभोक्ता अपनी सीमित आय को एक या एक से अधिक वस्तुओं पर व्यय करके अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त कर रहा हो तो वह उपभोक्ता का सन्तुलन (Consumer's equilibrium) कहलाता है। उपभोक्ता का उद्देश्य अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करना होता है। सन्तुलन की स्थिति में उपभोक्ता अपने अधिकतम सन्तुष्टि के उद्देश्य को प्राप्त कर लेता है। इसलिए उपभोक्ता का सन्तुलन उसकी आदर्श स्थिति होती है जिससें वह किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं करना चाहता। यह ध्यान में रखने की बात है कि जब उपभोक्ता अपनी सन्तुष्टि को अधिकतम करता है तो हमारी कल्पना है कि वह केवल आर्थिक पदार्थ (Economic Goods) ही उपभोग करता है। कोई भी वस्तु जो तुष्टिगुण प्रदान करती है वह इस विश्लेषण में आर्थिक पदार्थ (Economic Good) कहलाती है। कोई भी वस्तु जो तुष्टिगुण ह्रास (Disutility) या तुष्टिगुण में कमी करती है वह आर्थिक अशुभ (Economic Bad) कहलाती है।

परिभाषा
(Definition)

प्रो० स्किटोवस्की के अनुसार, "एक उपभोक्ता उस समय सन्तुलन में होता है जब वह अपने वास्तविक व्यवहार को दी हुई परिस्थितियों में सर्वोत्तम मानता है तथा जब तक परिस्थितियों में परिवर्तन नहीं होता वह अपने व्यवहार में कोई परिवर्तन करना नहीं चाहता।" (A consumer is in equilibrium, when he regards his actual behaviour as the best possible under the *circumstances and feels no urge to change his behaviour as long as circumstances remain unchanged*—Prof. T. Scitovosky)

डॉ० मार्शल के अनुसार, "उपभोक्ता सन्तुलन उपभोक्ता की मांग की वह स्थिति है जिसको वह श्रेष्ठतम समझता है और जिसको परिवर्तित करना नहीं चाहता।" (Consumer's equilibrium is that state of consumer's demand which he thinks to be the best and which he does not want to alter—Dr. Marshall)

मान्यताएँ
(Assumptions)

1. तुष्टिगुण का गणनावाचक माप (Cardinal measurement) सम्भव है। अर्थात् तुष्टिगुण को इकाइयों में मापा, जोड़ा या घटाया जा सकता है।
2. उपभोक्ता विवेकशील है। अर्थात् वह अपने तुष्टिगुण फलन को जानता है तथा आय को उपभोग पर खर्च करके अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करना चाहता है।
3. मुद्रा का सीमान्त तुष्टिगुण स्थिर रहता है।
4. प्रत्येक वस्तु का तुष्टिगुण दूसरी वस्तु के तुष्टिगुण से स्वतन्त्र होता है।
5. उपभोक्ता की आय स्थिर रहती है।
6. वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहती हैं।
7. वस्तुएँ विभाजनशील होती हैं।
8. उपभोक्ता की रुचि, फैशन आदि में कोई परिवर्तन नहीं होता।
9. उपभोक्ता को बाजार का पूर्ण ज्ञान होता है। उसे विभिन्न वस्तुओं की कीमतों का ज्ञान होता है।

उपभोक्ता सन्तुलन का तुष्टिगुण विश्लेषण द्वारा उपभोक्ता सन्तुलन का निर्धारण
(Determination of Consumer's Equilibrium through Utility Analysis)

तुष्टिगुण विश्लेषण द्वारा उपभोक्ता के सन्तुलन का निर्धारण निम्न तीन परिस्थितियों में किया जा सकता है:

1. **एक वस्तु जिसका केवल एक उपभोग होता है** (One Commodity with single use)
2. **एक वस्तु जिसके अनेक उपभोग होते हैं** (One commodity with several uses)
3. **अनेक वस्तुएँ** (Several commodities)

1. **एक वस्तु जिसका केवल एक उपभोग होता है** (One Commodity with single use): यदि उपभोक्ता किसी एक ऐसी वस्तु का उपभोग कर रहा हो जिसका केवल एक ही प्रयोग होता है तो उपभोक्ता उस समय सन्तुलन की स्थिति में होगा जब उस से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण उस वस्तु की कीमत के बराबर होता है। उपभोक्ता के सन्तुलन की इस शर्त को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है:

$$MU_x = P_x$$

जब उपभोक्ता किसी वस्तु की इतनी मात्रा खरीद रहा होता है कि वस्तु से प्राप्त तुष्टिगुण (MU_x) इस वस्तु की बाजार कीमत (P_x) के बराबर होता है तो उसको अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो रही होती है। उपभोक्ता इस अवस्था में सन्तुलन में होगा क्योंकि सीमान्त तुष्टिगुण के रूप में सीमान्त प्राप्ति (Marginal Gain) कीमत के रूप में सीमान्त त्याग (Marginal Sacrifice) परस्पर बराबर हैं ($MU_x=P_x$)।

यदि x वस्तु का सीमान्त तुष्टिगुण इसकी कीमत से अधिक ($MU_x>P_x$) है तो X वस्तु की अधिक मात्रा खरीदने से उपभोक्ता की सन्तुष्टि या कल्याण में वृद्धि होगी। इसी प्रकार यदि X वस्तु का सीमान्त तुष्टिगुण इसकी कीमत से कम ($MU_x<P_x$) है तो X वस्तु की मात्रा में कमी करने पर सन्तुष्टि या कल्याण में वृद्धि होगी।

यदि $MU_x=P_x$ है तो उपभोक्ता अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए X वस्तु की खरीद में वृद्धि या कमी करके X वस्तु से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण को उसकी कीमत के बराबर करेगा। हम जानते हैं कि घटते सीमान्त तुष्टिगुण नियम लागू होने के

करण X वस्तु की मात्रा में वृद्धि करने से इसका सीमान्त तुष्टिगुण गिरेगा तथा X की मात्रा में कमी करने पर इसका सीमान्त तुष्टिगुण बढ़ेगा। अतः उपभोक्ता X वस्तु की मात्रा में कमी या वृद्धि उस समय तक करता रहेगा जब तक X वस्तु का सीमान्त तुष्टिगुण (MU_X) इसकी कीमत (P_X) के बराबर नहीं हो जाता। जब $MU_X = P_X$ होता है तो उपभोक्ता सन्तुलन में होता है। उपभोक्ता के सन्तुलन की यह व्याख्या निम्न तालिका तथा चित्र की सहायता प्रकट की जा सकती है। यहां कल्पना की गई है कि तुष्टिगुण को मौद्रिक इकाइयों में मापा जा सकता है।

तालिका

वस्तु की इकाइयां	MU_X	P_X	
1	30	20	$MU_X > P_X$
2	25	20	
3	20	20	$MU_X = P_X$ — C. Equi.
4	15	20	$MU_X < P_X$
5	10	20	

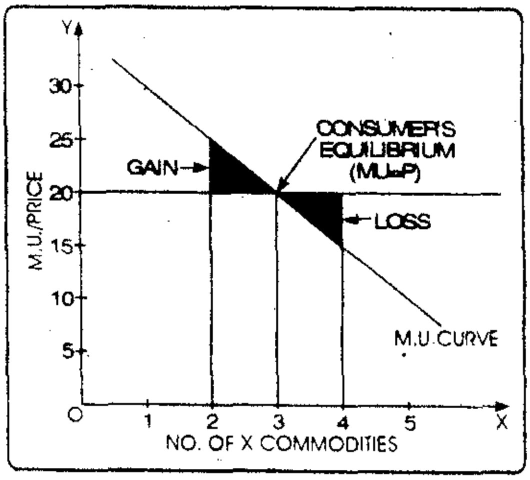

चित्र 5

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि उपभोक्ता X वस्तु की तीन इकाइयां खरीद कर सन्तुलन की स्थिति में होगा क्योंकि इस अवस्था में X वस्तु से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण (MU_X) इसकी कीमत (P_X) के बराबर है। यहाँ उपभोक्ता को अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो रही है इसलिए वह अपनी सन्तुलन की अवस्था में काई परिवर्तन नहीं करना चाहेगा क्येंकि ऐसा करने से उसका सन्तुष्टि स्तर गिर जायेगा। उपभोक्ता के सन्तुलन को अग्र चित्र की सहायता से व्यक्त किया जा सकता है:

रेखाचित्र

रेखाचित्र 5 में OX अक्ष पर X वस्तु की इकाइयां तथा OY अक्ष पर इसकी कीमत मापी गई हैं। MU वक्र नीचे ओर गिरता हुआ नकारारात्मक ढाल वाला है। PP रेखा X वस्तु की स्थिर कीमत को प्रकट करती है। MU वक्र PP रेखा को E बिन्दु पर काटती है जो सन्तुलन का बिन्दु है। यहां $MU_X = P_X$ है। सन्तुलन की अवस्था में उपभोक्ता X वस्तु की तीन इकाइयां क्रय करता है तथा अपने सन्तुष्टि स्तर को अधिकतम करता है।

2. **एक वस्तु जिसके अनेक उपभोग होते हैं (Single commodity with several uses)**: यदि उपभोक्ता किसी ऐसी वस्तु का उपभोग कर रहा हो जिसके अनेक उपभोग हैं तो वह उस समय सन्तुलन में होगा जब वस्तु के प्रत्येक उपभोग से मिलने वाला सीमान्त तुष्टिगुण बराबर होगा, अर्थात्:

MU in use E = MU in use F = in use G = ...Mu in use N

मान लीजिए एक उपभोक्ता प्रतिदिन 5 लीटर दूध खरीदता है जिसको वह दो उपभोगों पीने तथा चाय बनाने में इस अनुपात से प्रयोग करता है ताकि उसकी सन्तुष्टि अधिकतम हो सके। अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए वह दूध को इन दो उपभोगों में इस प्रकार बांटेगा ताकि प्रत्येक उपभोग से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण समान हो जैसा कि निम्न तालिका में स्पष्ट किया गया है।

तालिका

दूध की मात्रा (लीटर में)	पीने में प्रयोग से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण	चाय बनाने में प्रयोग से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण
1	25	20
2	20	15
3	15	10
4	10	5
5	5	0

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि जब उपभोक्ता 3 लीटर दूध पीने में तथा 2 लीटर चाय बनाने में प्रयोग करता है तो दोनों प्रयोगों से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण बराबर होता है। अब उपभोक्ता अपने सन्तुलन की शर्त को पूरा कर रहा होता है तथा अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त कर रहा है :

3 लीटर दूध पीने में प्रयोग से प्राप्त कुल तुष्टिगुण = 25+20+15=60

2 लीटर दूध चाय बनाने से प्राप्त कुल तुष्टिगुण = 20+15=35

दूध के दोनों प्रयोगों से प्राप्त कुल तुष्टिगुण = 60+35=95

अब यदि उपभोक्ता दूध का प्रयोग किसी भिन्न अनुपात से करता है जैसे वह 2 लीटर दूध पीने में तथा 3 लीटर चाय बनाने में या 4 लीटर दूध पीने में तथा 1 लीटर दूध चाय बनाने में प्रयोग करता है तो उसका कुल तुष्टिगुण अवश्य अधिकतम स्तर, जो 95 इकाई है, से हर परिस्थिति में कम होगा। विद्यार्थी स्वयं गणना करके देख सकते हैं। इसको अग्रं चित्र द्वारा भी स्पष्ट किया गया है :

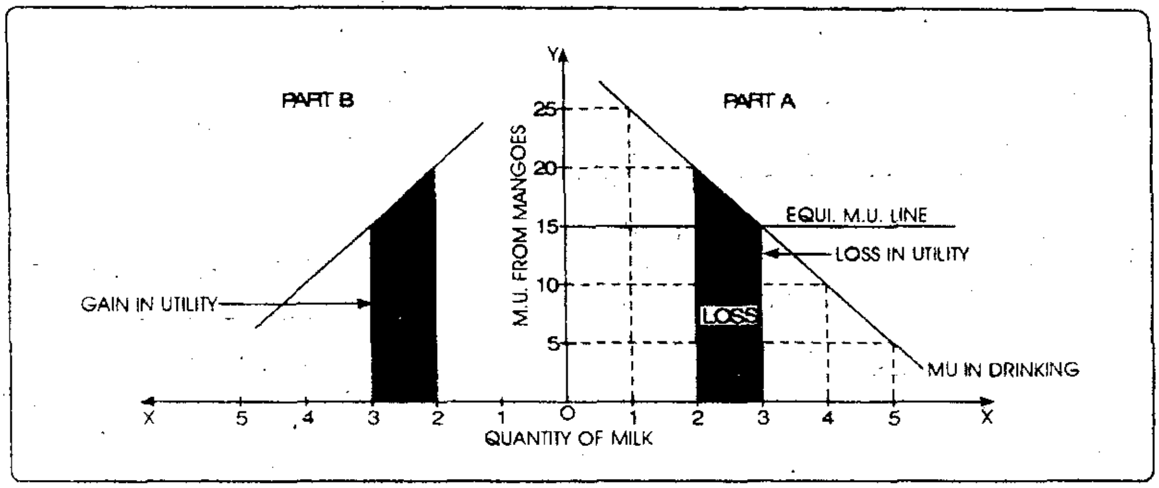

चित्र 6

रेखा चित्र 6 में OX अक्ष पर दूध की मात्रा का लीटरों में तथा OY अक्ष पर दूध से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण मापा गया है। चित्र के A भाग में दूध का पीने के लिए प्रयोग तथा B भाग में चाय बनाने के लिए दूध का प्रयोग दर्शाया गया है। EMU (Equi Marginal Utility) सम सीमान्त तुष्टिगुण रेखा है।

रेखाचित्र 6 से स्पष्ट है कि जब उपभोक्ता 2 लीटर दूध चाय बनाने (B भाग) तथा 3 लीटर दूध पीने (A भाग) में प्रयोग करता है तो दोनों उपभोगों से बराबर सीमान्त तुष्टिगुण (15 इकाई) प्राप्त होता है। यह उपभोक्ता के सन्तुलन की अवस्था को प्रकट करता है जिससे उसको अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होती है।

अब यदि उपभोक्ता 3 लीटर दूध चाय बनाने तथा 2 लीटर दूध पीने में प्रयोग करता है तो तुष्टिगुण में वृद्धि B भाग में छाया वाले भाग तथा तुष्टिगुण में कमी A भाग में छाया वाले भाग के समान नहीं होती है। स्पष्ट है कि तुष्टिगुण में कमी (Loss in Utility) तुष्टिगुण में वृद्धि (Gain in Utility) से अधिक है। इतना ही नहीं दोनों उपभोगों में सीमान्त तुष्टिगुण भी समान नहीं है। अतः यह सन्तुलन की स्थिति नहीं हो सकती। सन्तुलन की स्थिति प्राप्त करने के लिए पहले वाली अवस्था (चाय बनाने में 2 लीटर तथा पीने में 3 लीटर) प्राप्त करनी होगी।

अतः स्पष्ट है कि उपभोक्ता उस समय सन्तुलन की अवस्था में होता है जब वस्तु के प्रत्येक प्रयोग से समान सीमान्त तुष्टिगुण प्राप्त होता है।

अनेक वस्तुएँ
(Several commodities)

कई बार उपभोक्ता अनेक या विभिन्न वस्तुओं का उपभोग कर रहा हो तो वह कैसे सन्तुलन प्राप्त करता है? अनेक वस्तुओं का उपभोग करते समय उपभोक्ता सम–सीमान्त तुष्टिगुण के नियम के अनुसार वस्तुओं पर व्यय करके सन्तुलन की अवस्था को प्राप्त कर सकता है। इस नियम के अनुसार उपभोक्ता अपनी सीमित आय को विभिन्न वस्तुओं पर इस प्रकार खर्च करेगा कि उन सब पर खर्च की गई रुपये की अन्तिम इकाई का सीमान्त तुष्टिगुण बराबर हो जाये। मान लीजिये उपभोक्ता की सीमित आय 5 रुपये है जिसको वह X तथा Y दो वस्तुओं पर खर्च करना चाहता है। यह भी कल्पना की गई है कि इन दोनों की कीमत 1 रुपया प्रति इकाई है।

उपभोक्ता के सन्तुलन को इन दी हई परिस्थितियों में निम्न तालिका तथा मानचित्र द्वारा दर्शाया जा सकता है:

तालिका: उपभोक्ता सन्तुलन–अनेक वस्तुएँ

Quantity of Rupees	*MU of X Commodity*	*MU of Y Commodity*
1	20	18
2	18	16
3	16	14
4	14	12
5	12	10

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि जब उपभोक्ता X वस्तु पर 3 रुपये तथा Y वस्तु पर 2 रुपये खर्च करता है तो दोनों वस्तुओं पर खर्च किया गया अन्तिम रुपया समान सीमान्त तुष्टिगुण (16) देता हैं। इसलिए सम–सीमान्त तुष्टिगुण के नियम के अनुसार उपभोक्ता यहाँ सन्तुलन की स्थिति में है तथा वह अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त कर रहा है। उपभोक्ता का कुल तुष्टिगुण 54+34=88 इकाई है जो दी हुई परिस्थितियों में अधिकतम है। इसका कारण दोनों वस्तुओं से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण समान होता है अर्थात्

$$MU_X = MU_Y = 16$$

अन्य शब्दों में जब एक वस्तु का सीमान्त तुष्टिगुण (MU_X) तथा उसकी कीमत का अनुापत (P_X) अन्य वस्तु का सीमान्त तुष्टिगुण

(MU_Y) तथा उसकी कीमत (P_Y) के अनुपात समान होगा तो उपभोक्ता सन्तुलन की अवस्था में होगा। इसको निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है:

$$\frac{MU_X}{P_X} = \frac{MU_Y}{P_Y}$$

Or

$$\frac{MU_X}{MU_Y} = \frac{P_X}{P_Y}$$

अर्थात् सन्तुलन की अवस्था में वस्तुओं के सीमान्त तृष्टिगुण का अनुपात $\left(\frac{MU_X}{MU_Y}\right)$ उनकी कीमत के अनुपात $\left(\frac{P_X}{P_Y}\right)$ के समान होना चाहिए। उपभोक्ता का सन्तुलन निम्न चित्र की सहायता प्रकट किया जा सकता है।

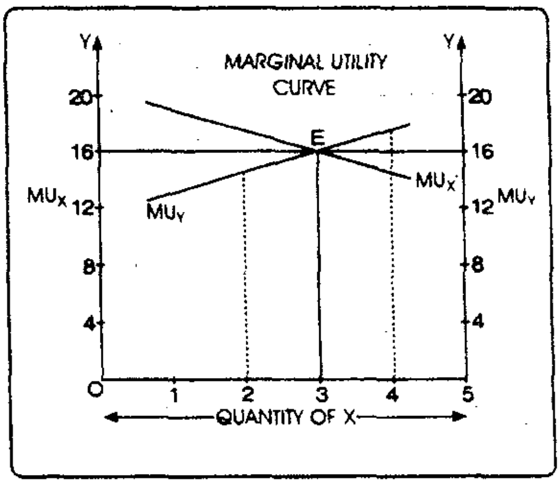

चित्र 7

रेखाचित्र 7 द्वारा दर्शाया गया है कि उपभोक्ता E बिन्दु पर सन्तुलन में होगा। E बिन्दु पर उपभोक्ता X वस्तु की 3 इकाई तथा Y वस्तु की 2 इकाई खरीद कर दोनों वस्तुओं से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण को बराबर (16) कर सका है। इसलिए E बिन्दु पर उपभोक्ता को अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होती है तथा यहाँ उसका सन्तुलन बिन्दु स्थापित होता है।

विद्यार्थी स्वयं हल करें कि:

1. यदि उपभोक्ता के पास 3 रुपए हों तो अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए वह X वस्तु पर कितने रुपए तथा Y वस्तु पर कितने रुपये खर्च करेगा?
2. यदि उसके पास 7 रु० हों तो वह इन दोनों वस्तुओं पर कितने-कितने रु० खर्च करेगा?

भिन्न-भिन्न कीमतों वाली अनेक वस्तुएँ
(Several Commodities with different Prices)

यदि उपभोक्ता भिन्न-भिन्न कीमतों वाली अनेक वस्तुओं का उपभोग कर रहा हो तो वह उस समय सन्तुलन में होगा जब प्रत्येक से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण सम्बन्धित वस्तु की कीमत के अनुपात बराबर-बराबर हों। अन्य शब्दों में उपभोक्ता उस समय सन्तुलन की स्थिति में होता है जब प्रत्येक वस्तु पर व्यय की गई मुद्रा की अन्तिम इकाई या रुपया बराबर-बराबर सीमान्त तुष्टिगुण प्रदान करता हो।

सन्तुलन के लिए निम्न दो शर्तें पूरी होनी चाहिएं:

(1) $$\frac{MU_X}{P_X} = \frac{MU_Y}{P_Y} = \frac{MU_Z}{P_Z} = \dots\dots\dots \frac{MU_n}{P_n}$$

अर्थात् प्रत्येक वस्तु से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण का उसकी कीमत से अनुपात तथा अन्य वस्तुओं से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण का उनकी कीमत से अनुपात परस्पर बराबर होना चाहिए। इस कथन की व्याख्या निम्न उदाहरण द्वारा की जा सकती है। मान लीजिए एक उपभोक्ता दो वस्तुओं X तथा Y का उपभोग करता है।

उपभोक्ता की मौद्रिक आय 55 रुपए है। X वस्तु की कीमत 5 रु० प्रति इकाई तथा Y वस्तु की कीमत 8 रु० प्रति इकाई है। अब उपभोक्ता के सामने समस्या है कि वह X तथा Y वस्तु की कितनी–कितनी मात्रा खरीदे ताकि उसकी सन्तुष्टि अधिकतम हो सके। अन्य शब्दों में X तथा Y वस्तु का श्रेष्ठतम चयन (Optimal Choice) अर्थात् अधिकतम सन्तुष्टि देने वाला संयोग कौन–सा है? इस समस्य का समाधान निम्न तालिका की सहायता से किया जा सकता है:

तालिका

Units of X	MU_X	$\frac{MU_X}{P_X(5)}$	MU_Y	$\frac{MU_Y}{P_Y(8)}$
1	35	7	72	9
2	30	6	64	8
3	25	5	56	7
4	20	4	48	6
5	15	3	40	5
6	10	2	32	4
7	5	1	24	3

सन्तुलन की शर्त

1. कि $\frac{MU_X}{P_X} = \frac{MU_Y}{P_Y}$ होनी चाहिए X तथा Y वस्तुओं की अनेक इकाइयों पर सन्तुष्ट हो रही है। जैसे X की 1 इकाई तथा Y की 3 इकाइयाँ खरीदने पर $\frac{MU_X}{P_X} = \frac{MU_Y}{P_Y}$ समान है अर्थात् 7, 7 हैं। इसी प्रकार X की 2 इकाइयों तथा Y की 4 इकाइयां, X की 3 इकाइयां तथा Y की 5 इकाइयां खरीदी जाएं तो सन्तुलन की प्रथम शर्त सन्तुष्ट हो रही है। इसलिए इस शर्त के आधार पर यह निर्णय नहीं किया जा सकता कि उपभोक्ता वास्तव में X तथा Y की कितनी–कितनी इकाइयां खरीदता है। इसलिए हमें दूसरी शर्त की आवश्यकता है।

2. दूसरी शर्त यह है कि उपभोक्ता की समस्त मौद्रिक आय खर्च होनी चाहिए। उपरोक्त उदाहरण में मौद्रिक आय 55 रु० है।

जब उपभोक्ता X की 3 इकाइयां तथा Y की 5 इकाइयां उपभोग करता है तो X पर व्यय 3 x 5 = 15 रु०, जबकि Y पर व्यय 5 x 8 = 40 रु० होता है। इस प्रकार X तथा Y वस्तु पर कुल व्यय 55 रु० (15+40) है जो उसकी कुल मौद्रिक आय के बराबर है। इसलिए:

Money Income = $X.P_X + Y.P_Y$; = Units of X तथा Y = Units of Y है अतः सामान्य शर्त निम्न प्रकार व्यक्त की जा सकती है।

$$M = X.P_X + y.P_Y + ZP_Z + \dots\dots\dots + NP_n$$

निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि उपभोक्ता उस समय सन्तुलन में होता है जब निम्न शर्तें सन्तुष्ट हो रही हों:

1. $\frac{MU_X}{P_X} = \frac{MY_Y}{P_Y} = \frac{MU_Z}{P_Z} = ... = \frac{MU_n}{P_n}$

2. $M = X.P_X + Y.P_Y + ZP_Z + ... + N.P_n$

सम-सीमान्त तुष्टिगुण के नियम द्वारा मांग वक्र का निर्धारण
(Derivation of Demand Curve through Law of Equi-Marginal Utility)

घटते सीमान्त तुष्टिगुण की तरह ही सम–सीमान्त तुष्टिगुण के आधार पर भी मांग वक्र निकाला जा सकता है या इसका निर्धारण किया जा सकता है। सम–सीमान्त तुष्टिगुण के नियम के अनुसार उपभोक्ता सन्तुलन की स्थिति में उस समय होता है जब वह अपनी सीमित आय को विभिन्न वस्तुओं पर इस प्रकार व्यय करता है कि प्रत्येक वस्तु से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण का उस वस्तु की कीमत का अनुपात परस्पर बराबर हों अर्थात् अग्र शर्त अवश्य पूरी होनी चाहिए:

$$\frac{MU_X}{P_X} = \frac{MU_Y}{P_Y} = ... = \frac{M_n}{P_n}$$

मान लीजिए उपभोक्ता की सीमित आय 20 रुपए है जिसको वह X तथा Y दो वस्तओं पर खर्च करना चाहता है। X वस्तु की कीमत 4 रु० प्रति इकाई तथा Y वस्तु की कीमत 2 रु० प्रति इकाई है। निम्न तालिका से उपभोक्ता के सन्तुलन तथा वस्तुओं की मांग ज्ञात की जा सकती है:

तालिका

Units of X and Y	MUX	$\frac{MU_X}{P_X}$	MU_Y	$\frac{MU_Y}{P_Y}$
1	14	3.6	10	5
2	12	3	8	4
3	8	2	6	3
4	6	1.5	4	2
5	4	1	2	1

X वस्तु की कीमत 4 रु० प्रति इकाई तथा Y की कीमत 2 रु० प्रति इकाई होने के कारण उपभोक्ता X वस्तु की $\frac{1}{6}$ इकाई तथा Y वस्तु की 4 इकाई खरीद कर सन्तुलन में होगा क्योंकि यह उपभोक्ता सन्तुलन की दोनों शर्तें पूरी करता है:

1. $\frac{MU_X}{P_X} = \frac{MU_Y}{P_Y}$

   अर्थात् $\frac{8}{4} = \frac{4}{2} = 2$

2. Money Income = $X.P_X + Y.P_Y$

   20 रु० = 3 x 4 (रु०) + 4 x 2 रु०

   20 रु० = 12 रु० + 8 रु०

X वस्तु की मांग वक्र ज्ञात करने के लिए मान लीजिए X वस्तु की कीमत बढ़ कर 6 रु० प्रति इकाई हो जाती है। उपभोक्ता

की आय और Y वस्तु की कीमत में कोई परिवर्तन नहीं होता है। इसके फलस्वरूप उपभोक्ता असन्तुलन में होगा। अब वह अपनी खरीद में इस प्रकार का परिवर्तन करेगा ताकि प्रत्येक वस्तु से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण बराबर हो।

अतः

$$\frac{MU_X}{P_X} = \frac{(12)}{(6)} = \frac{MU_Y}{P_Y} \frac{(4)}{(2)} = 2$$

X वस्तु की कीमत बढ़ कर 6 रु० प्रति इकाई होने पर अब वह X वस्तु की 2 इकाइयां तथा Y वस्तु की 4 इकाइयां खरीदेगा तथा उसका व्यय (20 रु०) उसकी मौद्रिक आय (20 रु०) के बराबर होगा। इस आधार पर X वस्तु की मांग तालिका तैयार की जा सकती है:

X वस्तु की मांग तालिका

Price of X	Demand for X
4	3
6	2

X वस्तु का मांग वक्र इसकी मांग तालिका के आधार पर चित्र 8 में दर्शाया गया है। जब X की कीमत 4 रु० होती है तो X वस्तु की मांग 3 इकाई है तथा जब कीमत बढ़कर 6 रु० होती है तो मांग कम हो कर 2 इकाई हो जाती है। इस आधार पर DD व्यक्तिगत मांग वक्र निकाला गया है।

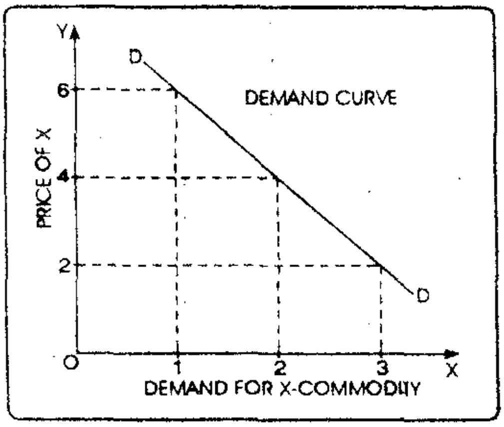

चित्र 8

गणनावाचक तुष्टिगुण विश्लेषण की आलोचना
(Criticism of Cardinal Utility Analysis)

प्रो० हिक्स, ऐलन, ऐजवर्थ आदि अनेक अर्थशास्त्रियों ने गणनावाचक तुष्टिगुण विश्लेषण की निम्न आधार पर आलोचना की है:

1. **तुष्टिगुण व्यक्तिगत है (Utility is Subjective)**: किसी वस्तु में तुष्टिगुण है या नहीं है, कम है या ज्यादा है यह व्यक्ति–व्यक्ति पर निर्भर करता है। तुष्टिगुण मनुष्य की मानसिक अवस्था पर निर्भर करता है जिसका सही माप असम्भव है। परन्तु तुष्टिगुण विश्लेषण में प्रो० मार्शल आदि ने वस्तुओं के तुष्टिगुणों को यूटिल या इकाइयों में माप कर इसको वस्तुगत (Ojective) बना दिया है जो गलत है।

2. **तुष्टिगुण का गणनावाचक माप असम्भव (Cardinal Measurement of Utility is impossible)**: तुष्टिगुण विश्लेषण की यह मान्यता कि तुष्टिगुण मानसिक अवस्था (Psychology) का सूचक है जिसका इकाइयों में माप नहीं हो सकता। मार्शल ने इसको मुद्रा में मापने का प्रयास किया था जो उचित नहीं था।

3. **वस्तु का तुष्टिगुण स्वतन्त्र नहीं है (Utility of Commodity is not independent):** इस विश्लेषण की यह मान्यता है कि वस्तुओं का तुष्टिगुण एक दूसरे से स्वतन्त्र होता है। परन्तु वास्तव में वस्तुओं का तुष्टिगुण एक दूसरे से स्वतन्त्र नहीं है क्योंकि एक वस्तु के तुष्टिगुण पर अन्य वस्तुओं के तुष्टिगुण का प्रभाव पड़ता है। पेट्रोल यदि उपलब्ध नहीं है तो कार का तुष्टिगुण बहुत गिर जायेगा।
4. **मुद्रा का सीमान्त तुष्टिगुण स्थिर नहीं रहता (*Marginal Utility of Money does not remain constant*):** तुष्टिगुण सिद्धान्त में मुद्रा के सीमान्त तुष्टिगुण को स्थिर माना गया है। परन्तु यह मान्यता वास्तविक नहीं है क्योंकि मुद्रा भी एक वस्तु है। इसलिए जैसे अन्य वस्तुओं की मात्रा में वृद्धि होने से उनका सीमान्त तुष्टिगुण गिरता जाता है ठीक इसी प्रकार से मुद्रा की मात्रा में वृद्धि होने से इसका सीमान्त तुष्टिगुण भी गिरता रहता है।
5. **सभी वस्तुएँ विभाजनशील नहीं होती (All goods are not divisible):** इस सिद्धान्त में कल्पना की गई है कि सभी वस्तुएँ विभाजनशील होती हैं। परन्तु यह कल्पना अवास्तविक है क्योंकि अनेक वस्तुएँ ऐसी हैं जिनका छोटी–छोटी इकाइयों में विभाजन नहीं हो सकता जैसे घड़ी, कम्प्यूटर, भैंस आदि। इसलिए ऐसी वस्तुओं का सीमान्त तुष्टिगुण समान नहीं किया जा सकता है।
6. **उपभोक्ता हिसाबी होता है (Consumer is calculating):** तुष्टिगुण सिद्धान्त में उपभोक्ता को कम्प्यूटर की तरह बड़ा हिसाबी माना गया है जो अपने कुल तुष्टिगुण को अधिकतम करने के लिए तुरन्त गणना करता है। परन्तु वास्तविक व्यवहार में उपभोक्ता इतना हिसाबी नहीं होता है।
7. **गिफ्फन के विरोधाभास का स्पष्टीकरण नहीं (No explanation of Giffen's Paradox):** तुष्टिगुण विश्लेषण गिफ्फन विरोधाभास की व्याख्या करने में असमर्थ है। कुछ वस्तुओं की कीमत गिरने से उनकी मांग भी गिर जाती है। इनको गिफ्फन पदार्थ कहा जाता है। इन पदार्थों पर मांग का नियम लागू क्यों नहीं होता इसकी व्याख्या करने में तुष्टिगुण विश्लेषण असमर्थ है।
8. ***आय तथा वस्तुओं की कीमतें स्थिर नहीं रहती (Income and Prices of goods do not remain constant):*** इस सिद्धान्त में उपभोक्ता की आय तथा अन्य वस्तुओं की कीमतों को स्थिर माना गया है। परन्तु वास्तव में ये परिवर्तित होती रहती हैं।
9. **रुचि तथा फैशन में परिवर्तन (Change in Taste and Fashion):** इस सिद्धान्त में उपभोक्ता की रुचि तथा फैशन आदि को स्थिर माना गया है। परन्तु इनमें परिवर्तन होता रहता है। अतः यह सिद्धान्त गलत मान्यताओं पर आधारित है।
10. **बहुत अधिक मान्यताएँ (Too Many Assumptions):** तुष्टिगुण विश्लेषण पर आधारित मांग का सिद्धान्त अत्याधिक कल्पनाओं पर आधारित है जो इस सिद्धान्त को अव्यवहारिक बना देता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि तुष्टिगुण विश्लेषण बहुत–सी अवास्तविक तथा अव्यावहारिक मान्यताओं पर आधारित होता हुए भी यह मांग की व्याख्या का प्रथम तथा महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। ठसकी आलोचना के उपरान्त ही मांग तटस्थता वक्र विश्लेषण तथा प्रकट अधिमान विश्लेषण का प्रतिपादन हो सका।

Annexure

अर्थशास्त्र में अधिक रुचि रखने वालो तथा गणित के विद्यार्थियों के लिए उपभोक्ता के सन्तुलन को गणितीय विधि (Mathematical Derviation) से भी समझा जा सकता है।

मान लो उपभोक्ता का तुष्टिगुण फलन (Utility Function) है:

U = u (x)......................(1)

U = Total Utility or Satisfaction,

X = Quantity of any commodity x and u (x) shows functional relationship such that U depends on Units of *commodity x consumed.*

Total Income of the consumer to be spent on x is:

$\forall = x, P_X$; where his income B (Budget) is given ....(2)

The consumer wants to maximise the difference between his total utility (satisfaction) and Expenditure (Sacrifice).
The problem is that of simple maximisation of the function $F = U - \forall$

$F = U - \forall$

In view of (1) and (2)

$F = u(x) - X.P_X$

The first order condition may be satisfied now

$$\frac{dF}{dx} = \left[\frac{dU}{dx} - P_X\right] = 0$$

The second order condition is $\frac{d^2F}{dx^2} < 0$

Note that x is the decision variable for our single commodity consumer.
The first order condition of consumer's equilibrium says that:

$$\frac{du}{dx} = P_X \text{ or } MU_X = P_X$$

Note that X is the decision variable for our single commodity consumer. He/She can equate $\frac{du}{dx}$ i.e.

M.U. with P_X by changing the quantity of x.
Similarly.

$$\frac{du}{dy} = P_Y \text{ or } MU_Y = P_Y$$

or $\frac{MU_X}{P_X} = \frac{MU_Y}{P_Y}$ = MU of money which is fixed by assump. This reads that the ratio of MU of X to P_X must be equal to ratio of MU of Y to P_y. In other words, the marginal utility per rupee of expenditure must be equalised for both goods X and Y. This can also be written as:

$\frac{MU_X}{P_X} = \frac{MU_X}{P_Y}$; MU ratios must equal their price ratios and the budget equation must be satisfied.

This is the Law of Equi-Marginal utility.
The sufficient condition for maximisation are:

1. $\frac{\partial^2 F}{\partial Y^2} < 0$

2. $\frac{\partial^2 F}{\partial Y^2} < 0$

This would mean that MU of X and Y goods must be declining as per the law of diminishing Marginal Utility.

प्रश्न
(Questions)

1. What is utility ? Distinguish between total utility and marginal utility. Explain the importance of this distinction.

   तुष्टिगुण क्या है? कुल तुष्टिगुण तथा सीमान्त तुष्टिगुण में अन्तर बताइये। इस अन्तर के महत्त्व की भी व्याख्या करें।

2. Explain the Law of Diminishing Marginal Utility. Discuss the importance and limitations of this Law.

   घटते सीमान्त तुष्टिगुण के नियम की व्याख्या करो। इस नियम की सीमाओं तथा महत्त्व का वर्णन करें।

3. What is menat by Consumer's Equilibrium ? Explain in with the help of utility analysis.

   उपभोक्ता के सन्तुलन का क्या अर्थ है? तुष्टिगुण विश्लेषण की सहायता से इसकी व्याख्या करो।

4. Explain the Law of maximum utility. How is this law applicable to each and every field of economics.

   अधिकतम तुष्टिगुण के नियम की व्याख्या कीजिए। यह नियम अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र पर कैसे लागू होता है?

5. Explain the law of Equi-marginal utility. Show how is it modified in life due to the influence of custom and fashion.

   सम–सीमान्त तुष्टिगुण को समझाइये। यह बताइये कि जीवन में रीति–रिवाज तथा फैशन के प्रभाव से इस नियम में किस प्रकार परिवर्तन हो जाता है।

   Explain the law of Equi-marginal utility. Also give its importance and limitations.

   सम–सीमान्त तुष्टिगुण के नियम की व्याख्या कीजिए। इस नियम का महत्त्व तथा सीमाएं भी दीजिये।

6. What is Cardinal Utility Analysis? What are its main limitations?

   गणनावाचक तुष्टिगुण विश्लेषण क्या है? इसकी मुख्य सीमाएं क्या है?

अध्याय-6
क्रमवाचक सिद्धान्त एवं तटस्थता वक्र विश्लेषण
(Ordinal Approach Or Indiffernce Curve Analysis)

गणनावाचक तुष्टिगुण विश्लेषण के निम्न चार आधारभूत दोष हैं–

1. तुष्टिगुण को मापा जा सकता है (Utility is cardinal)
2. मुद्रा का सीमान्त तुष्टिगुण स्थिर रहता है (Marginal Utility of money is constant)
3. किसी एक वस्तु का तुष्टिगुण अन्य वस्तु के तुष्टिगुण को प्रभावित नहीं करता (Utility of a commodity does not affect the utility of another commodity)
4. आत्म–अवलोकन विधि पर आधारित (Based on Introspection of Method)

उपरोक्त पूर्व धारणाओं के आधार से डॉ० मार्शल ने उपभोक्ता के सन्तुलन तथा मांग का अध्ययन किया था। परन्तु बाद के अर्थशास्त्रियों ने आलोचना की कि न तो किसी वस्तु के तुष्टिगुण को इकाइयों में मापा जाता है क्योंकि यह व्यक्तिगत होता है न कि वस्तुगत तथा न ही मुद्रा का सीमान्त तुष्टिगुण स्थिर रहता है क्योंकि मुद्रा भी एक वस्तु है। इसी प्रकार एक वस्तु का तुष्टिगुण किसी अन्य वस्तु के तुष्टिगुण से स्वतन्त्र (Independent) भी नहीं है जैसे सिलाई एक वस्तु या सेवा है जिससे कपड़े का तुष्टिगुण बढ़ जाता है। तुष्टिगुण विश्लेषण आत्म–अवलोकन विधि पर आधारित है जिसकी बार–बार प्रयोग (Experiment) करके जांच नहीं की जा सकती, परन्तु विज्ञान के प्रत्येक कथन या नियम की प्रयोगात्मक जांच की जा सकती है। इसलिए तुष्टिगुण विश्लेषण को वैज्ञानिक नहीं माना जा सकता है।

सर्वप्रथम ब्रिटिश अर्थशास्त्री ऐजवर्थ (Edgworth) ने सन् 1881 में तटस्थता व्रक विश्लेषण का प्रतिपादन किया था। इसके बाद के अर्थशास्त्रियों ने जैसे कि हिक्स (Hicks), ऐलन (Allen), आदि ने इसमें सुधार किया। इन अर्थशस्त्रियों ने तुष्टिगुण विश्लेषण के उपरोक्त दोषों से रहित एक नये विश्लेषण को खोज निकाला जिसको तटस्थता वक्र विश्लेषण या उदासीनता वक्र विश्लेषण या अनाधिमान विश्लेषण (Indifference curve analysis) के नाम से जाना जाता हैं। तटस्थता वक्र विश्लेषण अपेक्षाकृत विश्लेषण की अधिक वैज्ञानिक विधि (Technique) मानी जाती है। इस विश्लेषण की सहायता से तुष्टिगुण का संख्यात्मक माप (Cardiral Measurement) न करके केवल क्रमवाचक माप (Ordinal Measurement) ही किया जाता है जो अधिक वास्तविक है। तटस्थता वक्र विश्लेषण में हम यह तो ज्ञात नहीं कर सकते कि एक वस्तु या वस्तुओं के संयोग से कितने इकाई तुष्टिगुण प्राप्त होता है, परन्तु यह अवश्य जान सकते हैं कि एक वस्तु या वस्तुओं के संयोग की अपेक्षा अन्य वस्तु या उन वस्तुओ के अन्य संयोग से कम या अधिक तुष्टिगुण प्राप्त होता है।

1. **मान्यताएं** (Assumptions)—तटस्थता वक्र विश्लेषण को ठीक से समझने के लिए इसकी मान्यताओं का ज्ञान अति आवश्यक है। इस विश्लेषण की मुख्य मान्यताएं निम्न प्रकार हैं–

(i) **तुष्टिगुण का क्रमावाचक माप** (Ordinal Measurement of Utility)—तटस्थता वक्र विश्लेषण की मान्यता है कि तुष्टिगुण का क्रमवाचक माप (Ordinal Measurement) किया जा सकता है। अर्थात् तुष्टिगुण का संख्यात्मक माप जैसे कि 1, 2, 3, 4, इत्यादि इकाइयाँ के रूप में माप सम्भव नहीं है, बल्कि वस्तुओं के तुष्टिगुणों की तुलना करके हम अपनी प्राथमिकता (Preference) व्यक्त कर सकते हैं। तटस्थता वक्र विश्लेषण के अनुसार यह प्रकट किया जा सकता है कि वस्तुओं का एक संयोग (Bundle of commodities) किसी अन्य संयोग की अपेक्षा कम या अधिक

तुष्टिगुण प्रदान करता है, परन्तु यह प्रकट नहीं किया जा सकता कि कितनी कम या अधिक इकाई तुष्टिगुण या कितनी इकाई तुष्टिगुण प्राप्त किया जाता है।

ii. **वस्तुओं के उपभोग संयोग** (Consumption Bundles of Goods)—*तटस्थता वक्र विश्लेषण की मान्यता है कि* उपभोक्ता किसी एक वस्तु की खरीद न करके दो वस्तुओं के किसी संयोग (Bundle) को खरीदता है। वह हमेशा दो वस्तुओं के ऐसे संयोग को खरीदता है जो उसके लिए सर्वश्रेष्ठ है और जिसको वह खरीद सकता है। उपभोक्ता के सामने दो वस्तुओं के वे सभी संयोग उपलब्ध होते हैं। जिनका वह उपभोग कर सकता है। दो वस्तुओं का उपभोग करते समय प्रायः हम यह विचार अपनाते हैं कि उनमें से एक वस्तु अन्य सभी वस्तुओं (All other goods) को प्रकट करती है ताकि हम एक वस्तु का अन्य वस्तुओं में विनियम दर (Trade off) कर ध्यान लगा सकें। ऐसा करके हम दो अक्षर वाला रेखाचित्र प्रयोग करते हुए उपभोक्ता की प्राथमिकता क्रम या पसन्दगी (Choices) में अनेक वस्तुएं *शामिल कर सकते हैं।*

iii. **विवेकपूर्ण उपभोक्ता** (Rational Consumer)—तटस्थता वक्र विश्लेषण में मान्यता की गई है कि उपभोक्ता विवेकपूर्ण व्यवहार (Behaves rationally) करता है अर्थात् वह वस्तुओं के उस संयोग को प्राथमिकता (Preference) देता है जिसमें वस्तुओं की अधिक मात्राएं होती हैं। इसका अभिप्रायः यह है कि उपभोक्ता अपनी सीमित आय को दो वस्तुओं पर इस प्रकार खर्च करना चाहता है ताकि उसकी सन्तुष्टि स्तर अधिकतम हो सके।

iv. **दृढ़ता** (Consistency)—यह भी मान्यता की गई है कि उपभोक्ता का व्यवहार दृढ़तापूर्ण होता है, अर्थात् यदि उपभोक्ता किसी एक परिस्थिति में A संयोग को प्राथमिकता देता है या चयन करता है जबकि B संयोग भी उसको उपलब्ध था तो वह अन्य परिस्थिति में A संयोग के उपलब्ध रहते हुए B संयोग को प्राथमिकता नहीं देगा या चयन नहीं करेगा। इसको निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है–

$$\text{If } A > B, \text{ then } B \ngtr A$$

v. **सकर्मकता** (Transitivity)—तटस्थता वक्र विश्लेषण की यह भी मान्यता है कि उपभोक्ता के व्यवहार में सकर्मकता होती है अर्थात् यदि किसी परिस्थिति में संयोग $A > B$ तथा संयोग $B > C$ है तो संयोग $A > C$ भी होगा।

vi. **प्राथमिकता प्रकट नियम** (The revealed preference axiom)—यह भी एक मान्यता है कि जब उपभोक्ता अपनी *सीमित आय को ध्यान में रखते हुए वस्तुओं के किसी संयोग का चयन करता है कि तो वह अपनी प्राथमिकता प्रकट* (Reveals Preference) करता है। अन्य उपलब्ध संयोगों में जब उपभोक्ता किसी एक संयोग का चयन करने में अपनी प्राथमिकता प्रकट करता है तो चयन किया गया वस्तुओं का समूह (Basket of goods) नियमानुसार उसकी सन्तुष्टि को अधिकतम कर रहा होता है।

vii. **वस्तुओं का विभाजनशील तथा प्रतिस्थापन्न होना** (Divisibility and substitutability of Goods)—इस विश्लेषण में वस्तुओं को विभाजनशील माना गया। मान्यतानुसार वस्तुओं को किसी सीमा तक प्रतिस्थापन्न भी किया जा सकता है।

viii. **पूर्ण सन्तुष्टि नहीं** (Non-satiaty)—एक मान्यता यह भी है कि उपभोक्ता के पास किसी भी वस्तु की आवश्यकता से अधिक मात्रा नहीं है। किसी भी वस्तु से उसको पूर्ण सन्तुष्टि प्राप्त नहीं हुई है। इसलिए उपभोक्ता दोनों वस्तुओं की कम मात्रा की अपेक्षा उनकी अधिक मात्रा को पसन्द करता है।

ix. **घटती सीमान्त प्रतिस्थापन्न दर** (Diminishing Marginal Rate of Substitution)—इस विश्लेषण में यह भी मान्यता की गई है कि किसी उपभोक्ता के पास जैसे–जैसे किसी वस्तु की मात्रा बढ़ती जाती है तो वह उस वस्तु की एक इकाई के बदले में दूसरी वस्तु की कम–कम इकाइयाँ घटती दर पर इकाइयां प्रतिस्थापित करने के लिए तैयार होता है।

x. **पूर्ण ज्ञान** (Prefect Knowledge)—यह भी मान्यता की गई है कि उपभोक्ता को बाजार में वस्तुओं की प्रचलित *कीमतों का पूर्ण ज्ञान होता है*

2. **उपभोक्ता की प्राथमिकता या पसन्दगी** (Consumer Preferences)—मान लीजिए महिला उपभोक्ता के सामने x वस्तु तथा y वस्तु के दो संयोग (consumption bundle) A तथा B हैं। वह निर्णय कर सकती है कि एक संयोग दूसरे

संयोग की तुलना में निश्चित रूप से श्रेष्ठ है या वह दोनों संयोगो के बीच कोई अन्तर नहीं समझती तथा तटस्थ (Indifferent) है।

मान लो वह A संयोग को B संयोग की अपेक्षा निश्चित रूप से पसन्द (Strictly prefers) करती है निश्चित पसन्दगी के लिए > चिन्ह का प्रयोग किया जाये तो उसकी निश्चित पसन्दगी को A>B के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। यदि उपभोक्ता एक संयोग को दूसरे संयोग की अपेक्षा पसन्द करता है तो पुरुष या महिला उपभोक्ता का व्यवहार इस प्रकार का होगा कि वह पसन्द किये गये संयोग का ही चयन करेगा। यदि वह हमेशा A तथा B संयोग में से हमेशा A चुनता है तो इसका अर्थ है कि वह A को B की अपेक्षा की निश्चित रूप से पसन्द करता है।

यदि उपभोक्ता दोनों संयोगों के बीच तटस्थ है तो उसके लिए ~ चिन्ह का प्रयोग किया जा सकता है : A ~ B । तटस्थता का अर्थ है कि उपभोक्ता को A संयोग का उपभोग करने में बिल्कुल उतनी ही सन्तुष्टि होती है। जितनी कि वह B संयोग को उपभोग करने में सन्तुष्ट होता है।

यदि उपभोक्ता दो संयोगों के बीच तटस्थ भी रहता है और एक संयोग को दूसरे की तुलना में पसन्द भी करता है तो यह उसकी कमजोर पसन्दगी (Weak preference) कही जाएगी। यदि वह A को B से पसन्द भी करती है और इनके बीच तटस्थ भी है: $A \geq B$ है तो वह A को B की अपेक्षा कमजोरी के साथ पसन्द करती कही जाएगा (She weakly prefers A to B) अतः इसको $A \geq B$ के रूप में लिखा जा सकता है।

वस्तुतः निश्चित पसन्द (strict preference), कमजोर पसन्द (weak prreference) तथा तटस्थता (indifference) स्वतन्त्र धारणाऐं नहीं है। ये एक–दूसरे से सम्बन्धित हैं। उदाहरणतः यदि $A \geq B$ तथा $B \geq A$ है तो हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि A ~ B है अर्थात् यदि उपभोक्ता A के इतन ही श्रेष्ठ मानता है जितना कि वह B को श्रेष्ठ मानता है तो उपभोक्ता इन दोनों संयागों के बीच तटस्थ ही होगा।

इसी प्रकार यदि उपभोक्ता के लिए $A \geq B$ है तो वह इन दोनों के बीच तटस्थ नहीं होगां अर्थात् वह A ~ B नहीं मानता तो हम निष्कर्ष निकाल सकते है कि A>B है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि यदि उपभोक्ता सोचती है कि A कम से कम इतना श्रेष्ठ है जितना कि B और वह इन दोनों के बीच तटस्थ (A~B) भी नहीं है तो वह निश्चित रूप से A को B की अपेक्षा श्रेष्ठ मानती है या प्राथमिकता देती है।

उपभोक्ता प्राथमिकता की पूर्वधारणाएं (Assumptions about Consumer Preference): उपभोक्ता संयोगों में चयन या प्राथमिकता (Preference) किस प्रकार करता है? इस सम्बन्ध मे हम कुछ पूर्वकल्पनाएं करते हैं जिनको चयन के नियम (Axions about preference) भी कहा जाता है।

1. **पूर्ण** (Complete)–हम कल्पना करते है कि किन्हीं दो संयोग की तुलना की जा सकती है। मान लो हमारे पास X तथा Y वस्तु के दो संयोग A तथा B संयोग हैं। इन दोनों संयोगों की तुलना करके ज्ञात कर सकते हैं कि या तो $A \geq B$ या $B \geq A$ या दोनों हैं। अर्थात् $A \geq B$ और $B \geq A$ भी है तो इस बाद वाली अवस्था में उपभोक्ता दोनों संयोगों के बीच तटस्थ (Indifferent) है। अर्थात् तुलना के आधार पर ही ये तीनों प्रकार के पूर्ण चयन किये जा सकते है।
2. **संयोग प्रतिबिम्बित होने वाले होते हैं** (Bundles are Reflexive)–प्रत्येक संयोग निश्चित रूप से कम से कम इतना श्रेष्ठ होता है जितना कि इसका समरूप कोई अन्य संयोग। अर्थात् दो वस्तुओं के ऐसे अनेक संयोग हो सकते हैं जो समान सन्तुष्टि प्रदान कर सकते हैं। जैसे प्रिंसिपल के लिए राम कम से कम इतना श्रेष्ट विद्यार्थी है जितना कृष्ण। परन्तु कई बार समरूपता स्थापित करना कठिन भी होता है। जैसे माता–पिता के लिए स्कूल में जाने वाले सभी बच्चे समान नहीं होते हैं। परन्तु प्राचार्य के लिए समान हो सकते हैं। अतः मान्यता की गई है कि संयोग समान हो सकते हैं।
3. **चयन में सकर्मकता** (Transitivity in Preference)—चयन करते समय उपभोक्ता के व्यवहार में सकर्मका होनी चाहिए। यदि उसके लिए $A \geq B$ तथा $B \geq C$ है तो अवश्य ही $A \geq C$ होगा। यदि उपभोक्ता ऐसा नहीं मानता तो उसके व्यवहार को विचित्र माना जायेगा।

ऐसे संयोग जिनमे से उपभोक्ता प्राथमिकता या चयन (Preference) के प्रति तटस्थ या उदासीन रहता है उनको रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित करने पर तटस्थता वक्र प्राप्त होता है।

3. **तटस्थता वक्र क्या है?** (What is an Indifference Curve)—तटस्थता वक्र दो वस्तुओं के ऐसे विभिन्न संयोगो को प्रकट करती है जिनसे उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्राप्त होती है तथा उपभोक्ता उन किसी भी संयोग में से किसी एक संयोग को पसन्द करने या चयन करने के प्रति उदासीन या तटस्थ रहता है। इसका कारण यह है कि ये सभी संयोग समान सन्तुष्टि देने वाले होते हैं तथा उपभोक्ता इनमें अन्तर नहीं करता। वह इनमें से किसी भी संयोग को प्राप्त करके अन्य संयोगों के बराबर सन्तुष्टि प्राप्त कर सकता है। इसलिए इन संयागों में से किसी एक संयोग की पसन्दगी या प्राथमिकता (Preference) या चयन के प्रति उपभोक्ता तटस्थ या उदासीन रहता है।

4. **तटस्थता वक्र की परिभाषाएं** (Definitions of Indifference Curve)—तटस्थता वक्र की कुछ महत्त्वपूर्ण परिभाषाएं निम्न प्रकार से हैं– प्रो० लेफ्टविच के शब्दों में, "एक तटस्थता वक्र X तथा Y वस्तुओं के ऐसे विभिन्न संयोगों को दर्शाता है जो उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्रदान करते हैं।" (A single indifference curve shows the different combinations of X and Y that yield equal satisfaction the consumer.—Prof. Leftwitch)

हेझडरसन तथ क्वाण्ट के अनुसार, "वस्तुओं के ऐसे सभी संयोगों का बिन्दु पथ जिनसें किसी उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्राप्त होती है, एक तटस्थता वक्र का निर्माण करता है।" (The lawss of all commodity combinations, from which the consumer derives the same level of satisfaction, forms an indifference curve.—Handerson and Quant)

उपभोक्ता फलन (Consumption Function)

तटस्थता वक्र का फलन तथा समीकरण के रूप में निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है–

$IC = f(X_1—Y_2 X_0—Y_3,..........) = \overline{U}$

IC = Indifference curve, $\overline{U}$ = level of satisfaction which remains constant (सन्तुष्टि स्तर जो स्थिर रहता है।)

X_1 —Y_2= one combination of X and Y commodity

X_0 —Y_3= Another combination of X and Y commodity.

5. **तटस्थता तालिका** (Indifference Schedule)—ऐसी तालिका जो दो वस्तुओं के ऐसे विभिन्न संयोगों को दर्शाती है जिसे उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्राप्त होती है वह तटस्थता तालिका कहलाती है। मान लीजिए एक उपभोक्ता X तथा Y वस्तुओं को उपभोग करता है। उपभोग से पहले वह इन दोनों वस्तुओं के अनेक संयोग तैयार करता है जिनसे उसको समान सन्तुष्टि प्राप्त होती है। इन संयोगो को निम्न तटस्थता तालिका द्वारा दर्शाया गया है–

तटस्थता तालिका (Indifference Schedule)

संयोग (Combinations	X वस्तु (X Good)	Y वस्तु (Y Good)
A	1 —	12
B	2 —	8
C	3 —	5
D	4 —	3
E	5 —	2
F	6 —	1.5

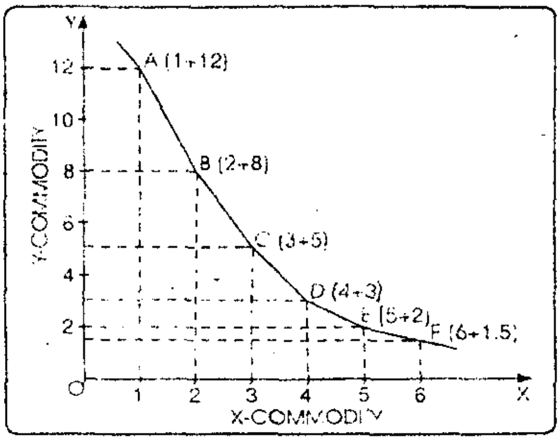

चित्र 1

इस तटस्थता तालिका में X तथा Y वस्तु के 6 विभिन्न संयोग–A, B, C, D, E और F तैयार किये गये हैं जिसे उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्राप्त होती है। A संयोग, जिसमें X वस्तु की 1 इकाई तथा Y वस्तु 12 इकाई हैं। उपभोक्ता को उतनी ही सन्तुष्टि प्रदान करता है जितनी B संयोग जिसमें X की 2 इकाइयां तथा Y की 8 इकाइयां हैं। (समान सन्तुष्टि देने के कारण वह A, B, C, D, E, तथा F को बराबर पसन्द करता है। वह इन संयोगों में से किसी एक को दूसरों से अधिक पसन्द नहीं करता। इसलिए वह किसी भी संयोग को प्राप्त करे उसके लिए एक ही बात है। अतः वह किसी एक का चयन या प्राथमिकता (Preference) देने के प्रति तटस्थ रहता है।

6. **तटस्थता वक्र** (Indifference Curve)—तटस्थता तालिका के आधार पर तटस्थता वक्र निकाला जा सकता है। वस्तुतः *तटस्थता तालिका का चित्रण करना ही तटस्थता वक्र है।* दो वस्तुओं के ऐसे विभिन्न संयोग जो उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्रदान करते हैं, उन संयोगों को दर्शाने वाला वक्र तटस्थता वक्र कहलाता है। रेखाचित्र 1 में तटस्थता वक्र दर्शाया गया है।

रेखाचित्र 1 में OX अक्ष पर X-वस्तु तथा OY अक्ष पर Y-वस्तु की इकाइयां मापी गई हैं। X तथा Y वस्तु के विभिन्न A, B, C, D, E तथा F संयोगों को मिलाने जो वक्र प्राप्त होता है वह तटस्थता वक्र (IC) कहलाता है। ध्यान रहे A(1+12) का अभिप्राय है कि A संयोग में X-वस्तु की एक इकाई तथा Y वस्तु की 12 इकाइयां हैं। अन्य संयोगों में दोनों वस्तुओं की विभिन्न इकाइयां शामिल है।

7. **तटस्थता मानचित्र** (Indifference Map)—दोनों वस्तुएं (X तथा Y) विभाजनशील मानी गई हैं। इसलिए इन दोनों वस्तुओं के असंख्य संयोग बन सकते हैं। किसी संयोग में अन्य संयोगों की तुलना में दोनों वस्तुओं की अधिक या कम मात्र हो सकती हैं। इसलिए विभिन्न संयोग अलग–अलग सन्तुष्टि स्तर को दर्शा सकते हैं, परन्तु एक तटस्थता वक्र के सभी संयोग समान सन्तुष्टि ही देते हैं। इसका आशय यह हुआ कि अलग–अलग सन्तुष्टि देने वाले संयोग अलग–अलग तटस्थता वक्रों पर स्थापित होतें हैं। अतः किसी भी उपभोक्ता के दो वस्तुओं से सम्बन्धित प्राथमिकता क्रम (Scale of Preference) के आधार पर अनेक तटस्थता वक्र होते हैं। तटस्थता वक्रों का यह समूह तटस्थता मानचित्र (Indifferenece map) कहलाता है।

रेखाचित्र 2 में किसी उपभोक्ता का तटस्थता मानचित्र दर्शाया गया है जो अनेक तटस्थता वक्रों का समूह (Family of Indifference curves) हो सकता है। चित्र में सभी 4 तटस्थता वक्र अलग–अलग सन्तुष्टि स्तर व्यक्त करते हैं। IC_1 के सभी बिन्दु समान सन्तुष्टि देने वाले हैं। इसी प्रकार IC_2 के सभी बिन्दु समान सन्तुष्टि देने वाले हैं, परन्तु IC_2 के सभी बिन्दु IC_1 सभी बिन्दुओं से अधिक सन्तुष्टि देने वाले हैं क्योंकि OK रेखा पर E बिन्दु IC_1 पर पड़ता है तथा F बिन्दु IC_2 पर पड़ता है। F बिन्दु या संयोग E बिन्दु या संयोग की अपेक्षा अधिक सन्तुष्टि देने वाला है क्योंकि F बिन्दु पर E की अपेक्षा दोनों वस्तुओं की मात्रा अधिक है। इससे ज्ञात होता है कि ऊंचा तटस्थता वक्र नीचे तटस्थता वक्र से अधिक सन्तुष्टि देने वाला होता है। अतः चित्र अनुसार IC_4 अधिकतम सन्तुष्टि देने वाला तटस्थता वक्र है। इससे

कम सन्तुष्टि देने वाला वक्र IC_3, IC_3 से कम सन्तुष्टि देने वाला वक्र IC_2 तथा IC_1 सबसे कम सन्तुष्टि देने वाला तटस्थता वक्र है। वस्तु जितना ऊंचा तटस्थता वक्र उतना ही अधिक सन्तुष्टि स्तर होगा। इसलिए उपभोक्ता हमेशा ऊंचा तटस्थता वक्र को पसन्द *(Prefer)* करता है। ऊंचे तटस्थता वक्र में नीचे वाले तटस्थता वक्र की अपेक्षा दोनों वस्तुओं की या किसी एक की मात्रा अधिक होती है।

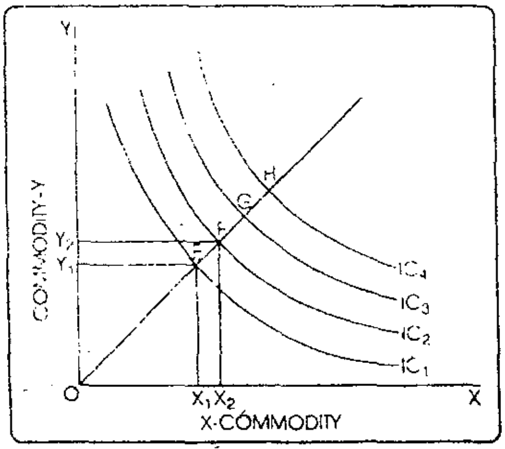

चित्र 2

तटस्थता मानचित्र को फलानात्मक (Functional) रूप में निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त किया जा सकता है–

U^* = Levels of satisfaction. $IC = f(X_1—Y_1, X_2—Y_2, \ldots\ldots\ldots) = U^*$

U^* = If we assign any possible value to U^* we get indifference Maps.

8 **घटती सीमान्त प्रतिस्थापन की दर का नियम** (Law of Diminishing Marginal Rate of Substitution)—तटस्थता वक्र विश्लेषण में घटते सीमान्त प्रतिस्थापन की दर के नियम का बहुत अधिक महत्त्व है। तटस्थता वक्र विश्लेषण का ज्ञान प्राप्त करने के लिए इस नियम को समझना अनिवार्य है।

प्रतिस्थापन की सीमान्त दर क्या है?
What is Marginal Rate of Substitution?

प्रतिस्थापन की सीमान्त दर का सम्बन्ध किसी एक ही तटस्थता वक्र से होता है। हम जानते हैं कि तटस्थता वक्र दो वस्तुओं के उन विभिन्न संयोगों को प्रकट करता है जो उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्रदान करते हैं। एक ही तटस्थता वक्र पर यदि हम किसी एक वस्तु की अधिक मात्रा लेते हैं तो दूसरी वस्तु की कुछ इतनी मात्र का त्याग करना पड़ता है ताकि सन्तुष्टि स्तर समान बना रहे। अतः उपभोक्ता किसी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई प्राप्त करने के लिए दूसरी वस्तु की जितनी इकाइयां छोड़ने के लिए तैयार होता है ताकि उसकी सन्तुष्टि स्तर समान बना रहे, उसको प्रतिस्थापन की सीमान्त दर कहा जाता है।

प्रो० बिलास के शब्दों में, "X वस्तु की Y के लिए प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRS_{XY}) Y वस्तु की वह मात्रा है जिसको उपभोक्ता X वस्तु की एक अतिरिक्ता इकाई लेने के लिए, छोड़ने को तैयार है तथा अपने सन्तुष्टि स्तर को समान बनाये रखता है"। (The marginal rate of substitution of X for Y (MRS_{XY}) is defined as the amount of Y, the consumer is just willing to give up to get one more unit of X and maintain the same level of satisfaction.—Bilas)

घटते सीमान्त प्रतिस्थापन नियम की व्याख्या (Explanation of the Law of Diminishing MRS)—

प्रतिस्थापन की सीमान्त दर की व्याख्या निम्न तालिका के माध्यम से की जा सकती है–

तालिका (Schedule)

संयोग (Combinations)	X-वस्तु (X)	Y वस्तु (Y)	प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRS_{XY})
A	1	12	—
B	2	8	1 : 4 (1 × =4y)
C	3	5	1 : 3 (1 × =3y)
D	4	3	1 : 2 (1 × =2y)
E	5	2	1 : 1 (1 × =1y)

उपरोक्त तालिका में X तथा Y वस्तु के A, B, C, D तथा E संयोग दर्शाये गया हैं जिनसे उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्राप्त होती है। संयोग B में वह X वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई लेने के लिए Y वस्तु की 4 इकाइयां छोड़ने को तैयार है। इसलिए $MRS_{XY} = 4$ होगा। अब उपभोक्ता की नजरों में 1X का उतना ही महत्त्व है जितना 4Y का। अर्थात् उपभोक्ता को जितनी सन्तुष्टि 1X + 12Y से मिलती है उतनी ही सन्तुष्टि 2X+8Y से मिलती हैं। प्रतिस्थापन की सीमान्त दर को अग्र सूत्र प्रकट किया जा सकता है–

$$X \text{ की } Y \text{ के लिए प्रतिस्थापन की सीमान्त दर} = \frac{Y \text{ में परिवर्तन}}{X \text{ में परिवर्तन}}$$

या $$MRS_{XY} = -\frac{\Delta Y}{\Delta X}$$

MRS_{XY} = Marginal Rate of Substitution of X for Y

(X की Y के लिए प्रतिस्थापना की सीमांत दर)

ΔY = Change in Y (Y में परिवर्तन)

ΔX = Change in X (X में परिवर्तन)।

ध्यान रहे कि MRS हमेशा नकारात्मक (Negative) होता है क्योंकि एक वस्तु की मात्रा बढ़ती है तो दूसरी की मात्रा में कमी होती है। परंतु व्यवहार में हम आमतौर पर नकारात्मक चिन्ह (—) का प्रयोग नहीं करते हैं।

उपरोक्त तालिका के आधार पर घटते सीमांत प्रतिस्थापन के नियम को परिभाषित किया जा सकता है। इस नियम के अनुसार किसी व्यक्ति के पास एक वस्तु की जितनी मात्रा बढ़ती जाती है वह दूसरी वस्तु का उस वस्तु के लिए प्रतिस्थापन घटती दर पर करता जाएगा। जैसा कि तालिका से स्पष्ट है कि पहले वह IX के लिए 4Y प्रतिस्थापन कर सकता है, परंतु ज्यों X की मात्रा बढ़ती है तथा Y की मात्रा उसके पास कम हो जाती है (2X + 8Y) तो वह आगे X की एक और इकाई लेने के लिए Y की अब 3 इकाई छोड़ने को तैयार होता है ताकि उसका संतुष्टि स्तर बराबर बना रहे। इससे आगे भी X की Y के लिए प्रतिस्थापन की दर कम हो जाती है। इस प्रवृत्ति को घटते सीमांत प्रतिस्थापन का नियम कहा जाता है।

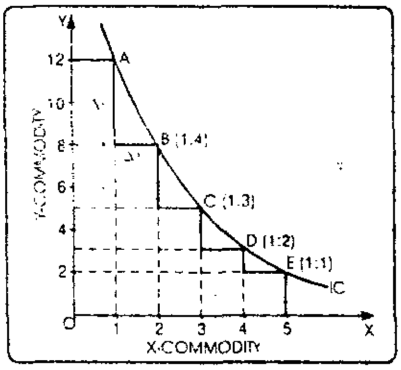

चित्र 3

घटते सीमांत प्रतिस्थापन के नियम को रेखाचित्र की सहायता से भी व्यक्त किया जा सकता है। चित्र 3 में स्पष्ट है कि ज्यों उपभोक्ता X वस्तु की मात्रा बढ़ाता है तो वह Y वस्तु की कम–कम मात्रा इस प्रकार प्रतिस्थापित या छोड़ता है ताकि उसका संतुष्टि स्तर कायम रह सके। B बिन्दु या संयोग पर $MRS_{XY} = 4$, C बिन्दु पर 3,D बिन्दु पर 2 तथा E बिन्दु पर कम होकर रह जाता है। इसका कारण X की मात्रा में वृद्धि तथा Y की मात्रा में कमी होना है। इसी प्रवृत्ति को घटते सीमांत प्रतिस्थापन का नियम कहते हैं।

नियम के लागू होने के कारण
(Causes of the Operation of the Law)

घटते सीमांत प्रतिस्थापन का नियम निम्न मुख्य कारणों पर आधारित है:

1. उपभोक्ता के पास ज्यों–ज्यों किसी वस्तु की मात्रा बढ़ती है तो उस वस्तु की आवश्यकता को पूर्ण रूप से संतुष्ट किया जा सकता है।
2. वस्तुएं एक–दूसरे की अपूर्ण स्थानापन्न (Imperfect Substitutes) होती हैं। वस्तुएं पूर्ण स्थापापन होने पर यह नियम लागू नहीं होगा।
3. किसी वस्तु की मात्रा कम होने पर उसका महत्त्व या तुष्टिगुण बढ़ जाता है।

नियम के अपवाद (Exception of the Law): इस नियम के दे अपवाद हैं–

1. **पूर्ण स्थानापन्न वस्तुएं (Perfect Substitution):**पूर्ण स्थानपापन्न वस्तुएं वे वस्तुएं होती हैं जो उपभोक्ता को समान संतुष्टि प्रदान करती हैं। यदि किसी उपभोक्ता के पास दो वस्तुएं ऐसी हैं जो एक–दूसरे की पूर्ण स्थापन्न हैं तो इन दोनों के मध्य प्रतिस्थापन की सीमांत दर स्थिर रहेगी। जैसे रक्सोना साबुन तथा हमाम साबुन एक–दूसरे के पूर्ण स्थापन्न वस्तुएं हैं। रक्सोना साबुन की एक इकाई हमाम साबुन की एक इकाई के बराबर संतुष्टि देती है। इसलिए ज्यों–ज्यों उपभोक्ता रक्सोना साबुन की एक इकाई में वृद्धि करेगा तब–तब वह हमाम साबुन की एक इकाई में कमी कर देगा। इसको अग्र चित्र की सहायता से प्रकट किया जा सकता है।

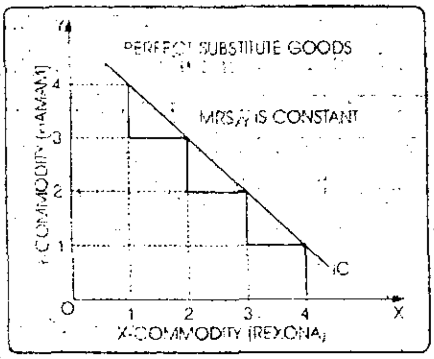

चित्र 4

रेखाचित्र 4 से स्पष्ट है कि प्रारंभ में उपभौकता के पास एक रेक्सोना तथा 4 इकाई हमाम है। अब वह रक्सोना की एक इकाई बढ़ा कर दो इकाई करता है तो हमाम की एक इकाई कम करके 3 इकाई हमाम रखता है तथा उसका संतुष्टि स्तर पहले जितना ही बना रहता है। इसके बाद वह रक्सोना की एक इकाई और बढ़ाता है तो हमाम की फिर एक इकाई ही कम करता है। अतः रक्सोना तथा हमाम साबुन के बीच सीमांत प्रतिस्थापन की दर 1:1 ही बनी रहती है। इस अवस्था में तटस्थता वक्र (IC) की आकृति एक सरल रेखा (Straight Line) होगी जैसा कि चित्र 4 में दर्शाया गया है।

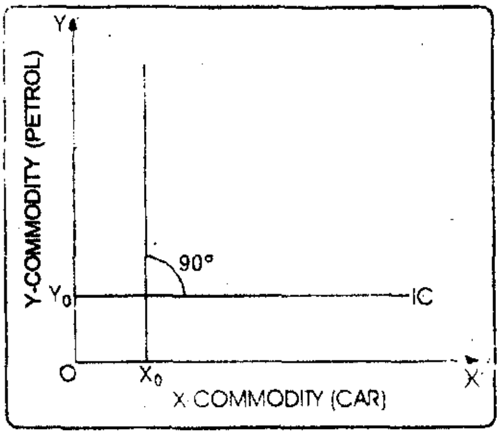

चित्र 5

2. **पूर्णतया पूरक वस्तुएं (Perfect Complementary Goods):** पूरक वस्तुएं वे वस्तुएं होती हैं जो साथ–साथ तथा एक निश्चित अनुपात में ही प्रयोग की जाती हैं। जैसे पैन और स्याही, पैट्रोल और गाड़ी, सूई और धागा इत्यादि। वस्तुएं ऐसी होती हैं कि इनमें से एक वस्तु न हो तो दूसरी बेकार हो जाती है, जैसे ये पैट्रोल के अभाव में गाड़ी बेकार हैं इनमें स्थानापन्न नहीं होता है। यदि एक वस्तु की मात्रा को कम कर दिया जाए तो दूसरी वस्तु की मात्रा में वृद्धि करके उसकी कमी को पूरा नहीं किया जा सकता। जैसे पैट्रोल की मात्रा में वृद्धि करके गाड़ी की कमी को दूर नहीं किया जा सकता अतः पूरक वस्तुओं के मध्य सीमांत प्रतिस्थापन्न की दर शून्य होती हैं पूरेक वस्तुओं के मामले में IC वक्र 90° का कोण बनाता है जैसा कि चित्र 5 में दर्शाया गया है। जब उपभोक्ता के पास X_0 इकाई कार तथा Y_0 इकाई में पैट्रोल की मात्रा होती है तो उसका संतुष्टि का एक निश्चित स्तर प्राप्त होता है। अब यदि ये पेट्रोल की मात्रा स्थिर रखें और कार की मात्रा बढ़ा दें तो उपभोक्ता का संतुष्टि स्तर पहले जितना ही बना रहेगा क्योंकि सफर की लंबाई स्थिर रहेगी। इसी प्रकार यदि कार की मात्रा स्थिर रखें तथा पैट्रोल की मात्रा बढ़ा दें तो भी उपभोक्ता का संतुष्टि स्तर ज्यों का त्यों बना रहता है ऐसी अवस्था में IC वक्र 90° का कोण बनाता है।

9. **घटती सीमांत प्रतिस्थापन की दर का नियम तथा घटती सीमांत तुष्टिगुण का नियम (Law of Diminishing Marginal Rate of Substitution and Law of Diminishing Marginal Utility):** घटती सीमांत प्रतिस्थापन की दर का नियम तथा घटती सीमांत तुष्टिगुण का नियम दोनों उपभोक्ता के व्यवहार की एक ही प्रवृत्ति को व्यक्त करते हैं। इन दोनों नियमों का आशय यह है कि जैसे–जैसे किसी उपभोक्ता के पास किसी वस्तु की मात्रा बढ़ती जाती है तो उसकी अतिरिक्त इकाइयों का महत्त्व या तुष्टिगुण कम–कम होता जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि घटती सीमांत प्रतिस्थापन की दर का नियम घटती सीमांत तुष्टिगुण के नियम के अनुरूप ही है। इसका कारण यह है कि किसी वस्तु की मात्रा में वृद्धि होने पर उसकी सीमांत प्रतिस्थापन की दर (दूसरी वस्तु के रूप में) भी सीमांत तुष्टिगुण की भांति कम–कम होती जाती है। प्रो. हिक्स के अनुसार दोनों नियम एक–दूसरे से मिलते–जुलते होने पर भी इनमें कुछ महत्वपूर्ण अंतर हैं। अतः इन दोनों में मुख्य अंतर निम्नलिखित हैं:

अंतर (Differences):

1. **तुष्टिगुण का माप (Measurement of Utility):** घटती सीमांत तुष्टिगुण का नियम इस मान्यता पर आधारित है कि तुष्टिगुण को इकाइयों में मापा जा सकता है। यह नियम तुष्टिगुण के गणनावाचक विश्लेषण (Cardinal analysis) पर

आधारित है। इसके विपरीत घटती सीमांत प्रतिस्थापन्न की वह दर का नियम इस धारणा पर आधारित है कि तुष्टिगुण की तुलना करके यह कहा जा सकता है कि वस्तुओं का एक संयोग दूसरे संयोग से कम या अधिक तुष्टिगुण देता है, परंतु कितना कम या अधिक तुष्टिगुण देता है इसका इकाइयों में माप नहीं किया जा सकता। अतः घटती सीमांत प्रतिस्थापन की दर का नियम तुष्टिगुण के तुलनात्मक या क्रमवाचक विश्लेषण (Ordinal Analysis) पर आधारित है।

2. **मुद्रा का सीमांत तुष्टिगुण (Marginal Utility of Money):** घटती सीमांत तुष्टिगुण की नियम इस मान्यता पर आधारित है कि मुद्रा का सीमांत तुष्टिगुण स्थिर रहता है। परंतु घटती सीमांत प्रतिस्थापन की दर का नियम मुद्रा के सीमांत तुष्टिगुण को स्थिर नहीं मानता क्योंकि मुद्रा भी एक वस्तु है तथा इसकी मात्रा बढ़ने पर इसका तुष्टिगुण या महत्त्व भी कम होता है।

3. **वस्तुओं की संख्या (Number of Commodities):** घटती सीमांत तुष्टिगुण का नियम एक ही वस्तु के उपभोग के अंतर्गत लागू होता है, परंतु घटती MRS_{XY} का नियम उपभोग की जा रही दो वस्तुओं से संबंधित है।

4. **तुष्टिगुण के माप का माध्यम (Medium of Measurement of Utility):** घटती सीमांत तुष्टिगुण के नियम में तुष्टिगुण को मुद्रा के माध्यम से मापा जाता है जबकि घटती सीमांत प्रतिस्थापन की दर के नियम के अंतर्गत तुष्टिगुण को दूसरी या अन्य वस्तु के रूप में मापा जाता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि दोनों में कुछ अंतर होते हुए भी इनका आधार एक ही है।

तटस्थता वक्रों की विशेषताएं
(Characteristics or Properties of Indifference Curves)

तटस्थता वक्र विश्लेषण, जिसके माध्यम से उपभोक्ता के व्यवहार तथा उसकी मांग का अध्ययन किया जाता है, को समझने के लिए तटस्थता वक्रों की विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त करना अति आवश्यक है। तटस्थता वक्रों की मुख्य विशेषताएं निम्न प्रकार है।

1. **तटस्थता वक्र का ढाल ऋणात्मक होता है** (An Indifference curve has a negative slope): प्रत्येक तटस्थता वक्र का ढाल ऋणात्मक होता है, अर्थात् यह हमेशा बाएं से दाएं नीचे की ओर झुका हुआ होता है। इसका कारण यह है कि किसी एक एक तटस्थता वक्र पर एक वस्तु की मात्रा में वृद्धि करने पर दूसरी वस्तु की मात्रा कम करनी पड़ती है ताकि उपभोक्ता का संतुष्टि स्तर समान बना रहे, जो IC की शर्त है। दोनों वस्तुओं में से एक की मात्रा कम (Negative) हो रही है इसलिए तटस्थता वक्र का ढाल नकारात्मक होता है यह विशेषता निम्न रेखाचित्र की सहायता से स्पष्ट की गई है।

चित्र 6 में स्पष्ट किया गया है जब उपभोक्ता अपने IC पर A संयोग से B संयोग पर पहुंचता है तो वह X वस्तु की X_0X_1 मात्रा बढ़ाता है। अपने संतुष्टि को समान स्तर पर बनाए रखने के लिए वह Y वस्तु की $Y_0 Y_1$ मात्रा का त्याग करता है। इसलिए तटस्थता वक्र दाईं ओर नीचे को गिरता हुआ होता है तथा इसका ढ़ाल ऋणात्मक या नकारात्मक होता है।

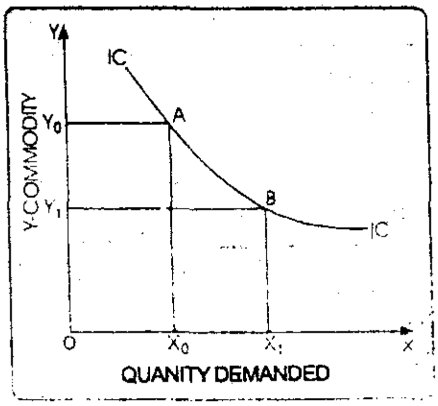

चित्र 6

ध्यान रहे कि तटस्थता वक्र कभी भी नीचे से ऊपर की ओर उठा हुआ नहीं होता। जैसा कि निम्न चित्र में दर्शाया गया है कि यदि IC ऊपर की ओर उठा हुआ होगा तो वह कभी भी समान संतुष्टि प्रदान नहीं करता क्योंकि ऊपर की ओर जाने पर दोनों वस्तुओं की मात्रा अधिक होती जाती है। जैसा कि चित्र के (L) भाग में दर्शाया गया है। चित्र 7 के (M) वाले भाग में IC वक्र क्षतीज की X- अक्ष के समान खड़ा है। परंतु IC की आकृति ऐसी भी नहीं हो सकती क्योंकि इस अवस्था में X वस्तु की मात्रा तो स्थिर है, परंतु जैसे A से B बिन्दु पर जाने से Y वस्तु की मात्रा बढ़ जाती है। इसलिए B बिन्दु A की अपेक्षा अधिक तुष्टि देने वाला होगा, परंतु IC के सभी बिन्दु समान सन्तुष्टि देने वाले होते हैं। अतः IC वक्र ऊपर की ओर लम्बवत् नहीं हो सकता। इसी प्रकार IC वक्र X अक्ष के समानांतर भी नहीं हो सकता। जैसा कि (N) भाग में दर्शाया गया है। अतः IC वक्र का हमेशा नकारात्मक ढाल होता है जैसा कि चित्र 6 में दर्शाया गया है।

चित्र 7

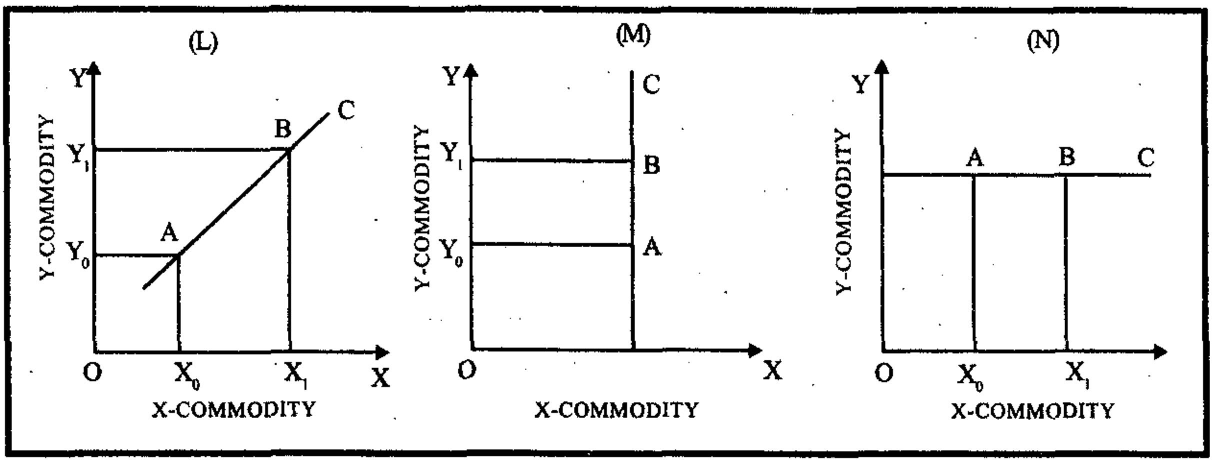

2. **तटस्थता वक्र मूल बिन्दु 'O' की ओर उन्नतोदर होते हैं** (Indifference curves are convex to the origin 'O'): सामान्यतः तटस्थता वक्र मूल बिन्दु 'O' की ओर उन्नतोदर (Concave) होते हैं। इसका कारण घटती सीमांत प्रतिस्थापन की दर का नियम है। घटती सीमान्त प्रतिस्थापन की दर से अभिप्राय है कि ज्यों हम किसी वस्तु X की अतिरिक्त इकाइयां प्राप्त करते हैं तो X वस्तु की Y वस्तु की प्रतिस्थापित करने की शक्ति कम–कम होती जाती है। तटस्थता वक्र की यह विशेषता चित्र 8 द्वारा दर्शाई गई है।

चित्र 8 में मान लीजिए प्रारंभ में उपभोक्ता A बिन्दु पर स्थित है तथा उसको संतुष्टि का एक निश्चित स्तर प्राप्त हो रहा है। मान लीजिए वह X वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई ले लेता है जो संतुष्टि स्तर को समान रखने के लिए Y वस्तु की 3 इकाइयां छोड़ने को तैयार है। यदि वह X वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई और प्राप्त करता है तो Y वस्तु की अब 2 इकाई ही छोड़ने को तैयार होता है इत्यादि। अतः स्पष्ट है कि X की Y वस्तु के लिए सीमांत प्रतिस्थापन की दर घटती जाती है तथा वक्र की आकृति मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर (Convex) होती है।

चित्र 8

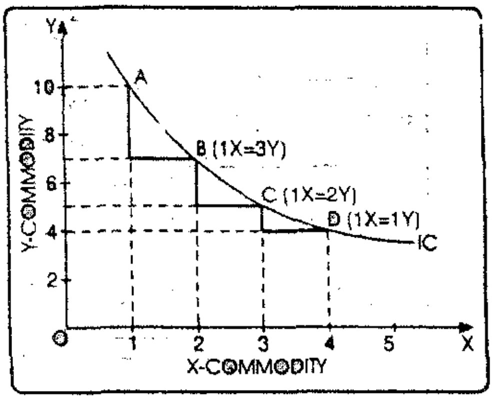

ध्यान में रखने की आवश्यकता है कि तटस्थता वक्र मूल बिन्दू की ओर न तो नतोदर (Concave) हो सकती हैं और न ही एक सरल रेखा (Straight Line)। इसका कारण यह है कि यदि तटस्थता वक्र नतोदर होती है तो सीमांत प्रतिस्थापन की दर बढ़ती जाती है और यदि सरल रेखा है तो MRS_{XY} समान बनी रहती है। परंतु तटस्थता वक्र की विशेषता तो यह है कि MRS_{XY} हमेशा X की मात्रा बढ़ने पर यह गिरती जाती है। अतः तटस्थ वक्र की आकृति निम्न चित्र जैसी नहीं हो सकती।

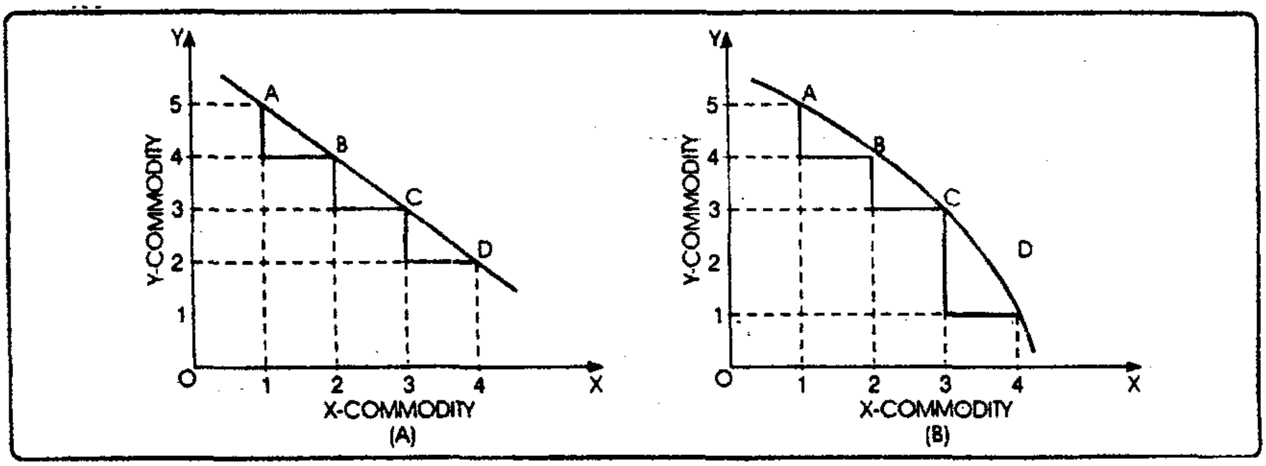

चित्र 9

चित्र 9 के (A) भाग में तटस्थता वक्र एक सरल रेखा है जिस पर MRS_{XY} समान रहता है। चित्र के (B) भाग में X वस्तु की मात्रा बढ़ने पर MRS_{XY} बढ़ता जाता है। इसलिए तटस्थता वक्र एक सरल रेखा तथा नतोदर (Concave) भी नहीं हो सकता। तटस्थता वक्र मूल बिन्दू की ओर उन्नतोदर ही हो सकता है।

3. **ऊंचे तटस्थता वक्र संतुष्टि के अधिक स्तर को व्यक्त करते हैं** (Higher Indifference Curves represent More Level of Satisfaction): तटस्थता वक्रों की एक मुख्य विशेषता यह भी है कि तटस्थता मानचित्र में ऊंचा तटस्थता वक्र अपने से नीचे वाले तटस्थता वक्र से अधिक संतुष्टि स्तर प्रदान करता है। यह स्थिति निम्न चित्र 10 में स्पष्ट की गई है।

रेखाचित्र 10 से स्पष्ट है कि B बिन्दु A की अपेक्षा ऊंचे तटस्थता वक्र IC_2 पर स्थित है तथा A बिन्दु B की तुलना में नीचे तटस्थता वक्र IC_1 पर स्थित है। B बिन्दु A की अपेक्षा अधिक संतुष्टि देगा क्योंकि B संयोग में A की अपेक्षा Y वस्तु की Y_0Y_1 मात्रा तथा X वस्तु की X_0X_1 मात्रा अधिक है। अतः ऊंचे तटस्थता वक्र पर पड़ने वाले संयोग नीचे तटस्थता वक्र के संयोगों की तुलना में दोनों वस्तुओं या एक वस्तु की मात्रा अधिक रखते हैं। अतः ऊंचा तटस्थता वक्र नीचे तटस्थता वक्र की तुलना में अधिक संतुष्टि देता है।

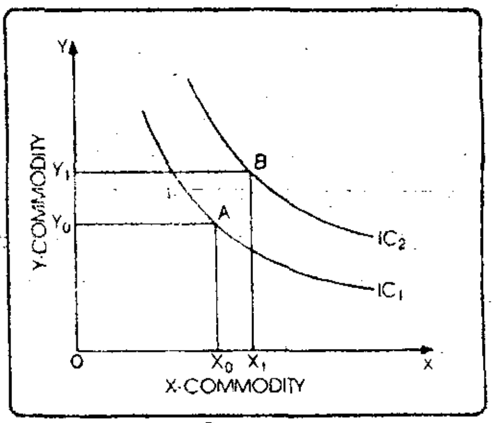

चित्र 10

4. **दो तटस्थता वक्र एक दूसरे को नहीं काट सकते** (Two Indifference curves cannot cross each other): तटस्थता वक्र परस्पर नहीं काट सकते। यह इनकी एक महत्त्वपूर्ण विशेषता या सिद्धांत है। यह स्थिति चित्र 11 में स्पष्ट की गई है।

यह सिद्ध करने के लिए तटस्थता वक्र परस्पर काट नहीं सकते X, Y तथा Z तीन बिंदुओं का चयन किया गया है। X बिन्दु IC, तटस्थता वक्र पर, Y बिन्दु IC_2 तटस्थता वक्र पर तथा Z बिन्दु जहां दोनों तटस्थता वक्र एक–दूसरे को काटते हैं, पर स्थापित हैं। चूंकि x तथा Z एक ही तटस्थता वक्र IC_1 पर स्थित हैं, इसलिए X तथा Z समान संतुष्टि देते हैं। इसी प्रकार Y तथा Z भी एक ही तटस्थता वक्र IC_2 पर स्थित हैं, इसलिए Y तथा Z भी समान संतुष्टि देते हैं।

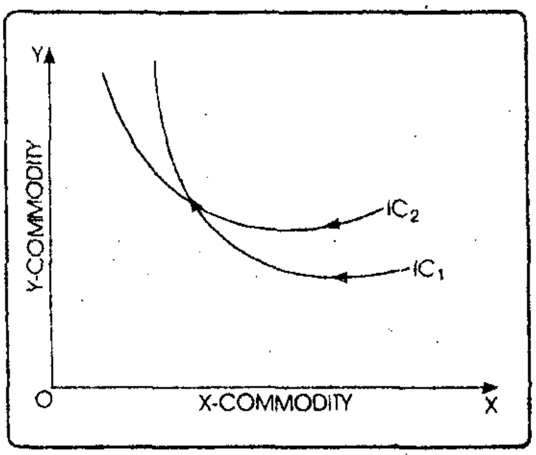

चित्र 11

इसका अर्थ यह हुआ कि X तथा Y भी समान संतुष्टि देते हैं।

जैसा कि:

X = Z

Z = Y

∴ X = Y; परंतु X ≠ Y

परंतु X संयोग Y संयोग के बराबर नहीं हो सकता क्योंकि Y संयोग X की अपेक्षा ऊंचे तटस्थता वक्र पर पड़ता है, इसलिए Y बिन्दु X बिन्दु की तुलना में अधिक संतुष्टि देगा (Y > X)। अतः वक्र ऊंचे तटस्थता वक्र संतुष्टि के अधिक स्तर को व्यक्त करते हैं। यदि यह माना जाए कि तटस्थता वक्र परस्पर काटते हैं तो विभिन्न IC वक्र समान संतुष्टि देंगे। परंतु ऐसा नहीं हो सकता।

5. **तटस्थता वक्रों का एक-दूसरे के समानांतर होना अनिवार्य नहीं** (Indifference curves need not be parallel to each other): तटस्थता वक्रों की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि इनका एक–दूसरे के समानांतर होना जरूरी नहीं है। इसका अभिप्राय यह है कि तटस्थता वक्रों की एक–दूसरे से दूरी हर स्थान पर बराबर हो यह जरूरी नही है। तटस्थता वक्रों का समानांतर होना उनके ढाल (Slope) पर निर्भर करता है। यदि उनके ढ़ाल अर्थात् MRSXY हमेशा बराबर हैं तो वे समानांतर होंगे। परंतु आवश्यक नहीं है कि सभी तटस्थता वक्रों पर पाई जाने वाली घटती सीमांत प्रतिस्थापन की दर (MRS_{XY}) बराबर हो, क्योंकि यह उपभोक्ता की विभिन्न संयोगों के लिए रुचि पर निर्भर करता है। अतः इनका समानांतर होना आवश्यक नहीं है जैसा कि रेखाचित्र 12 में दर्शाया गया है। चित्र में तीनों IC वक्र, IC_1, IC_2 तथा IC_3 एक–दूसरे के समानांतर नहीं है।

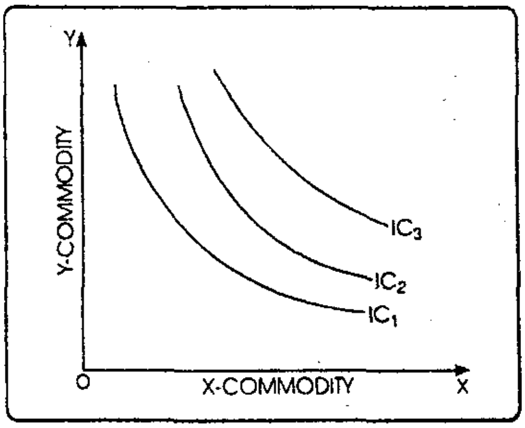

चित्र 12

6. **तटस्थता वक्र X- अक्ष तथा Y- अक्ष को स्पर्श नहीं करता** (An Indifference curve neither touches X-axis nor Y-axis): सामान्यतः तटस्थता वक्र X-अक्ष तथा Y-अक्ष किसी भी अक्ष को नहीं छूता है। इसका कारण यह है कि तटस्थता वक्र दो वस्तुओं के संयोगों से बना होता है। परंतु यदि यह किसी अक्ष को स्पर्श करता है तो इसका अर्थ है कि दूसरे अक्ष वाली वस्तु की मात्रा शून्य हो जाती है तथा तटस्थता वक्र संयोग को प्रकट न करके एक ही वस्तु की कुछ मात्रा पसंद करता है। यह तटस्थता वक्र की परिभाषा के विपरित है क्योंकि तटस्थता वक्र दो वस्तुओं के संयोगों को प्रकट करता है न कि एक है। यह तटस्थता वक्र की परिभाषा के विपरीत है क्योंकि तटस्थता वक्र दो वस्तुओं के संयोगों को प्रकट करता है न कि एक ही वस्तु को। इस स्थिति को रेखाचित्र 13 द्वारा स्पष्ट किया गया है–

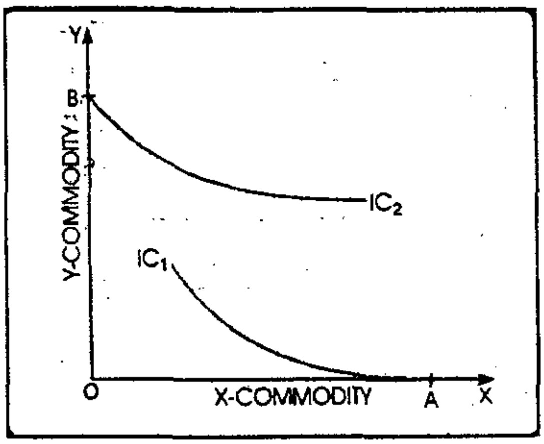

चित्र 13

रेखाचित्र 13 में IC_1 OX- अक्ष को A बिन्दु पर स्पर्श कर रहा है। इसका अर्थ है कि उपभोक्ता X वस्तु की OA मात्रा तथा Y वस्तु की शून्य मात्रा पसंद कर रहा है। इसी प्रकार IC_2 Y- अक्ष को B बिन्दु पर स्पर्श कर रहा है जिसका अर्थ है कि उपभोक्ता Y वस्तु की OB मात्रा तथा X वस्तु की शून्य मात्रा पसंद करता है। अर्थात् A तथा B दोनों ही संयोग प्रकट नहीं करते हैं। अतः तटस्थता वक्र किसी भी अक्ष को नहीं छू सकते।

7. **दो से अधिक वस्तुओं के संबंध में तटस्थता वक्र जटिल हो जाते हैं** (Indifference Curves become complex in case of more than two goods): तटस्थता वक्रों को यह भी एक विशेषता कही जा सकती है कि इनके माध्यम से केवल दो वस्तुओं का ही अध्ययन किया जा सकता है। यदि वस्तुएं दो से अधिक हैं तो हमें तीन अक्ष वाला चित्र तथा यदि वस्तुएं चार हैं तो चार अक्ष वाला रेखाचित्र चाहिए। इससे अधिक वस्तुओं का अध्ययन जटिल तथा कठिन हो

जाता है। इतना तो किया जा सकता है कि एक अक्ष पर एक वस्तु का माप किया जाए तथा दूसरे अक्ष पर अन्य सभी वस्तुओं को मापा जाए जिनको उपभोक्ता पसंद करता है। परंतु यह भी उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि वस्तुएं भिन्न–भिन्न प्रकार की हैं तथा उनके माप भी भिन्न–भिन्न होते हैं।

तटस्थता वक्रों के कुछ विशेष आकार
(Some Special Shapes of Indifference Curves)

सामान्य वस्तुओं के तटस्था रेखाचित्र वक्र 8 की भांति बिन्दु की ओर उन्नतोदर (Convex) होते हैं। परंतु कुछ विशेष प्रकार की वस्तुओं के मामले में इनकी आकृति विभिन्न प्रकार की हो सकती है।

1. **पूर्ण स्थानापन्न वस्तुएं (Perfect Substitutes):** जब उपभोक्ता को दो ऐसी वस्तुओं का चयन (Preference) व्यक्त करना हो जो एक–दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न हैं तो तटस्थता वक्र ऋणात्मक ढाल वाली एक सरल रेखा (Straight Line) के रूप में होगा। इसका कारण यह है कि पूर्ण स्थानापन (Perfect substitutes) वस्तुओं में सीमांत प्रतिस्थापन्न की दर (MRS) घटती नहीं बल्कि स्थिर (Constant) रहती है।

   उदाहरणतः उषा पंखे तथा ओरिण्ट पंखे एक–दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न वस्तुएं (Perfect Substitutes) कहे जा सकते हैं। दोनों पंखे उपभोक्ता की नज़रों में समान होने के कारण वह एक उषा पंखें के बदल एक ओरिण्ट पंखा छोड़ने को तैयार रहता है, अर्थात् उषा पंखे को ओरिण्ट पंखे के लिए सीमांत प्रतिस्थापन्न की दर समान रहती है जैसा कि चित्र 14 में दर्शाया गया है। अतः तटस्थता वक्र की आकृति एक सरल रेखा के रूप में होगी।

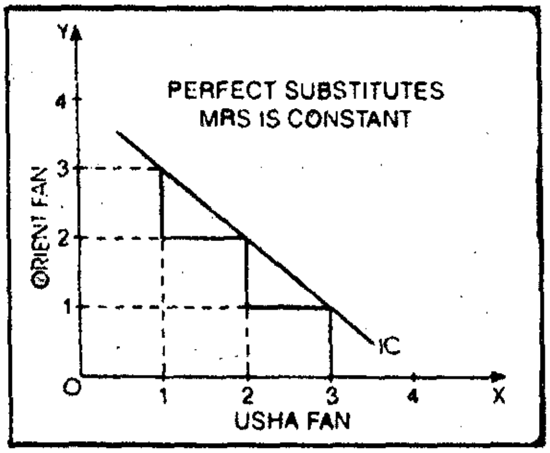

चित्र 14

2. **पूर्ण पूरक वस्तुएं (Perfect Complementary Goods):** जब वस्तुएं एक–दूसरे की पूर्ण पूरक वस्तुएं हों तो उनका उपभोग एक निश्चित अनुपात में ही किया जा सकता है। जैसे एक दाएं पांव का जूता तथा एक बाएं पांव का जूता साथ–साथ ही प्रयोग किए जा सकते हैं। इनमें सीमांत प्रतिस्थापन की दर शून्य होती है। यदि आप के पास एक दाएं पैर का जुता है तथा दो बाएं पैर के जूते हैं तो आपका संतुष्टि स्तर उतना ही रहेगा जितना कि एक दाएं तथा एक बाएं पैर के जूते से प्राप्त होता था। इतना ही नहीं यदि आप के पास दो दाएं पैर के जूते हों और एक बाएं पैर का जूता हो तो भी आपका संतुष्टि स्तर पहले जितना ही बना रहेगा। ऐसी दशा में अर्थात् पूर्ण पूरक वस्तुओं की स्थिति में तटस्थता वक्र 90^0 का कोण बनाएगा जैसा कि चित्र 15 में दर्शाया गया है। इसी आधार पर ऊंचा IC वक्र IC_1 निकाला जा सकता है।

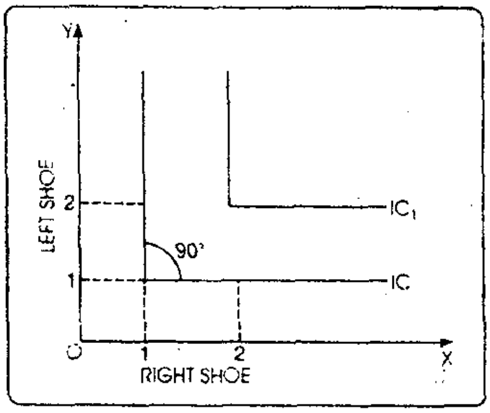

चित्र 15

3. **गोलाकार या अण्डाकार या चूड़ीनुमा तटस्थता वक्र (Circular or Egg. Shapped Indifference curve):** कुछ विचित्र अवस्थाओं में तटस्थता वक्र गोलाकार या अण्डाकार या चूड़ीनुमा भी हो सकता है। ऐसा उस समय होता है जब वस्तु का निरंतर उपभोग बढ़ाते रहने से एक सीमा के पश्चात् उसका सीमांत तुष्टिगुण शून्य हो जाता है। इस सीमा के बाद भी यदि उपभोग बढ़ाया जाए तो सीमांत तुष्टिगुण ऋणात्मक (Negative) प्राप्त होने लगता है। ऐसी अवस्था में संतुष्टि स्तर को समान बनाए रखने के लिए दूसरी वस्तु की मात्रा बढ़ानी पड़ती है। दूसरी वस्तु भी एक सीमा के बाद ऋणात्मक तुष्टिगुण देती है। दूसरी वस्तु के कारण तुष्टिगुण में हुई क्षति पूर्ति करने के लिए अब पहली वस्तु की मात्रा इस प्रकार बढ़ाई जाती है ताकि संतुष्टि स्तर समान बना रहे। अतः ऐसी अवस्थाओं में तटस्थता वक्र गोलाकार या अण्डाकार बन सकता है जैसा कि निम्न चित्र 16 में दर्शाया गया है।

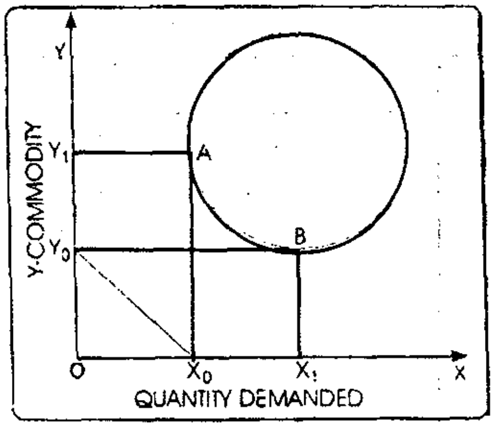

चित्र 16

रेखाचित्र 16 में तटस्थता वक्र का AB भाग में दोनों वस्तुएं धनात्मक तुष्टिगुण देती हैं। इसलिए AB भाग को प्रभावी क्षेत्र (Effective Region) कहा जाता है। अब यदि X-वस्तु की OX_1 से अधिक मात्रा उपभोग की जाती है तो ऋणात्मक तुष्टिगुण प्राप्त होता है जिसकी क्षतिपूर्ण के लिए Y-वस्तु की मात्रा बढ़ानी पड़ती है। इसी प्रकार Y वस्तु भी OY_1 से अधिक मात्रा उपभोग करने पर ऋणात्मक तुष्टिगुण देने वाली वस्तु है। OY_1 सीमा के बाद जो तुष्टिगुण में हानि होती है उसकी क्षतिपूर्ति के लिए X- वस्तु की मात्रा बढ़ानी पड़ती है ताकि संतुष्टि स्तर समान रखा जा सके। ऐसी परिस्थिति में तटस्थता वक्र की आकृति गोलाकार होगी जैसा कि चित्र में दर्शाया गया है।

11 **कीमत रेखा या बजट रेखा (Price Line or Budget Line):** चित्र 11 उपभोक्ता हमेशा उस सर्वश्रेष्ठ संयोग (Best combination) का उपभोग करना चाहता जिसके व्यय को वह सहन (afford) कर सकता है। (Consumers choose the best bundle of goods they can afford). सर्वश्रेष्ठ संयोग तथा उपभोक्ता व्यय सहन कर सकता है इन धारणों से हमारा क्या अभिप्राय है? पहले हम यह अध्ययन करेंगे कि उपभोक्ता वस्तुओं पर क्या व्यय सहन कर सकता है तथा अगले उपभाग में यह जांच की गई है कि वह सर्वश्रेष्ठ संयोग कैसे निर्धारित होता है।

उपभोक्ता के सम्मुख एक बजट प्रतिबंध (Budget Constraint) होता है जो इस बात का निर्धारण करता है कि वह वस्तुओं के संयोगों पर होने वाले किस व्यय को सहन कर सकता है। इस बजट प्रतिबंध को एक रेखा द्वारा प्रकट किया जाता है जिसको बजट रेखा या कीमत रेखा का नाम दिया गया है। कीमत रेखा या बजट रेखा क्या है?

प्रो. फर्गुसन के अनुसार, "कीमत रेखा वस्तुओं के उन संयोगों को दर्शाती है जिन्हें सारी मौद्रिक आय खर्च करके खरीदा जा सकता है।" (The price line shows the combinations of goods that can be purchased if the entire money income is spent. -Prof Ferguson)

अन्य शब्दों में कीमत रेखा दो वस्तुओं के उन विभिन्न संयोगों को प्रकट करती है जिनको उपभोक्ता अपनी सीमित आय तथा वस्तुओं की दी हुई कीमतों पर खरीद सकता है।

कीमत रेखा कैसे खींची जा सकती है?
(How to draw a Price Line?)

कीमत रेखा की परिभाषा से स्पष्ट है कि कीमत रेखा ज्ञात करने या खींचने के लिए हमें निम्न दो बातों का ज्ञान होना चाहिए:

1. उपभोक्ता की आय की मात्रा, जिसको दो वस्तुओं पर खर्च किया जाना है।
2. उन दो वस्तुओं की कीमतें जिनको उपभोक्ता उपभोग करना चाहता है।

मान लीजिए एक उपभोक्ता की आय 100 रुपए है जिसको वह X- वस्तु तथा Y- वस्तु दोनों पर व्यय करना चाहता है। यदि बाजार में X- वस्तु की कीमत 10 रुपए प्रति इकाई तथा Y- वस्तु की कीमत 20 रुपए प्रति इकाई हो तो वह 100 रुपए खर्च करके X तथा Y वस्तु के निम्न विभिन्न संयोग खरीद सकता है:

कीमत रेखा की तालिका

विभिन्न संयोग	X- वस्तु	Y- वस्तु
A	10	0
B	8	1
C	6	2
D	4	3
E	2	4
F	0	5

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि उपभोक्ता दोनों वस्तुओं के छः विभिन्न संयोग खरीद सकता है।

यदि उपभोक्ता अपनी सारी आय (100 रु.) X वस्तु पर ही खर्च करता है तो वह अधिक से अधिक X की 10 इकाइयां क्रय कर सकता है तथा Y वस्तु की शून्य इकाई। इसी प्रकार यदि वह B संयोग क्रय करता है जिसमें X- वस्तु की 8 इकाइयां तथा Y की इकाई सम्मिलित हैं। C संयोग को भी उपभोक्ता क्रय कर सकता है जिसमें X की 6 तथा Y की 2 इकाइयां शामिल हैं। अंततः वह F संयोग भी क्रय कर सकता है जिसमें X वस्तु की शून्य तथा Y की 5 इकाइयां शामिल हैं। अर्थात् यदि वह अपनी सारी आय Y वस्तु पर ही व्यय करता है तो अधिक से अधिक Y की 5 इकाइयां क्रय कर सकता है तथा X वस्तु की शून्य इकाई।

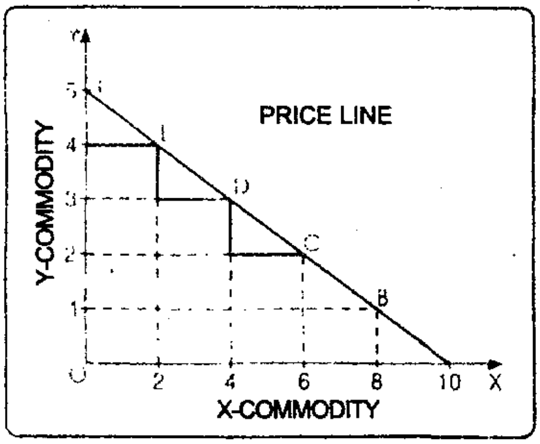

चित्र 17

रेखाचित्र (Diagram): उपरोक्त विभिन्न संयोगों को रेखा चित्र की सहायता से भी व्यक्त किया जा सकता है। चित्र 17 को अनुसार यदि उपभोक्ता अपनी सारी आय (100 रु.) X- वस्तु पर खर्च करता है तो वह X- की 10 इकाइयां (OA) खरीद सकता है। इसके विपरीत यदि उपभोक्ता अपनी सारी आय (100 रु.) Y- वस्तु पर खर्च करता है तो वह Y की 5 इकाइयां या OF मात्रा क्रय कर सकता है। F तथा A बिन्दुओं को मिलाने से FA कीमत रेखा बनती है। इस कीमत रेखा पर पड़ने वाले विभिन्न संयोगों को उपभोक्ता अपनी सारी आय खर्च करके खरीद सकता है। जैसे मुख्य संयोग B (8X+1Y), C(6X+2Y), D (4X+3Y), और E (2X+4Y) हैं। इन मुख्य संयोगों के अतिरिक्त कीमत रेखा पर पड़ने वाले प्रत्येक बिन्दु या संयोग को उपभोक्ता अपनी सीमित आय (100 रु.) तथा दोनों वस्तुओं की दी हुई कीमतों (Px = 10 रु. और Py = 20 रु.) पर खरीद सकता है।

कीमत रेखा को कुछ अन्य नामों जैसे –बजट रेखा (Budget Line), कीमत आय रेखा (Price Income Line), उपभोग संभावना रेखा (Consumption Possibility Line), व्यय रेखा (Expenditure Line) और प्राप्त होने योग्य संयोगों की रेखा (Line of Attainable Combinations) आदि नामों से जाना जाता है।

विशेषताएं (Characteristics)

कीमत रेखा की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

1. कीमत रेखा का ढाल हमेशा ऋणात्मक (Negative) होता है। अर्थात् यदि एक वस्तु का अधिक क्रय करते हैं तो दूसरी का क्रय कम करना होगा क्योंकि आय सीमित है।

   कीमत रेखा का ढाल (Slope of the Price Line) निम्न सूत्र के आधार पर ज्ञात किया जाता है:

   ज्यामिति (Geometry) के अनुसार कीमत रेखा का ढाल लंब को आधार से भाग देने पर प्राप्त किया जा सकता है:

   $$\text{Slope of Price Line} = \frac{OF}{OA} = \frac{M/_{PX}}{M/_{PY}} = \frac{P_x}{P_Y}$$

   OF = Y वस्तु की जिसको सारी आय Y पर खर्च करके प्राप्त किया जा सकता है।

   OA = X वस्तु की मात्रा जिसको सारी आय X पर व्यय करके प्राप्त किया जा सकता है।

   M = मौद्रिक आय

   P_Y = Y वस्तु की कीमत

   P_X = X वस्तु की कीमत

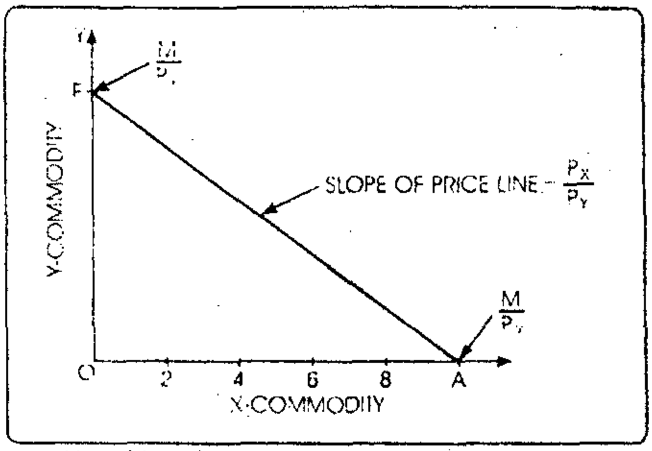

चित्र 18

2. कीमत रेखा एक सीधी सरल रेखा के रूप में प्राप्त होती है।
3. कीमत रेखा की स्थिति आय के स्तर पर निर्भर करती है।
4. कीमत रेखा की आकृति दोनों वस्तुओं की सापेक्ष कीमतों (Relative Prices) पर निर्भर करती है।

कीमत रेखा में परिवर्तन
(Shifting of the Price Line)

कीमत रेखा की स्थिति उपभोक्ता की आय पर निर्भर करती है, जबकि इसका ढाल दोनों वस्तुओं की कीमतों पर निर्भर करता है। इसलिए कीमत रेखा में परिवर्तन निम्न प्रकार का हो सकता है–

1. **कीमत रेखा का समानान्तर सरकाना (Parallel Shifting of Price Line):** यदि दोनों वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहें, परंतु उपभोक्ता की आय में परिवर्तन हो जाए तो कीमत रेखा की स्थिति में परिवर्तन हो जाता है। अर्थात् दोनों वस्तुओं की कीमतों के स्थिर रहते हुए यदि आय में वृद्धि हो जाती है तो कीमत रेखा ऊपर की ओर सरक जाएगा। इसके विपरीत यदि आय में कमी हो जाती है तो कीमत रेखा समानांतर रूप से नीचे की ओर सरक जाएगी जैसा कि निम्न रेखाचित्र से स्पष्ट हो रहा है।

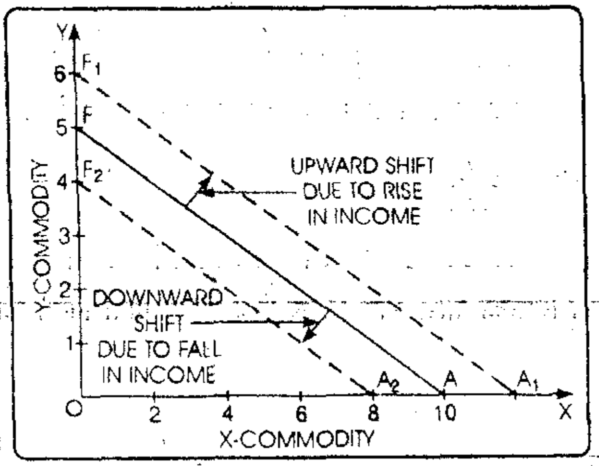

चित्र 19

चित्र 19 में स्पष्ट किया गया है कि प्रारम्भिक कीमत रेखा FA आय में वृद्धि (120 रु.) होने के कारण (वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहते हुए) ऊपर सरक कर F'A' बन जाती है। इसके विपरीत वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहते हुए यदि आय कम हो कर 80 रुपए रह जाती है तो FA कीमत रेखा नीचे सरक कर F" A" बन जाती है। अतः कीमत रेखा की स्थिति ऊपर या नीचे समानांतर रूप से सरकती हैं इसमें वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहने के कारण कीमत रेखा का ढाल (Slope of the Price Line) ज्यों का त्यों बना रहता है।

2. **कीमत रेखा के ढाल में परिवर्तन (Change in the Slope of the Price Line):** यदि उपभोक्ता की आय स्थिर रहे, एक वस्तु की कीमत भी स्थिर रहे परंतु दूसरी वस्तु की कीमत में परिवर्तन आ जाए तो कीमत रेखा में परिवर्तन इस प्रकार का होता है कि इसका ढाल बदल जाता है। इस स्थिति में कीमत रेखा का एक सिरा अपने पहले वाले स्थान पर ही बना रहेगा जबकि दूसरा सिरा जो दूसरी वस्तु (जिसकी कीमत में परिवर्तन हुआ है) की ओर होता है वह ऊपर या नीचे सरकेगा। यदि कीमत में वृद्धि हुई है तो यह सिरा उद्गम (O) की ओर सरकेगा। इसके विपरीत यदि दूसरी वस्तु की कीमत कम हो गई है तो इस वस्तु की ओर वाला सिरा बाहरी ओर सरक जाएगा जैसा कि चित्र में दर्शाया गया है।

रेखाचित्र 20 में FA प्रारम्भिक कीमत रेखा है। अब यदि उपभोक्ता की आय तथा Y वस्तु की कीमत स्थिर रहती है तथा X- वस्तु की कीमत कम हो जाती है तो कीमत रेखा सरक कर FA' हो जाती है। इसके विपरीत यदि आय तथा Y- वस्तु की कीमत स्थिर रहते हुए X वस्तु की कीमत बढ़ जाती है तो कीमत रेखा FA" बन जाती है क्योंकि अब यदि वह सारी आय X वस्तु खरीदने में लगाता है तो वह पहले से कम X- वस्तु खरीद पाएगा क्योंकि अब X वस्तु महंगी हो गई है।

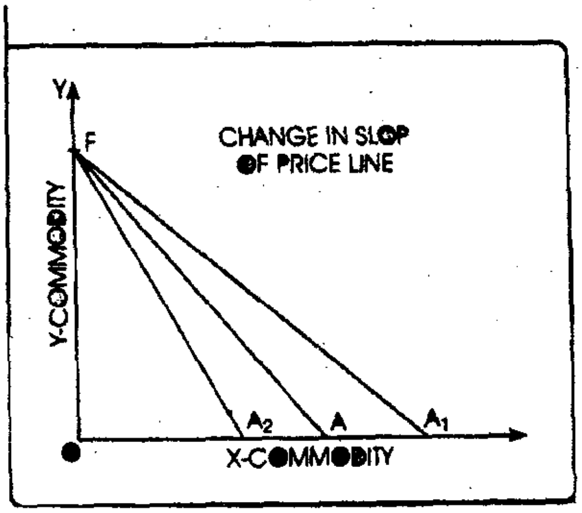

चित्र 20

अब हम बजट रेखा की सहायता से तटस्थता वक्र पद्धति द्वारा उपभोक्ता के संतुलन का अध्ययन कर सकते हैं:

तटस्थता वक्र विश्लेषण की सहायता से उपभोक्ता के संतुलन का निर्धारण (Determination of Consumers Equilibrium with the help of IC Analysis)

उपभोक्ता उस समय संतुलन में होता जब वह अपनी दी हुई आय से वस्तुओं की दी हुई बाजार कीमतों पर ऐसे संयोग को खरीदता है कि उसे अधिकतम संतुष्टि प्राप्त होती है। अधिकतम संतुष्टि की स्थिति में उपभोक्ता किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं करना चाहता। यदि वह उस स्थिति में परिवर्तन करता है तो उसका संतुष्टि स्तर कम हो जाएगा तथा उपभोक्ता संतुलन में नहीं होगा। अन्य शब्दों में उपभोक्ता संतुलन से अभिप्राय एक ऐसी स्थिति से है जिसमें उपभोक्ता अपनी निश्चित आय तथा निश्चित कीमतों पर वस्तु तथा सेवाओं के उस प्रयोग को खरीदता है जिससे उसको अधिकतम संतुष्टि प्राप्त होती है तथा वह उस स्थिति में किसी प्रकार का परिवर्तन करने का इच्छुक नहीं होता।

मान्यताएं (Asssumptions)

1. उपभोक्ता के पास एक निश्चित आय है तथा इस सारी आय को वह दो वस्तुओं पर अनिवार्य रूप से खर्च करता है।
2. वस्तुओं की कीमत दी हुई हैं तथा स्थिर रहती हैं।
3. उपभोक्ता विवेकशील है। वह अपनी आय को इस,प्रकार खर्च करना चाहता है ताकि उसको अधिकतम संतुष्टि प्राप्त हो।
4. उपभोक्ता के सामने उसका अपना तटस्थता मानचित्र है, जो उसको दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों के बीच उनका प्राथमिकता क्रम (Scale of Preference) प्रकट करता है।
5. वस्तुएं समरूप तथा विभाजनशील हैं।
6. वस्तुओं में कुछ प्रतिस्थापन पाया जाता है।
7. बाज़ार में पूर्ण प्रतियोगिता है।
8. उपभोक्ता की रुचि आदि में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

उपभोक्ता संतुलन की शर्तें
(Conditions of Consumer's Equilibrium)

उपभोक्ता संतुलन के लिए निम्न दो शर्तों का पूरा होना अनिवार्य है:

1. उपभोक्ता का संतुलन वहां स्थापित होगा जहां कीमत–रेखा तटस्थता वक्र को स्पर्श करती है। (Price line must be tangent to an indifference curve): संतुलन बिन्दु पर कीमत रेखा का ढाल तटस्थता वक्र के ढाल के बराबर होता है:

   vFkkZ $MRS_{XY} = \frac{P_X}{P_Y}$

2. संतुलन बिन्दु पर तटस्थता वक्र उद्‌गम की ओर उन्नतोदर (Convex) होनी चाहिए। (IC must be convex to the origin) अर्थात् X वस्तु की मात्रा बढ़ाने पर MRS_{XY} घटता हुआ होना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब तटस्थता वक्र उद्‌गम की ओर उन्नतोदर हो।

उपभोक्ता संतुलन का निर्धारण
(Determination of Consumer's Equilibrium)

उपभोक्ता का स्थाई संतुलन वहां निर्धारित होता है जहां उपरोक्त दोनों शर्तें संतुष्ट हो रही हों। प्रथम शर्त संतुलन की अनिवार्य शर्त (necessary condition) है परंतु पर्याप्त नहीं। अतः उपभोक्ता संतुलन की व्याख्या निम्न प्रकार की गई है:

1. **कीमत रेखा तटस्थता वक्र को स्पर्श करनी चाहिए।** (Price line must be tangent to an Indifference curve): उपभोक्ता के तटस्थता मानचित्र तथा उसकी कीमत रेखा की सहायता से उपभोक्ता का संतुलन निर्धारित किया जा सकता है। रेखाचित्र 21 में उपभोक्ता की कीमत रेखा FA तथा उसके तटस्थता मानचित्र को IC, IC_I तथा IC_{II} द्वारा दर्शाया गया है। हम जानते हैं कि उपभोक्ता कीमत रेखा FA पर पड़ने वाले किसी भी संयोग को खरीदने का सामर्थ्य रखता है। यदि वह कीमत रेखा के बाहर के संयोग को ख़रीदता है तो उसकी आय कम रह जाती है अर्थात् दी हुई आय से बाहर के संयोग K को नहीं खरीद सकता। यदि वह कीमत रेखा के नीचे उद्‌गम की ओर पड़ने वाले संयोग को खरीदता है तो उसकी सारी आय खर्च नहीं होगी। अतः वह कीमत रेखा पर पड़ने वाले किसी एक संयोग को ही खरीद सकता है। वह कौन सा संयोग है?

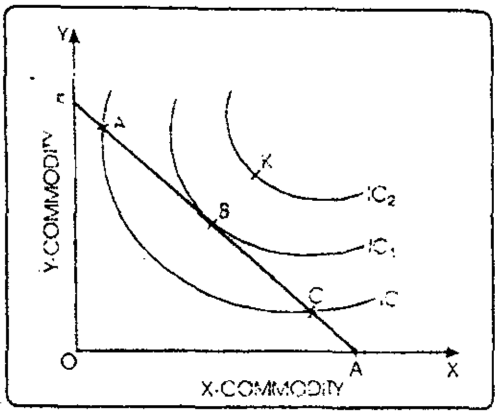

चित्र 21

उपभोक्ता अपने अधिकतम संतुष्टि के उद्देश्य को पूरा करने के लिए ऊंचे से ऊंचे तटस्थता वक्र पर पहुंचना चाहता है। जैसे कि IC_{11} पर K बिन्दु। परंतु IC_{11} पर K बिन्दु का क्रय करने का सामर्थ्य उपभोक्ता में नहीं है। क्या वह A या C संयोग को खरीदेगा? A तथा C संयोग तटस्थता वक्र IC को काट (Cross) कर रहे हैं न कि स्पर्श कर रहे हैं। इन संयोगों में से उपभोक्ता किसी एक संयोग को खरीद तो सकता है, परंतु वे नीचे वाले तटस्थता वक्र पर पड़ते हैं तथा कम संतुष्टि देते हैं। इसलिए उपभोक्ता B संयोग को ही खरीदता है जहां कीमत रेखा ऊंचे से ऊंचे तटस्थता वक्र IC_1 को स्पर्श करती है। यहां पर उपभोक्ता का संतुष्टि स्तर अधिकतम होता है।

B बिन्दु पर जहां कीमत रेखा तटस्थता वक्र को स्पर्श करती है वहां कीमत रेखा का ढाल तटस्थता वक्र के ढाल के बराबर है:

Slope of Indifference Curve = Slope of Price Line

अतः $MRS_{XY} = \frac{P_X}{P_Y}$

यह सत्य है कि जब तटस्थता वक्र ढाल कीमत रेखा के बराबर होता है अर्थात् $MRS_{XY} = \frac{P_X}{P_Y}$ होता है तो उपभोक्ता का संतुष्टि स्तर अधिकतम होता है तथा उपभोक्ता यहां संतुलन की अवस्था में होता है क्योंकि वह उच्चतम तटस्थता वक्र को प्राप्त कर लेता है जिसके लिए वह सक्षम है परंतु उपभोक्ता संतुलन की यह शर्त केवल एक अनिवार्य शर्त (Necessary condition) है यह पर्याप्त शर्त (Sufficient condition) नहीं है। उसके स्थाई संतुलन के लिए पर्याप्त शर्त का पूरा होना भी आवश्यक है जिसकी व्याख्या निम्न प्रकार की गई है:

2. तटस्थता वक्र उद्‌गम की ओर उन्नतोदर (convex) होना चाहिए। संतुलन की स्थिति में यदि तटस्थता वक्र उद्‌गम (O) की ओर नतोदर (convex) है तो वह उपभोक्ता का स्थाई संतुलन नहीं होगा।

रेखाचित्र 22 में FA कीमत रेखा है। यह कीमत रेखा तटस्थता वक्र IC को E बिन्दु पर स्पर्श कर रही है जहां $MRS_{XY} = \frac{P_X}{P_Y}$ है। परंतु E बिन्दु उपभोक्ता के स्थाई संतुलन को प्रकट नहीं करता। E बिन्दु पर IC की सीमांत प्रतिस्थापन की दर (MRS_{XY}) घटती हुई नहीं बल्कि बढ़ती हुई है या तटस्थता वक्र उद्‌गम की ओर नतोदर (Concave) है। इसका अर्थ यह हुआ कि उपभोक्ता E बिन्दु से दाएं या बाएं सरकने पर ऊंचे तटस्थता वक्र पर पहुंच जाएगा। इसलिए E बिन्दु पर संतुलन स्थाई नहीं होगा। उपभोक्ता स्थाई संतुलन तभी प्राप्त करेगा जब तटस्थता वक्र उद्‌गम की ओर उन्नतोदर (convex) हो। जैसा कि B बिन्दु पर IC_1 तटस्थता वक्र है। अतः B बिन्दु पर कीमत रेखा तटस्थता वक्र को स्पर्श भी कर रही है तथा तटस्थता वक्र उन्नतोदर (convex) भी है। इसलिए B बिन्दु उपभोक्ता का स्थाई संतुलन बिन्दु है क्योंकि इस स्थिति में उपभोक्ता संतुलन की दोनों शर्तें संतुष्ट होती हैं।

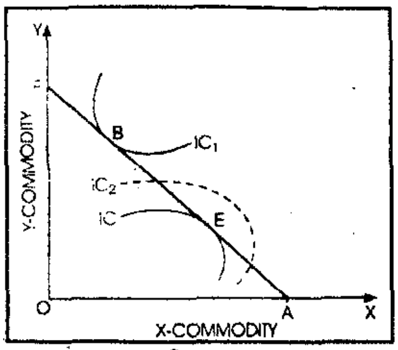

चित्र 22

1. $MRS_{XY} = \frac{P_X}{P_Y}$

अर्थात कीमत रेखा तटस्थता वक्र को स्पर्श करती है क्योंकि जहां कीमत रेखा तटस्थता वक्र को स्पर्श करती है वहीं पर ही दोनों का ढाल (Slope) बराबर $MRS_{XY} = \frac{P_X}{P_Y}$ होता है।

2. MRS_{XY} must be dominishing.

अर्थात् स्पर्श बिन्दु पर तटस्थता वक्र उन्नतोदर होना चाहिए।

आय तथा कीमतों में परिवर्तन के उपभोग पर प्रभाव
(Effects of changes in income prices on consumption)

पूर्व अध्याय में उपभोक्ता संतुलन के निर्धारण संबंधी हमारी यह मान्यता थी कि उपभोक्ता की आय तथा वस्तुओं की कीमतों में कोई परिवर्तन नहीं होता। परंतु वास्तविक जगत में उपभोक्ता की आय तथा वस्तुओं की कीमतें परिवर्तित होती रहती हैं। इसलिए इस अध्याय में तटस्थता वक्रों की सहायता से यह अध्ययन किया गया है कि उपभोक्ता की आय तथा वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन के उपभोक्ता संतुलन व मांग पर क्या–क्या प्रभाव पड़ते हैं? इसके साथ ही इस अध्याय में तटस्थता वक्रों के महत्त्व, तटस्थता वक्रों की तुष्टिगुण विश्लेषण से तुलना, तटस्थता वक्रों का मूल्यांकन या आलोचनात्मक समीक्षा आदि की जांच भी की गई है।

आय तथा कीमतों में परिवर्तन से उत्पन्न प्रभावों को निम्न तीन प्रभावों के अंतर्गत अध्ययन किया जाता है:

1. आय प्रभाव (Income Effect)
2. प्रतिस्थापन प्रभाव (Substitution Effect)
3. कीमत प्रभाव (Price Effect)

1. **आय प्रभाव** (Income Effect): केवल उपभोक्ता की आय में परिवर्तन के कारण जो उपभोक्ता संतुलन व वस्तुओं की मांग पर प्रभाव पड़ते हैं, उनको आय प्रभाव कहा जाता है। अन्य शब्दों में दोनों वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहते हुए उपभोक्ता की आय में परिवर्तन के कारण उपभोक्ता संतुलन या दोनों वस्तुओं की मांग पर जो प्रभाव पड़ता है, उसको आय प्रभाव कहते हैं। (The Income effect is the effect on demand or on the consumer equilibrium caused by changes in income, if prices of goods remain constant.) ज्यों–ज्यों आय बढ़ती है उपभोक्ता की कीमत रेखा ऊपर की ओर समानांतर रूप से सरकती जाती है तथा उपभोक्ता ऊंचे–ऊंचे तटस्थता वक्रों पर संतुलन प्राप्त करता जाता है। इसके विपरीत ज्यों–ज्यों आय घटती जाती है तो वह नीचे वाले तटस्थता वक्रों पर संतुलन प्राप्त करता जाता है तथा उसका संतुष्टि स्तर गिरता जाता है और दोनों वस्तुओं की मांग गिरती जाती है।

आय प्रभाव की मान्यताएं (Assumptions of Income Effect):

तटस्थता वक्र विश्लेषण की सामान्य मान्यताओं के अतिरिक्त आय प्रभाव की कुछ विशेष मान्यताएं निम्न प्रकार से हैं:

1. उपभोक्ता की आय में परिवर्तन होता है।
2. उपभोग की जाने वाली दोनों वस्तुओं की कीमतों में कोई परिवर्तन नहीं होता।
3. उपभोक्ता की रुचि आदि में कोई परिवर्तन नहीं होता अर्थात् उसका तटस्थता मानचित्र यथावत् बना रहता है।

आय प्रभाव की व्याख्या निम्न चित्र 1 द्वारा की जा सकती है। चित्र 23 में OX- अक्ष पर X वस्तु तथा OY- अक्ष पर Y- वस्तु की मात्रा मापी गई है। AB प्रारम्भिक कीमत रेखा है जो IC_1 तटस्थता वक्र को E बिन्दु पर स्पर्श करती है तथा E बिन्दु उपभोक्ता का प्रारम्भिक संतुलन बिन्दु है। उपभोक्ता X वस्तु की OM तथा Y वस्तु की OL मात्रा का उपभोग तथा मांग करता है। मान लो उपभोक्ता की आय में वृद्धि हो जाती है तथा दोनों वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहती हैं। इसके फलस्वरूप कीमत रेखा ऊपर सरक कर A_{11},B_{11} बन जाती है जो IC_{11} तटस्थता वक्र को E_{11} पर स्पर्श करती है। अब E_{11} उपभोक्ता का संतुलन बिन्दु है। पहले की अपेक्षा उपभोक्ता का संतुष्टि स्तर बढ़ गया है क्योंकि अब वह ऊंचे वाले तटस्थता वक्र पर संतुलन में है तथा दोनों वस्तुओं की अधिक मात्रा (X की OM_{11} तथा Y की OL_{11}) का उपभोग या मांग कर रहा है। इसके विपरीत यदि आय कम हो जाती है तो दोनों वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहते हुए कीमत रेखा नीचे सरक कर A_1B_1 बन जाती है। A_1B_1 कीमत रेखा तटस्थता वक्र IC को E_1 बिन्दु पर स्पर्श करती है। इसलिए अब उपभोक्ता का संतुलन बिन्दु E_1 पर स्थापित होता है तथा उपभोक्ता दोनों वस्तुओं की मांग या उपभोग कम कर देता है। अब वह X- वस्तु की OM_1 तथा Y- वस्तु की OL मात्रा का उपभोग कर रहा है तथा उसका संतुष्टि स्तर पहले से कम हो जाता है क्योंकि E_1 नीचे वाले तटस्थता वक्र IC पर स्थित है।

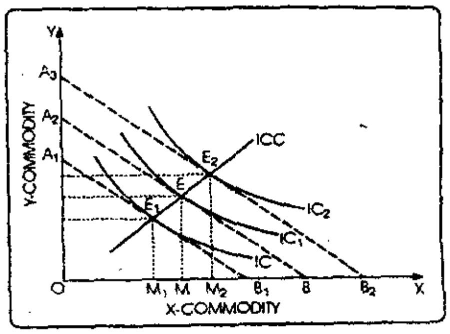

चित्र 23

आय में परिवर्तन के कारण उत्पन्न हुए विभिन्न उपभोक्ता संतुलन बिन्दुओं जैसे E, E_1, E_{11} को मिलाने वाली रेखा आय उपभोग वक्र (Income Consumption Curve) कहलाती है। ICC (Income Consumption Curve) वक्र आय में परिवर्तन के कारण उपभोग तथा दोनों वस्तुओं की मांग पर पड़ने वाले प्रभावों को व्यक्त करती या दर्शाती है।

आय प्रभाव के प्रकार
(Kinds of Income Effect)

वस्तुओं के उपभोग या मांग पर पड़ने वाले प्रभाव के दृष्टिकोण से आय प्रभाव दो भागों में बंट जाता है: (1) धनात्मक आय प्रभाव (2) ऋणात्मक आय प्रभाव। इनकी व्याख्या निम्न प्रकार की गई है:

(क) **धनात्मक आय प्रभाव** (Positive Income Effect): उपभोक्ता की आय में वृद्धि होने से वस्तु की मांग बढ़े तथा आय में कमी होने से वस्तु की मांग कम हो जाए तो आय प्रभाव धनात्मक होता है। उपरोक्त चित्र में दोनों वस्तुओं की मांग पर आय प्रभाव धनात्मक है। जिन वस्तुओं की मांग पर आय प्रभाव धनात्मक होता है वे वस्तुएं सामान्य वस्तुएं (Normal Goods) कहलाती है। उपरोक्त चित्र में दोनों वस्तुएं सामान्य वस्तुएं हैं।

(ख) **ऋणात्मक आय प्रभाव** (Negative Income Effect): ऋणात्मक आय प्रभाव उसे कहा जाता है जब आय में वृद्धि से वस्तु की मांग कम हो जाए। घटिया वस्तुओं (Inferior Goods) के मामले में आय प्रभाव ऋणात्मक होता है। आय उपभोग वक्र (ICC) घटिया वस्तु की ओर अर्थात् पूर्णतया बाईं ओर (Extreme Left) या पूर्णतया दाईं ओर (Extreme Right) झुका हुआ होता है। इसका कारण यह है कि आय बढ़ने पर उपभोक्ता घटिया वस्तु की पहले से कम मात्रा मांग करता है तथा बढ़िया वस्तु की मांग बढ़ा देता है। निम्न चित्र 24 में दर्शाया गया है कि यदि Y- वस्तु घटिया वस्तु है तो ICC वक्र नीचे दाईं ओर मुड़ता हुआ होगा। चित्र 25 में दर्शाया गया है कि यदि X- वस्तु घटिया वस्तु है तो ICC वक्र ऊपर बाईं ओर मुड़ा हुआ होगा।

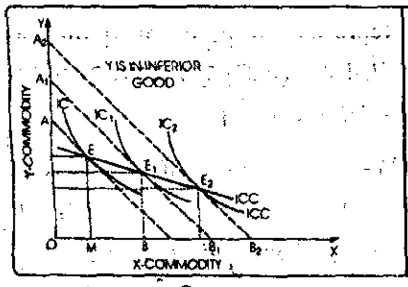

चित्र 24

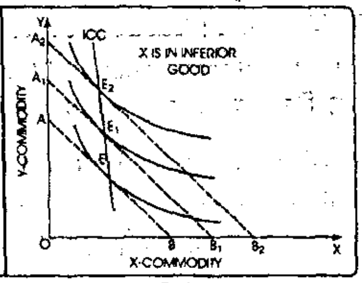

चित्र 25

चित्र 25 में ICC वक्र दर्शा रहा है कि E बिन्दु से आगे E_1 तथा E_{11} और आगे भाग में Y वस्तु घटिया वस्तु (Inferior good) है तथा X- वस्तु सामान्य वस्तु है। आय बढ़ने से कीमत रेखा समानांतर रूप से ऊपर सरकती है तथा उपभोक्ता Y घटिया वस्तु की मांग कम करता जाता है तथा X की मांग बढ़ाता जाता है जैसे कि E_1 तथा E_{11} संतुलन बिन्दुओं से बिल्कुल स्पष्ट हो रहा है। E, E_1 तथा E_{11} को मिलाने से तटस्थता वक्र नीचे झुकता जाता है।

चित्र 25 में X वस्तु घटिता दर्शाई गई है। *आय में वृद्धि के परिणामस्वरूप उपभोक्ता का संतुलन बिन्दु* E से इस प्रकार ऊपर सरकता है कि X वस्तु की मांग कम होती जाती है। जैसा कि ICC बाईं ओर मुड़ता जाता है।

ध्यान देने की बात है कि आय के एक निश्चित स्तर से आगे ही आय प्रभाव ऋणात्मक होता है क्योंकि प्रारंभ में आय के बहुत कम स्तर से जब आय बढ़ने लगती है तो घटिया वस्तु की मांग भी बढ़ती है या आय प्रभाव धनात्मक होता है इसलिए मूल बिन्दू से जब ICC वक्र निकलता है तो दोनों वस्तुओं की मांग पर आय प्रभाव धनात्मक होता है। एक सीमा के बाद आय बढ़ने पर घटिया वस्तु की मांग कम होती जाती है। अतः निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते है। कि प्रत्येक दशा में ICC मूल बिन्दु से शुरू होकर इसके ढाल भिन्न–भिन्न हो सकते हैं। जैसा कि निम्न चित्र 26 में दर्शाया गया है।

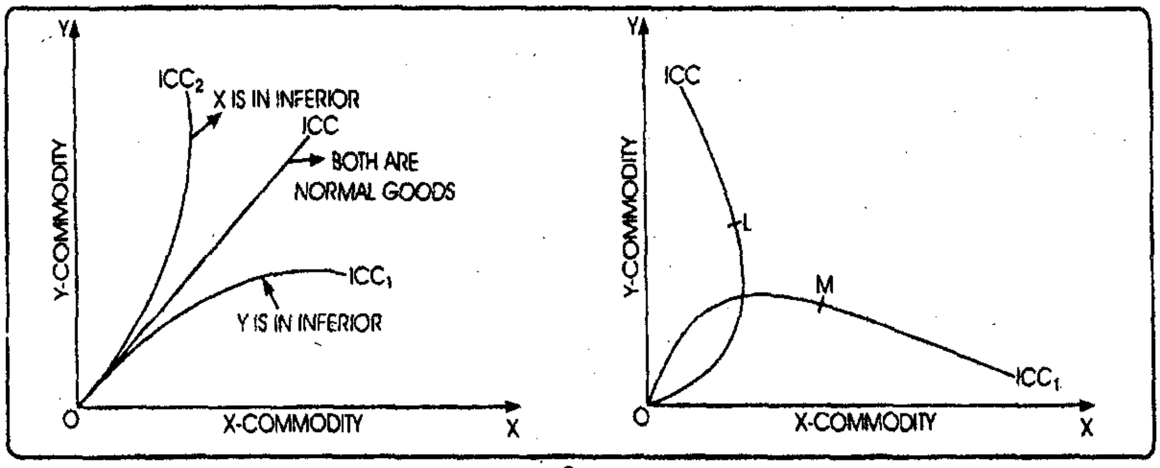

चित्र 26

चित्र 26 में ICC वक्र दर्शाता है कि L बिन्दु के बाद X वस्तु घटिया वस्तु है तथा आय प्रभाव ऋणात्मक है। ICC_1 वक्र पर M बिन्दु के बाद Y वस्तु घटिया वस्तु है तथा इस वस्तु पर आय प्रभाव ऋणात्मक है।

ऐंजिल वक्र (Engel's Curve): ऐंजिल वक्र का प्रतिपादन जर्मनी के एक प्रसिद्ध विद्वान् ऐंजिल द्वारा किया गया था। यह एक ऐसा वक्र होता है जो आय के विभिन्न स्तरों पर किसी वस्तु के उपभोग की विभिन्न मात्राओं को दर्शाता है जिनसे उपभोक्ता को अधिकतम संतुष्टि प्राप्त होती है। वस्तुतः ऐंजिल वक्र उपभोक्ता की आय तथा किसी वस्तु के उपभोग के उन संयोगों या बिन्दुओं को मिलाने से प्राप्त होता है जो उसके संतुलन को प्रकट करते हैं। यह वक्र व्यक्त करता है कि एक उपभोक्ता अपनी आय के विभिन्न स्तरों पर किसी वस्तु की कितनी–कितनी मात्रा उपभोग करे ताकि वह अधिकतम संतुष्टि प्राप्त कर सके। यह अवस्था आय तथा किसी वस्तु के उपभोग से संबंधित उपभोक्ता के संतुलन को प्रकट करती है। (An Engel's curve represents the points of equilibrium of a consumer relating his income and quantity of some goods.) आय उपयोग वक्र (ICC) एक प्रकार से ऐंजिल वक्र को ही प्रकट करता है। ऐंजिल वक्र को चित्र 27 की सहायता से दर्शाया जा सकता है।

चित्र 27 में OX- अक्ष पर X वस्तु की मात्रा तथा OY- अक्ष पर उपभोक्ता की आय मापी गई है। E बिन्दु दर्शाता है कि जब उपभोक्ता की आय OM है तो वह X वस्तु की OQ मात्रा का उपभोग करता है। जब आय का स्तर बढ़कर OM_1 हो जाता है तो X वस्तु का उपभोग भी बढ़कर OQ_1 हो जाता है। E तथा E_1 बिन्दुओं को मिलाने से ऐंजिल

वक्र प्राप्त होता है। चित्र में आय की तुलना में उपभोग कम बढऋ रहा हैं जीवन की अनिवार्य वस्तुओं जैसे अनाज आदि के संबंध में ऐसा ही होता हैं एंजल वक्र का ढाल निम्न बातों पर निर्भर करता है।

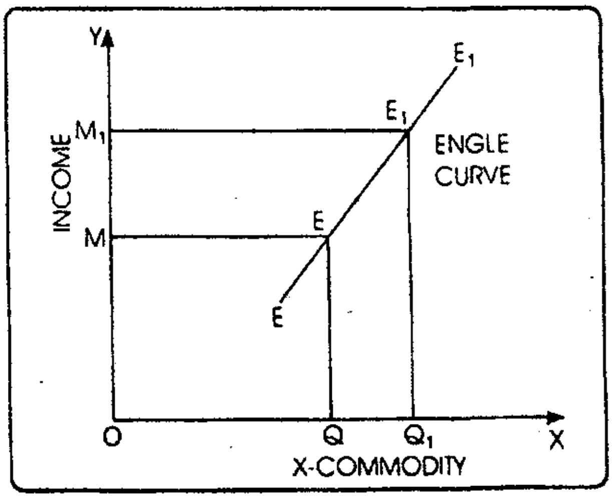

चित्र 27

1. ***विलासपूर्ण वस्तुएं (Luxury Goods):*** विलासपूर्ण वस्तुओं (Luxury Goods) के संदर्भ में ऐंजिल वक्र का ढाल (Slope) कम होगा अर्थात् आय बढ़ने पर विलासपूर्ण वस्तुओं की मांग अधिक बढ़ती है। चित्र 28 में दर्शाया गया है कि आय बढ़ने पर विलासपूर्ण वस्तुओं की मांग अपेक्षाकृत अधिक बढ़ती है। जब आय M से बढ़कर M_1 हो जाती है तो उपभोक्ता की इष्टतम पसंदगी (Optimal Choice) या संतुलन बिन्दु इस प्रकार परिवर्तित होता है कि X वस्तु की मांग आय की तुलना में अधिक बढ़ती है जो बढ़ कर Q_1 हो जाती है।

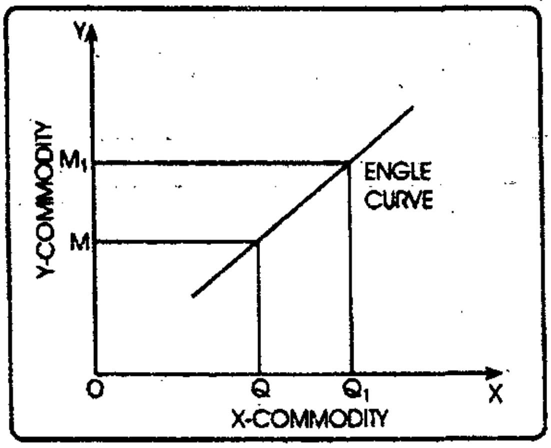

चित्र 28

2. ***पूर्ण प्रतिस्थापन वस्तुएं (Perfect Substitutes):*** पूर्ण प्रतिस्थापन वस्तुओं के संदर्भ में ऐंजिल वक्र की आकृति चित्र 29 द्वारा दर्शाई गई है। यदि X वस्तु Y वस्तु से सस्ती ($P_X < P_Y$) है तो उपभोक्ता X वस्तु का ही उपभोग करेगा तथा E बिन्दु पर संतुलन में होगा क्योंकि दोनों पूर्ण प्रतिस्थापन हैं। ज्यों उपभोक्ता की आय बढ़ती है तो वह X वस्तु का उपभोग बढ़ाएगा। इस प्रकार आय उपभोग वक्र (ICC or Income Offer Curve) क्षतीज अक्ष पर ही OX- अक्ष में सम्मिलित होगा। (A) तथा (B) चित्रों से स्पष्ट होता है कि X वस्तु की मांग आय (M) की X वस्तु की कीमत (P_X) से भाग देने ($D_x = M/P_x$) से ज्ञात होगी। ऐंजिल वक्र : $M = P_X D_X$ इसका ढाल $= P_X$ होगा।

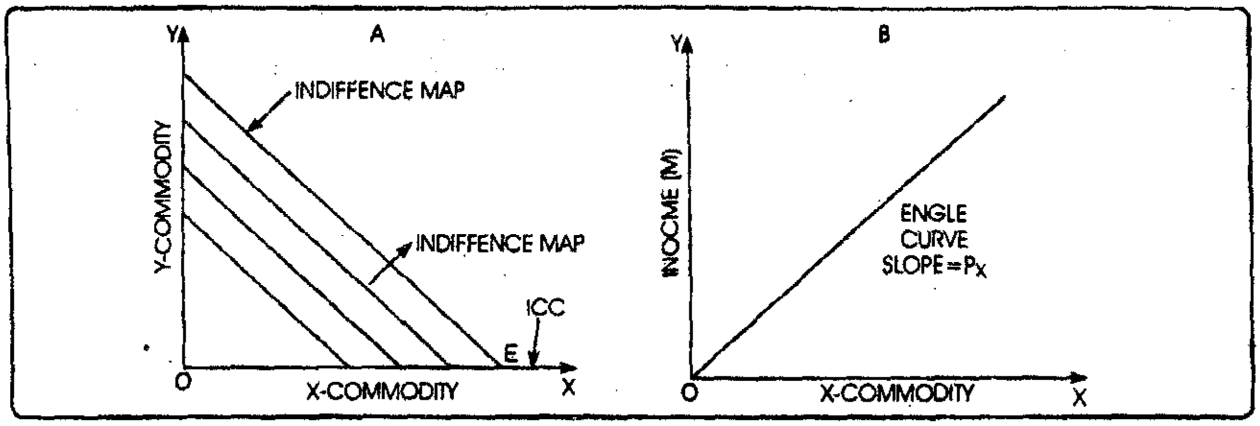

चित्र 29

3. ***पूर्ण पूरक पदार्थ (Perfect Complements):*** ऐंजिल वक्र के अनुसार पूर्ण पूरक पदार्थों की मांग पर आय परिवर्तन का प्रभाव निम्न चित्र 30 द्वारा व्यक्त किया गया है। आय बढ़ने पर हमेशा दोनों पूरक पदार्थों की मांग क्योंकि समान रूप से बढ़ती है इसलिए आय उपभोग वक्र अग्र चित्र अनुसार ऊपर उठता हुआ होगा। ऐंजिल वक्र भाग B में दर्शाया गया है।

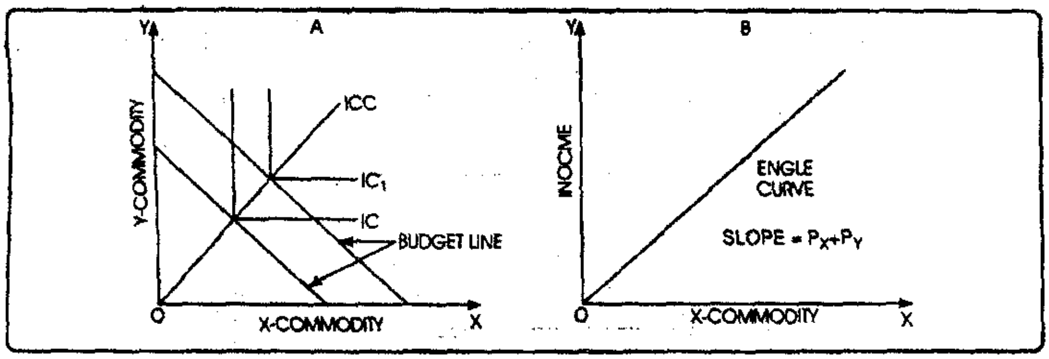

चित्र 30

X वस्तु की मांग $= \frac{M}{P_X + P_Y}$ है क्योंकि दोनों पूर्ण पूरक पदार्थ हैं।

$$X_d = \frac{M}{P_X + P_Y}$$

$$M = (P_X + P_Y)X_d$$

2. **प्रतिस्थापन प्रभाव (Substitution Effect):** उपभोक्ता द्वारा खरीदी जाने वाली वस्तुओं में से किसी एक वस्तु कीमत में परिवर्तन होने के कारण दोनों वस्तुओं की सापेक्ष कीमतें (एक दूसरे से संबंधित) परिवर्तित हो जाती हैं। उपभोक्ता की वास्तविक आय स्थिर रखते हुए वस्तुओं की सापेक्ष कीमतों में परिवर्तन के फलस्वरूप उपभोग की जाने वाली वस्तुओं की मांग पर या उसकी संतुलन स्थिति पर जो प्रभाव पड़ता है उसे प्रतिस्थापन प्रभाव कहते हैं। (The substitution effect shows the change in the amout of the goods purchased due to change in the relative prices alone while real income remains constant.) जब एक वस्तु की कीमत कम हो जाती है तथा दूसरी वस्तु की कीमत स्थिर रहती है,जो दोनों वस्तुओं की कीमतों में सापेक्ष परिवर्तन (Relative Change in Prices) यह होगा कि एक वस्तु दूसरी से सस्ती तथा एक वस्तु दूसरी से महंगी हो जाती है। एक वस्तु की कीमत कम होने से उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ जाती है क्योंकि उपभोक्ता पहले की अपेक्षा वस्तुओं की अधिक मात्रा खरीद सकता है। उसकी

वास्तविक आय स्थिर रखने के लिए उसकी बढ़ी हुई आय उससे ले ली जाए तो दोनों वस्तुओं की खरीद में इस प्रकार का परिवर्तन होता है कि उपभोक्ता महंगी वस्तु के स्थान पर सस्ती वस्तु की कुछ मात्रा प्रतिस्थापित करता है। इसी को प्रतिस्थापन्न प्रभाव कहते हैं।

मान्यताएं (Assumptions):

1. उपभोक्ता की वास्तविक आय में कोई परिवर्तन नहीं होता।
2. सापेक्षिक कीमतों में परिवर्तन होता है।
3. संतुष्टि स्तर पहले जितना ही बना रहता है।
4. उपभोक्ता की रुचि आदि में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

उदाहरणार्थ मान लीजिए उपभोक्ता की आय 100 रु. है जिससे वह 4 किलो दूध और 2 किलो सेब खरीदता है। दूध की कीमत 15 रु. प्रति किलो तथा सेब की कीमत 20 रु. प्रति किलो है। अब यदि दूध की कीमत कम हो कर 10 रु. प्रति किलो हो जाए तो उपभोक्ता पहले जितनी वस्तुएं अर्थात् 4 किलो दूध तथा 2 किलो सेब 80 रु. में खरीद सकेगा। इसके परिणामस्वरूप उपभोक्ता की वास्तविक आय 20 रु. बढ़ गई है। अब यदि उपभोक्ता से 20 रु. किसी अन्य व्यक्ति द्वारा ले लिए जाए तो उसकी वास्तविक आय (4 Kg. Milk + 2 Kg. Apples) पहले जितनी रह जाती है, परंतु दूध की सापेक्ष कीमत (Relative Price) कम हो जाने से दूध सेब की तुलना में सस्ता तथा सेब दूध की तुलना में महंगा हो गया है। इसलिए उपभोक्ता सेब की कम मात्रा तथा दूध की अधिक मात्रा खरीदेगा। जब उपभोक्ता महंगी वस्तु के स्थान पर सस्ती वस्तु को प्रतिस्थापित करता है तो यह प्रतिस्थापन प्रभाव (Substitution Effect) कहलाता है। प्रतिस्थापन प्रभाव से प्रो. हिक्स के अनुसार उपभोक्ता का संतुष्टि स्तर पहले जितना ही बना रहता है। अर्थात् वह उसी तटस्थता वक्र पर ही संतुलन प्राप्त करता है। प्रतिस्थापन्न प्रभाव को अग्र चित्र की सहायता से प्रकट किया जा सकता है।

चित्र 31 में PL प्रारंभिक बजट रेखा, IC प्रारम्भिक तटस्थता वक्र है तथा E उपभोक्ता का प्रारम्भिक संतुलन बिन्दु है। दूध सस्ता हो जाने के कारण नई बजट रेखा PL_1 बन जाती है तथा उपभोक्ता की आय बढ़ जाती है। अब यदि उपभोक्ता की बढ़ी हुई आय कम कर दी जाती है तो कीमत रेखा PL_1 बाईं ओर नीचे इस प्रकार से सरकती है कि यह प्रारम्भिक तटस्थता वक्र IC को E_1 पर स्पर्श करती है। अतः अब उपभोक्ता का संतुलन बिन्दु E_1 पर निर्धारित होता है जिसमें दूध की QQ_1 अधिक मात्रा तथा qq_1 सेब की पहले से कम मात्रा है अर्थात् उपभोक्ता ने qq_1 सेब, जो अब दूध की अपेक्षा महंगा है, को दूध की QQ1 मात्रा द्वारा प्रतिस्थापित इस प्रकार किया कि उसका संतुष्टि स्तर पहले जितना (f) ही बना रहा।

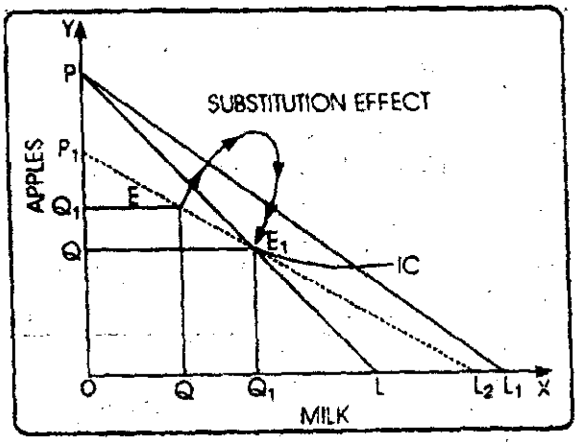

चित्र 31

प्रतिस्थापन प्रभाव वस्तु की मांग पर धनात्मक (Positive) पड़ता है क्योंकि उपभोक्ता हमेशा सस्ती वस्तु की मांग बढ़ाता है तथा महंगी की मांग घटाता है, परंतु वाटसन आदि अर्थशास्त्री इसको ऋणात्मक प्रभाव कहते हैं। उनका कहना

है कि X वस्तु की कीमत गिरने (Negative) पर इसकी मांग बढ़ी हे इसलिए यह संबंध नकारात्मक (Negative) है। अतः सुविधा के लिए हम इसको धनात्मक कहेंगे।

3. **कीमत प्रभाव (Price Effect):** उपभोक्ता की मौद्रिक आय तथा एक वस्तु की कीमत स्थिर रहते हुए किसी दूसरी वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने से उपभोक्ता के संतुलन पर जो प्रभाव पड़ता है उसको कीमत प्रभाव कहा जाता है। यदि इस दूसरी वस्तु की कीमत में परिवर्तन इस प्रकार का होता है कि इसकी कीमत गिर जाती है तो उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ने के कारण वह पहले से अच्छी स्थिति में होगा और उसका संतुष्टि स्तर बढ़ जाएगा। इसके विपरीत यदि इसकी कीमत बढ़ जाती है तो उसका संतुष्टि स्तर गिर जाएगा तथा वह नीचे वाले तटस्थता वक्र पर संतुलन प्राप्त करेगा। प्रो. लिप्सी के अनुसार, "कीमत प्रभाव दर्शाता है कि जब उपभोक्ता की आय स्थिर रहे तथा उपभोग की जाने वाली दो वस्तुओं में से एक वस्तु की कीमत स्थिर रहे और दूसरी वस्तु के मूल्य में परिवर्तन हो जाए तो दोनों वस्तुओं के उपभोग में परिवर्तन के कारण संतुष्टि स्तर कैसे परिवर्तित होता है।" (The price effect shows how satisfaction of the consumer varies due to the change in the consumption of two goods as the price of one changes, the price of the other and money income remains constant. —Lipsey)

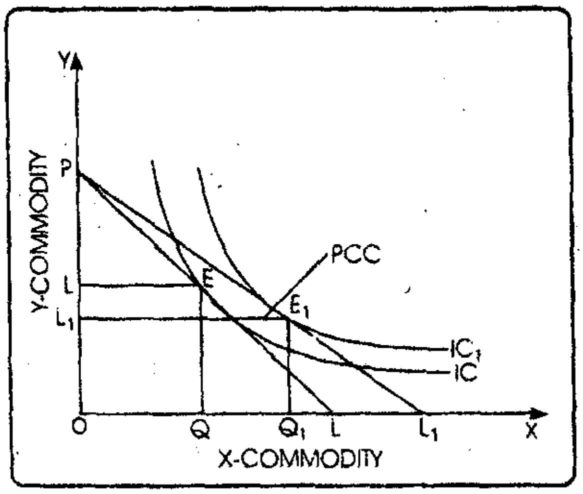

चित्र 32

कीमत प्रभाव की मान्यताएं (Assumptions of Price Effect):

कीमत प्रभाव से संबंधित कुछ मान्यताएं निम्न प्रकार हैं:

1. उपभोक्ता की मौद्रिक आय स्थिर रहती है, परंतु वास्तविक आय बदलती है।
2. उपभोग की जाने वाली वस्तुओं में से एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन होता है तथा दूसरी वस्तु की कीमत स्थिर रहती है।
3. उपभोक्ता की रुचि आदि में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

कीमत प्रभाव को चित्र 31 की सहायता से प्रकट किया गया है। चित्र में PL प्रारम्भिक कीमत रेखा तथा E उपभोक्ता का संतुलन बिन्दु है। E बिन्दु पर X वस्तु की OQ तथा Y वस्तु की OL मात्रा का उपयोग किया जाता है। अब X वस्तु की कीमत गिरने से नई बजट रेखा PL_1 बन जाती है तथा उपभोक्ता E_1 बिन्दु पर संतुलन प्राप्त करता है। E_1 बिन्दु दर्शाता है कि कि X वस्तु की सापेक्ष कीमत गिरने के कारण इसकी मांग OQ_1 से बढ़ जाती है तो Y वस्तु की सापेक्ष कीमत बढ़ने के कारण इसकी मांग या उपभोग LL_1 मात्रा से कम हो जाता है। इसके साथ ही ध्यान देने की बात यह है कि उपभोक्ता का संतुष्टि स्तर बढ़ जाता है क्योंकि E_1 बिन्दु E से ऊंचे तटस्थता वक्र पर स्थित है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जब किसी वस्तु की कीमत गिरती है तो उपभोक्ता का संतुष्टि स्तर बढ़ जाता है। E तथा E_1 बिन्दुओं को मिलाने से कीमत उपभोग वक्र (Price Consumption Curve or PCC) प्राप्त होता है। यह वक्र बताता है कि जब एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन होता है तो उपभोक्ता संतुलन या वस्तुओं की मांग तथा उपभोग पर क्या प्रभाव पड़ता है।

PCC का झुकाव किधर होगा यह इस बात पर निर्भर करता है कि जिस वस्तु की कीमत में परिवर्तन होता है उस वस्तु की प्रकृति कैसी है? यदि यह वस्तु सामान्य वस्तु है तो PCC का झुकाव उसी अक्ष की ओर होता है जिस पर यह वस्तु मापी जाती है। परंतु यदि यह वस्तु घटिया वस्तु (Inferior good) या गिफ्फन वस्तु (Giffen Good) हैं तो इस वस्तु की मांग पर आय प्रभाव नकारात्मक होगा तथा प्रतिस्थापन प्रभाव सकारात्मक होगा। वस्तु कीमत प्रभाव (PE) इन दोनों प्रभावों का जोड़ है। गिफ्फन या घटिया X वस्तु की कीमत गिरने पर PCC वक्र ऊपर उठता हुआ कम या अधिक ढाल वाला होता है क्योंकि इस वस्तु की मांग पर आय प्रभाव नकारात्मक पड़ता है तथा प्रतिस्थापन प्रभाव धनात्मक होता है।

PE = +ve Income Effect + ve Substitution Effect

सामान्य वस्तु के संदर्भ में PCC की आकृति कीमत गिरने वाली वस्तु की ओर झुकी होती है या समानांतर हो सकती है क्योंकि इस वस्तु की कीमत गिरने पर इसकी मांग पर आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव दोनों धनात्मक होते हैं।

चित्र 33 से स्पष्ट हो रहा है कि PCC_I, PCC_{II} तथा PCC_{III} दर्शाते हैं कि X वस्तु सामान्य पदार्थ है। जबकि PCC_{IV} तथा PCC_V के अनुसार X वस्तु घटिया या गिफ्फन पदार्थ हैं। कीमत प्रभाव के निम्न विस्तृत अध्ययन से यह प्रश्न और भी स्पष्ट हो जाता है।

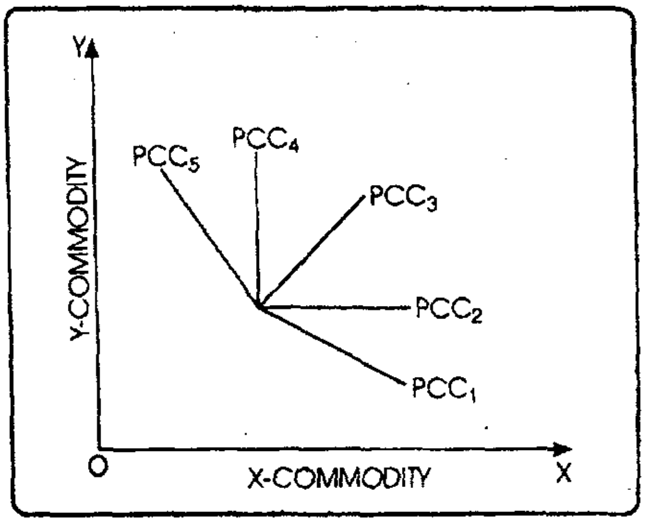

चित्र 33

कीमत प्रभाव, आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव का योग है (Price Effect is a Combination of Income Effect and Substitution Effect): कीमत प्रभाव व्यक्त करता है कि जब उपभोक्ता की मौद्रिक आय तथा Y वस्तु की कीमत स्थिर रहती है परंतु एक सामान्य वस्तु X की कीमत गिरती है तो X वस्तु की मांग या उपभोग बढ़ जाता है। X वस्तु की मांग में यह वृद्धि क्यों होती है? X वस्तु की मांग में यह वृद्धि निम्न दो प्रभावों का परिणाम है:

(i) ***आय प्रभाव*** (Income Effect): ज्यों X वस्तु की कीमत गिरती है तो उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ जाती है जिसके परिणामस्वरूप वह X वस्तु की पहले से अधिक मात्रा खरीदता है या मांग करता है। यह आय प्रभाव कहलाता है।

(ii) ***प्रतिस्थापन प्रभाव*** (Substitution Effect): ज्यों X वस्तु की कीमत गिरती है तथा Y वस्तु की कीमत स्थिर रहती है तो दोनों वस्तुओं की सापेक्षिक कीमतों (Relative Prices) में परिवर्तन इस प्रकार से होता है कि X वस्तु Y की अपेक्षा सस्ती तथा Y वस्तु X की अपेक्षा महंगी हो जाती है। इसलिए उपभोक्ता सस्ती वस्तु X की मांग बढ़ा देता है तथा Y वस्तु की मांग कम कर देता है। अर्थात् वह Y के स्थान पर X को प्रतिस्थापित करता है। इसको प्रतिस्थापन प्रभाव कहते हैं।

अतः किसी वस्तु की कीमत कम होने पर उपरोक्त दोनों प्रभाव उत्पन्न होते हैं। इसलिए कीमत प्रभाव आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव दोनों का योग होता है:

कीमत प्रभाव = आय प्रभाव + प्रतिस्थापन प्रभाव

Price Effect = Income Effect + Substitution Effect

PE = IE + SE

कीमत प्रभाव की व्याख्या निम्न दो विधियों के आधार पर की जा सकती है:

1. हिक्सीयन विधि
2. स्लटस्की विधि

1. **हिक्सीयन विधि** (Hicksian Method): प्रो. हिक्स के अनुसार कीमत प्रभाव कैसे आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव का जोड़ है इसकी व्याख्या निम्न चित्र 33 के माध्यम से की जा सकती है।

निम्न रेखाचित्र 34 में AB प्रारंभिक बजट रेखा पर उपभोक्ता E बिन्दु पर संतुलन प्राप्त करता है तथा IC_1 वक्र उसके संतुष्टि स्तर को प्रकट कर रहा है। अब मान लीजिए X वस्तु की कीमत गिर जाती है जिसके परिणामस्वरूप AB_1 नई बजट रेखा पर उपभोक्ता E_1 बिन्दु पर संतुलन प्राप्त करता है। उपभोक्ता का संतुलन बिन्दु E से E_1 पर सरक जाता है जो कीमत प्रभाव (Price Effect) को प्रकट करता है। कीमत प्रभाव के कारण X वस्तु की मांग OQ से बढ़ कर OQ_1 हो जाती है।

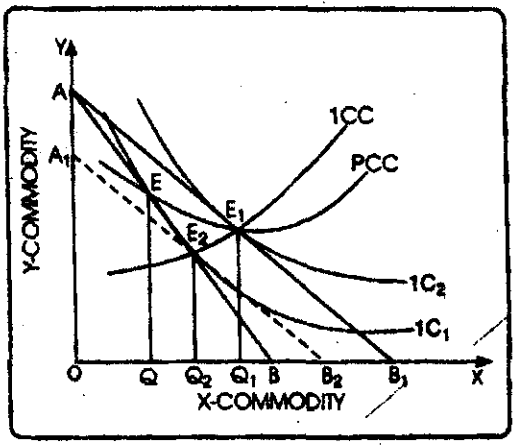

चित्र 34

X वस्तु की कीमत में कमी होने के कारण उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ गई है। यदि बढ़ी हुई आय उससे कोई व्यक्ति ले लेता है तो उपभोक्ता अपने पहले वाले संतुष्टि स्तर पर होता है अर्थात् उसकी AB1 कीमत रेखा नीचे की ओर इस प्रकार समानांतर रूप से सरकती है कि यह प्रारम्भिक तटस्थता वक्र IC_1 को छूती है, जैसे कि यह E_{11} पर स्पर्श कर रही है। इस प्रकार E तथा E_{11} पर समान संतुष्टि प्राप्त होती है। यदि Y वस्तु मौद्रिक आय हो तो हम कह सकते हैं कि मौद्रिक आय में AA_1 की कमी हो चुकी है। अतः IC_1 पर E से E_{11} बिन्दु पर पहुंचना प्रतिस्थापन प्रभाव को दर्शाता है तथा उपभोक्ता X वस्तु की मांग में QQ_{11} मात्रा की वृद्धि प्रतिस्थापना प्रभाव के कारण होती है। अब यदि उपभोक्ता को AA_1 आय वापिस दे दी जाए तो कीमत रेखा A_1B_{11} ऊपर सरक कर AB_1 में समा जाएगी तथा उपभोक्ता E_1 बिन्दु पर संतुलन में पहुंच जाएगा। उपभोक्ता संतुलन का E_{11} से E_1 पर पहुंचना आय प्रभाव के कारण होता है। अतः कीमत प्रभाव दो भागों या प्रभावों का जोड़ है:

कीमत प्रभाव के कारण x वस्तु की मांग में वृद्धि = स्थानापन्न प्रभाव के कारण हुई वस्तु की मांग में वृद्धि + आय प्रभाव के कारण X वस्तु की मांग में वृद्धि:

$QQ_1 = QQ_{11} + Q_{11} Q_1$

2. **स्लटस्की विधि** (Slutsky Method): कीमत प्रभाव का प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव में विभाजन 1915 ई. में एक स्लंटस्की नामक रूसी अर्थशास्त्री द्वारा भी किया गया। स्लटस्की विधि द्वारा कीमत प्रभाव की व्याख्या हिक्स विधि से कुछ भिन्न है। दोनों में यह भिन्नता प्रतिस्थापन्न प्रभाव की व्याख्या करने में हैं। स्लटस्की विधि द्वारा कीमत प्रभाव की व्याख्या निम्न चित्र की सहायता से की जा सकती है:

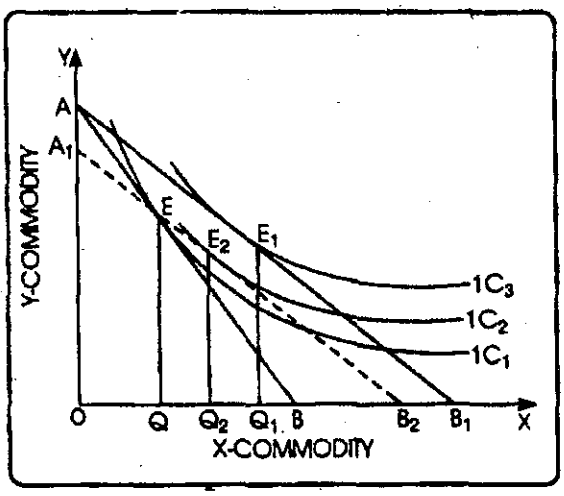

चित्र 35

रेखाचित्र 35 में AB प्रारम्भिक कीमत रेखा पर उपभोक्ता E बिन्दु पर संतुलन में है जहां IC_1 तटस्थता वक्र उसे स्पर्श करता है। यदि X वस्तु की कीमत गिर जाती है तो उपभोक्ता नई कीमत रेखा AB_1 के E_1 बिन्दु पर संतुलन में होगा, जहां IC_3 वक्र AB रेखा को स्पर्श करता है। E से E_1 पर पहुंचना कीमत प्रभाव को दर्शाता है। X की कीमत गिरने से उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ी है। बढ़ी हुई वास्तविक आय को यदि उपभोक्ता से ले लिया जाए तो AB_1 कीमत रेखा नीचे उद्गम की ओर सरकेगी। स्लटस्की के अनुसार उसकी बढ़ी हुई वास्तविक आय समाप्त हो जाएगी यदि नीचे सरकाई गई कीमत रेखा E संतुलन बिन्दु से गुजरती है जैसे कि A_1B_{11} रेखा ताकि वह पहले वाला E संयोग क्रय कर सके। अत: बढ़ी हुई वास्तविक आय समाप्त हो जाएगी यदि उपभोक्ता अपनी पहले वाली स्थिति में पहुंच जाता है तथा A_1B_{11} बजट रेखा पर संतुलन में होता है। इसके विपरीत हिक्स के अनुसार उसकी बढ़ी हुई वास्तविक आय उस समय समाप्त होगी जब बजट रेखा नीचे सरक कर IC को स्पर्श करती है।

अब उपभोक्ता A_IB_{II} बजट रेखा पर E_{II} बिन्दु पर संतुलन में होगा जहां इसे IC_2 तटस्थता वक्र स्पर्श करता है। वह E की अपेक्षा E_{11} को पसंद करेगा क्योंकि X वस्तु Y की अपेक्षा सस्ती हो गई है। इतना ही नहीं E_{11} बिन्दु E की अपेक्षा ऊंचे तटस्थता वक्र IC_2 पर स्थित है। E से E_{11} पर पहुंचना स्लटस्की के अनुसार प्रतिस्थापन प्रभाव को प्रकट करता है जिस कारण X वस्तु की मांग QQ_{II} से बढ़ जाती है। अब यदि उपभोक्ता से ली गई आय वापिस उसको दे दी जाए तो A_1B_{11} कीमत रेखा ऊपर सरक कर A_1B_1 कीमत रेखा में समा जाएगी तथा उपभोक्ता E_1 बिन्दु पर संतुलन में होगा। इसलिए E_{11} बिन्दु पर पहुंचना उसके आय प्रभाव को प्रकट करता है जिस कारण X वस्तु की मांग $Q_{11}Q_1$ से बढ़ जाती है। अत: स्लटस्की के अनुसार:

कीमत प्रभाव = स्थानापन्न प्रभाव + आय प्रभाव

(E से E_1 = E से E_{11} + E_{11} से E)

कीमत प्रभाव के कारण X की मांग में वृद्धि = स्थानापन्न प्रभाव के कारण X की मांग में वृद्धि + आय प्रभाव के कारण X की मांग में वृद्धि

$QQ_1 = QQ_{11} + Q_{11}Q_1$

स्लटस्की तथा हिक्स की विधियों में अंतर (Difference between Hicksian and Slutsky's Methods): उपरोक्त विश्लेषण तथा चित्र 33 तथा 34 से स्पष्ट है कि दोनों विधियों में अंतर केवल स्थानापन्न प्रभाव के निर्धारण का है। हिक्स के अनुसार उपभोक्ता की वास्तविक आय समान रखने के लिए उससे इतनी मौद्रिक आय ले लेनी चाहिए ताकि वह प्रारम्भिक तटस्थता वक्र पर पहुंच जाए (चित्र 33) हिक्स का मत है कि पहले वाले उसी तटस्थता वक्र पर गति करना स्थानापन्न प्रभाव को दर्शाता है। इसके विपरीत स्लटस्की के अनुसार उपभोक्ता की वास्तविक आय समान या पहले जितनी बनाए रखने के लिए उससे मौद्रिक आय इतनी मात्रा में ले लेनी चाहिए ताकि वह पहले वाले संयोग (चित्र 34 में E बिन्दु) को प्राप्त कर सके। । अर्थात् कीमत रेखा को इतना सरकाया जाए जिससे यह प्रारम्भिक संयोग (E) से गुजर सके। इसके परिणामस्वरूप स्थानापन्न प्रभाव के कारण उपभोक्ता ऊंचे वाले तटस्थता वक्र पर पहुंच सकता है तथा उसका संतुष्टि स्तर बढ़ सकता है।

दूसरा अंतर व्यवहारिकता के आधार पर किया जा सकता है। उपभोक्ता को पहले वाली आर्थिक स्थिति में पहुंचाने के लिए उससे कुछ मौद्रिक आय ले लेनी पड़ती है या उसकी कुछ मौद्रिक आय कम करनी पड़ती है। यह मौद्रिक आय कितनी कम की जाए? इसका निर्धारण स्लटस्की के अनुसार उपभोक्ता की मौद्रिक आय इतनी कम करनी चाहिए ताकि वह कम से कम प्रारम्भिक संयोग का क्रय कर सके। इसका निर्धारण आसानी से किया जा सकता है। परंतु हिक्स के अनुसार उपभोक्ता की मौद्रिक आय इतनी कम करनी चाहिए ताकि वह पहले वाले तटस्थता वक्र को प्राप्त कर सके। इसका निर्धारण काल्पनिक है क्योंकि तटस्थता वक्र कल्पना पर आधारित होता है। इसलिए हिक्स की विधि कम व्यवहारिक है।

घटिया वस्तुओं एवं गिफ्फन वस्तुओं पर कीमत प्रभाव
(Price Effect on Inferior Goods and Giffen's Goods)

घटिया वस्तुओं और गिफ्फन वस्तुओं पर पड़ने वाले कीमत प्रभाव में अंतर पाया जाता है जिसकी व्याख्या निम्न प्रकार है:

1. **घटिया वस्तुएं** (Inferior Goods): घटिया वस्तुओं की विशेषता यह है कि इन वस्तुओं पर आय प्रभाव ऋणात्मक होता है अर्थात् आय बढ़ने पर इनकी मांग कम होती है तथा आय कम होने पर इनकी मांग बढ़ती है। उपभोग की जाने वाली वस्तुओं में से एक वस्तु की कीमत गिरने से उपभोक्ता की आय बढ़ती है जो आय प्रभाव उत्पन्न कर देती है। घटिया वस्तुओं पर यह प्रभाव ऋणात्मक होता हैं परंतु स्थानापन्न प्रभाव हमेशा धनात्मक होता है अर्थात् उपभोक्ता हमेशा महंगी वस्तु के स्थान पर सस्ती वस्तु का प्रतिस्थापन करता हैं तथा इस कारण सस्ती वस्तु की मांग बढ़ जाती है। घटिया वस्तुओं के मामले में इन दोनों का शुद्ध अंतर कीमत प्रभाव पर सकारात्मक प्रभाव छोड़ता है क्योंकि धनात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव ऋणात्मक आय प्रभाव से अधिक प्रभावी होता है:

$$PE = -IE + SE$$

घटिया वस्तुओं के संदर्भ में आय प्रभाव ऋणात्मक (—IE) तथा स्थानापन्न प्रभाव धनात्मक (+SE) होने के परिणाम धनात्मक कीमत प्रभाव होता है। इसकी व्याख्या चित्र 36 की सहायता से की गई है।

रेखाचित्र 35 में AB प्रारम्भिक कीमत रेखा पर E बिन्दु प्रारम्भिक उपभोक्ता संतुलन बिन्दु है। उपभोक्ता X वस्तु जो इस विश्लेषण में घटिया वस्तु है, की OQ मात्रा खरीदता है तथा वह IC_1 तटस्थता वक्र प्राप्त करता है। घटिया वस्तु X की कीमत में कमी होने पर नई कीमत रेखा AB_1 बनती है जिस पर उपभोक्ता E_1 बिन्दु पर संतुलन प्राप्त करता है जो कीमत प्रभाव है। कीमत प्रभाव को आय प्रभाव तथा स्थानापन्न प्रभावों में बांटने के लिए नई कीमत रेखा AB_1 को समानांतर रूप से नीचे इस प्रकार सरकाया जाता है कि यह प्रारम्भिक तटस्थता वक्र IC_1 को छू सके, हिक्स की पद्धति अनुसार जो चित्र में E_{11} पर छू रही है। अतः उपभोक्ता का E से E_{11} प्राप्त करना स्थानापन्न प्रभाव तथा E_{11} से E_1 पर पहुंचना आय प्रभाव को प्रकट करता है।

चित्र 36 में स्पष्ट है कि सकारात्मक स्थानापन्न प्रभाव के कारण X वस्तु की मांग QQ_1 से बढ़ जाती है। उपभोक्ता को E_{11} से E_1 पर पहुंचना, तो उस समय होता है जब उससे ली गई आय वापिस लौटा दी जाती है, नकारात्मक आय

प्रभाव (—IE) को दर्शाता है। ऋणात्मक आय प्रभाव के कारण X वस्तु की मांग $Q_{11}Q_1$ मात्रा से कम हो गई है।

चित्र से स्पष्ट है कि ऋणात्मक आय प्रभाव (—IE) की शक्ति धनात्मक स्थानापन्न प्रभाव (+SE) से कम है। इसलिए इस दोनों का शुद्ध कीमत प्रभाव धनात्मक होता है। अतः X वस्तु की कीमत गिरने पर अब इसकी QQ_1 मात्रा खरीदी जाती है जो OQ से अधिक है। अतः घटिया वस्तुओं पर मांग का नियम लागू होता है।

2. **गिफ्फन वस्तुएं** (Giffen's Goods): गिफ्फन वस्तुओं के संदर्भ में ऋणात्मक आय प्रभाव धनात्मक स्थानापन्न प्रभाव से अधिक शक्तिशाली होता है। इसलिए कीमत प्रभाव भी ऋणात्मक होता है। ऐसी वस्तु की कीमत गिरने पर इसकी मांग गिर जाती है तथा मांग का नियम लागू नहीं होता है।

सभी गिफ्फन वस्तुएं घटिया वस्तुएं होती हैं, परन्तु सभी घटिया वस्तुएं गिफ्फीन वस्तुएं नहीं होतीं। केवल वे घटिया वस्तुएं गिफ्फन वस्तुएं होती हैं जिनका ऋणात्मक आय प्रभाव धनात्मक स्थानापन्न प्रभाव से अधिक प्रभावशाली होता है। गिफ्फन वस्तुओं की कीमत घटने पर इनकी मांग व इनका उपभोग कम हो जाता है। अर्थात् कीमत प्रभाव नकारात्मक (—PE) होता है। मांग का नियम इन वस्तुओं पर लागू नहीं होता है।

गिफ्फन वस्तुओं की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

इन वस्तुओं का ऋणात्मक आय प्रभाव शक्तिशाली होता है।

इन वस्तुओं का स्थानापन्न प्रभाव कमज़ोर होता है

इन वस्तुओं को उपभोग करने वाला व्यक्ति निम्न आय वर्ग से संबंधित होता है।

इन वस्तुओं की खरीद पर उपभोक्ता की आय का बड़ा भाग खर्च होता है।

गिफ्फन वस्तुओं के संदर्भ में कीमत प्रभाव की विस्तृत व्याख्या निम्न रेखा चित्र 36 द्वारा की गई है:

रेखाचित्र 37 में दर्शाया गया है कि E बिन्दु उपभोक्ता का प्रारम्भिक सन्तुलन बिन्दु है जहां IC_1 तटस्थता वक्र AB कीमत रेखा को स्पर्श कर रहा हैं X वस्तु मान लीजिए गिफ्फन पदार्थ है, जिसकी उपभोक्ता सन्तुलन की अवस्था में OQ मात्रा उपभोग या मांग कर रहा है। X वस्तु की कीमत गिरने पर उपभोक्ता की नई कीमत रेखा AB_1 बन जाती है। AB1 कीमत रेखा पर वह E1 बिन्दु पर सन्तुलन प्राप्त करता है। E से E_1 कीमत प्रभाव को प्रकट करता है। इसको आय प्रभाव तथा स्थानापन्न प्रभाव में तोड़ने या बांटने के लिए AB_1 कीमत रेखा को नीचे समानान्तर रूप से इस प्रकार सरकाया गया है कि यह प्रारंभिक तटस्थता वक्र IC_1 को स्पर्श कर सके। ऐसा करने से $A1B_{11}$ कीमत रेखा प्राप्त होती है जिस पर उपभोक्ता EII पर संतुलन प्राप्त करता है। E से E_{11} प्रतिस्थापन्न प्रभाव को प्रकट करता है जो धनात्मक है। इस कारण X वस्तु की मांग QQ_{II} बढ़ती है, परंतु आय प्रभाव काफी नकारात्मक है जिसको चित्र में E_{11} से E_1 द्वारा प्रकट किया गया है। मांग की $Q_{II}Q_I$ मात्रा कम हो जाती है।

स्थानापन्न प्रभाव के कारण मांग केवल QQ_{II} से बढ़ती है परंतु नकारात्मक आय प्रभाव के कारण मांग $Q_{II}Q_I$ से गिर जाती है जो QQ_{11} वृद्धि से काफी अधिक है। परिणामतः कीमत प्रभाव नकारात्मक है अर्थात अब OQ की अपेक्षा OQ_1 मात्रा की मांग की जाती है। X वस्तु की कीमत गिरने पर इसकी मांग भी गिर गई। अतः गिफ्फन पदार्थों पर मांग का नियम लागू नहीं होता है।

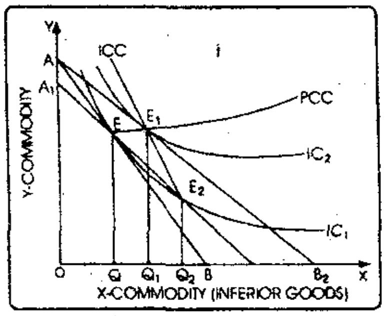

चित्र 36

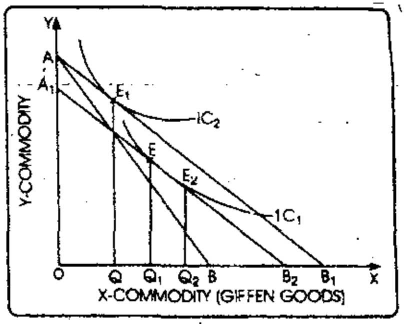

चित्र 37

तटस्थता वक्र विश्लेषण द्वारा मांग वक्र निकालना
(Derivation of Demand Curve with the help of Indifference Curve)

मांग वक्र किसी वस्तु की कीमतों तथा उनसे सम्बन्धित मांगी गई मात्राओं के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध व्यक्त करती है। तटस्थात वक्र विश्लेषण के अन्तर्गत भी किसी वस्तु की कीमत तथा इसके उपभोग या उसकी मांग में सम्बन्ध देखा जा सकता है। यह सम्बन्ध अप्रत्यक्ष रूप से कीमत उपभोग वक्र (Price Consumption Curve) द्वारा व्यक्त किया जाता है। कीमत उपभोग वक्र (PCC) किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन के परिणामस्वरूप उस वस्तु के उपभोग की मात्रा में परिवर्तन को व्यक्त करता है, परन्तु कीमत उपभोग वक्र (PCC) तथा मांग वक्र (Demand Curve) में कुछ महत्त्वपूर्ण अन्तर हैं। इनकी व्याख्या अग्र प्रकार से की गई है–

मांग वक्र तथा कीमत उपभोग वक्र में अन्तर
(Difference between Demand Curve and Price Consumption Curve)

1. मांग वक्र के चित्र में OX-अक्ष पर वस्तु की मांगी गई मात्रा तथा OY-अक्ष पर उस वस्तु की कीमत मापी जाती है। जबकि कीमत उपभोग वक्र के चित्र में OX-अक्ष पर एक वस्तु तथा OY-अक्ष पर दूसरी वस्तु या मुद्रा या आय को मापा जाता है।

2. मांग वक्र किसी वस्तु की कीमत और उसकी मांग में प्रत्यक्ष/सम्बन्ध (Direct Relationship) को बताती है। जबकि PCC इन दोनों के बीच केवल अप्रत्यक्ष सम्बन्ध (Indirect Relationship) को प्रकट करती है।

3. मांग वक्र आय प्रभाव तथा स्थानापन्न प्रभावों की अलग–अलग व्याख्या नहीं करती है। इसके विपरीत कीमत उपभोग वक्र कीमत प्रभाव के आय तथा स्थानापन्न प्रभावों की अलग–अलग व्याख्या करती है।

उपरोक्त अन्तर के होते हुए भी कीमत उपभोग वक्र (PCC) से मांग वक्र निकाला जा सकता है क्योंकि इन दोनों में कीमत तथा मांग से सम्बन्धित आधारभूत समानता है।

मांग वक्र निकालना
(Derivation of Demand Curve)

तटस्थता वक्र विश्लेषण द्वारा मांग वक्र ज्ञात करने के लिए पहले कीमत उपभोग वक्र (PCC) निकालना होगा जैसा कि निम्न चित्र 38 में किया गया है–

मांग तालिका

कीमत रेखा	कीमत	मांग की मात्रा
MB	$\frac{OM}{OB}=P$	OQ
MB_1	$\frac{OM}{OB_1}=P_1$	OQ_1
MB_{11}	$\frac{OM}{OB_{11}}=P_2$	OQ_{11}

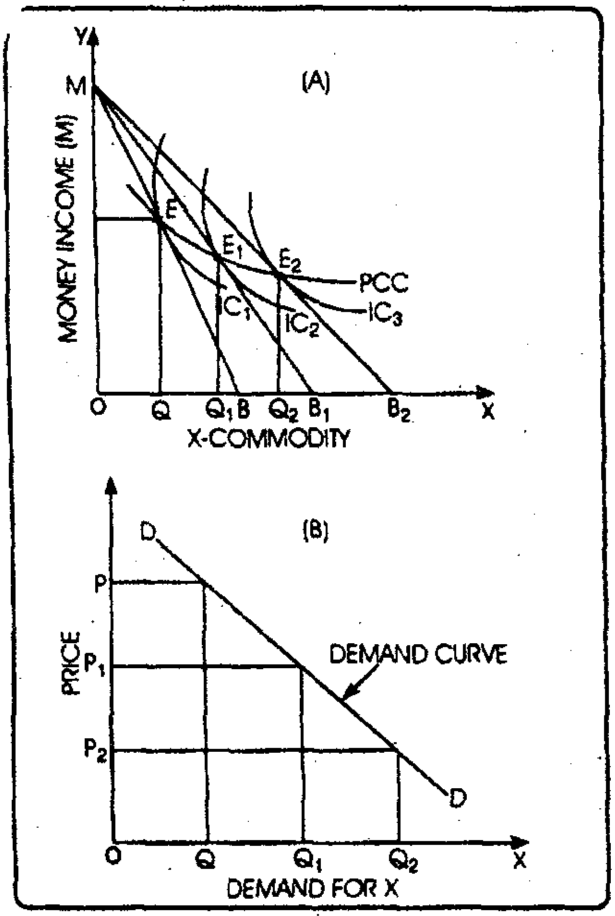

चित्र 38

रेखाचित्र 38 के (A) भाग में कीमत उपभोग वक्र (PCC) तथा (B) भाग में मांग वक्र निकाला गया है। भाग (A) में OX-अक्ष पर X वस्तु तथा OY-अक्ष पर उपभोक्ता की मौद्रिक आय (M) मापी गई है। प्रारम्भ में MB उपभोक्ता की बजट रेखा है जिसे IC_1 तटस्थता वक्र E बिन्दु पर स्पर्श कर रहा है। इसलिए E बिन्दु उपभोक्ता का सन्तुलन बिन्दु है जिसमें वह X वस्तु की OQ मात्रा तथा मुद्रा की OM मात्रा का संयोग प्राप्त करता है। प्रारम्भिक कीमत पर वह X की OQ मात्रा मांग करता है। मान लो X वस्तु की कीमत कम हो जाती है, जिस कारण बजट रेखा MB_1 बन जाती हैं तथा सन्तुलन बिन्दु E_1 निर्धारित होता है। X वस्तु की कीमत गिरने पर इसकी मांग बढ़ कर OQ_1 हो जाती है। इसी प्रकार X वस्तु की कीमत और गिरने पर नई बजट रेखा MP_{11} बनती है तथा उपभोक्ता सन्तुलन E_{11} पर निर्धारित होता है और X वस्तु का उपभोग बढ़ कर QO_{11} हो जाता है। E, E_1 और E_{11} सन्तुलन बिन्दुओं को मिलाने से कीमत उपभोग वक्र (PCC) प्राप्त होता है।

PCC के आधार पर मांग तालिका और मांग वक्र निकाला गया है। मांग तालिका में दर्शाया गया है कि MB बजट रेख से ज्ञात होता है कि कुल मौद्रिक आय (M) को कुल X वस्तु (OB) जो सारी मुद्रा खर्च करे खरीदी जा सकती है इससे भाग देने पर X वस्तु की कीमत निकाली जा सकतीहै जिसका तालिका में P द्वारा दर्शाया गया है। कीमत गिरने पर MB_1 बजट रेखा प्राप्त होती है। अब इसी प्रकार M को OB_1 से भाग देने पर P_1 कीमत प्राप्त होती है। ध्यान रहे कि P_1 हमेशा

P कीमत से कम होगी क्योंकि $\frac{OM}{OB_1} < \frac{OM}{OB}$ है। ठीक इसी प्रकार आगे कीमत गिरने पर MB_{11} कीमत रेखा प्राप्त होती है

तथा $\frac{OM}{OB_{11}}$ द्वारा कीमत ज्ञात की जा सकती है जो तालिका में P_2 है। P_2 कीमत P_1 कम होगी क्योंकि

$\frac{OM}{OB_{11}} < \frac{OM}{OB_1}$ है।

अब मांग तालिका के आधार पर मांग वक्र आसानी ज्ञात किया जा सकता है। चित्र के भाग (B) में उपभोक्ता X वस्तु की P कीमत पर OQ मात्रा, P_1 कीमत पर OQ_1 तथा P_2 कीमत पर OQ_{11} मात्रा मांग करता है। मांग बिन्दुओं को मिलाने से DD मांग वक्र निकल आता है।

भाग (B) में DD मांग वक्र व्यक्तिगत मांग वक्र है जो किसी एक उपभोक्ता के उपभोग से सम्बन्धित है। इसी आधार पर तटस्थता वक्र विश्लेषण द्वारा बाजार मांग वक्र भी निकाला जा सकता है।

गिफ्फन वस्तुओं की मांग वक्र निकालना
(Derivation of Demand Curve for Giffen Goods)

तटस्थता वक्र विश्लेषण की सहायता से गिफ्फन वस्तुओं का मांग वक्र भी निकाला जा सकता है। हम जानते है कि गिफ्फन वस्तु की कीमत तथा इसकी मांग में धनात्मक सम्बन्ध (Positive Relationship) पाया जाता है, अर्थात् इन वस्तुओं की कीमत बढ़ती है तो इनकी मांग भी बढ़ती है तथा कीमत गिरने पर इनकी मांग भी कम होती है। इसलिए इन वस्तुओं की मांग वक्र बाएं से दाएं ऊपर की ओर उठता हुआ होता है। यह मांग वक्र निम्न चित्र की सहायता से निकाला जा सकता है–

मान लीजिए उपभोक्ता के पास OM मौद्रिक आय है जिससे वह गिफ्फन पदार्थ X वस्तु की कुछ मात्रा तथा कुछ मौद्रिक आय का संयोग प्राप्त करना चाहता है। चित्र 39 के भाग (A) में कीमत उपभोग वक्र (PCC) तथा भाग (B) में मांग तालिका से मांग वक्र निकाला गया है। भाग (A) दर्शाता है कि AB प्रारम्भिक बजट रेखा है तथा उपभोक्ता E बिन्दु पर सन्तुलन प्राप्त करके X वस्तु की OQ मात्रा खरीद रहा है। इसके बाद X वस्तु की कीमत गिरती है तो नई कीमत रेखा AB_1 बन जाती है तथा उपभोक्ता E_1 बिन्दु पर सन्तुलन में होता है तथा X वस्तु की OQ_1 मात्रा खरीदता है। इसी प्रकार X वस्तु की और कीमत गिरने पर AB_{11} कीमत रेखा बनती है और उपभोक्ता E_{11} बिन्दु पर सन्तुलन प्राप्त करता है तथा वह X वस्तु की OQ_{11} मात्रा खरीदता है।

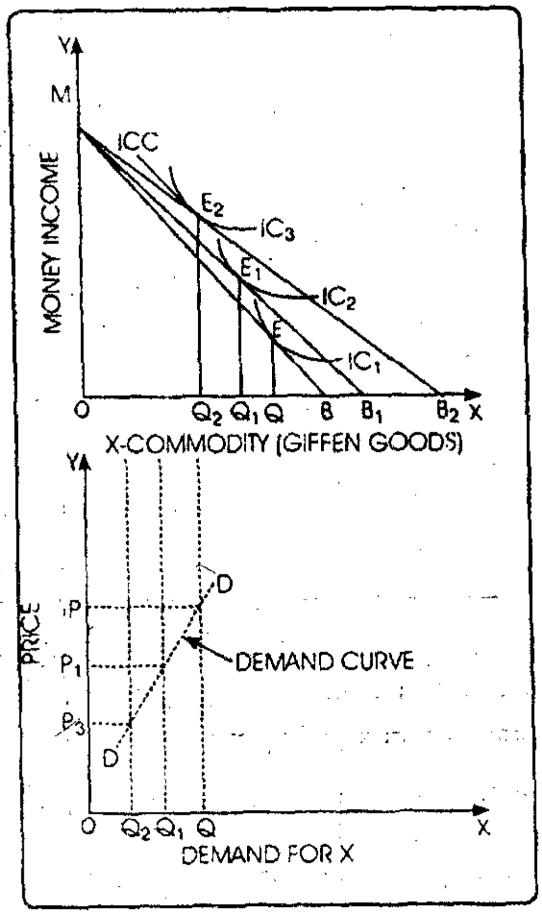

चित्र 39

मांग तालिका

कीमत रेखा	कीमत	मांग की मात्रा
MB	$\frac{OM}{OB} = P$	OQ
MB_1	$\frac{OM}{OB_1} = P_1$	OQ_1
MB_{11}	$\frac{OM}{OB_{11}} = P_2$	OQ_{11}

विभिन्न कीमत रेखाओं के आधार पर मांग तालिका तैयार की गई है।

तालिका में $P > P_1 > P_{11}$ है क्योंकि क्र P_1 $\frac{OM}{OB} > \frac{OM}{OB_1} > \frac{OM}{OB_1}$ है। चित्र का भाग (B) दर्शाता है कि P कीमत का सम्बन्ध OQ मांग से, P_1 कीमत का सम्बन्ध OQ_1 मांग तथा P_{11} का सम्बन्ध OQ_{11} मांग से है। मांग बिन्दुओं को मिलाने से ऊपर की ओर उठता हुआ DD मांग वक्र प्राप्त होता है। उपरोक्त मांग वक्र व्यक्तिगत मांग वक्र है। गिफ्फन पदार्थ का बाजार मांग वक्र निकालना कठिन है क्योंकि एक वस्तु सबके लिए गिफ्फन वस्तु हो यह नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह भिन्न–भिन्न लोगों के आय स्तर पर निर्भर करती है।

अब यह कहा जा सकता है तटस्थता वक्र प्रणाली द्वारा प्राप्त किया गया मांग वक्र तुष्टिगुण विश्लेषण द्वारा प्राप्त किये गये मांग वक्र से श्रेष्ठ है। इसका कारण यह है कि तटस्थता वक्र प्रणाली में कीमत गिरने से मांग पर पड़ने वाले आय प्रभाव तथा स्थानापन्न प्रभाव दोनों वक्र की आकृति (Shape) तथा स्थिति (Situation) का निर्धारण करते हैं। तुष्टिगुण

विश्लेषण में इन प्रभावों की अवहेलना की गई है। इतना ही नहीं तटस्थता वक्र द्वारा गिफ्फन वस्तुओं की मांग वक्र भी निकाल जा सकता है।

16. तटस्थता वक्र के उपयोग एवं महत्त्व

(Uses or Significance of Indifference Curve Analysis)

विभिन्न आर्थिक समस्याओं के समाधान में तटस्थता वक्र प्रणाली का व्यापक प्रयोग किया जाता है, निम्न आर्थिक क्षेत्रों में इस प्रणाली का उपयोग अति महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है:

1. **उपभोग के क्षेत्र में उपयोग (Use in the Field of Consumption):** वास्तव में तटस्थता वक्र प्रणाली का आविष्कार उपभोक्ता के व्यवहार का सही–सही अध्ययन करने के लिए ही किया गया था। तटस्थता वक्र प्रणाली का उपयोग करके उपभोक्ता के संतुलन का निर्धारण बड़ी आसानी से किया जा सकता है। इस विश्लेषण के अनुसार उपभोक्ता वहां संतुलन में होता है जहां तटस्थता वक्र कीमत रेखा को स्पर्श करता है जैसा कि चित्र 40 में दर्शाया गया है। चित्र में उपभोक्ता का संतुलन E बिन्दु निर्धारित होता है जहां उसकी AB कीमत रेखा IC' तटस्थता वक्र को स्पर्श करती है।

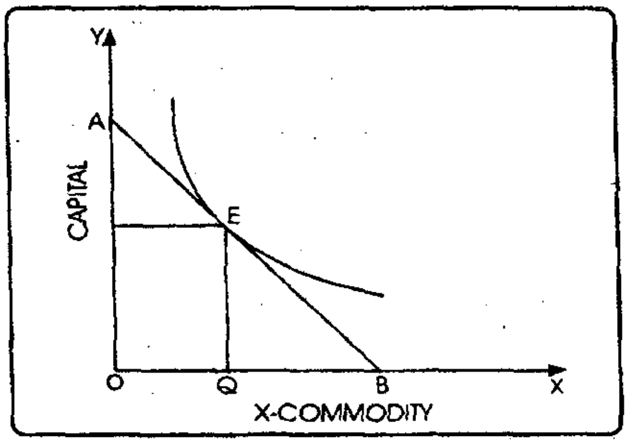

चित्र 40

2. **मांग वक्र की पूर्ण व्याख्या (Complete Explanation of Demand Curve):** तटस्थता वक्र विश्लेषण के माध्यम से कम पूर्वकल्पनाओं के आधार पर मांग वक्र निकाला जा सकता है। इसमें कीमत प्रभाव, आय प्रभाव, स्थानापन्न प्रभाव आदि की व्याख्या की गई है। इससे पूर्ण रूप से स्पष्ट होता है कि मांग वक्र क्यों ऊपर से नीचे झुका होता है तथा गिफ्फन पदार्थों के लिए यह क्यों नीचे से ऊपर दाईं ओर उठा होता है।

3. **उपभोक्ता की बचत का माप (Measurement of Consumer's Surplus):** जब उपभोक्ता किसी वस्तु की अधिक कीमत देने को तैयार है परंतु वह वस्तु उसको कम कीमत से प्राप्त हो जाती है तो इन दोनों का अंतर उपभोक्ता की बचत या बेशी कहलाती है। प्रो० हिक्स ने तटस्थता वक्र विश्लेषण का प्रयोग करके अधिक सही ढंग तथा कम पूर्वकल्पनाओं के आधार पर उपभोक्ता की बचत का माप किया है।

4. **उत्पादन के क्षेत्र में उपयोग (Use in the field of Production):** उत्पादक का संतुलन भी तटस्थता वक्र प्रणाली का प्रयोग करके निर्धारित किया जा सकता है। उत्पादन के क्षेत्र में तटस्थता वक्र को सम उत्पाद वक्र (Iso Product Curve or Isoquant Curve) कहा जाता है उत्पादक उस बिन्दु पर संतुलन में होता है जिस पर सम लागत रेखा (Iso-cost Line) सम उत्पाद वक्र (Iso-Product Curve) को स्पर्श करती है जैसा कि चित्र 41 में दर्शाया गया है कि AB सम लागत रेखा IQ सम उत्पाद वक्र को E बिन्दु पर स्पर्श करती है। उत्पाद E बिन्दु पर संतुलन में होता है तथा OL श्रम तथा OK पूंजी की मात्रा उपयोग करता है।

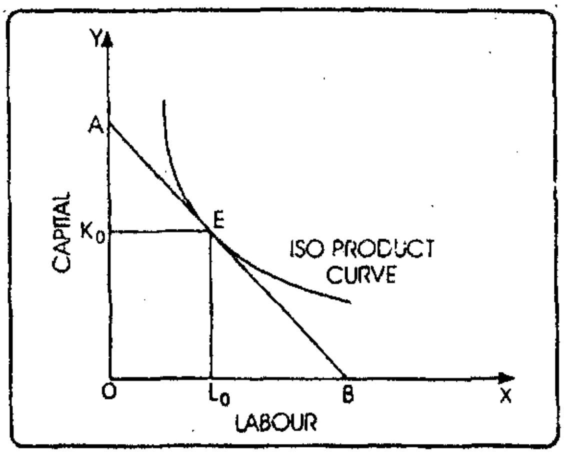

चित्र 41

5. **विनिमय में महत्व (Useful in Exchange)**: वस्तुओं का परस्पर लेन–देन या विनिमय किस दर पर होता है इसका निर्धारण भी तटस्थता वक्रों की सहायता से किया जा सकता हैं। सर्वप्रथम प्रो. एजवर्थ ने अपने Box Diagram में तटस्थता वक्र प्रणाली का प्रयोग वस्तुओं के विनिमय दर निर्धारण करने के लिए किया था। इसकी व्याख्या एक उदाहरण द्वारा की जा सकती है:

मान लो भारत के पास चावल की अधिकता है ओर गेहूं की कमी है। दूसरे देश जापान के पास गेहूं की अधिकता तथा चावल की कमी है। दोनों देश गेहूं तथा चावल का विनिमय करना चाहते हैं ताकि ये अधिक सन्तुष्टि या ऊंचे वाले तटस्थता वक्र को प्राप्त कर सकें। स्पष्ट है भारत चावल देकर गेहूं लेना चाहता है तथा जापान गेहूं देकर चावल लेना चाहता है। यह विनिमय या लेन–देन कितना तथा किस दर पर हो ताकि दोनों या किसी एक देश का सामाजिक कल्याण बढ़ सके? इसके लिए निम्न शर्त संतुष्ट होना जरूरी है:

$$MRS_{XY} \text{ for India} = MRS_{XY} \text{ for Japan}$$

यह शर्त तभी पूरी हो सकती है जब दोनों देशों के तटस्थता वक्र परस्पर स्पर्श कर रहे हों।

रेखाचित्र 42 में O_1 भारत का उद्गम स्थान है तथा OX अक्ष पर चावल तथा OY- अक्ष पर गेहूं की मात्रा मापी गई है। भारत के तटस्थता वक्रों को IC_1, IC_2, IC_3, IC_4 आदि द्वारा प्रकट किया गया है। जापान का उद्गम स्थान O_j है तथा OX' गेहूं तथा OY' अक्ष पर चावल मापे गए हैं। जापान के तटस्थता वक्रों को IC'_1, IC'_2, IC'_3 आदि द्वारा प्रकट किया गया है।

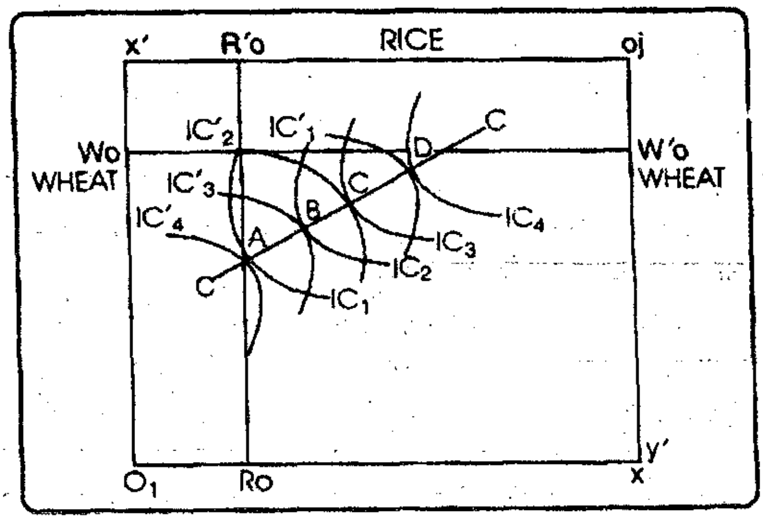

मान लो प्रारम्भ में व्यापार से पहले दोनों देश E बिन्दु पर स्थित हैं। E बिन्दु दर्शाता है कि भारत के पास W_0 गेहूं तथा R_0 चावल हैं और जापान के पास W'_0 गेहूं तथा R'_0 चावल हैं। भारत अपने IC_1 तथा जापान अपने IC'_2 पर स्थित है। दोनों देश अपने–अपने ऊंचे तटस्थता वक्र को प्राप्त कर सकते हैं यदि वे व्यापार करें। उदाहरणतः वे विनिमय या व्यापार के द्वारा B बिन्दु को प्राप्त कर सकते हैं जिससे भारत अपने ऊंचे तटस्थता वक्र IC_2 तथा जापान अपने ऊंचे तटस्थता वक्र IC_3 को प्राप्त कर सकते हैं। B बिन्दु पर दोनों देशों के तटस्थता वक्र एक दूसरे को स्पर्श कर रहे हैं अर्थात् B बिन्दु पर दोनों देशों के तटस्थता वक्रों का ढाल समान है जैसा कि aa रेखा द्वारा प्रकट किया गया है। aa रेखा का ढाल ही विनिमय दर को व्यक्त करता है। मान लो X = Rice तथा Y = wheat है। aa रेखा पर MRS_{XY} for India - MRS_{XY} for Japan. अतः B बिन्दु पर भारत गेहूं का निर्यात तथा चावल का आयात कर रहा है तथा जापान चावल का निर्यात तथा गेहूं का आयात कर रहा है। यह सौदा चित्र में दर्शाई गई CC रेखा पर कहीं भी हो सकता है क्योंकि A, C तथा D आदि बिन्दुओं पर भी उनके तटस्थता वक्रों का ढाल समान है। वे किस बिन्दु पर विनिमय करेंगे यह इन देशों के बीच समझौते पर निर्भर करता है। इसलिए CC रेखा को सौदा रेखा (Contract Line) भी कहते हैं।

6. **करों के क्षेत्र में महत्व (Importance in Taxation):** तटस्थता वक्रों की सहायता से व्यक्त किया जा सकता है कि अप्रत्यक्ष करों (बिक्री कर आदि) का समाज पर भार प्रत्यक्ष करों (आय कर आदि) की तुलना में अधिक पड़ता है। एक निश्चित राशि अप्रत्यक्ष करों से तथा उतनी ही राशि प्रत्यक्ष करों से एकत्रित की जाए तो अप्रत्यक्ष करों का करादाताओं पर भार अधिक पड़ेगा। इसको रेखाचित्र 41 द्वारा सिद्ध किया जा सकता है।

रेखाचित्र 43 में AB प्रारम्भिक कीमत रेखा है जिस पर E बिन्दु उपभोक्ता का सन्तुलन बिन्दु है तथा उपभोक्ता IC_3 के अनुसार अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करता है। अब यदि X वस्तु पर बिक्री कर (जो अप्रत्यक्ष कर है) लगा दिया जाता है तो यह वस्तु महंगी हो जाती है। इसलिए सारी आय खर्च करके इसकी कम मात्रा खरीदी जा सकती है तथा नई कीमत रेखा AB_1 बन जाती है। AB_1 कीमत रेखा पर वह E_1 बिन्दु पर सन्तुलन में होता है जहां AB_1 रेखा IC_{II} को स्पर्श करती है। इसके विपरीत अब यदि उतनी ही राशि आयकर (प्रत्यक्ष कर) लगा कर एकत्रित की जाती है तो उपभोक्ता E_1 बिन्दु के संयोग को प्राप्त कर सकता है यदि AB कीमत रेखा को समानान्तर नीचे इस प्रकार सरकाया जाए कि यह E_1 बिन्दु से हो कर गुजरे। इसका अभिप्राय यह है कि आय कर या प्रत्यक्ष कर लगने के उपरान्त नई कीमत रेखा A_IB_{II} अवश्य ही E_1 बिन्दु से होकर गुजरेगी। A_IB_{II} कीमत रेखा पर उपभोक्ता E_{II} बिन्दु पर सन्तुलन में होता है जहां IC_{III} तटस्थता वक्र इस कीमत रेखा को स्पर्श करता है। अतः निष्कर्ष यह है कि यदि अप्रत्यक्ष कर लगता है तो उपभोक्ता E1 बिन्दु पर सन्तुलन में होता है तथा IC_{III} तटस्थता वक्र पर पहुंच सकता है। IC_{III} तटस्थता वक्र IC_{II} से ऊंचा है। इसलिए हम कह सकते हैं कि करदाताओं का अप्रत्यक्ष कर का भार प्रत्यक्ष करों की तुलना में अधिक होता हैं। इसलिए सरकार को प्रत्यक्ष करों को प्राथमिकता (Preference) देनी चाहिए।

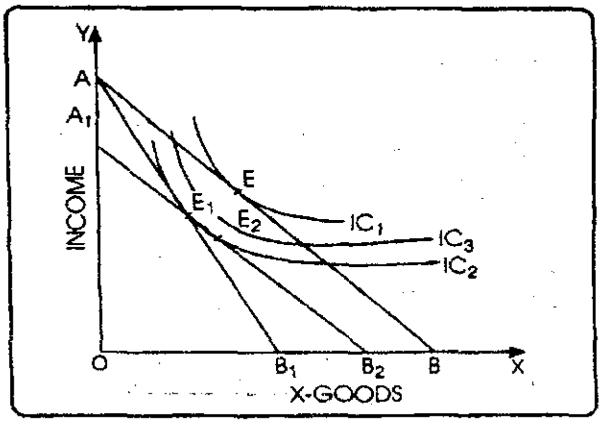

चित्र 43

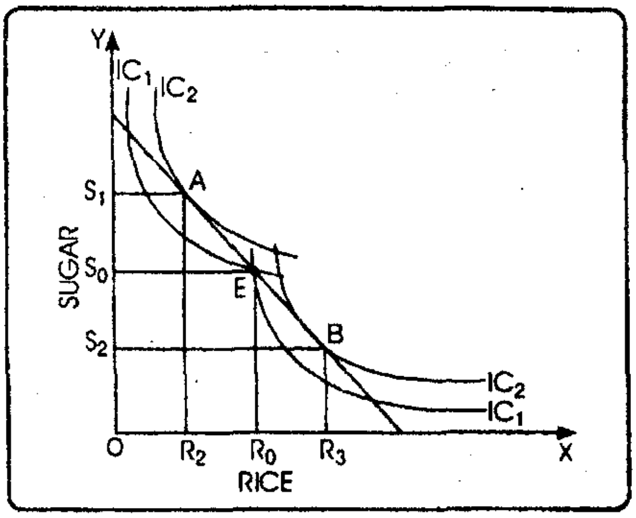

चित्र 44

7. **राशनिंग में सहायक (Helpful in Rationing):** अनेक बार वस्तुओं की पूर्ति कम होने पर सरकार उनकी राशनिंग कर देती है तथा उपभोक्ताओं को इन वस्तुओं की एक निश्चित मात्रा ही मिल सकती है। जैसे चीनी तथा चावल की उपभोक्ता एक निश्चित मात्रा ही क्रय कर सकते हैं, परंतु प्रायः ऐसा होता है कि उपभोक्ता को कोई एक वस्तु की ज़रूरत से कम तथा दूसरी ज़रूरत से अधिक मिल जाती है। ऐसी अवस्था में उपभोक्ता वस्तुओं का परस्पर अदला–बदला या विनिमय करके अपने सन्तुष्टि स्तर को बढ़ाते हैं तथा ऊंचे तटस्थता वक्रों को प्राप्त हो सकते हैं। इसकी व्याख्या रेखाचित्र 22 में द्वारा की गई है।

रेखाचित्र 22 में दर्शाया गया है कि L तथा R दो उपभोकता हैं जो राशन डिपो से चीनी (Sugar) की OS मात्रा तथा चावल (Rice) की OR मात्रा प्राप्त करते हैं। मान लो L उपभोक्ता चीनी अधिक पसंद करता है तथा चावल कम। इसके विपरीत M उपभोक्ता चावल अधिक पसंद करता है तथा चीनी कम। यदि वे आपस में चीनी और चावल की अदला–बदली नहीं करते तो वे रेखाचित्र में E बिन्दु पर स्थापित होते हैं। L उपभोक्ता IC_1 तथा M अपने IC_1 पर सन्तुलन में हैं। E संयोग या बिन्दु उनके पसन्द का संयोग न होने के कारण यह अधिकतम सन्तुष्टि वाला बिन्रदु नहीं कहा जा सकता है। अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए अदला–बदली शुरू हो जाती है।

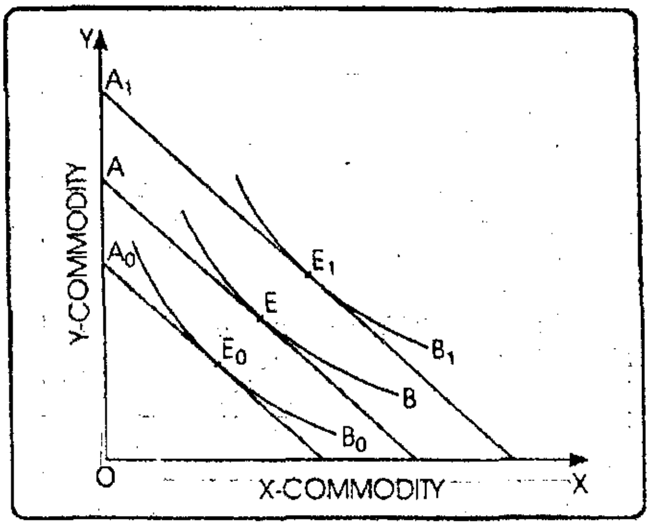

L उपभोक्ता A बिन्दु पर सन्तुलन में होगा तथा $R_{II}R_0$ चावल देकर S_0S_1 चीनी M उपभोक्ता से प्राप्त करता है तथा ऊंचे तटस्थता वक्र IC_{II} को प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार M उपभोक्ता B बिन्दु पर सन्तुलन प्राप्त करता है तथा S_0S_{II} चीनी L उपभोक्ता को देकर R_0R_1 चावल उससे प्राप्त करता है। M का भी सन्तुष्टि स्तर बढ़ जाता है क्योंकि B बिन्दु ऊंचे तटस्थता वक्र IC_{II} पर स्थित है। अतः तटस्थता वक्रों की सहायता से राशनिंग की अवस्था में लेन–देन करके उपभोक्ता अपने–अपने सन्तुष्टि स्तर को बढ़ा सकते हैं।

8. **मूल्य सूचकांकों में परिवर्तन के प्रभाव की व्याख्या (Explanation of the Effect of Changes in Price Indexes):** लोगों की आय में परिवर्तन हुए बिना यदि वस्तुओं के कीमत सूचकांकों में परिवर्तन हो जाए तो उनके जीवन स्तर पर प्रभाव पड़ता है। यदि कीमत सूचकांक में वृद्धि होती है तो उपभोक्ता नीचे वाले तटस्थता वक्र पर पहुंच जाते हैं तथा उनके जीवन स्तर में गिरावट आ जाती है। इसके विपरीत यदि आय में परिवर्तन हुए बिना कीमत सूचकांक गिर जाता है तो लोग ऊंचे तटस्थता वक्र पर पहुंच जाते हैं तथा उनके जीवन–स्तर में वृद्धि होती है। इसकी व्याख्या निम्न चित्र 45 द्वारा की गई है:

रेखाचित्र 45 में दर्शाया गया है कि उपभोक्ता की प्रारम्भिक बजट रेखा AB है तथा वह E बिन्दु पर सन्तुलन में है जहां IC_1 तटस्थता वक्र कीमत रेखा को छू रहा है। मान लो X वस्तु तथा Y वस्तु दोनों वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि हो जाती है अर्थात् कीमत सूचकांक बढ़ गया है। इसके परिणामस्वरूप उपभोक्ता की कीमत रेखा नीचे की ओर सरक कर A_0B_0 हो जाती है तथा उपभोक्ता E_0 बिन्दु पर संतुलन प्राप्त करता है तथा वह नीचे वाले तटस्थता वक्र IC_0 पर पहुंच जाता है जो जीवन स्तर में गिरावट का सूचक है। इसके विपरीत यदि कीमत सूचकांक गिर जाता है अर्थात् दोनों वस्तुएं सस्ती हो जाती हैं तो उपभोक्ता की बजट रेखा ऊपर की ओर सरक कर A_1B_1 बन जाती है। A_1B_1 कीमत रेखा पर वह E_1 बिन्दु पर संतुलन प्राप्त करता है तथा वह IC_{II} तटस्थता वक्र पर पहुंच जाता है। उपभोक्ता का सन्तुष्टि स्तर बढ़ने से जीवन–स्तर में वृद्धि होती है।

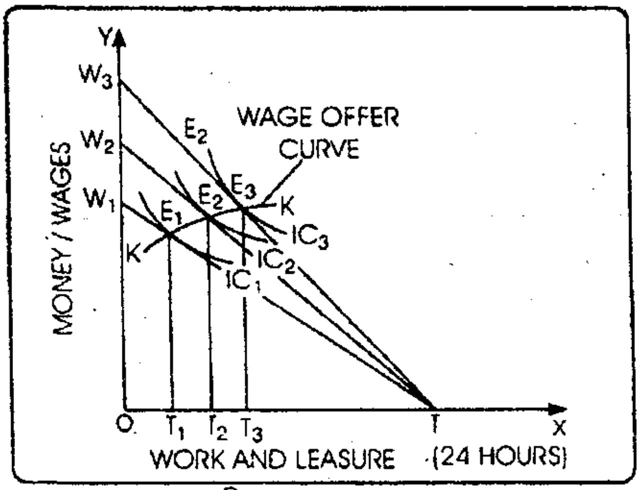

चित्र 46

9. **श्रम की पूर्ति वक्र निकालने में सहायक (Helpful in the Derivation of the Labour's Supply Curve):** तटस्थता वक्र विश्लेषण की सहायता से श्रमिकों का पूर्ति वक्र भी निकाला जा सकता है। हम जानते हैं कि श्रमिक अपने समय को कार्य तथा आराम में विभक्त करता है। मजदूरी दर बढ़ने का श्रम की पूर्ति या उसके कार्य के घण्टों पर क्या प्रभाव पड़ता है इस प्रश्न का हल चित्र की सहायता से किया जा सकता है।

उपरोक्त चित्र 46 में OX- अक्ष पर कार्य तथा अवकाश में 24 घण्टे समय का विभाजन किया गया है तथा OY- अक्ष पर कुल मौद्रिक मज़दूरी को मापा गया है। TW_1, TW_2, TW_3 मजदूरी रेखाएं हैं। TW_3 पर मजदूरी दर सबसे अधिक TW_2 पर मज़दूरी दर उससे कम तथा TW_1 पर मजदूरी दर TW_2 पर मजदूरी दर से कम है। प्रारम्भिक मज़दूरी दर श्रमिक E_1 बिन्दु पर सन्तुलन में है तथा वह T_1T घण्टे कार्य तथा OT_1 घण्टे आराम करता है। इसके बाद ज्यों मज़दूरी बढ़ती है तथा श्रमिक TW_2 मज़दूरी रेखा पर E_{11} बिन्दु पर सन्तुलन प्राप्त करता है तथा वह C_{11}

तटस्थता वक्र को प्राप्त करता है। इस अवस्था में वह TT_{II} घण्टे कार्य तथा OT_{II} घण्टे आराम। मज़दूरी दर और अधिक बढ़ने पर वह अपने आप को TW_3 पर पाता है तथा E_{III} बिन्दु पर सन्तुलन प्राप्त करता है तथा और ऊंचे सन्तुष्टि स्तर पर होता है। अब वह कार्य के घण्टे और कम करके TT_{III} कर देता है तथा आराम के घण्टे बढ़ा कर OT_{III} कर देता है। चित्र में KK मजदूरी पेश वक्र (Wage offer curve) है जो व्यक्त करती है कि ज्यों–ज्यों मज़दूरी दर बढ़ती जाती है श्रमिक कार्य की अपेक्षा आराम को अधिक पसंद करता जाता है। इसी कारण श्रम पूर्ति वक्र ऊपर बाईं ओर झुका हुआ (Leftward Sloping Supply Curve) होता है। ऊंची मज़दूरी दरों पर इसी कारण श्रमिक बच्चों तथा अपनी पत्नियों से कार्य नहीं करवाते।

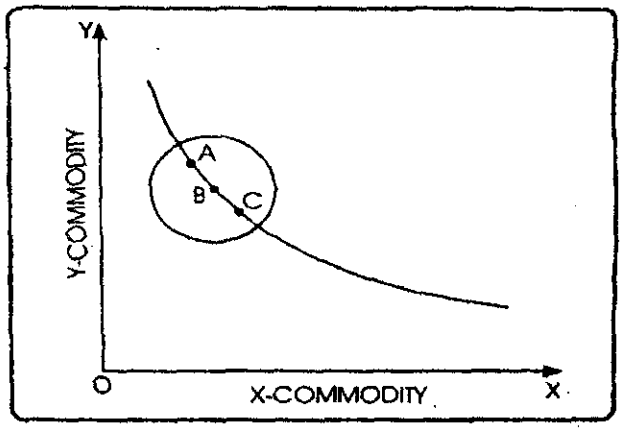

चित्र 47

10. **सरकारी नीतियों का कल्याण पर प्रभाव (Effects of Government Policies of Welfare):** सरकार की विभिन्न व्यय सम्बन्धी नीतियों का लोगों के कल्याण पर क्या प्रभाव पड़ता है इसको भी तटस्थता वक्रों की सहायता से मापा जा सकता है। यदि किसी सार्वजनिक व्यय संबंधी नीति लागू करने के उपरान्त लोगों का तटस्थता वक्र बढ़ जाता है तो उनके कल्याण में वृद्धि होती है। अन्यथा नहीं।

11. **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में महत्व (Useful in International Trade):** व्यक्तिगत तटस्थता वक्रों के आधार पर सामाजिक तटस्थता वक्र ज्ञात किए जा सकते हैं जो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की समस्याओं के समाधान तथा प्रभावों की व्याख्या करने में उपयोगी हैं। संक्षेप में, तटस्थता वक्र प्रणाली अनेक आर्थिक क्षेत्रों में लागू होती है। इसलिए यह अत्यंत उपयोगी विश्लेषण कहा जा सकता है।

तुष्टिगुण विश्लेषण तथा तटस्थता वक्र विश्लेषण में तुलना
(Comparison between Utility and Indifference Curve Analysis)

कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार तटस्थता वक्र विश्लेषण तुष्टिगुण विश्लेषण का सुधरा हुआ रूप है। जबकि कुछ अर्थशास्त्री तटस्थता वक्र विश्लेषण को नई बोतलों में पुरानी शराब मानते हैं। इस वाद–विवाद का आधार यह रहा है कि कुछ बातों में ये दोनों समान हैं तथा कुछ बातों में तटस्थता वक्र विश्लेषण श्रेष्ठ है। इनकी व्याख्या दो भागों में निम्न प्रकार से की गई है:

समानताएं
(Similarities)

1. **विवेकशील उपभोक्ता की मान्यता (Assumptions of Rational Consumers):** दोनों विश्लेषणों में यह कल्पना की गई है कि उपभोक्ता विवेकशील है। विचार या विवेक के आधार पर दोनों विश्लेषणों में उपभोक्ता का उद्देश्य अपने सन्तुष्टि स्तर को अधिकतम करना है।

2. **घटता सीमान्त तुष्टिगुण (Diminishing Marginal Utility):** तुष्टिगुण विश्लेषण में घटती सीमान्त तुष्टिगुण का नियम तथा तटस्थता व्यक्ति विश्लेषण में घटते सीमान्त प्रतिस्थापन की दर का नियम दोनों ही इस मान्यता पर

आधारित हैं कि उपभोक्ता ज्यों कसी वस्तु की अधिक मात्रा उपयोग करता जाता है तो उससे प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण घटता जाता है।

3. **भावगत विश्लेषण (Subjective Analysis):** दोनों विश्लेषणों में तुष्टिगुण को भावगत (Subjective) माना गया है अर्थात् वस्तु में तुष्टिगुण की अपनी इच्छा पर निर्भर होता माना गया है। तटस्थता वक्र विश्लेषण में यह माना गया है कि प्रत्येक उपभोक्ता का अपना तटस्थता मानचित्र होता है तथा उनकी संयोगों के प्रति प्राथमिकता या पसंदगी (Preferences) अपनी–अपनी होती है। इसलिए तटस्थता वक्र विश्लेषण भावगत है। इसी प्रकार तुष्टिगुण विश्लेषण में तुष्टिगुण को व्यक्ति की वस्तु के लिए अपनी इच्छा पर निर्भर होता माना गया है।

तुष्टिगुण विश्लेषण में कुल तुष्टिगुण किसी वस्तु की उपभोग की गई विभिन्न इकाइयों से प्राप्त तुष्टिगुणों का जोड़ माना गया है।

$TU_X = (UX_1 + UX_2 + UX_3 + ... + UX_n)$

अर्थात् किसी वस्तु X से प्राप्त कुल तुष्टिगुण (TU_X) इसकी विभिन्न इकाइयों के उपभोग से प्राप्त तुष्टिगुणों (UX_1 + UX_2 आदि) का जोड़ होता है।

ठीक इसी प्रकार तटस्थता वक्र विश्लेषण में उपभोक्ता को प्राप्त कुल संतुष्टि या तुष्टिगुण वस्तुओं के उपभोग की मात्रा पर निर्भर करता है:

$TU = + (A, B, C,......, Z) = U$

कुल तुष्टिगुण उपभोग की गई विभिन्न वस्तुओं की मात्राओं या संयोगों पर निर्भर करता है।

सन्तुलन की समान शर्तें
(Same Equilibrium :Conditions)

गहराई से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि तुष्टिगुण विश्लेषण तथा तटस्थता विश्लेषण दोनों में उपभोक्ता सन्तुलन की शर्तें समान हैं।

तुष्टिगुण विश्लेषण के अनुसार उपभोक्ता सन्तुलन की शर्त यह है कि वस्तुओं का सीमान्त तुष्टिगुण का अनुपात उनकी कीमतों के अनुपात के बराबर होना चाहिए।

$$\frac{MU_X}{P_X} = \frac{MU_X}{P_Y} \text{ or } \frac{MY_X}{MU_Y} = \frac{P_X}{P_Y} \quad ....(i)$$

हिक्स के अनुसार तटस्थता वक्र विश्लेषण में जब तक हम गणनावाचाक सीमान्त तुष्टिगुण को मान नहीं लेते उस समय तक हम MRS_{XY} को व्यक्त नहीं कर सकते। एक ही तटस्थता वक्र पर जब हम एक संयोग से दूसरे संयोग पर जाते हैं तथा एक वस्तु की मात्रा बढ़ाते हैं और दूसरी की कम करते हैं तो जो हमें हानि होती है उसकी क्षतिपूर्ति (Compensation) अवश्य होनी चाहिए। इसलिए प्रो. हिक्स ने MRS_{XY} को दोनों वस्तुओं के सीमान्त तुष्टिगुणों के अनुपात के रूप मे व्यक्त किया है:

$$MRS_{XY} = \frac{MU_X}{MU_Y} \quad ...(ii)$$

सीमान्त तुष्टिगुणों का यह अनुपात तभी मापा जा सकता है जब तुष्टिगुण को गणनावाचक माना जाए। इसलिए सिद्धांत रूप से तटस्थता विश्लेषण तुष्टिगुण को गणनावाचक मानता है।

तटस्थता वक्र विश्लेषण में उपभोक्ता के सन्तुलन की शर्त:

$$MRS_{XY} = \frac{P_X}{P_Y} \quad ...(iii)$$

समीकरण (ii) को समीकरण (iii) में शामिल करते हुए:

$$MRS_{XY} = \frac{MU_X}{MU_Y} = \frac{P_X}{P_Y}$$

$$MRS_{XY} = \frac{MU_X}{P_Y} = \frac{MU_Y}{P_Y} \quad ....(iv)$$

समीकरण (i) तथा समीकरण (iv) को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं कि दोनों विश्लेषणों में सन्तुलन की शर्तें समान हैं।

तटस्थता वक्र विश्लेषण की श्रेष्ठता (Superiority of Indifference Curve Analysis)

निम्न तथ्यों के आधार पर तटस्थता वक्र विश्लेषण को तुष्टिगुण विश्लेषण की तुलना में अधिक श्रेष्ठ माना जाता है:

1. **तुष्टिगुण का क्रमवाचक माप (Ordinal Measurement of Utility):** तटस्थता वक्र विश्लेषण में तुष्टिगुण का क्रमवाचक माप जैसे प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि तटस्थता वक्रों के रूप में किया जाता है जो अधिक व्यावहारिक है। इस विश्लेषण में तुष्टिगुण की तुलना तो हो सकती है कि एक तटस्थता वक्र के संयोग अन्य तटस्थता वक्र से कम या अधिक तुष्टिगुण देते हैं, परन्तु यह नहीं बताते कि कितनी इकाई कम या अधिक। इसके विपरीत तुष्टिगुण विश्लेषण में तुष्टिगुण का 1, 2, 3, 4 आदि इकाइयों में माप किया जाता है जो सम्भव नहीं है। इस आधार पर तटस्थता वक्र विश्लेषण को श्रेष्ठ माना जाता है।

2. **मुद्रा के सीमान्त तुष्टिगुण को स्थिर माने बिना मांग की व्याख्या (Analysis of Demand without assuming Constant Marginal Utility of Money):** तटस्थता वक्र विश्लेषण की एक महत्वपूर्ण श्रेष्ठता यह है कि इसमें मार्शल के तुष्टिगुण विश्लेषण की तरह मुद्रा के सीमान्त तुष्टिगुण को स्थिर नहीं माना गया है। वास्तव में मुद्रा का सीमान्त तुष्टिगुण स्थिर नहीं रहता है क्योंकि मुद्रा भी अन्य वस्तुओं की तरह एक वस्तु है। मार्शल ने मुद्रा को तुष्टिगुण मापने का स्थिर पैमाने बनाने के लिए इसकी सीमान्त तुष्टिगुण स्थिर रहने की मान्यता करनी पड़ी। तटस्थता वक्र विश्लेषण में इस मान्यता के बिना ही मांग का नियम या मांग वक्र निकाला है। इसलिए तटस्थता वक्र प्रणाली अधिक श्रेष्ठ मानी जाती है।

3. **कीमत प्रभाव का गहराई से अध्ययन (Greater insight into Price Effect):** तटस्थता वक्र विश्लेषण की एक श्रेष्ठता इस बात से भी प्रकट होती है कि इसमें कीमत परिवर्तन का मांग पर जो प्रभाव पड़ता है उसकी आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव के रूप में खुल कर व्याख्या की गई है। इससे हमे ज्ञात होता है कि किसी वस्तु की कीमत बदलने से उस वस्तु की मांग में कितना परिवर्तन आय प्रभाव तथा कितना परिवर्तन प्रतिस्थापन प्रभाव (Substitution Effect) के कारण होता है। इस प्रकार की व्याख्या मार्शल द्वारा प्रस्तुत तुष्टिगुण विश्लेषण में नहीं पाई जाती। अतः इस दृष्टिकोण से भी तटस्थता वक्र विश्लेषण श्रेष्ठ माना जाता है।

4. **गिफ्फन विरोधाभास की व्याख्या (Explanation of Giffen's Paradox):** तटस्थता वक्र विश्लेषण की तुष्टिगुण विश्लेषण से श्रेष्ठता इस बात में भी है कि यह गिफ्फन विरोधाभास की पूर्ण व्याख्या करने में सक्षम है। तटस्थता वक्र इन वस्तुओं की मांग की व्याख्या करता है कि इन वस्तुओं का ऋणात्मक स्थानापन्न प्रभाव धनात्मक आय प्रभाव से अधिक शक्तिशाली होता है। इसलिए इन गिफ्फन वस्तुओं की कीमत गिरने पर इनकी मांग गिरती है तथा कीमत बढ़ने पर इनकी मांग बढ़ जाती है (जैसा कि गिफ्फन पदार्थों के सन्दर्भ में कीमत प्रभाव की व्याख्या कर चुके हैं)। इसी को गिफ्फन विरोधाभास कहा जाता है। मार्शल का तुष्टिगुण विश्लेषण इस विरोधाभास की व्याख्या नहीं कर सका है।

5. **अधिक वास्तविक (More Realistic):** तटस्थता वक्र विश्लेषण को तुष्टिगुण विश्लेषण से श्रेष्ठ इस कारण भी माना जाता है कि तटस्थता वक्र विश्लेषण अपेक्षाकृत कम अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है। जबकि मार्शल का तुष्टगुण विश्लेषण अधिक अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है जैसे तुष्टिगुण को इकाइयों में मापा जा सकता है,

मुद्रा का सीमान्त तुष्टिगुण स्थिर रहता है, वस्तुओं के तुष्टिगुण स्वतंत्र होते हैं आदि। ऐसी अवास्तविक मान्यताओं का तटस्थता वक्र विश्लेषण में त्याग कर दिया गया है।

6. **मांग का सामान्य सिद्धान्त (General Theory of Demand):** तटस्थता वक्र विश्लेषण मार्शल के तुष्टिगुण विश्लेषण से श्रेष्ठ इस कारण भी माना जाता है कि तटस्थता वक्र विश्लेषण सामान्य वस्तुओं, घटिया वस्तुओं तथा गिफ्फन पदार्थों की मांग की खुल कर व्याख्या करता है। जबकि मार्शल का तुष्टिगुण विश्लेषण केवल सामान्य वस्तुओं की मांग की व्याख्या करता है। तटस्थता वक्र विश्लेषण यह कार्य आय प्रभाव तथ प्रतिस्थापन प्रभावों की व्याख्या करके कर सका है।

7. **स्थानापन्न तथा पूरक वस्तुओं का अध्ययन (Study of Substitutes and Complementary Goods):** तटस्थता वक्र विश्लेषण की सहायता से स्थानापन्न तथा पूरक वस्तुओं की मांग का अध्ययन भी किया जा सकता है। जबकि मार्शल के तुष्टिगुण विश्लेषण में केवल स्वतन्त्र वस्तुओं (Independent goods) जिनका तुष्टिगुण एक–दूसरे के तुष्टिगुण को प्रभावित नहीं करता, उनका ही अध्ययन किया जाता है।

8. **कल्याण के माप में सहायक (Helpful in the Measurement of Welfare):** तटस्थता वक्र विश्लेषण की सहायता से कीमतों में परिवर्तन तथा सरकारी नीतियों में परिवर्तन से लोगों के कल्याण पर पड़ने वाले प्रभावों को मापा जा सकता है। हिक्स ने तटस्थता वक्रों की सहायता से उपभोक्ता की बेशी का अधिक उचित माप प्रस्तुत किया। इस कारण भी यह प्रणाली श्रेष्ठ मानी जाती है।

9. **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सहायक (Helpful in International Trade):** तटस्थता वक्र विश्लेषण की सहायता से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की समस्याओं तथा इसके प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। इसके आधार पर व्यापार तटस्थता वक्रों (Trade Indifference Curves), सामाजिक तटस्थता वक्रों (Social Indifference Curves) आदि को भी निकाला जा सका है जो विभिन्न राष्ट्रों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

10. **मांग का अधिक वास्तविक सिद्धान्त (More Realistic Theory of Demand):** तटस्थता वक्र विश्लेषण पर आधारित मांग का सिद्धांत अधिक वास्तविक है क्योंकि यह डॉ. मार्शल के तुष्टिगुण विश्लेषण पर आधारित मांग के सिद्धांत की अपेक्षा अधिक वास्तविक मान्यताओं पर आधारित है।

अतः हम कह सकते हैं कि कुछ समानताओं के होते हुए भी तटस्थता वक्र विश्लेषण मार्शल के तुष्टिगुण विश्लेषण से अधिक श्रेष्ठ प्रणाली है।

तटस्थता वक्र विश्लेषण की आलोचना
(Criticism of Indifference Curve Analysis)

तटस्थता वक्र विश्लेषण तुष्टिगुण विश्लेषण से श्रेष्ठ होते हुए भी इसकी अनेक आलोचनाएं की गई हैं:

1. **पूर्ण ज्ञान की अवास्तविक धारणा (Unrealistic Assumption of Perfect Knowledge):** यह तर्क दिया गया कि मार्शल के तुष्टिगुण विश्लेषण में तुष्टिगुण के संख्यात्मक माप की समस्या को दूरे करने के लिए तटस्थता वक्र विश्लेषण प्रस्तुत किया गया था, परंतु तटस्थता वक्र विश्लेषण की यह धारणा कि उपभोक्ता को दोवस्तुओं के असंख्य संयोगों की प्राथमिकता क्रम (Scale of Preference) या अपने तटस्थता मानचित्र (Indifference Map) की पूर्ण जानकारी होती है यह एक असंभव तथा अवास्तविक धारणा है। इस संबंध में प्रो. आहुजा ने ठीक ही कहा है कि तटस्थता वक्र विश्लेषण आसमान से गिरा तथा खजूर में अटका। The Indifference curve approach so to say, falls from the frying pan into the fire. -Prof. H.L. Ahuja)

2. **हास्यास्पद संयोग (Laughable Combination):** तटस्थता वक्र विश्लेषण में जब हम दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों पर विचार करते हैं तो अनेक बार ऐसे संयोग सामने आते हैं जिनका वास्तविक जीवन से कोई संबंध नहीं होता तथा उन पर हंसी भी आती है। जैसे एक संयोग जिसमें 8 कमीज और दो जोड़े जूते हैं यह वास्तविक जीवन में महत्व रखता है। परंतु एक अन्य संयोग जिसमें 2 कमीज तथा 8 जोड़े जूते हैं, उपभोक्ता अपने वास्तविक जीवन में ऐसा योग नहीं रखता है। यदि किसी उपभोक्ता के पास 8 जोड़े जूते तथा 2 कमीज हों तो बड़ा हास्यस्पद सा लगता है। परंतु तटस्थता वक्र विश्लेषण में ऐसे अनेक संयोग सामने आते हैं। अतः इस आधार पर भी इसकी आलोचना की जाती है।

3. **नई बोतल में पुरानी शराब (Old Wine in a New Bottle):** तटस्थता वक्र विश्लेषण की यह भी आलोचना की जाती है कि इसमें केवल पुरानी धारणाओं को नई शब्दावली दी गई है। जैसे तुष्टिगुण के स्थान पर प्राथमिकता (Preference), मात्रात्मक संख्याओं 1, 2, 3 आदि के स्थान पर क्रमवाचक संख्याएं–प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि। सीमान्त तुष्टिगुण के स्थान पर सीमांत प्रतिस्थापन की दर, घटते सीमान्त तुष्टिगुण के स्थान पर घटती सीमान्त प्रतिस्थापन्न की दर का नियम आदि। इसी कारण प्रो. राबर्टसन ने तटस्थता वक्र विश्लेषण को नई बोतल में पुरानी शराब (Old Wine in a New Bottle) का नाम दिया है।

4. **जटिल विश्लेषण (Complex Analysis):** जब उपभोक्ता दो वस्तुओं का उपयोग करता है तो यह विश्लेषण उपभोक्ता सन्तुलन का सरलता से अध्ययन करता है। परन्तु जब उपभोक्ता तीन या चार या इससे भी अधिक वस्तुओं का उपभोग कर रहा होता है तो रेखाचित्र की सहायता से इसकी व्याख्या असम्भव हो जाती है। उस अवस्था में केवल समीकरणों की सहायता से ही उपभोक्ता सन्तुलन का अध्ययन किया जा सकता है जो एक कठिन तथा जटिल कार्य है।

5. **आत्म-अवलोकन विधि (Introspection Method):** तटस्थता वक्र विश्लेषण तुष्टिगुण विश्लेषण की तरह विश्लेषण की आत्म–अवलोकन विधि पर ही आधारित है। अर्थात् यह उपभोक्ता की अपनी मानसिक स्थिति के आधार पर उपभोक्ता सन्तुलन की व्याख्या करती है जिसकी परीक्षा (Test) नहीं हो सकती। इसलिए इस विधि को वैज्ञानिक नहीं माना जाता। इसके स्थान प्रो. सैम्यूलसन ने उपभोक्ता सन्तुलन का अध्ययन उपभोक्ता के व्यवहार (Behaviour) के आधार पर प्रकट अधिमान सिद्धान्त (The Theory of Revealed Preference) द्वारा किया जिसकी बार–बार परीक्षा (Test) की जा सकती है।

6. **तर्कसंगति का अभाव (Lack of Transitivity):** तटस्थता वक्र की परिभाषा के अनुसार यह वक्र दो वस्तुओं के ऐसे संयोगों को व्यक्त करता है जिनसे उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि मिलती है। परन्तु प्रो. आर्मस्ट्रांग ने इस परिभाषा को तर्कसंगल नहीं पाया है। उनका विचार है कि उपभोक्ता तटस्थता वक्र के दो बिन्दुओं A और B के बीच इसलिए तटस्थ नहीं होता कि वह इसको महसूस नहीं कर पाता है। अन्य बिन्दुओं जैसे B और C के बीच भी अन्तर बहुत कम होने के कारण इनमें भिन्नता को महसूस नहीं कर पाता। परन्तु दो संयोगों जिनके बीच अन्तर अधिक हो जाता है तो उनमें भिन्नता को उपभोक्ता आसानी से महसूस कर सकता है। जैसा कि चित्र 47 में A तथा C का अन्तर अधिक है। आर्मस्ट्रांग के अनुसार उपभोक्ता या तो A को C से या C को A संयोग से अधिक पसन्द करेगा। इसलिए उनके अनुसार उपभोक्ता इन दोनों संयोगों के बीच तटस्थ नहीं रह सकता। इस आधार पर उपभोक्ता A तथा B के बीच तटस्थ रह सकता है, परन्तु वह A तथा C के बीच तटस्थ नहीं रह सकता क्योंकि इनके बीच अन्तर अधिक हो जाता है। यदि हम तटस्थता वक्र की इस तर्कसंगति की कमी स्वीकार कर लेते हैं तो इस विश्लेषण का आधार ही समाप्त हो जाता है।

7. **विवेकपूर्ण व्यवहार (Rational Behaviour):** तटस्थता वक्र विश्लेषण इस धारणा पर आधारित है कि उपभोक्ता बड़ा विचारवान होता है तथा वह वस्तुओं पर इस प्रकार व्यय करता है ताकि उसको अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो। परन्तु वास्तव में उपभोक्ता आदत तथा सामाजिक रीति–रिवाजों में फंस कर इस प्रकार खर्च करता है कि उसका सन्तुष्टि स्तर अधिकतम नहीं हो पाता। अतः तटस्थता वक्र विश्लेषण की यह धारणा कि उपभोक्ता का व्यवहार विवेकपूर्ण होता है वास्तविक नहीं है।

8. **गलत नामकरण (Misnamer):** कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार तटस्थता या अनाधिमान वक्र विश्लेषण का नाम अधिमान वक्र विश्लेषण (Preference Curve Analysis) होना चाहिए था। इसका कारण यह है कि इस विश्लेषण की सहायता से उपभोक्ता उस संयोग को चुनता (Prefer) है जिससे उसकी सन्तुष्टि अधिकतम होती है। अतः संयोग के चुनने (Preference) पर अधिक बल दिया गया है न कि तटस्थता या अनाधिमान रहने पर।

9. **उपभोक्ता इतना हिसाबी नहीं (Consumer is not so Calculating):** तटस्थता वक्र विश्लेषण में उपभोक्ता को बहुत हिसाबी माना गया है कि वह कम्प्यूटर की तरह हमेशा यह निर्णय करता रहता है कि उसे कौन सा संयोग खरीदना चाहिए ताकि सन्तुष्टि अधिकतम हो सके। परन्तु वास्तविक जीवन में उपभोक्ता इतना हिसाबी नहीं होता तथा न ही उसके पास इतना समय है।

10. **घटते सीमान्त तुष्टिगुण का छुपा प्रयोग (Hidden use of Diminishing Marginal Utility):** वास्तव में घटते हुए सीमान्त प्रतिस्थापन (MRS_{XY}) की दर की व्याख्या घटते हुए सीमान्त तुष्टिगुण के बिना असम्भव है। प्रो. आर्मस्ट्रांग के अनुसार, "सीमान्त तुष्टिगुण के मंच का उपयोग किए बिना, हिक्स द्वारा बनाए गए घटते सीमान्त प्रतिस्थापन की दर के सिद्धान्त तक पहुंचना असम्भव है।"

11. **अवास्तविक मान्यताएं (Unrealistic Assumptions):** तटस्थता वक्र विश्लेषण अनेक अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है। उदाहरण: वस्तुएं विभाजनशील होती हैं, वस्तु की सभी इकाइयां समरूप होती हैं, बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है आदि।

    तटस्थता वक्र विश्लेषण तुष्टिगुण विश्लेषण की अपेक्षा मांग के सिद्धान्त या उपभोक्ता के व्यवहार का एक सुधरा हुआ रूप है। परन्तु इसमें भी अनेक कमियां हैं जिनके आधार पर विश्लेषण की उपरोक्त आलोचनाएं की गई हैं। इसके स्थान पर प्रो. सैम्यूलसन ने प्रकट अधिमान विश्लेषण (Revealed Preference Analysis) का प्रतिपादन किया है जो अधिक व्यावहारिक तथा यथार्थपूर्ण है।

प्रश्न
(Questions)

Annexure

Mathematical Derivation of Slopes

Slopes of the two functions are important to know.

The two functions are :

The Utility function, U = U (X, Y), and

the Budget function, $B = P_X X + P_Y Y$

The utility function U = U (X, Y) is for an indifference curve

$$du = \left[\frac{\partial u}{\partial x}dx = -\frac{\partial u}{\partial y}dy\right] = 0$$

We know that change in utility (du)=0, because the utility remains the same on an indifference curve of it is an iso-utility curve. In other words the utility level does not change, even if we move from one combination to another along an indifference curve.

Now, because du=O, we have

$$\frac{\partial u}{\partial x}dx = -\frac{\partial u}{\partial y}dy$$

After rearranging wer have

$$\frac{\frac{\partial u}{\partial x}}{\frac{\partial u}{\partial y}} = -\frac{dy}{dx} = -MRS_{XY}$$

$-MRS_{XY}$ is the slope of the indifference curve.

Similarly, given the budget function; $B = P_X X + P_Y Y$, we have

$$X = \frac{B}{P_X} - \frac{P_Y}{P_X}Y$$

$$\text{or } Y = \frac{B}{P_Y} - \frac{P_X}{P_Y}x$$

In either case we have the equation of the budget line in the slope-intercept form

$\frac{B}{P_X}$ is the intercept on the x-axis

$\frac{B}{P_Y}$ is the intercept on the y-axis.

and $\frac{P_X}{P_Y}$ or $\frac{P_Y}{P_X}$ is the slope of the budget line which is negative.

In the next stage, we may frame the optimisation problems for our consumes as either constrained maximisation or constrained minimisation problem and then derive the optimum decision rule therefrom.

I. निबंध रूपी प्रश्न
(Essay Type Questions)

1. What are the indifference curves? Discuss their properties?

   तटस्थता वक्र क्या है? इनकी विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।

   Or

   What are the properties of indifference curves?

   उदासीनता वक्रों की विशेषताएं क्या हैं?

2. What are the properties of indifference curves? How is it an improvement over Utility Analysis?

   तटस्थता वक्र की विशेषताओं का वर्णन करें। तटस्थता वक्र विश्लेषण, उपयोगिता विश्लेषण से किस प्रकार उत्तम है?

3. Explain the indifference curves and their assumptions. How far is it correct to say that there is no need of measurement of utility in this technique?

   तटस्थता वक्र और उनकी मान्यताओं की व्याख्या करो। यह कहना कहां तक उचित है कि इसमें तुष्टिगुण के माप की आवश्यकता नहीं पड़ती?

4. Explain the equilibrium of a consumer with the help of indifference curves.

   तटस्थता वक्रों की सहायता से उपभोक्ता संतुलन की व्याख्या करें।

5. What is a price line? Show how would you drawn a price.

   कीमत रेखा क्या होती है? कीमत रेखा निकाल कर दर्शाइए।

II. लघु उत्तर प्रश्न
(Short Answer Type Questions)

1. What is an indifference curve?

   तटस्थता वक्र से क्या अभिप्राय है?

2. What is an indifference map?

   तटस्थता मानचित्र क्या है?

3. Give the assumptions of Indifference curve.

तटस्थता वक्र की मान्यताएं दें।

4. With the help of indifference curve show marginal rate of substitution.

तटस्थता वक्र की सहायता से सीमांत प्रतिस्थापन दर दर्शाएं।

Or

Explain marginal rate of substitution.

सीमांत प्रतिस्थापन दर की व्याख्या कीजिए।

5. Explain the following three properties of Indifference Curves.

(i) Indifference Curve is downward sloping. (ii) Indifference Curve is convex to the origin.

(ii) Two Indifference curves cannot cut each other.

तटस्थता वक्र की निम्नलिखित दो विशेषताओं की व्याख्या करें।

(i) तटस्थता वक्र का ढलान नीचे की ओर झुका हुआ होता है। (ii) तटस्थता वक्र मूल बिंदु की ओर उन्नतोदर होते हैं। (iii) दो तटस्थता वक्र एक–दूसरे को नहीं काट सकते।

6. What is budget line.

बजट रेखा से क्या अभिप्राय है?

7. Assumptions of consumer preferences.
8. Show the shift in the price line due tall in the price of X-commodity.
9. Explain two conditions of consumer's equilibriums.
10. Why is consumer equilibrium not possible when IC is concave to the origin.
11. What is meant by the slope of the price line.

III. वस्तुनिष्ठ प्रश्न तथा उनके उत्तर
(Objective Type Questions and their Answers)

1. State whether the following statements are true or false.

i. Indifference curve is a study of utilities of commodities.
ii. Indifference curve slopes upward from the origin.
iii. Two ICs can intersect each other.
iv. IC of substititute goods can be circular.
v. Slope of IC does not show the ratio of prices of two goods.
vi. Slope of price line in MRS of two goods.
vii. Law of Diminishing Marginal Rate of Substitution is based on the Law of Diminishing Marginal Utility.
viii. Price line shows the same level of satisfation.
ix. Price line must tourch the indifference curve is the necessary condition of equilibrium of the consumer.
x. Price line can be drawn only on the basis of the prices of two goods.

Answers : (i) False, (ii) False, (iii) False, (iv) False, (v) True, (vi) False, (vii) True, (viii) False, (ix) True and x) Flase.

2. Fill up the blankes from the words given in the brackets.

i. Indifference curve analysis is a study of .... equilibrium. (Producer, Consumer)

ii. Indifference Curve analysis is based on .... utility analysis. (Cardinal, Ordinal)

iii. Price line is a line whose points refer to the .... of two goods. (Combinations, Utilities)

iv. Indifference curve analysis was introduced by .... (Marshall, Edgworth)

v. Indifference curve must be convex to the origin is a .... condition of consumer equilibrium. (Sufficient, Necessary)

Answers : (i) consumer), (2) ordinal, (3) combinations, (4) Edgworth and (5) sufficient.

I. निबन्ध रूपी प्रश्न
(Essay Type Questions)

1. Show the shifts in consumer's equilibrium due to:
   (a) Income Effect, (b) Price Effect and (c) Substitution Effect.
2. Explain how price effect is a combination of income effect and substitution effect.
3. Show shifts in consumer equilibrium under Hicbsian Approach and Slutsky Approach.
4. How would you draw an Engel's curve? Explain.
5. Show price effect in case of inferior goods and Giffen's goods.
6. Compare utility analysis with indifference curves and how the latter is a superior technique. Also show the uses and criticism of I.Cs.

II. लघु उत्तर प्रश्न
(Short Answer Type Questions)

1. Distinguish between Income Effect and Substitution Effect.
   आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव में अन्तर बताइए।
2. Mention the differences between (1) Normal goods and inferior goods, (2) Inferior and Giffen's goods.
   (1) सामान्य तथा घटिया वस्तुओं (2) घटिया तथा गिफ्फन पदार्थों में अन्तर बताइए।
3. What is the basic difference between Ordinal Utility Approach and Cardinal Utility Approach?
   क्रमवाचक तथा गणनावाचक दृष्टिकोणों में क्या आधारभूत अन्तर हैं?
4. Explain the meaning of price, income and substitution effects and show that price effect is the sum total of the other two.
   कीमत, आय तथा प्रतिस्थापन प्रभावों का अर्थ दीजिए तथा दर्शाइए कि कीमत प्रभाव शेष दो प्रभावों का योग होता है।
5. What are two conditions of consumers equilibrium in indifference curve analysis.
   तटस्थता वक्र विश्लेषण में उपभोक्ता सन्तुलन की दो शर्तें कौन–सी हैं?
6. Give main criticisms of indiffernce curve analysis.
   तटस्थता वक्र विश्लेषण की मुख्य आलोचनाओं का वर्णन करें।
7. Draw a diagram to illustrate the derivation of a deamand curve through indifference curves. What is the difference between a demand curve and price consumption curve.
   तटस्थता वक्रों की सहायता से मांग वक्र ज्ञात करने के लिए एक रेखाचित्र बनाइए। मांग वक्र तथा कीमत उपभोग वक्र में क्या अन्तर है?
8. Mention the main points of differences between Indifference curve analysis and utility analysis.
   तटस्थता वक्र विश्लेषण तथा उपयोगिता विश्लेषण के मुख्य अन्तर का वर्णन करें।
9. In what way Indifference Curve Analysis is superior to Utility Analysis.

तटस्थता वक्र विश्लेषण उपयोगिता विश्लेषण से किस प्रकार श्रेष्ठ है?

10. Write short note on Edgeworth Box diagram.
ऐजवर्थ बाक्स रेखाचित्र पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

11. Write short note on price effect.
कीमत प्रभाव पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

II. वस्तुनिष्ठ प्रश्न तथा उनके उत्तर
(Objective Type Questions)

1. State whether the following statements are true of false.
बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत हैं।

(1) Income Effect in indifference curve analysis arises when income and prices change.
तटस्थता वक्र विश्लेषण में आय प्रभाव उस समय उत्पन्न होता है जब आय तथा कीमतें दोनों में परिवर्तन आता है।

(2) The demand for inferior goods increases as household income increases.
निकृष्ट पदार्थों की मांग आय के बढ़ने के साथ बढ़ती जाती है।

3. The slope of an indifference curve at any point shows the maximum satisfaction.
तटस्थता वक्र के ढ़लान के किसी बिन्दु द्वारा अधिकतम सन्तुष्टि प्रकट होती है।

4. Cardinal Approach is based on measurement of marginal utility of money.
गणनावाचक विश्लेषण सीमान्त उपयोगिता के माप पर आधारित है।

अध्याय-7
प्रकट अधिमान सिद्धान्त
(Revealed Preference Theory)

इस धारणा का प्रतिपादन Prof- Smaulson ने 1930 में किया। Morshall के तुष्टिगुण विश्लेषण तथा Hicks के उदासीनता वक्र विश्लेषण में उपभोक्ता के व्यवहार का अध्ययन Interaspective Method से किया गया।

परन्तु सैम्अलसन ने प्रकट अधिमान विश्लेषण में विभिन्न कीमत आय प्ररिस्थितियों में उपभोक्ता के व्यवहार के आधार पर माँग के नियम का निर्माण किया है। इसलिए सैम्अलसन ने इसे व्यवहारवादी क्रमवाचक धारणा कहा है।

इस सिद्धान्त में माँग के नियम की व्याख्या बिना उदासीनता वक्रों तथा बिना उसकी मान्यताओं के आधार पर की गई है।

सैम्अलसन ने अपनी सिद्धान्त में सबल–क्रमबद्धता (Strong Ordering) की अधिमान परिकल्पना (Preference Hypothesis) का प्रयोग किया है। सबल क्रमबद्धता का अभिप्राय यह है कि उपभोक्ता के अधिमान क्रम को विभिन्न सहयोगों में एक निश्चित क्रम में दर्शाया जाता है इसलिए जब एक उपभोक्ता किसी एक संयोग का चुनाव करता है तो वह अन्य सभी उपलब्ध संयोगों को इसकी तुलना में त्याग देता है अर्थात् वह इस संयोग के लिए अपनी Preference (प्राथमिकता) को स्पष्ट एवं प्रकट करता है। अतः सबल क्रमबद्धता में यह मान लिया जाता है कि विभिन्न संयोगों के मध्य उपभोक्ता उदासीन नहीं हो सकता है। सबल क्रमबद्धता के आधार पर उपभोक्ता की स्पष्ट प्राथमिकता को निम्न रेखाचित्र द्वारा दर्शाया जा सकता है।

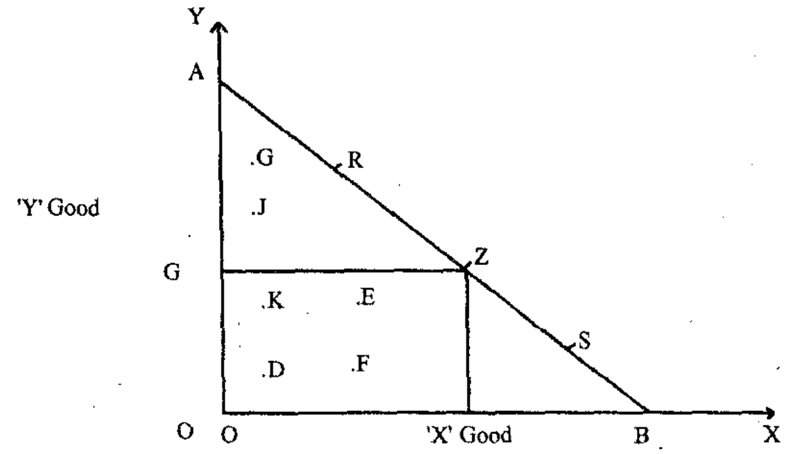

रेखाचित्र मे दी हुई आय तथा दी हुई कीमतों के आधार पर कीमत रेखा AB बनती है। इस कीमत रेखा पर कई संयोग जैसे R, Z और S दर्शाये गये हैं। इसके अतिरिक्त त्रिभुज OPB के बीच कई संयोग G, J, K, E, F, C, D, इत्यादि दर्शाए गए हैं। मानों उपभोक्ता Z बिन्दु पर उपलब्ध संयोग के लिए अपनी प्राथमिकता स्पष्ट करता है अर्थात् कीमत रेखा और त्रिभुज में सभी सम्भव उपलब्ध संयोगों को Z संयोग के तुलना में त्याग देता है अर्थात् वह किसी भी स्थिति में इन त्यागे हुए संयोगों के लिए अपनी प्राथमिकता स्पष्ट नहीं करेगा।

Assumptions

सैम्युलसन द्वारा दिया गया प्रकट अधिमान विश्लेषण कई मान्यताओं पर आधारित है।

1. **विवेकशीलता**: उपभोक्ता विवेकशीलता से व्यवहार करता है अर्थात् वह वस्तुओं को अधिक मात्रा वाले संयोग को लेना चाहता है।

2. **सामंजस्य**: उपभोक्ता के विभिन्न उपलब्ध संयोगों में सामजस्य पाया जाता है। इसका अर्थ यह है कि एक समय में उपभोक्ता A संयोग के लिए B संयोग की तुलना में अपनी प्राथमिकता प्रकट करता है तो वह किसी दूसरे समय में B के लिए A की तुलना में अपनी प्राथमिकता प्रकट नहीं करेगा अर्थात् यदि–

   A>B तो B>A

3. **पारदर्शता**: इसमें यह मानकर चला जाता है कि उपभोक्ता की प्राथमिकता के क्रम में पारदर्शता पाई जाती है। इसका अभिप्राय यह है कि यदि उपभोक्ता B संयोग की तुलना में A के लिए तथा C की तुलना में B के लिए अपनी प्राथमिकता प्रकट करता है तो वह कभी भी C की तुलना में A के लिए सदा अपनी प्राथमिकता प्रकट करेगा अर्थात् यदि–

   A>B तथा B>C तो A>C होगा।

4. इस सिद्धान्त के अनुसार एक दी हुई बजट स्थिति में जब उपभोक्ता एक विशेष संयोग को प्राथमिकता देता है तो वह उस परिस्थिति में सम्भव सभी उपलब्ध संयोगों को उससे घटिया मानकर उनका त्याग कर देता है। चयन किया गया संयोग उसे अधिकतम सन्तुष्टि प्रदान करता है। वस्तुओं के संयोग को स्पष्ट प्राथमिकता उपभोक्ता के अधिकतम तुष्टिगुण को दर्शाता है।

मॉंग के नियम को निकालना

प्रो० सैम्युलसन ने प्रकट संधिमान विश्लेषण की सहायता से मॉंग के नियम की व्याख्या की है। मार्शल द्वारा स्थापित मॉंग वक्र के नियम अर्थात् मांग और कीमत के विपरीत सम्बन्ध को इस मान्यता के आधार पर प्रमाणित किया है कि मॉंग की आय लोच धनात्मक होती है। इसे निम्न रेखाचित्र में दर्शाया जा सकता है।

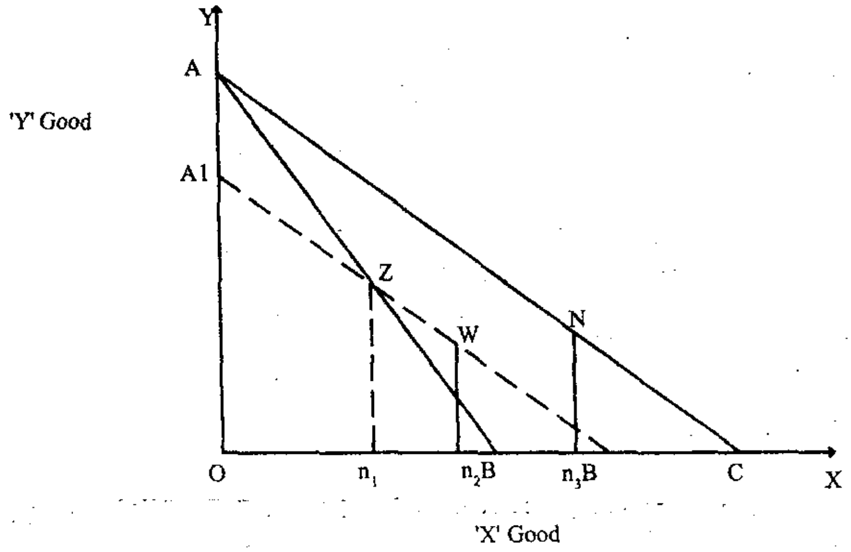

रेखाचित्र मे मानों आरम्भ में दी हुई आय तथा वस्तु की दी हुई कीमत के आधार पर कीमत रेखा AB है और उपभोक्ता Z बिन्दु पर उपलब्ध संयोग के लिए अपनी प्राथमिकता प्रकट करता है अर्थात् बाकी सभी उपलब्ध संयोगों को इस संयोग से घटिया समझकर त्याग देता है। अब मानों x वस्तु की कीमत कम हो जाती है और नई कीमत रेखा AC बनती है जो यह स्पष्ट करती है कि इस बजट रेखा पर उपलब्ध संयोग x वस्तु की अधिक मात्राओं को दर्शाते हैं क्योंकि x वस्तु की कीमत सस्ती होने से उपभोक्ता की वास्तविक आय अर्थात् उसकी क्रय शक्ति बढ़ जाती है।

अब मानो उपभोक्ता की बढ़ी हुई आय को इस प्रकार छीन लिया जाता है कि ताकि उपभोक्ता यदि चाहे तो आरम्भिक Z संयोग को भी खरीद सके। इसे आय की क्षतिपूर्ति कहते हैं। रेखाचित्र में इसके लिए एक क्षतिपूरक बजट रेखा A'B' खींची जाती है। जो AC बजट रेखा के समान्तर है। और यह Z बिन्दु से होकर गुजरती है क्योंकि उपभोक्ता को अब भी Z संयोग उपलब्ध है। इसलिए उपभोक्ता Z बिन्दु के बाईं और वाले भाग A'Z पर किसी भी अन्य संयोग का चुनाव नहीं करेगा अन्यथा वह असामंजस्य (Invonsistant) हो जायेगा क्योंकि दी हुई आरम्भिक परिस्थिति में A'Z हिस्से में उपलब्ध प्रत्येक संयोग को वह Z से घटिया समझकर त्याग चुका है। अतः उपभोक्ता या तो Z संयोग का चुनाव जारी रखेगा जहाँ पर प्रतिस्थापन प्रभाव शून्य होगा। या वह ZB' भाग पर उपलब्ध किसी संयोग का चुनाव करेगा जैसे कि W जिस पर वह x वस्तु की अधिक मात्रा x_2 ले सकता है।

मानो अब क्षतिपूरक छीनी गई आय उपभोक्ता को वापस दे दी जाती है और इसलिए उपभोक्ता पुनः बजट रेखा AC पर पहुँच जाता है और N बिन्दु पर नये सन्तुलन स्थिति पर संयोग का चुनाव करता है और N वह बिन्दु पर x वस्तु की अधिक मात्रा X3 ले सकता है। उपभोक्ता को W संयोग के दाई ओर AC बजट रेखा के N बिन्दु पर जाना तभी संभव होगा यदि x सामान्य वस्तु की ओर उसका आय प्रभाव धनात्मक हो।

अतः इस सिद्धान्त में माँग के नियम अर्थात् माँग तथा कीमत के विपरीत सम्बन्ध की सामजंस्य तथा पारदर्शता के आधार पर स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है।

प्रकट अधिमान विश्लेषण की उदासीनता वक्र विश्लेषण पर श्रेष्ठता

उपभोक्ता के व्यवहार का विश्लेषण करते समय Hicks का उदासीनता वक्र विश्लेषण उपभोक्ता से कई प्रकार की सूचनाएँ प्राप्त करना चाहता है जैसे उपभोक्ता के दो वस्तुओं के सभी सम्भव संयोगों में से अपने अधिमान क्रम को प्रकट करने को कहा जाता है। और वह समस्त सम्भव संयोगों को सामजस्य की मान्यता के आधार पर कोटि क्रम (Ranking) प्रदान करता है अर्थात् उपभोक्ता को वस्तुओं के विभिन्न संयोगों के बीच अपनी प्राथमिकताओं का पूर्णज्ञान होता है जो कि व्यवहारिक नहीं है क्योंकि व्यवहार में उपभोक्ता अपने सभी सम्भव संयोगों को सामजस्य की मान्यता के आधार पर विवेकशील कोटिक्रम नहीं कर सकता है।

इसके अतिरिक्त Hicks के उदासीनता वक्र विश्लेषण में उदासीनता वक्र की उत्नतोदरता को प्रतिस्थापन की घटती सीमान्त दर के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है जो व्यवहारिक नहीं है।

सैम्युलसन के प्रकट अधिमान विश्लेषण में उपभोक्ता को न तो अपने सम्भव उपलब्ध संयोगों को कोटिक्रम करने की आवश्यकता होती है और न ही अपनी रूचियों के विषय में अन्य सूचनाएँ प्रदान करनी होती है। इस विधि में उदासीनता वक्र की उन्नोदरता का बिना प्रतिस्थापन की घटती सीमान्त दर की मान्यता को स्पष्ट किया जा सकता है। अतः यह विश्लेषण अधिक श्रेष्ठ और अधिक व्यवहारिक है। इसे निम्न रेखाचित्रों से स्पष्ट किया जा सकता है।

प्रकट अधिमान वक्र विश्लेषण में विभिन्न बाजार कीमतों के आधार पर उपभोक्ता के व्यवहार का अवलोकन करके उदासीनता वक्र मानचित्र को निर्माण किया जाता है। परन्तुः

1. उपभोक्ता के चयन में सामजंस्य होना चाहिए।
2. उपभोक्ता की रूचियाँ तथा प्राथमिकताएं उस समय अवधि में स्थिर बने रहते हैं। जिसमें उसके व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।
3. एक उपभोक्ता Pareto के अर्थ में विवेकशीलता से व्यवहार करता है। अर्थात् वह कम वस्तु की अपेक्षा उसकी अधिक मात्रा को प्राथमिकला देता है।
4. उपभोक्ता पारदर्शी होता है।

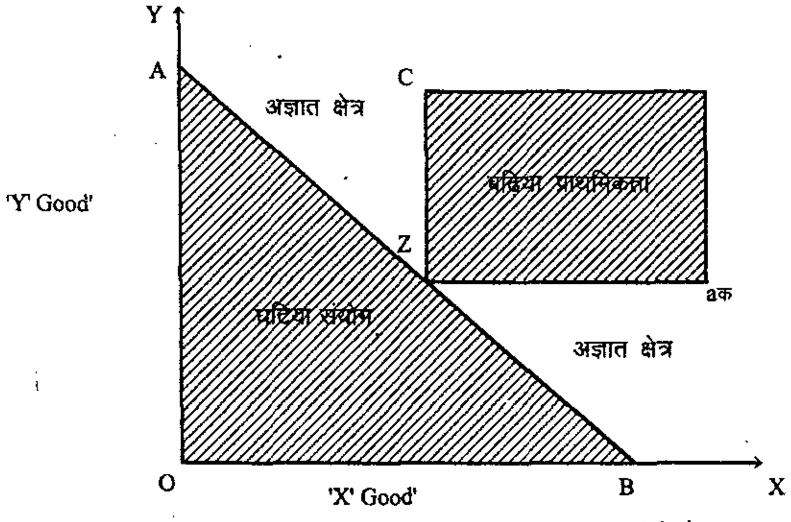

मानो उपभोक्ता का आरम्भिक बजट रेखा AB है और उपभोक्ता Z संयोग का चुनाव करता है। बजट रेखा तथा उसके नीचे वाले सभी संयोगी को Z से घटिया मानकर इनका त्याग कर दिया जाता है। अब मानों Z बिन्दु से दो लम्ब खींचे जाते हैं अर्थात् CZ तथा ZD इन रेखाओं पर तथा Z बिन्दु के दाई ओर वाले क्षेत्र में Z से बढ़िया संयोग उपलब्ध है क्योंकि उपभोक्ता इन संयोगों से या तो दोनों वस्तुओं की अधिक मात्रा या कम से कम एक वस्तु की अधिक मात्रा खरीद सकता है परन्तु CZD क्षेत्र के नीचे और बजट रेखा में ऊपर वाले क्षेत्र में कोटि क्रम नहीं है। परन्तु हम इन संयोगों को Z संयोग की तुलना में Ranking कर सकते हैं।

मानों अब 3 x वस्तु की कीमत कम हो जाती है और नई बजट रेखा EF बनती है जो Z बिन्दु से गुजरती है।

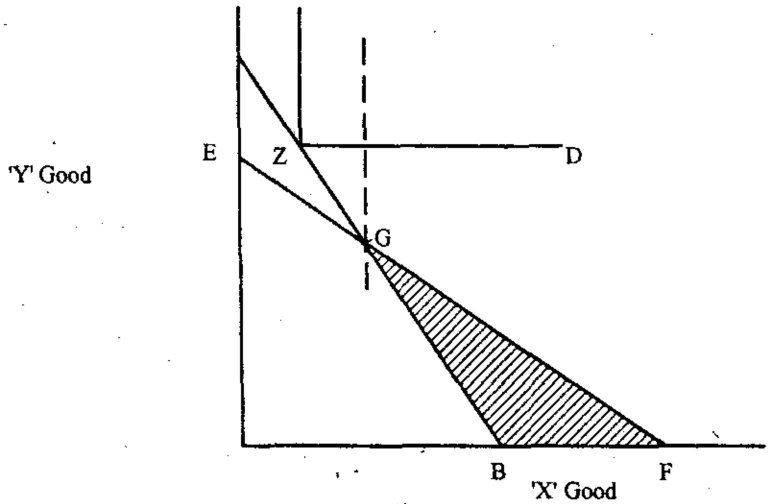

रेखाचित्र में स्पष्ट है कि उपभोक्ता x वस्तु की कीमत कम होने के बाद या तो G संयोग का चुनाव करेगा या G के दाई ओर अर्थात् GF पर चुनाव करेगा क्योंकि EG पर उसका चुनाव असांमाजस्य होगा क्योंकि यह आरम्भिक बजट रेखा के नीचे है और उसे घटिया मात्रा गया है। मानो उपभोक्ता G संयोग का चुनाव करता है अतः पारदर्शता की मान्यता को आधार परः

Z>G (आरम्भिक स्थिति में)

G>(GBF) (नई बजट स्थिति में)

$\therefore Z > GBF$

इस प्रकार हम GBF क्षेत्र में सम्भव उपलब्ध संयोगों का Z की तुलना में कोटि क्रम कर सकते हैं। हम इस प्रकार की पद्धति को बार–बार दोहरा कर Z बिन्दु से नीचे बजट रेखाएँ खींचकर नीचे वाले अज्ञात क्षेत्र में जो कि Z से घटिया है। संयोगों का कोटि क्रम कर सकते है।

इसी प्रकार ऊपर वाले अज्ञात क्षेत्र में उपलब्ध संयोगों का Z की तुलना में कोटि क्रम किया जा सकता है। अब मानों x वस्तु की कीमत बढ़ जाती है तथा नई बजट रेखा K r1 Z बिन्दु से गुजरता है।

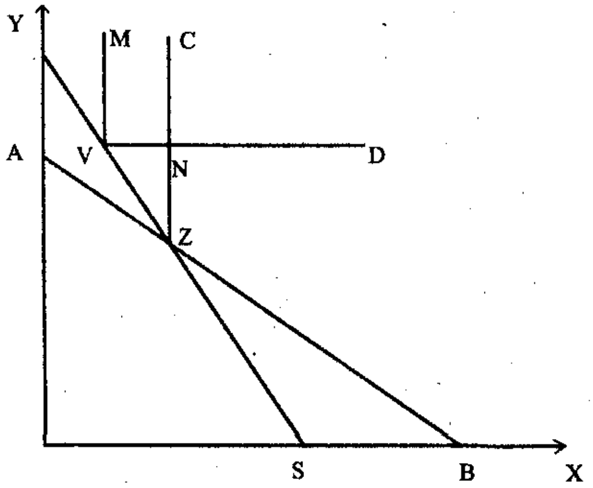

रेखाचित्र में स्पष्ट है कि उपभोक्ता या तो Z संयोग का चुनाव करेगा या Ks बजट रेखा पर U का चुनाव करेगा। विवेकशीलता की मान्यता के आधार पर

(MUN)>U

प्रकट अधिमान सिद्धान्त के आधार पर

U>Z

तथा पारदर्शता के आधार पर

(MUN)>Z

इस प्रकार हम MUN क्षेत्र में उपलब्ध संयोगों का Z की तुलना में कोटि क्रम कर सकते हैं। इस विधि का बार–बार प्रयोग करके अज्ञात क्षेत्र को कम कर सकते हैं। अतः स्पष्ट है कि इस विश्लेषण में उपभोक्ता के वास्तविक चुनाव के व्यवहार का अवलोकन करे विभिन्न बाजार परिस्थितियों में उदासीनता मानचित्र का अर्थ उसकी प्राथमिकताओं का Ranking किया जा सकता है। इसलिए इस विश्लेषण उदासीनता वक्र विश्लेषण से श्रेष्ठ है।

Hicks के उदासीनता वक्र विश्लेषण में उदासीनता वक्र की उन्नतोदरता को घटते सीमान्त प्रतिस्थापन के दर के आधार पर सिद्ध किया जा सकता है परन्तु इस विश्लेषण में घटते सीमान्त दर की मान्यता लिए बिना उदासीनता वक्र की उन्नतोदरता को दर्शाया जा सकता है इसलिए यह विश्लेषण उदासीनता वक्र विश्लेषण से श्रेठ है।

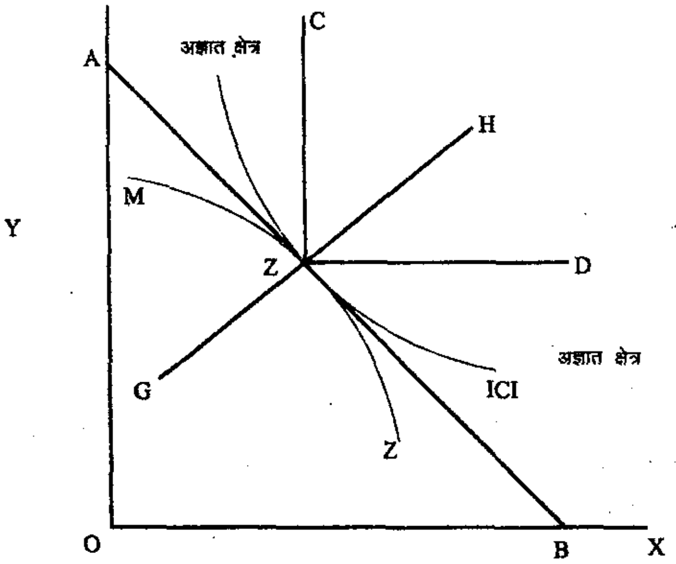

रेखाचित्र में आरम्भ में AB बजट रेखा पर उपभोक्ता Z बिन्दु का चुनाव करता है अर्थात् उपभोक्ता AB बजट रेखा पर और इसके नीचे सभी संयोगों को घटिया समझकर त्याग देता है। तथा CZD क्षेत्र में स्थिति सभी संयोगों को बढ़िया माना गया है। Z से गुजरती हुई उदासीनता वक्र अवश्य ही कहीं न कहीं अज्ञात क्षेत्र में होनी चाहिए तथा उन्नोतदर होनी चाहिए।

उदासीनता वक्र AB सरल रेखा नहीं हो सकती है। क्योंकि Z संयोग का चुनाव यह दर्शाता है कि AB बजट रेखा पर सभी संयोग Z से घटिया है और उपभोक्ता AB के अन्य संयोगों के प्रति तटस्थ नहीं हो सकता है। AB बजट रेख को Z बिन्दु पर काटती हुई GH भी उदासीनता वक्र नहीं हो सकती है क्योंकि इस वक्र के ZG हिस्से पर उपलब्ध सभी संयोगों को Z की तुलना में नकारा जा चुका है क्योंकि इन संयोगों की तुलना को उपभोक्ता Z संयोग के लिए प्राथमिकता प्रकट कर चुका है। MN वक्र भी जो मूल बिन्दु की ओर नवादेर है उदासीनता वक्र नहीं हो सकती है क्योंकि उपभोक्ता पहले ही इस वक्र पर स्थित संयोगों को घटिया समझकर त्याग चुका है क्योंकि इन सभी संयोगों में वस्तु की कम मात्रा उपलब्ध है। अतः एक मात्र सम्भावना यह है कि उदासीनता वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर है। इसलिए स्पष्ट रूप से यह विश्लेषण उदासीनता वक्र विश्लेषण से श्रेष्ठ है। क्योंकि इसमें उदासीनता वक्र विश्लेषण की अव्यवहारिक मान्यताओं को नहीं लिया गया है।

अध्याय-8

बॉड वोगन, सनोब और वैबलेन प्रभाव

(Band Wogen, Snob and Weblen Effect)

बाजार मांग वक्र को निकालने के लिए हम बाजार में सक्रीय सभी उपभोक्ताओं के उस विशेष वस्तु के लिए मांग वक्रों का Horizontal Summation करेंगे। इस अवस्था में वे सभी मान्यताएं बनी रहेगी जो मांग वक्र को shift कर सकती हैं। ये हैं : उपभोक्ता की आय स्थिर है सम्बन्धित वस्तुओं की कीमत, उपभोक्ता की रूचि तथा फैशन नहीं बदलता। अगर उपभोक्ता की आय, बदल रही है तो बाजार मांग वक्र भी बदल जाएगा।

बाजार मांग वक्र

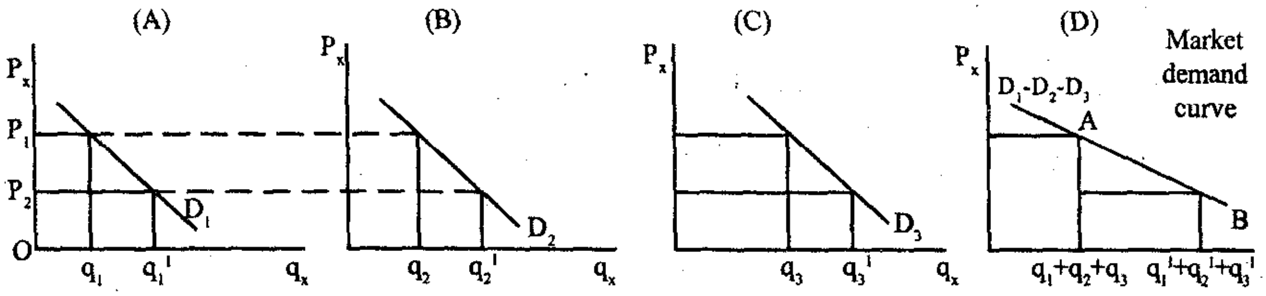

रेखाचित्र के अनुसार बाजार में केवल तीन उपभोक्ता A, B, C, हैं। तीनों उपभोक्ताओं के मांग वक्र क्रमशः D_1, D_2 तथा D_3 है जो इस मान्यता पर आधारित है सभी उपभोक्ताओं की मांग एक दूसरे से स्वतंत्र है। अतः बाजार मांग वक्र निकालने के लिए किसी विशेष कीमत (P_1) पर विभिन्न A, B तथा C उपभोक्ताओं द्वारा की गई वस्तु की मांग क्रमशः q_1,q_2, q_3 है। अतः q_1 कीमत पर बाजार में कुल मांग $q_1+q_2+q_3$ होगी जो कि रेखा चित्र (D) में A बिन्दु पर है इसी तरह से P_2 कीमत पर बाजार की कुल मांग A, B, तथा C उपभोक्ताओं द्वारा मांग क्रमश q_1, q_2, तथा q_3 होगी जो रेखाचित्र (D) में B बिन्दु पर है इसी तरह से हम बाजार मांग वक्र निकाल सकते हैं।

परन्तु वास्तविक जीवन में बाजार में उपभोक्ताओं की मांग एक दूसरे से स्वतन्त्र ना होकर एक दूसरे पर निर्भर करती हैं। और उपभोक्ताओं की रूचि तथा फैशन दूसरों को देखकर बदलते रहते हैं। ऐसी अवस्था में बाजार का मांग वक्र सीधा उपभोक्ताओं के मांग वक्र का जोड़ ना होकर अलग होगा। बाजार मांग वक्र किस तरह का होगा यह विभिन्न व्यक्तियों के व्यवहार पर निर्भर करेगा।

The Bandwagon Effect

कभी कभी व्यक्तियों का व्यवहार ऐसा होता है कि वह बाजार में वस्तु कि कितनी मात्रा खरीदेगें इसका निर्णय वे दूसरों द्वारा खरीदी गई मात्रा से लेते हैं। बैडवेगन प्रभाव जब होगा जब व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों द्वारा खरीदी गई अधिक मात्रा के साथ अधिक खरीदते हैं तथा कम मात्रा खरीदने पर कम खरीदते हैं। ऐसी अवस्था में व्यक्तियों की मांग एक दूसरे से सीधे (Positively related) रूप से सम्बन्धित होगी इसी को बैडवेगना प्रभाव कहा जाएगा।

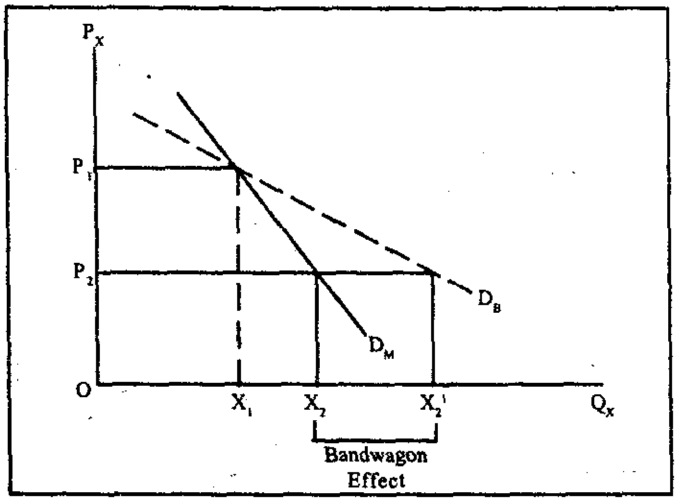

रेखाचित्र के अनुसार D_M बाजार मांग वक्र है जब सभी व्यक्तियों का व्यवहार एक दूसरे से स्वतंत्र हैं। परन्तु बैडवेगन प्रभाव के कारण जैसे ही कीमत P_1 से घटकर P_2 होती है DM बाजार मांग वक्र के अनुसार X_1 से मांग X_2 होगी। परन्तु कुछ व्यक्ति बैडवेगन प्रभाव के कारण उस वस्तु की मात्रा को अधिक खरीदेगें। अतः P_2 पर मांग X_2 ना होकर X_2'होगी अतः X_2 से X_2' ही बैडवेगन प्रभाव है।

The Snob Effect

Snob effect के अनुसार यदि कुछ उपभोक्ता अपने को दूसरों से अलग दिखाना चाहते हैं अर्थात जो दूसरे खरीद रहे हैं ये उनसे अलग खरीदते हैं। ऐसी स्थिति में वस्तु की मांग जब बाजार में अधिक होगी तो इन उपभोक्ताओं के द्वारा कम की जाएगी और जब दूसरों द्वारा कम मांग की जा रही है इन उपभोक्ताओं द्वारा अधिक की जाएगी।

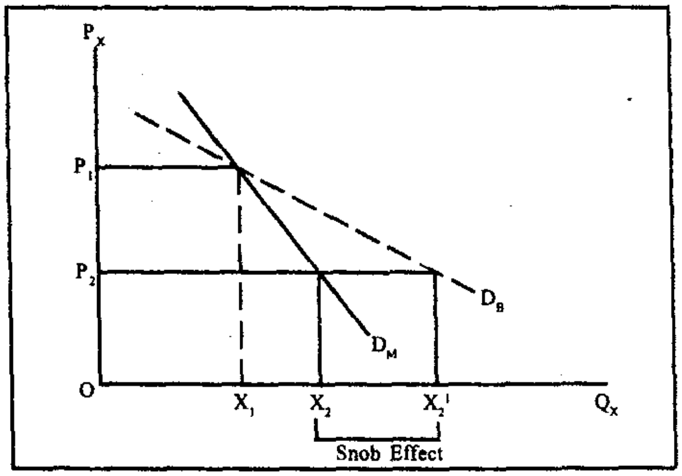

रेखाचित्र के अनुसार D_M बाजार मांग वक्र है जब प्रत्येक उपभोक्ता द्वारा की जाने वाली मांग एक दूसरे से स्वतंत्र है। लेकिन जैसे ही कीमत P_1 से हटकर P_2 होती है D_M के अनुसार वस्तु की मात्रा X_1 से बढ़कर X_2 हो जाती है। परन्तु snob effect के कारण कुछ उपभोक्ता दूसरों को अधिक खरीदता देख बहुत कम वस्तु की मात्रा खरीदेगें जिससे कुल मांग X_2 से घटकर X_2' होगी। X_2 से X_2' मात्रा का प्रभाव snob effect होगा। snob effect के कारण आने वाला D_B बाजार मांग वक्र कम लोचशील होगा D_M मांग वक्र की अपेक्षा।

The Beblen Effect

बाजार के कुछ व्यक्ति ऐसे भी हैं जो अपने धन को दर्शाने के लिए, तथा दूसरो को प्रभावित करने के लिए वस्तु की कीमत से उसकी गुणवता को मापते है। अर्थात अधिक कीमत पर अच्छी गुणवत्ता तथा कम कीमत पर कम गुणवत्ता आंकते हैं। तथा ऐसे व्यक्तियों द्वारा अधिक कीमत पर अधिक मात्रा तथा कम कीमत पर कम मात्रा खरीदी जाएगी। ऐसी अवस्था में कुल बाजार मांग वक्र का ढाल ऊपर की ओर होगा।

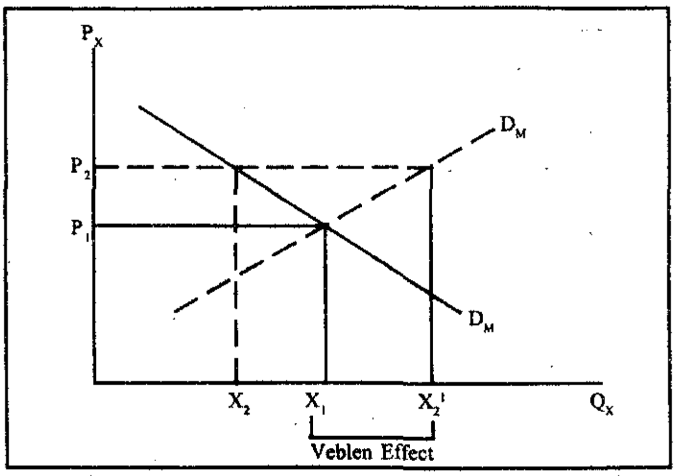

रेखाचित्र के अनुसार DM बाजार मांग वक्र उस स्थिति को प्रकट कर रहा है जब सभी उपभोक्ता एक दूसरे से स्वतंत्र मांग कर रहें है। और P_1 कीमत पर X_1 मांग है। P_1 से कीमत P_2 बदने पर उन सभी उपभोक्ताओं द्वारा मांग को अप्रत्याशित रूप से बढ़ा दिया जाएगा जो वस्तु की गुणवत्ता को उसकी कीमत से मापते है अतः मांग X_2 से बढ़कर X_2^1 हो जाएगी।

veblen effect P_2 कीमत पर X_2 से X_2^1 होगा।

अध्याय-9

मांग की मूल्य सापेक्षता का अर्थ, विकास तथा माप (Meaning, Types and Measurement of Elasticity of Demand)

भूमिका (Introduction)

तुष्टिगुण विश्लेषण तथा तटस्थता वक्र विश्लेषण के माध्यमां से हम माँग के सिद्धान्त (Theorys of Demand) का पीछे अध्ययन कर चुकें हैं। मांग का सिद्धान्त, गिफफन पदार्थो को छोड़कर, व्यक्त करता है कि अन्य बातें समान रहते हुए जब किसी वस्तु की कीमत कम होती है तो उस वस्तु की मांग का विस्तार होता है तथा जब कीमत बढ़ती है तो मांग का संकुचन होता है। इसी प्रवृति को हम सामान्यतः मांग का नियय (Law of Demand) कहते हैं। मांग का यह नियम कीमत मे परिवर्तन के परिणामस्वरूप मांगी गई मात्रा में परिवर्तन की केवल दिशा (Direction) की ओर संकेत करता है। परन्तु इससे यह स्पष्ट नहीं होता है कि कीमत में परिवर्तन के उपरान्त मांगी गई मात्रा में कितना तथा किस सीमा तक (to what extent) परिवर्तन होता है। इस तथ्य की व्याख्या की कीमत बदलने से मांगी गई मात्रा में कितना परिवर्तन या प्रतिक्रिया (Reaction) होती है। मांग की मूल्य सापेक्षता (Elasticity of Demand) द्वारा किया जाता है। इस अध्याय में मांग की मूल्य सापेक्षता का अध्ययन किया गया है माँग की मूल्य सापेक्षता का अर्थशास्त्र में बहुत अधिक सैद्धान्तिके तथा व्यावहारिक महत्त्व है। आध ुनिक व्यवसाय, प्रबन्धात्मक अर्थशास्त्र (Managerial Economic), व्यवसाय अर्थशास्त्र (Business Economics) आदि क्षेत्रों में इसका महत्त्व तेजी से बढ़ रहा है। विभिन्न वस्तुओं की मांग सम्बन्धी भविष्यवाणी (Demand Forecasting) में भी इसका विशेष महत्त्व है:

माँग की सोपक्षता का अर्थ (Meaning of the Elasticity of Demand)

ऐसा प्रतीत होता है कि अर्थशास्त्र में मूल्य–सापेक्षता की धारणा भौतिकशास्त्र (Physics) से ली गई है। भौतिक शास्त्र में किसी एक चर में परिवर्तन के परिणामस्वरूप किसी दूसरे चर में परिवर्तन की प्रतिक्रिया (Reaction) का माप किया जाता है। अर्थशास्त्र में मूल्य सापेक्षता भी प्रतिक्रिया का सूचांक (Index of Reaction) है।

अर्थशास्त्र में मांग की सापेक्षता का विकास डॉ. मार्शल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "अर्थशास्त्र के सिद्धान्त" में किया था। मांग की सापेक्षता एक तत्त्व में होने वाले परिवर्तन के कारण दूसरे तत्त्व में होने वाले परिवर्तन का माप है। किसी वस्तु की मांग में परिवर्तन मुख्यतः उसकी कीमत, उपभोक्ता की आय तथा सम्बन्धित वस्तु की कीमत में परिवर्तन पर निर्भर करती है। अतः किसी वस्तु की कीमत या उपभोक्ता की आय या सम्बन्धित वस्तुओं की कीमत में परिवर्तन होने से मांगी गई मात्रा में जो परिवर्तन होता है उसको मांग की सापेक्षता (Elasticity of Demand) कहा जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि मांग की सापेक्षता मुख्य रूप से तीन प्रकार की होती है:

1. मांग की मूल्य सापेक्षता (Price Elasticity of Demand)
2. मांग की आय सापेक्षता (Income Elasticity of Demand)
3. मांग की तिरछी सापेक्षता (Cross Elasticity of Dêmand)

1. मांग की मूल्य सापेक्षता या मांग की कीमत लोचशीलता
(Price Elasticity of Demand)

जब किसी वस्तु की मांग सापेक्षता (Demand Elasticity) को उसे वस्तु की कीमत के सन्दर्भ में परिभाषित किया जाता है तो वह मांग की मूल्य सापेक्षता या मांग की कीमत लोचशीलता (Price Elasticity of Demand) कही जाती है। अन्य बातें समाना रहते हुए जब वस्तु की अपनी कीमत में परिवर्तन के परिणामस्वरूप उस वस्तु की मांगी गई मात्रा में जो परिवर्तन आता है उसका माप मांग की मूल्य–सापेक्षता कहलाता है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने इसको निम्न प्रकार से परिभाषित किया है:

डॉ. मार्शल के अनुसार, "मांग की मूल्य सापेक्षता कीमत में प्रतिशत परिवर्तन से मांगी गई मात्रा में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन का अनुपात है।" (Price elasticity of Demand is the ratio of percentage change in the quantiy demanded to a percentage change in the price-Dr.Marshall.)

प्रो. बोल्डिंग के अनुसा, "मांग की मूल्य सापेक्षता कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप मांग में होने वाले परिवर्तन की प्रक्रिया को मापती है।" (Price elasticity of demand measures the responsiveness of the quantity demanded to the change in price—Prof. Boulding)

अन्य शब्दों में मांग की मूल्य सापेक्षता दो शुद्ध संख्याओं (Pure Numbers) का अनुपात है जिसमें अंश (Numerator) मांगी गई मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन होता है तथा हर (Denominator) वस्तु की कीमत में प्रतिशत परिवर्तन को व्यक्त करता है। वास्तव में इन संख्याओं को प्रतिशत परिवर्तन के रूप में लिखने की बजाय आनुपातिक परिवर्तन के रूप में निम्न प्रकार से भी लिखा जा सकता है। मांग की मूल्य सापेक्षता का हम सामान्यः e से दर्शाते है:

$$e = (-)\ \frac{\frac{\Delta Q}{Q}}{\frac{\Delta P}{P}} = (-)\ \frac{\Delta Q}{Q} \div \frac{\Delta P}{P} \text{ or } \frac{\Delta Q}{\Delta P} \cdot \frac{P}{Q}$$

यहां Δ वस्तु की मात्रा (Q) तथा कीमत (P) में परिवर्तन को प्रकट करता है। यदि हम Q तथा P में अत्यधिक छोटे या सूक्ष्म परिवर्तन प्रयोग में लाना चाहते हैं तो हमें Calculus or Derivative की सहायता लेनी पड़ती है तथा उपरोक्त सूत्र को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है:

$$e = (-)\ \frac{dQ}{dP} \cdot \frac{P}{Q}$$

विशेषताएँ
(Features)

इस स्थिति (Stage) में हमें इसकी निम्न विशेषताओं को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए:

(1) हम देख सकते है कि e (price elasticity of demand) सीमान्त मांग $\left(\frac{dQ}{dP}\right)$ का औसत मांग $\frac{Q}{P}$ से अनुपात है क्योंकि

इसका सूत्र इस तथ्य का प्रमाण है : $\frac{dQ}{dP} \cdot \frac{P}{Q} = \frac{\frac{dQ}{dP}}{\frac{Q}{P}}$ सीमान्त मांग/औसत मांग

(2) मांग वक्र के ढाल (Slope of Demand Curve) तथा मांग की मूल्य सापेक्षता (Price Elasticity of Demand) में अन्तर होता है। यह अन्तर इन दोनों के गणना करने के सूत्र में ही नीहित है। जैसा कि चित्र 1 में दर्शाया गया है कि DD

मांग वक्र का ढाल $\frac{\Delta P}{\Delta Q}$ के समान होता है क्योंकि सूत्र के अनुसार ढाल बराबर होता है :

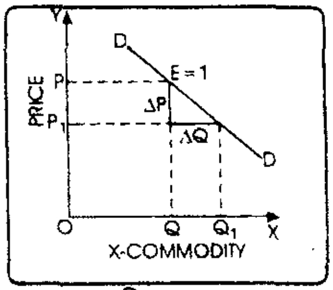

चित्र 1

ढाल = लम्ब/आधार

अतः मांग वक्र का ढाल = $\frac{\Delta P}{\Delta Q}$

मांग की मूल्य सापेक्षता $= \frac{\Delta Q}{\Delta P} \cdot \frac{P}{Q}$

मांग की मूल्य सापेक्षता के सूत्र में $\frac{\Delta Q}{\Delta P}$ मांग वक्र के ढाल के सूत्र $\frac{\Delta P}{\Delta Q}$ का विपरीत (Inverse) है तो इस प्रकार यदि $\frac{\Delta Q}{\Delta P}$ ही मूल्य सापेक्षता होती तो ढाल का विपरीत करके आसानी से निकाला जा सकता था। परन्तु इसमें अन्तर $\frac{P}{Q}$ के कारण भी उत्पन्न होता है। P तथा Q मांग वक्र पर भिन्न–भिन्न होते हैं।

3. एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि सापेक्षता का गुणांक (Co-efficient) उस के निरपेक्ष मूल्य के आधार पर क्रम में रखा जाता है न कि उसके बीजगणितीय मूल्य के आधार पर। उदाहरणतः– 2 सापेक्षता – 1 सापेक्षता से अधिक है यद्यपि बीजगणितीय दृष्टिकोण से इसके विपरीत सत्य है। इसका कारण मांग में बदलाव की सीमा देखना है।

4. मांग की मूल्य सापेक्षता के सूत्र के साथ नकारात्मक–चिह्न क्यों लगाते हैं। यदि मांग वक्र नीचे बाँए से दाएँ झुका हुआ है तो इसका अभिप्राय यह है कि कीमत कम (नकारात्मक) होने पर मांग बढ़ती है तथा कीमत बढ़ने पर मांग कम (नकारात्मक) होती है। अतः दोनों अवस्थाओं में मांग या कीमत इनमें से एक अवश्य नकारात्मक होता है। यदि हम इस बात को ध्यान में रखते हैं तथा समझते हैं तो नकारात्मक चिहन को छोड़ भी सकते है।

मांग की मूल्य सापेक्षता की श्रेणियाँ
(Degrees of Price Elasticity of Demand)

मांग की मूल्य सापेक्षता की निम्नलिखित पांच श्रेणियां (Degree) हैं:

1. पूर्णतः लोचदार मांग (Perfectly Elastic Demand)
2. पूर्णतः बेलोच मांग (Perfectly Inelastic)
3. इकाई के समान या आनुपातिक लोचदार मांग (Unitary Elastic Demand)
4. अधिक लोचदार मांग (More Elastic Demand)
5. कम लोचदार मांग (Less Elastic Demand)

1. **पूर्णतः लोचदार मांग (Perfectly Elastic Demand)**: पूर्णतः लोचदार मांग को अन्नत लोचशील मांग (e=α) भी कहते हैं। जब जरा सी कीमत में परिवर्तन सें मांग पूर्ण रूप से बदलने की शक्ति रखती है तो वह पूर्णतः लोचशील कही जाती है जैसा कि चित्र 2 में दर्शाया गया है। इस चित्र में OP कीमत पर वस्तु की मांग अन्नत है। अब यदि कीमत जरा सी बढ़ कर OP_1 हो जाती है तो मांग गिर कर शून्य हो जाती है क्योंकि OP_1 पर मांग वक्र कीमत को स्पर्श नहीं कर रहा है। अब यदि कीमत OP_1 से गिर कर OP हो जाती है तो वस्तु की मांग अनन्त हो जाती है। अतः कीमत में जरा से परिवर्तन से मांग पूर्णतः बदल जाती है। इसलिए इसको पूर्ण लोचदार मांग कहा जाता है। यह एक काल्पनिक स्थिति है।

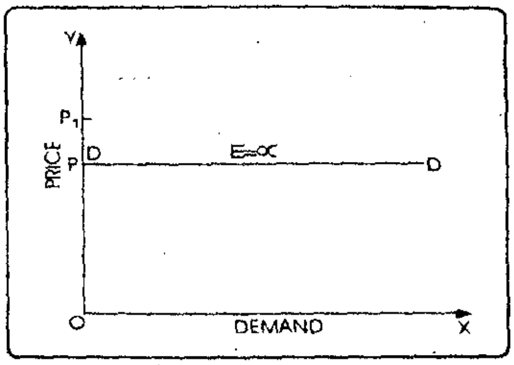

चित्र 2

2. **पूर्णतः बेलोच मांग (Perfectly Inelastic Demand)** -- यदि मांग वक्र Y- अक्ष के समानान्तर खड़ा होता है तो ऐसे मांग वक्र पर मांग पूर्णतः बेलोच होती है। चित्र 3 में दर्शाया गया है कि जब कीमत OP होती है तो मांगी गई मात्रा OQ होती है तथा जब कीमत बढ़कर OP_1 हो जाती है तो OQ रहती है। इसी प्रकार जब कीमत गिर कर OP_1 होती है तो भी मांग की मात्रा OQ ही बनी रहती है। अर्थात् कीमत के बदलने पर मांग बिल्कुल नहीं बदलती। इसलिए इसको पूर्णतः बेलोच मांग (Perfectly Inelastic Demand) कहा जायेगा। यह भी एक काल्पनिक स्थिति है।

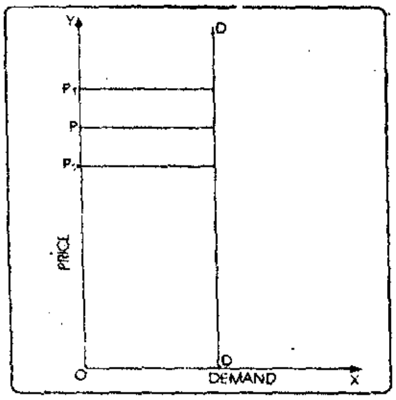

चित्र 3

3. **इकाई या आनुपातिक लोचदार मांग (Unitary Elastic Demand)**: यदि किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप मांगी गई मात्रा में उसी अनुपात से परिवर्तन होता है तो उसको इकाई के समान या आनुपातिक लोचदार मांग कहा जायेगा जैसे कि चित्र 4 में दर्शाया गया है।

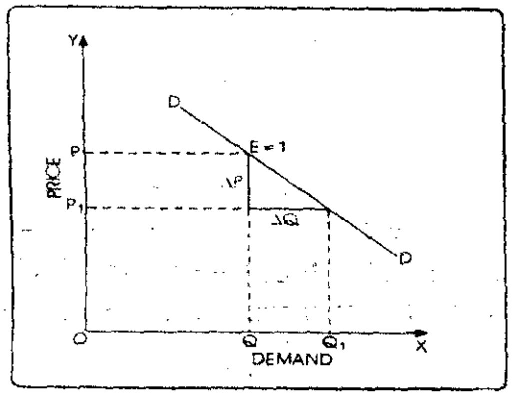

चित्र 4

चित्र 4 में दर्शाया गया कि जब कीमत OP होती है तो मांगी गई मात्रा OQ होती है तथा जब कीमत गिर कर OP_1 होती

है तो मांग उसी अनुपात से बढ़कर OQ_1 हो जाती है। यहां $\Delta P = \Delta Q$ है। सामान्यतः आरामदायक (Comforts) या सुविधाजनक वस्तुओं की मांग आनुपातिक लोचदार होती है। जैसे पंखे स्कूटर आदि की मांग।

4. **अधिक लोचदार मांग (More Elastic Demand)**: जब वस्तु की कीमत में थोड़ा सा प्रतिशत परिवर्तन होने पर मांगी गई मात्रा में अपेक्षाकृत प्रतिशत अधिक परिवर्तन हो जाये तो उसको अधिक लोचदार मांग कहते हैं जैसा निम्न चित्र 5 में दर्शाया गया है :

   इस चित्र में OP कीमत पर मांग OQ है तथा कीमत गिरने पर मांग OQ_1 हो जाती है। मांग मे परिवर्तन कीमत की अपेक्षा अधिक ($OQ_1 > PP_1$) है तथा यह अधिकता प्रतिशत के रूप में भी बनी रहती है अतः यह अधिक लोचशील मांग कहलाती है।

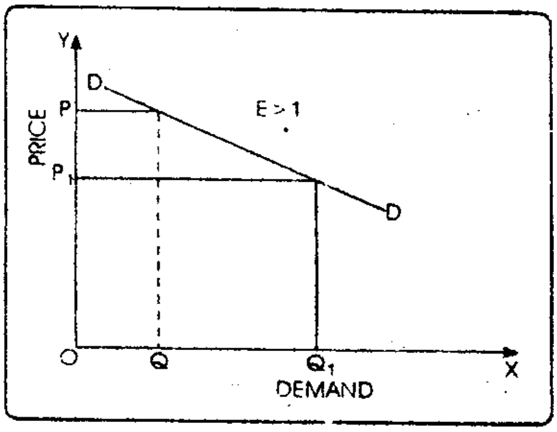

चित्र 5

साधारणतः विलासिता की वस्तुओं (Luxury Goods) की मांग अधिक लोचशील होती है। जैस कार, वातानुकूल मशीने आदि।

5. **कम लोचदार मांग (Less Elastic Demand)**: जब कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप मांगी गई मात्रा में अपेक्षाकृत कम परिवर्तन होता हो तो इसको कम लोचशील मांग कहा जाता है जैसा कि निम्न चित्र 6 में दर्शाया गया है:

   चित्र 6 से स्पष्ट है कि OP कीमत पर मांगी गई मात्रा OQ है तथा कीमत कम होकर ज्यों OP_1 हो जाती है तो मांग बढ़कर OQ_1 हो जाती है। कीमत में कमी की तुलना में मांग में वृद्धि कम ($OQ_1 < PP_1$) है। इसलिए इसको कम लोचदार मांग (Less Elastic Demand) कहा जायेगा। इस प्रकार की मांग की लोचशीलता साधारणतः अनिवार्य वस्तुओं में पाई जाती है। जैसे कुर्सी, अनाज, दवाईयां आदि।

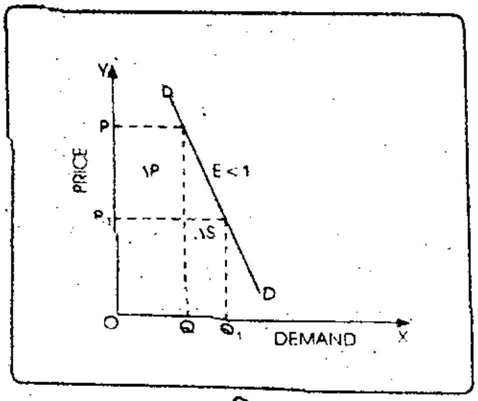

चित्र 6

निम्नचित्र 7 की सहायता से उपरोक्त पाचों श्रेणियों को एक ही र दर्शाया जा सकता है :

D मांग वक्र पर मांग की मूल्य सापेक्षता पूर्ण लोचदार ($e = \infty$) है।

D' मांग वक्र पर मांग की लोचशीलता पूर्णतः बेलोच ($e = 0$) है।

D_2 मांग वक्र पर मांग की मूल्य सापेक्षता इकाई के समान या आनुपातिक है।

D_3 मांग वक्र पर यह इकाई से अधिक ($e>1$) है। तथा Du मांग वक्र पर मांग सापेक्षता कम लोचदार ($e<1$) है।

एक अन्य विधि द्वारा भी मांग की मूल्य सापेक्षता को इन पांचों श्रेणियों को एक ही र दर्शाया जा सकता है। इतना ही नहीं इनको एक ही मांग वक्र पर भी दर्शाया जा सकता है जैसा कि निम्न चि प्रकट होता है :

चित्र 7 से स्पष्ट हो रहा है कि मांग वक्र के DA भाग पर मांग पूर्णतः लोचदार है।

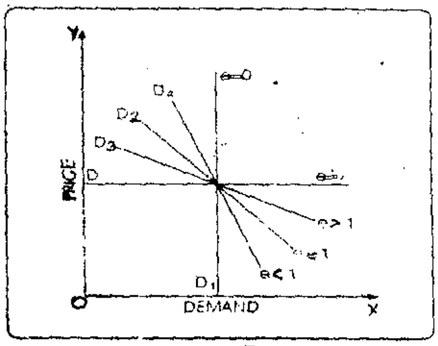

चित्र 7

AB भाग पर यह अधिक लोचशील ($e>1$) है।

BC भाग पर यह इकाई के समान या आनुपातिक ($e=1$) है।

CE भाग पर यह इकाई से कम या कम लोचशील ($e<1$) है।

ED_1 भाग पर मांग की मूल्य सापेक्षता पूर्णतः बेलोच ($e=0$) है।

मांग की मूल्य सापेक्षता या लोच को प्रभावित या निर्धारित करने वाले तत्व
(Factors Affecting or Determining Price Elasticity of Demand)

मांग की कीमत लोच या मूल्य सापेक्षता कम है या अधिक यह अनेक तत्त्वों (Factorics) पर निर्भर करता है। मांग की लोच को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्त्व निम्नलिखित हैं :

1. **वस्तु की प्रकृति (Natute of the commodity)**: किसी वस्तु की प्रकृति भी उसकी मांग की लोच का कम या अधिक होना निर्धारित करती है। अनिवार्य वस्तुओं जैसे अनाज, दवाईयां आदि की मांग कम लोचदार होती है क्योंकि इनकी कीमतों मे परिवर्तन मांग को कम बदलता है। आरामदायक वस्तुओं जैसे कुर्सी, मेज आदि की मांग आनुपातिक या इकाई के समान लोचदार होती है। यदि वस्तुएं विलासिता की वस्तुएं हैं जैसे कार, टी. वी. आदि तो इनकी कीमतों में जरा सा परिवर्तन इनकी मांग को अधिक बदल देता है। इसलिए इन वस्तुओं की मांग अधिक लोचदार होती है।

2. **प्रतिस्थापन्न वस्तुओं की उपलब्धता (Availability of Substitutes)**: किसी वस्तु की मांग की लोच इस बात पर भी निर्भर करती है। कि इसके प्रतिस्थापन्न पदार्थो की उपलब्धता कितनी है। यदि किसी वस्तु के अधिक प्रतिस्थापन्न पदार्थ बाजार में उपलब्ध हैं तो इस वस्तु की मांग अधिक लोचदार होगी। जैसे यदि चाय की कीमत बढ़ती है तो लोग कॉफी खरीद लेते हैं, इसलिए चाय की मांग अधिक लोचदार होगी। इसके विपरीत यदि किसी वस्तु के प्रतिस्थापन्न पदार्थ उपलब्ध नहीं हैं जैसे नमक, दवाईयां आदि, इनकी मांग बेलोचदार या कम लोचदार होगी।

3. **वस्तु के उपयोगों की संख्या (Number of uses of a commodity)**: मांग का कम या अधिक लोचदार होना किसी वस्तु के किये गये उपयोगों की संख्या पर भी निर्भर करता है। यदि किसी वस्तु का एक ही प्रयोग किया जाता है तो उसकी कीमत में परिवर्तन होने से उस की मांग में विशेष परिवर्तन नहीं होगा। इसके विपरीत यदि किसी वस्तु के अनेक

उपयोग किये जाते हैं, जैसे कोयले का उपयोग भोजन पकाने, रेल के ईजन में ईंधन के रूप में उपयोग, ऊर्जा के लिए फैक्टरियों में उपयोग, सर्दियों में अंगीठी जलाने आदि के लिये उपयोग किया जाता है तो ऐसी वस्तु की मांग की कीमत बढ़ने से इसको कम उपयोगों में प्रयोग किया जाने लगता है तथा मांग काफी कम हो जाती है तथा कीमत कम होने से ऐसी वस्तु की मांग काफी बढ़ जाती है। अतः यदि किसी वस्तु के अनेक उपयोग होते हैं तो वस्तु की मांग की लोच अधिक होती है तथा वस्तु के कम उपयोग होने पर मांग की लोच कम होती है।

4. **टिकाऊ वस्तुएं (Durable Goods)**: टिकाऊ वस्तुएँ जैसे कार, स्कूटर, सोफा आदि की मांग कम लोचशील होती है क्योंकि लोग इनकी एक–एक इकाई ही खरीदते हैं तथा इनकी कीमत कम होने पर अपनी मांग में वृद्धि नहीं करते। इसलिए टिकाऊ वस्तुओं की मांग की लोच कम तथा नाशवान वस्तुओं की अधिक होती है।

5. **उपभोग का स्थान (Postponement of the Use)**: जिन वस्तुओं के उपयोग को कुछ समय के लिए स्थगित किया जा सकता है तो ऐसी वस्तुओं की मांग अधिक लोचदार होती है। स्कूटर, कपड़े, धोने की मशीन, आटा पीसने की मशीन आदि की मांग को कुछ समय के लिए स्थगित किया जा सकता है। इन वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि होने से उपभोक्ता कुछ समय के लिए इनकी मांग स्थगित कर देते हैं तथा इनकी मांग गिर जाती है। अतः ऐसी वस्तुओं की मांग अधिक लोचदार होती है। इसके विपरीत जिन वस्तुओं के उपयोग का स्थगन नहीं किया जा सकता उनकी बेलोच या कम लोचदार होती है।

6. **कीमत का स्तर (Price Level)**: मांग की लोचशीलता वस्तुओं की कीमतों के स्तर पर भी निर्भर करती है। यदि किसी वस्तु की कीमत काफी ऊंची या अधिक है तो मांग अधिक लोचशील होगी जैसा कि चित्र 8 में मांग वक्र का AB भाग प्रकट करता है। इसके विपरीत यदि कीमत का स्तर काफी कम है तो मांग की लोच भी कम होगी जैसे कि इस चित्र में मांग वक्र का CE भाग प्रकट करता है।

7. **आय का स्तर (Income Level)**: आय का स्तर भी मांग की लोच को प्रभावित करता है। जिन लोगों की आय का स्तर बहुत अधिक है या बहुत कम है, ऐसे लोगों द्वारा खरीदी जाने वाले वस्तुओं की मांग बहुत कम लोचदार होती है। अधिक आय वाले व्यक्ति कीमत की परवाह नहीं करते तथा जितनी मात्रा में वस्तु उन्हें चाहिए वे खरीदते हैं जिनकी मांग भी कम लोचदार होती है। इसके विपरीत मध्यम वर्ग के लोगों द्वारा खरीदी जाने वाली वस्तुओं की मांग अधिक लोचदार होती है।

8. **धन का वितरण (Distribution of wealth)**: यदि किसी देश में धन का वितरण समान है तो मांग की लोच अधिक होगी क्योंकि ऐसे देश में मध्यम आय वाले लोगों की संख्या अधिक होगी। इन लोगों द्वारा की जाने वाली वस्तुओं की मांग सामान्यतः अधिक लोचदार होती है। इसके विपरीत यदि धन का असमान बंटवारा है तो ऐसे में कम आय वाले तथा अधिक आय वाले लोगों की संख्या अधिक होती है। इन लोगों की मांग की लोच कम होती है तथा ऐसे देशों में मांग की लोच प्रायः कम होगी।

9. **वस्तु पर किए गये व्यय का आय से अनुपात (Proportion of Income Spent on the Commodity)**: लोग अपनी आय का कितना भाग या अनुपात किसी वस्तु पर खर्च करते हैं यह तत्त्व भी उनकी मांग की लोच को प्रभावित करता है। जिन वस्तुओं पर उपभोक्ता अपनी आय का बहुत छोटा भाग खर्च करते हैं, जैसे साबुन, मंजन, ब्लेड आदि उन वस्तुओं की मांग बेलोच या कम लोचदार होती है। क्योंकि इन वस्तुओं की कीमतो में परिवर्तन होने से उन वस्तुओं पर आय का जो अनुपात या भाग खर्च होता है उसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता है, इसलिए उपभोक्ता ऐसी वस्तुओं की कीमत में परिवर्तन होने से वह उनकी मांग नहीं बदलता या बहुत कम बदलता है तथा इनकी मांग बेलोच या कम लोचदार होती है। इसके विपरीत उपभोक्ता जिन वस्तुओं पर अपनी आय का बड़ा भाग या अनुपात खर्च करता है, जैसे दूध, कपड़े, पर खर्च आदि, तो इन वस्तुओं की मांग की लोच अधिक होती है क्योंकि इनकी कीमत में परिवर्तन होने पर उनभोक्ता को मांग में परिवर्तन करना पड़ता है।

10. **आदतें (Habits)**: जिन वस्तुओं के उपभोग की उपभोक्ता की आदत बन चुकी है, जैसे सिगरेट, चाय, शराब, आदि, तो इन की मांग बेलोचदार या कम लोचदार होती है। इन वस्तुओं की कीमतों में कितनी ही वृद्धि होने पर भी उपभोक्ता आदत अनुसार इन वस्तुओं का उपयोग अवश्य करता है तथा मांग में कोई विशेष कमी नहीं होती है। इसके विपरीत

इन वस्तुओं की कीमतों में कमी होने पर भी इनकी मांग बहुत अधिक नहीं बढ़ती क्योंकि उपभोक्ता अपनी आदत अनुसार ही वस्तुओं का उपभोग करता है।

11. **समय अवधि (Time Period)**: समय अवधि भी मांग को प्रभावित करती है। दीर्घकाल में प्रायः मांग अधिक लोचदार तथा अल्पकाल में मांग कम लोचदार होती है। इसका कारण यह है कि समय अवधि जितनी लम्बी होगी उतने ही अधिक वस्तु के प्रतिस्थापन्न पदार्थ उपलब्ध होंगे तथा वस्तु की मांग की लोच भी उतनी ही अधिक होगी। इसके विपरीत समय अवधि जितनी कम होगी उतने ही वस्तु के प्रतिस्थापन्न पदार्थ कम उपलब्ध होंगे तथा मांग की लोच कम होगी। इसका कारण यह है कि वस्तु के प्रतिस्थापन्न पदार्थ उत्पादित होने में समय लगता है।

12. **संयुक्त मांग (Joint Demand)**: संयुक्त मांग वाली वस्तुओं की मांग की लोच परस्पर निर्भर करती है, जैसे पेन और स्याही, पैट्रोल और स्कूटर आदि की मांग। जैसे यदि पेट्रोल की मांग अधिक लोचदार है तो स्कूटर की मांग भी अधिक लोचदार होगी।

13. **व्यक्ति एवं बाजार मांग वक्र (Individual and Market Demand)**: यह देखा गया है कि व्यक्तिगत मांग वक्र की तुलना में बाजार मांग वक्र अधिक मूल्य सापेक्ष होती है। इसका कारण यह कि बाजार मांग वक्र में ऐसे लोग भी शामिल होते हैं जो वस्तु तभी खरीदते हैं जब वस्तु की कीमत कम हो जाती है।

14. **कीमत में परिवर्तन की आशा (Expectation of Change in Price)**: कीमत में परिवर्तन से मांग में कितना परिवर्तन होता है यह इस बात पर निर्भर करता है कि भविष्य में वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने की आशा क्या है। यदि किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि हुई है तो उसकी मांग में कमी होना इस बात पर निर्भर करेगा कि भविष्य में उस वस्तु की कीमत और बढ़ने की आशा है या कम होने की आशा है। यदि भविष्य में इस वस्तु की कीमत और बढ़ने की आशा है तो वर्तमान में हुई कीमत वृद्धि से मांग कम नहीं होगी या मांग में गिरावट बहुत कम होगी अर्थात वस्तु की मांग बेलोच या कम लोचदार होगी। इसके विपरीत यदि भविष्य में कीमत गिरने की आशा या सम्भावना है तो वर्तमान की कीमत बढ़ने पर मांग बहुत अधिक कम हो जायेगी तथा मांग की लोचशीलता बढ़ जायेगी।

मांग की मूल्य सापेक्षता का माप
(Measurement of Price Elasticity of Demand)

मांग की मूल्य सापेक्षता का माप उत्पादकों, विभिन्न बाजारों, व्यापारियों, सरकार आदि के लिए नीति सम्बन्धी निर्णय लेने में अति महत्त्वपूर्ण है। मांग की मूल्य सापेक्षता के माप में हम यह माप करते हैं कि मांग की कीमत लोच या मूल्य सापेक्षता (Price Elasticity of Demand) इकाई से अधिक ($e>1$) है या इकाई के बराबर ($e=1$) है? या इकाई से कम ($e<1$) है। मांग की मूल्य सापेक्षता या मांग की कीमत लोच को मापने की निम्नलिखित पांच मुख्य विधियां है:

1. कुल व्यय विधि (Total Expenditure or Outlay Method)
2. प्रतिशत विधि (Percentage Method)
3. बिन्दु विधि (Point Method)
4. चाप विधि (Arc Method)
5. आय विधि (Revenue Method)

1. **कुल व्यय विधि (Total Expenditure Method)**: मांग की मूल्य सापेक्षता को मापने की इस महत्त्वपूर्ण विधि का प्रतिपादन डॉ. मार्शल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Principles of Economics' में किया था। इस विधि के अन्तर्गत मांग मूल्य सापेक्षता का माप वस्तु की कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप वस्तु की खरीद पर किए गए कुल व्यय (Total Expenditure) में जो परिवर्तन होता है उसके आधार पर किया जाता है। इस विधि के अनुसार मांग की मूल्य सापेक्षत के माप को निम्न तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है:

   (i) **इकाई से अधिक लोच (Greater than Unitray Elastic)**: जब कीमत के बढ़ने से वस्तु पर किया गया कुल

खर्च घट जाए तथा कीमत के घटने से वस्तु पर किया गया कुल खर्च पहले से बढ़ जाए तो कीमत मांग की लोच इकाई से अधिक (e>1) होती है।

(ii) **इकाई के बराबर लोच (Unitary Elastic):** जब कीमत के बढ़ने या घटने से वस्तु पर किया गया कुल व्यय स्थिर रहता है तो मांग की कीमत लोच इकाई के समान (e=1) होती है।

(iii) **इकाई से कम लोच (Less than Unitary Elastic):** जब वस्तु की कीमत बढ़ने से वस्तु पर किया गया खर्च पहले से बढ़ जाए और कीमत के घटने से कुल व्यय पहले से घट जाए तो मांग की कीमत लोच इकाई से कम (e<1) होती है।

तालिका 9.1

कुल व्यय विधि के द्वारा मांग की मूल्य-सापेक्षता का माप

वस्तु की कीमत (P)	मांग (D)	कुल खर्च (TE)	विवरण (Explanation)	मांग की मूल्य सापेक्षता
10	2	20	कीमत गिरने से कुल व्यय बढ़ रहा है।	
9	4	36	or	e > 1
8	6	48	कीमत बढ़ने से कुल व्यय गिर रहा है।	
7	8	56		
6	10	60	कीमत में परिवर्तन से कुल व्यय स्थिर है।	
5	12	60		e = 1
4	14	56	कीमत गिरने से कुल व्यय गिर रहा है।	
2	16	32	or	e < 1
1	18	18	कीमत बढ़ने से कुल व्यय बढ़ रहा है।	

तालिका 9.1 से स्पष्ट है कि जब किसी वस्तु की कीमत 10 से कम होकर 9, 8, 7 हो जाती है तो कुल व्यय 20 से बढ़कर क्रमशः 36, 48, 56 हो जाता है। इसका आशय यह कि कीमत गिरने पर वस्तु की मांग अपेक्षाकृत अधिक बढ़ी है जिससे कुल व्यय बढ़ता जाता है। अर्थात् मांग अधिक कीमत लोच (e>1) दूसरे शब्दों में यहाँ कीमत बढ़ने पर कुल व्यय घट रहा है, यह भी इसी माप का द्योतक है।

इसके बाद ज्यों कीमत 6 से गिर कर 5 होती है तो कुल व्यय समान बना रहता है। अर्थात जिस अनुपात से कीमत कम हुई है, मांग भी उसी अनुपात से बढ़ी है। इस अवस्था में मांग की मूल्य सापेक्षता का माप इकाई के समान (e=1) होगा। कीमत 5 से बढ़ कर 6 होती है तो भी कुल व्यय समान बना रहता है।

अन्त में ज्यों कीमत 4 से गिर कर 2, 1 होती है तो कुल व्यय 56 से गिर कर क्रमशः 32, 18 होता है। अर्थात् कीमत गिरने पर मांग कम बढ़ी है, इसी कारण कीमत गिरने पर कुल व्यय कम होता है। यहाँ मांग की मूल्य सापेक्षता इकाई से कम (e < 1) है। ध्यान रहे यहाँ कीमत बढ़ने पर कुल व्यय बढ़ रहा है।

कुल व्यय विधि को निम्न चित्र 8 द्वारा व्यक्त किया जा सकता है:

चित्र में TE कुल व्यय वक्र है। चित्र के OX- अक्ष पर वस्तु की खरीद पर किया गया कुल व्यय तथा OY- अक्ष पर कीमत मापी गई है। कुल व्यय वक्र (Total Expenditure Curve) का AB भाग इकाई से अधिक लोचशील मांग (e < 1) को प्रकट करता है BC भाग इकाई के समान लोचशील मांग (e > 1) को प्रकट करता है।

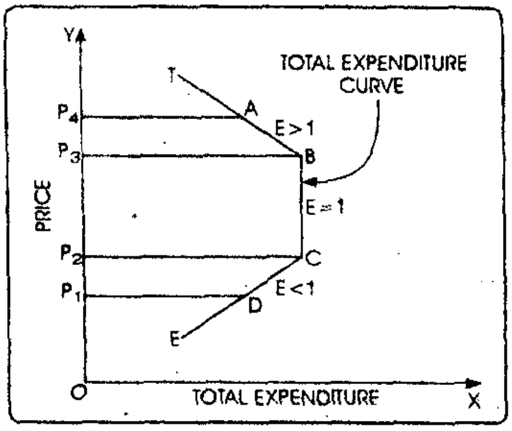

चित्र 8

दोष (Defect):–इस विधि का मुख्य दोष यह है कि इसके द्वारा हम मोटे तौर पर तो मांग की कीमत लोच को माप सकते हैं कि यह इकाई से अधिक है, इकाई के बराबर है या इकाई से कम है। परन्तु यह कितना कम या कितना अधिक है इसका माप सही नहीं होता है। उदाहरणतः इकाई से अधिक तो 1.1 भी है तथा 7 भी है। अतः इस विधि द्वारा मांग की मूल्य सापेक्षता का निश्चित संख्या में माप नहीं हो सकता है।

2. प्रतिशत अनुपातिक विधि
(Percentage or Proportionate Method)
या
फलक्स विधि
(Flux Method)

प्रो. फलक्स (Prof. Flux) ने मांग की कीमत लोच को मापने की प्रतिशत या अनुपातिक विधि प्रस्तुत की थी इसीलिए इस विधि को फलक्स विधि (Flux Method) भी कहा जाता है। इस विधि के अनुसार मांग की कीमत लोच मांग में प्रतिशत परिवर्तन का कीमत में प्रतिशत परिवर्तन से अनुपात है। अन्य शब्दों में मांग की मूल्य सापेक्षता या कीमत लोच का माप मांग में होने वाले % परिवर्तन को कीमत में होने वाले % परिवर्तन से भाग देकर ज्ञात किया जाता है। इसके लिए फलक्स ने निम्नलिखित सूत्र प्रस्तुत किया है:

$$e = \frac{\text{मांग में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

सरलता के लिए % परिवर्तनों के स्थान पर आनुपातिक परिवर्तनों (Proportionate changes) का प्रयोग करके मांग की मूल्य सापेक्षता को मापा जा सकता है। ऐसा करने से सूत्र में कोई अन्तर नहीं आता। अतः आनुपातिक विधि के सूत्र को निम्नलिखित प्रकार से लिखा जा सकता है:

$$e = \frac{\text{मांग में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

इस सूत्र की व्याख्या निम्न प्रकार से की जा सकती है:

मांग में आनुपातिक परिवर्तन $= \frac{\text{मांग में परिवर्तन } (\Delta Q)}{\text{आरम्भिक मांग } (Q)}$

कीमत में आनुपातिक परिवर्तन $= \frac{\text{कीमत में परिवर्तन } (\Delta P)}{\text{आरम्भिक कीमत } (P)}$

सांकेतिक तौर पर : $e = \frac{\frac{\Delta Q}{Q}}{\frac{\Delta P}{P}} = \frac{\Delta Q}{Q} \times \frac{P}{\Delta P}$ or $\frac{\Delta Q}{\Delta P} \times \frac{P}{Q}$

व्याख्या (Explanation) – इस सूत्र की व्याख्या एक उदाहरण द्वारा की जा सकती है:

मान लो टी. वी. की कीमत 10,000 रुपये हैं तो भारत में 1,00,000 (एक लाख) टी. वी. की मांग है। अब यदि टी. वी. की कीमत बढ़कर 15,000 रुपये हो जाती है तो मांग घट 50,000 ही रह जाती है। टी. वी. की मांग की लोच को निम्न प्रकार से ज्ञात किया जा सकता है :

टी. वी. की कीमत	मांग
10,000	1,00000
15,000	50,000

यहां $P = 10{,}000, \quad Q = 1,00{,}000$

$\Delta P = 5000, \quad \Delta Q = 50{,}000$

$$e = \frac{50{,}000}{5{,}000} \times \frac{10{,}000}{1{,}00{,}000} = \frac{1}{1} = -1$$

अत: मांग की मूल्य सापेक्षत –1 है। जैसा कि हम जानते हैं कि घटा का चिन्ह (–) हम छोड़ देते हैं क्यों कि यह तो केवल कीमत और मांग में विपरीत सम्बन्ध का प्रतीक है। अत: मांग की लोच इकाई के बराबर है।

प्राय: इस विधि का प्रयोग उस समय किया जाता है जब कीमत तथा मांग में बहुत कम परिवर्तन होता है। परन्तु क्या प्रतिशत विधि का परिणाम कुल व्यय विधि के परिणाम के बराबर है?

क्या प्रतिशत विधि और कुल व्यय द्वारा माप बराबर है?

(Is the measurement of e is the same when counted with Percentage and Total Expenditure Method?)

इस प्रश्न का हल निम्न उदाहरण की सहायता से किया जा सकता है :

Price	Demand
5	4
4	5

A कुल व्यय विधि द्वारा :

P	D	Total Expenditure	e
5	4	20	e = 1
4	5	20	

अतः मांग की कीमत लोच इकाई के समान है।

(B) आनुपातिक विधि द्वारा :

$$e = \frac{\frac{\Delta Q}{Q}}{\frac{\Delta P}{P}} = \frac{\frac{1}{4}}{\frac{1}{5}} = \frac{1}{4} \times \frac{5}{1} = \frac{5}{4} = 1.25$$

इसका अर्थ है कि यदि कीमत में एक प्रतिशत परिवर्तन होता है तो मांग में 1.25% परिवर्तन होगा। अतः मांग की मूल्य सापेक्षता 1.25 है जो कि कुल व्यय विधि द्वारा प्राप्त इकाई से अधिक है इसलिए स्पष्ट है कि इन दोनों विधियों के मापों में अन्तर है।

इस समस्या के समाधान के लिए प्रो० बिलास० (Prof. Bilas) और ए० सनिडर (A Snider) ने सूत्र में संशोधन किया है :

संशोधित फार्मूला (Revised Formula)– प्रो० बिलास और सनिडर ने सुझाव दिया कि प्रारम्भिक (Original) कीमत और मांग के स्थान पर मांग व कीमत के न्यूनतम मूल्यों (Minimum or lower values of Price and Demand) का प्रयोग करना चाहिए। ऐसा करने से कुल व्यय विधि तथा आनुपातिक विधि के माप बराबर हो सकेंगे। इस संशोधन को निम्न प्रकार से प्रकट किया जा सकता है :

$$e = \frac{\frac{\text{Change in Demand}}{\text{Minimum Value of D}}}{\frac{\text{Change in Price}}{\text{Minimum value of Price}}} = \frac{\frac{\Delta Q}{QM}}{\frac{\Delta P}{PM}}$$

उपरोक्त उदाहरण को दोहराते हुए :

Price	Demand
5	4
4	5

इस उदाहरण में $\Delta P = 1, PM = 4, \Delta Q = 1, QM = 4$

अतः $$e = \frac{\frac{1}{4}}{\frac{1}{4}} = \frac{1}{4} \times \frac{4}{1} = 1$$

इस प्रकार आनुपातिक फार्मूले के संशोधित फार्मूले द्वारा मांग की मूल्य सापेक्षता का माप इकाई के बराबर प्राप्त होता है जो कुल व्यय विधि के परिणाम के समान है।

3. **बिन्दु विधि** (Point Method)– हमें ज्ञात हैं कि मांग वक्र मांग बिन्दुओं से बना है। यदि हम मांग वक्र के किसी एक बिन्दु

पर मांग की मूल्य सापेक्षता का माप करना चाहें तो इसके लिए बिन्दु विधि का प्रयोग किया जाता है। मांग वक्र के भिन्न–भिन्न बिन्दुओं पर मांग की कीमत लोच भी भिन्न–भिन्न होती है। जब कीमत और मांग में बहुत सूक्ष्म परिवर्तन हो तो मांग की लोच को मापने के लिए बिन्दु विधि का ही प्रयोग किया जाता है। बिन्दु विधि (Point Method) को रेखागणितीय विधि (Geometrical Method) भी कहा जाता है। बिन्दु विधि से मांग की मूल्य सापेक्षता का माप निम्न सूत्र के आधार पर किया जाता है :

$$e = \frac{\text{मांग वक्र का बिन्दु से निचला भाग}}{\text{मांग वक्र का बिन्दु से ऊपरी भाग}}$$

$$e = \frac{\text{Lower Portion of Demand curve}}{\text{Upper Portion of Demand curve}}$$

सामान्यतः मांग वक्र या तो एक सीधी रेखा होती है या यह एक वक्रीय रेखा होती है। उपरोक्त सूत्र के आधार पर इन दोनों प्रकार के मांग वक्रों पर मांग की मूल्य सापेक्षा का माप निम्न प्रकार से ज्ञात किया जा सकता है:

(A) **सीधी रेखीय मांग वक्र (Linear Demand Curve)**: यदि मांग वक्र की आकृति एक सीधी रेखा के रूप में हो तो उसके किसी भी बिन्दु पर मांग की मूल्य सापेक्षता निम्न चित्र 10 की सहायता से ज्ञात की जा सकती है। चित्र 9 में AB रेखा एक सीधी मांग वक्र है।

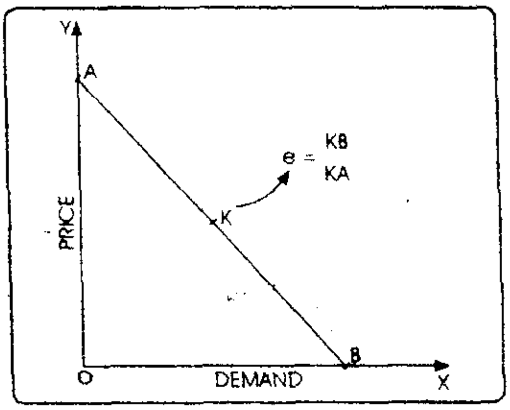

चित्र 9

मान लो हम इस मांग वक्र के K बिन्दु पर मांग की मूल्य सापेक्षता या कीमत लोच ज्ञात करना चाहते हैं। सूत्र अनुसार K बिन्दु से मांग वक्र के निचले हिस्से (KB) को K बिन्दु से ऊपर वाले हिस्से (KA) से भाग देकर K बिन्दु की मांग की कीमत लोच ज्ञात की जा सकती है। चित्र में K बिन्दु पर मांग की लोच :

$$e = \frac{KB}{KA}$$

इस सूत्र को गणितीय विधि द्वारा निम्न चित्र की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है :

चित्र 10 में K बिन्दु पर सूत्र अनुसार मांग की कीमत लोच निम्न प्रकार ज्ञात की जाती है :

$$e \text{ at } K \; \frac{\text{Lower Portion}}{\text{Upper Portion}}$$

इस सूत्र को गणितीय विधि में रूपान्तरित निम्न प्रकार किया जा सकता है :

आनुपातिक विधि अनुसार :

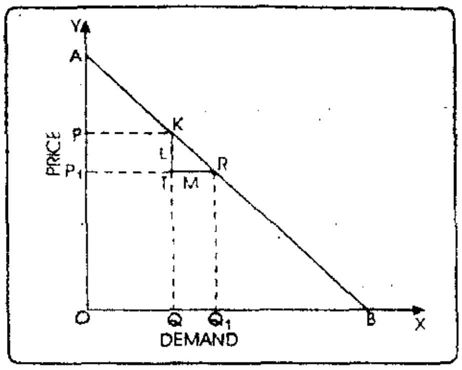

चित्र 10

$$e = \frac{\Delta Q}{Q} \times \frac{P}{\Delta P} \quad \text{or} \quad \frac{\Delta Q}{\Delta P} \times \frac{P}{Q} \qquad \text{.... (i)}$$

चित्र 10 में आनुपातिक विधि को लागू करने पर

$d \ \Delta Q = M, \Delta P = L, P = QK, Q = OQ$

$$\text{अतः } e = \frac{M}{L} \times \frac{QK}{OQ} \qquad \text{......(ii)}$$

क्योंकि Δ KTR तथा ΔKQB समरूप त्रिभुज हैं, इसलिए इनकी भुजाओं का अनुपात समरूप होगा:

$$\frac{M}{L} = \frac{QB}{QK} \qquad \text{....(iii)}$$

$\frac{M}{L}$ के स्थान पर समीकरण (ii) में $\frac{QB}{QK}$ लिखने से

$$\text{अतः } e = \frac{QB}{QK} \times \frac{QK}{OK} = \frac{QB}{OK}$$

क्योंकि ΔKQB तथा ΔAPK समरूप त्रिभुज हैं इसलिए इनकी भुजाओं का अनुपात समान होगा :

$$\therefore \ e \text{ at } k = \frac{QB}{OQ} = \frac{QB}{PK} = \frac{KQ}{AP} = \frac{KB}{KA}$$

$$\text{अतः } = e \text{ at } k = \frac{\text{KB (Lower Portion)}}{\text{KA (Upper Portion)}}$$

अब हम मांग वक्र के विभिन्न बिन्दुओं पर मांग की कीमत लोच माप सकते हैं जैसा कि चित्र 11 की सहायता से प्रकट किया गया है:

M बिन्दु पर $e = \frac{MB}{MA} = 1$ क्योंकि MB = MA, $\therefore e = 1$

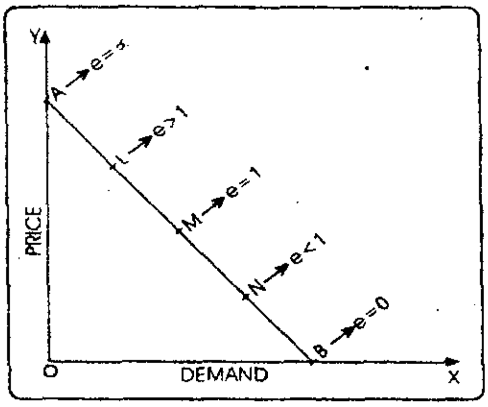

चित्र 11

L बिन्दु पर $e = \frac{LB}{LA}$ LB भाग LA से बड़ा है

$\therefore$ e at L > 1

A बिन्दु पद $e = \infty$

N बिन्दु पद $e < 1$

B बिन्दु पद $e = 0$ है।

(B) **वक्रीय मांग रेखा (Non-Linear Demand Curve)**: जब मांग वक्र एक वक्रीय रेखा हो तो इस मांग वक्र के किसी बिन्दु पर मांग की मूल्य अपेक्षता उस बिन्दु से एक स्पर्श रेखा (Tangent) खींच कर ज्ञात की जा सकती है। इसका वर्णन रेखा चित्र 12 की सहायता से किया गया है।

रेखा चित्र 12 में DD वक्रीय मांग वक्र है। मान लो इसके K बिन्दु पर मांग की मूल्य सापेक्षता ज्ञात करनी है। इसके लिए K बिन्दु से एक स्पर्श रेखा AB निकाली गई है। अब AB रेखा के निचले हिस्से को ऊपरी हिस्से से भाग देने पर जो भजनफल आयेगा वह K बिन्दु पर मांग की मूल्य आपेक्षता का माप होगा।

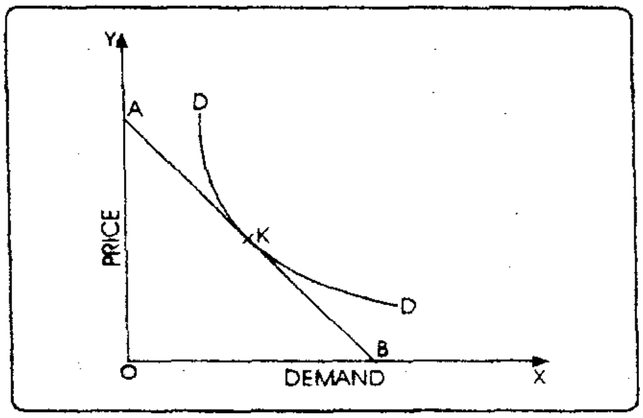

चित्र 12

अतः e at $k = \frac{KB}{KA} > 1$

or $e > 1$ होगी।

इसी अनुसार मांग वक्र के अन्य बिन्दुओं की मांग की मूल्य सापेक्षता या मांग की कीमत लोच मापी जा सकती

है।

4. **चाप विधि (Arc Method)**: यदि कीमत और मांग में परिवर्तन अधिक होता है तो आनुपातिक विधि तथा बिन्दु विधि से मांग की कीमत लोच ज्ञात नहीं की जा सकती। ऐसी अवस्था में मांग की कीमत लोच मापने के लिए चाप विधि का प्रयोग किया जाता है। मांग वक्र पर कीमत तथा मांग में ज्यादा परिवर्तन के कारण दो बिन्दुओं के बीच जो चाप बनता है उसकी कीमत लोच का माप चाप विधी से किया जाता है। लेफटविच के अनुसार, "मांग वक्र पर जब दो बिन्दुओं के बीच कीमत लोच मापी जाती है तो वह चाप कीमत लोच कहलाती है।" (When elasticity is computed between two separate points on a demand curve the concept is called Arc Elasticity–Leftwitch)

इसकी व्याख्या रेखा चित्र 13 के माध्यम से ही गई है:

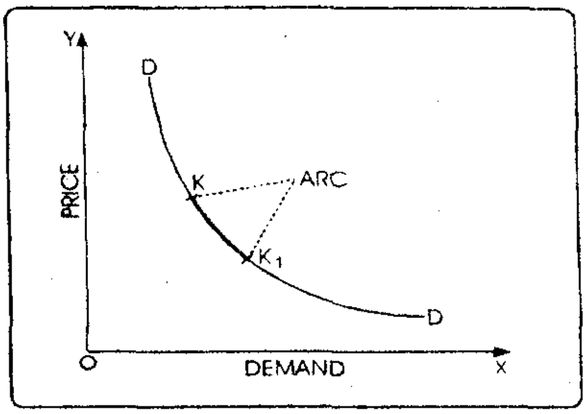

चित्र 13

इस चित्र *DD* मांग *वक्र* पर K *तथा* K_1 दो बिन्दु दर्शाए गए हैं। K *तथा* K_1 के बीच जो चाप बनती है उसकी कीमत लोच को चाप कीमत लोच कहते हैं। चाप मूल्य सापेक्षता को मापने के लिए निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया जाता है :

$$e = \frac{\frac{Q_1 - Q_2}{Q_1 + Q_2}}{\frac{P_1 - P_2}{P_1 + P_2}} = \frac{Q_1 - Q_2}{Q_1 + Q_2} \times \frac{P_1 - P_2}{P_1 + P_2}$$

Q_1 प्रारम्भिक मांग P_1 = प्रारम्भिक कीमत

Q_2 = नई मांग P_2 = नई कीमत।

इस सूत्र को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है :

माल लो X वस्तु की प्रारम्भिक कीमत (P_1) 10 रू० है तथा इसकी प्रारम्भिक मांग (Q_1) 5 इकाई है। अब यदि कीमत कम होकर (P_2) = 4 रू० हो जाती है तथा मांग बढ़ कर (Q_2) = 20 इकाई हो जाती है तो इस अवस्था में चाप मूल्य सापेक्षता निम्न प्रकार ज्ञात की जा सकती है :

उदाहरण अनुसार : $P_1 = 10, P_2 = 4, Q_1 = 5, Q_2 = 20$

$$e = \frac{Q_1 - Q_2}{Q_1 + Q_2} \times \frac{P_1 + P_2}{P_1 - P_2} = \frac{5-20}{5+20} \times \frac{10+4}{10-4}$$

$$e = \frac{-15}{25} \times \frac{14}{6} = -\frac{210}{150} = -1.4$$

अतः मांग की चाप मूल्य सापेक्षता इकाई से अधिक (e > 1) है।

आय विधि (Revenue Method)—आय विधि से भी मांग की कीमत लोच ज्ञात की जा सकती है। आय क्या है? एक फर्म या उत्पादक अपने उत्पादन को बेच कर जो विक्रय मूल्य प्राप्त करता है उसको फर्म की आय (Revenue) कहते हैं। फर्म की आय सम्बन्धी तीन महत्त्वपूर्ण धारणाएँ है : (i) कुल आय (Total Revenue), (ii) सीमान्त आय (Marginal Revenue), तथा (iii) औसत आय (Average Revenue)।

एक फर्म मान लो किसी वस्तु की 10 इकाइयां बेचकर कुल मूल्य 1000 रूपये प्राप्त करती है तो 1000 रूपये फर्म की कुल आय (TR) कही जायेगी। कुल आय को बेची गई कुल इकाइयों से भाग देने पर औसत आय (AB) प्राप्त होती है। उपरोक्त उदाहरण में 100 रूपये औसत आय है। किसी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई बेचने से कुल आय में जो वृद्धि होती है उसको सीमान्त आय (Marginal Revenue or MR) कहते हैं। जैसे कि यदि उत्पादक 11 वीं इकाई बेचता है तो कुल आय बढ़कर 1020 रूपये हो जाती है तो सीमान्त आय (MR) फर्म को 20 रूपये प्राप्त होगी।

अब मांग की मूल्य सापेक्षता को औसत आय तथा सीमान्त आय पर आधारित निम्न सूत्र मापा जा सकता है :

$$e = \frac{A}{A - M}$$

A = Average Revenue (औसत आय)

M = Marginal Revenue (सीमान्त आय)

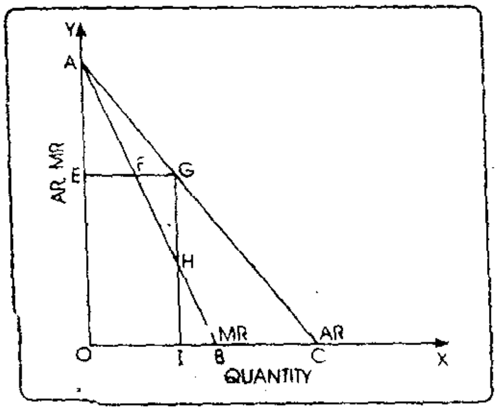

चित्र 14

उपरोक्त सूत्र की व्याख्या रेखा चित्र 14 द्वारा की जा सकती है। चित्र 14 इस चित्र में OX अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा OY अक्ष पर AR तथा MR मापे गये हैं। AB सीमान्त आय तथा AC औसत आय वक्र या मांग वक्र है।

AC मांग वक्र के 6 बिन्दु पर मांग की मूल्य सापेक्षता निम्न प्रकार से मापी जा सकती है :

$$e = \frac{GC}{GA} \quad .....(i)$$

Δ AEG तथा Δ GIC समकोणीय हैं। इस कारण इनकी भुजाओं का अनुपात बराबर होगा।

$$e = \frac{GC}{GH} = \frac{GI}{EA}$$

ΔAEF तथा ΔFGH समरूप त्रिभुज हैं इसलिए GH = EA समीकरण (ii) में EA के स्थान पर GH रखते हुए

$$e = \frac{GI}{GH}$$

क्योंकि GH = GI-IH

$$e = \frac{GI}{GI - IH}$$

हम जानते हैं कि GI = AR तथा IH = MR

$$\text{अतः } e = \frac{GI}{GI - IH} = \frac{AR}{AR - MR} \qquad \frac{\text{औसत आय}}{\text{औसत आय} - \text{सीमान्त आय}}$$

मांग की कीमत लोच का महत्त्व
(Importance of Price Elasticity of Demand)

मांग की लोच का सैद्धान्तिक और व्यवहारिक महत्त्व बहुत अधिक है। प्रमुख महत्त्व निम्नलिखित हैं :

1. **एकाधिकारी बाजार में कीमत निर्धारण (Determination of price under monopoly form of Market)**: एकाधिकारी बाजार के अन्तर्गत वस्तु की कीमत का निर्धारण मांग की कीमत लोच को ध्यान में रख कर किया जाता है। जब बाजार में किसी वस्तु का उत्पादन तथा बिक्री एक ही फर्म के नियन्त्रण में होती है तो उसे एकाधिकारी कहते हैं। यदि उसकी वस्तु की मांग की कीमत लोच कम है तो वह वस्तु की अधिक कीमत रखेगा क्योंकि अधिक कीमत होने पर भी लोग उस वस्तु की मांग नहीं घटाते या बहुत कम घटाते हैं। इसलिए अधिक कीमत निर्धारित करने पर उसकी कुल आय (Total Revenue) बढ़ती है। इसके विपरीत यदि उसकी वस्तु की मांग कुछ अधिक लोचदार है तो वस्तु की कम कीमत रखेगा क्योंकि ऐसा करने से उसकी कुल आय बढ़ती है।
2. **कीमत विभेद (Price Discrimination)**: जब एकाधिकारी अपनी वस्तु को विभिन्न कीमतों पर बेचता है तो उसे कीमत विभेद कहा जाता है। एकाधिकारी ऐसे बाजार या व्यक्ति से अधिक कीमत लेता है जिसकी मांग की कीमत लोच कम होती है। इसके विपरीत वह ऐसे बाजार या व्यक्ति से कम कीमत लेता है जिनकी मांग लोचदार होती है। उदाहरणतः घरों में उपभोग होने वाली बिजली की कीमत अधिक तथा उद्योगों में कम होती है। इसका कारण यही है कि घरों में बिजली की मांग कम कीमत लोचदार है जबकि उद्योगों में यह अधिक लोचदार है। उद्योगों में बिजली के प्रतिस्थापन्न पदार्थ जैसे कोयला, डीजल आदि अधिक होते हैं इसलिए इसकी मांग की लोच उद्योगों में अधिक होती है।
3. **संयुक्त पदार्थो की कीमत निर्धारण (Determination of Joint Products)**: कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं जिनका उत्पादन साथ–साथ होता है जैसे गेहूँ तथा भूसा, रूई तथा बिनौले आदि। परन्तु इन वस्तुओं की कीमतें अलग–अलग होती हैं जैसे रूई की कीमत कुछ तथा बिनौले की कुछ कीमत होती है। जबकि इनकी उत्पादन लागत अलग–अलग मालूम नहीं की जा सकती। इसलिए उत्पादन लागत के आधार पर इन संयुक्त वस्तुओं की कीमतों का निर्धारण नहीं हो सकता। अतः इनकी कीमतें इनकी मांग की कीमत लोच के आधार पर ही निर्धारित की जाती है। जिस वस्तु की मांग की कीमत लोच अधिक होती है उसकी कीमत कम तथा जिसकी मांग की लोच कम होती है उसकी कीमत ज्यादा रखी जाती है।
4. **साधन कीमत निर्धारण में महत्त्व (Importance in the Determination of Factor-Price)**: भूमि, श्रम, पूंजी तथा उद्यमी उत्पादन के चार मुख्य साधन हैं। इन साधनों की कीमत इन के द्वारा प्रदान की गई सेवाओं की कीमत होती है जैसे श्रम की कीमत मजदूरी होती है। इन साधनों की कीमतें इनकी मांग की लोच के आधार पर ही निर्धारित होती है। जिस साधन की मांग की लोच कम होती है उसकी कीमत अधिक होती है। जैसे यदि किसी उद्योग में श्रम की मांग बेलोच है तो श्रमिक ऊँची मजदूरी प्राप्त करेंगे। इसके विपरीत जिन साधनों की मांग की लोच अधिक होती है, अर्थात् साधन

कीमत बढ़ने पर साधन की मांग काफी कम हो जाती है, तो साधन अपनी कीमत कम रखते हैं।

5. **वित्त मन्त्री के लिए महत्त्व (Importance for the Finance Minister)**: कर लगाते समय वित्त–मन्त्री वस्तुओं की मांग की लोच का ध्यान रखता है। जिन वस्तुओं की मांग अधिक लोचशील होती है उन पर वह कम कर लगाता है क्योंकि इन पर अधिक कर लगाने से सरकार की आय कम हो जाती है। सरकार की आय कम होने का कारण यह है कि अधिक लोचदार वस्तु पर अधिक कर लगाने से इन वस्तुओं की कीमतों में उसी अनुसार वृद्धि हो जाती है। जो उनकी मांग को काफी अधिक गिरा देती है। इसलिए सरकार को बिक्री कर भी कम प्राप्त होता है। इसके विपरीत जिन–जिन वस्तुओं की मांग कम लोचदार होती है, उन पर वित्त मन्त्री अधिक कर लगाता है क्योंकि कर लगने से इन वस्तुओं की मांग में गिरावट कम आती है।

6. **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में महत्त्व (Importance in International Trade)**: सरकार वस्तुओं के आयात तथा निर्यात पर कर लगा कर आय एकत्रित करती है। किन–किन वस्तुओं के आयात तथा निर्यात पर अधिक या कम कर लगाये यह आयातित तथा निर्यातित वस्तुओं की मांग की लोच पर निर्भर करता है। जिन वस्तुओं की आयात की मांग बेलोच है उन पर अधिक कर तथा इसके विपरीत जिन की आयात की मांग अधिक लोचदार है उन पर कम कर लगाया जाता है। इसी प्रकार यदि विदेशों की मांग घरेलू निर्यातों के लिए बेलोच है तो उन वस्तुओं पर भी अधिक कर लगाया जा सकता है। इसके विपरीत होने पर कम कर लगाया जाता है।

7. **बिजली कम्पनियों के लिए उपयोग (Useful for Electric Companies)**: बिजली की दरों को निर्धारित करने में मांग की कीमत लोच बिजली कम्पनियों की सहायता करती है। जिन क्षेत्रों में बिजली की मांग बेलोच या कम लोचदार होती है उनके लिए दरें ऊँची तथा जिनमें इसकी मांग अधिक लोचदार होती है उनके लिए दरें नीची रखी जाती हैं ताकि आय अधिक से अधिक हो सके। इसी कारण घरों के लिए बिजली की दरें ऊँची तथा उद्योगों के लिए ये दरें नीची रखी जाती हैं।

8. **निर्धनता का विरोधाभास (Paradox of Poverty)**: हम जानते हैं कि कृषि पदार्थों की मांग बेलोच होती है। इस कारण जब फसल अच्छी होने पर उत्पादन बढ़ जाता है तो इन पदार्थों की कीमतें काफी गिर जाती हैं क्योंकि इनकी मांग कीमत गिरने पर भी नहीं बढ़ पाती। किसानों के उत्पादन के बढ़ने पर वे और गरीब हो जाते हैं। इसी अवस्था को गरीबी का विरोधाभास (Paradox of Poverty) कहा जाता है। कीमत गिरने के कारण उनको उपज का कम मूल्य प्राप्त हो पाता है। इसलिए किसानों को ऐसी वस्तुओं का उत्पादन करना चाहिए जिनकी मांग अधिक कीमत लोच होती है।

9. **राष्ट्रीयकरण की नीति के लिए महत्त्व (Importance for the Policy of Nationalisation)**: सरकार को ऐसी नीति भी बनानी पड़ती है जिसके आधार पर यह निर्णय किया जा सके कि किन–किन उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया जाए। उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के बाद उस पर स्वामित्त्व सरकार का हो जाता है। सरकार ऐसे उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करती है जिनकी वस्तुओं की मांग बेलोच होती है तथा जनता के लिए उनका उपभोग अनिवार्य होता है। जैसे पानी, स्वास्थ्य, बिजली, टेलीफोन उद्योग आदि का स्वामित्त्व साधारणतः सरकारों के पास होता है इसका कारण यह है कि इन वस्तुओं की कीमतों में काफी वृद्धि की जा सकती है क्योंकि इनकी मांग बेलोच होती है। निजी क्षेत्र के उत्पादक उपभोक्ताओं का मनमाना शोषण कर सकते हैं। इस शोषण से बचने के लिए सरकार इनका राष्ट्रीयकरण करती है।

10. **श्रम संघो के लिए महत्त्वपूर्ण (Helpful for Trade Unions)**: श्रम संघ मिल मालिकों से मिलकर श्रमिकों की मांग की लोच को ध्यान में रखते हुए मजदूरी निर्धारित करवाते हैं। श्रम संघों को ज्ञात होता है कि जिन उद्योगों में श्रमिकों की सेवाओं की मांग कम कीमत लोचशील या बेलोच है उनके लिए अधिक मजदूरी निर्धारित करवाई जा सकती है तथा वे इसके लिए प्रयास करते हैं। इसके विपरीत जिन उद्योगों में श्रमिकों की सेवाओं की मांग अधिक लोचदार होती है, उनकी मजदूरी कम रखी जाती है तथा श्रमिक संघों के ऊंची मजदूरी के प्रयास सफल नहीं होंगे। अतः मांग की लोच श्रम संघों के लिए भी उपयोगी है।

11. **यातायात कम्पनियों के लिए महत्त्वपूर्ण (Helpful for Transport Companies)**: ट्रांसपोर्ट कम्पनियों के लिए भी मांग की लोच काफी उपयोगी सिद्ध होती है। रेलवे तथा अन्य ट्रांसपोर्ट कम्पनियां विभिन्न वस्तुओं के माल–भाड़े की दरों को निर्धारित करते समय अपनी सेवाओं की मांग की लोच को ध्यान में रखती हैं। स्पष्ट है कि जिन वस्तुओं के लिए ट्रांसपोर्ट के साधनों की मांग बेलोच होगी उनके लिए भाड़े की दरें अधिक होंगी। इसके विपरीत जिनकी मांग अधिक लोचदार होगी उनकी भाड़े की दरें कम होंगी।

12. **रोजगार में महत्त्व (Importance in Employment):** जिन वस्तुओं की मांग अधिक कीमत ल...ार होती है, ऐसी वस्तुओं की कीमतों में कमी करने से रोजगार अधिक बढ़ता है, क्योंकि कीमत कम होने पर इनकी ...ग अधिक बढ़ती है। मांग अधिक बढ़ने से उत्पादन तथा रोजगार अधिक बढते हैं। इसके विपरीत जिन वस्तुओं की मांग ...चोच होती है, उन वस्तुओं के उद्योगों में रोजगार बढ़ने के अवसर कम होते हैं।

मांग की आय लोच या आय सापेक्षता
(Income Elasticity of Demand)

मांग की आय लोच उत्पादन, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार आदि क्षेत्रों के लिए महत्त्वपूर्ण धारणा है। किसी वस्तु की कीमत, सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतें, उपभोक्ता की रूचि आदि बातें स्थिर रहने पर एक उपभोक्ता की आय में कोई निश्चित प्रतिशत परिवर्तन होने से उस वस्तु की मांग में जो प्रतिशत परिवर्तन होता है उसे मांग की आय कहा जाता है। अर्थात् केवल उपभोक्ता की आय में प्रतिशत परिवर्तन से किसी वस्तु की मांग में जो प्रतिशत परिवर्तन होता है उसके माप को मांग की आय लोच (Income Elasticity of Demand) कहते हैं।

वाटसन के अनुसार, "मांग की आय लोच मांगी गई मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन का आय में हुए प्रतिशत परिवर्तन से अनुपात होती है।"

(Income Elasticity of Demand means the ratio of the percetag chang in the quantity demanded to the percentage change in income.—Watson)

मांग की आय लोच का माप
(Measurement of Income Elasticity of Demand)

मांग की आय लोच निम्नलिखित सूत्र की सहायता से मापी जाती है:

$$\text{मांग की आय लोच} = \frac{\text{मांग में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{आय में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

Or
$$ey = \frac{\text{Percentage change in quantity demanded}}{\text{Percentage change in income}}$$

Or
$$ey = \frac{\frac{\Delta Q}{Q}}{\frac{\Delta Y}{Y}}$$

ΔQ = Change in Quantity demanded (मांगी गई मात्रा में परिवर्तन)

Q = Initial dmand (प्रारम्भिक मांग)

ΔY = Change in income (आय (y) में परिवर्तन)

Y = Initial income (प्रारम्भिकक आय)

$$\text{अत: } ey = \frac{\Delta Q}{Q} \div \frac{\Delta Y}{Y} = \frac{\Delta Q}{Q} \times \frac{Y}{\Delta Y} = \frac{\Delta Q}{\Delta Y} \times \frac{Y}{Q}$$

व्याख्या (Explanation): मान लो एक व्यक्ति की मासिक आय 20,000 रूपये है तो वह 4 किलो दूध प्रतिदिन खरीदता है अर्थात् उसकी मासिक मांग 120 किलो है। अब यदि उसकी आय बढ़ कर 25000 रू० मासिक हो जाती है तो वह प्रतिदिन दूध की मांग बढ़ा कर 5 किलो अर्थात् 150 किलो मासिक कर देता है। उसकी मांग की आय लोच निम्नलिखित ढ़ंग से मापी जा सकती है:

$Y = 20{,}000, \quad Q = 120$

$\Delta Y = 5{,}000 \quad \Delta Q = 30$

$$ey = \frac{30}{120} \times \frac{20{,}000}{5000} = 5$$

अतः मांग की आय लोच इकाई से अधिक (ey>1) है।

मांग की आय लोच के प्रकार
(Kinds of Income Elasticity of Demand)

मांग की आय लोच तीन प्रकार की होती है:

1. **मांग की घनात्मक आय लोच (Positive Income Elasticity of Demand)**: अन्य बातें समान रहने पर व्यक्ति की आय बढ़ने से वस्तु की मांग बढ़ती है और आय कम होने से मांग कम होती है। तो मांग की आय लोच घनात्मक होती है। यह देखा गया है कि सामान्य वस्तुओं (Normal Goods) की मांग की आय लोच घनात्मक होती है जैसा कि चित्र 15 में दर्शाया गया है। अर्थात् मांग की आय लोच शून्य से अधिक (ey > 0) होती है।

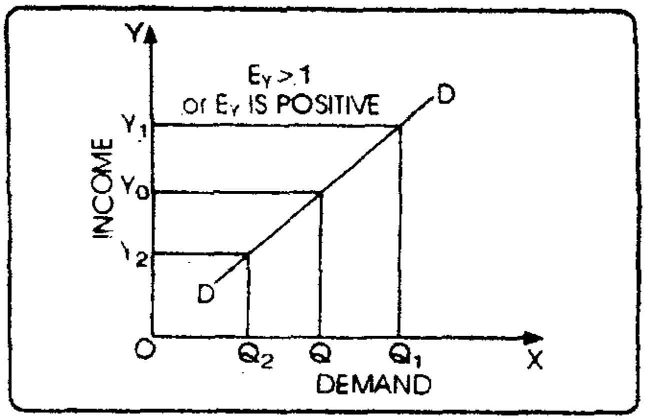

चित्र 15

2. **मांग की ऋणात्मक आय लोच (Negative Income Elasticity of Demand)**: कुछ वस्तुएं ऐसी होती है जिनकी मांग उपभोक्ता की आय बढ़ने से घटती है तथा आय घटने से मांग बढ़ती है। ऐसी वस्तुओं को अर्थशास्त्र में घटिया वस्तुएं (Inferior Goods) कहा जाता है। इन वस्तुओं की मांग की आय ऋणात्मक (ey < 0) होती है। जैसा कि रेखा चित्र 16 में दर्शाया गया है।

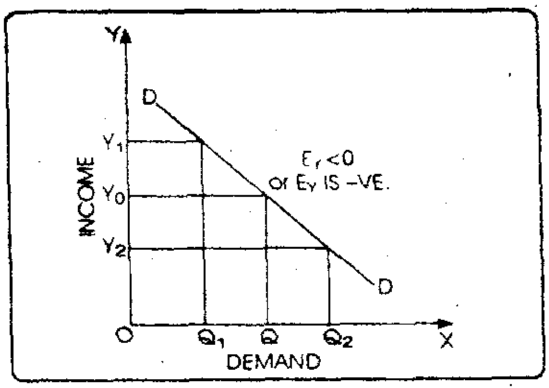

चित्र 16

3. **मांग की शून्य आय लोच (Zero Income Elasticity of Demand)**: जब आय के घटने बढ़ने का वस्तु की मांग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता तो मांग की आय लोच शून्य (ey = 0) कहलाती है। इसको रेखा चित्र 17 में दर्शाया गया है। नमक, हल्दी, सूई–धागा आदि की मांग शून्य आय लोच होती है।

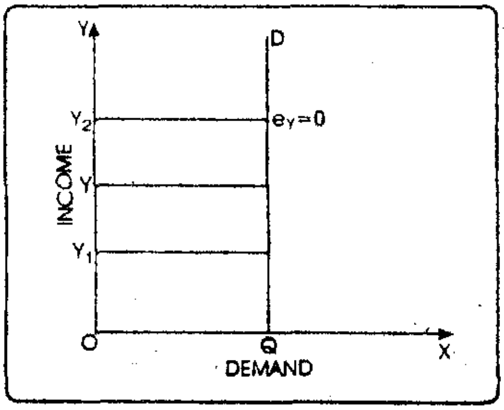

चित्र 17

मांग की आय लोच की डिग्रियाँ
(Degrees of Income Elasticity of Demand)

मांग की कीमत लोच की तरह मांग की आय लोच की भी मूख्यतः तीन डिग्रियाँ (Degrees) हैं:–

1. **इकाई से अधिक मांग की आय लोच (Income Elasticity of Demand More than Unity)**: इसके अन्तर्गत मांग में आनुपातिक परिवर्तन आय में हुए आनुपातिक परिवर्तन से अधिक होता है। इस अवस्था में मांग की आय सापेक्षता इकाई से अधिक (ey >1) होगी। जैसे आय में 10 प्रतिशत वृद्धि से मांग भी 10 प्रतिशत बढ़ती है तो आय लोच इकाई के समान होगी।

2. **इकाई के समान मांग की आय लोच (Income Elasticity of Demand Equal to Unity)**: जब मांग में आनुपातिक परिवर्तन आय में हुए आनुपातिक परिवर्तन के बराबर होता है तो इसको इकाई के बराबर की मांग की आय लोच (ey =1) कही जाती है। जैसे आय में 10 प्रतिशत की वृद्धि से मांग भी 10 प्रतिशत बढ़ती है तो आय लोच इकाई के समान होगी।

3. **इकाई से कम मांग की आय लोच (Income Elasticity of Demand Less than Unity)**: जब मांग में आनुपातिक परिवर्तन आय में हुए आनुपातिक परिवर्तन से कम हो तो मांग की आय लोच इकाई से कम (ey < 1) कही जाती है। जैसे आय 10 प्रतिशत से बढ़ती है तो मांग 7 प्रतिशत से बढ़ती है तो यह इकाई से कम मांग की आय लोच कही जाएगी।

मांग की आय लोच का महत्त्व
(Importance of Income Elasticity of Demand)

इस धारणा का मुख्य महत्त्व निम्नलिखित है:

1. **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में महत्त्व (Importance in International Trade)**: हमारे देश के निर्यात् मुख्यतः विदेशी लोगों की आय पर निर्भर करते हैं। अतः निर्यातक (Exporter) देशों को यह जानना जरूरी है कि विदेशियों की उनकी वस्तुओं की आय मांग की लोच कितनी है तथा उनकी आय कि दर से बढ़ रही है। यह ज्ञात होने के बाद उसके अनुसार ही वे निर्यात् वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि करते हैं नहीं तो निर्यात् वस्तुओं का जरूरत से कम या अधिक उत्पादन हो सकता है।

2. **उत्पादकों के लिए महत्त्व (Importance for Producers)**: उत्पादक उत्पादन शुरू करने से पहले यह जांच करते है कि किन वस्तुओं की मांग अधिक आय लोच है तथा किन की कम है। जिन वस्तुओं की मांग अधिक आय लोच है ऐसी

वस्तुओं का उत्पादन करना लाभकारी होता है क्योंकि भविष्य में आय बढ़ने के साथ–साथ इनकी मांग अधिक बढ़ने की प्रवृत्ति पाई जाती है।

3. **साधनों के बटंवारे में महत्त्व (Importance in Allocation of Resources)**: उत्पादन के साधनों को सरकार ऐसी वस्तुओं के उत्पादन में लगाने की प्रेरणा देती है जिनकी मांग अधिक आय लोच होती है। जिन देशों में आय तेजी से बढ़ रही होती है उन देशों में यह अधिक प्रवृत्ति पाई जाती है।

4. **वस्तुओं की प्रकृति का ज्ञान (Knowledge of Nature of Goods)**: हम जानते हैं कि जिन वस्तुओं की आय मांग की लोच घनात्मक होती है वे सामान्य पदार्थ (Normal Goods) कहलाते हैं। इसके विपरीत जिन पदार्थों की आय मांग की लोच ऋणात्मक होती है वे घटिया या गिफ्फन पदार्थ (Inferior or Giffen Goods) कहलाते हैं। इसी आधार पर जिन पदार्थों की मांग की आय लोच अधिक होती है वे विलासिता की वस्तुएँ (Luxury Goods) होती हैं।

मांग की तिरछी लोच
(Cross Elasticity of Demand)

दो सम्बन्धित वस्तुओं (स्थानापन्न तथा पूरक पदार्थ) की मांग तथा उनकी कीमत में परस्पर सम्बन्ध पाया जाता है। जैसे लक्स साबुन सस्ता होने पर हमाम की मांग गिर जाती है तथा कार की कीमत गिरने से पेट्रोल की मांग बढ़ जाती है। इस प्रकार सबन्धित वस्तुओं के मामले में एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन दूसरी वस्तु की मांग में परिवर्तन का कारण बन जाती है। एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन के कारण किसी अन्य वस्तु की मांग में जो परिवर्तन आता है। उसके माप को मांग की तिरछी लोच (Cross Elasticity of Demand) कहा जाता है।

फर्गुसन के अनुसार, "मांग की तिरछी लोच सम्बधित वस्तु Y की कीमत में आनुपातिक परिवर्तन होने के कारण X वस्तु की मांगी गई मात्रा में हुआ आनुपातिक परिवर्तन होती है।" (The Cross Elasticity of Demand is the proportional change in the quantity of X demanded resulting from a given relative change in the price of the related good Y.— Ferguson)

मांग की तिरछी लोच का माप
(Measurement of Cross Elasticity of Demand)

सम्बन्धित वस्तुओं X तथा Y के बीच मांग की तिरछी लोच का माप निम्नलिखित सूत्र की सहायता से ज्ञात किया जा सकता है :

$$\text{मांग की तिरछी लोच} = \frac{\text{X वस्तु की मांग में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{Y वस्तु की कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

or $$ec = \frac{\text{Percentage change in demand of x goods}}{\text{Percentage change in Price of Y goods}}$$

or $$\frac{\frac{\Delta Q_x}{Q_x}}{\frac{\Delta P_y}{P_y}} = \frac{\Delta P_x}{Q_x} \times \frac{P_y}{\Delta P_y}$$

or $$ec = \frac{\Delta Qx}{\Delta Py} \times \frac{Py}{Qx}$$

ec = Cross Elasticity of Demand,

ΔQ_x = Change in the demand of x goods, ΔP_Y = Change in the price of Ygoods, P_Y = Intial Price of Y goods and Q_X = Initial demand of X goods.

विद्यार्थी अपने उदाहरण की सहायता से मांग की तिरछी लोच का माप कर सकते हैं तथा इसकी जांच कर सकते हैं।

मांग की तिरछी लोच के प्रकार
(Kinds of Cross Elasticity of Demand)

मांग की तिरछी लोच तीन प्रकार की होती है :

1. **घनात्मक तिरछी लोच (Positive Cross Elasticity)** :— किसी एक वस्तु की कीमत बढ़ने के कारण दूसरी सम्बन्धित वस्तु की मांग भी बढ़ती है या एक वस्तु की कीमत में कमी आने के कारण दूसरी सम्बन्धित वस्तु की मांग भी कम हो जाती है तो मांग की तिरछी लोच घनात्मक (Positive) कहलाती है। ऐसा प्रतिस्थापन्न वस्तुओं के सम्बन्ध में देखा जा सकता है। जैसे चाय तथा कॉफी के बीच में।

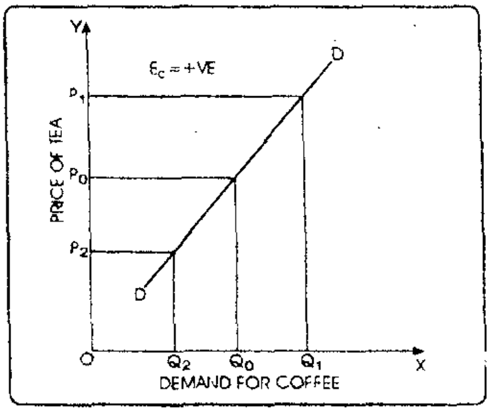

चित्र 18

2. **ऋणात्मक तिरछी लोच (Negative Cross Elasticity)** :— मांग की तिरछी लोच ऋणात्मक भी हो सकती है। यह तब होता है जब किसी वस्तु की कीमत बढ़ने से इसकी किसी अन्य सम्बन्धित वस्तु की मांग कम हो जाती हो या किसी वस्तु की कीमत कम होने पर इसकी अन्य सम्बन्धित वस्तु की मांग बढ़ जाती है, तो मांग की तिरछी लोच ऋणात्मक (Negative) होती है। सांकेतिक रूप से ec = –Ve होती है। पूरक वस्तुओं (Complementary goods) के मामले में मांग की तिरछी लोच नकारात्मक या ऋणात्मक पाई जाती है। पूरक पदार्थों जैसे, पैन–स्याही, स्कूटर–पेट्रोल, घोड़ा–गाड़ी आदि की मांग की तिरछी लोच ऋणात्मक होती है जैसा कि चित्र 19 में प्रकट किया गया है। स्कूटर की P_0 कीमत पर मान लो पेट्रोल की Q_0 मात्रा की मांग है। ज्यों की स्कूटर की कीमत गिर कर P_1 होती है तो पेट्रोल की मांग बढ़कर Q_1 हो जाती है। इसका कारण यह है कि स्कूटर की कीमत गिरने से स्कूटर की मांग बढ़ेगी, इसलिए पेट्रोल की मांग भी बढ़ेगी।

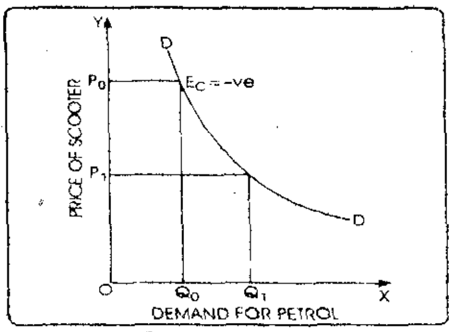

चित्र 19

3. **शून्य तिरछी लोच (Zero Cross Elasticity)**: जब वस्तुएं एक दूसरे से सम्बन्धित नहीं होती या स्वतन्त्र होती हैं तो मांग की तिरछी लोच शून्य हो जाती है। इस परिस्थिति में ec = zero होगी। जैसा कि चित्र 20 में दर्शाया गया है। यह उस समय होता है जब एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन किसी अन्य वस्तु की मांग में कुछ भी परिवर्तन नहीं कर सकता है।

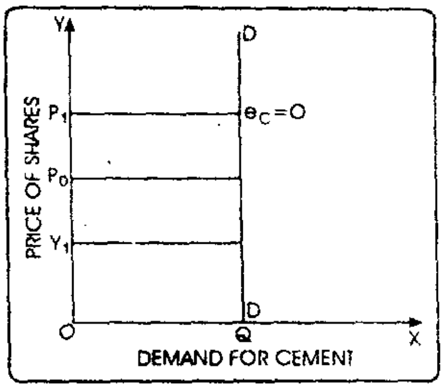

चित्र 20

मांग की तिरछी लोच का महत्त्व
(Importance of Cross Elasticity of Demand)

मांग की तिरछी लोच का उपभोक्ताओं तथा उत्पादकों के लिए विशेष महत्त्व है। इसके आधार पर यह ज्ञात किया जा सकता है कि जब कुछ वस्तुओं की कीमतें बदलती हैं तो इनका अन्य वस्तुओं की मांग पर क्या प्रभाव पड़ता है। उसी के अनुसार उपभोक्ता अपना व्यय समन्वय (Adjust) करते हैं तथा उसी के अनुसार उत्पादक उत्पादन में परिवर्तन करते हैं।

Annexure

Some Exercises

1. Calculate elasticity of demand by using percentage method for the following:
   If price of a commodity falls from Rs. 4 to Rs..3 per unit as a result total expenditure rises from Rs. 200 to Rs. 300.
   The formula for calculating elasticity through percentage method:

$$e = \frac{dQ}{dP} \cdot \frac{P}{Q}$$

The information available in the sum :

P = 4, ΔP = –1 (3 – 4)

What is the value of Q and dQ?

Initial expenditure on the commodity = Rs. 200

Initial quantity, $Q = \frac{200}{4} = 50$ units

The quantity demanded after + all in price from Rs. 4 to Rs. 3, $Q_1 = \frac{300}{3} = 100$ units

So change in Q (dQ) = 100 - 50 = 50 units

Hence Q = 50°, dQ = 50

$$\therefore e = \frac{50}{-1} \times \frac{4}{50} = -4$$

e is greater than unity (e < 1).

2. Given the following table find elasticity of demand when price falls from Rs. 8 to Rs. 7, While using arc elasticity method:

Price of X	Quantity demanded of X
10	100
9	125
8	140
7	160
6	170

The formula for calculating Arc elasticity co-efficient:

$$e = \frac{Q_1 - Q}{Q_1 + Q} \times \frac{P_1 + P}{P_1 - P}$$

In the sum : $P = 8$, $P_1 = 7$, $Q = 140$, $Q_1 = 160$

$$\text{Hence} = \frac{160-140}{160+140} \times \frac{7+8}{7-8} = \frac{20}{300} \times \frac{15}{-1} = \frac{300}{-300} = -1.\ e = \text{unity}$$

Simple computation of elasticity coefficient has been exercised here with the help of linear demand function.

3. Suppose the given demand function is $Q = 10 - 0.5P$,

You are asked to find elasticity at P=10

The formula to be used is point elasticity i.e. $= \frac{dQ}{dP} \cdot \frac{P}{Q}$

The first step should be to calculate $\frac{dQ}{dP}$ of the demand function. Which would be the first derivative of the demand function.

Given $Q = 10 - 0.5P$

$\frac{dQ}{dP} = -0.5$, and

In the formula of $e = \frac{dQ}{dP} \cdot \frac{P}{Q}$ we have traced the value of $\frac{dQ}{dP}$ (–0.5). Now find out $\frac{P}{Q}$.

We know P = 10. then $Q = 10 - .5\ (10)$

$Q = 10 - 5 = 5$

Hence $\frac{P}{Q} = \frac{10}{5} = 2$

Hence $e = \frac{dQ}{dP} \cdot \frac{P}{Q} = -0.5 \times \frac{10}{5}$

$e = -1.00$

4. Given the demand function, Q = 20 – 0.4P,
Find the e when P = Rs. 5

Here $\frac{dQ}{dP} = -0.4$

Now find $\frac{P}{Q}$. We know P = 5

Then $Q = 20 - 0.4 (5) = 18$

Formula for $e = \frac{dQ}{dP} \cdot \frac{P}{Q}$

Hence $e = -0.4 \times \frac{5}{18} = \frac{-2}{18}$

$e = -\frac{1}{9}$

e is less than unity.

प्रश्न
(Questions)

1. **What is Prive Elasticity of Demand? Explain its features.**

   मांग की मूल्य सापेक्षता क्या है? इसकी विशेषताओं का वर्णन करो।

2. **Define Elasticity of Demand. Explain the factors which determine Elasticity of Demand.**

   मांग की सापेक्षता की परिभाषा दो। मांग की सापेक्षता को निर्धारित करने वाले तत्त्वों का वर्णन करो।

3. What do you understand by Elasticity of Demand? Discuss the main methods to measure Elasticity of Demand.

   मांग की लोचशीलता से आप क्या समझते हैं? मांग की लोच को मापने की विभिन्न विधियों की व्याख्या करें।

   Or

   Define Price Elasticity of Demand. How is price elasticity of demand be measured?

   मांग की कीमत लोच की परिभाषा दो। मांग की कीमत लोच को कैसे मापा जाता है?

4. What do you understand by 'Elasticity of Demand'? Under what conditions Elasticity is equal to : (a) Zer, (b) Unitary, (c) Less than unitary, (d) More than unitary?

   मांग की सापेक्षता से आपका क्या अभिप्राय है? मांग की मूल्य सापेक्षता किन दशाओं में (a) शून्य (b) इकाई (c) इकाई से कम (d) इकाई से अधिक होती है?

5. What do you mean by elasticity of demand? What are its types? How would you measure it?

6. What is the importance of Elasticity of Demand. Why does it vary with different commo-dities?

   मांग की मूल्य सापेक्षता का क्या महत्त्व है? विभिन्न वस्तुओं की मूल्य सापेक्षता में अन्तर क्यों पाया जाता है?

अध्याय-10
उपभोक्ता की बेशी का प्रारम्भिक विचार
(Elementary Idea of Consumer's Surplus)

'उपभोक्ता की बचत' की धारणा उपभोक्ता, व्यापारी, सरकार, मूल्य सिद्धानत आदि क्षेत्रों के लिए महत्वपूर्ण धारणा है। इस धारणा की व्याख्या डॉ. मार्शल ने 1879 में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Pure Theory of Democratic Value' में की थी। इस पुस्तक में उपभोक्ता की बचत को 'उपभोक्ता के लगान' (Consumer's Rent) के रूप में प्रस्तुत किया गया। बाद में डॉ. मार्शल ने 1890 में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Principles of Economics' में इस धारणा की और विस्तृत व्याख्या की तथा इसको उपभोक्ता की बचत (Consumer's Surplus) का नाम दिया गया। इसके बाद प्रो.हिक्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Value and Capital' में इस धारणा का तटस्थता वक्र प्रणाली की सहायता से सही–सही माप प्रस्तुत करने का प्रयास किया था। प्रो. बोल्डिंग ने इसे "क्रेता की बचत" (Buyer's Surplus) का नाम देना ज्यादा उपयुक्त समझा है।

उपभोक्ता की बचत का अर्थ
(Meaning of Consumer's Surplus)

'उपभोक्ता की बचत' उपभोक्ता की एक विशेष मानसिक अवस्था का अध्ययन है। दैनिक जीवन में उपभोक्ता अनेक बार ऐसी वस्तुएं खरीदता है, जिनकी वह अधिक कीमत देने को तैयार होता है परन्तु वास्तव में वे कम कीमत पर प्राप्त हो जाती हैं उदाहरण के लिए अखबार, माचिस, पोस्टकार्ड, टेलीफोन आदि अनेक अत्यधिक उपयोगी वस्तुएं हैं, जिनके लिए हम कुछ अधिक कीमत देने को तैयार हो जाते हैं, परन्तु वास्तव में वे हमें कम कीमत पर प्राप्त हो जाती है। अतः किसी वस्तु की जो कीमत हम देने को तैयार होते हैं, और जो कीमत वास्तव में देते हैं, इन दोनों के अन्तर को उपभोक्ता की बचत कहा जाता है। जैसे मान लो किसी अखबार में आपका परीक्षा परिणाम छपा है, उस अखबार को खरीदने के लिए आप 10 रुपए देने को तैयार होते हैं, परन्तु वह अखबार आपको केवल 2 रुपए में प्राप्त हो जाता है तो 10-2=8 रुपए आपकी या उपभोक्ता की बचत कही जा सकती है। इसका अनुमान उपभोक्ता अपने मन में ही लगा सकता है। अतः स्पष्ट है कि यह धारणा खरीद के सम्बन्ध में उपभोक्ता की किसी विशेष मानसिक अवस्था का माप है।

परिभाषाएं (Definitions)

1. (डॉ. मार्शल के अनुसार) "किसी वस्तु के उपभोग से वंचित रहने की अपेक्षा उपभोक्ता उस वस्तु की वास्तव में जो कीमत देता है और इससे अधिक वह जो कीमत देने को तैयार होता है, वह उपभोक्ता की बचत का आर्थिक माप है।"

   (The Excess of the price which he (i.e. consumer) would be willing to pay rather than go without the thing over that which he actually does pay is the economic measure of this surplus satisfaction. It may be called consumer's surplus -Dr. Marshall)

2. टॉजिंग के अनुसार, "समर्थ कीमत और वास्तविक कीमत का अन्तर उपभोक्ता की बचत है।" (Consumer's surplus isthe difference between potential price and actual price.– Taussing)

3. पैन्सन के अनुसार, "हम जो कुछ देना चाहेंगे और जो हमें देना होता है इन दोनों के अन्तर को उपभोक्ता की बचत कहा जाता है।" (The difference between what we would pay and what we have to pay is called consumer's surplus"–Penson)

उपभोक्ता की बचत का माप
(Measurement of Consumer's Surplus)

उपभोक्ता की बचत का माप निम्न दो विधियों द्वारा किया जाता है:

1. मार्शल की तुष्टिगुण विश्लेषण विधि।
2. हिक्स की तटस्थता वक्र विश्लेषण विधि।

1. मार्शल की तुष्टिगुण विधि
(Marshall's Utility Analysis Method)

डॉ. मार्शल ने उपभोक्ता की बचत को अपने गणनावाचक तुष्टिगुण विश्लेषण (Cardinal Utility Analysis) की सहायता से मापने का प्रयास किया है। उनके अनुसार उपभोक्ता की बचत कुल तुष्टिगुण तथा सीमान्त तुष्टिगुण के अन्तर के समान होती है। हम जानते हैं कि डॉ. मार्शल के अनुसार तुष्टिगुण को मुद्रा की इकाइयों में मापा जा सकता है। उपभोक्ता उनके अनुसार किसी वस्तु की उतनी ही कीमत देने को तैयार होता है जितना उस वस्तु से सीमान्त तुष्टिगुण प्राप्त होता है। उपभोक्ता वास्तव में जो कीमत देता है वह वस्तु से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण के समान होता है। अतः कुल तुष्टिगुण तथा सीमान्त तुष्टिगुण (कीमत)का अन्तर उपभोक्ता की बचत कहलाता है।

किसी वस्तु की कीमत उससे प्राप्त कुल तुष्टिगुण के समान न होकर वस्तु की सीमान्त तुष्टिगुण के बराबर होती है। प्रत्येक इकाई की कीमत या लागत उपभोक्ता द्वारा खरीदी जाने वाली अन्तिम इकाई का तुष्टिगुण या सीमान्त तुष्टिगुण के बराबर होती है। परन्तु घटते सीमान्त तुष्टिगुण के नियम के अनुसार प्रारम्भिक इकाइयों का महत्व या तुष्टिगुण अन्तिम इकाई की तुलना में अधिक होता है। इसलिए उपभोक्ता को प्रारम्भिक इकाइयों से एक अधिक्य (Surplus) प्राप्त होता है जिसको उपभोक्ता की बचत (Consumer's Surplus) कहा जाता है।

एक उपभोक्ता किसी वस्तु की उस समय तक अतिरिक्त इकाइयां खरीदता है जब तक उस वस्तु की कीमत के रूप में जो उसे त्याग करना पड़ता है वह उन इकाइयों से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण से कम होता है। जब ये दोनों बराबर हो जाते हैं तो उपभोक्ता सन्तुलन की स्थिति में पहुंच जाता है तथा वह और अधिक इकाइयाँ नहीं खरीदता है। अतः सन्तुलन की स्थिति से पहले की इकाइयों से प्राप्त सीमान्त तुष्टिगुण के जोड़ (Σ MU) में से उन इकाइयों पर कीमत के रूप में जो त्याग करना पड़ा (P X N) उसको घटाने पर उपभोक्ता का अधिक्य प्राप्त होता है। निम्न सूत्र की सहायता से उपभोक्ता के अधिक्य या बचत का माप किया जा सकता है:

उपभोक्ता की बचत = सीमान्त तुष्टिगुण का जोड़ – खरीदी गई इकाइयों पर व्यय।

या

उपभोक्ता की बचत = कुल तुष्टिगुण कीमत x खरीदी गई इकाईयों की संख्या।

$$CS = \Sigma MU - P \times N$$
$$CS = TU - P \times N$$

CS = Consumer 's Surplus

ΣMU Sum Total of Marginal Utilities = Total Utility

P = Price

N = Unit of the commodity purchased

मान्यताएं (Assumption): तुष्टिगुण विश्लेषण पर आधारित उपभोक्ता की बचत के सिद्धान्त की प्रमुख मान्यताएं निम्नलिखित हैं:

1. तुष्टिगुण को गणनावाचक इकाइयों (Cardinal numbers) में मापा जा सकता है।
2. घटते सीमान्त तुष्टिगुण का नियम लागू होता है।
3. प्रत्येक वस्तु का तुष्टिगुण अन्य वस्तुओं के तुष्टिगुण से स्वतन्त्र रहता है।
4. मुद्रा का सीमान्त तुष्टिगुण स्थिर रहता है।
5. उपभोक्ता की आय स्थिर रहती है।
6. वस्तु की कीमत स्थिर रहती है।
7. वस्तु के नज़दीकी स्थानापन्न पदार्थ नहीं होते हैं।
8. उपभोक्ता की रुचि, फैशन, जलवायु आदि स्थिर रहते हैं।

व्याख्या
(Explanation)

एक उपभोक्ता किसी वस्तु की अतिरिक्त इकाइयां खरीदता जाता है जब तक सीमान्त तुष्टिगुण गिर कर उसकी कीमत के बराबर नहीं हो जाता। परन्तु आखिरी इकाई से पहले वाली इकाइयों पर कीमत की अपेक्षा सीमान्त तुष्टिगुण अधिक मिलता है। उस अधिक सीमान्त तुष्टिगुण को जोड़ कर उपभोक्ता की बचत निम्न तालिका के आधार पर ज्ञात की जा सकती है मान लो तुष्टिगुण की एक इकाई एक रुपए के समान है।

तालिका 7

Units of X Commodity (N)	Marginal Utility	Price (Rupees)	Consumer's Surplus
1	50	10	40
2	40	10	30
3	30	10	20
4	20	10	10
5	10	10	0
N = 5	ΣMU = 150 (TU)	P x N = 50	C. S = 100 or = 150 - 50

उपरोक्त तालिका 9.1 में उदाहरण की सहायता से स्पष्ट किया गया है कि उपभोक्ता x वस्तु की केवल पांच इकाइयां ही खरीदेगा क्योंकि यहां उसकी सीमान्त तुष्टिगुण गिरकर (10 इकाई) जो कीमत (P = 10) के बराबर है। X वस्तु की पांच इकाइयां खरीदने से उपभोक्ता को 150 इकाई कुल तुष्टिगुण प्राप्त होता है तथा 5 इकाइयों की कुल कीमत 10 x 5 = 50 रुपए देनी होती है। पांच इकाई खरीदने पर उपभोक्ता को 100 इकाई या रुपए के समान उपभोक्ता की बचत (Consumer's Surplus) प्राप्त होती है। हमें ज्ञात है कि:

CS = TU (Σ MU) – P x N

= 150 — 10 x 5 – 100

CS = Consumer's Surplus. TU = Total Utility, Σ MU = Summation of Marginal Utilities, P = Price, N = Numbers of units.

रेखा चित्र (Diagram)

निम्न रेखा चित्र 1 की सहायता से भी उपभोक्ता की बचत को प्रकट किया जा सकता है:

रेखाचित्र (Diagram)

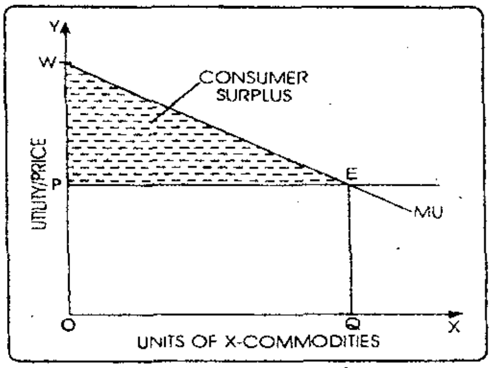

चित्र-1

२ के OX- अक्ष पर वस्तु की इकाइयां तथा Y- अक्ष पर सीमान्त तुष्टिगुण तथा कीमत मापी गई है। MU रेखा घटती सीमान्त तुष्टिगुण की रेखा है तथा OP वस्तु की बाज़ार कीमत है। उपभोक्ता E बिन्दु पर सन्तुलन में होता है जहां MU = P है। वह X वस्तु की OQ मात्रा खरीद रहा है।

उपभोक्ता को OQEW कुल तुष्टिगुण (TU) प्राप्त होता है। तथा उसे OQEP मात्रा व्यय करनी पड़ती है। इसलिए उपभोक्ता को PEW के समान उपभोक्ता की बचत प्राप्त होती है।

CS = TU – P x N

= OQEW - OPx OQ→

← अतः CS = OQEW – OQEP

← = PEW

इस प्रकार उपभोक्ता को आच्छादित क्षेत्र में WPE के समान कुल उपभोक्ता की बचत प्राप्त होती है।

उपभोक्ता की बचत को मापने मे कठिनाइयां या आलोचनाएँ
(Criticism or Difficulties in the measurement of Consumer's Surplus)

प्रो. हिक्स (Hicks), ऐलन (Allen) आदि अनेक अर्थशास्त्रियों ने मार्शल द्वारा प्रतिपादित उपभोक्ता की बचत के सिद्धान्त की निम्नलिखित आलोचनाएं की है:

1. **तुष्टिगुण को इकाइयों में नहीं मापा जा सकता (Cardinal measure of utility is not possible):** डॉ. मार्शल द्वारा प्रतिपादित उपभोक्ता की बचत का सिद्धान्त इस धारणा पर आधारित है कि तुष्टिगुण का गणनावाचक माप (1, 2, 3, 4) किया जा सकता है। परन्तु आलोचकों के अनुसार तुष्टिगुण उपभोक्ता की मानसिक स्थिति को प्रकट करती है जिसको इकाइयों में मापना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव भी है। यह एक व्यक्तिगत या भावगत धारणा है जिसका मुद्रा की इकाइयों में माप असम्भव है।

2. **वस्तुएं स्वतंत्र नहीं होती (Goods are not Independent):** डॉ. मार्शल के अनुसार एक वस्तु का तुष्टिगुण दूसरी वस्तु के तुष्टिगुण को प्रभावित नहीं करता है। अर्थात् वस्तुएं स्वतन्त्र हैं। परन्तु आलोचकों के अनुसार एक वस्तु का तुष्टिगुण दूसरी वस्तु के तुष्टिगुण को प्रभावित करता है, जैसे चीनी दूध के तुष्टिगुण को बढ़ा देती है। अतः एक वस्तु से प्राप्त तुष्टिगुण उसी वस्तु को इकाइयों के उपभोग पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि अन्य वस्तु के उपभोग पर भी निर्भर करता है।

3. **मुद्रा का सीमान्त तुष्टिगुण स्थिर नहीं रहता (Marginal utility of Money does not remain constant):** डॉ. मार्शल द्वारा प्रतिपादित उपभोक्ता की बचत का सिद्धान्त इस धारणा पर आधारित है कि मुद्रा का सीमान्त तुष्टिगुण स्थिर रहता है। परन्तु प्रो. हिक्स आदि के अनुसार मुद्रा का सीमान्त तुष्टिगुण स्थिर नहीं रहता क्योंकि मुद्रा भी एक वस्तु हैं इसलिए ज्यों मुद्रा की मात्रा बढ़ती है, इसका सीमान्त तुष्टिगुण भी अन्य वस्तुओं की तरह गिरता जाता है।

4. **आय परिवर्तन की अवहेलना (It ignored Income changes):** आय परिवर्तन का भी उपभोक्ता की बचत पर प्रभाव पड़ता है। जैसे यदि किसी व्यक्ति की आय बढ़ जाती है तो वह वस्तु की अधिक कीमत देने को तैयार हो सकता है। जो उपभोक्ता की बचत को बढ़ा देता है। परन्तु मार्शल ने आय को स्थिर माना है। आलोचकों के अनुसार उपभोक्ता की आय स्थिर नहीं रहती। इसलिए उपभोक्ता की बचत का सही–सही माप संभव नहीं है।

5. **स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धता (Availability of Substitutes):** डॉ. मार्शल के अनुसार वस्तुओं के स्थानापन्न पदार्थ नहीं होते हैं। परन्तु वास्तविक जीवन में आमतौर पर सभी वस्तुओं के स्थानापन्न पदार्थ उपलब्ध हैं। स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धता के फलस्वरूप उपभोक्ता की बचत कम हो जाती है। जैसे कोका कोला और कैम्पा कोला स्थानापन्न वस्तुएं हैं। यदि बाज़ार में कैम्पा कोला उपलब्ध नहीं है तो हम कोका कोला की अधिक कीमत देने को तैयार हो जाएंगे। इस कारण कोका कोला से उपभोक्ता की बचत बढ़ जाएगी। परन्तु यदि कैम्पा कोला भी बाज़ार में उपलब्ध है तो कोका कोला की हम कम कीमत देने को तैयार होते हैं तथा कोका कोला से प्राप्त उपभोक्ता की बचत कम हो जाती है।

6. **प्रतिष्ठा सूचक वस्तुएं (Articles of Distinction):** कलाकृतियाँ, हीरे–जवाहरात आदि प्रतिष्ठासूचक वस्तुओं की उपभोक्ता की बचत का माप करना असम्भव कार्य है। इसका कारण यह है कि उपभोक्ता इन वस्तुओं के लिए जो कीमत देने को तैयार होता है उसकी कोई सीमा नहीं है। यह उसकी रुचि पर निर्भर करती है।

7. **अनिवार्य वस्तुओं की उपभोक्ता की बचत अनन्त (Consumer Surplus of Necessaries in infinite):** अनिवार्य वस्तुओं जैसे जीवन रक्षक दवाइयों, रोटियों, पानी रूढ़िवादी आवश्यकताओं आदि के लिए उपभोक्ता अपना सारा धन देने को तैयार हो जाता है। प्यास से मरता हुआ उपभोक्ता एक गिलास पानी के लिए कुछ भी कीमत देने को तैयार होता है। अतः इन वस्तुओं में उपभोक्ता की बचत अनन्त होती है। तथा इसका माप करना कठिन के साथ–साथ असम्भव कार्य भी है।

8. **उपभोक्ता की रूचियों में परिवर्तन (Change in Consumer's Tastes):** उपभोक्ता की रूचियों में समय के साथ–साथ परिवर्तन होता रहता है। यदि किसी वस्तु के लिए उसकी रूचि बढ़ जाती है तो उपभोक्ता उस वस्तु की अधिक कीमत देने को तैयार होता है तथा उपभोक्ता की बचत बढ़ जाती है। इसके विपरीत यदि उसकी रूचि कम हो जाती है तो उपभोक्ता उसकी कम कीमत देने को तैयार होता है तथा उपभोक्ता की बचत कम हो जाती है। अतः इन परिस्थितियों में परिवर्तन होने के इस कारण का सही–सही माप नहीं हो सकता।

9. **उपभोक्ता की शून्य बचत (Zero Consumer's Surplus):** युलिस गोबी (Ulisse Gobbi) के विचारानुसार उपभोक्ता जो कीमत देने को तैयार होता है और जो वास्तव में वह देता है, इन दोनों में शून्य अन्तर होता है। जैसे एक व्यक्ति के पास 100 रुपए हैं जो उसने 50 रुपए सेब तथा 50 रुपए अंगूर पर व्यय करने हैं। 50 रुपए सेब पर खर्च करने के बाद उसने 50 रुपए अंगूर पर खर्च करने हैं। अंगूर की जो कीमत वह वास्तव में देता है वह 50 रुपए है तथा जो कीमत वह देना चाहता है वह कीमत भी 50 रुपए ही है। अतः अंगूर की दोनों कीमतों का अन्तर शून्य होने के कारण उपभोक्ता की बचत भी शून्य होगी।

10. ***भ्रमपूर्ण धारणा (Dubious Concept):*** एक निश्चित राशि वस्तुओं पर खर्च करके यह नहीं कहा जा सकता कि उपभोक्ता की बचत कितनी प्राप्त हुई। इसका कारण यह है कि उपभोक्ता की बचत का स्थान से विशेष सम्बन्ध है। 10,000 रुपए महीने गांव में अपने रहन–सहन पर खर्च करके उपभोक्ता उतनी सन्तुष्टि प्राप्त नहीं कर सकता जितनी वह शहर में खर्च करके प्राप्त कर सकता है। शहर में पार्कों, अच्छे अस्पतालों, अच्छे स्कूलों आदि की सुविधाएं आसानी से भी इनको प्राप्त नहीं करा सकता। अतः 10,000 रुपए खर्च से कितनी उपभोक्ता की बचत प्राप्त होती है यह बड़ी अस्पष्ट अनिश्चित तथा भ्रमपूर्ण धारणा है।

हिक्स द्वारा उपभोक्ता की बचत का माप
(Hicksian Measure of Consumer's Surplus)
Or
तटस्थता वक्रों द्वारा उपभोक्ता की बचत का माप
(Measurement of Consumer's Surplus with the help of Indifference Curves)

हिक्स द्वारा 'उपभोक्ता की बचत' की व्याख्या मार्शल द्वारा प्रस्तुत उपभोक्ता की बचत की धारणा का सुधरा हुआ रूप है। मार्शल द्वारा प्रतिपादित उपभोक्ता की बचत का सिद्धान्त बहुत सी अवास्तविक पूर्व धारणाओं पर आधारित है। जैसे इसका तुष्टिगुण का गणनावाचक माप, मुद्रा का स्थिर सीमान्त तुष्टिगुण, स्वतंत्र वस्तुएं आदि अवास्तिवक व अव्यवहारिक मान्यताओं पर आधारित होना। प्रो. हिक्स ने अपनी पुस्तक (Value and Capital) में उपभोक्ता की बचत का तटस्थता वक्रों की सहायता से माप किया जो मार्शल की उपरोक्त अवास्तविक कल्पनाओं से स्वतन्त्र है। इसलिए उपभोक्ता की बचत का हिक्सीयन माप मार्शलीयन माप से श्रेष्ठ भी माना जाता है।

निम्न रेखाचित्र 2 में OX- अक्ष पर X वस्तु की मात्रा तथा OY- अक्ष पर उपभोक्ता की मौद्रिक आय मापी गई है। मान लो उपभोक्ता के पास OM मौद्रिक आय है जिसकी कुछ मात्रा वह X वस्तु पर खर्च करना चाहता है। X वस्तु की कीमत ज्ञात होने के कारण उपभोक्ता की कीमत या बजट रेखा निकाली जा सकती है जिसको चित्र में MB रेखा द्वारा दर्शाया गया है। MB कीमत रेखा पर उपभोक्ता E बिन्दु पर सन्तुलन में होता है जहां यह रेखा उच्चतम तटस्थता वक्र IC_1 को स्पर्श कर रही है। सन्तुलन बिन्दु E पर उपभोक्ता के पास X वस्तु की OQ मात्रा तथा मौद्रिक आय की OMo मात्रा विद्यमान है। अर्थात् उपभोक्ता X वस्तु की OQ मात्रा प्राप्त करने के लिए मुद्रा की वास्तव में MM_0 या EF मात्रा छोड़ता है या कीमत देता है। परन्तु उपभोक्ता X की OQ मात्रा के लिए कितनी मौद्रिक आय छोड़ने या कीमत के रूप में देने को तैयार हैं? यह ज्ञात करने के लिए M बिन्दु से एक तटस्थता वक्र निकालना होगा जो चित्र में IC_0 द्वारा प्रकट किया गया है। IC_0 तटस्थता वक्र का प्रत्येक बिन्दु उतनी ही सन्तुष्टि देता है जितना M बिन्दु देता है। उपभोक्ता M बिन्दु पर होता है तो उसके पास X वस्तु की मात्रा शून्य तथा मौद्रिक आय OM के समान है। यदि वह E बिन्दु पर है तो X की OQ मात्रा तथा मुद्रा की OM, मात्रा अपने पास रखता है। परन्तु उपभोक्ता को इन दोनों K तथा M बिन्दुओं पर समान सन्तुष्टि प्राप्त होती है क्योंकि दोनों एक ही तटस्थता वक्र ICo पर स्थित हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि उपभोक्ता X वस्तु की OQ मात्रा के लिए MM_1 या KF मुद्रा के रूप में कीमत दे सकता है यह देने को तैयार है। परन्तु वास्तव में सन्तुलन के अनुसार उपभोक्ता OQ मात्रा के लिए वास्तव में कवेल MoM या FF मुद्रा के रूप में कीमत देता है। अतः उपभोक्ता X वस्तु की OQ मात्रा के लिए अपनी आय का MM या EF भाग देने को तैयार था परन्तु वास्तव में उसे MMo या EF भाग ही देना पड़ता है। इस प्रकार MM_1 - MMo = MoM_1 उपभोक्ता की बचत है।

ध्यान रहे कि MoM या EK उपभोक्ता की मौद्रिक बचत है। उपभोक्ता की बचत को वस्तु रूप में भी मापा जा सकता है यदि हम दोनों तटस्थता वक्रों के अन्तर को व्यक्त करते हैं तो जैसे चित्र में RE के समान वस्तु के रूप में उपभोक्त की बचत प्राप्त होती है। अतः इसको अग्र दो रूपों में मापा जा सकता है:

उपभोक्ता की बचत का मौद्रिक माप = MoM1

उपभोक्ता की बचत का वस्तुगत माप = RE

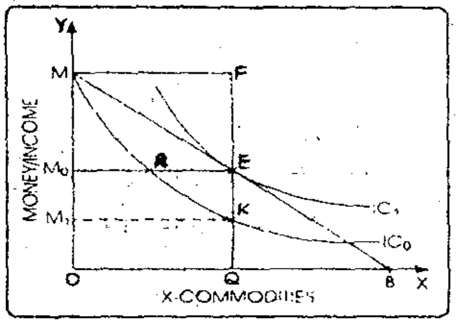

चित्र 2

आलोचनाएँ
(Criticisms)

हिक्स द्वारा प्रतिपादित उपभोक्ता की बचत के सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं:

1. **तटस्थता मानचित्र (Indifference Map):** तटस्थता वक्र विश्लेषण पर आधारित उपभोक्ता की बचत का माप इस धारणा पर आधारित है कि उपभोक्ता को अपने तटस्थता मानचित्र का पूर्ण ज्ञान होता हैं। परन्तु वास्तविक जीवन में उपभोक्ता को अपने प्राथमिकता क्रम (Preference ordering) तटस्थता मानचित्र का पूरा–पूरा ज्ञान नहीं होता है। अतः इस आधार पर इसकी आलोचना की जाती है।

2. **कीमत रेखा में परिवर्तन (Change in Price Line):** यह सिद्धान्त इस कल्पना पर आधारित है कि बजट या कीमत रेखा स्थिर रहती है। परन्तु वस्तु की कीमत बदलती रहती है। इस कारण बजट रेखा में उतार–चढ़ाव आता रहता है। यदि कीमत रेखा में परिवर्तन या उतार–चढ़ाव आता रहता है तो उपभोक्ता की बचत का सही–सही माप नहीं हो सकता।

3. **एक मिथ्या धारणा (A useles concept):** इस धारणा की आलोचना की गई है कि यह उपयोगी नहीं है उदाहरण के लिए एक उपभोक्ता का यह मान लेना कि एक मोटर साइकिल के वह 60 हजार रुपए देने को तैयार था परन्तु वह उसको 40 हजार रुपए में प्राप्त हो गई तथा उसको 20 हजार रुपए का लाभ हो गया है। वस्तुतः उसको कुछ लाभ या बचत प्राप्त नहीं हुई है। यह केवल मन ही मन खुश होने वाली बात है जिसका अर्थशास्त्र से कुछ लेना देना नहीं है।

4. **एक काल्पनिक धारणा (An Imaginary Concept):** इस धारणा की यह भी आलोचना की जाती है कि यह केवल कल्पना पर आधारित है। वास्तविक जगत में उपभोक्ता की बचत का कोई स्थान नहीं हैं।

5. **सही-सही माप असम्भव (Accurate measure is impossible):** किसी वस्तु को खरीदने से उपभोक्ता को कितनी उपभोक्ता की बचत प्राप्त होती है इसका सही–सही माप नहीं किया जा सकता। यदि कोई उपभोक्ता धनी है तो वह किसी वस्तु के लिए अधिक कीमत देने को तैयार हो सकता है इसलिए उसके लिए उपभोक्ता की बचत अधिक होगी। इसके विपरीत एक गरीब व्यक्ति को उस वस्तु से कम उपभोक्ता की बचत प्राप्त होती है। अतः उपभोक्ता की बचत का सही–सही माप नहीं हो सकता है।

6. **अनिवार्य वस्तुएं (Necessaries of Life):** अनिवार्य वस्तुओं की उपभोक्ता की बचत असीमित होती है। अनिवार्य वस्तुओं जैसे जीवन रक्षक दवाइयों, रोटी, पानी, रूढ़िवादी आवश्यकताओं आदि के लिए उपभोक्ता अपना सारा धन देने को तैयार होता है। प्यास से मरता हुआ उपभोक्ता एक गिलास पानी के लिए कुछ भी कीमत देने को तैयार होता हैं अतः इन वस्तुओं में उपभोक्ता की बचत अनन्त होती है तथा इसका माप करना असम्भव है।

7. **प्रतिष्ठासूचक वस्तुएं (Articles of Distinction):** कलाकृतियों, हीरे–जवाहरात आदि प्रतिष्ठासूचक वस्तुओं की उपभोक्ता की बचत का माप करना असम्भव कार्य है। इसका कारण यह है कि उपभोक्ता इन वस्तुओं के लिए जो कीमत देने को तैयार होता है उसकी कोई सीमा नहीं होती। यह उनकी रुचि पर निर्भर करता है।

8. **उपभोक्ता की रुचियों में परिवर्तन (Change in Consumer's Tastes):** उपभोक्ता की रूचियों में समय के साथ–साथ परिवर्तन होता रहता है। इसलिए उपभोक्ता का तटस्थता मानचित्र भी बदलता रहता है। इस कारण उपभोक्ता की बचत का माप नहीं हो सकता।

9. **दिखावे की वस्तुएं (Things of Display):** अनेक व्यक्तियों में दिखावे की भावना होती हैं। दिखावे की वस्तुओं पर उपभोक्ता की बचत का सिद्धान्त लागू नहीं होता क्योंकि इन वस्तुओं की कीमत जितनी अधिक होगी, उतनी ही उपभोक्ता की रुचि इन वस्तुओं के लिए बढ़ जाएगी तथा वे उतनी अधिक कीमत देने को तैयार होते हैं। इस कारण इन वस्तुओं पर उपभोक्ता की बचत बढ़ जाएगी। इनकी कीमत कम होने पर उपभोक्ता की बचत कम हो जाएगी क्योंकि इनकी कीमत कम होने पर उपभोक्ता की इनके लिए रुचि कम हो जाती है। यह इस धारणा के विपरीत है।

उपभोक्ता की बचत का महत्व
(Importance of Consumer's Surplus)

उपभोक्ता की बचत की अनेक आलोचनाएं होते हुए भी इसके व्यवहारिक तथा सैद्धान्तिक महत्व कम नहीं हैं। इस धारणा के मुख्य महत्व निम्नलिखित हैं:

1. **उपभोक्ता को लाभ (Useful to Consumer):** उपभोक्ता अपनी आय वस्तुओं पर इस प्रकार खर्च करना चाहता है ताकि उसको अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो सके। उपभोक्ता की सन्तुष्टि अधिकतम तभी हो सकती है जब वह अपनी आय ऐसी वस्तुओं पर खर्च करता है जिनसे उपभोक्ता की बचत अधिकतम प्राप्त होती है। इसलिए उपभोक्ता की बचत की धारणा उपभोक्ता के लिए अधिकतम सन्तुष्टि दिलवाने में सहायक है। इससे उसको लाभ होता है।

2. **उपयोग मूल्य तथा विनिमय मूल्य में अन्तर (Difference between value-in-use and value-in-exchange):** उपभोक्ता की बचत उपयोग मूल्य तथा विनिमय मूल्य में अन्तर को स्पष्ट करती है। किसी वस्तु के उपयोग से जितना अधिक उपभोक्ता की बचत प्राप्त होती है उतना ही उस वस्तु के उपयोग मूल्य तथा विनिमय मूल्य में अन्तर भी अधिक होता है। उपयोग मूल्य वस्तु से प्राप्त सन्तुष्टि या कुल तुष्टिगुण को व्यक्त करना है तथा विनिमय मूल्य वस्तु की कीमत (जो सीमान्त तुष्टिगुण के बराबर होती है) को व्यक्त करता है। बहुत सी वस्तुएं जैसे नमक, माचिस, अखबार, पानी ऐसी हैं जिनसे उपभोक्ता की बचत अधिक प्राप्त होती है। इसका कारण यह है कि इन वस्तुओं के उपयोग मूल्य की विनिमय मूल्य से अधिकता काफी ज्यादा होती है। इसलिए उपभोक्ता इन वस्तुओं की अधिक कीमत देने को तैयार रहता है। परन्तु इन वस्तुओं की अधिक इकाइयां उपयोग किए जाने के कारण इनका सीमान्त तुष्टिगुण MU काफी कम हो जाता है। इन वस्तुओं का सीमान्त तुष्टिगुण कम होने के कारण इनका विनिमय मूल्य या कीमत भी काफी कम होती है। इसके विपरीत जिन वस्तुओं से उपभोक्ता की बचत कम प्राप्त होती है, जैसे कार, टी.वी. आदि उन वस्तुओं का विनिमय मूल्य (कीमत) ऊंचा होता है क्योंकि इनकी एक या दो ही इकाइयों का उपयोग किया जाता है जिस कारण इनका सीमान्त तुष्टिगुण ऊंचा रहता है तथा कीमत या विनिमय मूल्य ऊंचा रहता है। इस कारण दोनों मूल्यों में अन्तर भी कम रहता है।

3. **व्यापारी तथा एकाधिकारी को लाभ (Advantage to Trader and Monopolist):** उपभोक्ता की बचत का व्यापारी तथा एकाधिकारी वर्ग को लाभ प्राप्त होता है। जिन वस्तुओं से लोगों को उपभोक्त की बचत अधिक प्राप्त होती है उन वस्तुओं की कीमत को बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार व्यापारी तथा एकाधिकारी वस्तुओं की कीमतों को उन वस्तुओं से उत्पन्न उपभोक्ता की बचत को ध्यान में रखते हुए निर्धारित करते हैं तथा अधिक से अधिक कीमत निर्धारित करके लाभ कमाते हैं।

4. **कर निर्धारण में सहायक (Helpful in Determination of Tax):** कर (Taxation) सरकार की आय का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत है। उपभोक्ता की बचत वस्तुओं पर ब्रिकी कर आदि के निर्धारण में सरकार की सहायता करती है। जिन वस्तुओं से उपभोक्ता की बचत अधिक प्राप्त होती है उन वस्तुओं पर कर अधिक लगाया जा सकता है। क्योंकि कर लगने के कारण कीमत बढ़ने पर भी उपभोक्ता इन वस्तुओं की मांग कम नहीं करते हैं। इसके विपरीत वस्तुओं से उपभोक्ता की बचत कम प्राप्त होती है उन पर सरकार ने म कर लगाने चाहिए।

5. **वित्तीय सहायता का निर्धारण (Determination of Subsidies):** कुछ वस्तुओं के उत्पादकों को सरकार द्वारा वित्तीय सहायता देने से उन वस्तुओं की कीमतें कम हो जाती है तथा उपभोक्ता की बचत में वृद्धि हो जाती है। सरकारी को विभिन्न वस्तुओं पर वित्तीय सहायता का निर्धारण इस प्रकार करना चाहिए ताकि उपभोक्ता की बचत में वृद्धि सरकार द्वारा दी गई वित्तीय सहायता से अधिक हो सके। ऐसा करने से समाज कल्याण में वृद्धि होती है।

6. **वातावरण के लाभ (Conjectural Advantage):** किन्हीं दो स्थानों के वातावरण में भिन्नत के कारण उपभोक्ता की भिन्न–भिन्न बचत होती है। शहरों में रहने वाले लोग अनेक ऐसे सुख–साधन तथा सुविधाएं प्राप्त करते हैं जो उनको बहुत कम कीमत पर प्राप्त हो जाती है। परन्तु उपभोक्ता उनकी बहुत अधिक कीमत देने को तैयार रहते हैं। इसलिए शहरों में उपभोक्ता की बचत या बेशी बहुत अधिक होती है। इसके विपरीत इन सुविधाओं जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य,

मनोरंजन आदि के लिए गाँव के लोगों को काफी अधिक कीमत देनी पड़ती है तथा उनकी उपभोक्ता की बचत कम होती है।

7. **आर्थिक कल्याण (Economic Welfare):** किसी वस्तु के उत्पादन तथा व्यापार से उत्पन्न होने वाले लाभ को उपभोक्ता की बचत या बेशी के रूप में मापा जा सकता है। लोगों को जितनी अधिक उपभोक्ता की बचत प्राप्त होती है उतना ही अधिक उनका आर्थिक कल्याण होता है। इससे समाज के कुल आर्थिक कल्याण में वृद्धि करने में सहायता प्राप्त होती है।

8. **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में महत्त्व (Importance in International Trade):** अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में इस धारणा का विशेष महत्त्व है। एक देश को उन वस्तुओं का अधिक आयात करना चाहिए जिन वस्तुओं से उपभोक्ताओं को अधिक उपभोक्ता की बचत प्राप्त होती है। इतना ही नहीं सरकार को तट कर (Tariff)) लगाते समय ध्यान रखना चाहिए कि ऐसा करने से देशवासियों की उपभोक्ता की बचत कम हो जाती है। अतः तट कर उसी सीमा तक लगाना चाहिये जिससे तट कर की राशि उपभोक्ता की बचत में हुई हानि से अधिक हो।

9. **सरकारी नीति (Government Policy):** यह धारणा सरकार की नीति निर्धारण में भी सहायक होती है। एक सरकार को सैद्धान्तिक रूप से अपने किसी घाटे में चल रहे उद्योग को तभी तक चलाना चाहिए जब तक वस्तु के उत्पादन से लोगों को प्राप्त होने वाली उपभोक्ता की बचत घाटे से अधिक हो। अतः यह धराणा सरकार की इस प्रकार की नीति निर्धारणा में बड़ी सहायक है।

10. **साधनों का बंटवारा (Allocation of Resources):** विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में साधनों का बंटवारा इस प्रकार किया जाना चाहिये ताकि सामाजिक स्तर पर उपभोक्ता की बचत अधिकतम हो सके। यदि किसी वस्तु के उत्पादन उपभोक्ता की बचत उपेक्षाकृत कम प्राप्त होती है तो ऐसे उत्पादन से साधनों को हटा कर ऐसे उत्पादन या उद्योगों में लगाना चाहिये जहां उपभोक्ता की बचत अधिक प्राप्त होती है। यह प्रक्रिया जारी रखनी चाहिए जब तक सभी वस्तुओं को उत्पादन से प्राप्त उपभोक्ता की बचत बराबर नहीं होती है।

11. **वस्तु की उत्पादन मात्रा का निर्धारण (Determination of quantity to be produced):** हम जानते हैं कि किसी वस्तु का उत्पादन करने से कुछ उपभोक्तओं को बचत होती है तथा कुछ उत्पादकों को बचत प्राप्त होती है। इस ध ारणा के अनुसार किसी वस्तु का इतनी मात्रा में उत्पादन करना चाहिये जिससे कि दोनों प्रकार की बचतों का जोड़ अधिकतम हो।

संक्षेप में हम कह सकते है कि उपभोक्ता मापने सम्बन्धी बचत की कुछ त्रुटियां होने के साथ–साथ इसके महत्व भी अनेक है यह धारणा हमारी सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक समस्याओं के समाधान मे महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

प्रश्न

(Questions)

I. **निबन्ध रूपी प्रश्न**
(Essay Type Questions)

1. What do you mean by consumer's Surplus? Discuss its measurement with the help of (i) utility approach (ii) Indifference Curve Approach. How is the later approach superior?

   1. उपभोक्ता की बचत से आप क्या समझते हैं? इसके मापने की तुष्टिगुण विचारधारा की सहायता से (ii) तटस्थता वक्र विचाराधारा की सहायता से विवेचना कीजिए। बाद वाली विचारधारा श्रेष्ठ कैसे है?

2. What is Consumer's Surplus? Explain its importance.

   .उपभोक्ता की बचत क्या? इसके महत्व की व्याख्या कीजिए।

   or

   Critically examine the doctrine of Consumer's Surplus. How will you measures consumer's surplus with

the help of indifference curves.

उपभोक्ता बचत सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। तटस्थता वक्रों की सहायता से उपभोक्ता की बचत को किस प्रकार मापेंगे?

3. How will you measure the Consumer's Surplus with the help Indifference Curves?

तटस्थता वक्र की सहायता से उपभोक्ता की बचत को किस प्रकार मापोगे?

4. Critically examine the concept of consumer's surplus.

उपभोक्ता की बचत की धारणा की आलोचनात्मक व्याख्या करें।

5. Explain the concept of Consumer's Surplus with help of Marginal Utility Analysis. What are the difficulties in this measurment?

सीमान्त तुष्टिगुण विश्लेषण की सहायता से उपभोक्ता की बचत की धारणा का वर्णन करें। उपभोक्ता की बचत को मापने में कौन–सी कठिनाइयां हैं?

II. **लघु उत्तर सम्बन्धी प्रश्न**

Short Answer Type Questions

1. Explain the measurment of Conumer's Surplus with the help of IC analysis (Hicksian Analysis) by a diagram.

तटस्थता वक्र विश्लेषण (हिक्स का विश्लेषण) की सहायता से चित्र द्वारा उपभोक्ता की बचत की माप की व्याख्या किजिए?

अध्याय-11

उत्पादन फलन

(Production Function)

उत्पादन फलन को समझने से पहले उत्पादन के सिद्धांत को समझन अति आवश्यक है:–

उत्पादन का सिद्धांत
(Theory of Production)

वस्तु कीमत–निर्धारण (Product Pricing) वस्तु की मांग तथा पूर्ति की शक्तियों पर निर्भर करता है। अब से पहले हम कीमत निर्धारण समस्या (Pricing Problem) के मांग पक्ष (Demand Side) का अध्ययन कर चुके हैं। इस अध्याय तथा कुछ अगले अध्यायों में हम वस्तु के पूर्ति पक्ष (Supply) का अध्ययन करेंगे। जैसा कि हम आगे किसी अध्याय में देखेंगे कि किसी वस्तु की पूर्ति उत्पादन लागत पर निर्भर करती है। वस्तु की उत्पादन लागत दो बातों पर निर्भर करती है:

(i) उपादानों (Inputs) और उत्पादन (Output) में भौतिक संबंध (Physical Relationship) और (ii) उपादानों की कीमतें। उपादानों (inputs) तथा उत्पादन के बीच भौतिक संबंध की सामान्य व्याख्या ही उत्पादन के सिद्धांत (Theory of Production) की विषय–वस्तु है। अन्य शब्दों में उत्पादन का सिद्धांत उन भौतिक नियमों से संबंधित है जो वस्तु के उत्पादन को नियंत्रित करते हैं। (Theory of Production relates to the physical laws governing production of goods —Prof. H.L. Ahuja)

उपादानों का उत्पादन में रूपांतरण Transformation) उत्पादन कहलाता है। अर्थशास्त्र में उत्पादन से अभिप्राय इस रूपांतरण के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की सेवाएं जैसे यातायात, शिक्षा, स्वास्थ्य, वित्तीय आदि सेवाएं उत्पादन कहलाती हैं। उत्पादन के नियम जिनका अध्ययन इस अध्याय में किया गया है इन सभी प्रकार के उत्पादनों पर लागू होते हैं।

एक फर्म के उत्पादन और उपादानों में संबंध उत्पादन फलन (Production Function) कहलाता है। (The relation between input and output of a firm is called production function) इसलिए 'उत्पादन पालन' का उपादान तथा उत्पादन के साधन दोनों शब्द या धारणाएं प्रायः एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग किए जाते हैं। परंतु कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार उपादान शब्द का अर्थ ज्यादा व्यापक (Broodar) है। उपादान उन सभी वस्तुओं को कहा जाता है जिनको उत्पादक ख़रीदते हैं जबकि उत्पादन के साधन केवल श्रम, भूमि, पूंजी तथा उद्यमी को ही कहा जाता है। उपादानों तथा उत्पादन के मध्य संबंध का अध ययन ही उत्पादन का सिद्धांत (Theory of Production) है।

1. **उत्पादन के सिद्धांत का महत्व तथा औचित्य**
   Importance and Relevance of the Theory of Production)

   उत्पादन सिद्धांत के अध्ययन का महत्व तथा औचित्य निम्न तथ्यों से स्पष्ट होता है:

1. **वस्तु कीमत सिद्धांत में महत्व (Importance in the Theory of Product Pricing):** उत्पादन का सिद्धांत वस्तु कीमत निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वस्तु कीमत निर्धारण में उत्पादन सिद्धांत इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह उत्पादन तथा उत्पादन लागत में संबंध स्थापित करता है। उत्पादन लागत उत्पादन के नियमों पर निर्भर करती है। उत्पादन लागत के आधार पर ही वस्तु की पूर्ति नियंत्रित होती है। वस्तु की पूर्ति उसकी मांग के साथ मिलकर उसकी कीमत का निर्धारण करती है। इसलिए वस्तुओं की कीमत निर्धारण में उत्पादन सिद्धांत का विशेष महत्व है।

2. **साधन कीमत सिद्धांत में महत्व (Importance in the Theory of Factor Pricing):** फ़र्म या उत्पादकों द्वारा की गई उत्पादन के साधनों (श्रम, भूमि, पूंजी उद्योगों) की मांग उत्पादन सिद्धांत पर ही आधारित है। फ़र्म की इन उत्पादन के साधनों की मांग इनकी उत्पादकता (Productivity) पर निर्भर करती है। साधनों की उत्पादकता इस बात पर निर्भर करती है कि उत्पादन किस उत्पादन के नियम (Law of Production) के अनुसार किया जा रहा है, जो उत्पादन सिद्धांत का हिस्सा है। अतः साधनों की मांग उत्पादन सिद्धांत के आधार पर ही ज्ञात की जाती हैं तथा यह मांग इनकी पूर्ति के साथ मिलकर इन साधनों की कीमतों (मज़दूरी, लगान, ब्याज, लाभ) का निर्धारण करती है।

3. **फ़र्म के सिद्धांत में उपयोगी (Useful in the Theory of the firm):** फ़र्म का सिद्धांत बताता है कि एक फ़र्म अपने अधिकतम लाभ प्राप्त करना चाहती है तो उसे ज्ञात करना होगा कि वह वस्तु का कितना उत्पादन कर सकती है। यदि फ़र्म अधिकतम लाभ प्राप्त करना चाहती है तो उसे ज्ञात करना होगा कि वह वस्तु का कितना उत्पादन करे ताकि उसका यह उद्देश्य पूरा हो जाए। यह ज्ञात करने के लिए फ़र्म को सीमांत तथा औसत आयवक्रों के साथ–साथ सीमांत तथा औसत लागत वक्र (Mnarginal and average cost curves) भी ज्ञात करने होते हैं। यह सीमांत तथा औसत लागत वक्र उत्पादन सिद्धांत का ही एक भाग हैं। अतः उत्पादन का सिद्धांत फ़र्म के सिद्धांत में भी उपयोगी है।

4. **साधन की सापेक्षिक कीमत निर्धारण में महत्व (Useful in Determination of Relative Factor Prices):** उत्पादन के साधनों की मांग उनकी सीमांत उत्पादकता (Marginal Productivity) पर निर्भर करती है तथा उनकी मांग वक्र उनकी सीमांत उत्पादकता वक्र से निकाली जाती है। यह उत्पादन का सिद्धांत ही है जो साधनों की सीमांत उत्पादकता की व्याख्या करता है। साधनों की सापेक्षिक कीमतें (Relative prices of factors) अर्थात मजदूरी, लगान, ब्याज, लाभ अधिकतर उनकी मांग अथवा सीमांत उत्पादकता पर ही निर्भर करती है। (यह विश्लेषण इस पुस्तक के अंत में अध्ययन किया गया है।) अतः साधनों की सापेक्षिक कीमतें (Relative Prices) अर्थात् एक साधन की कीमत दूसरे साधन से कम या अधिक क्यों है यह उनकी मांग तथा सीमांत उत्पादकता में अंतर पर निर्भर करती है, जो उत्पादन के सिद्धांत में ही अध्ययन किया जाता है। अतः साधन कीमत निर्धारण में उत्पादन का सिद्धांत अति महत्वपूर्ण है।

5. **वितरण में उपयोगी (Helpful in the Theory of Distribution):** राष्ट्रीय आय का विभिन्न उत्पादन साधनों में वितरण कैसे होता है? इस प्रश्न का हल भी उत्पादन के सिद्धांत के आधार पर ही किया जाता है। विभिन्न उत्पादन के साधनों को सामूहिक स्तर पर राष्ट्रीय आय में कितना–कितना हिस्सा प्राप्त होता है यह उनकी उत्पादकता पर निर्भर करता है, जिसका अध्ययन हम उत्पादन के सिद्धांत (Theory of Production) के अंतर्गत ही करते हैं।

   उत्पादन के सिद्धांत की विस्तृत व्याख्या करने से पहले सम–उत्पादन वक्र (Equal or Iso Product curve or Isoquant) की एक उपकरण के रूप में व्याख्या करना अतिआवश्यक है:

सम-उत्पाद वक्र
(Equal Product Curves or Isoquant or Isoproduct Curve)

उत्पादन सिद्धांत में सम उत्पादन वक्र उपभोक्ता सिद्धांत के तटस्थता वक्रों की तरह ही हैं। एक सम–उत्पाद वक्र (Isoquant) उपादानों के उन विभिन्न संयोगों (Combinations) को प्रकट करता है जो किसी वस्तु का समान उत्पादन करने की क्षमता रखते हैं। क्योंकि सम–उत्पाद वक्र उपादानों के उन संयोगों को प्रकट करता है जो उत्पादन की समान मात्रा उत्पादन करने की क्षमता रखते हैं इसलिए उत्पादक उन उपादान संयोगों में चयन के प्रति तटस्थ (Indifferent) रहता है। अन्य शब्दों में सम–उत्पाद वक्र को समान उत्पादन (Equal product) या सम–उत्पादन (Iso product) या उत्पादन तटस्थता वक्र (Production Indifference Curves) आदि नामों से जाना जाता है।

परिभाषाएं (Definitions): कुटसयोनीस के अनुसार, "सम उत्पादन वक्र उत्पादन का एक निश्चित स्तर उत्पादित करने के लिए साधनों के ऐसे सभी संयोगों को दर्शाता है।" (An isoquant is the locus of all the combinations of factors of production for producing a given level of output —A. Koutsoyiannis)

पीटर्सन के अनुसार, "सम–उत्पाद वक्र एक ऐसे वक्र के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो दो परिवर्तनशील साधनों के संभावित संयोगों को प्रकट करता है जिनका समान कुल उत्पादन उत्पादित करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। (An isoquant curve may be defind as a curve showing the possible combinations of two variable factors that can be used to produce the same total output —Peterson)

मान्यताएं (Assumptions)

सम उत्पाद वक्र निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है:

1. **उत्पाद के दो साधन (Two Factors of Production):** सरलता की दृष्टि से यह माना गया है कि उत्पादन के सभी साधनों को केवल दो साधनों, श्रम तथा पूंजी में बांटा जा सकता है।
2. **स्थिर तकनीक (Constant Technique):** सम–उत्पाद वक्र खींचते समय यह भी मान्यता की जाती है कि उत्पादन तकनीक स्थिर रहती है।
3. **साधनों की विभाजनशीलता (Divisibility of Factors):** सम–उत्पाद वक्रों की एक महत्त्वपूर्ण मान्यता यह भी है कि उत्पादन के साधनों को छोटी–छोटी मात्राओं में बांटा जा सकता है तथा उपयोग में लाया जा सकता है।
4. **तकनीकी प्रतिस्थापन (Technical Sustitution):** सम–उत्पाद वक्रों की एक मान्यता यह भी है कि दोनों उत्पादन के साधनों में तकनीकी प्रतिस्थपन्नता पाई जाती है। अर्थात उनका एक निश्चित दर पर प्रतिस्थापन्न किया जा सकता है तथा यह दर घटती जाती है।
5. **कुशल संयोग (Efficient Combinations):** एक महत्वपूर्ण मान्यता यह है कि साधनों के कुशलतम संयोगों (Most efficent combination of the factors) का उत्पादन में प्रयोग किया जाता है।

व्याख्या (Explanation): तालिका 7.1 तथा इसी पर आधारित रेखाचित्र 1 की सहायता से सम–उत्पाद वक्र (Isoquant curve) की व्याख्या की जा सकती है:

Table 1

Various Factor Combinations to produce a Given Level of Output

Factor combinations	Capital (K)	Labour (L)	Output of X commodity
A	1	12	100
B	2	8	100
C	3	5	100
D	4	3	100
E	5	2	100

तालिका 1 से स्पष्ट है कि श्रम तथा पूंजी का प्रत्येक संयोग A, B, C, D तथा E वस्तु की 100 इकाइयां उत्पादित करता है। A संयोग में पूंजी की एक इकाई तथा श्रम की 12 इकाइयां X वस्तु की 100 इकाइयों का उत्पादन करती हैं।

X वस्तु का इतना ही उत्पादन करने के लिए B संयोग में पूंजी की 2 इकाई तथा श्रम की 8 इकाइयां, C संयोग में पूंजी की 3 तथा श्रम की 5 इकाइयां, D संयोग में पूंजी की 4 इकाइयां तथा श्रम की 3 इकाइयां तथा E संयोग में पूंजी की 5 इकाइयां तथा श्रम की 2 इकाइयों की आवश्यकता है।

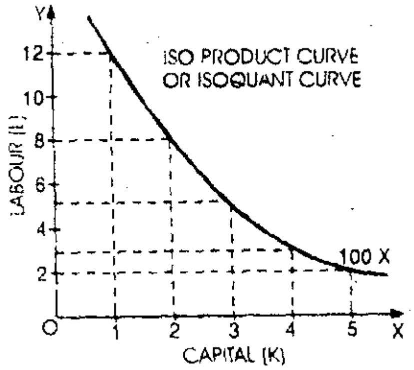

चित्र 1

रेखाचित्र 1 में इन सभी संयोगों को प्रकट किया गया है तथा इन सभी संयोगों को मिलाने से हमें सम–उत्पाद वक्र (Isoquant curve) प्राप्त होता है। यह वक्र दर्शाता है कि इस पर पड़ने वाला साधनों का प्रत्येक संयोग समान उत्पादन करता है।

तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर
(Marginal Rate of Technical Substitution)

साधनों में प्रतिस्थापन्नता का गुण होता है। एक साधन की दूसरे साधन के लिए प्रतिस्थापन की सीमांत दर सम–उत्पाद वक्र (Isoquant curve) के ढाल से ज्ञात की जा सकती है। सम–उत्पाद वक्र पर किसी बिन्दु के ढाल से ज्ञात होता है कि उत्पादन स्थिर रखते हुए किसी साधन की एक इकाई दूसरे साधन की कितनी इकाइयों को प्रतिस्थापित कर सकती है, इसी को तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर (Marginal Rate of Technical Substitution or MRTS) कहते हैं। अन्य शब्दों में तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर (MRTS) वह दर है जिस पर उत्पादन में परिवर्तन किये बिना साधनों को प्रतिस्थापित किया जाता है। (Marginal Rate of Technical substitution indicates the rate at which factors can be substituted at the margin without altering the level of output.)

परिभाषा (Definition): लिप्सी के अनुसार, "तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर उस दर के रूप में परिभाषित की जा सकती है जिस पर उत्पादन को स्थिर रखते हुए एक साधन को दूसरे के लिए प्रतिस्थापित किया जाता है।" (The marginal rate of technical substitution may be defined as the rate at which one factor is substituted for another with output held constant —Lipsey)

तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर की धारणा को तालिका 7.2 की सहायता से समझा जा सकता है।

तालिका 7.2 में उत्पादन के साधनों का प्रत्येक A, B, C, D तथा E संयोग उत्पादन का समान स्तर उत्पादित करता है। जब हम संयोग A से B पर पहुंचते हैं तो उत्पादन के स्तर को परिवर्तन किए बिना पूंजी (K) की एक इकाई श्रम (L) की 4 इकाइयों को प्रतिस्थापित कर देती है। इसलिए इस अवस्था में तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर 4 है।

Table 2

तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर

Factor combinations	Capital (K)	Labour (L)	Output of X commodity
A	1	12	—
B	2	8	4
C	3	5	3
D	4	3	2
E	5	2	1

संयोग B से C पर पहुंचने पर पूंजी की एक इकाई श्रम की 3 इकाइयों को प्रतिस्थापित कर सकती है तथा उत्पादन स्थिर रहता है। इसी प्रकार $MRTS_{KL}$ संयोग C से D पर पहुंचने पर 2 तथा D और B के मध्य यह 1 है।

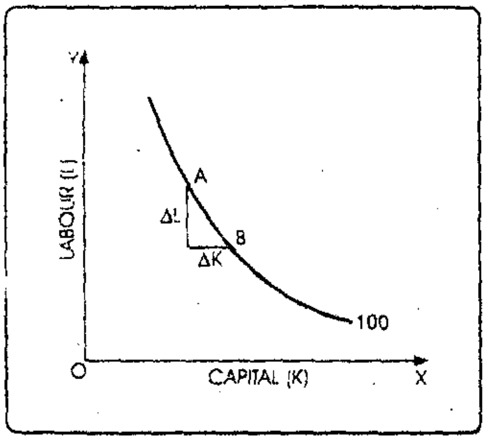

चित्र 2

सम–उत्पाद वक्र के किसी बिन्दु पर $MRTS_{KL}$ इस व्रक के उस बिन्दु पर ढाल से ज्ञात किया जा सकता है। निम्न चित्र 2 में समउत्पाद वक्र P_1 पर बिन्दु A से बिन्दु B पर श्रम (L) की थोड़ी सी मात्रा (ΔL) को पूंजी की कुछ मात्रा ΔK उत्पादन में परिवर्तन किए बिना प्रतिस्थापित कर देती हैं। सम–उत्पाद वक्र P_1 के A संयोग के बिन्दु पर ढाल $\frac{\Delta L}{\Delta K}$ के समान है। ढाल हमेशा लंब/आधार होता है। अतः $MRTS = Slope = \frac{\Delta L}{\Delta K}$

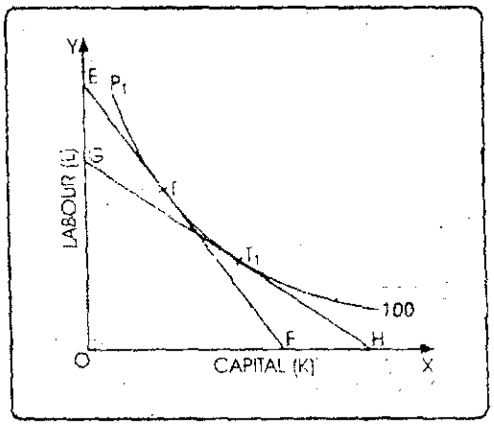

चित्र 3

सम उत्पादन वक्र के किसी बिन्दु पर ढाल तथा MRTS उस बिन्दु पर स्पर्श रेखा (Tangent) खींच कर भी ज्ञात किया जा सकता है जैसा चित्र 3 में T बिन्दु पर दर्शाया गया है। समउत्पाद वक्र P_1 के T बिन्दु पर ढाल EF स्पर्श रेखा द्वारा प्रकट किया गया है। EF स्पर्श रेखा का ढाल OE/OF के बराबर है इसलिए T बिन्दु पर MRTS हमेशा OE/OF के बराबर होगा। इसी सम–उत्पाद वक्र P_1 के T_1 बिन्दु पर ढाल तथा $MRTS_{KL}$ OG/OH के समान होगा।

तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर के संबंध में एक महत्वपूर्ण तथ्य जिसका ध्यान रखा जाना चाहिए वह है कि यह हमेशा दोनों साधनों की सीमांत भौतिक उत्पादन (Marginal Physical Product of Two Factors) के बराबर होती है। श्रम की मात्रा

में कमी के कारण जो कुल भौतिक उत्पादन में कमी होती है वह पूंजी की मात्रा में वृद्धि के कारण जो कुल भौतिक उत्पादन में प्राप्ति होती है उसके बराबर होती है। कुल उत्पादन में कमी श्रम की सीमांत भौतिक उत्पादन को श्रम की मात्रा में हुई कमी से गुणा करने के बराबर ($MP_L \times \Delta L$) होती है। इसी प्रकार कुल उत्पादन में वृद्धि पूंजी की सीमांत भौतिक उत्पादन को पूंजी की मात्रा में हुई वृद्धि से गुणा करने के बराबर ($MP_K \times \Delta K$) होती है। अतः

Loss in output = Gain in output

$$\Delta L x MP_L = \Delta K \times MP_K$$

$$\frac{\Delta L}{\Delta K} = \frac{MP_K}{MP_L}$$

परंतु जैसा हम जानते हैं कि $\Delta L/\Delta K$ परिभाषा अनुसार K साधन की L साधन के लिए तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर ($MRTS_{KL}$) है।

$$\therefore MRTS_{KL} = MP_K/MP_L$$

अतः स्पष्ट है कि K साधन की L साधन के लिए तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर K साधन की सीमांत भौतिक उत्पादन का L साधन की सीमांत भौतिक उत्पादन से अनुपात के बराबर होती है।

तकनीकी प्रतिस्थापन की घटती सीमांत दर
(Diminishing Marginal Rate of Substitution)

तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि ज्यों–ज्यों हम किसी साधन X की मात्रा बढ़ाकर किसी साधन Y को प्रतिस्थापित करते जाते हैं तो यह MRTSxy गिरती जाती है अन्य शब्दों में ज्यों–ज्यों हम पूंजी की मात्रा बढ़ाते हैं तो श्रम की मात्रा में कमी करनी पड़ती है, ताकि उत्पादन का स्तर स्थिर रहें, वह त्यों–त्यों घटती जाती है। इसी प्रवृति को घटते तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर का नियम (The principal of Diminishing Marginal Rate of Technical Substitution) कहते हैं। इस नियम का आधार घटते प्रतिफल का नियम (Law of Diminishing Returns) है। ज्यों हम सम–उत्पाद वक्र पर इस प्रकार चलते हैं कि पूंजी की मात्रा बढ़ती तथा श्रम की मात्रा घटती है तो पूंजी का सीमांत भौतिक उत्पादन घटता तथा श्रम की सीमांत भौतिक उत्पादन बढ़ता है। इसलिए ज्यों–ज्यों पूंजी की मात्रा बढ़ाई जाती है तो वह श्रम की कम से कम मात्रा को ही प्रतिस्थापित कर सकती है।

जिस दर पर तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर घटती है उस दर से दोनों साधनों में कितनी प्रतिस्थापनता (Substitutability) है इसका ज्ञान प्राप्त होता है। यदि यह गिरने की दर बहुत अधिक है तो दोनों साधनों में प्रतिस्थापनता कम होगी तथा यदि यह दर बहुत कम गिरती है तो दोनों साधनों में प्रतिस्थापनता उतनी ही अधिक होगी। यदि यह दर बिल्कुल नहीं गिरती है तो दोनों साधन एक दूसरे के पूर्ण प्रतिस्थापन (Perfect Substitute) होते हैं। यदि दोनों साधन पूरक हैं तो सम उत्पाद वक्र 90^0 का कोण बनाएगा तथा उनमें प्रतिस्थापनता नहीं पाई जाती।

सम-उत्पाद मानचित्र
(Isoquant Map)

सम–उत्पाद मानचित्र सम–उत्पाद वक्रों का समूह होता है तथा इसमें प्रत्येक उत्पादन स्तर को प्रकट किया जा सकता है। ऊंचे वाला सम–उत्पाद वक्र, जिसमें नीचे वाले सम उत्पाद वक्र की तुलना में किसी एक या दोनों साधनों की अधिक मात्रा होती है, अधिक उत्पादन को प्रकट करता है जैसा कि रेखाचित्र 4 में दर्शाया गया है। उद्‌गम या मूल बिन्दु से सम–उत्पाद वक्र जितना दूर होगा उतना ही अधिक वह उत्पादन का स्तर प्रकट करता है।

चित्र 4 में P_1, P_2, P_3 तथा P_4 विभिन्न उत्पादन स्तरों को प्रकट करते हैं। P_4 वक्र P_3 वक्र से अधिक उत्पादन स्तर, P_3 वक्र P_2 वक्र से तथा P_2 वक्र P_1 वक्र से अधिक उत्पादन को दर्शा रहे हैं। अतः सम उत्पाद वक्र जितनी ऊंची होगी उतना ही वह ऊंचे उत्पादन स्तर को व्यक्त करती है।

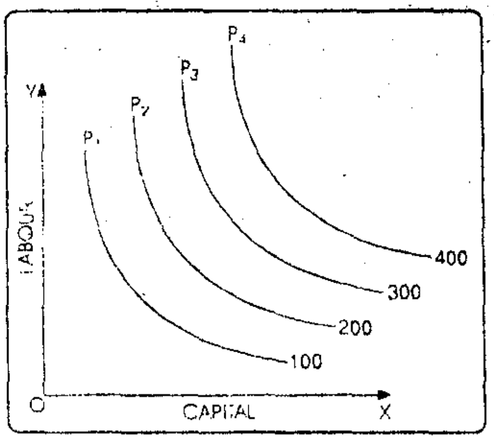

चित्र 4

ध्यान रहे इन सम उत्पाद वक्रों के मध्य भी अनेक सम उत्पाद वक्र विद्यमान हैं जिन सभी को चित्र में प्रकट करना असंभव सा है। हां उत्पादक जितना कोई उत्पादन का स्तर उत्पादित करता है या करना चाहता है उसको सम उत्पाद वक्र से अवश्य प्रकट किया जा सकता है।

3. सम उत्पाद वक्रों की विशेषताएं (Characteristics or Properties of Isoquant curves)

सम–उत्पाद वक्रों की विशेषताएं समान्यतः तटस्थता वक्रों की विशेषताओं के अनुरूप ही है, जिनकी व्याख्या निम्न प्रकार से की गई है:

1. **ऋणात्मक ढाल (Negative Slope):** तटस्थता वक्र की तरह सम–उत्पाद वक्र का ढाल भी ऊपर से नीचे तथा बाएं से दाईं ओर होता है अर्थात इसका ढाल ऋणात्मक होता है। इसका कारण दोनों साधनों में प्रतिसीापनता का होना होता है। ज्यों हम एक साधन की मात्रा बढ़ाते है तो उत्पादन के स्तर को स्थिर रखते हुए दूसरे साधन मी मात्रा घटाते या कम करते हैं। ऐसा करने से सम–उत्पाद वक्र ऊपर से नीचे बाईं ओर से दाईं ओर ढलान वाला होगा। ऋणात्मक ढाल का अर्थ है कि सम उत्पाद वक्र पर एक साधन की मात्रा में वृद्धि की जाती है तो दूसरे साधन की मात्रा कम या ऋणात्मक (—) कर दी जाती है जैसा कि चित्र 5 में दर्शाया गया है।

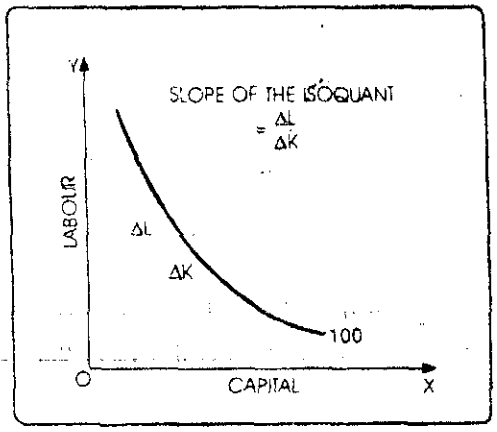

चित्र 5

2. **सम-उत्पाद वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर होते हैं (Isoquant Curves are convex to the origin):** तटस्थता वक्रों की तरह सम–उत्पाद वक्र भी उद्गम या मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर होते हैं। इसका कारण तकनीकी

प्रतिस्थापन की घटती सीमांत दर (Diminishing Marginal Rate of Technical Substitution) है। तकनीकी प्रतिस्थापन की घटती सीमांत दर के नियम के अनुसार ज्यों–ज्यों हम किसी एक साधन की मात्रा बढ़ाते हैं तो इस साधन की दूसरे साधन को प्रतिस्थापन करने की शक्ति कम–कम हो जाती है। जैसा कि चित्र 6 से स्पष्ट है इसका कारण बढ़ते साधन पर घटते सीमांत प्रतिफल का नियम तथा घटते साधन पर बढ़ते सीमांत प्रतिफल का नियम लागू होना है। इन परिस्थितियों में सम उत्पाद वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर ही हो सकती है जैसा कि चित्र 6 में दर्शाया गया है। ज्यों हम A से B, C तथा D बिन्दु की ओर जाते हैं तो MRTS xy (L/K) गिरता जाता है। अर्थात पूंजी की मात्रा में प्रत्येक वृद्धि के साथ श्रम की मात्रा घटती दर पर कम करते हैं ताकि उत्पादन का स्तर समान बना रहे क्योंकि पूंजी का सीमांत उत्पादन या प्रतिफल गिरता जाता है तथा श्रम का सीमांत उत्पादन या प्रतिफल बढ़ता जाता है।

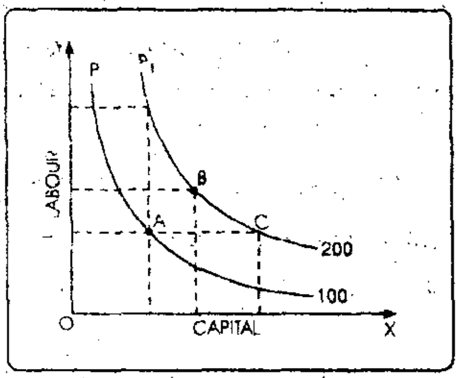

चित्र 6

3. **दो सम-उत्पाद वक्र एक दूसरे को काट नहीं सकते (No Two Isoquant curves can intersect each other):** यदि दो सम–उत्पाद वक्र एक दूसरे को काटते हैं तो इसका अर्थ है कि उत्पादन के दोनों साधनों का एक जैसा सामान्य संयोग है जो दो सम उत्पाद वक्रों को दर्शाता हे या दो उत्पादन स्तरों को दर्शाता है। अर्थात दोनों साधनों का एक संयोग ऐसा है जो सम उत्पाद वक्र 100 तथा सम–उत्पाद वक्र 200 दोनों को प्रकट करता है जैसा चित्र 7 में A संयोग दर्शाता है। परंतु यह कभी नहीं हो सकता कि तकनीक के स्थिर रहते हुए वहीं संयोग वस्तु की 100 इकाई भी उत्पादित करता है तथा वही संयोग 200 इकाई भी उत्पादित करता है। तर्क के आधार पर भी।

A = B तथा A = C क्योंकि ये एक ही सम उत्पाद वक्र पर हैं

∴ A = C परंतु A ≠ C क्योंकि ये अलग–अलग सम–उत्पाद वक्रों पर स्थापित हैं। अर्थात् दो सम उत्पाद वक्र एक दूसरे को कभी नहीं काट सकते।

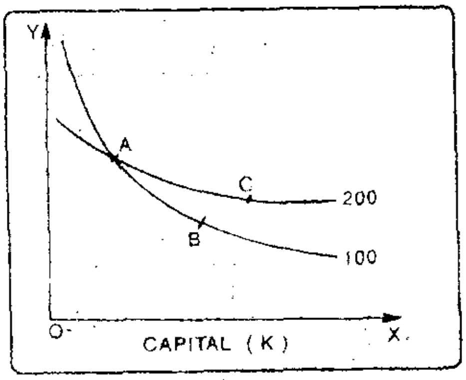

चित्र 7

4. **सम-उत्पाद वक्र जितना ऊंचा होता है उतना ही उत्पादन का अधिक स्तर होता है (The higher the Isoquant curve higher will be the level of output):** यह स्वामाविक है कि सम उत्पाद वक्र जितना ऊंचा होगा वह उतना

ही अधिक उत्पादन का स्तर प्रकट करेगा। इसका कारण यह है कि ऊंचे वाले सम–उत्पाद वक्र पर दोनों साधनों या किसी एक साधन की मात्रा दूसरे से अधिक होगी जिससे उत्पादन अधिक होगा जैसा कि निम्न चित्र 8 में दर्शाया गया है।

चित्र 8 में दर्शाया गया है कि A संयोग सम उत्पाद वक्र P पर स्थापित है तथा उत्पादन की 100 इकाई उत्पादित करता है। B संयोग ऊंचे वाले सम–उत्पाद वक्र P_1 पर स्थापित है तथा 200 इकाई उत्पादन देता है। इसका कारण यह है कि B संयोग में A की तुलना में दोनों साधनों की मात्रा अधिक है। इसी प्रकार संयोग C संयोग A की तुलना में अधिक उत्पादन इस कारण देगा क्योंकि C संयोग में श्रम की मात्रा तो उतनी ही है परंतु पूंजी की मात्रा ज्यादा है। D संयोग में A संयोग की अपेक्षा श्रम की मात्रा ज्यादा तथा पूंजी की उतनी ही मात्रा है। अतः जितना ऊंचा सम–उत्पाद वक्र होगा उतना ही अधिक उत्पादन का स्तर होगा।

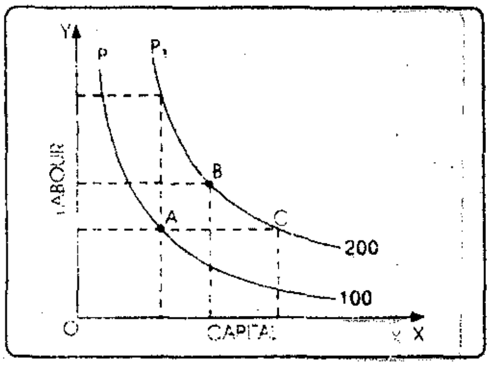

चित्र 8

5. **सरल रेखीय सम उत्पाद वक्र (Linear Isoquant Curve):** जब दोनों उत्पादन के साधन एक दूसरे के पूर्ण प्रतिस्थापन (Perfect substitutes) हों तो सम–उत्पाद वक्र की आकृति एक सरल रेखीय (Linear) होगी तथा इसका ढाल ऋणात्मक होगा जैसा कि चित्र 9 में दर्शाया गया है। जब दोनों साधन पूर्ण प्रतिस्थापन हों तो वस्तु की एक निश्चित मात्रा का उत्पादन केवल पूंजी के प्रयोग से या केवल श्रम के प्रयोग से या श्रम और पूंजी के अनेक संयोगों को प्रयोग करके उत्पादित किया जा सकता है। यह स्थिति चित्र 9 में P_1 सम उत्पाद वक्र P_1 द्वारा दर्शाई गई है जो किसी वस्तु की 100 इकाइयों के उत्पादन को प्रकट कर रहा है।

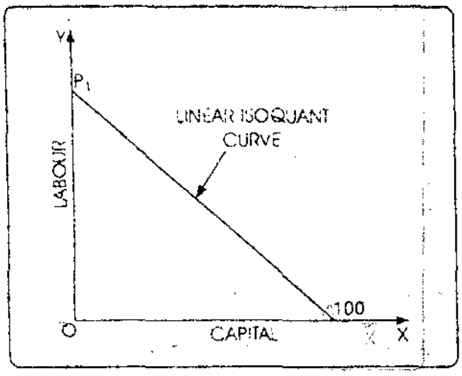

चित्र 9

6. **लेओन्टिफ समउत्पाद या उपादान-उत्पादन समउत्पाद वक्र (Leontief Isoquant or input-output Isoquant):** प्रसिद्ध अर्थशास्त्री लेओन्टिफ (Leontief) ने पूर्ण पूरक पदार्थों के संबंध में सम–उत्पाद वक्र का आविष्कार किया था। उन्हीं के नाम से यह सम–उत्पाद वक्र जाना गया। ऐसी परिस्थिति में जब दोनों साधन एक दूसरे के पूर्ण रूप से पूरक हों तथा उनमें प्रतिस्थापनता का अंश शून्य हो तो समउत्पाद वक्र की आकृति समकोणीय होगी जैसा की चित्र 10 में दर्शाया गया है। यहां पर पूंजी तथा श्रम एक दूसरे के पूर्ण पूरक (Perfect Complementary) पदार्थ हैं। P_1

समउत्पाद वक्र को उपादान–उत्पादन सम–उत्पाद वक्र (Input-output Isoquant) भी कहा जा सकता है क्योंकि उत्पादन बढ़ाने के लिए उपादानों को समान अनुपात में बढ़ाना पड़ता है।

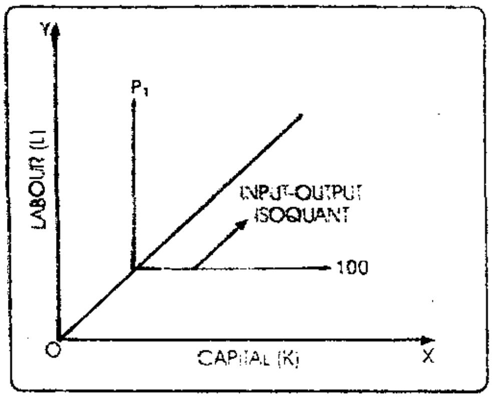

चित्र 10

7. **मोड़दार सम-उत्पाद (Kinked Isoquant):** जब श्रम तथा पूंजी दोनों साधनों में प्रतिस्थापनता सीमित हो तो सम–उत्पाद वक्र मोड़दार (Kinked Isoquant) होगा जैसा कि चित्र 11 में दर्शाया गया है:

साधनों की प्रतिस्थापनता a से b तथा b से c तक पहुंचने तक ही है तथा इन संयोगों के मध्य में साधनों के संयोग नहीं बन सकते, यदि बनते हैं तो वे आर्थिक दृष्टिकोण से लाभकारी नहीं है।

इनको क्रिया विश्लेषण सम उत्पाद या लीनियर प्रोग्रामिंग समउत्पाद (Linear-Programming Isoquant) भी कहा जाता है। वास्तव में इस प्रकार के समउत्पाद वक्र को **Linear Programming** में प्रयोग किया जाता है।

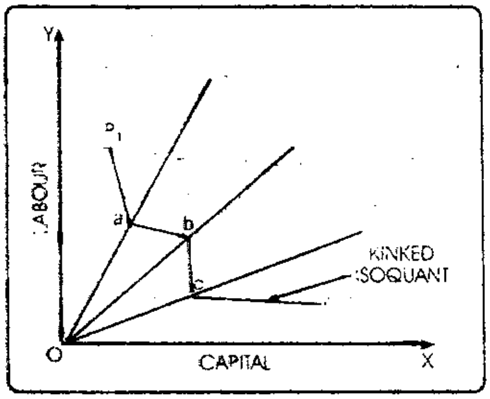

चित्र 11

8. **निरंतर समउत्पाद (Smooth Isoquant):** समउत्पाद वक्र की यह आकृति पूंजी तथा श्रम के बीच निरंतर प्रतिस्थापनता (continous substitutability of K and L) को एक सीमित सीमा (Over a Limited Range) में ही प्रकट करती है जैसा कि चित्र 12 में दर्शाया गया है।

चित्र 12 में P समउत्पाद वक्र पर केवल A तथा B बिन्दु के बीच ही श्रम तथा पूंजी में प्रतिस्थापनता है, इन बिन्दुओं के बाहर नहीं।

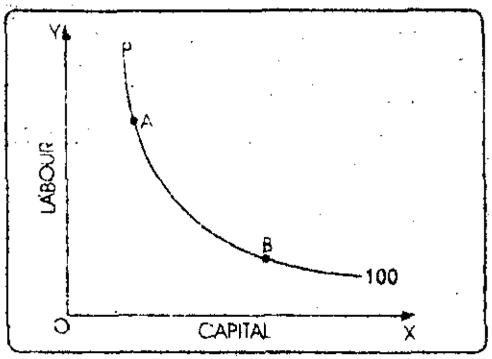

चित्र 12

सम-उत्पाद वक्रों तथा तटस्थता वक्रों में अंतर
(Difference between Isoquant curves and Indifference curves)

तटस्थता वक्रों तथा सम–उत्पाद वक्रों के बीच मुख्य अंतर निम्नलिखित हैं:

1. तटस्थता वक्र दो वस्तुओं के ऐसे संयोगों को व्यक्त करता है जिनसे उपभोक्ता को समान संतुष्टि प्राप्त होती है। दूसरी ओर सम उत्पाद वक्र दो उत्पादन के साधनों के उन विभिन्न संयोगों को प्रकट करता है जिनसे उत्पादक को समान उत्पादन प्राप्त होता है।
2. तटस्थता वक्र जिस संतुष्टि स्तर को व्यक्त करता है उसको इकायों में मापा नहीं जा सकता, हां तुलना की जा सकती है। इसके विपरीत सम–उत्पाद वक्र जिस उत्पादन स्तर को व्यक्त करता है उसको मात्रा या संख्या में व्यक्त किया जा सकता है।
3. तटस्थता वक्रों का संबंध उपभोग क्षेत्र से है जबकि सम उत्पाद वक्रों का संबंध उत्पादन क्षेत्र से है।
4. तटस्थता वक्र वस्तुओं के संयोग को प्रकट करती है जबकि सम–उत्पाद वक्र साधनों के संयोगों को प्रकट करती है।
5. तटस्थता वक्र का ढाल दो वस्तुओं के बीच पाए जाने वाले प्रतिस्थापन की सीमांत दर (MRS) को व्यक्त करता है जबकि सम–उत्पाद वक्र का ढाल दो साधनों के बीच तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर (MRTS) को व्यक्त करता है।
6. तटस्थता वक्र उपभोक्ता के संतुलन स्थापित करने में सहायक होते हैं जबकि सम–उत्पाद वक्र उत्पादक को संतुलन बिन्दु प्राप्त करने में सहायक सिद्ध होते हैं।

सम–उत्पाद वक्र, तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर, सम–उत्पाद वक्रों की विशेषताएं, आदि का अध्ययन करने के बाद अब हम उत्पादन सिद्धांत का अध्ययन करेंगे। वस्तुतः उत्पादन फलन का अध्ययन ही उत्पादन सिद्धांत का अध्ययन है।

4. उत्पादन फलन
(Production Function)

हम जानते हैं कि भौतिक उत्पादनों (Physical Inputs) का भौतिक उत्पादन में रूपांतरण ही उत्पादन कहलाता है। इसलिए उत्पादन हमेशा उपादानों का फलन (Function) या उपादानों पर निर्भर करता है। अतः एक फर्म के भौतिक उपादानों तथा भौतिक उत्पादन के बीच फलनात्मक संबंध (Functional Relationship) को उत्पादन फलन के नाम से जाना जाता है। कुटसोयनीज के अनुसार, "उत्पादन फलन उपादान साधनों (Factor inputs) और उत्पादन को जोड़ने वाला एक शुद्ध तकनीकी संबंध है।" (The Production function is a purely technical relation which connects factor inputs and output —A. Koutsoyiannis)। ध्यान रहे कि उत्पादन फलन में उत्पादन के सभी तकनीकी दृष्टि से कुशल विधियां (Technically efficient methods of Production) शामिल होती हैं। जैसे:

उत्पादन की एक इकाई उत्पादित करने के लिए उत्पादन साधनों का जो संयोग आवश्यक होता है वह उत्पादन की एक विधि या प्रक्रिया (Process) कहलाता है। प्रायः एक वस्तु उत्पादन की विभिन्न विधियों (Various methods of production) द्वारा उत्पादित की जा सकती है। उदाहरणतः x वस्तु की एक इकाई निम्न तरीकों या प्रक्रिया (Processes) द्वारा उत्पादित की जा सकती है:

उत्पादन विधि (Techniques of Production)	**x वस्तु की एक इकाई उत्पादित करने के लिए श्रम (L) तथा पूंजी (K) की इकाइयों के संयोग की आवश्यकता**	
	Units of L	Units of K
P1	2	3
P2	3	2
P3	1	4

उत्पादन की उपरोक्त तीनों विधियों को निम्न चित्र 13 में मूल बिन्दु से निकलती हुई रेखाओं की लंबाई द्वारा प्रकट किया गया है। इन रेखाओं की लंबाई उत्पादन की विधियों (Technique of Production) से संबंधित हैं। P_1 रेखा उत्पादन की P_1 विधि को व्यक्त करती है तथा इस विधि में जो श्रम (L) तथा पूंजी (K) की इकाइयां चाहिए उसी ओर संकेत करती हैं। इसी प्रकार P_2 तथा P_3 रेखाएं भी उत्पादन के P_2 तथा P_3 विधियों या प्रक्रिया (Process) को व्यक्त करती हैं।

उत्पादन की विधि A किसी दूसरी विधि B से अपेक्षाकृत तकनीकी कुशल (technically efficient) होगी यदि A कम–से–कम किसी एक साधन का कम मात्रा का प्रयोग करती है तथा यह दूसरा साधन उतनी ही मात्रा प्रयोग करती है जितना कि B विधि। उदाहरणतः y वस्तु दो विधियों से उत्पादित की जा सकती है। y की एक इकाई का उत्पादन करने के लिए दोनों विधियों में जो श्रम और पूंजी के संयोग चाहिए वे अग्र प्रकार है:

Methods (Techniques)	**L**	**K**
A	2	3
B	3	3

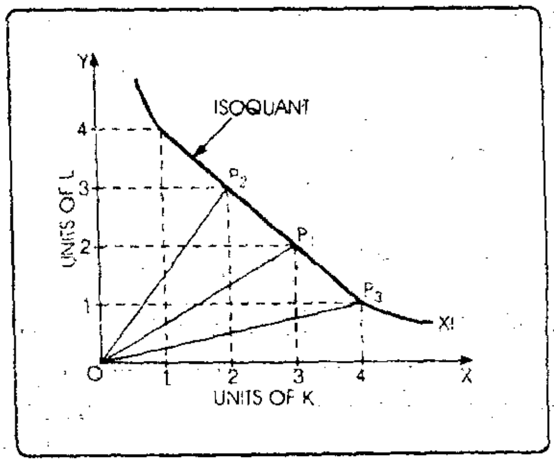

चित्र 13

उपरोक्त तालिका के अनुसार उत्पादन की A विधि B विधि से तकनीकी आधार पर श्रेष्ठ या कुशल (Technically efficient)

है क्योंकि A में श्रम की एक इकाई का कम प्रयोग किया जाता है तथा पूंजी की इकाइयों का B विधि के बराबर प्रयोग किया जाता है।

उत्पादन का आधारभूत सिद्धांत हमेशा उत्पादन के केवल कुशल तरीकों या विधियों का ही अध्ययन करता है। एक विवेकशील *प्रबंधक या उद्यमी कभी भी अकुशल विधियों का प्रयोग नहीं करता है।*

यदि उत्पादन की A विधि B की तुलना में किसी एक साधन की कम मात्रा का प्रयोग करती है और दूसरे साधन की अधिक मात्रा का प्रयोग करती है तो A तथा B विधियों की प्रत्यक्ष तुलना तकनीकी कुशलता के आधार से नहीं की जा सकती। उदाहरणतः निम्न तालिका में उत्पादन की विधियों (A and B) की प्रत्यक्ष तुलना केवल तकनीकी कुशलता के आधार पर नहीं की जा सकती है। इन दोनों ही विधियों को तकनीकी कुशल समझा जाएगा तथा दोनों ही उत्पादन फलन (Production Function) के अध्ययन का विषय हैं।

Methods (Techniques)	L	K
A	2	3
B	1	4/

चित्र 14

इन दोनों विधियों में से किसी निश्चित समय पर प्रबंधक (Manager) किस को अपनाएगा यह श्रम तथा पूंजी साधनों की कीमतों पर निर्भर करता है। उत्पादन फलन (Production Function) केवल भौतिक उत्पादन के नियमों को व्यक्त करता है। इसका कार्य केवल उपादान साधनों तथा उत्पादन में संबंध स्थापित करना है। विभिन्न उत्पादन की कुशल विधियों या तकनीकों में से किसी एक निश्चित तकनीक को चुनना एक आर्थिक समस्या है न कि तकनीकी समस्या क्योंकि किस उत्पादन विधि को चुनना है यह साधनों या उपादान साधनों की कीमतों पर निर्भर करता है जो इसको एक आर्थिक समस्या का रूप दे देता है। *फर्म किस उत्पादन विधि या तकनीक का चयन करती है यह आगे किसी अध्याय में अध्ययन किया गया हैं।* परंतु यहां ध्यान देने की बात यह है कि तकनीकी आधार पर कुशल विधि का होना जरूरी नहीं है कि वह आर्थिक आधार पर भी श्रेष्ठ होगी।

किसी दिए हुए निश्चित उत्पादन को साधनों के विभिन्न संयोगों द्वारा उत्पादित किया जा सकता है। इसके आधार पर ही समउत्पाद वक्र (Isoquant) निकाला जाता है। विशेष बात यह है कि समउत्पाद वक्र में केवल उन संयोगों या विधियों को शामिल किया जाता है जो तकनीकी आधार पर कुशल (Technically efficient) समझे गए हों। यद्यपि सम उत्पाद वक्र (Isoquant) की आकृति, जैसा हम इसकी विशेषताओं में अध्ययन कर चुके हैं, साधनों की प्रतिस्थापन के दर्जे (Degree) पर निर्भर करती है।

उत्पादन फलन किसी एक सम–उत्पाद वक्र को ही नहीं दर्शाता बल्कि उन सभी सम उत्पाद वक्रों को दर्शाता है जिनको उपादान साधनों के श्रेष्ठ समझे गए विभिन्न संयोग उत्पादित कर सकते हैं। प्रत्येक समउत्पाद वक्र उत्पादन का अलग स्तर व्यक्त करता है।

उत्पादन फलन को बीजगणितीय ढंग से निम्न प्रकार लिखा जा सकता है:

$Q = f(L, s, k \ldots\ldots)$

Q = उत्पादन की मात्रा; L = श्रम की मात्रा; s = भूमि की मात्रा; k = पूंजी की मात्रा आदि।

यह समीकरण व्यक्त करता है कि उत्पादन की Q मात्रा, भूमि, श्रम तथा पूंजी की मात्रा क्रमशः L, s, k, का फलन है या इन पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए एक किसान गेहूं की एक फसल Q उगाने के लिए भूमि, श्रम तथा पूंजी की कुछ मात्रा का प्रयोग करता है इस प्रकार उत्पादन फलन विभिन्न उपादान साधनों तथा उत्पादन के बीच संबंध व्यक्त करता है। वास्तव में सही रूप से (More precisely) उत्पादन–फलन की उस अधिकतम मात्रा को व्यक्त करता है जिसको विभिन्न उपादानों (inputs) की दी हुई मात्रा से उत्पादित किया जा सकता है या यह विभिन्न उपादानों की उस कम–से–कम मात्रा को व्यक्त करता है जो उत्पादन की दी हुई मात्रा को उत्पादित करने के लिए चाहिए। अन्य शब्दों में उत्पादन फलन गेंहू के उस अधिकतम

उत्पादन को व्यक्त करता है जिसका उत्पादन एक किसान अपनी सीमित भूमि, श्रम तथा पूंजी की सहायता से कर सकता है।

उत्पादन–फलन का ज्ञान वास्तव में तकनीकी या इन्जिनियरिंग ज्ञान ही है और यह फर्म के इंजिनियर या उत्पादन प्रबंधक (Production Manager) द्वारा प्रदान किया जाता है। उत्पादन–फलन के संबंध में निम्न दो बातों का ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिए:

1. उत्पादन–फलन का संबंध मांग फलन की तरह एक विशेष समय अवधि से होता है। उत्पादन–फलन एक निश्चित समय अवधि में उपादानों के सहयोग से निकलता हुए उत्पादन का एक प्रवाह होता है।
2. एक फर्म का उत्पादन–फलन उत्पादन में प्रयोग की गई तकनीक की अवस्था (State of Technology) द्वारा निर्धारित होता है। जब प्रयोग की गई तकनीक में प्रगति होती है तो उत्पादन–फलन में वृद्धि होती है तथा उन्हीं साधनों से उत्पादन अधिक प्राप्त होता है।

अर्थशास्त्र में दो प्रकार के उत्पादन–फलनों (Production Function) या उपादान–उत्पादन संबंधों का अध्ययन किया जाता है:

(i) पहले हम ऐसे उत्पादन–फलन का अध्ययन करते हैं जिसमें कुछ उपादान साधनों की मात्रा स्थिर रखी जाती है तथा एक साधन की मात्रा में परिवर्तन किया जाता है। इस प्रकार के उत्पादन फलन के अंतर्गत उपादान–उत्पादन संबंध (Input-output relation) को 'घटते–बढ़ते अनुपातिकता का नियम' (The Law of Variable Proportions) के नाम से जाना जाता है। हम जानते हैं कि केवल अल्पकाल (Short Period) में ही कुछ साधनों को स्थिर रखा जा सकता है, इसलिए घटते–बढ़ते अनुपातिकता का नियम अल्पकाल उत्पादन फलन (Short Run Production Function) से संबंध रखता है।

(ii) दूसरे हम ऐसे उत्पादन–फलन का अध्ययन करते हैं जिसमें सभी उपादानों (Inputs) की मात्रा में परिवर्तन किया जाता है। अर्थात जब सभी उपादानों को घटाया या बढ़ाया जाता है तो उत्पादन किस प्रकार से बदलता है। इस प्रकार का उपादान–उत्पादन संबंध 'पैमाने के प्रतिफल के नियम' (Law of Returns to Scale) की विषय वस्तु है। क्योंकि दीर्घकाल में सभी साधनों को परिवर्तित किया जा सकता है इसलिए पैमाने के प्रतिफल का नियम दीर्घकालीन उत्पादन–फलन (Long Run Production Function) से संबंधित है।

उपरोक्त दोनों नियमों 'घटते–बढ़ते अनुपातिकता का नियम' तथा पैमानें के प्रतिफल का नियम' अगले अध्याय में अध्ययन किए गए हैं। इस अध्याय में अब आगे उत्पादन–फलन का ग्राफिक विवरण तथा इसकी मुख्य किस्मों (Forms) का अध्ययन किया गया है।

मान्यताएं (Assumptions)

1. उत्पादन फलन किसी निश्चित समय अवधि से संबंध रखता है।
2. सभी साधनों की मात्रा को दीर्घ काल में घटाया बढ़ाया जा सकता है। परंतु अल्पकाल में एक साथ की मात्रा को घटाया बढ़ाया जा सकता है तथा इसके अन्य साधनों की स्थिर पूर्ति रखी जाती है।
3. उत्पादन की तकनीक (Technology) स्थिर रहती है।
4. उत्पादन को इकाइयों में मापा जा सकता है।

उत्पादन फलन का ग्राफिक प्रदर्शन
(Graphic Representation of Production Function)

समीकरण द्वारा दर्शाए गए उपरोक्त उत्पादन फलन में Q कुल उत्पादन (Total Product) को प्रकट करता है जो उपादानों के प्रत्येक स्तर के प्रयोग के प्रवाहित होता है। उदाहरण के लिए मान लो कि श्रम (Labour) उत्पादन का अकेला साधन है जिसका कपड़े के उत्पादन में प्रयोग किया जा रहा है। ज्यों–ज्यों श्रम की मात्रा (L) बढ़ाई जाती है तो कपड़े का कुल उत्पादन

(Q) हजार मीटरों में निम्न तालिका अनुसार बढ़ता है:

श्रम की मात्रा (I)	कुल उत्पादन (TP)	औसत उत्पादन (TP)	(MP = Δ TP Δ /L सीमांत उत्पादन
1	10	10	10
2	22	11	12
3	36	12	14
4	48	12	12
5	58	11.6	10
6	66	11	8
7	72	10.2	6
8	76	9.5	4
9	78	8.6	2
10	78	7.8	0
11	76	6.9	—2

श्रम की प्रथम इकाई का प्रयोग करने से कुल कपड़े का उत्पादन 10 हजार मीटर उत्पादित होता है। ज्यों–ज्यों श्रम की इकाईयां बढ़ाई जाती है तो कुल उत्पादन भी बढ़ता रहता है। जब श्रम की 10 इकाइयां उत्पादन में प्रयोग की जाती है तो कुल उत्पादन बढ़कर 78 हजार हो जाता है।

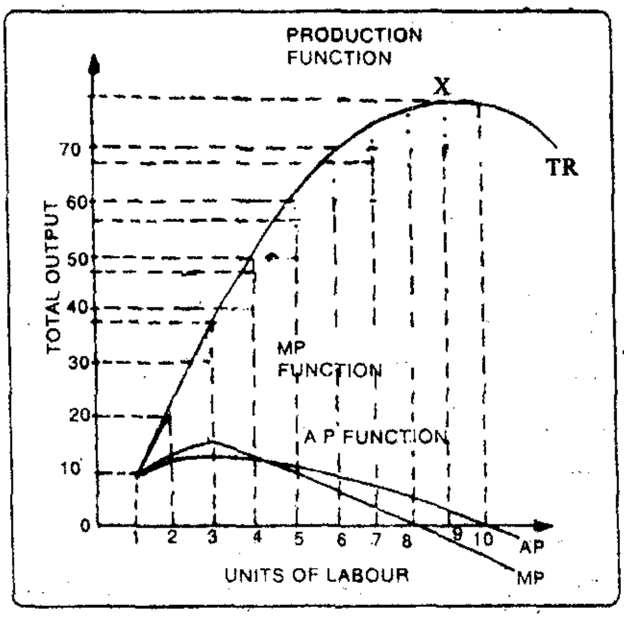

चित्र 15

उत्पादन फलन की उपरोक्त तालिका के आधार पर उत्पादन फलन को चित्र 14 में दर्शाया गया है इससे स्पष्ट होता है कि कुल उत्पादन श्रम की इकाई का फलन है Q = f (L).

जब प्रारंभ में इकाइयां बढ़ाई जाती हैं तो कुल उत्पादन बढ़ रहा है। इसके बाद जब 9 तथा 10 इकाइयाँ उत्पादन में प्रयोग की जाती हैं तो यह अधिकतम स्तर प्राप्त करके स्थिर रहता है। 11 वीं इकाई पर कुल उत्पादन गिर रहा है।

कुल उत्पादन के अतिरिक्त सीमांत उत्पादन (Marginal Product) तथा औसत उत्पादन (Average Product) भी उत्पादन के महत्वपूर्ण माप हैं।

सीमांत उत्पादन (Marginal Product): किसी परिवर्तनशील साधन की एक अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने से कुल उत्पादन में जो परिवर्तन आता है वह सीमांत उत्पादन कहलाता है। सामान्यतः किसी परिवर्तनशील साधन के सीमांत उत्पादन (MP) को कुल उत्पादन में परिवर्तन की दर के रूप में परिभाषित किया जाता है। उपरोक्त सारणी में स्पष्ट है कि कुल उत्पादन में वृद्धि की दर (Rate of increase) स्थिर नहीं है। अपितु पहले यह बढ़ रही है, फिर गिर रही है, 10 वीं श्रम की इकाई पर श्रम का सीमांत उत्पादन शून्य तथा 11 वीं पर यह नकारात्मक (-2) हो जाता है। व्यवहार में जब किसी परिवर्तनशील साध न की अतिरिक्त इकाइयां स्थिर साधन (Constant Factor) के साथ लगाई जाती हैं तो प्रारंभ में स्थिर साधन का पूर्ण प्रयोग होने लगता है इसलिए सीमांत उत्पादन बढ़ता है। इसके बाद जब परिवर्तनशील साधन और स्थिर साधन का अनुपात ईष्टतम या श्रेष्ठतम स्तर (Optimum Level) पर पहुंच जाता है तो सीमांत प्रतिफल गिरने लगता है।

$MP = \Delta TP/\Delta F$; ΔTP= कुल उत्पादन में परिवर्तन, ΔF= साधन की मात्रा में परिवर्तन।

औसत उत्पादन (Average Product): प्रायः हम प्रति श्रमिक उत्पादन, पूंजी की प्रति इकाई उत्पादन आदि की जानकारी प्राप्त करना महत्त्वपूण समझते हैं। सके लिए हम उत्पादन का एक और माप औसत उत्पादन (Average Protuct) के रूप में अध्ययन करते हैं। कुल उत्पादन को परिवर्तनशील सार्धन ;अंतपंइसम बिजवतद्ध कुल इकाइयों से भाग देने से परिवर्तनशील साधन का जो प्रति इकाई उत्पादन प्राप्त होता है वह औसत उत्पादन (AP) के रूप में परिभाषित किया जाता है।

AP = TP/TF;TF=परिवर्तनशील साधन की इकाइया।

सीमान्त, औसत, कुल उत्पादन में तुलना:—उपरोक्त सारणी तथा चित्र में दर्शाया गया है कि प्रारम्भ में सीमान्त तथा औसत उत्पादन दोनों बढ़ते हैं तथा अपना—अपना अधिकतम स्तर प्राप्त करके गिरना शुरू कर देते हैं। जब औसत उत्पादन फलन अधिकतम होता है तो हमेशा MP = AP होगा। यदि MP>AP है तो औसत उत्पादन में वृद्धि होगी और यदि MP<AP है तो औसत नीचे की ओर अग्रसर होगा। इससे स्पष्ट होता है कि जहां MP = AP होता है वहां औसत उत्पादन अधिकतम होता है।

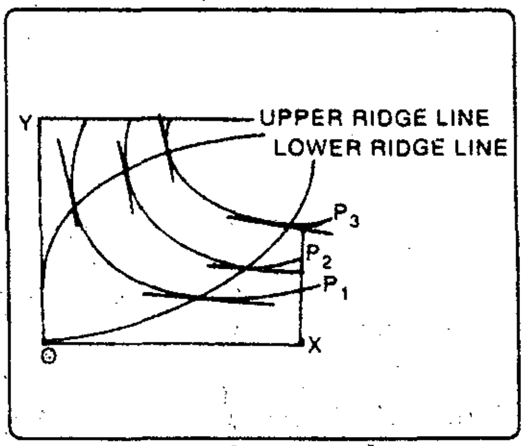

चित्र 16

उत्पादन फलन को सम—उत्पाद वक्रों के समूह द्वारा भी प्रकट किया जा सकता है। हमें ज्ञात है कि ऊंचा सम—उत्पाद वक्र नीचे वक्र से अधिक उत्पादन को प्रकट करता है। एक फर्म आर्थिक कुशलता (Economic Efficiency) को ध्यान में रखते हुए एक साधन का तभी तक प्रयोग करती है जब तक उसकी सीमान्त उत्पादन धनात्मक (Positive) होता है। यह नकारात्मक होने पर इनका प्रयोग नहीं किया जाता है। सम—उत्पाद वक्रों के वे बिन्दु जहां साधनों का सीमान्त उत्पादन शून्य हो जाता है वे

उनके उत्पादन में प्रयोग की सीमा निर्धारित करते हैं जिनको चित्र 16 में Ridge lines द्वारा प्रकट किया गया है। नीचे वाली Ridge line श्रम के सीमान्त उत्पादन को शून्य प्रकट करती है। तथा ऊपरी वाली Ridge line पूंजी के सीमान्त उत्पादन का शून्य प्रकट करती है। सम उत्पादक वक्रों का Ridge lines के अन्दर वाला भाग ही कुशल उत्पादन तकनीक को व्यक्त करता है। सम–उत्पाद वक्रों का Ridge lines से बाहर वाला भाग साधनों का नकारात्मक (Negative) सीमान्त उत्पादकों को व्यक्त करता है। इसलिए वह उत्पादन विधि अकुशल है क्योंकि बाहर वाले भाग पर सम–उत्पाद वक्र दर्शाता है कि उतना ही या समान उत्पादन करने के लिए साधनों की अधिक मात्रा का प्रयोग करना पड़ता है।

फर्म ऐसी अकुशल उत्पाद विधियों (Techniques) का प्रयोग नहीं करती । साधनों का समीमान्त उत्पादन घटता हुआ हो परन्तु धनात्मक हो उस सीमा तक ही उनका उत्पादन में प्रयोग किया जाता है क्योंकि ऐसा करने में ही कुल उत्पादन बढ़ता है। अर्थात् कुल उत्पादन साधनों की मात्रा का बढ़ता फलन है जैसे चित्र 15 में दर्शाया गया है।

5. उत्पादन फलन की आकृति
Forms of Production Function

उत्पादन फलन की कुछ अति महत्त्वपूर्ण आकृतियों या रूपों (Forms) का वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है:

1. **सरल रेखीय समरूप उत्पादन फलन (Linear Homogeneous Production Function):** जब उत्पादन फलन प्रथम दर्जे का समरूप (Homogenous of the first degree) फलन हो तो वह सरल रेखीय उत्पादन फलन (Linear Yomogenous Production Function) कहलाता है। इस उत्पादन फलन का निष्कर्ष या आशय यह है कि यदि सभी उत्पादन के साधनों जैसे श्रम, पूंजी आदि को किसी निश्चित अनुपात से बढ़ाया जाये तो कुल उत्पादन भी उसी अनुपात से बढ़ेगा। इसलिए सरल रेखीय उत्पादन फलन पैमाने के स्थिर प्रतिफल (Constant Returns to scale) की अवस्था को व्यक्त करता है या उसका प्रतिनिधित्व करता है। पैमाने का स्थिर प्रतिफल बताया है कि अन्य बातें स्थिर रहने पर ज्यों सभी साधनों की मात्रा दुगनी कर दी जाती है तो कुल उत्पादन भी दुगना हो जाता तथा ज्यों इनकी मात्रा आधी कर दी जाती है तो उत्पादन भी आधा रहा जाता है।

   मान लो उत्पादन के दो साधन x तथा y है। अब हम गणितीय ढंग से समरूप उत्पादन फलन (Homogenous production function) को निम्न प्रकार व्यक्त कर सकते हैं:

   $mp = f(mx, my)$

   p = Total Production, m = Any real number

   इस फलन का अर्थ है कि x तथा y साधनों को m गुणक से बढ़ाया जाये तो कुल उत्पादन (P) भी m गुणक से बढ़ेगा। यदि m = 2 है तो इसको अर्थ होगा कि दोनों साधनों की मात्रा दुगना करने से उत्पादन में भी दुगनी वृद्धि होगी। इसी कारण से प्रथम दर्जे का समरूप फलन पैमाने के स्थिर प्रतिफल प्रदान करता है।

   व्यापक अर्थों में इस उत्पादन फलन को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है:

   $Pm^K = f(mx, my)$

   K = a constan number

   यह कहना K डिग्री का समरूप फलन (Homogenous function of the Kth degree) कहा जाता है। यदि K = 1 है तो उपरोक्त समरूप फलन प्रथम दर्जे का समरूप फलन (Homogenous Function) बन जाता है। यदि K = 2 है तो यह फलन दूसरे दर्जे का समरूप फलन (Homogenous of the 2nd degree) बन जाता है। अतः यदि k>1 है तो यह फलन पैमाने के बढ़ते प्रतिफल (Increasing Returns tos scale) प्रदान करेगा। अर्थात जिस अनुपात से साधनों की मात्रा बढ़ाई जाती है तो कुल उत्पादन उससे अधिक अनुपात से बढ़ता है। इसके विपरीत यदि K<1 है तो यह फलन पैमाने के घटते प्रतिफल प्रदान करता है, अर्थात जिस अनुपात से सभी साधनों को बढ़ाया जाता है तो कुल उत्पादन उसे कम अनुपात से बढ़ता है। पैमाने के प्रतिफल सम्बन्धित नियमों का अगले अध्याय में अध्ययन किया गया है।

   उत्पादन फलन का यह रूप सरल होने के कारण इसका अनुसन्धानों, आर्थिक प्रगति, वितरण, कृषि आदि अनेक क्षेत्रों मे व्यापक प्रयोग किया जाता है।

2. **कॉब-डौगलस उत्पादन फलन** (Cobb-Douglas Production Function)—बहुत से अर्थशास्त्रियों ने वास्तविक उत्पादन फलन का अध्ययन अनेक सांख्यिकी विधियों (Statistical methods) का प्रयोग करके किये है। उन्हीं में से कॉब–डौगलस उत्पादन फलन एक बहुत ही महत्वपूर्ण तथा प्रसिद्ध उत्पादन फलन माना जाता है। Cobb Douglas Production Function में श्रम तथा पूंजी दो साधन हैं। प्रारम्भ में यह फलन किसी एक फर्म के उत्पादन पर लागू न करके सारे निर्माण उद्योग (Manufacturing industry) पर लागू किया जाता था।

मोटे तौर पर Cobb Douglas Production Function व्यक्त करता है कि निर्माण उत्पादन में 75% वृद्धि श्रम साधन के कारण तथा बाकि 25 प्रतिशत वृद्धि पूंजी साधन के कारण है। अर्थशास्त्रियों की रूचि इस फलन में इस कारण अधिक बढ़ी क्योंकि इसका पैमाने के स्थिर प्रतिफल से सम्बन्ध है। यह फलन क्या है तथा पैमाने के स्थिर प्रतिफल को कैसे व्यक्त करता है? इस फलन की गणितीय आकृति निम्न प्रकार है:

$Q = KL^{a}C^{1-a}$

Q = Quantity of ouptput, L = Quantity of labour, C= Quantity of Capital. employed in production. K and are positive constant and a<1

यदि श्रम (L) तथा पूंजी (C) को एक स्थिर मात्रा g से बढ़ाया जाये तो उत्पादन की मात्रा निम्न प्रकार बढ़ेगी।

$K(gL)^{a}(gc)^{1-a} = g^{a}g^{(1-a)}KL^{a}C^{1-a}$

परन्तु $g^{a}g^{1-a} = g$ है क्योंकि इनमें g की वृद्धि ही की गई है।

Therefore $k(gl)^{a}(gc)^{1-a} = g\,KL^{a}C^{1-a}$

$\because KL^{a}C^{1-a} = Q$

$\because gKL^{a}C^{1-a} = gQ$

इस प्रकार जब श्रम तथा पूंजी (L and C) साधन स्थिर g से बढ़े हैं तो कुल उत्पादन Q भी g से बढ़ा है। अर्थात् यह पैमाने के स्थिर प्रतिफल को व्यक्त करता है।

उत्पादनक्षेत्र में लोच (Elasticity in ProductionSector)—उत्पादन क्षेत्र में लोचशीलता मुख्यत दो प्रकार की होती है:

(1) उत्पादन की लोचशीलता (Elasticity of Production)

(2) साधन की प्रतिस्थापन की लोचशीलता (Elasticity of Factor Substitution)

इनकी व्याख्या निम्न प्रकार की गई है:

(1) **उत्पादन की लोचशीलता (Elasticity of Production)**—उत्पादन की लोचशीलता की धारणा औसत उत्पादन (AP) तथा सीमान्त उत्पादन (MP) के बीच सम्बन्ध पर आधारित है, जो इसकी व्याख्या के अन्त में से स्वतः स्पष्ट हो सकेगा।

उत्पादन की लोचशीलता (e_q) सापेक्षित उत्पादन में परिवर्तन $\frac{\Delta Q}{\Delta Q}$ का परिवर्तनशील साधन में सापेक्षिक परिवर्तन $\frac{\Delta L}{L}$ से अनुपात हैं। It is a ratio of relative change in total production to a relative chnage in the variable factor. Thus:

$$eq = \frac{\frac{\Delta Q}{\Delta Q}}{\frac{\Delta L}{L}} = \frac{\Delta Q}{\Delta L}\cdot\frac{L}{Q} = \frac{\frac{\Delta L}{\Delta Q}}{\frac{Q}{L}} = \frac{MP_L}{AP_L}$$

Δ = Change in Production, Δ L = Change in the Quantity of Labour

इस प्रकार उत्पादन की श्रम लोच ($e^{e}g$) श्रम के सीमान्त उत्पादन (MP_L) का श्रम के औसत उत्पादन (AP_L) से अनुपात है। इसी प्रकार हम उत्पादन की पूंजी लोच (Capital Elasticity of Production) को ज्ञात कर सकते हैं। कई बार ऐसी धारणाओं को उत्पादन की साधन लोच (Input elasticity of output) के नाम से भी जाना जाता है। साधनों की लोच का योग Function coefficient के नाम से जाना जाता है।

2. **साधन प्रतिस्थापना की लोचशीलता** (Elasticity of Factor Substitution)—हम जानते हैं कि एक सम–उत्पादक वक्र पर ज्यों x साधन y को प्रतिस्थापित करता जाता है तो x साधन की y के लिए तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर ($MRTS_{XY}$) गिरती जाती है अन्य शब्दों में विभिन्न साधन अनुपात (Input Ratios) पर तकनीकी प्रतिस्थान की सीमान्त दर भिन्न होती है। तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर में सापेक्षिक परिवर्तन के कारण साधन अनुपात में जो सापेक्षिक परिवर्तन होता है उसके साधनों के बीच प्रतिस्थापन की लोचशीलता (E_S) कही जाती है:

$$E_S = \frac{\text{साधनों (K and L) के अनुपात सापेक्षिप परिवर्तपन}}{\text{साधनों में तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर में सापेक्षिक परिवर्तन}}$$

= k/L में सापेक्षिक परिवर्तन

$MRTS_{KL}$ में सापेक्षिक परिवर्तन

$$= \frac{\frac{\Delta K/L}{K/L}}{\frac{\Delta(MRTS_{KL}}{MRTS_{KL}}} = \frac{\Delta(K/L)}{K/L} \frac{MRTS_{KL}}{\Delta(MRTS_{KL})}$$

$$= \frac{\Delta(K/L)}{\Delta(MRTS_{KL})} = \frac{MRTS_{KL}}{K/L}$$

$$\frac{\Delta(K/L)}{\Delta(MP_K/MP_L)} = \frac{(MP_K/MP_L}{K/L}$$

Annexure

1. Fill in the blanks in the floowing table:

Capital	Labour	TP	AP	MP
1	0	0	—	—
1	1	2	2	—
1	2	5	—	3
1	3	—	3	4
1	4	12	3	—
1	5	—	—	2
1	6	—	—	1
1	7	—	2½	—
1	8	14	—	—
1	9	—	1⁄	2

2. Out of the given production function of cloth determine the amount of labour to be employed to maximise the production of cloth using the algebraic function which would be:

$TP = 15L^2 — 1L^3$

Taking the derivative of TP we would get the MP

$$MP = \frac{dTP}{dL}$$

For TP to be maximum, MP = 0

$\therefore MP = 30\,L - 3\,L^2 = 0$

$= L\,(30 - 3L) = 0$

This has two solutions : L = 0 and L = 10

Naturally TP would be minimum when L = 0

and TP would be maximum when L = 10

प्रश्न
Questions

I. निबन्ध रूपी प्रश्न
(Essay Type Questions)

1. What is the Theory of Production? Explain its relevance or importance in modern times.
   उत्पादन का सिद्धान्त क्या है? आधुनिक युग में इसके महत्त्व की व्याख्या करो?
2. What is an Isoquant or Isoproduct curves? discuss their main properties or characteristics.
   सम उत्पादक वक्र क्या है। इसकी विशेषताओं को वर्णन करो।
3. What is Production Function? How does a firm select an efficient method or technique of production?
   उत्पादन फलन क्या है? एक फर्म कैसे उत्पादन की कुशल विधि का चयन करती है।

   OR

   Explain fully the production function with the help of Isoquants.
4. Discuss the production function. Explain the main forms of production function.
   उत्पादन फलन का वर्णन करो। उत्पादन फलन की मुख्य आकृत्तियों की व्याख्या करो।
5. What is the Law of Diminishing marginal rate of techinical substitution? Explain the Elasticity of Production and Elasticity of Factor Substitution.
   तकनीकी प्रतिस्थापन की घटती सीमान्त दर का निर्माण क्या है। उत्पादन की लोच तथ साधन प्रतिस्थापन की लोच का वर्णन करो।

II. लघु उत्तर प्रश्न
(Short Answer Type Questions)

1. What meant by Isoproduct curve?
   सम उत्पादक वक्र से क्या अभिप्राय है।
2. What is meant by Marginal Rate of Technical substitution?
   तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर क्या है?
3. Explain main assumptions of Isoquant curves.
   सम–उत्पादक वक्रों मुख्य विशेषताओं का वर्णन करो।

4. What is production process?

   उत्पादन विधि क्या है?

5. Give four main characteristics of Isoproduct curves

   सम–उत्पादक वक्रों की चार विशेषताओं को बताइये।

6. What are main differences between isoproduct curves and indifference curves?

7. Show the relation between Marginal Product and Average Product.

8. What is linear Production Function?

9. What is Cobb Dougles Production Function?

III. वस्तुनिष्ठ प्रश्न तथा उनके उत्तर (Objective Type Questions and their Answers)

1. State whether the following statements are ture of false:
   1. Theory of production shows relation between different inputs.
   2. Isoproduct curve shows different levels of output of various combinations of two factors.
   3. MRTSxy goes on rising as X is increased.
   4. The only difference between an isoquant and an indifference curve is that the former is used in production and the later in consumption.
   5. Production function uses the most efficient technique of production.
   6. To choose between two techinque of production is an economic problem and not atechnical one.
   7. Production function establishes relationship between inputs and putput.
   8. The relationship between inputs and oupur in a Linear Homogeneous Productioins Functions is non-productional.

Answers: (1.) False, (2.) False, (3.) False, (4.) False, (5.) True, (6.) True, (7.) and (8.) False,

2. Fill up the blanks from the words in brackets.
   1. Production function shows the..................relation between inputs and outputs. (Physical, Economic)
   2. Isoquant has a......................slope. (Positive, Negative)
   3. Isoquant......................different quantities of output. (Show, doesn't show)
   4. Isoquants help in establishing......................equilibrium. (Producer, consumer)
   5. MP = f (mx, my) shows......................production function. (Linear Homogeneous, Non-Linear)

Answers: 1. Physical, 2. Negative, 3. Show, 4. Producer, 5. Linear Homogeneous.

अध्याय-12

उत्पादन के नियम : अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन (Laws of Production : Short Period and Long Period)

पिछले अध्याय में हम उत्पादन फलन (Production Function) का अध्ययन कर चुके हैं। उत्पादन फलन कुछ नियमों, जिनको हम प्रतिफल के नियम कहते हैं, का पालन करता है। प्रतिफल या उत्पादन के नियमों में उन नियमों का अध्ययन किया जाता है जो उत्पादनों (Inputs) तथा वस्तुओं के उत्पादन में संबंध स्थापित करते हैं। प्रतिफल के नियमों का अध्ययन निम्न दो भागों में किया जाता है:

(क) घटते–बढ़ते या परिवर्तनशील अनुपात का नियम
(Law of variable Proportions)

(ख) पैमाने के प्रतिफल का नियम
(Law of Returns to Scale)

या

प्रतिफल के नियम

(Law of Returns)

घटते–बढ़ते अनुपात का नियम	पैमाने के प्रतिफल का नियम
(Law of Variable Proportions)	(Law of Returns to Scale)
या	या
अल्पकालीन उत्पादन का नियम	दीर्घकालीन उत्पादन का नियम
(Short Period Laws of Returns)	(Long Period Laws of Production or Returns)

(क) **घटते बढ़ते अनुपात का नियम** (Law of Variable Proportions): घटते–बढ़ते अनुपात का नियम आर्थिक सिद्धांत का एक अति महत्वपूर्ण नियम है। इस नियम का संबंध अल्पकाल (Short Period) समय–अवधि से है। अर्थशास्त्र में अल्पकाल समय अवधि 5 दिन, 12 दिन, सप्ताह, दो सप्ताह, महीना आदि नहीं होते बल्कि यह एक ऐसी अवस्था होती है जिसके अंतर्गत उत्पादक उत्पादन में परिवर्तन करने के लिए किसी एक साधन की मात्रा को ही परिवर्तित कर सकता है तथा अन्य साधनों की मात्रा को स्थिर रखता है। घटते–बढ़ते अनुपात का नियम उत्पादन में ऐसी ही अवस्था का अध्ययन करता है।

घटते–बढ़ते अनुपात का नियम ऐसे उत्पादन फ़लन की जांच करता है जिसमें किसी एक साधन को परिवर्तनशील तथा अन्य साधनों की मात्रा को स्थिर रखा जाता है। जब किसी एक साधन की मात्रा में परिवर्तन किया जाता है तथा अन्य साधनों की

मात्रा को स्थिर रखा जाता है तो परिवर्तनशील साधन तथा स्थिर साधनों के बीच अनुपात बदल जाता है। ज्यों घटते-बढ़ते साधन की मात्रा बढ़ाई जाती है तो इस साधन का स्थिर साधनों से अनुपात बढ़ता जाता है। इसके विपरीत ज्यों घटते-बढ़ते साधन की मात्रा कम कर दी जाती है तो इस साधन का स्थिर साधनों से अनुपात कम हो जाता है। क्योंकि इस नियम के अंतर्गत हम साधन-अनुपात में परिवर्तन का उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करते हैं। इसीलिए यह नियम घटते-बढ़ते अनुपात के नियम के नाम से जाना जाता है (Since under this law we study the effects on output of variations in factor-proportions, this is known as the law of variable proportions.)

—Prof. H.L. Ahuja

घटते-बढ़ते अनुपात का नियम परंपरावादी अर्थशास्त्र (Classical Economics) के 'घटते प्रतिफल के नियम' (Law of Diminishing Returns) का आधुनिक रूप माना जाता है। घटते-बढ़ते अनुपात का नियम या घटते प्रतिफल का नियम विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा निम्न प्रकार से परिभाषित किय गया है:

प्रो. स्टिगलर के अनुसार, "ज्यों किसी एक साधन की मात्रा में समान वृद्धियां की जाती हैं; अन्य साधनों की सेवाएं स्थिर रखते हुए, एक निश्चित बिन्दु के बाद उत्पादन में वृद्धियां कम होंगी, अर्थात् सीमांत उत्पादन गिरेगा।" (As equal increments of one input are added; the inputs of other productive services being held constant, beyond a certain point the resulting increments of products will decrease i.e. the marginal products will diminish) —Prof. G. Stigler

प्रो. सैम्युअलसन के अनुसार, "यह नियम व्यक्त करता है कि तकनीक के स्थिर रहते हुए कुछ साधनों की मात्रा में अन्य स्थिर साधनों की अपेक्षा वृद्धि करने से कुल उत्पादन बढ़ेगा, परंतु एक बिंदु के बाद परिवर्तनशील साधनों की मात्रा में उतनी ही वृद्धि से प्राप्त अतिरिक्त उत्पादन कम होता जाएगा।" (The law states that an increase in some inputs relative to other fixed inputs will in a given state of technology, cause total output to increase; but after a point the extra output resulting from the same additions of extra inputs is likely to become less and less.)

—Prof. Samuelson

मान्यताएं (Assumptions): इस नियम की मुख्य मान्यताएं निम्नलिखित हैं:

1. घटते-बढ़ते अनुपात के नियम की मान्यता है कि परिवर्तनशील साधन तथा स्थिर साधन का अनुपात बदलता रहता है। स्थिर साधन (Fixed factor) के साथ परिवर्तनशील साधन की मात्रा में वृद्धि करके उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है।

2. परिवर्तनशील या घटते-बढ़ते साधन की सभी इकाइयां समरूप हैं। अर्थात् इस साधन की सभी इकाइयों की कार्यक्षमता समान होती है।

3. यह नियम अल्पकालीन समय अवधि में लागू होता है जिसमें कुछ साधन स्थिर होते हैं तथा एक परिवर्तनशील साधन होते हैं। परिवर्तनशील साधन की मात्रा में वृद्धि करके ही उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है।

4. उत्पादन की तकनीक में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

नियम की तीन अवस्थाओं की व्याख्या (Explanation of three stages of the Law): स्थिर साधन के साथ परिवर्तनशील साधन की अधिक इकाइयों का प्रयोग करने से उत्पादन में जो परिवर्तन होता है। उसको तीन अलग-अलग अवस्थाओं में विभक्त किया जा सकता है। इन तीन अवस्थाओं को समझने के लिए तालिका 1 तथा चित्र 1 की सहायता ली गई है। मान लीजिए आपके पास 5 एकड़ भूमि है जिस पर आप गेहूं का उत्पादन करना चाहते हो। इस पर खेती करने के लिए यंत्र, बीज तथा खाद भी आपके पास है। ये सभी स्थिर साधन (Fixed or Constant factors) हैं। अब गेहूं का उत्पादन करने के लिए इन स्थिर साधनों के साथ श्रम (Labour) की इकाइयों का प्रयोग करना पड़ेगा। श्रम घटता-बढ़ता या परिवर्तनशील साधन है जिसकी

इकाइयों में वृद्धि करने से कुल उत्पादन औसत उत्पादन तथा सीमांत उत्पादन पर जो प्रभाव पड़ता है उसको तीन अवस्थाओं में तालिका 1 के अनुसार व्यक्त किया गया है:

तालिका 1 : उत्पादन की तीव अवस्थाएं (Three Stages of the Law)

(उत्पादन क्विंटल में)

भूमि का आकार (एकड़)	श्रम की इकाइयां	कुल उत्पादन	औसत उत्पादन	सीमांत उत्पादन
5	1	10	10	10
5	2	22	11	12
5	3	36	12	14
5	4	48	12	12
पहली अवस्था का अंत तथा दूसरी अवस्था का आरंभ				
5	5	58	11.6	10
5	6	66	112	8
5	7	72	10.2	6
5	8	76	9.5	4
5	9	78	8.6	2
5	10	78	7.8	0
दूसरी अवस्था का अंत तथा तीसरी का आरंभ				
5	11	76	6.9	-2

उपरोक्त तालिका में 1 में दर्शाया गया है कि ज्यों हम 5 एकड़ भूमि स्थिर साधन के साथ परिवर्तनशील साधन श्रम की अतिरिक्त इकाइयां लगाते हैं तो प्रारम्भ में कुल उत्पादन बढ़ती दर पर, फिर गिरती दर पर तथा इसके बाद कुल उत्पादन अधिकत्तम स्तर पर पहुंच कर गिरने लगता है। ध्यान रहे कि परिवर्तनशील साधन जो यहां श्रम है उसका ही औसत तथा सीमांत उत्पादन ज्ञात किया जाता है। कुल उत्पादन में परिवर्तन की दर, जिसका माप औसत तथा सीमांत उत्पादन से किया जाता है, के आधार पर ही घटते–बढ़ते अनुपात के नियम को तीन अवस्थाओं में बांटा गया हैं–प्रथम अवस्था 5 एकड़ भूमि के साथ ज्यों–ज्यों हम श्रम की इकाइयां बढ़ाते हैं तो कुल उत्पादन बढ़ती दर पर बढ़ता है अर्थात् औसत उत्पादन बढ़ता जाता है। प्रथम अवस्था 5 एकड़ भूमि के साथ 4 श्रमिक लगाने पर समाप्त होती है जहां औसत उत्पादन अधिकतम 12 पर स्थिर हो जाता है तथा सीमांत उत्पादन गिरने लगता है। इसके बाद श्रम की चौथी इकाई से दूसरी अवस्था शुरू होती है जिसमें कुल उत्पदन गिरती दर पर बढ़ता है अर्थात् औसत तथा सीमांत उत्पादन गिरने लगते हैं। जब 10 श्रमिक लगाने पर सीमांत उत्पादन शून्य होता है तो दूसरी अवस्था समाप्त होती है। तीसरी अवस्था में श्रमिकों की संख्या और बढ़ाने पर कुल उत्पादन गिरने लगता है तथा श्रमिक का सीमांत उत्पादन नकारात्मक होता है।

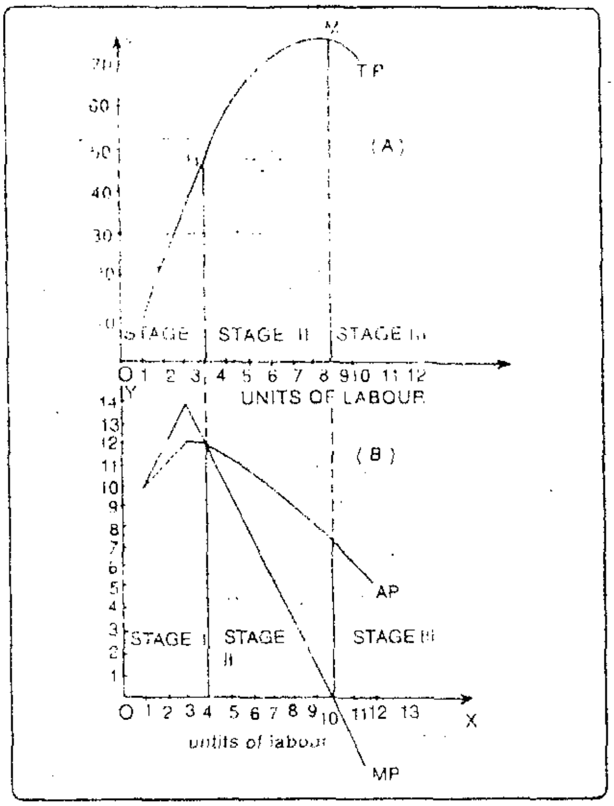

चित्र 1

उत्पादन की इन तीनों अवस्थाओं को उपरोक्त चित्र 1 में दर्शाया गया है:

रेखाचित्र 1 के भाग (A) में OX- अक्ष पर श्रम की इकाइयां तथा OY- अक्ष पर कुल उत्पादन मापा गया है। इसमें TP कुल उत्पादन वक्र है। यह प्रकट करता है कि H बिन्दु तक कुल उत्पादन बढ़ती औसत दर से बढ़ रहा है तथा यह इस नियम अनुसार उत्पादन की प्रथम अवस्था (Stage I) है। इसके बाद H से M बिंदु तक कुल उत्पादन घटती औसत दर से बढ़ता है तथा M बिंदु तक कुल उत्पादन अधिकतम (Maximum) है। यह H से M तक दूसरी अवस्था (Stage II) का निर्माण करता है। इसके बाद जब श्रमिकों की संख्या 10 से बढ़ा दी जाती है तो कुल उत्पादन गिरने लगता है जो तीसरी अवस्था (Stage III) को प्रकट करता है।

यही तीनों अवस्थाएं चित्र I के भाग (B) द्वारा औसत तथा सीमांत उत्पादन वक्रों की सहायता से प्रकट की गई हैं। श्रम की 4 इकाई तक औसत उत्पादन बढ़ रहा है तथा अधिकतम बिन्दु को प्राप्त करता है जो प्रथम अवस्था को व्यक्त करता है। श्रम की 4 इकाई से 10 इकाई तक औसत उत्पादन तथा सीमांत उत्पादन वक्र दोनों गिरते रहते हैं। सीमांत उत्पादन श्रम की 10 इकाई लगाने पर शून्य हो जाता है। (जहां कुल उत्पादन अधिकतम हो जाता है) यह उत्पादन की दूसरी अवस्था है। इसके बाद तीसरी अवस्था शुरू होती है।

घटते–बढ़ते नियम की इन तीन अवस्थाओं की विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

1. **प्रथम अवस्था या बढ़ते प्रतिफल की अवस्था (Stage of Increasing Returns):** चित्र 1 के भाग (A) तथा (B) के अनुसार कुल उत्पादन वक्र के O से H बिन्दु तक प्रथम अवस्था रहती है। इस अवस्था में कुल उत्पादन बढ़ती औसत दर पर बढ़ता है। H बिन्दु पर औसत उत्पादन अधिकतम है तथा यहां पर यह सीमांत उत्पादन के समान हैं।

पहली अवस्था के आरंभ में सीमांत उत्पादन से अधिक होता है परंतु इस अवस्था के अंत में ये दोनों एक दूसरे के समान होते हैं। इस अवस्था में औसत उत्पादन बढ़ रहा होता है। इसलिए इसको बढ़ते प्रतिफल की अवस्था भी कहते हैं।

2. **दूसरी अवस्था या घटते प्रतिफल की अवस्था (Stage of Diminishing Returns):** चित्र 1 के अनुसार भाग (A) में दर्शाया गया है कि उत्पादन में H बिन्दु से M बिन्दु तक दूसरी अवस्था बनी रहती है। इस अवस्था में कुल उत्पादन वक्र (TP) दर्शाता है कि कुल उत्पादन घटती दर पर बढ़ता जाता है। इसमें औसत उत्पादन तथा सीमांत उत्पादन गिरते रहते हैं तथा सीमांत उत्पादन औसत उत्पादन से हमेशा कम पाया जाता है। कुल उत्पादक वक्र के M बिन्दु पर कुल उत्पादन अधिकतम होता है तथा सीमांत उत्पादन गिर कर शून्य को प्राप्त हो जाता है। सामान्यतः उत्पादक इसी अवस्था में उत्पादन कर रहे होते हैं, इस अवस्था में औसत तथा सीमांत उत्पादन गिर रहे होते हैं इसलिए इसको घटते प्रतिफल की अवस्था भी कहा जाता है।

3. **तीसरी अवस्था या नकारात्मक प्रतिफल की अवस्था (Stage of Negative Returns):** कुल उत्पादन वक्र (TP) के M बिन्दु के बाद तीसरी अवस्था आरंभ होती है। इस अवस्था में कुल उत्पादन गिरने लग जाता है क्योंकि सीमांत उत्पादन नकारात्मक हो जाता है। औसत उत्पादन भी गिर रहा होता है। ध्यान रहे औसत उत्पादन कभी नकारात्मक नहीं होता। इस तथ्य की विद्यार्थी स्वयं जांच कर सकते हैं। $AP = \frac{TP}{TL}$ यहां पर TL कुल श्रमिकों की संख्या है। कोई भी फर्म तीसरी अवस्था में उत्पादन नहीं करेगी क्योंकि उसको इस अवस्था में उत्पादन करने में हानि होती है। इस अवस्था में उत्पादन नकारात्मक होता है, इसलिए इसको नकारात्मक प्रतिफल की अवस्था भी कहा जाता है।

घटते-बढ़ते अनुपात के नियम की समउत्पाद वक्रों की सहायता से व्याख्या (Law of Variable Proportions Illustrated with the Help of Equal Product curves or Isoquants): सम–उत्पाद वक्रों के माध्यम से घटते–बढ़ते अनुपात के नियम की क्रिया रुचिकर होने के साथ–साथ काफी शिक्षाप्रद भी। इसकी व्याख्या निम्न चित्र 2 की सहायता से की गई है:

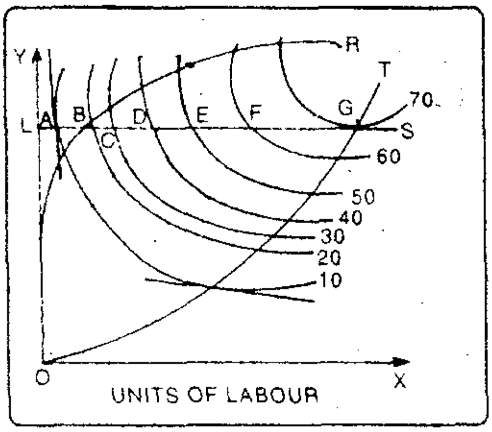

चित्र 2

चित्र 2 में किसी फर्म के समउत्पादक वक्रों का मानचित्र दर्शाया गया है। चित्र के OX अक्ष पर श्रमिकों की संख्या तथा OY अक्ष पर भूमि की स्थिर मात्रा दर्शाई गई है। भूमि स्थिर साधन तथा श्रम घटता बढ़ता साधन है। प्रत्येक सम उत्पादन वक्र दोनों अक्ष की ओर कुछ हद तक घनात्मक ढाल रखता है अर्थात् साधन की सीमांत भौतिक उत्पादकता घनात्मक होती है जिसको Ridge Lines के अंदर दर्शाया गया है। किसी साधन को यदि Ridge Lines से बाहर या अधिक मात्रा में लगाया जाता है तो उससे नकारात्मक सीमांत उत्पादन प्राप्त होता है तो इस नकारात्मकता को खत्म करने के लिए दूसरे साधन की मात्रा भी बढ़ानी पड़ती है। दो रेखाओं OT तथा OR के बीच सभी तटस्थता वक्रों की ढाल नकारात्मक है। OT तथा OR रेखाओं को पर्वत माला रेखाएं Ridge Lines कहा जाता

है। OT Ridge Line विभिन्न समउत्पाद वक्रों के उन बिन्दुओं से होकर गुजरती है जिन पर श्रम का सीमांत उत्पादन शून्य होता है इसी प्रकार OR Ridge Line सभी समउत्पाद वक्रों के उन बिन्दुओं से होकर गुजरती है जिन पर भूमि का सीमांत उत्पादन नकारात्मक है। OT रेखा से दाईं ओर के सम उत्पाद वक्रों का भाग दर्शाता है कि यहां श्रम का सीमांत उत्पादन नकारात्मक है। केवल इन दो रेखाओं के बीच के हिस्से में ही दोनों साधनों का सीमांत उत्पादन धनात्मक होता है।

भूम की मात्रा OL को स्थिर रखते हुए श्रम की इकाइयों में वृद्धि करने के उपरांत कुल उत्पादन, जिसको सम उत्पाद वक्रों द्वारा दर्शाया गया है, में जो परिवर्तन आता है उसको LS रेखा स्पष्ट कर रही है। LS रेखा के बिन्दु स्थिर साधन भूमि तथा परिवर्तनशील साधन श्रम के विभिन्न संयोगों को दर्शाते हैं। अन्य शब्दों में LS रेखा पर ज्यों हम दाईं ओर जाते हैं तो भूमि की मात्रा स्थिर रहती है तथा श्रमिकों की मात्रा बढ़ती जाती है।

चित्र 2 में स्पष्ट है कि LS रेखा पर ज्यों हम A से C बिन्दु तक श्रमिकों की संख्या बढ़ा कर पहुंचते हैं तो उत्पादन की प्रथम अवस्था (Stage I) प्राप्त होती है। सम उत्पाद वक्रों का अंतर A से B तथा B से C पर कम होता जाता है। अर्थात् समान उत्पादन में वृद्धि के लिए कम श्रम की इकाईयों की आवश्यकता होती है। इसके बाद C से G तक दूसरी अवस्था (Stage II) कायम रहती है क्योंकि C से G तक श्रम का सीमांत उत्पादन घनात्मक है तथा यह G पर शून्य हो जाता है। C के बाद सम उत्पाद वक्रों की LS रेखा की दूरी बढ़ती जाती है। अर्थात् समान उत्पादन बढ़ाने के लिए अधिक श्रमिकों की आवश्यकता पड़ती है। G के बाद तीसरी अवस्था (Stage III) शुरू हो जाती है।

उत्पादक स्वभावतः दूसरी अवस्था में ही उत्पादन करेगा जो Ridge Lines के अंदर है जहां दोनों साधनों का सीमांत उत्पादन घनात्मक है।

घटते बढ़ते अनुपात के नियम के लागू होने के कारण या शर्तें
(Conditions or Causes of Applicability of the Law of Variable Proportions)

इस नियम के लागू होने की मुख्य दशाएं या कारण निम्न प्रकार से हैं:

1. **स्थिर साधन का अपूर्ण प्रयोग** (Underutilisation of Fixed Factor): प्रारंभ में उत्पादन बढ़ाते समय परिवर्तनशील साधन की मात्रा स्थिर साधन की तुलना में काफी कम होती है। स्थिर साधन जैसे भूमि या मशीन आदि के साथ पविर्तनशील साधन जैसे श्रम आदि की इकाइयां काफी कम होने के कारण स्थिर होने के कारण स्थिर साधन का पूर्ण प्रयोग नहीं हो पाता है। ज्यों–ज्यों परिवर्तनशील साधन की इकाइयां बढ़ाई जाती है तो स्थिर साधन का पूर्ण प्रयोग होने लगता है जिससे सीमांत प्रतिफल तथा औसत प्रतिफल बढ़ता है तथा इस नियम की पहली अवस्था (Stage I), जिसको बढ़ते प्रतिफल की अवस्था भी कहा जाता है, लागू होती है।

2. **स्थिर साधन का ईष्टतम प्रयोग** (Optimum utilisation of the Fixed Factor): स्थिर साधन का ईष्टतम प्रयोग उस समय कहा जाता है जब औसत उत्पादन अधिकतम हो। स्थिर साधन के साथ परिवर्तनशील साधन की इकाइयां बढ़ाते रहने से परिवर्तनशील साधन का औसत उत्पादन बढ़ता है तथा एक अवस्था ऐसी आती है जब औसत उत्पादन अधिकतम हो जाता है। इस अवस्था में स्थिर साधन का अनुकुलतम प्रयोग हो रहा होता है। इस अवस्था में समान प्रतिफल (Constant Returns of a factor) की स्थिति लागू होती है।

3. **स्थिर साधन का अत्यधिक प्रयोग** (Over use of Fixed Factor): जब हम स्थिर साधन के ईष्टतम उपयोग के बाद भी परिवर्तनशील साधन की मात्रा बढ़ाते रहते हैं तो स्थिर साधन का अत्यधिक (Overuse) उपयोग होने लगता है। और औसत तथा सीमांत प्रतिफल गिरने लगता है। स्थिर साधन का परिवर्तनशील साधन से अनुपात कम होता जाता है। इस कारण परिवर्तनशील साधन का सीमांत तथा औसत उत्पादन गिरता जाता है।

4. **अपूर्ण स्थानापन्न** (Imperfect Substitutes): भूमि स्थिर साधन है जो परिवर्तनशील साधन श्रम का स्थान नहीं ले सकती। न ही श्रम भूमि का स्थान ग्रहण कर सकता है। यह तथ्य अन्य स्थिर व परिवर्तनशील साधनों पर भी लागू होता है। यदि इनमें कुछ प्रतिस्थापन्नता है तो वह बहुत कम होती है। इसलिए स्थिर साधन का परिवर्तनशील साधन से अनुपात या तो कम होता है या अधिक हो जाता है। इसका परिणाम घटते–बढ़ते अनुपात के नियम की विभिन्न अवस्थाओं की उत्पत्ति होता है।

5. **स्थिर तकनीक** (Technology is constant): इस नियम के लागू होने का एक कारण यह भी है कि इसमें तकनीक को स्थिर माना गया है। यदि तकनीक को प्रगतिशील मान लिया जाए तो भी हो सकता है इस नियम की दूसरी तथा तीसरी अवस्था लागू न हो। परंतु क्योंकि तकनीक स्थिर मानी गई है। इसलिए यह नियम लागू होता है।

सार्वभौमिक प्रयोग का नियम
(Law of Universality)

यह नियम सभी आर्थिक क्षेत्रों व क्रियाओं में लागू होता है। सभी स्थानों तथा देशों में लागू होता है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक आर्थिक जगत में कुछ साधन स्थिर तथा कुछ साधन परिवर्तनशील होते हैं। इतना ही नहीं, इन साधनों का अनुपात बदलता रहता है। कृषि उद्योग, खानों, भवन निर्माण, मत्स्य उद्योग आदि क्षेत्रों में साधनों की ऐसी ही स्थिति पाई जाती है। इसलिए सभी क्षेत्रों में उत्पादन की तीनों अवस्थाएं लागू होती हैं। इसी कारण इसको सार्वभौमिक प्रयोग का नियम (Law of Universality) कहा जाता है। कुछ क्षेत्रों की व्याख्या निम्न प्रकार से है तथा बाकि क्षेत्रों की व्याख्या विद्यार्थी स्वयं कर सकते हैं।

1. **मत्स्य उद्योग** (Fishery Industry): मत्स्य उद्योग में मछली पकड़ने का जहाज एक स्थिर साधन है जिसके साथ श्रमिकों की अधिक इकाइयों का प्रयोग करके उत्पादन को तीनों अवस्थाओं के अनुसार प्रभावित किया जा सकता है।
2. **कृषि** (Agriculture): कृषि क्षेत्र में भूमि का आकार स्थिर साधन होता है तथा इस पर श्रमिक की इकाइयां बढ़ा कर उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। इसमें इस नियम की तीनों अवस्थाएं लागू होती है जैसा कि हमने उदाहरण की सहायता से देखा है।
3. **उद्योग** (Industry): उद्योगों में मशीन तथा प्लांट आदि स्थिर साधन होते हैं तथा कच्चा माल व श्रमिक आदि परिवर्तनशील साधन होते हैं। इन स्थिर साधनों के साथ परिवर्तनशील साधन की मात्रा बढ़ा कर इनका अनुपात बदला जा सकता है। अतः उत्पादन की तीनों अवस्थाएं उद्योगों में भी लागू होती हैं।

नियम का स्थगन (Postponement of the Law): निम्नलिखित परिस्थितियों में यह नियम स्थगित किया जा सकता है:

(i) **पूर्ण प्रतिस्थापन साधन** (Perfect Substitutes): यदि स्थिर साधन तथा परिवर्तनशील साधन एक दूसरे के पूर्ण प्रतिस्थापन हैं तो इन साधनों के अनुपात में हुए परिवर्तन का उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस अवस्था में एक प्रकार के साधन में हुई कमी को दूसरे साधन की मात्रा बढ़ा कर पूरा किया जा सकता है।

(ii) **उत्पादन तकनीक में सुधार** (Improvement in Technology): यदि उत्पादन तकनीक में सुधार होने के कारण इस नियम की दूसरी तथा तीसरी अवस्था को लागू होने से रोका जा सकता है। अतः उत्पादन में सुधार होने पर इस नियम को पूर्ण रूप से लागू होने से रोका जा सकता है।

उत्पादन या प्रतिफल के विभिन्न प्रकार
(Different kinds of Laws of Returns)

डॉ. मार्शल से पहले परंपरावादी अर्थशस्त्रियों द्वारा उत्पादन के नियमों का विवेचन तीन अलग–अलग नियमों के रूप में किया गया–

1. बढ़ते प्रतिफल का नियम (Law of Increasing Returns)
2. समान प्रतिफल का नियम (Law of Constant Returns)
3. घटते प्रतिफल का नियम (Law of Diminishing Returns)

परंपरावादी अर्थशास्त्री उपरोक्त तीनों नियमों को अलग–अलग तथा बिल्कुल भिन्न नियम मानते थे। परंतु आधुनिक अर्थशास्त्री इस मत के हैं कि बढ़ता–घटता तथा स्थिर प्रतिफल के नियम अलग–अलग नियम नहीं हैं बल्कि ये घटते–बढ़ते अनुपात के

सामान्य नियम की तीन अवस्थाएं ही है जिनका अध्ययन अब से पहले इस अध्याय में हम कर चुके हैं। अब हम इन तीन अवस्थाओं का तीन अलग–अलग नियमों के रूप में अध्ययन करेंगे।

1. बढ़ते प्रतिफल का नियम (Law of Increasing Returns)

इस नियम का प्रतिपादन सबसे पहले किया गया था। बढ़ते–प्रतिफल के नियम अनुसार किसी स्थिर साधन के साथ परिवर्तनशील साधन की इकाइयां बढ़ाने पर उत्पादन उससे अधिक अनुपात से बढ़ता है। बढ़ते प्रतिफल का नियम एक ऐसी स्थिति की व्याख्या करता है जिसमें स्थिर साधन के साथ परिवर्तनशील साधन की मात्रा बढ़ाने पर कुल उत्पादन बढ़ती दर पर बढ़ता जाता है। इसके अंतगर्त सीमांत तथा औसत प्रतिफल बढ़ता जाता हैं इस नियम को लागतों के रूप में घटती लागत के नियम (Law of Diminishing Cost) के नाम से जाना जाता है क्योंकि इसके अंतर्गत सीमांत तथा औसत लागत गिर रही होती है।

परिभाषाएं (Definitions)

डॉ. मार्शल के अनुसार, "श्रम तथा पूंजी की वृद्धि से सामान्यतः संगठन में सुधार होता है जिससे श्रम तथा पूंजी की कार्यकुशलता बढ़ती है। इसलिए सामान्यतः श्रम तथा पूंजी की वृद्धि से मिलने वाले प्रतिफल में इसके अनुपात से अधिक वुद्धि होती है।" (An increase of labour and capital leads generally to improved organisation, which increases the efficiancy of the work of labour and capital. Therefore, an increase of labour and capital generally gives a return which increases more than in proportion.—Dr. Marshall)

बेन्हम के अनुसार, "जब साधनों के संयोग में एक साधन के अनुपात को एक सीमा तक बढ़ाया जाता है तो इस साध्णन की सीमांत उत्पादकता में वृद्धि होगी।" (As the proportion of one factor in a combination of factors is increased upto a point, the marginal productivity of the factor will increase. —Benham)

मान्यताएं (Assumptions): इस नियम की मुख्य मान्यताएं निम्नलिखित हैं:

1. उत्पादन में साधनों को संयोग में प्रयोग किया जाता है। अर्थात् उत्पादन में कुछ साधन स्थिर तथा एक साधन परिवर्तनशील होता है।
2. परिवर्तनशील साधन की मात्रा में वृद्धि करने से संगठन या व्यवस्था में सुधार होता है।
3. उत्पादन तकनीक स्थिर रहती है।

व्याख्या (Explanation): इस नियम की व्याख्या निम्न दो प्रकार से की जा सकती है:

1. बढ़ते प्रतिफल के नियम के रूप में।
2. घटती लागत के नियम के रूप में

बढ़ते प्रतिफल के नियम या घटती लागत के नियम को तालिका 2 तथा रेखाचित्र 2 की सहायता से व्यक्त किया जा सकता है।

उपरोक्त तालिका 2 से स्पष्ट है कि गेंहू के उत्पादन को बढ़ाने के लिए 5 एकड़ भूमि स्थिर साधन के साथ ज्यों–ज्यों परिवर्तनशील साधन श्रम व पूंजी की अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग किया जाता है तो श्रम व पूंजी का सीमांत उत्पादन बढ़ता जाता है। अन्य शब्दों में गेहूं के कुल उत्पादन में वृद्धि बढ़ती दर पर होती जाती है। लागत के रूप में श्रम व पूंजी की इकाइयां बढ़ाने पर गेहूं के उत्पादन की सीमांत लागत (सीमांत उत्पादन से श्रम व पूंजी की एक इकाई की लागत को भाग देकर ज्ञात किया गया है) कॉलम (6) में घटती जाती है। इसलिए इस नियम को घटती लागत का नियम (Law of Diminishing Cost) भी कहते हैं।

तालिका 2 : बढ़ते प्रतिफल या घटती लागत का नियम

भूमि का आकार (एकड़ में) (1)	श्रम व पूंजी की इकाइयां (2)	कुल उत्पादन गेहूं (क्विंटल) (3)	सीमांत उत्पादन (4)	श्रम व पूंजी की प्रति इकाई लागत (रु. में) (5)	सीमांत लागत (रु. में) (6) = (5) + (4)
5	1	10	10	100	10.0
5	2	22	12	100	8.3
5	3	36	14	100	7.1
5	4	52	16	100	6.2
5	5	70	18	100	5.1

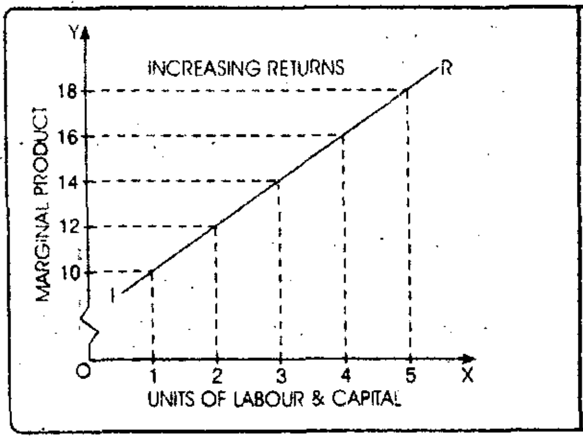

चित्र 3

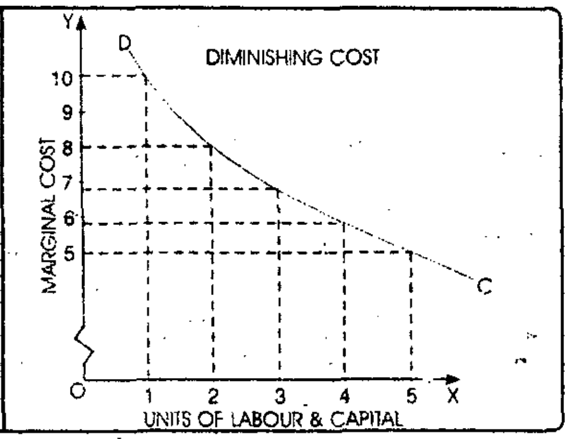

चित्र 4

रेखाचित्र 3 में OX- अक्ष पर श्रम तथा पूंजी की इकाइयों तथा OY- अक्ष पर सीमांत प्रतिफल को मापा गया है। रेखा IR इस बात को स्पष्ट करती है कि जैसे–जैसे श्रम तथा पूंजी की इकाइयां बढ़ाई जाती हैं तो सीमांत उत्पादन बढ़ता जाता है। यह बढ़ते प्रतिफल के नियम को व्यक्त करता है।

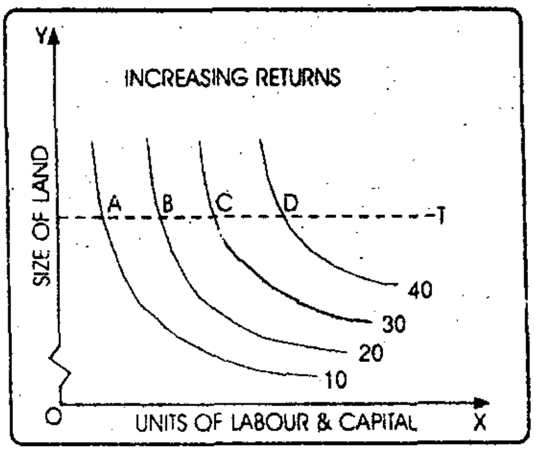

चित्र 5

रेखाचित्र 4 में OX- अक्ष पर श्रम तथा पूंजी की इकाइयां तथा OY अक्ष पर सीमांत लागत मापी गई है। DC वक्र इस बात को व्यक्त करता है कि ज्यों–ज्यों श्रम तथा पूंजी की अतिरिक्त इकाई भूमि की स्थिर मात्रा के साथ लगाई जाती हैं तो सीमांत लागत घटती जाती है। इसी कारण इस नियम को घटती लागत का नियम (Law of Diminishing Costs) कहा जाता है

सम उत्पाद वक्रों के माध्यम से नियम की व्याख्या (Explanation of the Law of Increasing Returns through Isoquants): सम–उत्पाद वक्रों के माध्यम से भी बढ़ते प्रतिफल या घटती लागत के नियम की व्याख्या की जा सकती है। चित्र 5 में दर्शाया गया है कि कुल उत्पादन में प्रत्येक वृद्धि के लिए भूमि की स्थिर मात्रा के साथ श्रम तथा पूंजी की कम–कम इकाइयां लगानी पड़ती है।

चित्र 5 में स्पष्ट दर्शाया गया है कि भूमि की स्थिर मात्रा 90 के साथ श्रम तथा पूंजी की मात्रा 50 के साथ श्रम तथा पूंजी की मात्रा बढ़ाने पर उत्पादक ऊंचे समउत्पाद वक्रों 20, 30, 40 को प्राप्त कर सकता है। SOT रेखा पर ज्यों हम दाईं ओर चलते हैं तो भूमि की तुलना में श्रम तथा पूंजी का अनुपात बढ़ता है। 90T रेखा पर AB से BC का अंतर तथा BC से CD प्रत्येक वृद्धि के लिए श्रम तथा पूंजी की कम कम इकाइयों की आवश्यकता पड़ती है। इससे उत्पादन की प्रति इकाई लागत कम होती जाती है।

नियम के लागू होने के कारण
(Causes of the Operation of the Law)

बढ़ते प्रतिफल का नियम सामान्यतः सभी उत्पादन क्षेत्रों में लागू होता है। इस नियम के लागू होने के मुख्य कारण निम्नलिखित है:

1. **स्थिर साधन** (Fixed Factor): प्रारंभ में जब उत्पादन बढ़ाया जाता है तो शुरू में स्थिर साधन का अनुपात अधिक होता है इसलिए सारे स्थिर साधन का प्रयोग नहीं हो पाता। ज्यों इस पर परिवर्तनशील साधन की इकाइयां बढ़ाई जाती हैं तो स्थिर साधन का प्रयोग बढ़ता जाता है तथा सीमांत प्रतिफल बढ़ता जाता है। इसलिए बढ़ते प्रतिफल का नियम लागू होता है। अन्य शब्दों में सीमांत उत्पादन बढ़ता है परंतु परिवर्तनशील साधन की प्रति इकाई लागत स्थिर रहती है। इस कारण सीमांत लागत गिरती जाती है।

2. **साधनों की अविभाजिता** (Indivisibility of the Factors): स्थिर साधन अविभाजित साधन (Indivisible Factors) होते हैं। स्थिर साधन की पूर्ण इकाई ही खरीदी जा सकती है जैसे कोई मशीन आदि। इसका अर्थ यह हुआ कि एक निश्चित सीमा तक उत्पादन बढ़ाने के लिए ऐसे साधन की कम से कम एक इकाई खरीदनी पड़ती है जैसे आपने एक बस खरीद ली है तथा सवारी ढोने की सेवा का उत्पादन करते हो। यदि शुरू में कम सवारी मिलती है तो प्रति सवारी बस की लागत ज्यादा होगी। अब ज्यों–ज्यों सवारियां बढ़ाते हो तो प्रति सवारी लागत कम होती जाती है। अतः साधन की अविभाजिता के कारण घटती लागत का नियम लागू होता है।

3. **श्रम विभाजन** (Division of Labour): स्थिर साधन के साथ ज्यों–ज्यों प्रारंभ में परिवर्तनशील साधन की इकाइयां लगाई जाती हैं तो उत्पादन बड़े पैमाने पर होने लगता है। इससे श्रम विभाजन तथा विशिष्टीकरण के अवसर बढ़ जाते हैं। इससे उत्पादन बढ़ती दर पर बढ़ता है तथा बढ़ते प्रतिफल का नियम या घटती लागत का नियम लागू होता है।

4. **बड़े पैमाने की बचतें** (Economies of Large Scale): जब उत्पादन इकाई का आकार बढ़ता है तो बहुत सी आंतरिक तथा बाह्य बचतें (Internal and External Economies) प्राप्त होती हैं। इस कारण से भी उत्पादन बढ़ने पर प्रति इकाई लागत कम होती जाती है तथा घटती लागत का नियम लागू होता है। ये बचतें फर्मों तथा उद्योगों सभी को प्राप्त होती है। इनका अध्ययन इसी अध्याय के आखिर में किया गया है।

5. **आदर्श या ईष्टतम संयोग** (Optimum Combination): जब स्थिर साधन तथा परिवर्तनशील साधन का ईष्टतम संयोग प्राप्त हो जाता है तो सीमांत उत्पादन अधिकत्तम होता है। उत्पादक हमेशा साधनों के ईष्टतम संयोग को प्राप्त करने

का इच्छुक रहता है। इसलिए ज्यों ज्यों वह परिवर्तनशील साधन की अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग करता है तो सीमांत प्रतिफल उस सीमा तक बढ़ता है जब तक यह ईष्टत्तम संयोग प्राप्त नहीं हो जाता है। अतः इस कारण बढ़ते प्रतिफल या घटती लागत का नियम लागू होता है।

6. **उत्पादक का उद्देश्य** (Objective of the Producer): एक उत्पादक का उद्देश्य अपने कुल उत्पादन को अधिकतम करना होता है। इसलिए वह परिवर्तनशील साधनों की मात्रा इसलिए बढ़ाता है ताकि वह अपने अधिकतम उत्पादन के उद्देश्य को प्राप्त कर सके। अतः उत्पादक का उद्देश्य भी इस नियम के लागू होने का कारण बनता है।

नियम के उद्योगों में लागू होने के कारण
(Causes of the Application of the Law in Industries)

डॉ. मार्शल के अनुसार बढ़ते प्रतिफल का नियम अधिकतर उद्योगों में लागू होता है। इसके मुख्य कारण निम्न प्रकार से हैं:

1. **साधनों की लोचर पूर्ति** (Elastic Supply of Factors): उद्योगों में जिन उपादान साधनों की आवश्यकता पड़ती है जैसे श्रमिक, कच्चा माल, पूंजी आदि, यदि इनकी पूर्ति लोचदार होती है तो उत्पादन में वृद्धि करने के लिए इनकी पूर्ति तुरंत बढ़ाई जा सकती है। इसलिए उद्योगों में बढ़ते प्रतिफल या घटती लागत का नियम शीर्घता से लागू होता है।
2. **श्रम-विभाजन** (Division of Labour): उद्योगों में ज्यों साधनों की मात्रा बढ़ा कर उत्पादन बढ़ाया जाता है तो अनेक छोटे–छोटे कार्य उत्पन्न हो जाते हैं। जिससे प्रत्येक श्रमिक को उत्पादन के बड़े कार्य का छोटा उपभाग ही रोजाना पूरा करना होता है अर्थात् श्रम विभाजन हो जाता है। इससे प्रत्येक श्रमिक अपने–अपने कार्य में कुशलता या दक्षता प्राप्त कर लेता है जिससे सभी श्रमिकों की उत्पादकता बढ़ती है तथा उद्योग में बढ़ते प्रतिफल या घटती लागत का नियम शीघ्रता से लागू होता है।
3. **मशीनों का प्रयोग** (Use of Machines): उद्योगों में कृषि आदि क्षेत्रों की तुलना में अति आधुनिक एवं वैज्ञानिक मशीनों का अधिक प्रयोग होता है। इससे उत्पादन बढ़ती दर पर बढ़ता है तथा बढ़ते प्रतिफल का नियम शीघ्रता से लागू होता है।
4. **नए-नए आविष्कार** (New Inventions): उद्योगों में नए–नए आविष्कार होते रहते हैं जिससे उत्पादन बढ़ती दर पर बढ़ता है तथा बढ़ते प्रतिफल या घटती लागत का नियम शीघ्रता से लागू होता है।
5. **उचित प्रबंध** (Proper Management): उद्योगों में प्रबंध पर विशेष ध्यान तथा व्यय किया जाता है। इससे कार्य की उचित देख–रेख हो पाती है तथा हर कमी को पूरा करने का तुरंत प्रयास किया जाता है। इसके परिणामस्वरूप उत्पादन बढ़ती दर पर बढ़ता है तथा घटती लागत का नियम उद्योगों में शीघ्र लागू होता है।
6. **आंतरिक व बाहरी बचतें** (Internal and External Economies): उद्योगों में उत्पादन का आकार बढ़ाने से कई प्रकार की बचतें प्राप्त होती हैं, जैसे कच्चा माल अधिक मात्रा में खरीदा जाता है तो सस्ता मिल जाता है आदि। इस कारण भी उद्योगों में बढ़ते प्रतिफल या घटती लागत का नियम शीघ्रता से लागू होता है।
7. **प्रकृति का कम प्रभाव** (Less Influence of Nature): कृषि की तुलना में उद्योगों पर प्रकृति का प्रभाव कम पड़ता है। उद्योगों के उत्पादन पर श्रमिक तथा मशीन का प्रभाव अधिक पड़ता है। इससे उद्योगों में बढ़ते प्रतिफल का नियम शीघ्रता से लागू होता है क्योंकि श्रमिक तथा मशीनों पर नियंत्रण अधिक हो पाता है।
8. **औद्योगिक पदार्थों की लोचदार मांग** (Elastic Demand for Industrial Products): कृषि पदार्थों की मांग बेलोच होती है परंतु औद्योगिक पदार्थों की मांग लोचदार होती है। इस कारण उद्योगों में उत्पादन बढ़ने पर जरा भी कम कीमत पर सारा उत्पादन तुरंत बिक जाता है। इसलिए यह नियम उद्योगों में शीघ्रता से लागू होता है।
9. **सरकारी नीति** (Policy of the Government): देखा गया है कि उद्योगपति राजनेताओं को चंदा आदि अधिक मात्रा में देकर औद्योगिक नीति को अपने अनुकूल बनवाने में सफल हो जाते हैं। इससे उद्योगों को काफी सहायता प्राप्त होती है। अतः इस कारण भी यह नियम मुख्यतः उद्योगों में लागू होता है।

10. **साख सुविधाएं** (Credit Facilities): कृषि की तुलना में बैंक उद्योगों को साख प्रदान करना लाभकारी तथा सुलझ समझते हैं। साख उद्योगों की रीढ़ की हड्डी होती है। उद्योगों को साख उपयुक्त मात्रा में तथा समय पर उपलब्ध होने के कारण भी बढ़ते प्रतिफल या घटती लागत का नियम शीघ्रता से या अधिक देर पर लागू रहता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि बढ़ते प्रतिफल का नियम वैसे तो उत्पादन क्षेत्रों में लागू होता है परंतु उद्योगों में यह नियम अधिक देर तक लागू रहता है।

2. समान प्रतिफल का नियम (Law of Constant Returns)

समान प्रतिफल का नियम व्यक्त करता है कि स्थिर साधन के साथ परिवर्तनशील साधन की इकाइयां बढ़ाने पर कुल उत्पादन में वृद्धि उसी अनुपात से होती है जिस अनुपात में परिवर्तनशील साधन की इकाईयां बढ़ाई जाती हैं। उदाहरण के लिए भूमि की मात्रा स्थिर रखते हुए यदि श्रम तथा पूंजी की इकाइयां दुगनी कर दी जाएं तो गेहूं के उत्पादन में वृद्धि भी दुगना होती है तो कृषि में समान प्रतिफल का नियम लागू होता कहा जाएगा। जब उत्पाद में वृद्धि या कमी उसी अनुपात से होती है जिस अनुपात से परिवर्तनशील साधन की इकाइयां बढ़ाई या घटाई जाती हैं तो उत्पादन की औसत लागत या सीमांत लागत भी समान रहती है। इसी कारण इसको समान लागत का नियम (Law of constant cost) भी कहा जाता है।

प्रो. स्टीगलर के अनुसार, "समान प्रतिफल का नियम व्यक्त करता है कि जब उत्पादन के सभी साधनों को एक निश्चित अनुपात में बढ़ाया जाता है तो उत्पादन भी उसी अनुपात में बढ़ता है (Law of Constant Returns states that when all the productive services are increased in a given proportion, the product is increased in the same proportion —Prof. Stigler)

यह नियम बढ़ते प्रतिफल के नियम तथा घटते प्रतिफल के नियम के बीच की अवस्था को व्यक्त करता है। इस नियम की व्याख्या निम्न तालिका तथा चित्रों के माध्यम से की जा सकती है:

नियम की व्याख्या (Explanation of the Law):

तालिका तथा चित्रों की सहायता से समान प्रतिफल के नियम की व्याख्या समान प्रतिफल के रूप में तथा समान लागत के रूप में की गई है। इसी कारण से इस नियम को समान 'प्रतिफल का नियम' या 'समान लागत का नियम' कहा जाता है। जो निम्न तालिका 3 से स्पष्ट हो रहा है:

तालिका 3: समान प्रतिफल या समान लागत का नियम

भूमि का आकार (एकड़ में) (1)	श्रम व पूंजी की इकाइयां (2)	गेहूं का कुल उत्पादन (क्विंटल) (3)	सीमांत उत्पादन (4)	श्रम व पूंजी की प्रति इकाई लागत (रु. में) (5)	सीमांत लागत (रु.) (6) = (5) ÷ (4)
5	1	10	10	1000	100
5	2	20	10	1000	100
5	3	30	10	1000	100
5	4	40	10	1000	100

उपरोक्त तालिका 3 से स्पष्ट है कि जब भूमि की स्थिर मात्रा (5 एकड़) के साथ श्रम व पूंजी की अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग किया जाता है तो कुल उत्पादन समान दर (10 क्विंटल) से बढ़ता है या सीमांत प्रतिफल समान (10) बना रहता है। तालिका से यह भी स्पष्ट है कि श्रम व पूंजी की इकाइयों में परिवर्तन करने पर उत्पादन की सीमांत लागत स्थिर (100 रु.) बनी रहती

है। श्रम व पूंजी की एक इकाई की लागत को सीमांत उत्पादन से भाग देकर सीमांत लागत ज्ञात की जा सकती है। अतः सीमांत लागत स्थिर रहने के कारण यह नियम समान लागत का नियम (Law of constant cost) कहा जाता है।

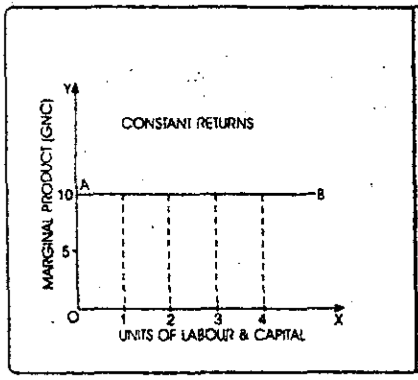

चित्र 6

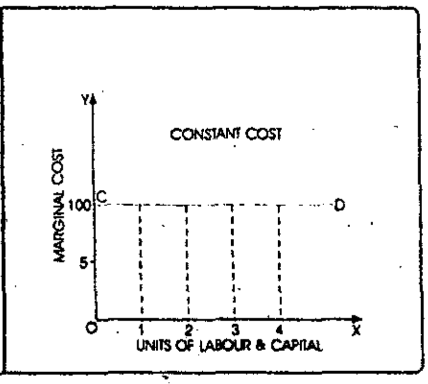

चित्र 7

रेखाचित्र (Diagram):

उपरोक्त तालिका 3 के आधार पर इस नियम की व्याख्या उपरोक्त चित्रों के द्वारा की जा सकती है:

रेखाचित्र 6 के पक्ष OX- अक्ष पर श्रम तथा पूंजी की इकाइयां तथा OY- अक्ष पर सीमांत उत्पादन मापा गया है। जब श्रम तथा पूंजी की इकाइयां 1 से 2, 3, तथा 4 तक बढ़ाई जाती हैं तो सीमान्त उत्पादन 10 क्विन्टल पर स्थिर रहता है जिसको AB रेखा द्वारा प्रकट किया गया है। सीमान्त प्रतिफल स्थिर रहने के कारण ही इसको समान प्रतिफल का नियम कहा जाता है।

चित्र 7 में इस निमय की व्याख्या लागत के रूप में की गई है। इसके OX–अक्ष पर श्रम तथा पूंजी की इकाइयां तथा OY–अक्ष पर सीमान्त लागत (Marginal cost) मापी गई है। चित्र में CD रेख प्रकट करती है कि ज्यों–ज्यों श्रम तथा पूंजी की इकाइयां बढ़ाई जाती हैं तो सीमान्त लागत समान (100 रु.) बनी रहती है। इसी कारा इसको समान लागत का नियम कहा जाता है।

सम-उत्पाद वक्रों के माध्यम से नियम की व्याख्या (Explanation of the Law through Isoquants or Iso-Product curves): समान प्रतिफल के नियम की व्याख्या सम–उत्पाद वक्रों के माध्यम से निम्न रेखाचित्र 8 की सहायता से भी की जा सकती है:–

रेखाचित्र 8 में OX–अक्ष पर श्रम तथा पूंजी की इकाइयां तथा OY–अक्ष पर स्थिर साधन भूमि की मात्रा मापी गई है जो स्थिर है।

L_0S रेखा भूमि तथा श्रम व पूंजी की इकाइयों के विभिन्न संयोगों तथा अनुपातों को दर्शाती है। उत्पादक का सम उत्पाद वक्रों का मानचित्र (10, 20, 30, 40) भी चित्र में दर्शाया गया है। L_0S रेखा पर AB, BC तथा CD के बीच की दूरी समान है जो इस बात का प्रतीक है कि जब श्रम तथा पूंजी की मात्रा दुगनी अर्थात् एक इकाई से दो कर दी जाती है जो उत्पादन भी दुगना अर्थात् 10 क्विंटल से बढ़कर 20 हो जाता है। इसी प्रकार आगे भी श्रम तथा पूंजी की इकाइयों में जिस अनुपात से वृद्धि होती है। कुल उत्पादन उसी अनुपात से बढ़ता है।

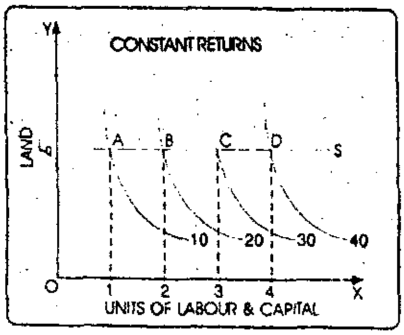

चित्र 8

समान प्रतिफल के नियम के कारण
(Causes of Constant Returns)

इस नियम के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं:

1. **स्थिर साधन का ईष्टत्तम प्रयोग** (Optimum use of the Fixed Factor): प्रारंभ में स्थिर साधन के आय परिवर्तनशील साधन की इकाइयां बढ़ते रहने से एक अवस्था ऐसी आती है कि सीमांत प्रतिफल अधिकतम स्तर को प्राप्त कर जाता है तथा यह स्तर परिवर्तनशील साधन की कुछ और इकाइयां लगाने तक बनी रहती है। इसका कारण यह होता है कि इस अवस्था में स्थिर साधन का श्रेष्ठत्तम या ईष्टत्तम प्रयोग हो रहा होता है।

2. **आदर्श साधन अनुपात** (Ideal Factor Ratio): प्रारंभ में स्थिर साधन का परिवर्तनशील साधन से अनुपात अधिक होता है तथा श्रम व पूंजी की इकाइयां बढ़ने से यह अनुपात उत्पादन की दृष्टि से उचित या आदर्श होता जाता है। जब दोनों प्रकार के साधनों में यह अनुपात आदर्श स्तर पर पहुंच जाता है तो सीमांत उत्पादन अधिकतम स्तर पर पहुंच जाता है तथा समान प्रतिफल का नियम लागू होता है।

3. **श्रम विभाजन का लाभ** (Advantage of the Division of Labour): प्रारंभ में स्थिर साधन के साथ श्रम व पूंजी की इकाइयां बढ़ाई जाती है तो श्रम विभाजन नहीं होता या बहुत कम हो पाता है। परंतु ज्यों–ज्यों इसकी इकाईयां बढ़ती हैं तो श्रम विभाजन विशिष्टीकरण (Specialisation) के लाभ प्राप्त होने लग जाते हैं। इस कारण सीमांत प्रतिफल बढ़ता रहता है। एक सीमा पर श्रम विभाजन तथा विशिष्टीकरण अधिकतम सीमा पर पहुंच जाता है जिससे सीमांत उत्पादन अधिकत्तम प्राप्त होने लगता है। इस स्तर पर ही समान प्रतिफल का नियम लागू होता है।

3. घटते प्रतिफल का नियम
(Law of Diminishing Returns)

कुछ साधनों की मात्रा स्थिर रखते हुए ज्यों–ज्यों किसी एक साधन की मात्रा में वृद्धि की जाए तो कुल उत्पादन में वृद्धि यदि घटती दर पर हो तो उसे घटते प्रतिफल का नियम कहते हैं। रिकार्डो, डॉ. मार्शल आदि अनेक अर्थशास्त्रियों ने इस नियम की व्याख्या विशेष रूप से कृषि उत्पादन के संबंध में की है। उनके अनुसार घटते प्रतिफल का नियम व्यक्त करता है कि भूमि के एक टुकड़े पर जैसे–जैसे श्रम व पूंजी की अधिक इकाइयां लगाई जाएंगी, श्रम तथा पूंज्री की इकाइयों से प्राप्त सीमांत उत्पादन कम होता जाएगा। आधुनिक अर्थशास्त्री इस नियम का प्रयोग केवल कृषि के लिए ही नहीं बल्कि उद्योगों आदि उत्पादन क्षेत्रों में भी करते हैं। इस नियम को बढ़ती लागत का नियम (Law of Increasing Cost) भी कहा जाता है क्योंकि जब कुल उत्पादन में वृद्धि घटती दर पर होती है तो वस्तु की सीमांत लागत तथा औसत लागत बढ़ती जाती है।

परिभाषाएं (Definitions): उपरोक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि इस नियम की दो विचारधाराएं निम्न प्रकार से हैं:

1. **परंपरावादी परिभाषा (Classical Definition):** डॉ. मार्शल के अनुसार, "यदि कृषि कला में उन्नति न हो तो भूमि की जोत पर लगाई गई पूंजी तथा श्रम की इकाईयों में वृद्धि करने से उपज की मात्रा में साधारणतया उससे कम अनुपात में वृद्धि होती है।" (An increase in the amount of capital and labour applied in the cultivation of land causes, in general a less than proportionate increase in the amount of produce raised unless it happens to caincide with an improvement in the art of agriculture —Dr. Marshall)

2. **आधुनिक परिभाषाएं (Modern Definitions):** प्रो. बोल्डिग के अनुसार, "जैसे–जैसे हम अन्य स्थिर साधनों के साथ किसी एक साधन की मात्रा को बढ़ाते जाते हैं, वैसे–वैसे परिवर्तनशील साधन की सीमांत भौतिक उत्पादकता अवश्य कम होती जाएगी।" (As we increase the quantity for any one input which is combined with fixed quantity of other inputs, the marginal physical productivity of the variable input must eventually decline.

प्रो. बेन्हम के अनुसार, "जैसे–जैसे साधनों के संयोग में किसी एक साधन का अनुपात बढ़ाया जाता है , वैसे–वैसे एक सीमा के बाद उस साधन की सीमांत तथा औसत उत्पादन कम होते जाते हैं।" (As the proportion of one factor in a combination of factors is increased, after a point, the marginal and average product of that factor will diminsh. —Prof. Benham)

मान्यताएं (Assumptions): इस नियम की मुख्य मान्यताएं निम्न प्रकार से हैं:

1. उत्पादन तकनीक में कोई परिवर्तन नहीं होता है।
2. कुछ साधन स्थिर तथा एक साधन परिवर्तनशील है। अर्थात् अल्पकाल की मान्यता की गई है।
3. परिवर्तनशील साधन की सभी इकाइयां समरूप हैं।
4. साधनों के अनुपात में परिवर्तन इस प्रकार से होता है कि परिवर्तनशील साधन का अन्य साधनों से अनुपात बढ़ता रहता है।

व्याख्या (Explanation): बढ़ते प्रतिफल तथा स्थिर प्रतिफल के नियमों की तरह इस नियम की व्याख्या भी घटते प्रतिफल के नियम के रूप में तथा बढ़ती लागत के नियम के रूप में की जा सकती है:

घटते प्रतिफल के नियम अथवा बढ़ती लागत के नियम की व्याख्या निम्न तालिका तथा रेखाचित्रों की सहायता से की जा सकती है:

तालिका 4 : घटते प्रतिफल तथा बढ़ती लागत का नियम

भूमि (एकड़ में) (1)	श्रम व पूंजी की इकाइयां (2)	कुल उत्पादन गेहूं (क्विंटल) (3)	सीमांत उत्पादन (क्विंटल में) (4)	श्रम व पूंजी की प्रति इकाई लागत (रु. में) (5)	सीमांत लागत (6) = (5) + (4)
5	1	10	10	1000	100
5	2	18	8	1000	125
5	3	24	6	1000	166
5	4	28	4	1000	250

उपरोक्त तालिका 4 से स्पष्ट है कि भूमि के 5 एकड़ के स्थिर खेत पर जैसे–जैसे परिवर्तनशील साधन श्रम व पूंजी की अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग किया जाता है वैसे–वैसे सीमांत उत्पादन या प्रतिफल घटता जाता है तथा कुल उत्पादन में वृद्धि घटती दर से होती जाती है। इसी कारण इसको घटते प्रतिफल का नियम कहा जाता है। तालिका से स्पष्ट है कि सीमांत प्रतिफल के घटते रहने के कारण सीमांत लागत बढ़ती जाती है। इस कारण इस नियम को बढ़ती लागत का नियम भी कहते हैं। इस तालिका के अनुसार इन दोनों निष्कर्षों की व्याख्या उपरोक्त चित्रों की सहायता से भी की गई है।

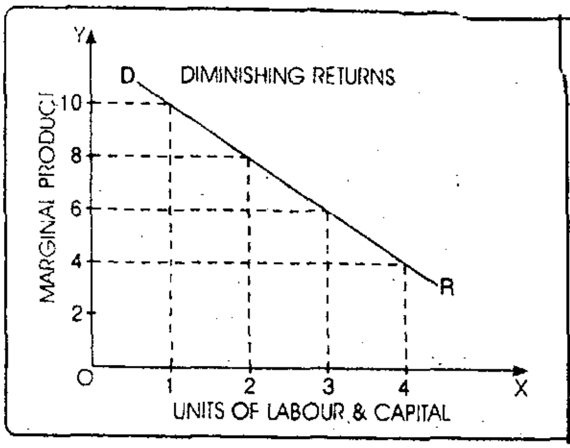

चित्र 9

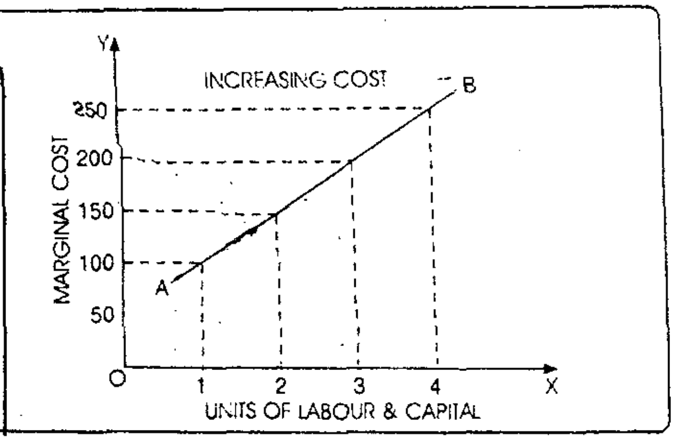

चित्र 10

रेखाचित्र 9 में OX अक्ष पर श्रम तथा पूंजी की इकाइयां और OY अक्ष पर सीमांत उत्पादन मापा गया है। श्रम तथा पूंजी की इकाइयां बढ़ाने पर सीमांत उत्पादन गिरता हुआ DR वक्र की सहायता से दर्शाया गया है। इस से स्पष्ट है कि भूमि की सीमित मात्रा के साथ ज्यों–ज्यों श्रम व पूंजी की अतिरिक्त इकाइयां लगाई जाती हैं श्रम व पूंजी की इकाइयों से प्राप्त सीमांत उत्पादन या प्रतिफल कम–कम होता जाता है। यह प्रवृत्ति ही घटते प्रतिफल का नियम कहलाती है।

रेखाचित्र 10 में OX- अक्ष पर श्रम तथा पूंजी की इकाइयां तथा OY- अक्ष पर सीमांत लागत को प्रदर्शित किया गया है। श्रम तथा पूंजी की इकाइयां बढ़ाने पर सीमांत लागत गिरती जाती है जिसको AB वक्र द्वारा दर्शाया गया है। AB वक्र से स्पष्ट है कि भूमि की स्थिर मात्रा के साथ श्रम व पूंजी की अतिरिक्त इकाइयां लगाने पर उत्पादन की सीमांत लागत बढ़ती जाती है। सीमांत लागत के बढ़ने के कारण सीमांत उत्पादन या प्रतिफल का कम–कम होते जाना है।

सम-उत्पाद वक्रों के माध्यम से नियम की व्याख्या
(Explanation of the Law through Isoquants)

घटते प्रतिफल के नियम की व्याख्या सम–उत्पाद वक्रों के माध्यम से निम्न रेखाचित्र 11 की सहायता से भी की जा सकती है।

रेखाचित्र 11 में OX–अक्ष पर श्रम व पूंजी की इकाइयां तथा OY- अक्ष पर भूमि की मात्रा मापी गई है। अल्पकाल होने के कारण भूमि की मात्रा OL_0 सीमित या स्थिर है। अतः उत्पादन में वृद्धि केवल श्रम व पूंजी की इकाइयों को बढ़ा कर की जा सकती है। चित्र में L_0R रेखा भूमि तथा श्रम–पूंजी साधनों के सयोगों को प्रकट करती है। श्रम व पूंजी की इकाइयों में वृद्धि करने से कुल उत्पादन में वृद्धि को सम–उत्पाद वक्रों के मानचित्र द्वारा प्रकट किया गया है। L_0R साधन संयोग रेखा पर A बिन्दु से B, B बिन्दु से C तथा C बिन्दु से D की दूरी बढ़ती जाती है। यह इस बात का प्रतीक है कि उत्पादन में समान वृद्धि के लिए श्रम तथा पूंजी की अधिक–अधिक इकाइयों का प्रयोग करना पड़ता है। यह तभी संभव है कि श्रम व पूंजी अधिक इकाइयां लगाने से इसका सीमांत उत्पादन कम–कम होता जाता है। अतः इससे चित्र 11 में घटते प्रतिफ़ल का नियम स्पष्ट होता है।

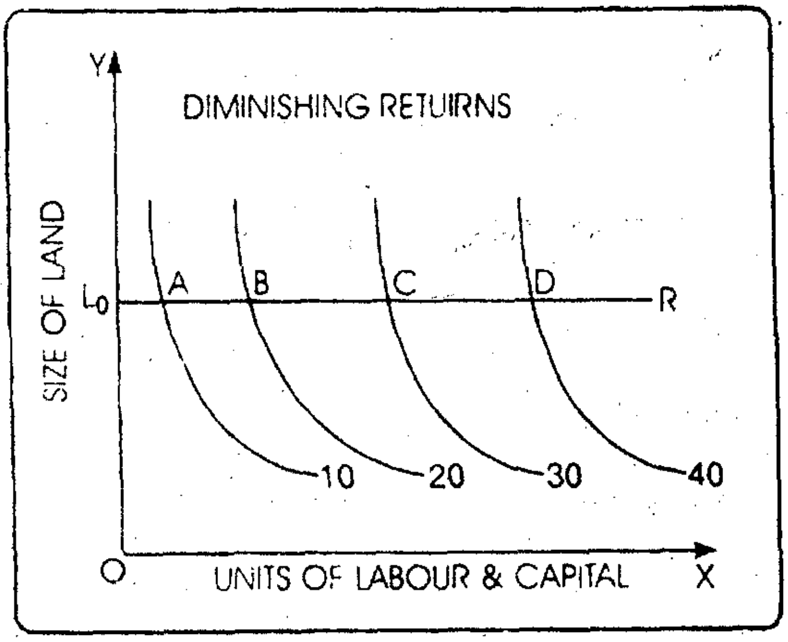

चित्र 11

नियम के लागू होने के कारण
(Causes of the Application of this Law)

घटते प्रतिफल या बढ़ती लागत के नियम के लागू होने के मुख्य कारण निम्न प्रकार से हैं:

1. ***उत्पादन के स्थिर साधन (Fixed Factors of Production):*** अल्पकाल समय अवधि होने के कारण उत्पादन के कुछ साधन स्थिर होते हैं। उत्पादन में कुछ साधनों का स्थिर होना ही इस नियम के लागू होने का मुख्य कारण बन जाता है। जब स्थिर साधन के साथ परिवर्तनशील साधन की इकाइयां बढ़ाते जाते हैं तो स्थिर साधन का परिवर्तनशील साधन से अनुपात कम–कम होता जाता है। जबकि उत्पादन दोनों प्रकार के साधनों के सहयोग का प्रतिफल होता है। एक सीमा के बाद प्रत्येक श्रम व पूंजी की अगली इकाई को स्थिर साधन का कम–कम सहयोग प्राप्त होता जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि परिवर्तनशील साधन (श्रम व पूंजी) का सीमांत उत्पादन या प्रतिफल घटता जाता है।

2. ***इष्टत्तम संयोग (Optimum Combination):*** स्थिर साधन का परिवर्तनशील साधन से कोई न कोई आदर्श (Ideal) संयोग होता है जिस पर सीमांत प्रतिफल अधिकतम होता है। साधनों के इस आदर्श संयोग को ही इष्टत्तम संयोग (Optimum combination) कहा जाता है। स्थिर साधन के साथ परिवर्तनशील साधन की जैसे–जैसे इकाइयां बढ़ाई जाती हैं तो दोनों प्रकार के साधनों का वैसे–वैसे संयोग इष्टत्तम स्तर से गिरता जाता है तथा घटते प्रतिफल या बढ़ती लागत का नियम लागू होता है।

3. ***अपूर्ण स्थानापन्न (Imperfect Substitutes):*** साधनों का अपूर्ण प्रतिस्थापन होना भी इस नियम के लागू होने का प्रमुख कारण माना जाता है। हम जानते हैं कि साधन का दूसरे साधन के स्थान पर पूर्ण रूप से प्रयोग संभव नहीं है। अर्थात् श्रम व पूंजी की इकाइयां बढ़ने पर भूमि की मात्रा अपेक्षाकृत कम रह जाती है। क्योंकि श्रम व पूंजी की इकाइयां भूमि का स्थान ग्रहण नहीं कर सकती। यदि ग्रहण कर सकती होती तो भूमि की पूर्ति को भी आवश्यकतानुसार बढ़ाया जा सकता होता। परंतु ऐसा नहीं हो सकता। इसलिए स्थिर साधन का अनुपात कम–कम होता जाता है तथा इस कारण घटते प्रतिफल का नियम लागू होता है।

उत्पादक का उद्देश्य (Objective of the Producer): उत्पादक का उद्देश्य अपने सीमित साधनों से कुल उत्पादन को अधिकतम करना होता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह परिवर्तनशील साधन का सीमांत प्रतिफल गिरने अथवा कुल उत्पादन में घटती दर पर वृद्धि होने पर भी श्रम व पूंजी की अतिरिक्त इकाइयां बढ़ाता रहता है। इसके फलस्वरूप घटते प्रतिफल का नियम लागू होता है।

नियम के लागू होने का क्षेत्र
(Scope of the Law)

यह नियम अनेक आर्थिक क्षेत्रों में लागू होता है। यह नियम किन–किन क्षेत्रों में लागू होता है? इस संबंध में अर्थशास्त्रियों के बीच वाद–विवाद पाया जाता है:

परंपरावादी तथा नवपरंपरावादी अर्थशास्त्रियों के मतानुसार घटते प्रतिफल का नियम केवल कृषि पर लागू होता है। डॉ. मार्शल के अनुसार, "जहां उत्पादन में प्रकृति द्वारा किए योगदान में घटते प्रतिफल की प्रवृत्ति होती है, वहां मनुष्य द्वारा किए गए योगदान में बढ़ते प्रतिफल की प्रवृत्ति होती हैं।" (While the part which nature plays in production shows a tendency to diminishing returns, the part which man plays shows a tendency to increasing returns —Dr. Marshall) अतः इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार घटते प्रतिफल का नियम केवल कृषि पर लागू होता है।

परंतु आधुनिक अर्थशास्त्रियों के विचार इस संबंध में ज्यादा व्यापक हैं। इन के अनुसार यह नियम उत्पादन के प्रत्येक क्षेत्र में लागू होता है, इसलिए यह एक सामान्य नियम है। इनके अनुसार यह नियम कृषि में शीघ्रता से लागू होता है। अतः यह नियम मुख्यतः निम्नलिखित क्षेत्रों में लागू होता है:

1. ***कृषि पर लागू होता है (Applies on Agriculture):*** यह निय. पर शीघ्रता से लागू होता है। भूमि की स्थिर मात्रा के साथ परिवर्तनशील साधन जैसे श्रम व पूंजी की इकाइय. जाती है तो सीमांत उत्पादन घटता जाता है। इसका कारण यह है कि कृषि में श्रम विभाजन के अवसर कम हो. ृषि में मनुष्य की तुलना में प्रकृति का योगदान अधिक होता है।

2. ***मछली पकड़ना (Fishing):*** मछली पकड़ने में भी यह नियम लागू होता है। म. ड़ने के लिए जैसे–जैसे श्रम व पूंजी की अतिरिक्त इकाइयां लगाई जाती हैं वैसे–वैसे मछलियां, अपेक्षाकृत कम . पात से पकड़ी जाती हैं। इसका कारण यह है कि जिस क्षेत्र या तालाब में मछली पकड़ी जाती है वह स्थिर है था . छलियों की संख्या भी सीमित होती है।

3. ***खनिज उद्योग (Mines):*** खानों से खनिज पदार्थ निकालने में भी यह नियम लागू होता है। सक. कारण यह है कि एक निश्चित खान से अधिक खनिज पदार्थ निकालने के लिए ज्यादा–ज्यादा श्रम व पूंजी . इकाईयां लगानी पड़ती है ताकि गहरी खुदाई करके ज्यादा–ज्यादा खनिज पदार्थ निकाले जा सकें। गहरी खुदाई करन. लिए रोशनी, मजदूरी आदि पर खर्च पहले से अधिक करना पड़ता है। इसलिए श्रम व पूंजी की अधिकाधिक इकाई ल. जितना गहरा खोदते जाएंगे उतना ही खर्च प्रतिफल के अनुपात में बढ़ता जाएगा। इस कारण बढ़ती लागत या घटते . फल का नियम लागू होता है।

4. ***इमारतें (Buildings):*** इमारतें जितनी ऊंची बनती जाती हैं ऊपर की मंजिलों पर नीचे की मंजिलों की तुलना में ख. बढ़ता जाता है। परंतु ऊपर की मंजिलों से किराया नीचे की मंजिलों की उपेक्षा कम–कम मिलता जाता है। इसलिए इमारतों के बनाने में भी यह नियम लागू होता है।

5. ***उद्योगों में लागू होता है (Applies in Industries):*** उद्योगों में भी कुछ साधन स्थिर होते हैं जैसे मशीनों, प्लांट आदि तथा श्रम व पूंजी परिवर्तनशीन साधन हैं। औद्योगिक पदार्थों का उत्पादन बढ़ाने के लिए श्रम व पूंजी की अतिरिक्त इकाइयां उत्पादन में लगाई जा सकती है। हम जानते हैं कि उद्योगों में भूमि की अपेक्षा श्रम व पूंजी का महत्व अधि‍क होता है। इसलिए श्रम व पूंजी की इकाइयां बढ़ाने पर बढ़ते प्रतिफल का नियम काफी देर तक लागू होता है। परंतु उद्योगों में भी ऐसी स्थिति उस समय उत्पन्न हो जाती है जब स्थिर साधन तथा परिवर्तनशील साधन का आदर्श संयोग (Optimum combination) प्राप्त हो जाता है, जहां सीमांत उत्पादन अधिकतम होता है। इसके बाद यदि श्रम व पूंजी की अतिरिक्त इकाइयां लगाई जाती है तो सीमांत उत्पादन या प्रतिफल गिरता जाता है या कुल उत्पादन घटती दर पर बढ़ता है। इस प्रकार अंततः उद्योगों में भी यह नियम अवश्य लागू होता है।

6. ***चालक शक्ति के उत्पादन में लागू होता है (Applies to the generation of Power):*** चालक शक्ति के उत्पादन में भी यह नियम लागू होता है क्योंकि इसमें भी स्थिर तथा परिवर्तनशील साधनों के संयोग से उत्पादन होता है। जब कभी स्थिर साधन का अनुपात इसमें कम पड़ता है तभी यह नियम लागू होना शुरू हो जाता है।

7. ***परिवहन में लागू होता है (Applies to Transportation):*** एक निश्चित तथा सीमित क्षेत्र में यदि बसों की संख्या अतिरिक्त श्रम तथा पूंजी की सहायता से बढ़ा दी जाती है तो भाड़े में वृद्धि अपेक्षाकृत कम अनुपात से होगी क्योंकि सवारियों की संख्या सीमित है। अतः यहां भी घटते प्रतिफल का नियम लागू होता है।

   अतः स्पष्ट है कि घटते प्रतिफल या बढ़ती लागत का नियम उत्पादन के सभी क्षेत्रों में लागू होता है। इसलिए यह एक सार्वभौमिक नियम (Universal Law) है। इस संबंध में विक्स्टीड ने ठीक ही कहा है कि, "घटते प्रतिफल का नियम जीवन का नियम है तथा यह सब क्षेत्रों में प्रत्येक जगह लागू होता है।" (The Law of Diminishing Returns is the law of life and is applicable anywhere and everywhere —Wicksteed)

घटते प्रतिफल का नियम अधिकतर खेती पर ही क्यों लागू होता है?
(Why does the Law of Diminishing returns mainly apply to Agriculture?

घटते प्रतिफल का नियम अधिकतर खेती पर ही क्यों लागू होता है या घटते प्रतिफल का नियम कृषि पर शीघ्रता से क्यों लागू होता है? इसके मुख्य कारण निम्नलिखित हैं:

1. ***प्राकृतिक कारण (Natural Factors):*** कृषि पदार्थों का उत्पादन प्रकृति की गोद में किया जाता है। यदि प्राकृतिक तत्व अनुकूल हैं तो उपज अच्छी होती है। इसके विपरीत यदि सूखा, बाढ़, अधिक वर्षा आदि प्राकृतिक आपदाएं होती हैं तो कृषि उत्पादन बहुत कम होता है। अतः कृषि उपज के अनुकूल जलवायु, मौसम आदि का विद्यमान् रहना यह एक अनिश्चितता ही बनी रहती है। इन कारणों से घटते प्रतिफल का नियम कृषि में शीघ्रता से लागू होता है।

2. ***भूमि के उपजाऊपन में कमी (Decrease in Fertility of Land):*** भूमि पर बार–बार खेती करने से भूमि के उपजाऊपन में कमी आ जाती है। भूमि पर युगों से खेती की जा रही है। अतः इसके उपजाऊपन में काफी कमी आ चुकी है। इस कारण भूमि के एक स्थिर टुकड़े पर श्रम पूंजी की अतिरिक्त इकाइयां लगाने से सीमांत उत्पादन गिरता जाता है अथवा यह नियम शीघ्रता से लागू होता है।

3. ***कम उपजाऊ भूमि पर भी खेती (Cultivation on even less fertile land):*** कृषि पदार्थों की मांग बढ़ने के कारण कम उपजाऊ भूमि पर खेती की जाती है। इस प्रकार की भूमि पर खर्चा अधिक तथा उत्पादन कम होता है। अतः इस पर श्रम व पूंजी की अतिरिक्त इकाइयां लगाने से सीमांत लागत बढ़ती जाती है तथा यह नियम शीघ्रता से लागू होता है।

4. ***कम देख-रेख (Less Supervision):*** कृषि का कार्य खेतों में दूर–दूर तक तथा विभिन्न दिशाओं में फैला होता है। कृषि कार्य अनेक बार मज़दूरों की सहायता से करवाया जाता है। अतः कार्य की ठीक से देख–रेख न होने के कारण कार्यकुशलता अथवा उत्पादकता में भी कमी आ जाती है तथा यह नियम शीघ्रता से लागू होता है।

5. ***पशु-पक्षियों द्वारा नुकसान (Loss due to Animals):*** पशु, पक्षी, कीड़े–मकोड़े आदि सभी खेती को दिन–रात हानि पहुंचाते रहते हैं। इनसे फसलों का बचाव करना असंभव सा होता हैं। अतः इस कारण भी कृषि में घटते प्रतिफल का नियम शीघ्रता से लागू होता है।

6. ***मौसमी व्यवसाय (Seasonal Occupation):*** कृषि कार्य एक मौसमी व्यवसाय है। कृषि कार्य साल में कुछ महीनों के लिए ही होता है। जैसे फसल बोने तथा काटने के समय कार्य होता है बाकि समय कार्य बहुत कम होता है। इस बाकि समय के दौरान कृषक तथा पशु बेकार ही रहते हैं। इससे उत्पादन लागत बढ़ती है तथा बढ़ती लागत का नियम अथवा घटते प्रतिफल का नियम कृषि में शीघ्रता से लागू होता है।

7. ***भूमि सीमित है (Land is Limited):*** भूमि की मात्रा स्थिर या सीमित होने के कारण इस पर श्रम व पूंजी की अतिरिक्त इकाइयां लगाने से भूमि का अनुपात कम रह जाता है तथा घटते प्रतिफल का नियम शीघ्र लागू होता है।

8. ***श्रम विभाजन के कम अवसर (Less Chances of Division of Labour):*** कृषि में कार्यों को ज्यादा उपभागों में नही ...ा जा सकता है। इसलिए इसमें श्रम–विभाजन के कम अवसर उपलब्ध होते हैं। इस कारण श्रम–विभाजन तथा ...करण के लाभ प्राप्त नहीं होते हैं तथा घटते प्रतिफल का नियम शीघ्रता से लागू होता है।

9. ***मशीनों ... कम प्रयोग (Less use of Machines):*** कृषक अपने कृषि कार्य को श्रम की सहायता से अधिक करते हैं तथा मशी... का बहुत कम प्रयोग करते हैं। इस कारण मशीन के प्रयोग से जो उत्पादकता या कार्यकुशलता बढ़ती है उसका लाभ ...षि को प्राप्त होता है। इसलिए भी घटते प्रतिफल का नियम कृषि में शीघ्रता से लागू होता है।

10. ***भूमि तथा श्रम-पूंजी ... स्थापन्नता नहीं (No Substitutability between Land and Labour capital):*** यह देखा गया है कि श्रम तथा मशी... में कुछ प्रतिस्थापन्नता पाई जाती है परंतु भूमि तथा श्रम–पूंजी के बीच कोई प्रतिस्थापन्ता नहीं पाई जाती है। इसलिए ...म तथा पूंजी की इकाइयां बढ़ाते रहने के कारण भूमि का अनुपात काफी कम रह जाता है तथा यह नियम कृषि में शीघ्... से लागू होता है।

...यम की सीमाएं
(Limitations of the Law)

इस नियम की प्रमुख सीमाएं निम्न प्रकार से हैं:

1. ***नई भूमि (New Soil):*** जब बंजर या नई भूमि अर्थात् जिस पर पहले खेती नहीं होती थी उस पर खेती की जाती

है तो श्रम तथा पूंजी का सीमांत उत्पादन गिरने की बजा... ढ़ने लगता है। क्योंकि नई भूमि का उपजाऊपन अधिक होता है। अतः घटते प्रतिफल का नियम लागू नहीं होता।

2. ***कृषि-कला में सुधार (Improvement in the Art of Agriculture):*** ...कला में सुधार होने पर भी यह नियम लागू नहीं होगा। डॉ. मार्शल के अनुसार, "यदि भूमि पर श्रम तथा पूंजी की ...यां बढ़ने के साथ-साथ कृषि कला में भी सुधार कर दिया जाए तो सीमांत उत्पादन या प्रतिफल में वृद्धि होने ... है।"

3. ***अपर्याप्त श्रम तथा पूंजी की इकाइयां (Inadequate Units of Labour and C...l):*** यदि प्रारंभ में श्रम तथा पूंजी की इकाइयां बहुत कम लगाई जाती हैं तो जैसे-जैसे इनकी अधिक इकाइयां लग...ती हैं तो सीमांत उत्पादन बढ़ने लगता है। इस प्रकार इस नियम के लागू होने की यह भी एक सीमा बन जाती है।

नियम का महत्व
(Importance of the Law)

घटते प्रतिफल का नियम अतिमहत्वपूर्ण नियम है। इस नियम के मुख्य महत्व निम्न प्रकार से हैं:

1. ***जनसंख्या के सिद्धांत का आधार (Basis of the Theory of Population):*** यह नियम माल्थस (Malthus) के जनसंख्या सिद्धांत का आधार है। इस सिद्धांत के अनुसार अनाज के उत्पादन में वृद्धि जनसंख्या में वृद्धि की तुलना में कम होती है। ऐसा तभी हो सकता है जब कृषि में घटते प्रतिफल का नियम लागू होता हो।

2. ***लगान के सिद्धांत का आधार (Basis of the Theory of Rent):*** यह नियम रिकार्डो के लगान सिद्धांत का आधार भी है। रिकार्डो के अनुसार श्रम–पूंजी की भूमि पर लगाई गई पहली इकाई से प्राप्त उत्पादन दूसरी इकाई की अपेक्षा प्राप्त उत्पादन से अधिक होता है तथा इन दोनों इकाइयों के उत्पादन में अंतर को ही लगान कहा जाता है।

3. ***आविष्कारों का आधार (Basis of Inventions):*** यह नियम नए–नए आविष्कारों का आधार भी है। इसका कारण यह है कि घटते प्रतिफल को रोकने के लिए नए–नए आविष्कार करने की प्रेरणा प्राप्त होती है।

4. ***इष्टतम उत्पादन का आधार (Basis of Optimum Production):*** जब घटता प्रतिफल लागू होता है तो इसका अर्थ यह होता है कि उत्पादन का इष्टतम स्तर या सीमांत उत्पादन का अधिकत्तम स्तर प्राप्त हो चुका है। इसके बाद उत्पादन बढ़ाना है या नहीं यह उत्पादक को स्वयं निर्णय लेना होता है। परंतु इस नियम के लागू होते ही हमें उत्पादन के इष्टत्तम स्तर का ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

5. ***वितरण के आधार का सिद्धांत (Basis of theTheory of Distribution):*** साधन–कीमत का निर्धारण उसकी सीमांत उत्पादकता के आधार पर होता है। घटते प्रतिफल के नियम के अनुसार यदि किसी साधन की अधिक इकाइयां लगाई जाती हैं तो उसका सीमांत उत्पादन भी कम हो जाता है तथा उस साधन की कीमत भी कम प्राप्त होगी।

6. ***उद्योगों का महत्व (Importance of Industries):*** उद्योगों में अधिकतर बढ़ते प्रतिफल का नियम लागू होता है जबकि कृषि में ज्यादातर घटते प्रतिफल का नियम लागू होता है। इसलिए उद्योगों का महत्व कृषि से अधिक माना जाता है।

7. ***आर्थिक विकास पर प्रभाव (Effect on Economic Development):*** यह नियम आर्थिक विकास के रास्ते में रूकावट का कार्य करता है। इसलिए आर्थिक विकास की दर को तीव्र करने के लिए तथा इस नियम को लागू होने से रोकने के लिए हर संभव प्रयास किए जाने चाहिए। इन प्रयासों में जितनी सफलता मिलेगी आर्थिक विकास भी उतना ही तीव्र होगा।

8. ***जनसंख्या के प्रवास का आधार (Basis of Migration of Population):*** जब सीमित भूमि का श्रम व पूंजी की तुलना में अनुपात काफी कम हो जाता है तो घटते प्रतिफल का नियम लागू होना निश्चित हो जाता है। ऐसी अवस्था में यह नियम जनसंख्या के प्रवास का आधार बनता है।

9. ***व्यापार का आधार (Basis of Trade):*** घटते प्रतिफल के कारण उत्पादन लागत बढ़ जाती है। इसलिए ऊंची कीमत प्राप्त करने के लिए एडम स्मिथ के अनुसार बाज़ार के आकार में वृद्धि करनी चाहिए। अतः इससे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा मिलता है।

पैमाने के प्रतिफल का नियम
(Law of Returns to Scale)

पैमाने के प्रतिफल का संबंध दीर्घकाल से है। दीर्घकाल में कोई भी साधन स्थिर नहीं होता है। अर्थात् सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं। घटते–बढ़ते अनुपात के नियम की तरह पैमाने के प्रतिफल में साधनों के अनुपात में परिवर्तन नहीं किया जाता बल्कि इस अनुपात को स्थिर रखते हुए सभी साधनों की मात्रा को समान रूप से घटाया बढ़ाया जाता है। अर्थात् साधनों के पैमाने को परिवर्तित किया जाता है। साधनों के पैमाने को परिवर्तित करने से उत्पादन पर जो प्रभाव पड़ता है उसको पैमाने के प्रतिफल के नियम (Law of Returns to Scale) द्वारा व्यक्त किया जाता है।

परिभाषा (Definition): प्रो. कोत्तसुयानी के अनुसार, "पैमाने के प्रतिफल का संबंध उत्पादन में उस परिवर्तन से है जो सभी साधनों के समान अनुपात में परिवर्तन होने के कारण होता है।" (The term returns to scale refers to the change in output as all factors change by the same proportion —Koutsoyiannis)

व्याख्या (Explanation): दीर्घकाल में साधनों के पैमाने अर्थात् सभी साधनों को समान अनुपात से बढ़ाने के कारण किसी वस्तु के उत्पादन में जो वृद्धि होती है उसको पैमाने के प्रतिफल के नियम के अंतर्गत व्यक्त किया जा सकता है इसको निम्न उत्पादन फलन के रूप में लिखा गया है:

$$Q = f(L, K)$$

यहां Q = कुल उत्पादन, L = श्रम, K = पूंजी।

मान लीजिए श्रम व पूंजी उत्पादन के दो ही साधन हैं। यदि श्रम (L) व पूंजी (K) दोनों को समान अनुपात (A) से बढ़ाया जाए तो कुल उत्पादन (Q) बढ़कर Q_1 हो जाएगा। इसको निम्न फलन द्वारा व्यक्त किया जा सकता है:

$$Q_1 = f(AL, AK)$$

इस फलन की व्याख्या तीन भागों में की जा सकती है:

(1) यदि साधनों के अनुपात में हुए परिवर्तन की अपेक्षा उत्पादन की मात्रा Q1 में परिवर्तन अधिक होता है, अर्थात् $\frac{Q_1}{Q} > A$ है तो इसे पैमाने का बढ़ता प्रतिफल (Increasing Returns of Scale) कहा जाएगा।

(2) यदि उत्पादन Q1 उसी अनुपात से बढ़ता है जिस अनुपात से साधनों में वृद्धि हुई है, अर्थात् $\frac{Q_1}{Q} = A$ है तो यह पैमाने का समान प्रतिफल (Constant Returns to Scale) कहा जाएगा।

(3) यदि साधनों में हुए परिवर्तन के अनुपात से उत्पादन की मात्रा Q_1 में कम परिवर्तन होता है, अर्थात $\frac{Q_1}{Q} < A$ तो यह पैमाने का घटता (Diminishing Returns to Scale) कहा जाएगा। इसको निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है:

तालिका 5 : पैमाने के प्रतिफल (Returns to scale)

उत्पादन का पैमाने (Scale of Production)	पैमाने में प्रतिशत (Percentage increase in scale)	कुल उत्पादन (Total Production)	कुल उत्पादन में प्रतिशत वृद्धि (Percentage increase in Total Production)	पैमाने का प्रतिफल (Returns to Scale)
1 L + 2 K	-	20	-	
2 L + 4 K	100%	60	200%	Increasing
3 L + 6 K	50%	120	100%	

4 L + 8 K	33%	16[illegible]		
5 L + 10 K	25%	200	33%	
6 L + 12 K	20%	220	25%	Constant
7 L + 14 K	16%	240	10%	
8 L + 16 K	14%	250	9%	Diminishing
			%	

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि :

1. **पैमाने का बढ़ता प्रतिफल (Increasing Returns to Scale):** यह तालिक... ...म्भिक स्थिति को प्रकट करता है। इसके अंतर्गत साधनों में हुई प्रतिशत वृद्धि के कारण उत्पादन में अपेक्षाकृत ... प्रतिशत वृद्धि होती है। इसी प्रवृत्ति को चित्र 12 में स्पष्ट किया गया है:

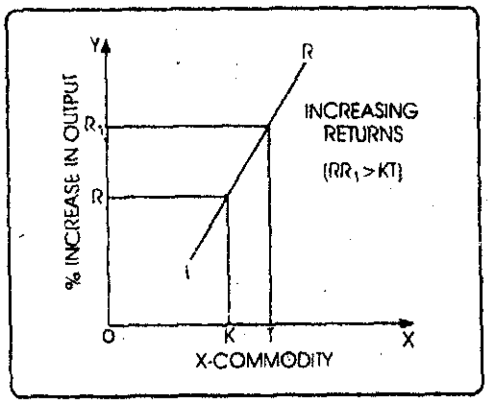

चित्र 12

इस चित्र से भी स्पष्ट है कि उत्पादन के पैमाने में प्रतिशत वृद्धि KT के कारण उत्पादन में प्रतिशत वृद्धि RR_1 हो जाती है। $RR_1 > KT$ है। इसलिए IR वक्र पैमाने के बढ़ते प्रतिफल को प्रकट कर रहा है।

2. **पैमाने का समान प्रतिफल** (Constant Return to Scale): तालिका 5 से स्पष्ट है कि जब उत्पादन में भी वृद्धि 33% से ही होती है तो उत्पादन में भी वृद्धि 33% से ही होती है तथा जब पैमाने में वृद्धि 25% से होती है तो उत्पादन में भी वृद्धि 25% से ही होती है। अर्थात् जिस अनुपात से उत्पादन के पैमाने में वृद्धि होती है उसी अनुपात से उत्पादन में वृद्धि होती है। इस अवस्था को पैमाने का समान प्रतिफल (Constant Return to Scale) कहा जाता है।

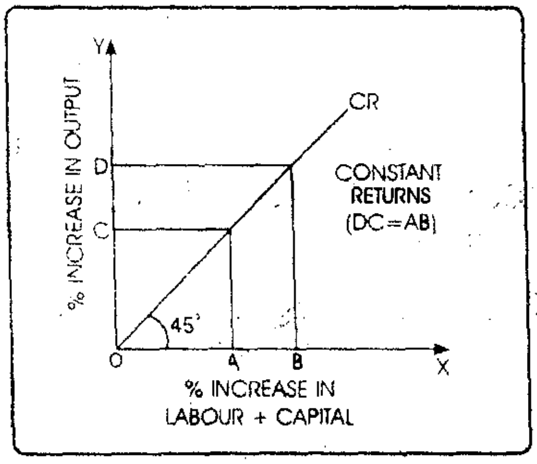

चित्र 13

इस स्थिति को रेखाचित्र 13 में स्पष्ट किया गया है। चित्र में CR वक्र व्यक्त 45° के कोण से निकाला गया है जो इस बात को निश्चित करता है कि जिस अनुपात से उत्पादन के साधनों में वृद्धि होती है उसी अनुपात से उत्पादन में वृद्धि होती है। यह स्वतः स्पष्ट है।

गणित की भाषा में पैमाने, के समान प्रतिफल के समरूप उत्पादन फलन (Homogeneous Production Function) कहा जाता है। इसको कॉब–डागलस उत्पादन फलन के रूप में भी प्रकट किया गया है। इसकी व्याख्या इससे पूर्व अध्याय में की जा चुकी है।

3. **पैमाने का घटता प्रतिफल** (Diminishing Returns to Scale): यह तालिका में अंतिम स्थिति को व्यक्त कर रहा है। इस अवस्था में जिस अनुपात से उत्पादन के पैमाने में वृद्धि होती है। उत्पादन में उससे कम अनुपात से वृद्धि होती है। इसी को पैमाने का घटता प्रतिफल कहा जाता है।

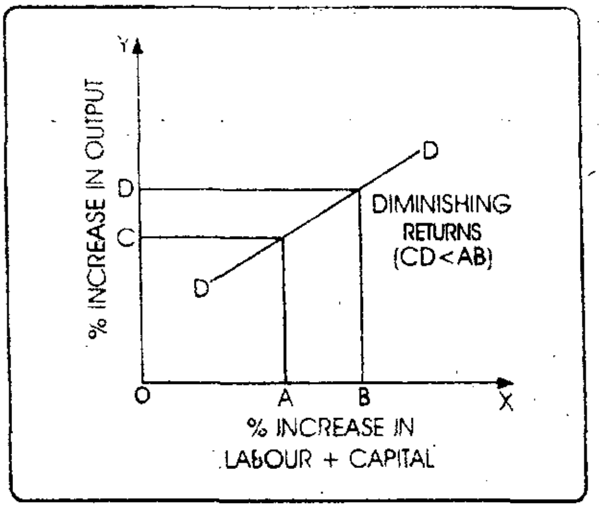

चित्र 14

रेखाचित्र 14 में DR वक्र दर्शाता है कि उत्पादन के पैमाने (L+K) में हुई वृद्धि के कारण कुल उत्पादन में अपेक्षाकृत कम वृद्धि होती है। अर्थात् श्रम तथा पूंजी में जिस अनुपात से वृद्धि होती है कुल उत्पादन में अपेक्षाकृत कम अनुपात से वृद्धि होती है। यह स्थिति चित्र 14 में स्वतः स्पष्ट है।

पैमाने के प्रतिफल के नियम की सम-उत्पाद वक्रों के माध्यम से व्याख्या
(Illustration of the Law of Returns to Scale through Isoquants)

पैमाने के प्रतिफल के नियम की व्याख्या एक ही चित्र में सम–उत्पाद वक्रों की सहायता से की जा सकती है। यह रेखाचित्र 15 में व्यक्त किया गया है।

चित्र 15 में OX- अक्ष पर पूंजी K तथा OY–अक्ष पर श्रम L की इकाइयों का माप किया गया है। चित्र में उत्पादक का एक काल्पनिक सम–उत्पाद मानचित्र इस प्रकार पेश किया गया है जिससे तीनों अवस्थाएं स्पष्ट हो सकें। चित्र 15 में OR रेखा पर सम–उत्पाद वक्रों की प्रारम्भ में दूरी कम होती जाती है जो पैमाने के बढ़ते प्रतिफल (Increasing Returns) को प्रकट करती है। दूसरी अवस्था में यह दूरी समान है जो पैमाने के समान प्रतिफल को प्रकट करती है। तीसरी अवस्था में सम उत्पाद वक्रों की दूरी बढ़ती जाती है। अर्थात् उत्पादन में समान वृद्धि करने के लिए पूंजी तथा श्रम की इकाई ज्यादा–ज्यादा अनुपात में बढ़ानी पड़ती हे। यह अवस्था घटते प्रतिफल (Diminishing Returns) को प्रकट करती है।

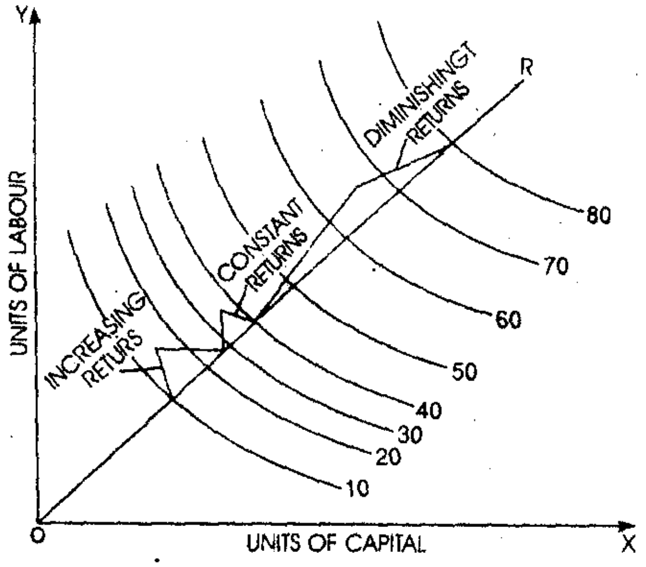

चित्र 15

पैमाने के प्रतिफल के कारण

(Causes of Returns of Scale)

दीर्घकाल में उत्पादन के पैमाने को बढ़ा कर कुल उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। परंतु उत्पादन में बढ़ता प्रतिफल, समान प्रतिफल क्यों लागू होता है? इसका कारण यह है कि उत्पादन के पैमाने को बढ़ाने से फर्म को अनेक आंतरिक व बाहरी बचतें व हानियां प्राप्त होती हैं।

प्रारंभ में इन बचतों की अधिकता होने के कारण उत्पादन में पैमाने का बढ़ता प्रतिफल प्राप्त होता है। इसके बाद पैमाने में और वृद्धि होने से ये बचतें कुछ कम होने लगती हैं तथा कुछ हानियां (Diseconomies) भी होने लगती हैं। इन सब का परिणाम यह होता है कि पैमाने का समान प्रतिफल लागू होता है। उत्पादन के पैमाने को और अधिक बढ़ाने पर बचतों की तुलना में हानियां अधिक होने लगती हैं जिसके कारण पैमाने का घटता प्रतिफल लागू होता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि पैमाने के प्रतिफल का नियम वास्तविक जगत में लागू नहीं होता है क्योंकि वास्तविक जीवन में सभी उत्पादन के साधनों को एक ही अनुपात में नहीं बढ़ाया जा सकता। इसका कारण यह है कि कुछ साधन, जैसे भूमि आदि दुलर्भ तथा स्थिर होते हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि पैमाने के प्रतिफल का नियम केवल सैद्धांतिक महत्व का नियम है।

घटते-बढ़ते अनुपात के नियम तथा पैमाने के प्रतिफल के नियम में अंतर
(Differences between Law of Variable Proportion and Law of Returns to Scale)

घटते–बढ़ते अनुपात के नियम तथा पैमाने के प्रतिफल में मुख्य अंतर निम्नलिखित हैं:

1. घटते–बढ़ते अनुपात का नियम अल्पकाल में लागू होता है। जबकि पैमाने के प्रतिफल का नियम दीर्घकाल में लागू होता है।

2. घटते–बढ़ते अनुपात के नियम में एक साधन परिवर्तनशील होता है तथा बाकि साधन स्थिर होते हैं, जबकि पैमाने के प्रतिफल के नियम के अंतर्गत सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं तथा सभी साधनों को एक ही अनुपात में बढ़ाया जाता है।

3. घटते–बढ़ते अनुपात के नियम (Law of variable Proportion) की तीन अवस्थाओं का मुख्य कारण परिवर्तनशील साध ान की तुलना में स्थिर साधन का प्रारंभ में अधिक मात्रा होना तथा बाद में इसकी मात्रा कम–कम होते जाना है। इसके विपरीत पैमाने के प्रतिफल की तीन अवस्थाओं की उत्पत्ति का मुख्य कारण पैमाने की बचतें तथा हानियां (Economies and Diseconomies of Scale) होती हैं।

प्रश्न
(Questions)

1. निबंध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. Explain the law of Variable Proportions. Explain the conditions of its applicability.

   घटते–बढ़ते अनुपात के नियम की व्याख्या करो। इसके लागू होने की दशाओं का वर्णन करो।

2. Explain the law of Variable Proportions with its different stages. Why does this law apply?

   घटते–बढ़ते अनुपात के नियम की विभिन्न अवस्थाओं सहित व्याख्या कीजिए। यह नियम क्यों लागू होता है?

3. Explain the Law of Variable.

   परिवर्तनशील आनुपातिक नियम की व्याख्या कीजिए।

4. Explain the Law of Diminishing Returns along with its modern version. Discuss that this law is a universal law.

   घटते प्रतिफल के नियम की, इसके आधुनिक रूप के साथ व्याख्या कीजिए। एक सार्वभौमिक नियम के रूप में इस का विवेचन करें।

5. Explain internal and external Economies. How are these important in explaining laws of returns to scale?

   आन्तरिक तथा बाह्य बचतों की व्याख्या करो। माने के प्रतिफल की व्याख्या में ये किस प्रकार महत्वपूर्ण हैं?

6. What is meant by Returns to scale? Explain its various phases.

   पैमाने के प्रतिफल से क्या अभिप्राय है? इसके विभिन्न पहलुओं की व्याख्या करें।

7. Explain the law of Diminishing Returns? What are the causes of its applications?

   घटते प्रतिफल के नियम का वर्णन करें। इसके लागू होने के कौन से कारण हैं?

   Or

   Explain the Law of Diminishing Returns. Does it apply on agriculture only?

   घटते प्रतिफल के नियम का वर्णन करें। क्या यह नियम केवल कृषि पर लागू होता है?

8. Explain the various economies and diseconomies and discuss their importance in explaining the laws of returns.

   विभिन्न बचतों व अबचतों की व्याख्या कीजिए तथा उत्पत्ति के नियम को स्पष्ट करने के लिए इनके महत्त्व को समझाइए।

9. Explain the circumstances under which the law of increasing returns operate. Is it always applicable to industry?

   उन परिस्थितियों का वर्णन करें जिन पर बढ़ते प्रतिफल का नियम लागू होता है? क्या यह हमेशा उद्योग पर लागू होता है?

10. Explain the law of variable proportions. Which stage is the best stage of production?

    घटते–बढ़ते अनुपात के नियम की व्याख्या कीजिए। उत्पादन की कौन–सी अवस्था श्रेष्ठ है?

II. लघु उत्तर प्रश्न
(Short Answer Type Questions)

1. What is Production Function?
   उत्पादन फलन क्या है?
2. Differentiate between Returns to Scale and Returns to variable proportions.
   पैमाने के प्रतिफल तथा घटते–बढ़ते अनुपात के प्रतिफल में अंतर बताइए।
3. What are the main features of the three stages of production in the short run?
   अल्पकाल में उत्पाद की तीन अवस्थाओं की मुख्य विशेषताओं का वर्णन करें।
4. Hypothetical dates are given below for the production from an agricultural field.

Unit of variable input:	1	2	3	4	5	6	7	8
Total Product :	4	7	11	13	16	17	17	16

   Calculate the Average and Marginal Product and prepare a complete production schedule and give your comment.
   औसत तथा सीमांत उत्पादन निकालो तथा एक पूर्ण उत्पादन तालिका तैयार करो तथा अपने मत को व्याख्या करो।
5. Draw a diagram to illustrate the Law of Variable Proportions.
   घटते–बढ़ते अनुपात के नियम को स्पष्ट करने के लिए एक रेखाचित्र बनाइए।
6. Discuss the importance of Law of Diminishing Returns.
   घटते प्रतिफल के नियम के महत्व का वर्णन करें?
7. Can the application of the Law of Diminishing Returns be postponed?
   क्या घटते प्रतिफल के नियम को लागू करने से रोका जा सकता है?
8. Define the Law of Increasing Returns.
   बढ़ते प्रतिफल के नियम की परिभाषा दें।
9. Write Short note on Law of Diminishing Returns.
   घटते प्रतिफल के नियम पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।
10. What are the causes of the application of Increasing Returns?
    बढ़ते प्रतिफल के नियम के लागू होने के कारणों का वर्णन करें?
11. Draw a table and a diagram to illustrate the Law of increasing Returns.
    बढ़ते प्रतिफल के नियम को स्पष्ट करने के लिए एक तालिका तथा रेखाचित्र बनाइए।
12. Explain law of constant returns.
    समान प्रतिफल के नियम की व्याख्या करें।
13. Mention the difference between Law of Diminishing Returns and Law of Increasing Returns.
    घटते प्रतिफल तथा बढ़ते प्रतिफल के नियम के अंतर का वर्णन करें।
14. Write short note on returns to variable factor and returns to scale.
    परिवर्तनशील साधन के प्रतिफल एवं पैमाने के प्रतिफल पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।
15. Classify the meaning of diseconomies along with the explanation of one point each of internal and external diseconomies.
    अबचतों का अर्थ स्पष्ट कीजिए तथा आंतरिक तथा बाह्य बचतों के एक बिन्दु की व्याख्या कीजिए।
16. Write short note on Diminishing Returns to Scale.
    पैमाने के घटते प्रतिफल पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

III. वस्तुनिष्ठ प्रश्न तथा उनके उत्तर
(Objective Type Questions and their Answers)

1. **State whether the following statements are true or false.**
बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत हैं।

(i) The Law of Diminishing Returns applies when all the factors are constant.
घटते प्रतिफल का नियम तब लागू होता है जब सभी साधन स्थिर होते हैं।

(ii) Production function is the relation between output and input.
उत्पादन प्रक्रिया आगत तथा निर्गत का संबंध है।

(iii) The law of variable proportions applies when at least one of the factor is fixed.
घटते–बढ़ते प्रतिफल का नियम तब लागू होता है जब कम–से–कम एक साधन स्थिर रहता है।

(iv) Internal economies arise due to expansion of the whole industry.
आंतरिक बचतें संपूर्ण उद्योग के विस्तार के कारण उत्पन्न होती हैं।

उत्तर (Answer): (i) गलत (False), (ii) सही (True), (iii) सही (True), (iv) गलत (False), (v) गलत (False).

(v) The law of diminishing returns applies only in the case of agriculture.
घटते प्रतिफल का नियम केवल कृषि पर लागू होता है।

2. **Fill up blanks in the following, from the correct word given in brackets.**
कोष्ठकों में दिए गए शब्दों में सही शब्द निम्नलिखित रिक्त स्थानों में भरें।

(i) The Law of variable Proportions applies in the .... (long run, short run)
घटते–बढ़ते अनुपात का नियम .... में लागू होता है। (अल्पकाल, दीर्घकाल)

(ii) The Returns to Scale are applicable in the .... (short run, long run)
पैमाने के प्रतिफल .... में लागू होते हैं। (अल्पकाल, दीर्घकाल)

(iii) Mines and fisheries are subjects to the law of .... returns (diminishing, increasing, constant)
खानों तथम मछली पालन पर .... प्रतिफल का नियम लागू होता है। (घटते, बढ़ते, समान)

(iv) The Law of Dimishing Returns applies more generally to .... (industry, agriculature)
लागत के रूप में घटते प्रतिफल के नियम को .... पर लागू होता है। (कृषि, उद्योग)

(v) In term of cost the law of diminishing return is called the law of .... cost.
(constant, increasing, diminishing)
लागत के रूप मे घटते प्रतिफल के नियम को................. लागत का नियम कहा जाता है।
(समान, बढ़ती, घटती)

(vi) Broadly speaking, the part which nature plays in production conforms to the law of .... returns. (increasing, diminishing)
मुख्य रूप से, उत्पादन में प्रकृति जो कार्य करती है उस पर .... प्रतिफल का नियम लागू होता है।
(बढ़ते, घटते)

(vii) In manufacturing industry generally the law of .... returns applies. (constant, increasing)
उद्योगों में अधिकतर .... प्रतिफल का नियम लागू होता है। (समान, बढ़ते)

(viii) If with increase in the employment of labour and capital, the marginal produce remains the same, the law of ..... returns would apply. (diminishing, constant, increasing)

ऐन्द्र महाभिषेक

राज्यभिषेक के प्रसंग में प्राचीन इतिहास, देवताओं के राज्याभिषेक का मिलता है। इसी का अनुसरण करके परवर्ती राजाओं ने राज्याभिषेक की परम्परा प्रारम्भ की।

ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लेख है कि-एक बार देवों में इस बात पर विवाद हो गया कि-राज्यपद के लिए किसका राज्याभिषेक किया जाये? तब उन्होंने इसके लिए योग्यता निर्धारक कुछ सिद्धान्त बनाये। उन सिद्धान्तों की कसौटी पर इन्द्र को "योग्य" पाया गया। तब उन्होंने मिलकर कहा कि हमारे मध्य में इन्द्र अत्यन्त तेजस्वी अर्थात् शरीर के आठवें धातु से युक्त है, अत्यन्त शरीर बल से युक्त है, शत्रु की पराजय में समर्थ है, अपने भक्तों के लिए अत्यन्त साधु पुरूष है, आरम्भ किये हुए कार्य को सफलता पूर्वक पार लगाने वाला है इसलिए हम इन्द्र का ही अभिषेक करें। (ते देवा अब्रुवन् स प्रजापतिका-अयं वै देवानामोजिष्ठो बलिष्ठ: सहिष्ठ: सत्तम: पारयिष्णुतम इममेवाभिषिञ्चामहा इति। तथेपि तद्वै तदिन्द्रमेव, इति। ऐत० ब्रा० ३८.१) इस पर सब देवों ने अपनी सहमति व्यक्त की और इन्द्र के राज्याभिषेक की तैयारी शुरू हुई

सिहांसन

इन्द्र के लिए ऋचाओं से दिव्य सिंहासन बनाया गया। उस ऋचा रूप सिंहासन के दो आगे के पाये बृहत् और रथन्तर नामक साम के बनाये गये और पीछे के पाये वैरूप और वैराज नामक साम के बनाये गये। सिंहासन के पीठ का शिर टिकाने का भाग शाक्सर और रैवत नामक साम का बनाया गया। उसकी दोनों भुजायें, नौधस और कालेय नामक साम से बनाये गये। उसका ताना (लम्बाई में जाने वाला धागा) ऋचाओं का और उसका बाना साम का; उसके अतिकाश अर्थात् बुनाई के समय दिखाई देने वाले छिद्र यजुष् के बनाये गये। इस सिंहासन पर यश रूपी बिछोना बिछाया गया। इसका तकिया श्री अर्थात् समृद्धि का बनाया गया है। सविता और बृहस्पति ने इस सिंहासन के अगले पावों को पकड़ा। वायु और पूषा देवों ने पिछले पावों को पकड़ा। मित्र और वरूण देवों ने शीर्ष भाग को तथा अश्विनौ ने दोनों बगल की भुजाओं को पकड़ा। (तस्मा एतामासान्दीं समभरनृचं नाम तस्यै बृहच्च रथंतरं च..... एतामासन्दीमारोहत् इति। ऐते० ३९.१.)

इस प्रकार आठ देवों ने, आठ स्थानों को सहारा दिया और आठ सामों से आगे पीछे के पैर आदि बनाये गये।

इन्द्र का सिंहासन पर अरोहण:

इस सिंहासन पर आरोहण करते समय इन्द्र ने छ: देवताओं, छ: स्तोमें का स्मरण करके सिंहासन पर आरूढ होने की कामना की, जो निम्नलिखित है

१. हे सिंहासन! वसु देवता, तुम्हारे ऊपर गायत्री छन्द, त्रिवृत स्तोम और स्थन्तर साम से आरोहण करें। इसके बाद मैं सम्राज्य अर्थात् धर्मपूर्वक प्रजा पालन के लिए आरोहण करता हूँ।
२. रूद्र देवगण, तुम पर त्रिष्टुप् छन्द, पंचदश स्तोम और बृहत् साम से आरोहण करें। इनके बाद मैं भौज्य अर्थात् भोग समृद्धि के लिए आरोहण करता हूँ।
३. आदित्यगण, तुम्हारे ऊपर जगती छन्द, सम्तदश स्तोम और वैरूप साम के साथ आरोहण करें। इसके बाद मैं स्वाराज्य अर्थात् अपराधीनत्व के लिए आरोहण करता हूँ।
४. विश्वदेव, तुम पर अनुष्टुप् छन्द, एकविंश स्तोम और वैराज साम के साथ आरोहण करें। उनके पश्चात मैं वैराज्य इसके बाद मैं स्वाराज्य अर्थात् अन्य राजाओं से उत्तम शासन करने के लिए आरोहण करता हूँ।
५. साध्य और आप्तय देवगण, तुम पर पंक्ति छन्द, त्रिणव स्तोम और शाक्वर साम के साथ आरोहण करें। इनके बाद मैं राज्य अर्थात् देश पर आधिपत्य के लिए आरोहण करता हूँ।
६. मरूतगण और अङ्गिरस, देवगण अतिछन्द नामक छन्द से त्रयस्त्रिंश स्तोम और रैवत साम के साथ आरोहण करें। उनके पश्चात् मैं पारमेष्ठ्य अर्थात् मुक्ति प्राप्ति के लिए (प्रजापति के लोक की प्राप्ति के लिए) महाराज्य अर्थात् महान ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए, आधिपत्य के लिए, स्वावश्य अर्थात् अपरतन्त्रता के लिए और आतिष्ठ अर्थात् चिरकाल तक इस लोक में निवास के लिए आरोहण करता हूँ।

देवताओं द्वारा इन्द्र की प्रशंसा:

इन्द्र के सिंहासन पर बैठने के बाद देवताओं ने विचार किया कि इन्द्र की कीर्ति को चारों ओर फैलाया जाये, क्योंकि बिना कीर्ति गाये इन्द्र पराक्रम करने के योग्य नहीं हो सकते, इसलिए हम इन्द्र के गुणों का कीर्तन करें। (तमेतस्यामासन्द्यामासीनं विश्वे देवा अब्रुवन्नवा अनभ्युत्कृष्ट इन्द्रो वीर्यं कर्तुमर्हत्यभ्येनमुत्क्रोशामेति तथेति तं विश्वे देवा अभ्युक्रोशन्निमं देवा अभ्युत्क्रोशत सम्राजं साम्राज्यं......।) ऐत० ब्रा० ३८.१ भाव यह है कि राजा का यश जितना अधिक होगा, शत्रु उससे उतने ही अधिक भयभीत रहेंगे तथा प्रजा उसके शासन को सुचारू रूप से मानेगी। इससे राजा प्रभावशाली ढंग से शासन चलाने में समर्थ रहेगा। यही सोचकर देवों ने इन्द्र की प्रशंसा निम्नलिखित रूप से करके सर्वत्र फैलायी–

"यह इन्द्र सम्राट स्वरूप और साम्राज्य करने के योग्य है यह भोज नामक शासन प्रणाली को चलाने वाला भोज है और भावी भोज का पिता है। यह स्वाराज्य शासन प्रणाली के अध्यक्ष स्व विराट् के समान है। वैराज्य नामक प्रणाली के अध्यक्ष विराट् प्रणाली के है। राज्य शासन प्रणाली का अध्यक्ष और राजाओं का पालक हैं। परमेष्ठी स्वरूप अर्थात् ईश्वर के समान है। इस प्रकार की क्षत्रिय जाति लोक में उत्पन्न हुई है। यह क्षत्रिय पुरूष उत्पन्न हुआ है। प्राणि मात्र का अधिपति उत्पन्न हुआ है। प्रजाओं से कर लेने वाला उत्पन्न हुआ है। शत्रुओं के पुरों को नष्ट करने वाला उत्पन्न हुआ है। असुरों का घातक उत्पन्न हुआ है। वेदों का रक्षक उत्पन्न हुआ है। धर्म का रक्षक उत्पन्न हुआ है।

इस प्रकार देवों ने इन्द्र के गुणों की प्रशंसा की इन गुणों के माध्यम से राजा के कर्तव्यों का भी निर्देश कर दिया गया कि उसको अपना शासन उपर्युक्त सिद्धान्तों के आधार पर ही चलना है।

प्रजापति द्वारा अभिमन्त्रण:

इसके बाद सिंहासन पर बैठे हुए इन्द्र का निम्नलिखित मन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रण किया–

"निषसाद धृतव्रतो वरूण: पस्त्यास्वा। साम्राज्य, भौज्याय स्वाराज्याय वैराज्याय पारमेष्ठ्याय राज्याय माहाराज्यायाऽऽतिष्ठाय, स्वावश्यायाऽऽतिष्ठाय सुक्रतुरिति।।इति।। ऐत० ब्रा० ३८.२।

• अर्थात् व्रत धारण करने वाले सभी के अनिष्ट का निवारण करने वाले इन्द्र साम्राज्य के लिए, भौज्य के लिए, स्वाराज्य के लिए, वैराज्य के लिए, परलोक में प्रजापति के लोक की प्राप्ति के लिए, राज्य के लिए, महान् ऐश्वर्य के लिए, आधिपत्य के लिए, अपरतन्त्रता और चिरकाल तक इस लोक में निवास के लिए, शुभ संकल्प सहित इस सिंहासन पर विराजमान रहे।

परवर्ती काल में राज्याभिषेक के समय सिंहासन पर आरोहण के लिए इसी मन्त्र का प्रयोग किया गया।

अभिषेक

सिंहासन पर बैठे हुए इन्द्र का अभिषेक प्रजापति ने किया। प्रजापति इन्द्र के सामने पश्चिम की ओर मुख करके खड़ा हो गया और उदुम्बर (गूलर) की पत्तेदार गीली शाखा में स्वर्ण की बनी हुई पवित्रा (छलनी) बांध कर, उसको जल में डुबो कर तीन ऋचा एक यजुष और व्याहतियों का पाठं करके अभिषेक किया

(क) इमा आप: शिवतमा इमा: सर्वस्य भेजषी:।

इमा राष्ट्रस्य वर्धनीरिमा राष्ट्र भृतोमृता:।।

(ख) याभिरिन्द्रमभ्यषिञ्चत् प्रजापति: सोमं राजानं वरूणं यमं मनुम्।

ताभिरद्भिषिञ्चामि त्वामहं राज्ञां त्वमधिराजो भवेह।।

(ग) महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनाम्।

देवी जनित्र्यजीजनद् भद्राजनित्र्यजीजनत्। ऐत० ब्रा० ३७.३

एक यजुष् (देवस्य त्वा सवितु: प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याँ पूषणो हस्ताभ्यामग्नेस्तेजसा सूर्यस्य वर्चसेन्द्रस्येन्द्रियोणाभिञ्चामि बलाय श्रियै यशसेऽन्नाद्याय। ऐत० ब्रा० ३७.३)और व्याहतियों (भूभुर्व: स्व:। ऐत० ब्रा० ३८.२)का पाठ करके अभिषेक किया।)

बिना इनको प्राप्त नहीं किया जा सकता।" (Internal economies are those which are open to a single factory or a single firm independently of action of other firms. The result from an increase in the scale of output of the firm and cannot be achieved unless output increases."—Prof. Carincross)

यह ध्यान रखना भी अति–महत्त्वपूर्ण है कि आन्तरिक बचतें दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LRAC) की आकृति का निर्धारण करती हैं, जबकि इस वक्र की स्थिति बाहरी बचतों (External Economies) पर निर्भर करती है (जैसे तकनीक में परिवर्तन, साधन कीमत में परिवर्तन आदि) जब एक फर्म अपने उत्पादन का आकार बहुत बढ़ा देती है तो उसको पैमाने की हानियां (Diseconomies of scale) प्राप्त होती हैं इनकी व्याख्या भी इस विश्लेषण में की गई है। इस विश्लेषण में आन्तरिक बचतों की विभिन्न किस्मों (Types) तथा अनेक कारणों का अध्ययन किया गया है।

आन्तरिक बचतों को मुख्यतः तीन भागों में बांटा जाता है:

1. वास्तविक बचतें (Real Economies)
2. धन सम्बन्धी बचतें (Pecuniary Economies)
3. वास्तविक बचतें (Real Economies)

ए० कुतसयोनी के अनुसार, "वास्तविक बचते वे बचतें होती हैं जो उपादानों (Inputs) की भौतिक मात्रा, कच्चे माल, विभिन्न प्रकार के श्रम तथा पूंजी में कटौती कर सकें।" (Real economies are those associated with a reduction in the Physical quantity of inputs, raw material, various types of labour and various types of capital (fixed or Circulating—A. Koutsoyiannis) अर्थात वास्तविक बचतों में बचतें होती हैं जिनसे वस्तु की प्रति इकाई उत्पादन करने के लिए जितना कच्चा माल, श्रम तथा पूंजी की आवश्यकता होती है उसमें कटौती हो सके।

वास्तविक बचतों के प्रकार
(Types of Real Economies)

1. पैमाने की उत्पादन सम्बन्धी बचतें (Production Economies of Scale)
2. पैमाने की विक्रय सम्बन्धी बचतें (Selling or Marketing Economies)
3. पैमाने की प्रबन्ध सम्बन्धी बचतें (Managerial Economies)
4. परिवहन तथा स्टॉक सम्बन्धी बचतें (Transport and Storage economies)

उपरोक्त चारों प्रकार की बचतों की व्याख्या निम्न प्रकार की गई है:

1. पैमाने की उत्पादन सम्बन्धी बचतें
Production Economies of Scale

उत्पादन सम्बन्धी बचतें वे बचतें होती हैं जो फर्म को श्रम से जैसे श्रम बचतें (Labour economies), पूंजी से जैसे तकनीक बचतें या गोदाम सम्बन्धी बचतें (inventory economies or stock economies) प्राप्त होती हैं। इनकी व्याख्या निम्न प्रकार से की जा सकती है।

श्रम सम्बन्धी बचतें (Labour Economies)—एक फर्म को उत्पादन के पैमाने में वृद्धि करने से श्रम सम्बन्धी बचतें प्राप्त होती है। श्रम सम्बन्धी बचतों के अनेक कारण हो सकते हैं जैसे:

1. **विशिष्टिकरण (Specialisation):** उत्पादन का पैमाना बड़ा होने से श्रम विभानज अधिक होता है जिसको श्रमिकों की कुशलता तथा उत्पादकता में सुधार होता है। एक छोटे आकार की फर्म में एक श्रमिक से चार या पांच प्रकार के कार्य लिये जा सकते हैं, जबकि बड़े आकार की फर्म में ये कार्य अनेक उपभोगों मे बंट जाते हैं जो विभिन्न श्रमिकों द्वारा सम्पन्न किये जा सकते है जिससे प्रत्येक श्रमिक का बार–बार एक ही कार्य करना पड़ता है तथा उनकी कार्य में विशिष्टता तथा निपुणता बढ़ जाती है।
2. **समय की बचत (Time Saving):** जब प्रत्येक श्रमिक अपने–अपने कार्य में निपुण (Expert) हो जाता है तो कम समय में कार्य को कर पाता है तथा इससे पूरे कार्य का समय बच जाता है।

3. **आविष्कार (Inventions):** जब प्रत्येक श्रमिक बड़े कार्य के छोटे से भाग को बार–बार करता है तो वह यह आविष्कार कर लेता है कि वह कार्य किस प्रकार और अधिक शीघ्रता से किया जा सकता है। इससे नये–नये औजारों और मशीनों का आविष्कार (Inventions) होता है जिससे उत्पादकता में वृद्धि होती है।

4. **उत्पादन क्रिया का स्वचलन (Automation of Production Process):** उत्पादन में स्वचालित मशीनों का प्रयोग होने लगता है। जिससे उत्पादकता में बहुत वृद्धि होती है।

5. **तकनीकी बचतें (Technical Economies):** तकनीकी बचतें फर्म की स्थाई पूंजी (Fixed Capital) से सम्बन्धित होती हैं। जब फर्म का आकार बढ़ता है तो वह उपयुक्त आकार की मशीनें खरीद सकती है। वह अति आधुनिक मशीनों का उत्पादन में प्रयोग कर सकती हैं। वस्तुतः तकनीकी बचतें चार प्रकार की होती हैं:

   a. **आकार वृद्धि की बचतें (Economies of Increased Dimension):** जब एक फर्म उत्पादन का पैमाना बढ़ाती है तो वह बड़े आकार की मशीनें खरीद सकती है। जो अपेक्षाकृत कम मूल्य में प्राप्त हो जाती हैं। इससे उत्पादन की औसत बन्धी लगात कम हो जाती है। जैसे जब एक फर्म का आकार छोटा होता है तो वह 10 H.P. की मोटर का प्रयोग करती है। परन्तु यदि यह फर्म अपना आकार बढ़कर दुगना कर लेती है तो वह अब 20 H.P की मोटर को क्रय कर सकती है। अब 20 H.P. की मोटर मे कार्य करने की क्षमता 10 H.P. की मोटर से दुगनी है परन्तु इसकी कीमत दुगनी से कम होगी। अतःयह तकनीक बचत कहलाती है।

   b. **सम्बन्धित क्रियाओं की बचतें (Economies of Linked Process):** फर्म का उत्पादन का पैमाना बढ़ने से वह सम्बन्धित क्रियाओं (Linked Processes) में भी बचतें प्राप्त कर लेती है। एक बड़े पैमाने पर उत्पादन करने वाली फर्म कच्चा माल बनाने के कार्य से लेकर तैयार माल को बाजार में बेचने तक का सारा सम्बद्ध कार्यक्रम स्वयं ही पूरा करती है। इन सम्बद्ध कार्यक्रमों से फर्म को समय तथा परिवहन लागतों की बचतें प्राप्त होती हैं। जैसे किसी कपड़े के बड़े कारखाने के अपने ही धागा बनाने के कारखाने, अपने हो विभिन्न किस्म के कपड़े बनाने के कारखाने, अपने ही परिवहन साधन हों तो इन्हें सम्बद्ध क्रियाएं (Linked Processes) कहा जायेगा। इससे समय तथा उत्पादन व्यय में कमी आती है।

   c. **व्यर्थ पदार्थ के प्रयोग से बचतें (Economies of the use of By Products):** प्रत्येक वस्तु के उत्पादन से कुछ व्यर्थ पदार्थ (Waste Material) निकलता है। यह व्यर्थ पदार्थ छोटे आकार वाली फर्म को कोई आय प्रदान नहीं करता है।

   जब फर्म का आकार बढ़ता है तथा यह व्यर्थ पदार्थ काफी मात्रा में निकलता है तो इसका उपयोग होने लगता है तथा फर्म से अतिरक्ति आय प्राप्त होती है। जैसे कपड़े की मिलों में खराब या व्यर्थ रूइ की गाठों से कागज बनाया जाता है।

   d. **स्टॉक सम्बन्धी बचतें (Inventory Economies):** जब एक फर्म अपने उत्पादन के पैमाने को बढ़ाती है तो स्टॉक सम्बन्धी बचतें प्राप्त होती हैं। एक बड़ी फर्म कच्चे माल का स्टॉक अधिक रखती है, जिससे बाजार में कच्चे माल की कमी होने तथा इसके महंगा होने के जोखिम में यह अपने आप को सुरक्षित रख सकती है। इतना ही नहीं बड़ी फर्म के पास औजार–मशीनों आदि का भी स्टॉक रहता है ताकि किसी के खराब होने पर उत्पादन बन्द होने के जोखिम से बचा जा सके। इसी कारण इसको जोखिम सम्बन्धी बचतें भी कहते हैं।

2. पैमाने की विक्रय सम्बन्धी बचतें (Selling or Marketing Economies of Scale)

जब एक फर्म अपने उत्पादन के आकार को बढ़ाती है तो उसको विक्रय सम्बन्धी बचतें भी प्राप्त होती हैं जैसे:

1. विज्ञापन सम्बन्धी बचते भी फर्म को प्राप्त होती हैं क्योंकि उत्पादन बढ़ने पर वस्तु की प्रति इकाई विक्रय लागत या विज्ञापन लागत कम हो जाती है।
2. फर्म अपने विक्रेता निर्धारित कर सकती है तथा अच्छे विक्रेताओं से समझौते कर सकती है।
3. फर्म अपने शोरूम (Show Rooms) खोल सकती है।
4. अधिक अनुसन्धान करके वस्तु के गुण में वृद्धि कर सकती है जिसे वस्तु की बिक्री बढ़ती है।

3. पैमाने की प्रबन्ध सम्बन्धी बचतें (Managerial Economies)

जब कोई फर्म अपने उत्पादन के पैमाने को बढ़ाती है तो वह उत्तम प्रबन्धक को ऊंचा वेतन देकर रोज़गार पर लगा सकती है। उत्पादन की मात्रा बढ़ने के कारण वस्तु की प्रति इकाई प्रबन्ध लागत कम हो जाती है जो फर्म की बचतों में वृद्धि करती है। अतः उत्पादन में वृद्धि होने के कारण प्रति इकाई प्रबन्ध लागत भी कम हो जाती है।

इतना ही नहीं बड़ी फर्मे प्रबन्ध कार्य में विभाजन भी कर सकती हैं। वह एक उत्पादन प्रबन्धक (Production Manager), एक बिक्री प्रबन्धक (Sales Manager), एक वित्त प्रबन्धक (Finance Manager) आदि अलग–अलग व्यक्तियों को कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए रोज़गार पर लगा सकती है जो एक छोटे पैमाने वाली फर्म के लिए सम्भव नहीं। इतनी ही अच्छी मशीनों जैसे टेलीफोन, कम्प्यूटर (Computers) आदि प्रबन्ध की तकनीक का प्रयोग भी एक बड़ी फर्म ही कर सकती है।

4. यातायात तथा संग्रह सम्बन्धी बचतें (Transport and Storage Economies)

जब एक फर्म का आकार बढ़ता है तो वह यातायात तथा संग्रह सम्बन्धी बचतें भी प्राप्त कर सकती है। जैसे एक बड़ी फर्म यातायात के अपने साधन रख सकती है। उसके अपने भण्डार घर या गोदाम हो सकते हैं। वैसे भी वस्तु अधिक मात्रा में संग्रह करने के गोदाम किराये भी कम होते हैं। अतः उत्पादन का पैमाना बढ़ने से यातायात तथा संग्रह सम्बन्धी बचतें फर्म को प्राप्त होती हैं।

धन सम्बन्धी बचतें (Pecuniary Economies)

धन सम्बन्धी बचतें वे बचतें है जो फर्म का आकार बढ़ने के कारण उसको सस्ते उत्पादन के साधनों के रूप में प्राप्त होती है। फर्म का आकार बढ़ने के कारण वह साधन अधिक मात्र में खरीदती हैं इसलिए कम कीमतों पर साधन उत्पादन (Factor-input) प्राप्त हो सकते हैं। जैसे :–

1. फर्म अब कम कीमतों पर कच्चा माल खरीद सकती है।
2. बड़ी फर्मो को बैंक कम ब्याज की दर तथा अनुकूल शर्तो पर ऋण प्रदान करता है।
3. यदि बड़ी फर्मे ज्यादा विज्ञापन करती हैं तो उनको विज्ञापन कम्पनियों द्वारा कुछ छूट दी जाती है।
4. ज्यादा सामान की परिवहन लागत (Transportation Cost) भी कम होती है।

बाहरी बचतें (External Economies)

बाहरी बचतें वे लाभ या बचतें होती हैं जो उद्योग में लगी सभी फर्मों को प्राप्त होती हैं जब उद्योग का आकार बढ़ता है। ये बचतें फर्म के अपने प्रयासों का परिणाम नहीं होती बल्कि अन्य फर्मों की क्रियाओं का परिणाम होती हैं। प्रो० केरनक्रास के अनुसार, "बाहरी बचतें वे होती हैं जो बहुत–सी फर्मों या उद्योगों को किसी उद्योग या उद्योगों के समूह के उत्पादन के पैमाने में वृद्धि होने से प्राप्त होती हैं। उन पर किसी एक फर्म का एकाधिकार नहीं होता जब इसका आकार बढ़ता है, परन्तु इसको उस समय प्राप्त होती है जब कुछ अन्य फर्मों के आकार वृद्धि होती हैं।" (External Economies are those which are shared in by a number of firms or industires when the scale of production in any industry or group of industries increases. They are not monopolised by a single firm when it grows in size, but are conferred on it when some other firms grow larger —Prof. Cairncross) डॉ० मार्शल ने बाहरी बचतों के प्रमुख उदाहरण इस प्रकार दिये हैं:–

A. जब एक उद्योग का विस्तार होता है तो उसी स्थान पर उन्नत उत्पादन की तकनीक या मशीनरी का लाभ सारे उद्योग को उपलब्ध होता है।

B. उद्योग की सहयोगी शाखाओं का एक ही स्थान पर विस्तार।

C. ज्ञान तथा कला में प्रगति की अखबारों, व्यापार तथा तकनीकी प्रकाशनों द्वारा जानकारी सभी को प्राप्त होना।

बाहरी बचतों का वर्गीकरण तथा उनकी उत्पत्ति के कारणों का अध्ययन निम्न प्रकार से किया गया है:

i. **केन्द्रीयकरण की बचतें (Economies of Concentration):** जब बहुत सी फ़र्में एक ही क्षेत्र में स्थापित या केन्द्रित हो जाती हैं तो उन सभी को एक साथ अनेक लाभ प्राप्त होने शुरू हो जाते हैं। जैसे कुशल श्रमिकों की उपलब्धि, तकनीकी तथा व्यापार सम्बन्धी पत्र–पत्रिकाएं पहुंचना, यातायात तथा संचार साधनों का विकास आदि। इसके साथ ही कुछ सहायक सस्थाओं जैसे बैंक, पेट्रोल पम्प आदि का उसी क्षेत्र में खुल जाना। इन से सभी फ़र्मों को लाभ होता है तथा सभी का विकास भी होता है।

ii. **सूचना की बचतें (Economies of information):** जब किसी उद्योग का विस्तार होता है तो फ़र्मों की संख्या में वृद्धि हो जाती है तथा वे विभिन्न सूचनाओं का आदान–प्रदान करके लाभ उठाती हैं। प्रकाशक तकनीकी तथा व्यापार सम्बन्धी पत्र–पत्रिकाएं छापना शुरू कर देते हैं जिसका लाभ सभी फ़र्मों को प्राप्त होता है। ये पत्रिकाएं उस उद्योग सम्बन्धी नए–नए बाज़ारों की सूचनाएं प्रकाशित करती हैं। इनके माध्यम से विदेशों की सूचनाएं भ प्राप्त होती हैं तथा सभी फ़र्मों को लाभ होते हैं।

iii. **विच्छेदन की बचतें (Economies of Disintegration):** जब फ़र्मों की संख्या में वृद्धि होती है तो उनमें परस्पर समझोते हो जाते हैं कि वे उत्पादन प्रक्रिया को भिन्न–भिन्न हिस्सों में बांट लें तथा प्रत्येक फ़र्म अपने–अपने उत्पादन के हिस्से में विशिष्टता (Specialisation) प्राप्त कर ले। वस्तु के उत्पादन के इस बंटवारे को ही 'विकेन्द्रीकरण' (Decentralisation) कहा जाता है उद्योग का यह विकेन्द्रीकरण दो प्रकार का होता है। (1) पड़ा विकेन्द्रीकरण (Horizontal Disintegration) तथा (ii) खड़ा विकेन्द्रीकरण (Vertical Disintegration)। पड़ा विकेन्द्रीकरण के अन्तर्गत प्रत्येक फ़र्म एक ही प्रकार के पदार्थ बनाने में विशिष्टता प्राप्त कर लेती है। जैसे कपड़ा बनाने वाली फ़र्में पैन्ट, कमीज, कोट, बुशर्ट आदि सभी पदार्थ न बनाकर विभिन्न फ़र्में किसी एक ही पदार्थ को बढ़िया उत्पादित करने में विशिष्टता प्राप्त कर लेती है। इसके विपरीत खड़ी विकेन्द्रीकरण के अन्तर्गत फ़र्मों की संख्या बढ़ने पर वे उत्पादन के विभिन्न चरणों (Stages) को आपस में बांट लेती है। जैसे कपड़ा उद्योग में एक फ़र्म रूई से सूत कातती है, दूसरी धागा बुनती है, तीसरी उसको बनुती है, चौथी फ़र्म कपड़े की बिक्री का कार्य करती है आदि।

iv. **सस्ता कच्चा माल तथा पूंजी-औजार (Cheaper Raw Materials and Capital Equipment):** डा. मार्शल के अनुसार जब किसी उद्योग का आकार बढ़ता है तो इसकी कच्चे माल तथा पूंजी–साधनों की मांग बढ़ जाती है। इनकी मांग बढ़ने के कारण कच्चे माल तथा पूंजी–साधनों का उत्पादन करने वाले उद्योग या उद्योगों के लिए उत्पादन का पैमाना बढ़ाना सम्भव हो जाता है। इस कारण इन साधनों की उत्पादन लागत तथा कीमतें कम हो जाती हैं। इससे विकास कर रहे उद्योग की सभी फ़र्मों को लाभ होता है। यह वस्तुतः वहां लागू होता है जहां उत्पादन में बढ़ते प्रतिफल का नियम लागू हो रहा है।

v. **तकनीकी बाहर बचतें (Technological External Economies):** तकनीकी आन्तरिक बचतों की तरह तकनीकी बाहरी बचतें भी प्राप्त होती हैं। जब एक उद्योग का विकास होता है तो डॉ. मार्शल तथा प्रो. रोबिन्सन के अनुसार नए तकनीकी ज्ञान का अविष्कार होता है। इससे सभी फ़र्में पहले से श्रेष्ठ मशीनरी का प्रयोग करने लग जाती है। इससे सभी फ़र्मों की उत्पादकता तथा लाभ बढ़ते हैं।

vi. **सहायक तथा सम्बन्धित उद्योगों का विकास (The Growth of Subsidiary and Co-related Industries):** किसी मुख्य उद्योग का विकास होने से उसके सहायक तथा उससे सम्बन्धित उद्योगों का विकास होता है। सम्बन्धित उद्योग मुख्य उद्योग के लिए कच्चा माल, औजार, मशीनरी आदि के उत्पादन में विशिष्टीकरण (Specialisation) प्राप्त कर सकती हैं तथा मुख्य उद्योग को कम कीमतों पर ये वस्तुएं प्राप्त होने लगती हैं। इससे मुख्य उद्योग की सभी फर्मों को लाभ होते हैं। इसी प्रकार अन्य सहायक फ़र्में (Ancillary units) भी स्थापित हो जाती हैं। जैसे कपड़े उद्योग के लिए Printing, Bleaching आदि फ़र्में स्थापित हो जाती हैं। मुख्य उद्योग को ये क्रियाएं स्वयं करने की आवश्यकता नहीं रहती है।

vii. **प्रशिक्षण केन्द्र (Training Centres):** किसी उद्योग का विस्तार होने से प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना भी की जा सकती है। इससे सभी फ़र्मों के श्रमिकों को प्रशिक्षण मिल सकता है तथा इस प्रकार सभी फ़र्मों को कुशल और प्रशिक्षित श्रमिकों की सेवाओं का लाभ होगा। कुछ एक फ़र्मों के लिए ऐसा कर पाना सम्भव नहीं होता है।

फ़र्मों को केवल एक सीमा तक ही आन्तरिक तथा बाहरी बचतें प्राप्त होती है, जिस सीमा को आदर्श बिन्दु भी कहा जाता है। इस सीमा तक आन्तरिक तथा बाहरी बचतों के कारण पैमाने के बढ़ते प्रतिफल का नियम लागू होता है।

आन्तरिक तथा बाहरी हानियां
(Internal and External Diseconomies)

जब किसी फ़र्म तथा उद्योग का विस्तार होता है तो क्रमशः आन्तरिक तथा बाहरी बचतें प्राप्त होती हैं परन्तु यदि यह विस्तार बहुत अधिक हो जाता है तो एक सीमा के बाद आन्तरिक तथा बाहरी हानि होनी शुरू हो जाती है। ये हानियां दो प्रकार की होती है:

1. आन्तरिक हानियाँ (Internal Diseconomies)
2. बाहरी हानियाँ (External Diseconomies)

1. आन्तरिक हानियाँ (Internal Diseconomies)

जब किसी एक फ़र्म का आकार बहुत अधिक बढ़ जाता है तो उसी फ़र्म को कुछ हानियाँ उठानी पड़ती है जिनको आन्तरिक हानियाँ कहा जाता है। आन्तरिक हानियाँ केवल विस्तार कर रही फ़र्म तक ही सीमति रहती हैं। इनका प्रभाव अन्य फ़र्मों या उद्योगों पर नहीं पड़ता है। ये निम्न कारणों से उत्पन्न होती हैं:

1. **तकनीकी हानियाँ (Technical Disecnomies):** जब कोई एक फ़र्म अपने आकार को बढ़ाती रहती है तो उसे बड़े आकार की मशीनें तथा उत्तम किस्म की मशीनों का प्रयोग करना पड़ता है। इससे पुरानी मशीनें बेकार हो जाती हैं। तथा इसकी हानि उसी फ़र्म को वहन करनी पड़ती है। इस प्रकार के कारणों से जो हानियां उत्पन्न होती हैं उन्हें तकनीकी हानि कहा जाता है।

2. **प्रबन्धकीय हानियां (Managerial Diseconomies):** जब कोई फ़र्म अपने आकार का बहुत अधिक विस्तार कर देती है तो सारे कार्य का प्रबन्ध ठीक से कर पाना असम्भव सा हो जाता है। फ़र्म का जैसे–जैसे विस्तार बढ़ता जाता है उसकी प्रबन्धकीय कठिनाइयाँ बढ़ती जाती हैं। विस्तार बहुत अधिक होने के कारण फ़र्म के सभी कार्यों में समन्वय (Co-ordination) करना एक समस्या बन जाती है इससे फर्म की कार्यात्मक कुशलता (Operational efficiency) तथा उत्पादकता कम हो जाती है। अतः फर्म को इस कारण हानियां उठानी पड़ती हैं जिसको प्रबन्धकीय हानियां कहते हैं। ये निम्न कारणों से उत्पन्न होती है:

   नियन्त्रण की सीमा (Limitation of Control): नियन्त्रण करने सम्बन्धी प्रत्येक प्रबन्धक की अपनी सीमा होती है। इस सीमा से अधिक विस्तार होने पर वह ठीक से प्रबन्ध नहीं कर सकता तथा उत्पादन में कमी आ जाती है।

   गलत निर्णय (Wrong Decisions): कार्य बहुत बढ़ जाने के कारण प्रबन्धक को सभी बातों की पूर्ण सूचना नहीं रहती तथा गलत निर्णय लेने की सम्भावना बनी रहती है।

3. **बाज़ार सम्बन्धी हानियां (Marketing Diseconomies):** फ़र्म का आकार बढ़ जाने के कारण उसको कच्चा माल अधिक मात्रा में खरीदना पड़ता है तथा तैयार माल भी अधिक मात्रा में बेचना पड़ता है। इसके लिए दूर–दूर की मण्डियों से सामान खरीदना व बेचना पड़ता है जिससे यातायात तथा परिवहन पर व्यय बढ़ जाता है। अतः इस प्रकार की हानियों को बाज़ार सम्बन्धी हानियां कहा जाता है।

4. **वित्तीय हानियां (Financial Diseconomies):** जब कोई फ़र्म अपने आकार का विस्तार करती है तो उसको अतिरिक्त वित्त (Credit) की आवश्यकता पड़ती है। कई बार जब अधिक राशि उधार लेनी हो तो इसे आवश्यकता अनुसार तथा समय पर एक ही बैंक या स्रोत से उधार नहीं मिल पाता। ऐसी परिस्थिति में उसको ऊंचे ब्याज की दर पर उधार लेना पड़ सकता है जिसको वित्तीय हानियां कहा जाता है जो उसी फ़र्म का उठानी पड़ती हैं।

5. **श्रम संघ (Trade Unions):** जब किसी फ़र्म का विस्तार होता है तो उससे श्रमिकों की संख्या बढ़ती जाती है। ये श्रमिक अपनी मांगों को मनवाने के लिए संगठित हो जाते हैं तथा श्रम संघ बना लेते हैं। इस कारण वे अधिक मज़दूरी

प्राप्त करने तथा अन्य सुविधाएं लेने में सफल रहते हैं जिसकी हानि उसी फ़र्म को उठानी पड़ती है।

6. **अति-उत्पादन का जोखिम (Risk of Over-Production):** जब एक फ़र्म का आकार बहुत बढ़ जाता है या उत्पादन का पैमाने बहुत बढ़ जाता है तो वस्तु का उत्पादन बहुत अधिक होने के कारण अति–उत्पादन की समस्या उत्पन्न हो सकती है (अर्थात् मांग से अधिक उत्पादन हो सकता है) जिससे वस्तु की कीमत गिर जाती है तथा फ़र्म को हानि उठानी पड़ सकती है।

बाहरी हानियां
(External Diseconomies)

बाहरी हानियां वे होती हैं जो उद्योग में लगी फ़र्मों की संख्या एक सीमा से बढ़ जाने के कारण उन सभी को हानियां उठानी पड़ती हैं। इनका सम्बन्ध किसी एक फर्म से नहीं होता है बल्कि उद्योग की सभी फर्मों से होता है। मुख्य बाहरी हानियां निम्न प्रकार से हैं:

1. **केन्द्रीयकरण की हानियां (Diseconomies of Concentration):** एक ही स्थान पर जब किसी उद्योग की फ़र्मों की संख्या बढ़ती जाती है तो सभी फ़र्मों को कुछ विशेष हानियां उठानी पड़ती हैं। इनके कारण निम्नलिखित हैं:

   (a) मज़दूर महंगे हो जाते हैं। (b) मकानों तथा इमारतों के किराएं बढ़ जाते हैं। (c) गन्दगी तथा बीमारियां फैलना। (d) पानी की समस्या, इत्यादि कारणों से सभी फर्मों को हानियां उठानी पड़ती हैं।

2. **विभाजन की हानियां (Diseconomies of Disintegration):** जब किसी उद्योग का विस्तार होता है तो वह अपने कार्यों को भिन्न–भिन्न फ़र्मों में बांट देता है। जैसे रूई साफ करने का कार्य किसी एक फ़र्म से करवाया जाता है, धागा निकालने या कातने का कार्य किसी दूसरी फ़र्म तथा कपड़ा बुनने का कार्य किसी अन्य फ़र्म द्वारा करवाया जाता है, जिसको क्षतीजीय विघटन (Vertical Disintegration) कहा जाता है। इसकी हानि यह होती है कि जब किसी एक फ़र्म का कार्य बन्द हो जाता है तो अन्य फ़र्मों का कार्य भी बन्द हो जाता है। इसकी हानियां सभी फर्मों को उठानी पड़ती हैं जिसको विभाजन की हानि कहा जाता है।

3. **कच्चे माल तथा मशीनों की कीमतों में वृद्धि (Increase in Prices of Raw-Material and Machines):** जब किसी उद्योग का आकार बढ़ता है तो सम्बन्धित कच्चे माल, मशीनों तथा औजारों की मांग बढ़ने से इनकी कीमतें निरन्तर बढ़ सकती है जिसकी हानि इन सभी फ़र्मों को उठानी होती हैं। इसका कारण इन पदार्थों की मांग में वृद्धि होना होता है।

क्षेत्र में बचतें
(Economies of Scope)

क्षेत्र की बचतें एक नई धारणा के रूप में विकसित हुई है। क्षेत्र की बचतें (Economies of Scope) पैमाने की बचतों (Economics of Scale) से भिन्न हैं। जैसा कि हमें ज्ञात है कि पैमाने की बचतें उत्पादन के आकार (Volume of Production) या उत्पादन के पैमाने द्वारा निर्धारित होती हैं, जबकि क्षेत्र की बचतें उत्पादन में भिन्नता (Variety in Production) द्वारा निर्धारित होती है।

क्षेत्र की बचतें उस समय प्राप्त होती हैं जब उत्पादक एक ही वस्तु का उत्पादन न करके अनेक सम्बन्धित वस्तुओं का उत्पादन करता है तथा उत्पादन लागत में कमी करता है। उत्पादन के पैमाने या प्लांट (Plant) को स्थिर रखते हुए उत्पादक वस्तु विभेद इस प्रकार करता है कि उसे लागतों को कम करने का लाभ (Cost advantages) प्राप्त होता है। यदि एक ही फ़र्म या प्लांट विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन कर सकता है तो उत्पादन लागत में कमी करने के सुअवसर काफी अधिक उपलब्ध होते हैं क्योंकि साधन उपादानों का संयुक्त प्रयोग (Joint utilisation) किया जा सकता है। उदाहरणतः दो पहिया स्कूटर बनाने वाला कारखाना उसी तकनीक तथा मशीनों द्वारा, कुछ संशोधन करके, चार पहिया टैम्पो का उत्पादन बड़ी सरलता से कर सकता है। इस प्रकार उत्पादन के पैमाने में वृद्धि न करके उत्पादन वस्तु–विभेद द्वारा क्षेत्र की बचतें (Economies of Scope) प्राप्त कर सकता है। परन्तु ध्यान रहे फ़र्में पैमाने की बचतें तथा क्षेत्र की बचतें दोनों साथ–साथ भी प्राप्त कर सकती हैं। यह उस समय हो सकता है जब फ़र्म उत्पादन का पैमाना बढ़ाने के साथ–साथ उत्पादन में विविधता भी लागू करती हैं।

प्रश्न
(Questions)

I. निबन्ध रूपी प्रश्न
(Essay Type Questions)

1. पैमाने की बचतें क्या हैं? आन्तरिक बचतों की व्याख्या करें।

   What are Economies of Scale? Explain the Internal Economies of Scale.

2. आन्तरिक तथा बाहरी बचतों में क्या अन्तर है? ये कितने प्रकार की होती हैं व्याख्या करें।

   Distinguish between Internal and External Economies of Scale. Explain the various types of Economies of Scale.

3. आन्तरिक बचतों तथा बाहरी बचतों और आन्तरिक तथा बाहरी हानियों की व्याख्या करो। इनका पैमाने के प्रतिफल के नियमों से क्या सम्बन्ध है?

   Explain the Internal economies and external economies and internal diseconomies and external diseconomies, what in their relationship with the laws of returns.

4. पैमाने की बचतों तथा क्षेत्र की बचतों में क्या अन्तर है? पैमाने की बचतों के कारणों की व्याख्या करो।

   Distinguish between Economies of Scale and Economies of Scope. Explain the causes of the Economies of scale.

II. लघु उत्तर प्रश्न
(Short Answer Type Questions)

1. What are Economies of Production?
2. What are Economies of Labour?
3. What are Technological Economies of Scale?
4. Explain four causes of Internal Economies of Scale.
5. Distinguish between Internal and External Diseconomies.
6. What is economies of Scoped?

अध्याय-14

ईष्टतम उत्पादन संयोग
(Optimum Input Combination)

उत्पादक का इष्टत्तमिकरण व्यवहार है जिसके द्वारा वह अपने उद्देश्य–फलन (Objective Function) को प्राप्त करता है। उत्पादक का उद्देश्य–फलन क्या है? उत्पादक के पास उपलब्ध साधनों या उपादानों के द्वारा अधिकतम उत्पादन (maximum output) की स्थिति प्राप्त करना उसका उद्देश्य फलन होता है। अतः उत्पादक के सामने समस्या होती है कि वह अपने साधनों को उत्पादन में किस अनुपात में लगाए ताकि उसको अधिकतम उत्पादन प्राप्त हो। उत्पादन का माप यहां सम–उत्पाद वक्रों (isoquants) के माध्यम से किया गया है।

अतः उत्पादक अपने इष्टत्तमिकरण व्यवहार द्वारा उच्चतम सम–उत्पाद वक्र (highest isoquant) को प्राप्त करने का प्रयास करता है। अधिकतम उत्पादन या उच्चतम सम–उत्पाद वक्र तभी प्राप्त हो सकता है जब उत्पादक अपने साधनों का इष्टत्तम संयोग (optimum combination) प्राप्त कर लेता है। कैसे?

निर्धारक तत्व
(Determinants)

दी हुई परिस्थितियों में प्रत्येक उत्पादक अपने उत्पादन को अधिकतम करना चाहता है। इसलिए उसकी इष्टत्तमिकरण की महत्त्वपूर्ण समस्या यह निर्णय करना होती है कि वह उत्पादन करने के लिए साधनों के किस विशेष संयोग के रोजगार पर लगाए ताकि उत्पादन अधिकतम हो सके। उत्पादन का एक निश्चित स्तर उत्पादित करने के लिए उत्पादक के सामने विभिन्न तकनीकी संभावनाएं या साधनों के विभिन्न संयोग उपलब्ध होते हैं, जिनमें से उसे किसी एक का चयन करना होता है। ऐसे उत्पादन के स्तर जिसकों साधनों के विभिन्न संयोगों द्वारा उत्पादित किया जा सकता है उसकी एक समउत्पाद वक्र (isoquant) द्वारा दर्शाया जा सकता हैं उत्पादक के सामने समउत्पाद वक्र मानचित्र (isoquant map) भी होता है।

उत्पादक का उद्देश्य को अधितमक करना माना जाता है। इसलिए वह साधनों पर एक निश्चित मात्रा व्यय करने अपने कुल उत्पादन को अधिकतम या उच्चतम समउत्पाद वक्र को प्राप्त करना चाहता है। अन्य शब्दों में वह उत्पादन की एक निश्चित मात्रा उत्पादित करने के लिए अपनी लागतों को कम से कम करने का प्रयास करता है। अपने इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उद्यमी साधनों का कौन सा संयोग उत्पादन प्रक्रिया में लगाए? साधनों का ऐसा विशेष संयोग दो बातों पर निर्भर करता है: (i) उत्पादन की तकनीकी संभावनाएं (Technical Possibilities of Production) (ii) उत्पादन में लगाए या प्रयोग किए गए साधनों की कीमतें। ये दोनों तत्व उत्पादक के प्रतिबंध (Constraints) कहे जाते हैं। हम जानते है कि उत्पादन की संभावनाएं सम–उत्पादन वक्र मानचित्र (Isoquant Map) द्वारा प्रकट की जाती है, जबकि साधनों की कीतें सम–लागत रेखा (Lso-Cost Line) द्वारा व्यक्त की जाती हैं।

कोई फर्म उत्पादन में साधनों के कौन से संयोग को चुनती है इसका निर्धारण करने में सम–लागत रेखा बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सम लागत रेखा का निर्धारण दो तत्वों पर निर्भर करता है: (i) फर्म उत्पादन के साधनों पर कुल कितनी राशि व्यय कराना चाहती है तथा (ii) साधनों की कीमतें कितनी–कितनी हैं? सम–लागत रेखा निकालने से पहले इसकी परिभाषा करना अति आवश्यक है: सम–लागत रेखा वह रेखा है जो दो साधनों के उन विभिन्न संयोगों को प्रकट करती है जिनको एक फर्म अपने सीमित व्यय तथा साधनों की स्थिर कीमतों पर खरीद सकती है। (loss-Cost line represents all those combinations of two factors which a firm can buy at the given level of his outlay and given prices of the factors.)

सम–लागत रेखा चित्र की सहायता से निकाली जा सकती है:

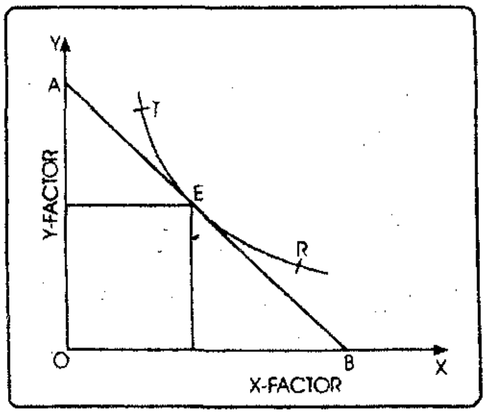

चित्र में OX अक्ष पर X साधन की मात्रा तथा OY अक्ष पर Y साधन की मात्रा मापी गई है। मान लीजिए X तथा Y साधनों की खरीद पर 4000 रु. खर्च करना चाहती है तथा X साधन की प्रति इकाई कीमत 40 रु. तथा Y साधन की कीमत 50 रु. है। स्पष्ट है कि 4000 रु. व्यय करके X साधन की 100 इकाई या Y साधन की 80 इकाईयां खरीद सकती है। साधनों की स्थिर कीमतों पर फर्म 4000 रु. व्यय करके x तथा y साधनों के जिन विभिन्न संयोगों से किसी एक संयोग में खरीद सकती है उनको AB सम–लागत रेखा द्वारा दर्शाया गय है। स्पष्ट है इन संयोगों में से वह किसी एक ही संयोग को खरीद सकती है। इनमें से किसी एक संयोग की लागत इतनी ही है जितनी इस समलागत रेखा पर पड़ने वाले किसी भी अन्य संयोग की लागत।

चित्र में AB सरल रेखा x तथा y साधनों के उन सभी संयोगी को जोड़ती है जिनमें से फ़र्म किसी एक संयोग को 4000 रुपए खर्च करके साधनों की दी हुई कीमतों पर खरीद सकती है। यह AB रेखा सम लागत रेखा (Iso-Cost line) कहलाती है। सम लागत रेखा की कीमत रेखा (Price Line) या व्यय रेखा (Outlay line) भी कहा जाता है।

Iso-Cost Line- Rs. 4000

Ios Cost Line- Rs. 2000

अब यदि फ़र्म साधनों पर व्यय की जाने वाली राशि की कम या अधिक कर देती है तो सम लागत रेखा उसी के अनुसार ऊपर या नीचे सरक जाती है। मान लो फ़र्म साधनों पर कुल व्यय कम करके 2000 रु. कर देती है तो साधनों की कीमतें स्थिर रहते हुए सम लागत रेखा समानान्तर रूप से नीचे सरक कर A1B1 बन जाती हैं। इसके विपरीत यदि फर्म साधनों पर किए जाने वाले व्यय में वृद्धि कर देती है तो साधन कीमतें स्थिर रहते हुए सम लागत रेखा समानान्तर रूप से फपर की ओर सरक जाती है।

साधनों पर व्यय की जाने वाली राशि स्थिर रहते हुए यदि किसी साधन की कीमत में परिवर्तन हो जाता है तो भी सम–लागत रेखा में परिवर्तन होगा। मान लो प्रारम्भिक सम–लागत रेखा A B है, जो 40000 रु. व्यय तथा x साधन की कीमत 40 रुपए और y साधन की कीमत स्थिर रहे परन्तु x साधन की कीमत 40 रुपए से बढ़ कर 80 रु. प्रति इकाई हो जाती है। तो सम–लागत रेखा में परिवर्तन निम्न चित्र अनुसार होगा:

रेखाचित्र में A B सरल रेखा प्रारम्भिक सम–लागत रेखा है। अब यदि x साधन की कीमत बढ़ कर 80 रुपए प्रति इकाई हो जाती है तो x साधन पर 4000 रुपए खर्च करके इसकी 50 इकाई ही खरीदी जा सकती है। मान लो OB1 मात्रा x साधन की 50 इकाइयां के समान है। इसलिए x साधन की कीमत बढ़ने के परिणामस्वरूप कीमत रेखा A B से सरक कर AB1 बन जाती है। इसी प्रकार यदि व्यय की जाने वाली राशि तथा x साधन की कीमत स्थिर रहती है परन्तु y साधन की कीमत में परिवर्तन होता है तो सम लागत रेखा सरकेगी।

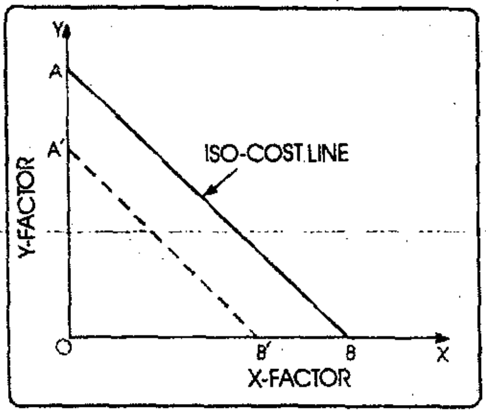

तटस्थता वक्र विश्लेषण में जिस प्रकार हम बजट रेखा के ढाल को ज्ञात करते है ठीक इसी प्रकार सम–लागत रेखा के ढाल (Slope of the Iso-Cost Line) को निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:

$$= \frac{\text{Price of Factor X}}{\text{Price of Factor Y}}$$

साधनों का न्यूनतम लागत संयोग या उपादानों के चयन सम्बन्धी उत्पादक का सन्तुलन (Least-Cost Combination of Factors) Or (Producer's Equilibrium Regarding Choice of Inputs)

किसी वस्तु का निर्णय पहले ही ले चुका है कि उसको वस्तु की कुल कितनी मात्रा का उत्पादन करना है तो फिर वह उत्पादन लागत को कम से कम करना चाहेगा। अब प्रश्न होता है कि ऐसा करने के लिए वह साधनों के कौन–से संयोग को उत्पादन प्रक्रिया में लगाएगा?

मान लीजिए उत्पादक 10,000 मीटर कपड़ा बुनना चाहता है। जिसको निम्न चित्र में सम उत्पाद वक्र (Isoquant) द्वारा प्रकट किया गया है चित्र में सम–लागत रेखाओं का मानचित्र भी दर्शाया गया है जो विभिन्न लागतों स्तरों को प्रकट करता है। दिए हुए सम–उत्पादन वक्र (Isoquant) तथा सम–लागत मानचित्र की सहायता से साधनों का यह संयोग ज्ञात किया जा सकता है। जिसको उत्पादन में लगाने से उत्पदन लागत कम से कम आती है जैसा कि चित्र में दर्शाया गया है।

चित्र में दर्शाया गया है कि 10,000 मीटर कपड़ा T, E तथा R किसी भी साधनों के संयोग से उत्पादित किया जा सकता है चित्र में स्पष्ट है कि 10,000 मीटर कपड़ा उत्पादित करने के लिए AB सम लागत। रेखा E संयोग में उत्पादित करना सभी संयोगों की तुलना में निम्नतम लागत संयोग है। E बिन्दु पर उत्पादित AB सामलागत रेखा सम उत्पाद वक्र 10,000 को स्पर्श कर रही है जो उत्पादक के सन्तुलन को प्रकट करती है। T तथा R संयोग E संयोग की अपेक्षा ऊंची सम–लागत रेखा (A"B") पर पड़ते हैं। इसलिए E उत्पादक का इष्टतम बिन्द (optimumpoint) हैं। क्योंकि यहां पर उत्पादन लागत न्यूनतम है।

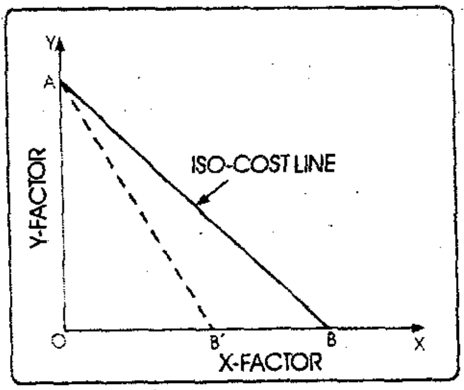

इस प्रकार E सन्तुलन बिन्दु पर निम्न शर्त सन्तुष्ट हो रही है:

$$MRTS_{xy} = \frac{P_x}{P_y}$$

P_x = Price of Factor x, P_y = Price of Factor - y

सन्तुलन की अवस्था में x की y के लिए प्रतिस्थापन की सीमान्त दर दोनों साधनों के सीमान्त भौतिक उत्पादन के अनुपात के बराबर होती है। इसलिए:

$$MRTS_{xy} = \frac{MPx}{MPy} = \frac{Px}{Py}$$

$$= \frac{MPx}{MPy} = \frac{Px}{Py}$$

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि साधनों के संयोग का चयन करते समय वह तब सन्तुलन (या इष्टतम अवस्था) (Optimum Level) में होगा जब वह दोनों साधनों को इतनी–इतनी मात्रा में प्रयोग करता है कि दोनों साधनों के सीमान्त भौतिक उत्पादन का अनुपात उनकी कीमतों के अनुपात के समान हो।

साधनों के इष्टतम संयोग या न्यूनतम लागत संयोग की शर्तें
(Condition for Optimum Combinaiton of Factors or least cost Combination)

न्यूनतम लागत संयोग साधनों के इष्टतम संयोग या उत्पादन सन्तुलन की शर्तें निम्नलिखित हैं:

1. सम–लागत रेखा सम–उत्पाद वक्र को अवश्य स्पर्श करनी चाहिए।
2. सम–उत्पादन वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर होना चाहिए।

   (Isoquant must be Convex to the origin) अर्थात् इसका ढाल गिरता हुआ होता है।

   ये दोनों शर्तें पूरी होने पर उत्पादक सन्तुलन की अवस्था में होता है क्योंकि यहां सम–उत्पादन वक्र का ढाल हमेशा सम लागत रेखा को ढाल के बराबर होता है:

$$MRTSxy = \frac{MP_x}{MP_y} = \frac{P_x}{P_y}$$

विस्तार पथ
(Expansion Path)

एक दिए हुए उत्पादन के स्तर को उत्पादित करने के लिए एक फ़र्म कौन से संयोग का चयन करती है। इसकी व्याख्या उपरोक्त विश्लेषण में की गई है। परन्तु अब हम इस बात का अध्ययन करना चाहते हैं कि जब कोई फ़र्म अपने उत्पादन का विसर करना चाहती है तो साधनों की कीमतें स्थिर रखते हुए वह साधनों के कौन–कौन से संयोग का चयन करेगी या साधनों के संयोग में किस प्रकार का परिवर्तन करेगी? इस प्रश्न का या समस्या का अध्ययन विस्तार पथ के द्वारा किया गया है। विस्तार पथ उन सभी बिन्दुओं के बिन्दु पथ को व्यक्त करता है जो उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर साधनों के न्यूनतम लागत संयोग को दर्शाता है।

प्रो. आहुजा के अनुसार, "विस्तार पथ को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि यह सम–उत्पादक वक्रों तथा सम–लागत रेखाओं का स्पर्श–बिन्दु पथ है। (The Exansion Path may be defined as the locus of the points of tangency between the equal product curves and the iso-cost line-prof H.L. Ahuja)

विस्तार पथ की व्याख्या रेखाचित्र 4 के माध्यम से की गई है:

चित्र में AB प्रारम्भिक सम लागत रेखा है। X तथा Y दोनों साधनों की कीमतें AB सम–लागत रेखा के ढाल द्वारा प्रकट होती हैं। अब यदि फ़र्म के वित्तीय साधन बढ़ते जाते हैं तथा वह वस्तु का अधिक से अधिक उत्पादन करना चाहती है तो उसका साधनों पर व्यय बढ़ेगा जिसको चित्र में सम–लागत रेखाओं CD, EF, तथा GH द्वारा दर्शाया गया है इस सम लागत रेखाओं का समानान्तर होना इस बात को व्यक्त करता है कि साधनों की कीमतें स्थिर रहती हैं।

यदि Q+eZ dk P स्तर उत्पादित करना चाहती है तो वह साधनों का न्यूनतम लागत संयोग E का चयन करेगी। जहां AB सम लागत रेखा P सम उत्पाद वक्र को स्पर्श कर रही है। इसके बाद यदि वह P_1, P_2 तथा P_3 उत्पादन के स्तरों को उत्पादित करना चाहती है तो साधनों के E_1, E_{11}h संयोगों का उत्पादन में लगाएगी। E, E_1 E_{11} तथा E_{11} बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा फ़र्म का विस्तार पथ कहलाती है। विस्तार पथ उत्पादन के विभिन्न स्तरों के लिए साधनों के न्यूनतम लागत संयोगों को प्रकट करता है। इसलिए यह प्रत्येक उत्पादन स्तर को उत्पादित करने की सबसे सस्ती विधि है।

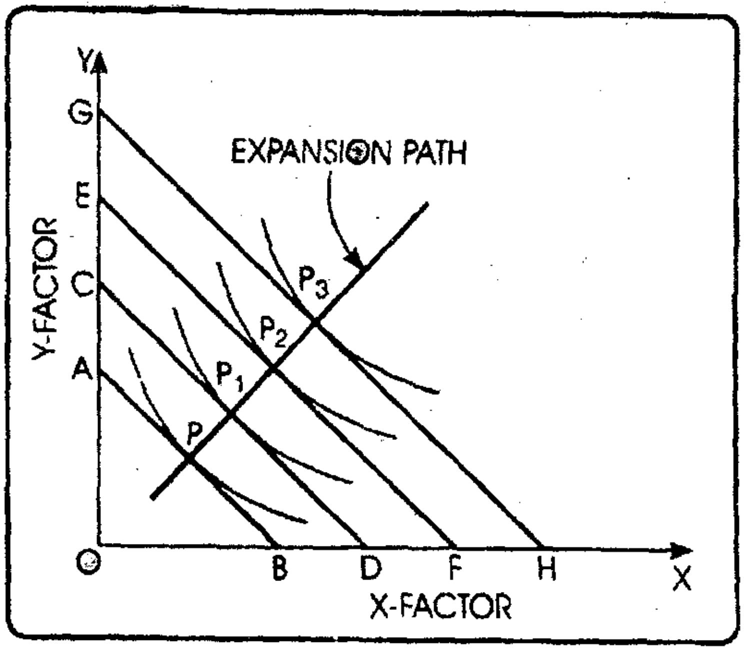

प्रश्न
(Questions)

I. निबन्ध रूपी प्रश्न

(Essay Type Questions)

1. What is meant by Producer's optimising behaviour. Expalin its determinants.
2. How does a producer establish optimum combination or Least cost combination of factors to optimise his behaviour.
3. What is Expansion Path of a producer? Trace this path with the help of a diagram.

II. लघु उत्तर प्रश्न

(Short-Answer Type Questions)

1. What is objective function of a producer.
2. Define optimising behaviour.
3. What is Iso-cost line.
4. What is least cost combination of factors.
5. Explain slope of the iso-cost line.
6. Explain slope of an isoquant.
7. Discuss producer's equilibrium.

III. वस्तुनिष्ठ प्रश्न तथा उनके उत्तर

(Objective Type Questions and their Answers)

i. Isoquant shows combinations of .... (goods, factors)

ii. Optimum means .... (Minimum, Maximum, Both)

iii. Iso-cost line shows the combinations of .... (Factors, goods)

iv. Slope of isoquant is .... (upward, Downward)

v. Isoquant shows .... (Objective function, choice function)

Answer : (i) Factors, (ii) both, (iii) Factors, (iv) downward, (v) choice function

अध्याय-15

उत्पादन लागत की धारणा तथा अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन लागत वक्रों में सम्बन्ध

(Concept of Cost of Production and Short and Long Run Cost Curves and their Inter-relationship)

परिचय
(Introduction)

फर्म का उत्पादन करने का उद्देश्य सामान्यतः अपने लाभ का अधिकतम करना होता है। लाभ की मात्रा फर्म द्वारा अर्जित आय (Revenue) तथा लागत के अन्तर पर निर्भर करती है। फर्म की आय उत्पादित वस्तु की बाजार कीमत जो उस वस्तु की मांग व पूर्ति की शक्तियों तथा बाजार के विभिन्न प्रकारों (Forms of market) आदि पर निर्भर करती है (जिसका अध्ययन हम अगले अध्यायों में करेंगे)। उत्पादन लागत किन तत्त्वों पर निर्भर करती है? लागत वक्रों का निर्माण कैसे होता है? लागत सिद्धान्त (Theory of Costs) क्या है? इन प्रश्नों का हल इस अध्याय में करने का प्रयास किया गया हैं।

एक उत्पादन की बाजार में वस्तु की पूर्ति की इच्छा तथा योग्यता उस वस्तु की उत्पादन लागत पर ही निर्भर करती है। इस प्रकार उत्पादन लागत वस्तुओं की कीमतों को धरातल (Floor) प्रदान करती है, अर्थात् वस्तु की कीमत उत्पादन लागत से कम नहीं हो सकती। उत्पादन वस्तु बेचने को या वस्तु की पूर्ति करने को तभी तैयार होता है जब बाजार कीमत कम–से–कम उत्पादन लगात के बराबर अवश्य हो। यह लागत ही है जिस पर बहुत से प्रबन्ध्यकीय निर्णय (Managerial decisions), जैसे वस्तु की क्या कीमत निर्धारित की जाए, वस्तु का उत्पादन करना है या नहीं करना है, वस्तु का उत्पादन बढ़ाना है या नहीं आदि निर्णय निर्भर करते हैं।

अर्थ
(Meaning)

किसी वस्तु का उत्पादन करने के अन्तर्गत उत्पादक द्वारा जो व्यय करना पड़ता है वह उत्पादन लागत कहलाती है। लागत फलन (Cost functions) वस्तुतः उत्पादन फलनों (Production functions) से ही निकाले जाते हैं। सैद्धान्तिक रूप से प्रत्येक वस्तु का उत्पादन फलन उत्पादन में अपनाई गई कुशलतम प्रक्रिया (most efficient production process) को व्यक्त कर रहा होता है। दूसरे शब्दों में किसी समय वस्तु का उत्पादन कम–से–कम (minimum) लागतों पर ही हो रहा होता है।

वस्तु की कुल उत्पादन लागत अनेक तत्त्वो द्वारा निर्धारित होती है, क्योंकि उत्पादन में अनेक साधनों का प्रयोग किया जाता है। कई बार समय अवधि इतनी कम होती है कि उत्पादन बढ़ाने के लिए इन सभी साधनों की मात्रा नहीं बढ़ाई जा सकती है। इसको अर्थशास्त्र में अल्पकालीन समय अवधि (short run) कहा जाता है। अल्पकाल के अन्तर्गत उत्पादक द्वारा उत्पादन करने के लिए सभी खर्चे अल्पकालीन लागत (Short run costs) कहलाते हैं। दीर्घकाल के अन्तर्गत सभी साधनो की मात्रा को उत्पादन बढ़ाने के लिए बढ़ाया जा सकता है। इस समयवधि में उत्पादक द्वारा किए गए सभी खर्चे दीर्घकालीन लागत (Long run costs) कहलाते हैं। अतः आर्थिक सिद्धान्त में लागतों को अल्पकालीन लागतें तथा दीर्घकालीन लागतों के रूप में अध्ययन किया जाता है।

अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों में लागत फलन अनेक तत्त्वों पर निर्भर करते हैं अर्थात् दोनों समयविधियों में लागत फलन बहु तत्वीय फलन (multivariable functions) हैं। इन दोनों लागत फलनों को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है।

दीर्घकालीन लागत फलन :

$$C = f(Q, T, P_F)$$

तथा अल्पकालीन लागत फलनः

$$C = f(Q, T, P_F, \overline{K})$$

यहां: C = total Cost,

Q = Output

T = Technology

P_F = Price of Factors

$\overline{K}$ = Fixed Factors

चित्रों में ग्राफ की सहायता से लागतों का दो अक्षों पर दर्शाया जाता है। X-अक्ष पर उत्पादन Q तथा Y-अक्ष पर लागतें मापी जाती हैं। विभिन्न उत्पादन स्तरों पर लागतों के बिन्दु अंकित किए जाते हैं। इन बिन्दुओं को मिलाने से लागत वक्र (Cost Curves) प्राप्त होते है। ये लागत वक्र दर्शाते हैं कि अन्य बातें समान रहने पर (Ceteris paribus) लागत उत्पादन का फलन होती है। [Cost is a function of output or $C = f(Q)$] अन्य बातें सामान रहने की धारणा का यहां अर्थ है कि लागत को निर्धारित करने वाले अन्य सभी तत्व उत्पादन को छोड़ कर स्थिर (Constant) रहते हैं। यदि ये अन्य साधन बदलते हैं तो लागत वक्रों पर इनका प्रभाव यह पड़ता है कि ये वक्र विवर्तित (Shift) हो जाते हैं। इसी कारण उत्पादन के अतिरिक्त लागत के निर्धारक तत्त्वों (determinants) को विवर्तन साधन (shift factors) कहा जाता है।

उदाहरणतः तकनीकी प्रगति भी एक विवर्तन साधन है। तकनीकी प्रगाति विभिन्न रूपों में हो सकती है। जैस उत्पादन के साधनों का पहले से उत्तम संयोग अपनाना, उपादानों की अच्छी गुणवत्ता होना, उद्यमी की तकनीकी कुशलता जिसमें उत्पादन के भौतिक पक्ष का गठन किया जाता है। (उपादार–उत्पादन के श्रेष्ठत्तर सम्बन्ध), तथा तकनीकी का उचित आर्थिक चयन करने की उद्यमी की कार्यकुशलता (Economic efficiency of the entrepreneur) आदि, उत्पादन फलन को ऊपर की ओर सरका देते हैं तथा उत्पादन लागत फलन को नीचे की ओर सरकायेंगे।

लागतों के सन्दर्भ में किसी फर्म की आन्तरिक बचतों तथा बह्य बचतों में अन्तर स्थापित करना भी अनिवार्य है। आन्तरिक बचतें किसी फर्म की दीर्घकालीन लागतों की बनावट (shape) का निर्धारण करती है। जैसे इस अध्याय में आगे–आगे स्पष्ट होता जाएगा क्योंकि ये उस फर्म के अपने उत्पादन स्तर में वृद्धि करने के उपरान्त ही प्राप्त होती है। इसके विपरीत बाह्य बचतें फर्म की अपनी क्रियाओं से स्वतन्त्र होती है तथा फर्म के बाहर उत्पन्न होती हैं जब उसके अपने उद्योग का विस्तार होता है या किसी अन्य उद्योग का विस्तार होता है। बाह्य बचतों का किसी फर्म पर यह प्रभाव पड़ता है कि उस फर्म द्वारा प्रयोग किये गये उत्पादन (Inputs) सस्ते हो जाते हैं या उतनी ही उत्पादन करने के लिए अब पहले से कम साधनों की आवश्यकता होती है। इन कारणों आदि से जो बाह्य बचतें प्राप्त होती हैं उनसे अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन लागत वक्र नीचे सरक जाते हैं। अतः आन्तरिक बचतें लागत वक्रों की आकृति तथा बाह्य बचतें लागत वक्रों की स्थिति का निर्धारण करती हैं।

इस अध्याय में उत्पादन लागत की कुछ महत्त्वपूर्ण धारणाओं तथा उत्पादन लागत के परम्परावादी सिद्धान्त की व्याख्या की गई है।

लागत की मुख्य धारणाएं
(Main Concepts of Costs)

उत्पादन लागत की मुख्य धारणाओं का अध्ययन निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

1. **अवसर लागत तथा हस्तान्तरण आय** (Opportunity Cost and Transfer Earning)—साधनों की पूर्ति उनके होने वाले उपयोगों (uses) की तुलना में कम होती है। ऐसी परिस्थितियों ने अवसर लागत तथा हस्तान्तरण आय की

धारणाओं को जन्म दिया है। प्रो० नाइट (Prof. Knight), प्रो० हैबरलर (prof. Haberler) आदि अर्थशास्त्रियों ने अपने लेखों में इन धारणाओं का खुल कर प्रयोग किया है।

एक साधन का अनेक आवश्यकताओं तथा उपयोगों में प्रयोग हो सकता है जैसे एक एकड़ खेत (Farm) का प्रयोग गेहूँ उगाने या सरसों उगाने या चने उगाने के लिए किया जा सकता है। मान लो कृषक उस खेत में गेहूँ उगाने की निर्णय कर लेता है। गेहूँ से कम सरसों उगाने तथा सरसों से कम चने उगाने में आय प्राप्त होती है। गेहूँ उगाने की अवसर लागत सरसों की वह उपज है जिसका त्याग करके गेहूँ उगाया गया है। अतः किसी वस्तु की अवसर लागत अगली श्रेष्ठत्तम वैकल्पिक वस्तु का त्याग है जिसके उत्पादन में साधन का उपयोग किया जा सकता था। इसको एक अन्य उदाहरण द्वारा भी समझा जा सकता है। कॉलेज के किसी विद्यार्थी की बी० ए० या बी० काम० करने की अवसर लागत उस आय का त्याग है जो वह विद्यार्थी किसी अच्छी–से–अच्छी नौकरी (job) करके आय अर्जित कर सकता था। यह आय जिसका त्याग किया गया है इसका मैद्रिक माप बी० ए० या बी० कॉम० करने की नीहित लागत (implicit cost) भी कहीं जा सकती है। अतः अवसर लागत (opportunity cost) नीहित लगात भी कही जा सकती है।

प्रो० लेफ्टवीच के अनुसार, "किसी वस्तु की अवसर लागत उस त्यागी गई वैकल्पिक वस्तु का मूल्य होता है जिसके उत्पादन में साधनों का प्रयोग किया जा सकता था।" (Opportunity cost of a particular product is the value of the foregone alternative product that resources used in its production, could have produced—Prof. Leftvitch.)

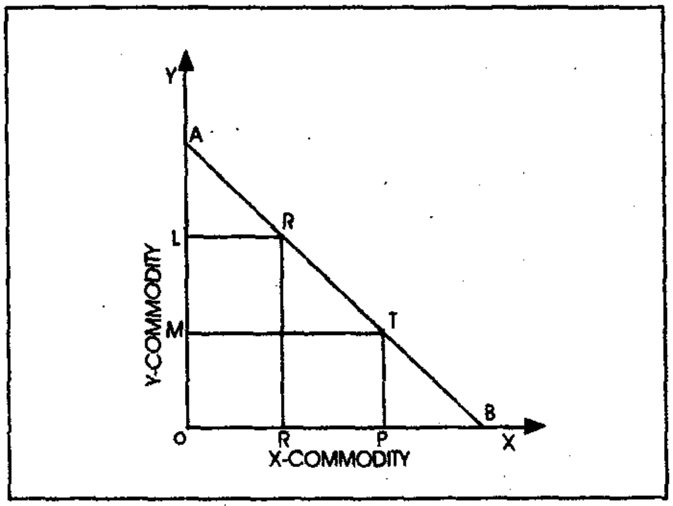

चित्र 1

अवसर लागत को चित्र 1 की सहायता से भी स्पष्ट किया जा सकता है चित्र मे AB उत्पादन सम्भावना वक्र दर्शाया गया है। यह वक्र व्यक्त करता है कि अर्थव्यवस्था में सभी साधनों को प्रयोग करके X तथा Y वस्तु के उन सभी संयोगों को उत्पादित किया जा सकता है जो इस वक्र पर पड़ते है।

मान लो अर्थव्यवस्था में K संयोग का उत्पादन किया जा रहा है। जिसमें X वस्तु की OR मात्रा तथा Y-वस्तु की OL मात्रा शामिल है। अब यदि हम X वस्तु की RP मात्रा अधिक उत्पन्न करना चाहते हैं तो Y-वस्तु की LM मात्रा का त्याग करना पड़ता है। इसलिए X वस्तु की RP मात्रा की अवसर लागत Y-वस्तु की LM मात्रा है जिसका हमें त्याग करना पड़ता है।

इसके विपरीत हस्तान्तरण आय (transfer earning) किसी साधन की वह आय होती है, जो यह साधन अपने सर्वश्रेष्ठ प्रयोग (Best alternative use) में अर्जित कर सकता है। जैसे एक मैनेजर किसी निगम (Corporation) में एक लाख रुपये प्रति माह वेतन लेता है तो वह इस निगम को छोड़ कर किसी अन्य निगम में नही जायेगा जब तक उसको एक लाख रुपये प्रति माह से अधिक वेतन नहीं दिया जाता है। अतः एक लाख रुपये प्रति माह वेतन उसकी हस्तान्तरण आय (transfer earning) कही जाएगी।

प्रो० बेन्हम के अनुसार, "हस्तारण आय मुद्रा की वह/मात्रा है जो उत्पादन के किसी साधन की एक इकाई अपने सर्वश्रेष्ठ वैकल्पित प्रयोग से अर्जित कर सकती है।" (The amount of money which any particular unit of a factor could earn in its best paid alternative use, is called its transfer earning—Prof. Benhan)

दोनों में अन्तर यह है कि अवसर लागत का सम्बन्ध वस्तु से होता है तथा हस्तान्तरण आय का सम्बन्ध उत्पादन के किसी साधन से होता है।

2. **स्पष्ट तथा निहित लागतें (Explicit and Implicit Costs)**—एक उत्पादक द्वारा उत्पादन के दौरान जो नकद रूप में खर्चे किए जाते हैं वे स्पष्ट लागतें (Explicit Costs) कहलाती हैं। स्पष्ट लागतों में फर्म द्वारा किये गये केवल वे खर्चे या व्यय शामिल होते हैं जिनमें मुद्रा हस्तान्तरण (transfer of money) होता है। लेखाकार (accontants) अपने खातों में केवल उन्हीं लागतों को दर्ज करते हैं जिनमें मुद्रा भुगतान होता हैं जो फर्म बाहरवालों को उनकी वस्तुओं व सेवाओं के लिए किए जाते हैं।" (Explicit costs are those cash payments which firms make to outsiders for their services and goods —Leftwitch)

इन लागतों मे फर्म के द्वारा कच्चे माल, मजदूरी, ब्याज, किराया आदि के रूप में किए गए नकद भुगतान शमिल होते हैं। परन्तु स्पष्ट लागते प्रायः पूर्ण आर्थिक लागतों (full economic costs) का प्रतिनिधित्व नहीं करती हैं। किसी निर्णय लेने के लिए आर्थिक लागतों का ध्यान किया जाता है। स्पश्ट लागतों के अतिरक्ति निहित लागतों (implicit costs) को भी अर्थशास्त्री निर्णय लेने के लिए ध्यान में रखता है।

एक फर्म को अपने स्वयं के साधन को उत्पादन में प्रयोग करने के लिए कोई नकद भुगतान नहीं करना पड़ता। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उस साधन की लागत वहन नहीं की गई है। यदि इस साधन को उत्पादक अपने लिए प्रयोग न करके दूसरे को देता तो उसको आय प्राप्त हो सकती थी। जैसे अपनी दुकान को स्वयं प्रयोग न करके किराये पर देता है तो उत्पादक को किराये के रूप में आय हो सकती थी। उद्यमी की अपनी सेवाओं पर लाभ भी निहित लागत हैं जब उत्पादक अपने साधनों को स्वयं प्रयोग करता है तो उसको यह आय प्राप्त नहीं होती है। उसको ही साधन प्रयोग करने की निहित लागत कहा जाता है।

प्रो० लेफ्टविच के अनुसार, "निहित लागतें स्वयं के स्वामित्व वाले तथा स्वयं के द्वारा लगाये गए साधनों की लागतें होती हैं। (Impliocit costs are costs of self-owned and self employed resources —Leftwitch). जैसे एक उत्पादक की उत्पादन में लगाई गई अपनी भूमि का लगान, अपने श्रम की मजदूरी, अपनी पूंजी का ब्याज आदि निहित लागतों में शामिल होते हैं।

Total Economic Costs = Explicit Costs + Implicit Costs

3. **प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष लागतें** (Direct and Indirect Costs)—वे लागतें जो केवल उत्पादन के कारण होती हैं तथा जिन लागतों को उत्पादन की प्रति इकाई निर्धारित किया जा सकता हो प्रत्यक्ष लागतें (direct costs) कहलाती हैं। जेस, कच्चे माल, श्रम आदि की लागतें केवल उत्पादन के कारण उत्पन्न होती हैं। इनको उत्पादन की प्रति इकाई लागत के रूप में निर्धारित किया जा सकता है, इसलिए इनको प्रत्यक्ष लागतें या मुख्य लागतें (Prime Costs) कहा जाता है।

इसके विपरीत वे लागतें जैसे बिजली का बिल, प्रबन्धकीय खर्चे, मशीनों की घिसाई पिटाई तथा टूट–फूट पर खर्च तथा अन्य खर्चे जो उत्पादन न किये जाये तो भी होते रहते हैं तथा इनको उत्पादन के खर्चों से अलग करना कठिन होता है। जैसे बिजली का रात का प्रकाश के लिए भी प्रयोग होना आदि। इन लागतों को उत्पादन की प्रति इकाई लागत के रूप में सही–सही निर्धारण नहीं हो सकता है बल्कि इनका अनुमान ही लगाया जाता है। इन लागतों को अप्रत्यक्ष लागतें या ऊपरी लागतें (overhead cost) कहा जाता है।

4. **निजी लागतें तथा सामाजिक लागतें (Private Costs Versus Social Costs)**—निजी लागते वे लागते होती हैं जो प्रत्यक्ष रूप से फर्मो को अपनी उत्पाद क्रिया में लगने के कारण उठानी पड़ती हैं। इसके विपरीत कुछ लागतें ऐसी होती हैं जो फर्मो को अन्य फर्मो की उत्पादन क्रिया के कारण उठानी पड़ती है तथा इनको बाह्य लागतें (external costs) कहा जाता है। ये लागतें सारे समाज पर लाद दी (pass on) जाती हैं।

जैसे एक फैक्टरी नदी किनारे पर स्थित है। अब अपने गन्दे माल को कहीं दबाने की बजाय यदि नदी के पानी में डालती है तो ऐसा करने की उसकी निजी लागत तो शून्य है परन्तु यह लागत समाज के लिए अनिवार्य रूप से घनात्मक है। क्योंकि नदी के अगले इलाकों में जो लोग इस पानी को पीने के लिए प्रयोग करते हैं उनको इसकी सफाई पर अब खर्च करना या बढ़ाना पड़ता है या अब इनको पीने के लिए पानी किसी दूर स्थान से लाना पड़ सकता है। जिस पर खर्च करना पड़ता है। नदी किनारे स्थापति फर्म जो गन्दा माल पानी में डालती है उसकी उत्पादन लागत या निजी लागत में ये बाह्य लागतें जो अन्य लोगों को उठानी पड़ती हैं शामिल की जाए तो उस फर्म के उत्पादन की वास्तविक लागत (real costs) या सामाजिक लागत (Social costs) निर्धारित हो सकेंगी।

5. **स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतें (Fixed and Variable costs)**—स्थिर लागत तथा परिवर्तनशील लागत से यहां हमारा अभिप्राय कुल स्थिर लागत तथा कुल परिवर्तनशील लागत से है।

   कुल स्थिर लगात वे लागत होती हैं जो उत्पादन में परिवर्तन के साथ परिवर्तित नहीं होती। ये वे लागते हैं जो फर्म का उत्पादन शून्य होने पर भी वहन करनी पड़ती हैं। जैसे उधार ली गई पूंजी पर ब्याज, बिल्डिंग के किराए का भुगतान, मशीनों की घिसाई–पिटाई पर खर्च (deprectiation charges) तथा प्रबन्धकों के वेतन आदि सामान्यतः स्थाई पूंजी होती है। इसके विपरीत परिवर्तनशील लागतें वे लगाते होती हैं जो उत्पादन में परिवर्तन के साथ परिवर्तित होती हैं। इन लागत्तों में कच्चे माल के लिए भुगतान, अस्थाई कर्मचारियों के वेतन, बिजली के बिलों का भुगतान आदि खर्चे शामिल होते हैं। ये लागतें उत्पादन में वृद्धि के साथ बढ़ती हैं तथा उत्पादन में कमी के साथ कम होती हैं। उत्पादन का स्तर शून्य होने पर परिवर्तशील लागतें भी शन्यू हो जाती हैं।

लागत के सिद्धान्त (Theories of Costs)—

अर्थशास्त्र में लागत के दो प्रकार के सिन्द्धान्तों का अध्ययन किया जाता है:

A. लागत का परम्परावादी सिद्धान्त
(Traditional Theory of Costs)

B. लागत का आधुनिक सिद्धान्त
(Modern Theory of Costs)

परन्तु इस अध्याय में लागत के परम्परावादी सिद्धान्त का ही अध्ययन किया जाता है :

A. लागत का परम्परावादी सिद्धान्त
(Traditional Theory of Costs)

परम्परावादी सिद्धान्त अल्पकाल तथा दीर्घकाल में अन्तर स्थापित करता है। अल्पकाल वह समय अवधि है जिसमें कुछ साधन (मशीनें, मैनेजर, ब्याज आदि) स्थिर रहते हैं। इसके विपरीत दीर्घकाल वह समय अवधि है जब सभी साधन परिवर्तनशील बन जाते हैं। इसलिए लागतों को भी समयवधि के अनुसार विभक्त किया गया है।

1. अल्पकालीन लागतें (Short-up Costs)
2. दीर्घकालीन लागतें (Long-run Costs)

1. अल्पकालीन लागतें (Short-up Costs)—अध्ययन के दृष्टिकोण से अल्पकाल में उत्पादन लागतों को तीन भागों मे बांटा जाता है:

1. कुल लागत (Total Costs)
2. औसत लागत (Average Costs)
3. सीमान्त लागत (Marginal Costs)

1. **कुल लागत** (Total Cost)—किसी वस्तु की निश्चित मात्रा का उत्पादन करने के लिए जो व्यय किया जाता है। उसके जोड़ को कुल लागत (Total Costs) कहा जाता है। प्रो० डूली के अनुसार, "उत्पादन की एक निश्चित मात्रा का उत्पादन करने के लिए कुल जितने के खर्च करने पड़ते हैं उन सभी जोड़ को कुल लागत कहा जाता है।" (Total Cost of production is the sum of all expenditures incurred in producing given volume of output—Prof. Dooley)। अल्पकाल में कुल लागतें दो प्रकार की होती है :

$$TC = TFC + TVE$$

TC = कुल लागत, TFC = कुल बन्धी लागत

TVC = कुल परिवर्तनशील लागत

कुल बन्धी लागत तथा कुल परिवर्तनशील लागत का/अध्ययन निम्न प्रकार किया गया है :

I. **कुल बन्धी लागत या कुल पूरक लागत (Total Fixed Cost or Total Supplementary Costs)**—कुल बन्धी लागत वे लागतें होती हैं जो अल्पकाल में स्थिर साधनों की खरीद पर व्यय की जाती हैं। अन्य शब्दों में ये वे लागते होती हैं। जो उत्पादन में परिवर्तन के साथ परिवर्तित नहीं होती है। उत्पादन की मात्रा शून्य होने पर तथा उत्पादन की मात्रा अधिकतम होने पर स्थिर या बन्धी या पूरक लागते ज्यों की त्यों बनी रहती हैं। इन लागतों को अप्रत्यक्ष लागत (indirect cost) भी कहा जा सकता है।

स्थिर लागतों में निम्नलिखित लागतें शामिल होती है:

1. प्रबन्धकीय स्टाफ (Staff) की तनखाह
2. मशीनों की घिसाई पिटाई
3. पूंजी पर ब्याज
4. बिल्डिंग की टूट–फूट पर व्याज
5. सामान्य लाभ
6. किराया

तालिका 1 से स्पष्ट होता है कि उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन से कुल स्थिर लागत में कोई परिवर्तन नहीं होता है। उत्पादन शून्य होने पर भी कुल स्थिर लागत 100 रु० तथा 6 या 8 इकाई होने या 10 इकाई होने पर भी कुल स्थिर लागत 100 रु० पर स्थिर या बन्धी (fixed) रहती है। इसी तथ्य को तालिका 1 तथा चित्र 1 में दर्शाया गया है।

II. **कुल परिवर्तनशील लागतें या प्रमुख लागतें (Total Variable Costs or Prime Costs)**—ये वे लागते हैं जो उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन होने पर परिवर्तित होती हैं। जैसे हम जानते हैं कि अल्पकाल में कुछ साधन (परन्तु दीर्घकाल में सभी साधन) परिवर्तनशील होते हैं। इन परिवर्तनशील साधनों पर किया गया खर्च परिवर्तनशील लागतें कहलाता है। इन लागतों को प्रमुख लागतें (Prime Costs) या प्रत्यक्ष लागतें (Direct Costs) भी कहा जाता है।

परिवर्तनशील लागतों में निम्न खर्चे शमिल होते हैं:

1. कच्चे माल पर किया गया खर्च
2. प्रत्यक्ष श्रम की लागत
3. स्थाई पूंजी पर चालू व्यय जेस ईधन या बिजली टूट–फूट आदि
4. चालू पूंजी (Circulating capital) पर ब्याज

परिवर्तशील लागत को भी तालिका 1 तथा चित्र 1 की सहायता से स्पष्ट किया गया है। उत्पादन में जैसे–जैसे वृद्धि हो रही है।

तालिका 1

अल्पकाल में एक व्यक्तिगत फर्म की कुल लागतों की अनुसूची
(काल्पनिक आंकड़े रुपयों में)

कुल उत्पादन	कुल स्थिर लागत	कुल परिवर्तशील लागत	कुल लागत
0	100	0	100
1	100	90	190
2	100	170	270
3	100	240	340
4	100	300	400
5	100	370	470
6	100	450	550
7	100	540	640
8	100	650	750
9	100	780	880
10	100	930	1030

परिवर्तनशील लागतें वैसे–वैसे बढ़ रही हैं। जब उत्पादन शून्य होता है तो ये लागतें भी तालिक 1 अनुसार शून्य होती हैं. परन्तु कुल लागत 100 (TC = TFC + TVC) होता हैं। जब उत्पादन 2 इकाई होती है तो स्थिर लागत तो 100 रहती है। परन्तु परिवर्तनशील लागत बढ़कर 90 तथा कुल लागत बढ़कर 190 हो जाती है। अल्पकाल में स्थिर लागत उत्पादन का फलन नहीं होती हैं। परन्तु घटती–बढ़ती या परिवर्तनशील लागत उत्पादन का फलन होती है। जब उत्पादन 10 इकाई होता है तो बन्धी लागत तो 100 पर स्थिर रहती हैं परन्तु घटती–बढ़ती लागत बढ़कर 930 तथा कुल लागत बढ़ कर 1030 हो जाती है।

स्थिर लागत, घटती–बढ़ती लागत, तथा कुल लागत के उपरोक्त सम्बन्ध को रेखाचित्र 1 की सहायता से भी स्पष्ट किया गया है। चित्र 1 के X-अक्ष पर उत्पादन की इकाई तथा Y-अक्ष पर कुल स्थिर लागत (TFC), कुल घटती बढ़ती लागत (TVC), तथा कुल लागतें (TC) दर्शाई गई हैं। (TC = TFC + TVC)

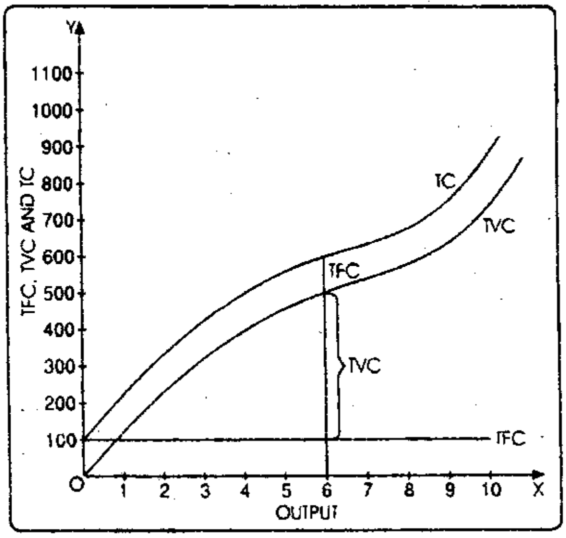

चित्र 1

TFC कुल बन्धी लागत वक्र है जो दर्शाता है कि TFC विभिन्न उत्पादन स्तरों पर स्थिर रहती है। TVC कुल घटती–बढ़ती लागत वक्र है जो उत्पादन में वृद्धि करने से प्रारम्भ में घटती दर पर बढ़ती है तथा बाद में बढ़ती दर पर बढ़ती जाती है। चित्र में TC कुल लागत वक्र है जो TVC तथा TC के मध्य सदैव बराबर का अन्तर बना रहता है जो इस बात को प्रकट करता है कि TFC हमेशा स्थिर रहती है।

औसत लागत (Average Cost)—किसी वस्तु के उत्पादन की प्रति इकाई लागत औसत लागत कहलाती है। अन्य शब्दों में कुल लागत (TC) को उत्पादन की कुल मात्रा (Q) से भाग देने पर औसत लागत (AC) प्राप्त होती है। अर्थात्:

$$AC = \frac{TC}{Q}$$

यहाँ AC = Average cost (औसत लागत), TC = Total Cost (कुल लागत) तथा Q = Total output (कुल उत्पादन)

अल्पकाल में औसत लागत (AC), औसत बन्धी लागत (AFC) तथा औसत घटती–बढ़ती लागत (AVC) का योग होती है:

$$AC = AFC + AVC$$

यहाँ AFC= Average Fixed Cost (औसत बन्धी लागत)

AVC = Average Variable Cost (औसत घटती–बढ़ती लागत) हैं।

AFC तथा AVC की व्याख्या निम्न प्रकार से की गई है:

1. **औसत बन्धी लागत** (Average Fixed Cost)—कुल बन्धी लागत को कुल उत्पादन की मात्रा से भाग देने पर जो लागत आती है वह औसत बन्धी लागत कहलाती है।

$$AFC = \frac{TFC}{Q}$$

तालिका 2 तथा चित्र 2 की सहायता से AFC को स्पष्ट किया जा सकता है:

तालिका 2

Total Output	TFC	AFC
1	100	100
2	100	50
3	100	33.3
4	100	25
5	100	20
6	100	16.6
7	100	14.4
8	100	12.7
9	100	11.1
10	100	10

तालिका 2 से स्पष्ट होता है कि ज्यों–ज्यों कुल उत्पादन बढ़ता है तो AFC निरन्तर गिरती चली जाती है। जब उत्पादन 1 इकाई होता है तो यह 100 तथा 2 इकाई उत्पादन पर 50 होती है। इसी प्रकार उत्पादन वृद्धि के साथ निरन्तर गिरती हुई 9 वीं तथा 10 वीं इकाईयों पर यह क्रमशः 11.1 तथा 10 पर पहुंच जाती है। तालिका 2 के आधार पर बनाया गया चित्र 2 भी AFC की इसी प्रकृति को दर्शा रहा है।

चित्र 2 के X-अक्ष पर उत्पादन की मात्रा तथा Y-अक्ष पर AFC मापी गई है। AFC वक्र दर्शा रहा है कि ज्यों–ज्यों उत्पादन की कुल मात्रा बढ़ती जाती है तो AFC निरन्तर गिरती जाती है।

विशेष ध्यान देने की बात, जो तालिका 2 तथा चित्र 2 से भी स्पष्ट हो रही है, वह यह है कि AFC गिर कर कभी भी शून्य को प्राप्त नहीं होती है। परन्तु AFC उत्पादन में वृद्धि के साथ घटती अवश्य जाती है।

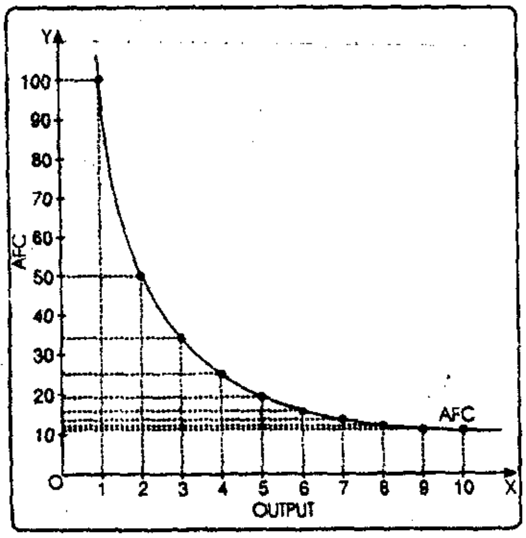

चित्र 2

II. औसत घटती-बढ़ती लागत (Average Variable Cost)—कुल घटती–बढ़ती लागत (TVC) को उत्पादन की कुल मात्रा (Q) से भाग देने पर जो लागत आती है वह औसत घटती–बढ़ती लागत (Average Variable Cost) कहलाती है।

अर्थात् :

$$AVC = \frac{TVC}{Q}$$

यहां AVC = Average Variable Cost (औसत घटती–बढ़ती लागत) है।

अल्पकाल में किसी फर्म की घटती–बढ़ती लागत तथा लागत वक्र को तालिका 3 तथा चित्र 3 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है:

तालिका-3

कुल उत्पादन Q	कुल घटती-भड़ती लागत (TVC)	औसत घटती बढ़ती
1	90	90
2	170	85
3	240	80
4	300	75
5	370	74
6	450	75
8	650	77.1
9	780	81.2
10	930	86.6
		93

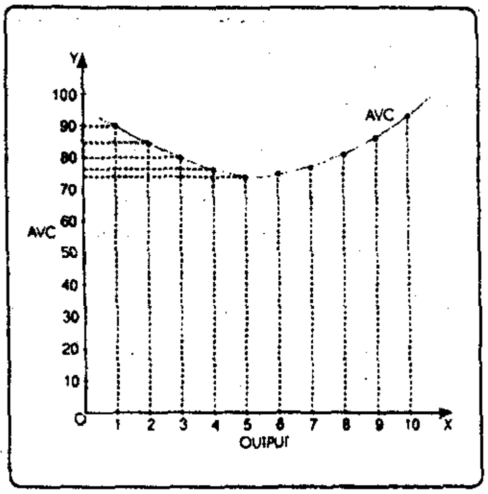

चित्र 3

तालिका 3 तथा चित्र 3 से स्पष्ट हो रहा है कि कुल उत्पादन के बढ़ने पर प्रारम्भ में AVC गिरती जाती है तथा पांचवी इकाई पर यह निम्नतम (74) होती है। इसके बाद जब उत्पादन बढ़ाया जाता है तो AVC बढ़ती चली जाती है। जैसे छठी इकाई तथा 7वीं इकाईयों पर यह क्रमशः 75 तथा 77.1 बन जाती है। 9 वीं इकाइयों पर क्रमशः 86.6 तथा 93 हो जाती है। इस प्रकार AVC वक्र अंग्रेजी के U आकार का रूप धारण कर लेती है। अर्थात् प्रारम्भ में AVC गिरती है तथा निम्नतम बिन्दु प्राप्त करके यह बढ़ाने लग जाती है जैसा चित्र 3 से स्पष्ट हो रहा है। AVC की आकृति U आकार होने का कारण उत्पादन में घटते-बढ़ते प्रतिफल का नियम लागू होता है।

(III) औसत, औसत बन्धी तथा औसत घटती-बढ़ती लागत का सम्बन्ध (Relation between Average, Average Fixed and Average Variable Costs)—जैसा हमें ज्ञात है कि औसत लागत (AC), औसत बन्धी लगात (AFC) तथा औसत घटती बढ़ती लागत (AVC) का जोड़ होता है:

$$AC = AFC + AVC$$

इसके सम्बन्ध को तालिका 4 तथा चित्र 4 की सहायता से व्यक्त किया जा सकता है। तालिका 4 में AFC तथा AVC का जोड़ करके AC निकाली गई है।

तालिका 4

Total Output	AFC	AVC	AC
1	100	90	190
2	50	85	135
3	33.3	80	113
4	25	75	100
5	20	74	94
6	16.6	75.6	91.6
7	14.2	77.1	91.4
8	12.5	81.2	93.7
9	11.1	86.6	97.7
10	10	93	103.0

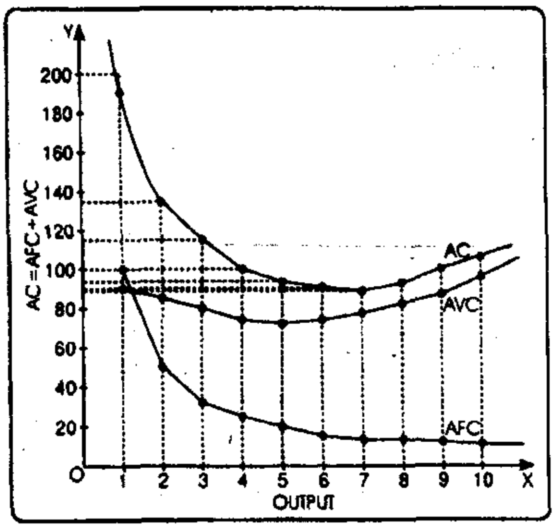

चित्र 4

तालिका 4 से स्पष्ट है कि सातवीं इकाई तक औसत लागत कम हो रही हैं तथा इसके बाद यह बढ़ना शुरू करती है। इस प्रकार यह अग्रेंजी के U अक्षर की आकृति ग्रहण करती है। प्रारम्भ में AFC तथा AVC दोनों गिर रही होती है। इसलिए AC नीचे शीघ्रता से गिरती जाती है। पांचवीं इकाई पर ACV गिरकर निम्नतम होती है तथा बढ़ना शुरू करती है। परन्तु AC सातवीं इकाई तक गिर रही होती है क्योंकि ACF गिरना जारी रखती है। AVC यहाँ जारी रखती है। पांचवी से सातवीं इकाई के बीच AFC यहाँ AC को ऊपर धकेल रही होती है परन्तु AFC इसको नीचे खींच रही होती है। AFC यहाँ अधिक शक्तिशाली होने के कारण AC नीचे गिरती जाती है। सातवीं इकाई के बाद AVC तेज़ी से बढ़ती है तथा यह AC को ऊपर उठाने लगा जाती है।

अल्पकालीन औसत लागत वक्र 'U' आकार की क्यों होती है?
(Why is the short Run Average Cost Curve 'U' shaped?)

औसत लागत वक्र की उपरोक्त व्याख्या से स्पष्ट होती है कि यह अंग्रेजी के अक्षर 'U' आकृति की होती है। अर्थात् औसत लागत वक्र (AC) उत्पादन बढ़ाने पर प्रारम्भ में गिरती है तथा निम्नतम स्तर पर पहुंचने के बाद ऊपर उठती चली जाती है, जैसा कि चित्र 5 में दर्शाया गया है।

चित्र 5 से स्पष्ट है कि ज्यों उत्पादन का स्तर बढ़ता हुआ Q तक पहुंचता है तो AC अपने निम्नतम बिन्दु या स्तर पर होती है। इसके बाद ज्यों उत्पादन Q से अधिक बढ़ाया जाता है तो AC बढ़ने लगती है। इसके निम्नलिखित कारण है:

1. **औसत बन्दी लागत तथा औसत घटती बढ़ती लागत का सम्बन्ध** (Relation between Average Fixed cost and Average variable cost): AC हमेशा अल्पकाल में AFC तथा AVC का जोड़ होता है।ज्यों उत्पादन में वृद्धि की जाती है तो AC शुरु में गिरती है परन्तु कुछ देर बाद यह ऊपर उठने लग जाती है जो AFC तथा AVC दोनों का योग होता है, परन्तु AVC वक्र को ऊपर उठाने में AVC इतनी तेजी से बढ़ती है कि यह AFC के नीचे खींचने के प्रभाव को समाप्त करते हुए AC को ऊपर उठा देती है। इसके परिणामस्वरूप AC वक्र चित्र 5 में दर्शाये गये U आकार की आकृति प्राप्त कर लेती है।

2. **घटते बढ़ते अनुपात का नियम** (Law of variable Proporton): इस नियम के अनुसार जब बन्धे साधनों के साथ किसी एक घटते–बढ़ते साधन का प्रयोग बढ़ाया जाता है तो बन्धे साधनों का कुशलतापूर्वक प्रयोग होने लगता है। अर्थात् दोनों प्रकार के साधनों का अनुपात श्रेष्ठत होने लगता है तथा बढ़ते प्रतिफल का नियम या घटती लागत का नियम (Law of Increasing Returns of Law Decreasing costs) लागू होने लगता है। इस कारण प्रारम्भ मे AC गिरती

चली जाती है तथा यह स्थिति चित्र 5 में Q उत्पादन के स्तर तक बनी रहती है। इसके उपरान्त परिवर्तनशील साधन की और मात्रा बढ़ाने पर समान प्रतिफल या समान लागत का नियम (Law of Constant Returns or Law of Constant Cost) लागू होता है। इस अवस्था में AC स्थिर बनी रहती है और अधिक उत्पादन बढ़ाने पर अल्पकाल में बन्धे साधन का अनुपात कम रह जाता है तथा घटते प्रतिफल का नियम या बढ़ती लागत का नियम (Law of Diminishing Returns or Law of Increasing costs) लागू होता है। इस कारण AC वक्र ऊपर उठने लग जाती है तथा यह वक्र 'U' आकार बन जाता है।

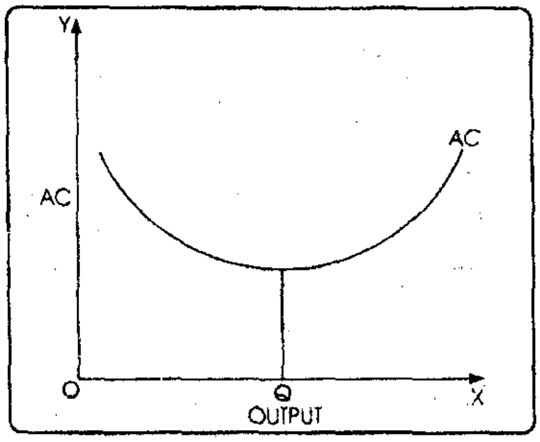

चित्र 5

3. **आन्तरिक बचतें व हानियां** (Internal Economics and Diseconomies): अल्पकाल में जब एक फर्म उत्पादन बढ़ाती है तो बन्धे साधनों के अविभाजनशील (Indivisible) होने के कारण फर्म को कई प्रकार की बचतें प्राप्त होती हैं जिससे आरम्भ में AC नीचे गिरती जाती हैं। आन्तरिक बचते फर्म को मुख्यतः तकनीकी बचतें, श्रम–विभाजन की बचते या बिक्री सम्बन्धी बचतें आदि के रूप में प्राप्त होती हैं जिनका विस्तृत अध्याय पहले अध्ययन में हम कर चुके हैं। इनसे AC वक्र उत्पादन के बढ़ने के साथ–साथ नीचे गिरता जाता है। परन्तु जब उत्पादन बहुत बढ़ जाता है तो ये बचतें हानियां (Diseconomies) में बदल जाती हैं तथा उत्पादन के प्रति इकाई लागत (AC) बढ़ने लग जाती है। अतः आन्तरिक बचतों व आन्तरिक हानियों के कारण AC वक्र की आकृति 'U' आकार की हो जाती है।

सीमान्त लागत
(Marginal Cost)

सीमान्त लगात उत्पादन की एक अतिरिक्त इकाई उत्पादन करने की लागत होती है। Marginal Cost (MC) is defined as the extra or additional cost of producing one more unit of output) अन्य शब्दों में किसी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई का उत्पादन करने से कुल लागत में जो परिवर्तन आता है उसको सीमान्त लागत कहते हैं।

$MC = TC_n - TC_{n-1}$

$$\text{or } MC = \frac{\text{Change in TC}}{\text{Change in Q}} = \frac{\Delta TC}{\Delta Q}$$

यहाँ MC = Marginal Cost (सीमान्त लागत)

TC_n =Total cost of n output उत्पादन की *n* मात्रा की कुल लागत)

TC_{n-1} = Total cost of *n* -1 output (उत्पादन की *n*-1 मात्रा की कुल लागतें)

Δ TC = Change in Total Cost

Δ Q = Change in output.

उपरोक्त सूत्र $\left(\frac{\Delta TC}{\Delta Q}\right)$ की सहायता से जब कभी उत्पादन में वृद्धि एक इकाई से अधिक होती है तो भी सीमान्त लागत ज्ञात की जा सकती है।

प्रो० सैम्युलसन के अनुसार, "उत्पादन के किसी स्तर पर सीमान्त लागत एक अतिरिक्त ईकाई कम या अधिक उत्पादन करने की अतिरिक्त लागत होती है। (Marginal cost at any output level is the extra cost of producing one extra unit more or less.) सीमान्त लागत उत्पादक के निर्णय लेने में विशेष महत्व रखती है। उत्पादन बढ़ाने या घटाने सम्बन्धी निर्णय सीमान्त लागत को ध्यान में रख कर ही लिए जाते हैं। सीमान्त लागत को तालिका 6 तथा चित्र 6 की सहायता से समझा जा सकता है:

तालिका 5 : अल्पकालीन सीमान्त लागत

Output	Total Cost	Marginal Cost
0	100	—
1	190	90
2	270	80
3	340	70
4	400	60
5	470	70
6	550	80
7	640	90
8	750	110
9	880	130
10	1030	150

तालिका 6 से स्पष्ट है कि अल्पकाल में जब उत्पादन शून्य पर होता है तो उत्पादन को बन्धी लागत के बराबर (100) हानि उठानी पड़ती है जिस पर सीमान्त लागत शून्य होगी, क्योंकि परिभाषा के अनुसार सीमान्त लागत एक अतिरिक्त इकाई उत्पादित करने की लागत होती है। प्रथम इकाई के उत्पादन पर MC 90 रु० होती है। इसके बाद उत्पादन बढ़ाने पर यह गिरती जाती है तथा चौथी इकाई के उत्पादन पर MC निम्नतम (60) हो जाती है। इसके बाद उत्पादन बढ़ने पर कुल लागत में वृद्धि बढ़ती दर पर होती है, अर्थात् MC बढ़ती जाती है तथा 10 वीं इकाई पर यह 150 रु० हो जाती है।

तालिका 6 के आधार पर MC को वक्र के रूप में भी दर्शाया जा सकता है। वस्तुतः MC कुल लागत वक्र का ढाल $\frac{(\Delta TC)}{(\Delta Q)}$ ही होती है। इनको रेखाचित्र 6 द्वारा दर्शाया गया है।

चित्र 6 के A भाग मे कुल लागत वक्र दर्शाया गया है जिसका ढाल $\frac{(\Delta TC)}{(\Delta Q)}$ जो स्पर्श रेखा से प्रकट होता है, MC को बता रहा है। उत्पादन के Q स्तर पर Q_1 की अपेक्षा अधिक ढाल है जो व्यक्त करता है कि Q_1 पर MC_1, Q की MC से अधिक है। अर्थात् ज्यों उत्पादन बढ़ता है तो प्रारम्भ में MC गिरती चली जाती है। जैसा कि चित्र 6 के भाग B में दर्शाया गया है। उत्पादन में और वृद्धि होने पर MC अपने निम्नतम बिन्दु को प्राप्त करके बढ़ती चली जाती है।

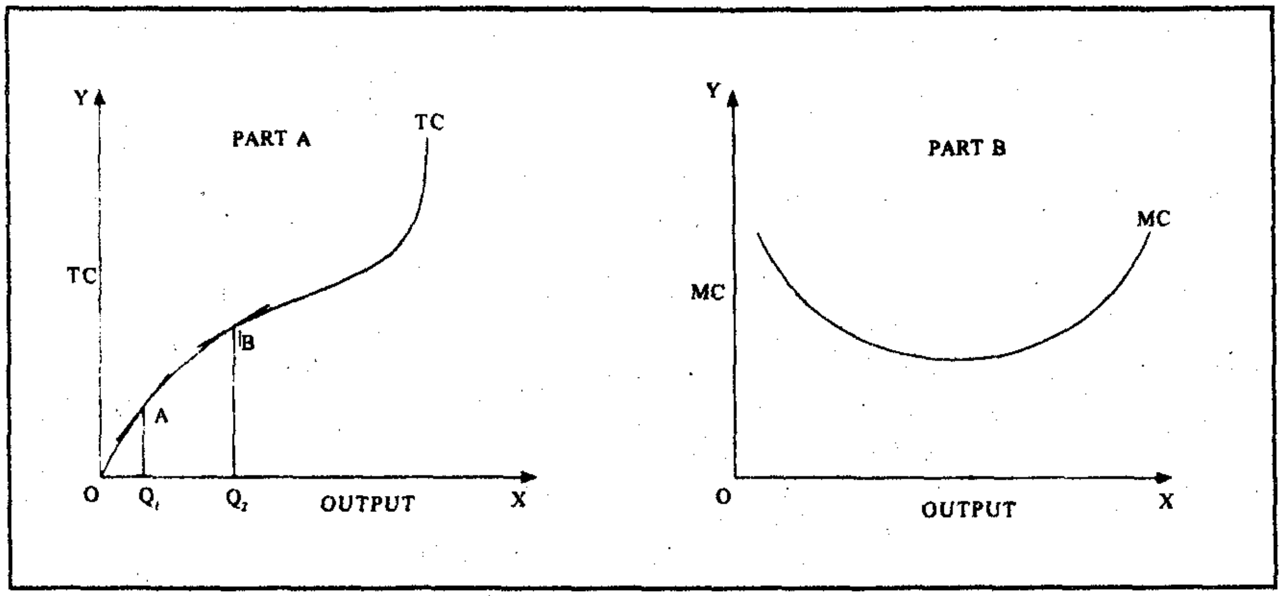

चित्र 6

सीमान्त लागत की आकृति भी अंग्रेजी के अक्षर 'U' आकार की होती है। MC वक्र U आकार का क्यों होता है? इसके U आकार के होने के वही कारण हैं जो अल्पकाल में AC या ATC वक्र के U आकार के होने के हैं जैसा कि तालिक 6 से भी स्पष्ट है।

AC या ATC तथा MC में सम्बन्ध
(Relation between AC or ATC and MC)

AC को अल्पकाल में ATC (AFC + AVC) भी कहा जाता है। AC तथा MC के मध्य गहरा सम्बन्ध पाया गया जाता है। इन दोनों में सम्बन्ध गणितीय या तकनीकी (technical) किस्म का सम्बन्ध है। वस्तु कीमत निर्धारण (Product pricing) तथा उत्पादन निर्धारण में इस सम्बन्ध का विशेष महत्त्व है। AC तथा MC के मुख्य सम्बन्ध निम्नलिखित हैं:

1. **AC तथा MC दोनों की गणना TC से की जाती है।**
(Both AC and MC are calculated on the basis of TC)

एक फर्म की औसत लागत (AC) की गणना उस फर्म की कुल लागत (TC) को कुल उत्पादन (Q) से भाग देकर ज्ञात की जाती है:

$$AC = \frac{TC}{Q}$$

इसी प्रकार MC की गणना भी TC के आधार पर की जाती है:

$$MC = \frac{\Delta TC}{\Delta Q}$$

or $MC = TC_n - TC_{n-1}$

अतः हम कह सकते हैं कि AC तथा MC में गहरा सम्बन्ध पाया जाता है क्योंकि दोनों ही TC के आधार पर निकाली जाती है। अन्य शब्दों में दोनों की गण का आधार एक है।

2. **AC के घटने तक MC हमेशा AC से कम रहती है (When AC falls MC is les than AC)**—प्रारम्भ में उत्पादन में वृद्धि करने पर AC गिरती जाती है जो AC को भी नीचे गिरती है। MC की गिरने की दर AC कि गिरने की दर से अधिक होती है। इसी कारण MC वक्र गिरते समय AC वक्र के नीचे होता है। इसका यह सम्बन्ध तालिका 7 तथा चित्र 7 की सहायता से स्पष्ट किया गया है।

तालिका 6 : MC तथा AC का सम्बन्ध

Output	TC	MC	AC
0	30	—	—
1	70	40	70
2	100	30	50
3	120	20	30
4	150	30	37.5
5	190	40	38
6	240	50	40

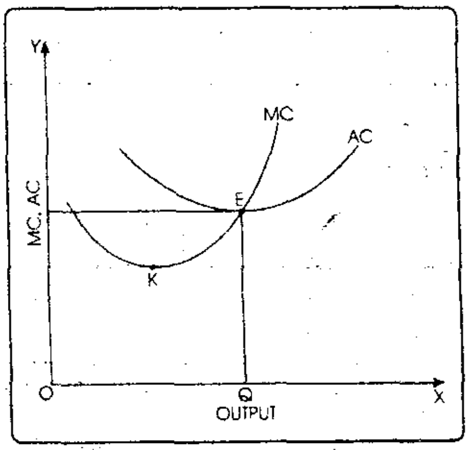

चित्र 7

किसी फर्म की काल्पनिक तालिका 7 से स्पष्ट होता है कि अल्पकाल में जब कोई फर्म उत्पादन बढ़ाती है तो MC प्रारम्भ में AC से कम रहती है। जैसे उत्पादन की प्रथम इकाई पर MC = 40 तथा AC = 70, दूसरी इकाई पर MC = 30 तथा AC = 50 है। चौथी इकाई तक यही स्थिति बनी रहती है। इसका कारण बढ़ते प्रतिफल का नियम है। इस तथ्य को चित्र 7 की सहायता से भी व्यक्त किया जा सकता है (तालिका 7 के आधार पर विद्यार्थी स्वयं AC तथा MC का चित्र बनाये)

चित्र 7 से स्पष्ट है कि उत्पादन के OQ स्तर तक MC<AC है। MC वक्र के K बिन्दु तक MC तथा A दोनों गिर रही है। K बिन्दु से MC बढ़ना शुरू करती है परन्तु AC फिर भी गिर रही है। AC गिरती है जब तक MC बढ़ कर AC के बराबर नहीं हो जाती जहाँ AC का निम्नतम बिन्दु भी होता है।

3. **MC हमेशा AC के निम्नतम बिन्दु पर काटती है (MC always cuts at the minimum of AC)**—उत्पादन के बढ़ाने पर फर्म की MC हमेशा AC निम्नतम बिन्दु के समान होकर AC से अधिक हो जाती है। इस तथ्य को तालिका 7 तथा चित्र 7 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र में 7 में MC वक्र AC वक्र के निम्नतम बिन्दु E पर काटकर बढ़ती है तथा AC को भी पार कर जाती है। यह इनका तकनीकी सम्बन्ध है।

4. **AC के बढ़ने पर MC हमेशा AC से अधिक होती है। (When AC rises MC is always above AC)**—उत्पादन के बढ़ते रहने पर जब फर्म की MC औसत लागत के निम्नतम बिन्दु को काट कर तेजी से बढ़ती है तो यह AC से

अधिक हो जाती है तथा AC को भी अपने साथ ऊपर खींच ले जाती है। इस तथ्य की तालिका 7 तथा चित्र 7 से स्पष्ट किया जा सकता है। दोनों में ही स्पष्ट है कि जब AC बढ़ती है तो AC हमेशा MC से कम या MC>AC होती. है।

5. **जब AC स्थिर होती है तो यह MC के बराबर रहती है। (When AC is constant it remains equal to MC)**— इन दोनों में एक प्रकार का सम्बन्ध यह भी है कि जब AC स्थिर होती है तो यह MC के समान बनी रहती है। यह तालिका 8 तथा चित्र 8 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है।

तालिका 7

Output	TC	MC	AC
1	40	40	40.
2	80	40	40
3	120	40	40
4	160	40	40

जब उत्पादन में लम्बे समय तक समान प्रतिफल का नियम लागू होता है AC तथा MC समान बनी रहती है जैसे कि तालिका 8 तथा चित्र 8 से स्पष्ट हो रहा है।

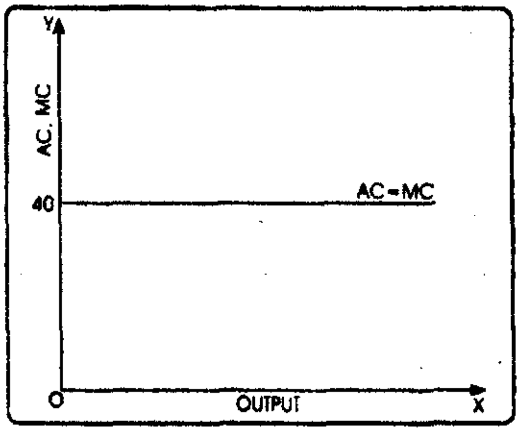

चित्र 8

6. **AC, MC तथा उत्पादन के नियम** (AC, MC and Laws of Returns): उत्पादन के नियमों के आधार पर AC तथा MC का सम्बन्ध और अधिक स्पष्ट निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

(क) ***बढ़ते प्रतिफल का नियम या घटती लागत का नियम*** (Law of increasing returns or Law of diminishing cost)—जब किसी फर्म में बढ़ते प्रतिफल या घटते प्रतिफल या घटती लागत का नियम लागू हो रहा होता है तो MC तथा AC दोनों कम होती चली जाती हैं तथा MC हमेशा AC से कम होती है जैसा चित्र 9 से स्पष्ट है। AC & MC चित्र 9 में AC तथा MC वक्र नीचे गिरे रहे हैं। MC हमेशा AC से कम होती जब AC गिर रही होती है। MC की गिरने की दर AC के गिरने की दर से अधिक (दुगनी) होती है।

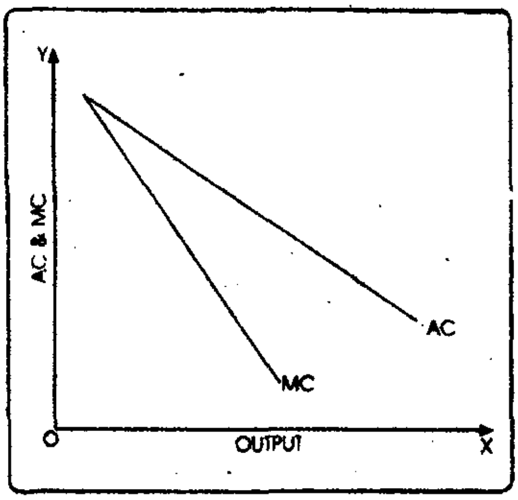

चित्र 9

(ख) ***घटते प्रतिफल या बढ़ती लागत का नियम*** (Law of Diminishing Returns of Increasing Cost)—इस नियम के अन्तर्गत जब फर्म अपना उत्पादन बढ़ाती है तो AC तथा MC दोनों बढ़ती चली जाती है। इस अवस्था में MC हमेशा AC से अधिक होती है (MC>AC)। इन दोनों का यह सम्बन्ध चित्र 10 की सहायता से स्पष्ट किया गया है। चित्र 10 में MC तथा AC वक्रों से स्पष्ट होता है कि जब AC बढ़ रही होती है तो MC हमेशा इससे अधिक होती है। इसका कारण घटते प्रतिफल का नियम है।

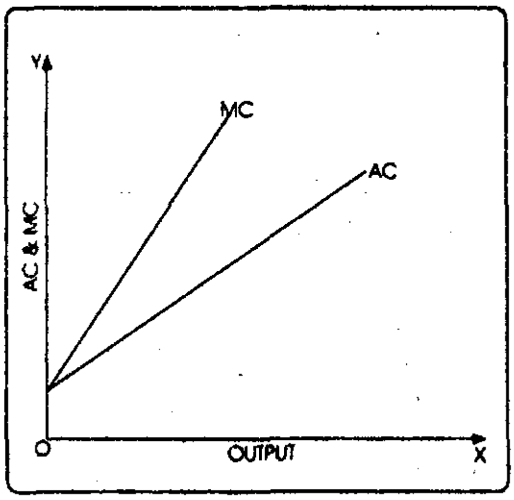

चित्र 10

(ग) **समान प्रतिफल या समान लागत का नियम** (Law of Constant Returns or Constant Costs): यदि कोई फर्म समान प्रतिफल के नियम से गुजर रही होती है तो स्थिति में AC हमेशा MC के बराबर होती है, जैसा कि चित्र 11 में स्पष्ट किया गया है। चित्र 11 में उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर MC = AC रहती हैं तथा दोनों वक्र एक दूसरे में समाये होते हैं।

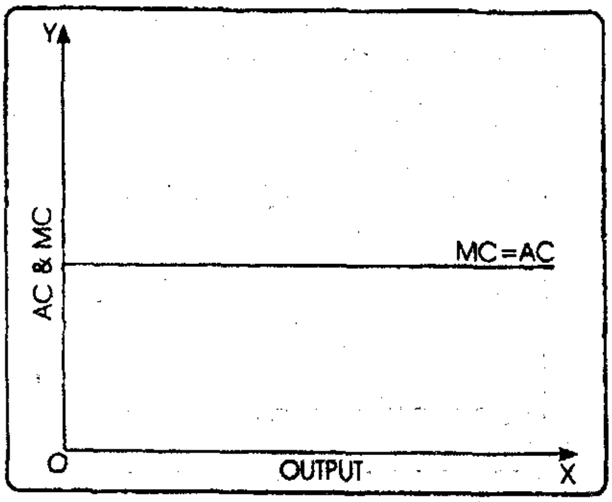

चित्र 11

अल्पकाल में विभिन्न लागत वक्रों में सम्बन्ध
(Relationship among Different Cost Curves in the Short Run)

अल्पकाल मे किसी फर्म की AFC, AVC, AC तथा MC वक्रों के मध्य सम्बन्ध चित्र 12 की सहायता से समझा जा सकता है। अल्पकाल में AC या ATC हमेशा AFC तथा AVC का जोड़ा होता है। उत्पादन में परिवर्तन करने से AC में परिवर्तन AFC तथा AVC में परिवर्तनों का परिणाम होता है। MC हमेशा AVC तथा AC के निम्नतम बिन्दुओ को काटकर ऊपर चढ़ती है जैसा कि चित्र 12 में स्पष्ट किया गया है:

चित्र 12 में स्पष्ट है कि जैसे–जैसे उत्पादन बढ़ता है AFC वक्र नीचे गिरता चल जाता है। इसका कारण कुल बन्धी लागत (TFC) का स्थिर रहना है। इसमें AFC $\left(\frac{TFC}{Q}\right)$ उत्पादन (Q) में वृद्धि के साथ गिरती जाती है।

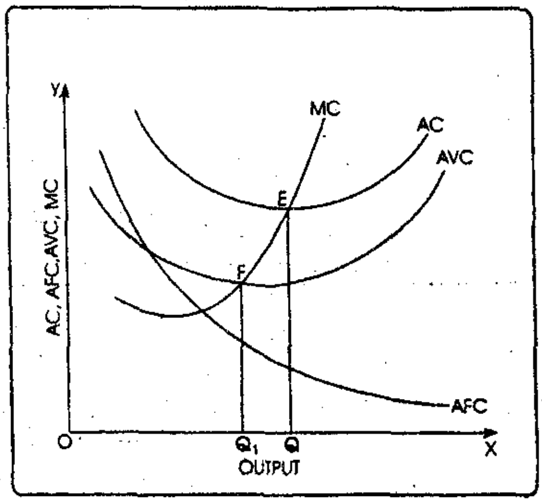

चित्र 12

AVC वक्र उत्पादन में वृद्धि होने पर उत्पादन के नियमों के अनुसार पहले गिरती है तथा निम्नतम बिन्दु (चित्र में F) प्राप्त करके बढ़ना शुरू कर देती है।

AC क्योंकि AVC तथा AFC का योग होती है इसलिए प्रारम्भ में AVC तथा AFC दोनों गिरती है तथा AC को नीचे गिराती रहती है। जिसका विशुद्ध प्रभाव AC पर यह पड़ता है कि Q उत्पादन स्तर तक AC गिरती रहती है। Q उत्पादन पर AC का निम्नतम बिन्दु E प्राप्त हो जाता है। ज्यों उत्पादन Q से अधिक बढ़ाया जाता है AVC में तेज़ी से हो रही वृद्धि AFC में निरन्तर गिरावट से अधिक होती है तथा इस कारण AC बढ़ने लगती है। MC वक्र हमेशा AVC तथा AC के निम्नतम बिन्दुओं को, चित्र में क्रमशः F तथा E पर काट कर ऊपर बढ़ता जाता है।

ध्यान देने की बात है उत्पादन के Q से बढ़ने पर AC तथा AVC का अन्तर AFC के बराबर होता है जो निरन्तर गिरती जाती है।

परम्परावादी सिद्धान्त की दीर्घकालीन लागतें (Long-Run costs of the Traditional Theory)

दीर्घकाल में सभी उत्पादक के साधन परिवर्तनशील बन जाते हैं। जब कभी हम किसी साधन की मात्रा में वृद्धि नहीं कर पाते तो वह अल्पकाल की समय अवधि कही जाती है। परन्तु यदि उत्पादन में वृद्धि करने के लिए उस स्थिर साधन में भी वृद्धि कर सकते है तो हम अल्पकाल की अवस्था से दीर्घकाल की अवस्था में प्रवेश कर जाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि दीर्घकालीन लागत एक योजन वक्र (Planning Curve) होता है क्योंकि यह भविष्य में उद्यमी का मार्ग दर्शन करती है कि वह अपने उत्पादक में वृद्धि की योजन कैसे बनाये? अर्थात् वह उत्पादन में वृद्धि कुछ साधनों को स्थिर रख कर करे या सभी साधना की मात्रा में वृद्धि करके उत्पादन में वृद्धि करे।

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र या लिफाफा वक्र (Long Average cost curve or Envelop curve)

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (Long Average cost curve of Envelop curve)

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) अल्पकालीन औसत लागत वक्रों से ही ज्ञात की जाती है। LAC का प्रत्येक बिन्दु अल्पकालीन औसत लागत वक्र (SAC) से सम्बन्धित होता है क्योंकि यह इनको स्पर्श कर रहा है। LAC को SAC वक्रों की सहायता से कैसे ज्ञात किया जाता है? इसकी विस्तृत व्याख्या निम्न प्रकार से की गई है :

मान लीजिए फर्म के समाने उत्पादन की तीन विधियां (three methods of production) उपलब्ध है। प्रत्येक विधि के अपने भिनन–भिन्न आकार वाले साज–सज्जा (Plant size) या प्लांट हैं जिनको हम एक छोटा प्लांट, मध्यम प्लांट तथा बड़ा प्लांट का नाम दे सकते हैं। उत्पादक वस्तु की मांग के अनुसार इन प्लाटों का प्रयोग इस प्रकार करता है ताकि उत्पादन की कम से कम औसत लागत हो सके। इसकी व्याख्या चित्र 13 में की गई है :

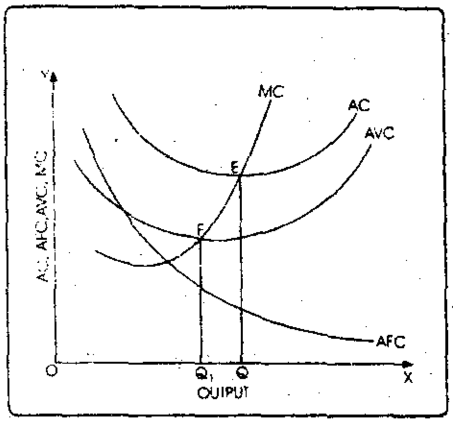

चित्र 13

चित्र 13 में छोटे प्लांट की औसत लागत वक्र को SAC_1, माध्यम प्लांट की औसत लागत वक्र को SAC_2 तथा बड़े प्लांट की लागत को SAC_3 द्वारा दर्शाया गया है। यदि फर्म X_1 मात्रा का उत्पादन करती है तो वह छोटे प्लांट के साथ कम से कम लागतों पर उत्पादन करेगी।

X_1' उत्पादन स्तर से अधिक उत्पादन करने पर छोटे प्लांट पर उत्पादन करने से औसत लागत बढ़ने लग जाती है।

यदि उत्पादन की मांग बढ़ कर X''_1 तक पहुंच जाती है। तो फर्म या तो छोटे प्लांट के साथ उत्पादन करना जारी रखे या मध्यम प्लांट स्थापित करके इसके साथ उत्पादन करे। दोनों प्लाटों की SAC यहां समान हैं। यहां फर्म को निर्णय करना होता है कि वह अब छोटे प्लांट (SAC_1) पर उत्पादन करे या मध्यम प्लांट (SAC_2) की स्थापना करके इस पर उत्पादन करे। इसका यह निर्णय लागतों के आधार पर नहीं हो सकता बल्कि इस आधार पर किया जाता है कि फर्म के उत्पादन की भविष्य में मांग बढ़ने की आशा है या नहीं। यदि फर्म आशा करती है कि भविष्य में मांग X''_1 से अधिक होगी तो फर्म मध्यम प्लांट (SAC_2) उत्पादन करेगी। इसके विपरीत यदि भविष्य में मांग के बढ़ने की कोई आशा नहीं है तो वह छोटे प्लांट (SAC_1) पर ही उत्पादन करती रहेगी। क्योंकि यदि मांग बढ़ने की आशा है तो वह अधिक उत्पादन जैसे X_2 मध्यम प्लांट के साथ कम से कम लागत पर उत्पादन कर सकेगी।

जब फर्म X''_2 उत्पादन स्तर पर पहुंचती है तो निर्णय करते समय इसी प्रकार का विचार किया जाता है। यदि फर्म को आशा है कि भविष्य में मांग X''_2 स्तर पर स्थिर रहेगी तो वह मध्यम प्लांट पर उत्पादन जारी रखेगी तथा बड़ा प्लांट नहीं लगायेगी।

अब यदि हम तीन प्लांट की कल्पना का त्याग करें और हम मानें कि फर्म के सामने विभिन्न आकार वाले असंख्य प्लांट हैं तो विभिन्न प्लाटों की SAC अनेक स्थानों पर एक दूसरे को काट रही होती हैं जो फर्म को प्लाटों के चयन सम्बन्धी निर्णय लेने के लिए बाध्य करती है। यदि प्लाटों की संख्या बहुत अधिक या असंख्य हो जाती है तो हम सभी प्लांटो को घेरती हुई निरन्तर वक्र प्राप्त कर सकते हैं जो फर्म की योजना LAC वक्र कहलाती है।

LAC का प्रत्येक बिन्दु सम्बन्धित उत्पादन स्तर को कम से कम लागत पर उत्पादित होते दर्शाता है। इस वक्र को योजना वक्र इसी कारण कहा जाता है कि इस वक्र के आधार पर ही फर्म यह निर्णय करती है कि किस आकार का प्लांट स्थापित किया जाये ताकि कम से कम लागत पर उत्पादन किया जा सके। इसको चित्र 14 की सहायता से दर्शाया जा सकता है।

चित्र 14 में LAC वक्र निकाला गया है जो प्रत्येक अल्पकालीन औसत लागत वक्र (SAC) को किसी न किसी बिन्दु पर स्पर्श कर रहा है। इसी कारण LAC को लिफाफा वक्र (Envelop curve) भी कहा जाता है। OX उत्पादन पर LAC तथा SAC का निम्नतम बिन्दु है। OX से कम उत्पादन पर LAC अल्पकालीन औसत लागत वक्रों के निम्नतम बिन्दु से बाई ओर अर्थात् नकारात्मक भाग में स्पर्श करती है। इसके विपरीत OX उत्पादन के स्तर से अधिक उत्पादन स्तरों पर LAC हमेशा SACs के निम्नतम बिन्दुओं के दाई ओर अर्थात् उनके सकारात्मक भाग में स्पर्श करती है। (LAC while falling touches at the left of

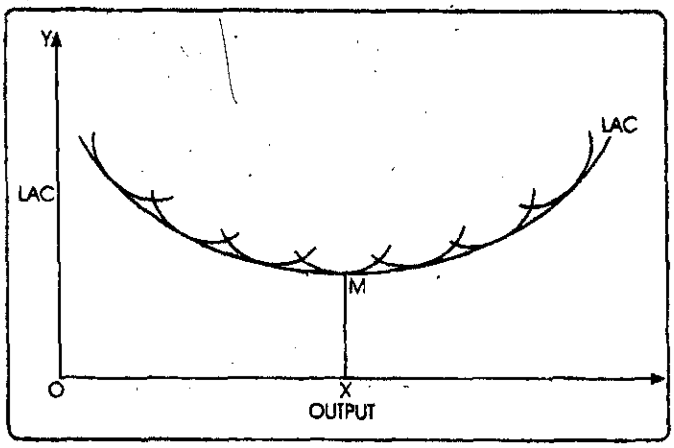

चित्र 14

the minimum of SACs when LAC is rising. It is only at the minimum of LAC that it touches the minimum of SAC which shows the optimum size of the plant.)

विभिन्न नाम
(Different Names)

LAC को निम्नलिखित दो नामों से पुकारा जाता है:

1. **लिफाफा वक्र** (Envelop curve)—LAC हमेशा SACs को पूर्ण रूप से ढके (Cover) होती है इसी कारण इसको लिफाफा वक्र (envelop curve) कहा जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि SAC कभी भी LAC से अधिक नहीं हो सकती है।

2. **योजना वक्र** (Planning curve)—LAC को योजना वक्र के नाम से भी जाना जाता है। LAC के आधार पर ही फर्म योजना बनाती है कि वह किस आकार का प्लांट लगाये।

LAC अंग्रेजी के U आकार की क्यों होती है?
(Why is LAC U shaped?)

1. **अविभाजन की बचतें** (Economics of invisibility)— उत्पादन में कुछ साधन अविभाज्य (indivisible) होते हैं। अर्थात् कुछ ऐस साधन होते हैं जिनकी फर्म को पूर्ण सेवाएं खरीदनी पड़ती हैं चाहे फर्म कम उत्पादन करे या ज्यादा। जैसे मैनेजर को पूरी तनख्वा देनी पड़ती है, उत्पादन चाहे कम किया जाये या अधिक। इसी प्रकार बिल्डिंग का पूरा किराया। देना पड़ता है चाहे उत्पादन कम किया जाये या अधिक। जब उत्पादन बढ़ता है तो इस साधनों की सेवाओं का पूर्ण उपयोग होने लगता है तथा प्रति इकाई लागत या LAC गिरती जाती है।

2. **पैमाने की हानियां** (Diseconomies of scale)— जब फर्म उत्पादन के पैमाने को बढ़ाती जाती है तो पैमाने की हानियां (diseconomies of scale) उत्पन्न हो जाती हैं। जब फर्म की बचतें तथा ये हानियां समान होती हैं तो LAC स्थिर हो जाती है। परन्तु जब फर्म उत्पादन के पैमाने को बढ़ाती जाती है तो पैमाने की हानियां बचतों से अधिक हो जाती हैं जो LAC को ऊपर उठाती जाती हैं।

पैमाने की हानियां उत्पादन के अधिक बढ़ जाने के कारण बढ़ती जाती हैं। जैसे बड़े कार्य का ठीक प्रबन्ध न हो पाना, सही समय पर निर्णय न कर पाना, यात्रा व्यय, संचार आदि बिलों का बढ़ना। इन कारणों से LAC ऊपर जाती है तथा इसकी आकृति U आकार की होती जाती है।

3. **पैमाने के प्रतिफल के नियम** (Law of Returns to scale)— उत्पादन में पैमाने के प्रतिफल के नियमों के लागू होने के कारण भी LAC की आकृति U आकार की बनती है। प्रारम्भ में जब कोई फर्म उत्पादन का पैमाना बढ़ाती है तो बढ़ते प्रतिफल या घटती लागत का नियम लागू होता है। इसके बाद उत्पादन का पैमाना बढ़ाने पर समान प्रतिफल या समान लागत का नियम लागू होता है। अन्त में जब उत्पादन का पैमाना अधिक बड़ा हो जाता है तो घटते प्रतिफल या बढ़ती लागत का नियम लागू होता है। अतः इन नियमों के कारण ही LAC की आकृति U आकार की बन जाती है।

दीर्घकालीन तथा अल्पकालीन लागत वक्रों में अन्तर (Difference between Long Run Average cost and Short Run Average Cost Curves): इन दोनों प्रकार की लागत वक्रों के मध्य अन्तर चित्र 15 के माध्यम से स्पष्ट किया जाता है। इन दोनों में निम्न अन्तर देखा जा सकता है।

1. SAC का सम्बन्ध अल्पकाल से तथा LAC का सम्बन्ध दीर्घ काल से है।

2. SAC वक्र उत्पादन के केवल एक ही प्लांट की औसत लागत को प्रकट करती है जबकि LAC वक्र उत्पादन के भिन्न प्लांटों की औसत लागतों को प्रकट करती है।

3. SAC वक्र LAC वक्र की तरह U आकार की होती है, परन्तु दोनों में अन्तर यह है कि LAC अपेक्षाकृत अधिक चपटी होती है इसका अर्थ यह होता है कि अल्पकाल में औसत लागतों में वृद्धि या कमी की दर दीर्घकाल की तुलना में अधिक होती है क्योंकि SAC वक्र पर स्थिर साधनों का प्रभाव होता है जो LAC पर नहीं होता है।

4. LAC कभी भी SAC से अधिक नहीं हो सकती है। LAC हमेशा प्रत्येक SAC को स्पर्श कर रही होती है।

5. LAC वक्र अपने निम्नतम बिन्दु पर ही SAC वक्र के निम्नतम बिन्दु पर स्पर्श करती है जैसे चित्र 15 तथा चित्र 14 द्वारा दर्शाया गया है। LAC के अन्य बिन्दुओं पर SAC का निम्नतम बिन्दु नहीं होता है।

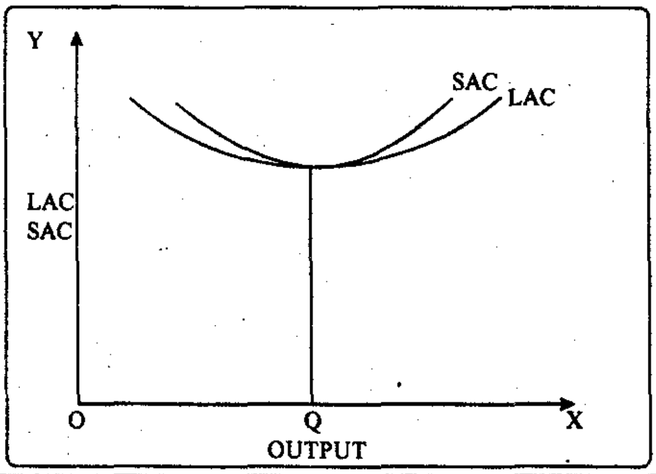

चित्र 15

दीर्घकालीन सीमांत लागत (Long Run Marginal Costs): दीर्घकाल में किसी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई उत्पादित करने की जो लागत आती है वह दीर्घकालीन सीमांत लागत कहलाती है। अन्य शब्दों में दीर्घकाल में किसी वस्तु की एक अधिक या एक कम इकाई उत्पादित करने से कुल लागत में जो अन्तर आता है उसे दीर्घकालीन सीमांत लागत कहा जाता है। ध्यान रहे दीर्घकाल में सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं।

दीर्घकालीन सीमांत लागत तथा अल्पकालीन सीमांत लागत में सम्बन्ध (Relation between Long Run and Short Run Marginal Cost): दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र (LMC) अल्पकालीन सीमान्त लागत वक्रों (SMSs) से ही निकाली जाती है, परन्तु LMC कभी भी SMCs को घेरे हुए नहीं होती है। इन दोनों का सम्बन्ध चित्र 16 की सहायता से प्रकट किया जा सकता है:

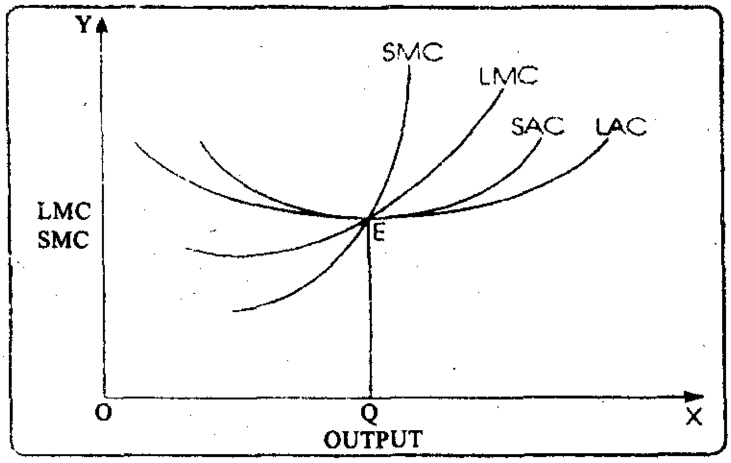

चित्र 16

जब कोई फर्म दीर्घकाल में इष्ठत्तम स्तर पर या कम से कम LAC पर उत्पादन कर रही होती है तो वह अल्पकाल में भी कम से कम SAC पर उत्पादन कर रही होती है। अर्थात् इस अवस्था में दोनों के निम्नतम बिन्दु स्पर्श कर रहे होते हैं जैसे चित्र से भी स्पष्ट है।

इष्ठत्तम उत्पादन के स्तर OQ पर चित्र में E बिन्दु पर SMC = LMC है। यदि उत्पादन OQ से कम कर दिया जाता है तो SMC < LMC होगी। इसके विपरीत यदि उत्पादन OQ से बढ़ा दिया जाता है तो SMC > LMC हो जाती है जैसे चित्र से स्पष्ट हो रहा है। इष्ठत्तम उत्पादन के स्तर E बिन्दु पर LMC = SMC = LAC = SAC होती हैं।

UNIT-II

अध्याय - 16

पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के अन्तर्गत फर्म तथा उद्योग का सन्तुलन तथा कीमत प्रक्रिया

(Pricing Process and Equilibrium of Firm and Industry Under Perfect Competition and Monopoly)

Equilibrium of Firm and Industry under Perfect Competition

पूर्ण प्रतियोगिता अथवा पूर्ण बाजार वह बाजार होता है जिसमें किसी वस्तु को बेचने तथा खरीदने वाली फर्में बहुत अधिक संख्या में होती हैं। सारे बाजार में वस्तु की केवल एक ही कीमत पाई जाती है। व्यक्तिगत रूप से कोई भी उत्पादक इतना बड़ा नहीं होता कि वह कीमत को प्रभावित कर सके।

श्रीमती जान रोबिन्सन (Mrs. Joan Robinson) के अनुसार "पूर्ण प्रतियोगिता तब पायी जाती है जब प्रत्येक उत्पादक के उत्पादन के लिए मांग पूर्णतः मूल्य सापेक्ष हो।" (Perfect Competition prevails when the demand for the output of such producer is perfectly elastic.)

Assumptions :

1. Large number of buyers and sellers
2. Homogeneous products
3. Free entry and exit of firms
4. Perfect knowledge
5. Perfect mobility in goods market and factor market
6. Lack of transportation cost
7. Firm is a price taker not amount
8. No government regulations
9. There were no advertising cost in perfect competition

Equilibrium and meaning of firm

फर्म वह इकाई हैं जो लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से उत्पादन करती है इसका उद्देश्य लाभ को अधिकतम करना होता है।" एक फर्म उस समय सन्तुलन की स्थिति में होती है जब वह अपने सन्तुलन उत्पादन की मात्रा से सन्तुष्ट होती है। उत्पादन में कमी करने की या वृद्धि करने की इसमें कोई भी प्रवृति नहीं पाई जाती है। यह अवस्था उस समय होगी जब या तो फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त हो रहे होगें या फर्म को होने वाली हानि न्यूनतम होगी।

(Profit) $\rightarrow \pi = R - C$

$$\frac{d\pi}{dx} = \frac{dR}{dx} - \frac{dc}{dx}$$ — (Ist order necessary condition)

$$\frac{d^2\pi}{dx^2} = \frac{d^2R}{dx^2} - \frac{d^2C}{dx^2} < 0$$ — (2nd order condition sufficient)

पूर्व प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म के सन्तुलन (अर्थात् अधिकतम लाभ की स्थिति) की अवस्था निम्न दो शर्तों पर आधारित है :

(i) MC = MR

(ii) MC must cut the MR curve from below

Determination of short run equilibrium of the firm :

अल्पकाल में तीन स्थितियां हो सकती है जिन्हें निम्न प्रकार को रेखांकित किया जा सकता है।

A. **Supernormal Profit :**

एक फर्म उस समय सन्तुलन की स्थिति में होती है जब वह इतना उत्पादन करती है कि सीमान्त आय तथा सीमान्त लागत बराबर हो जाते हैं (MC = MR) तथा सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आय वक्र का नीचे से काटता है। फर्म को सन्तुलन की स्थिति में असामान्य लाभ उस समय प्राप्त होते हैं जब फर्म द्वारा प्राप्त औसत आय (AR) फर्म की औसत लागत (AC) से अधिक होती है। इसको निम्न चित्र द्वारा प्रकट किया जा सकता है।

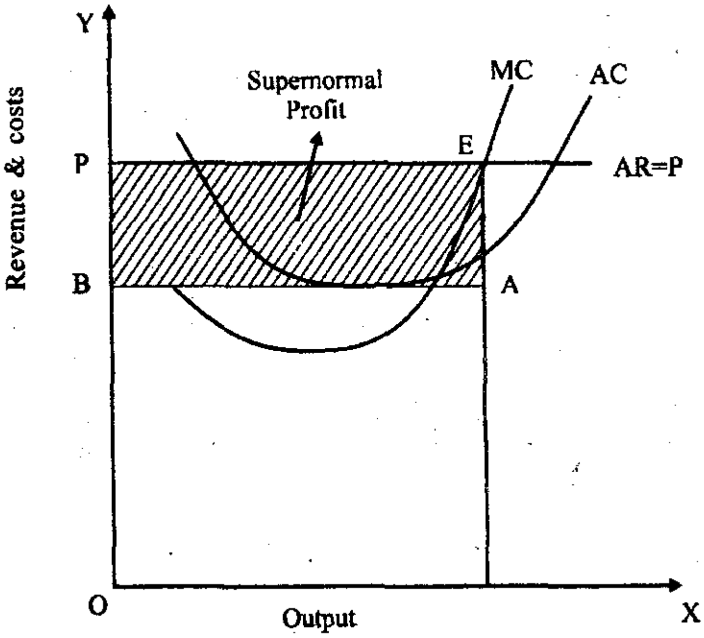

चित्र- 1

चित्र - 1 में OX अक्ष पर वस्तु की मात्रा व OY अक्ष पर आय और लागत प्रकट की गई है। MC सीमान्त लागत वक्र और AC औसत लागत वक्र है। TPP औसत आय और सीमान्त आय वक्र हैं क्योंकि पूर्व प्रतियोगिता में AR = MR होता है। मान लो कि उद्योग द्वारा OP कीमत निर्धारित की गई है। इस कीमत स्तर पर फर्म का सन्तुलन बिन्दु E होगा जिस पर सीमान्त लागत तथा सीमान्त आय बराबर है तथा सीमान्त लगात वक्र सीमान्त आय वक्र को नीचे से काट रही है।

अतः फर्म E बिन्दु पर सन्तुलन में होगी तथा वह OM मात्रा का उत्पादन करेगी तथा EABP असमान्य लाभ प्राप्त करेगी।

B. **Normal Profit :**

एक फर्म सन्तुलन की अवस्था में सामान्य लाभ उस समय प्राप्त करेगी जब सन्तुलन उत्पादन की औसत लागत (AC) और उद्योग द्वारा निर्धारित कीमत (AR) बराबर (AC=AR) जो जाते हैं। इसको निम्न चित्र की सहायता से स्पष्ट कर सकते हैं।

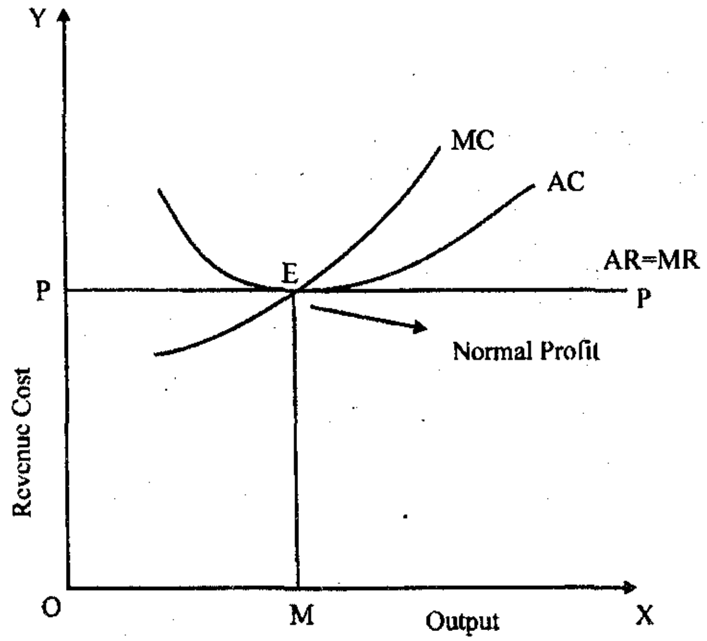

चित्र

चित्र से ज्ञात होता है कि उद्योग द्वारा निर्धारित OP कीमत पर फर्म बिन्दु E पर सन्तुलन की स्थिति में होगी तथा उत्पादन की मात्रा OM होगी क्योंकि E पर सीमान्त लागत तथा सीमान्त आय बराबर है तथा सीमान्त आय वक्र और औसत आय वक्र को नीचे से काट रही है। अतः फर्म को सन्तुलन उत्पादन OM पर केवल Normal profit प्राप्त होगें, क्योंकि उत्पादन की OM मात्रा पर AC = AR = MC = MR = (EM) अर्थात यहां पर लागत व कीमत बराबर है।

C. **Minimum Loss :**

एक फर्म सन्तुलन की स्थिति में हानि उस समय आएगी जब सन्तुलन में उत्पादन की औसत लागत (AC) उद्योग द्वारा निर्धारित कीमत (AR) से अधिक हो। हानि की अवस्था में यदि अल्पकाल में उत्पादन बन्द भी कर दिया जाए तो भी फर्म बंधी लागतों का घाटा उठाती रहेगी। बंधी लागतों का घाटा न्यूनतम घाटा होता है, जो उसे अनिवार्य रूप से सहन करना पड़ता है।

यदि उत्पादन को ज़ारी रखने पर फर्म को AVC या उसे अधिक कीमत प्राप्त हो जाये तो फर्म उत्पादन ज़ारी रखना पसन्द करेगी। परन्तु यदि कीमत AVC से भी कम हो जाए तो फर्म उत्पादन बन्द करना (shut down) पसन्द करेगी, इसको निम्न चित्र के द्वारा दर्शाया जा सकता है –

उद्योग द्वारा OP कीमत निर्धारित की जाती है। इस कीमत पर फर्म बिन्दु E पर सन्तुलन में होगी। बिन्दु E पर सीमान्त आय तथा सीमान्त लागत बराबर है (MC = MR) तथा MC वक्र MR वक्र को नीचे से काट रहा है। अतः सन्तुलन बिन्दु E पर सन्तुलन उत्पादन ON AR = OP (= EN) । औसत लागत तथा प्रति इकाई हानि = AN - EN = AE होगी। अतः कुल हानि EABP होगी।

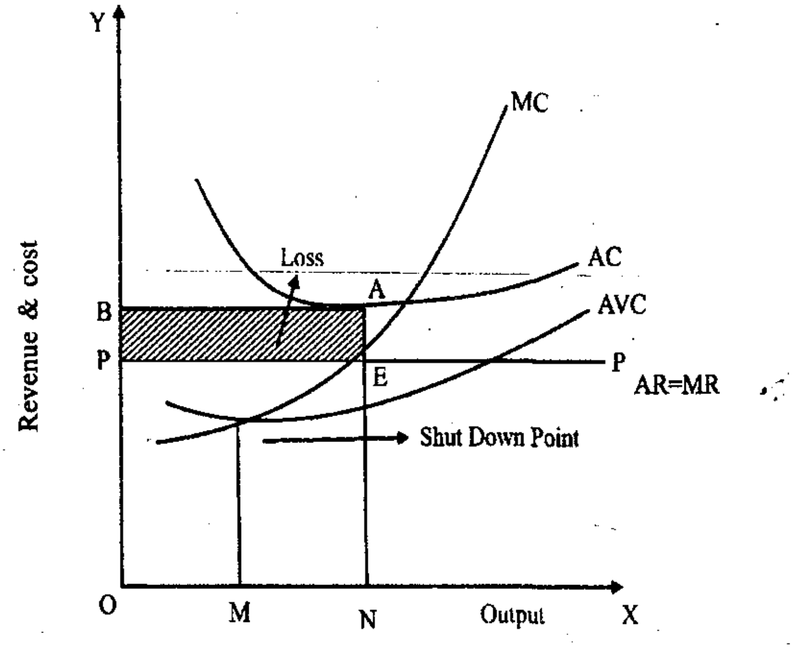

चित्र

Determination of Long Run Equilibrium if the Firm

दीर्घकाल में फर्मो के प्रवेश तथा उनके छोड़ने की स्वतन्त्रता होने के कारण पूर्ति इस तरह परिवर्तित हो जाती है कि अन्ततः कीमत औसत लागत के बराबर हो जाती है। सभी फर्मो को सामान्य लाभ प्राप्त होते है। इसे निम्न चित्र की सहायता से दर्शाया जा सकता है –

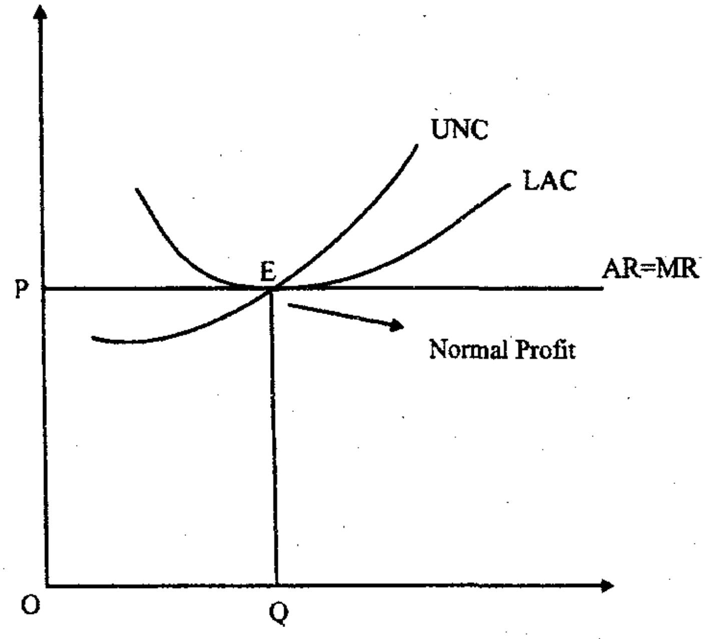

चित्र

चित्र से स्पष्ट है कि OP कीमत पर फर्म को केवल सामान्य लाभ ही मिल रहे हैं क्योंकि यहां कीमत = औसत आय अर्थात्

AR = AC

और AR = MC (ऐसा पूर्ण प्रतियोगिता में सदैव होता है)

MC = MR (सन्तुलन के लिए आवश्यक शर्त)

अतः दीर्घकाल में

कीमत या AR = AC = MR = MC

Meaning of the Equilibrium of the Industry

फर्मों के उस समूह को जो समरूप वस्तुओं का उत्पादन करती है। उद्योग कहा जाता है। उद्योग के सन्तुलन की प्रमुख दो शर्ते हैं :

1. **फर्मों की स्थिर संख्या :** उद्योग सन्तुलन में उस समय होगा जब उसकी फर्मों की संख्या स्थिर रहेगी। इस अवस्था में न तो कोई नई फर्म उद्योग में प्रवेश करेगी तथा न ही कोई पुरानी फर्म उद्योग छोड़कर जाएगी।

2. **सभी फर्मों का सन्तुलन में होना :** इसकी दूसरी शर्त यह है कि उद्योग की सभी वर्तमान फर्में सन्तुलन की अवस्था में होती हैं। फर्मों के उत्पादन बढ़ाने या कम करने की प्रवृति नहीं पाई जाती।

Short Run Equilibirum of Industry

अल्पकाल में उद्योग उस कीमत पर सन्तुलन में होगा जब उस द्वारा उत्पादित वस्तु की कुल पूर्ति और कुल मांग बराबर हो जाये। इस कीमत पर कुछ फर्में असामान्य लाभ कमा सकती हैं तथा कुछ फर्मों को हानि भी उठानी पड़ सकती है। इसे निम्न चित्र की सहायता से दर्शाया जा सकता है।

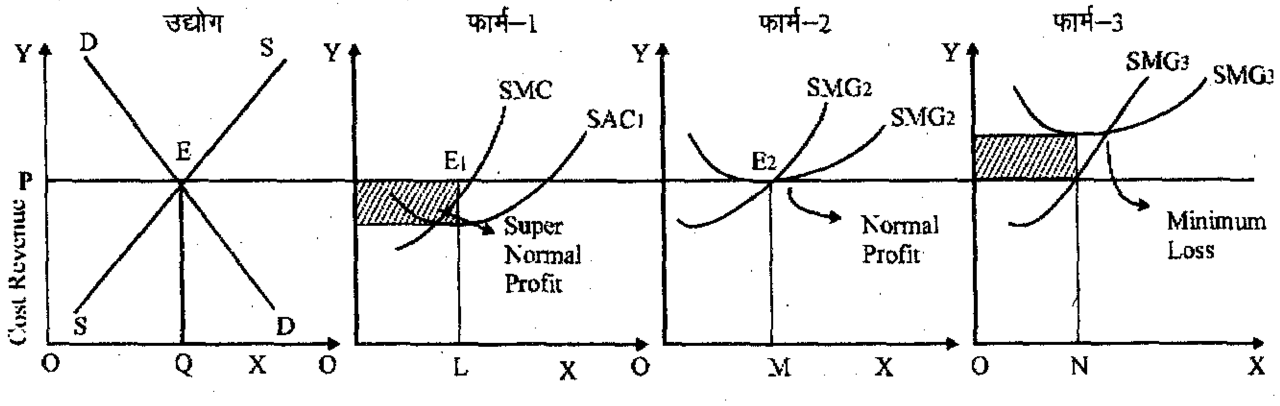

चित्र

चित्र में उद्योग 'E' बिन्दु पर सन्तुलन अवस्था में होगा। OP कीमत का निर्धारण होगा जिस पर उद्योग का कुल उत्पादन OQ होगा। इस कीमत पर फर्म -1 को असामान्य लाभ तथा फर्म-3 को हानि उठानी पड़ेगी। उद्योग का अल्पकालीन सन्तुलन अस्थायी होता है। फर्म -3 जैसी अन्य फर्में निरन्तर हानि उठाते रहने की अवस्था में एक समय के बाद उद्योग को छोड़ना आरम्भ कर देगी। इस प्रकार उत्पादन की मात्रा व फर्मों की संख्या में परिवर्तन आ जाएगा जिससे उद्योग सन्तुलन में नहीं रह पाएगा।

Long Period Equilibrium of Industry

दीर्घकाल में न्यूनतम औसत लागत के स्तर पर ही कीमत निर्धारित होती है। दीर्घ कालीन कीमत को सामान्य कीमत (Normal price) भी कहा जाता है, क्योंकि इस कीमत पर फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होते हैं। परन्तु उद्योग लागत भिन्न होती हैं। अब समस्या यह उत्पन्न होती है कि सामान्य कीमत को सबसे अधिक कुशल फर्म की न्यूनतम औसत लागत निर्धारित करेगी या फिर सीमान्त फर्म की न्यूनतम औसत लागत।

इसे निम्न चित्र की सहायता से दर्शाया जा सकता है –

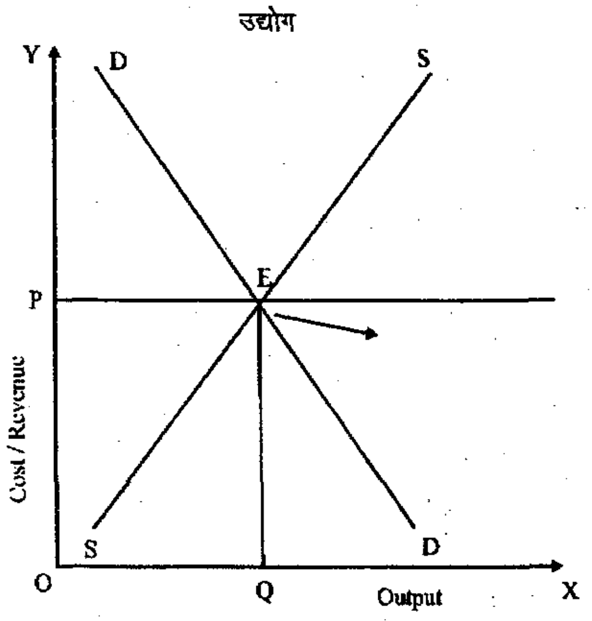

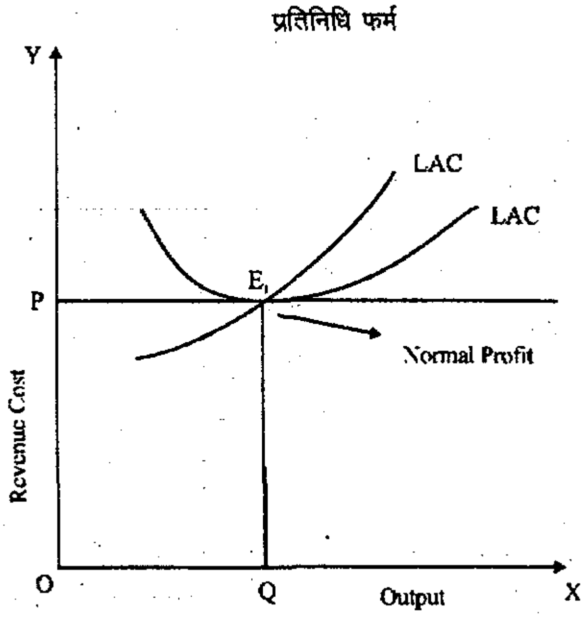

चित्र

चित्र के दायें भाग में प्रतिनिधि फर्म तथा बायें भाग में उद्योग के सन्तुलन को दिखाया गया है। चित्र से स्पष्ट होता है कि उद्योग का सन्तुलन 'E' बिन्दु पर होगा और सामान्य लाभ प्राप्त होगे। प्रतिनिधि फर्म का संतुलन E_1 बिंदू पर होगा। यहां फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त होंगे।

Q. Monopoly : Definition Demand and Revenue - Short run and Long-run Equilibrium.

Ans. Meaning of monopoly

Monopoly बाजार की वह अवस्था होती है जिसमें वस्तु का केवल एक ही विक्रेता होता है और वस्तु की पूर्ति पर उसका सम्पूर्ण नियन्त्रण होता है। इस बाजार में वस्तु का कोई निकट प्रतिस्थापन भी नहीं होता।

कोतस्वापनी के अनुसार, "एकाधिकार बाजार की एक ऐसी अवस्था होती है जिसमें एक विक्रेता होता है, जिसके द्वारा उत्पादित वस्तु का कोई निकट प्रतिस्थापन नहीं होता और उद्योग में नई फर्मों के प्रवेश पर प्रतिबन्ध होता है।" (monopoly is a market structure in which there is a single seller, there are no close substitutes for commodity it produces, there are barriers to entry.)

Characteristics or Assumptions

1. एकाधिकार में वस्तु विशेष का एक ही उत्पादक अथवा विक्रेता होता है।
2. एकाधिकार में उत्पाद का कोई स्थानापन्न नहीं होता।
3. एकाधिकार एक ऐसी स्थिति है जिसमें उद्योग ही फर्म और फर्म ही उद्योग होती है।
4. नयी फर्मों के प्रवेश पर प्रतिबन्ध होता है
5. एकाधिकारी का वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण होता है।
6. वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण अधिकार होने के कारण कीमत का निर्धारण फर्म स्वयं करती है।
7. फर्म को अपना माल बेचने के लिए विज्ञापन व्यय नहीं करना पड़ता।
8. एकाधिकारी दीर्घकाल में असामान्य लाभ कमाता है।

Demand and Revenue

एकाधिकारी का सीमान्त आगम उसकी वस्तु की कीमत से कम (MReP) होता है और सीमान्त आय वक्र मांग वक्र

अथवा औसत आय वक्र के नीचे रहता है। निम्नांकित रेखाचित्र में एकाधिकारी फर्म के मांग वक्र एवं सीमान्त आय वक्र को दर्शाया गया है –

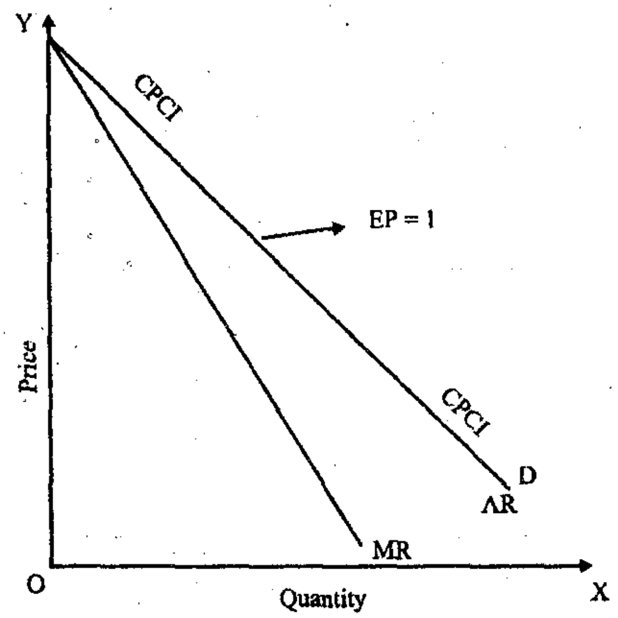

रेखाचित्र से स्पष्ट है कि एकाधिकारी के मांग वक्र के विभिन्न भागों में मांग की लोच के विभिन्न अंश पाये जाते हैं। जब एकाधिकारी का सीमान्त आगम शून्य होता है तब उसकी वस्तु की मांग की लोच इकाई के बराबर होती है। इससे पहले जब तक गिरता सीमान्त आप धनात्मक होता है, एकाधिकारी के उत्पाद की मांग की लोच इकाई से ज्यादा एवं जब सीमान्त आगम ऋणात्मक हो जाता है तब इसके उत्पाद की मांग की लोच गिरकर इकाई से कम रह जाती है इसीलिए एकाधिकारी का सर्वोत्तम उत्पादन मांग वक्र के लोचदार क्षेत्र में ही होता है।

Short-run and Long-run Equilibrium of the Monoplist

एकाधिकार में कीमत निर्धारण अथवा सन्तुलन की अवस्था का ज्ञान सीमान्त आय (MR) तथा सीमान्त लागत (MC) के विश्लेषण द्वारा किया जा सकता है। इसके अनुसार Monopolist उस समय सन्तुलन की अवस्था में होगा जब दो शर्तें पूरी होगी –

1. MR = MC
2. MC must cut the MR curve from below.

(Profit +) $\pi = R - C$

$$\frac{d\pi}{dx} = \frac{dR^{MR}}{dx} - \frac{dTC^{(MC)}}{dx} = 0 \quad \text{(1st order condition necessary)}$$

$$\frac{d^2\pi}{dx^2} = \frac{d^2R}{dx^2} < 0 \quad \text{(2nd order condition sufficient)}$$

Short Run Equilibrium

अल्पकाल समय की वह अवधि हैं जिसमें समय इतना कम होता है कि एकाधिकारी बंधे साधनों जैसे – मशीनरी, प्लांट आदि को नहीं बदल सकता है। एकाधिकारी वस्तु की मांग बढ़ने पर केवल घटते बढ़ते साधन को बढ़ाकर पूर्ति बढ़ा सकता है। इसी प्रकार मांग के कम होने पर एकाधिकारी फर्म घटते बढ़ते साधनों की मात्रा को कम कर देगी और बंधे साधनों का भी प्रयोग कम कर देगी। एक एकाधिकारी उस समय सन्तुलन की अवस्था में होगा जब वह वस्तु

की उस मात्रा का उत्पादन करेगा जिस पर (i) MC = MR तथा (ii) MC वक्र MR वक्र को नीचे से काट रही होगी। अल्पकाल में एकाधिकारी के सन्तुलन की अवस्था तीन स्थितियों में हो सकती है। एकाधिकारी को (1) असामान्य लाभ (2) सामान्य लाभ या (3) न्यूनतम हानि हो सकती है।

1. **Super Normal Profit :** यदि एकाधिकारी द्वारा सन्तुलन की अवस्था में निर्धारित वस्तुओं की कीमत (AR) उस की औसत लागत (AC) से अधिक (AR > AC) है तो एकाधिकारी को Super Normal Profit प्राप्त होंगे। एकाधिकारी उत्पादन को उस सीमा तक करेगा जिस पर MC = MR बराबर होंगे। इसे सन्तुलन उत्पादन कहा जाएगा। यदि उत्पादन फलन की कीमत उसकी औसत लागत से अधिक होगी तो monopolist को असामान्य लाभ होंगे। इसे निम्न चित्र की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है –

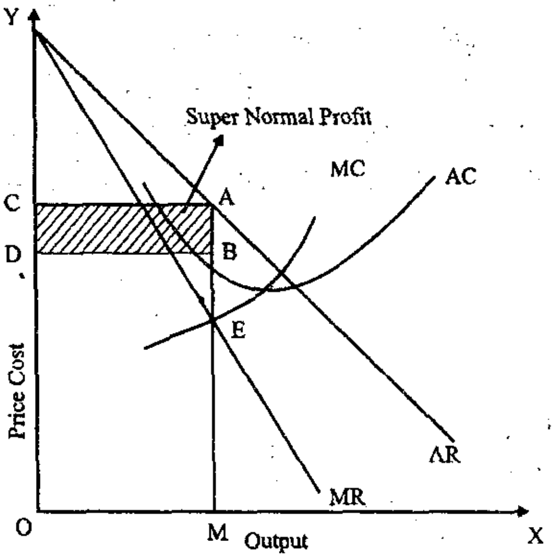

चित्र से स्पष्ट है कि एकाधिकारी E बिन्दु पर सन्तुलन की अवस्था में होगा क्योंकि इस बिन्दु पर सीमान्त आय तथा सीमान्त लागत एक दूसरे के बराबर हैं। एकाधिकारी वस्तु को OM इकाई का उत्पादन करेगा, उत्पादन की इस मात्रा पर वस्तु की कीमत AM उसकी और लागत BM से AB अधिक (AM – BMI = AB) है। अतः इस स्थिति में एकाधिकारी को ABCD कुल असामान्य लाभ प्राप्त होंगे।

2. **Normal Profit :** यदि अल्पकाल में एकाधिकारी सन्तुलन की स्थिति (MC = MR) में वस्तु की कीमत (AR), औसत लागत के (AC) बराबर (AC = MR) है तो फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होंगे।

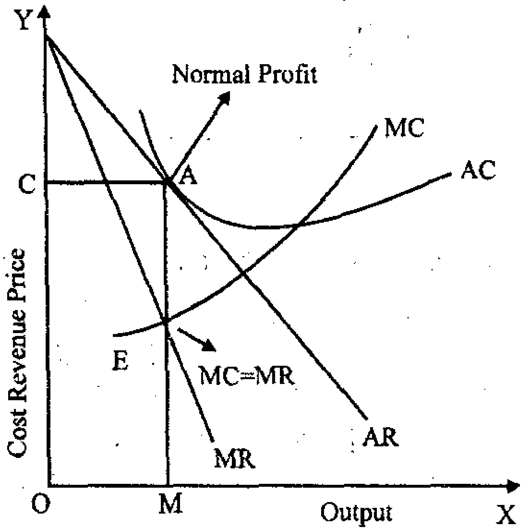

चित्र से ज्ञात होता है कि एकाधिकारी बिन्दु E पर सन्तुलन में होगा क्योंकि बिन्दु E पर MC = MR है। एकाधिकारी का सन्तुलन उत्पादन OM इकाइयां हैं। उत्पादन की इस मात्रा पर औसत लागत वक्र (AC) आय वक्र (AR) को बिन्दु A पर छू रही है। अतः बिन्दु A पर वस्तु की कीमत OP पर औसत आय (AR) तथा और लागत (AC) एक दूसरे के बराबर है। अतः एकाधिकारी को सन्तुलन उत्पादन पर केवल normal profits प्राप्त होंगे क्योंकि सन्तुलन मात्रा पर AC = AR है।

3. **Minimum Loss :** अल्पकाल में एकाधिकारी को हानि उठाकर भी उत्पादन करना पड़ सकता है, यदि अल्पकाल में मन्दी के कारण वस्तु की मांग कम हो जाए और फलस्वरूप कीमत कम हो जाए तो एकाधिकारी उस कीमत् पर उत्पादन करता रहेगा जिस पर उसे AVC मिल रही हो। यदि एकाधिकरी की AVC से भी कम कीमत निर्धारित करनी पड़ेगी तो वह वस्तु का उत्पादन बन्द कर देगा। अतः एकाधिकारी अल्पकाल में सन्तुलन की अवस्था में न्यूनतम हानि अर्थात बंधी लागत ही हानि भी उठा सकता है। सन्तुलन की इस स्थिति में कीमत (AR) वस्तु की घटती बढ़ती लागत (AVC) के बराबर होती है। अतः एकाधिकारी को fixed costs की हानि उठानी पड़ती है। यह हानि तो एकाधिकारी को तब भी उठानी पड़ेगी जब वह अल्पकाल में काम बंद कर देता है। अतः minimum loss = AR – AVC इस निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है –

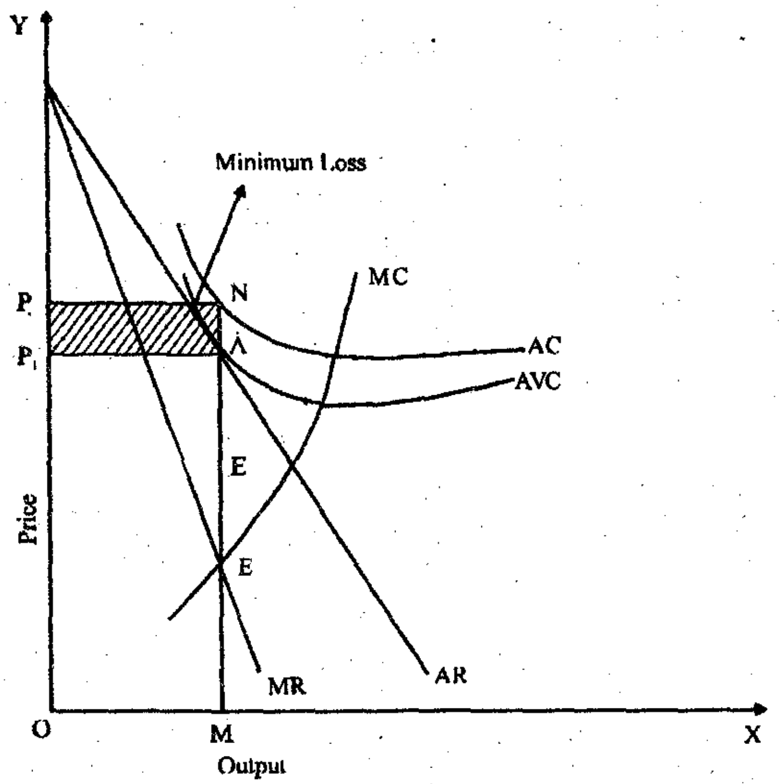

चित्रों से ज्ञात होता है कि monopolist E बिन्दु पर सन्तुलन की अवस्था में है क्योंकि E बिन्दु MC = MR, E बिन्दु से ज्ञात होता है कि एकाधिकारी वस्तु की OM मात्रा का उत्पादन करेगा। यहां इसकी कीमत OP, निर्धारित होगी। इस कीमत पर औसत घटती बढ़ती लागत वक्र (AVC curve) AR वक्र को A बिन्दु पर छू रही है। इसका मतलब यह है कि फर्म को केवल AVC ही प्राप्त होगी। फर्म को fixed costs अर्थात् AN प्रति इकाई की हानि होगी। यदि एकाधिकारी को OP से कम कीमत निर्धारित करनी पड़ेगी तो वह उत्पादन बन्द कर देगा।

Long-run Equilibrium

दीर्घकाल में एकाधिकारी वही सन्तुलन प्राप्त करेगा, जहां उसकी दीर्घकालीन सीमान्त लागत सीमान्त आय (LMC = MR) के बराबर होगी। दीर्घकाल में समय लम्बा होने के कारण एकाधिकार सब लागतों को बदल सकता है और मांग बढ़ने पर पूर्ति को मांग के अनुसार समायोजित कर सकता है। अल्पकाल में एकाधिकार कीमत औसत लागत से अधिक, कम व बराबर हो सकती है किन्तु दीर्घकाल में कीमत दीर्घकालीन लागत से अधिक होती है। यदि कीमत लागत से कम होगी तो एकाधिकारी लाभ उठाने के स्थान पर उत्पादन बन्द कर देंगे, दीर्घकाल में एका–धिकारी असामान्य लाभ प्राप्त करता है। अतः दीर्घकाल में एकाधिकारी कीमत वही निर्धारित करेगा जहां उसे असामान्य प्राप्त होंगे।

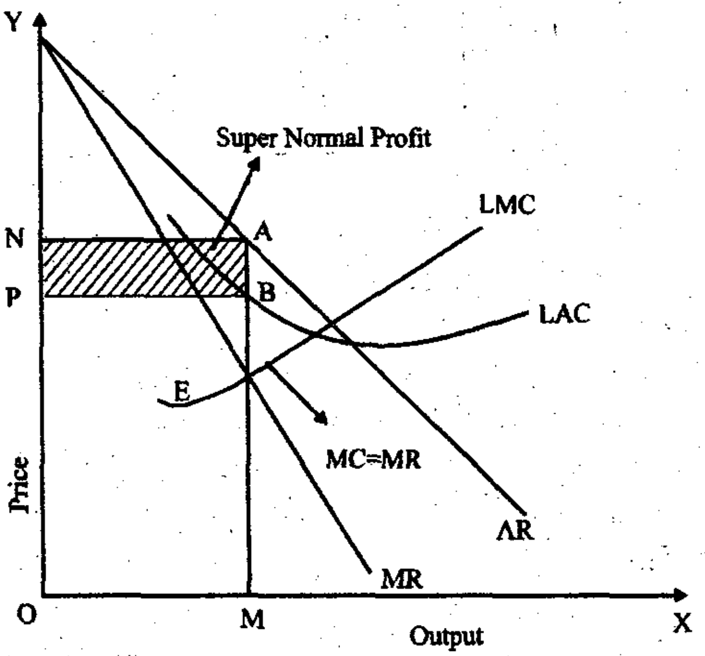

चित्र से ज्ञात होता है कि एकाधिकारी बिन्दु E पर सन्तुलन में होगा। बिन्दु E पर MR = LMC तथा वह वस्तु की OM मात्रा का उत्पादन करेगा, यह उत्पादन की सन्तुलन मात्रा होगी (इस मात्रा पर कीमत ON = PM) होगी (कीमत (AM) के दीर्घकालीन औसत लागत (LAC) के अधिक (AM > LAC) होने के कारण एकाधिकारी को असामान्य लाभ होंगे। अतः एकाधिकारी को AM – BM = AB प्रति इकाई लाभ प्राप्त होंगे। एकाधिकारी को कुल ABNP असामान्य लाभ मिलेंगे।

Q. **Bilateral Monopoly.**

Ans. द्विपक्षीय एकाधिकार (bilateral monopoly) ऐसी बाजार स्थिति को निर्दिष्ट करता है जिसमें किसी अकेले उत्पादक (एकाधिकारी) को किसी अकेले क्रेता का सामना करना पड़ता है। विक्रेता अपने आप को एकाधिकारी मानता है और क्रेता भी।

द्विपक्षीय एकाधिकार की समस्या के दो पक्ष हैं (पहला पक्ष, अन्य लोगों से पूरी तरह अलग दो व्यक्तियों के बीच एकल विनिमय को निर्दिष्ट करता है।) Edgeworth के अनुसार "सकल विनिमय की स्थिति में कीमत एक अनिर्धारित समस्या है जो हल नहीं हो सकती, क्योंकि प्रत्येक का उद्देश्य अपने मुद्रा लाभ को अधिकतम बनाना होता है। दूसरा पक्ष, एकमात्र उत्पादक की स्थिति से सम्बन्ध रखता है जो कच्चे माल का उत्पादन उस एकमात्र क्रेता को बेचता है जो तैयार माल के विक्रय का एकाधिकारी है। क्रूनों (cournot) ने इसका एक निश्चित हल दिया है। माना कि बाक्साइट का एकमात्र उत्पादक 'A' है जो उसे 'B' को बेचता है। B एल्यूमिनियम का विनिर्माण करता है और उसे एकाधिकार बाजार में बेचता है।

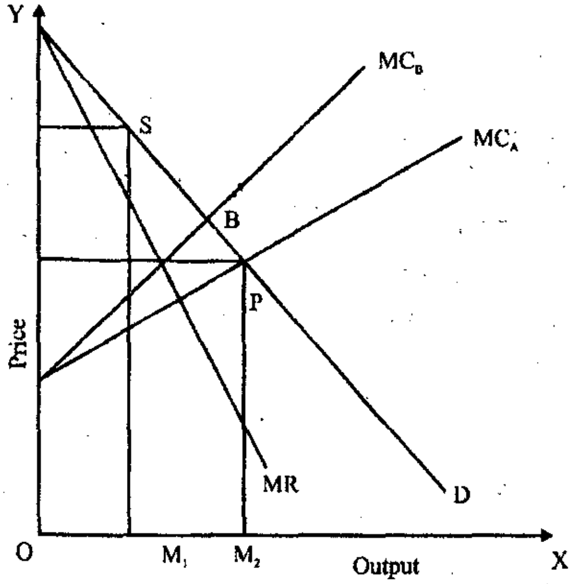

चित्र में एकमात्र क्रेता B हैं की बाजार मांग का वक्र D है। इसलिए D तथा MR वक्र एकमात्र विक्रेता A के मांग तथा सीमान्त आय के वक्र हैं। MCA एकमात्र विक्रेता A का सीमान्त लागत है जो वक्र MR को E बिन्दु पर काटता है। विक्रेता एकाधिकारी अपने लाभ अधिकतम बनाने के लिए M_1S कीमत पर OM_1 मात्रा बेचेगा।

पूर्व धारणा यह है कि A समझता है कि B प्रतियोगी बाजार के अनेक क्रेताओं में से एक है। इसी प्रकार B समझता है कि A एक प्रतियोगी विक्रेता हैं। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक स्वतन्त्र रूप से कार्य करता है और परिणामस्वरूप MC_A वक्र सीमान्त लागत वक्र भी है और पूर्ति वक्र भी।

अपने लाभों को अधिकतम बनाने के लिए एक क्रेताधिकारी का सीमान्त लागत वक्र, MC_B वक्र होगा जो उसके मांग वक्र D के B बिन्दु पर मिलता है। इस प्रकार वह OM_2 मात्रा के लिए M_2P कीमत देने को तैयार होगा। जब B की सीमान्त लागत A की पूर्ति वक्र MC के बराबर पहुंचती है तो M_2P कीमत क्रेता देना चाहेगा।। इससे उत्पादक विरोध करता है क्योंकि एक क्रेताधिकारी कम कीमत ($M_2P < M_1S$) का भुगतान करना चाहता है और अधिक मात्रा ($OM_2 > OM_1$) की मांग करता है जबकि विक्रेता एकाधिकारी इतनी कम कीमत स्वीकार करने और इतनी अधिक मात्रा देने को तैयार नहीं है। इस प्रकार कीमत तथा मात्रा अनिर्धारित रहती है।

द्विपक्षीय एकाधिकार वस्तु बाजार में बहुत कम देखने को मिलता है परन्तु साधन बाजार में अवश्य ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है जैसे किसी factory में कार्य करने वाले मजदूर मिलकर श्रम संघ बना लेते हैं और यह श्रम संघ जो (श्रमिक) और पूर्ति पर श्रम संघ का एकाधिकार है दूसरी तरफ मिल मालिक श्रमिकों की सेवाओं का क्रेता अधिकारी है। अर्थात् वह ही श्रमिकों की सेवाओं को खरीदने वाला है। मिल मालिक कम मजदूरी दर देना चाहता है। परन्तु श्रम संघ ऊँची मजदूरी प्राप्त करना चाहता है। दोनों मजदूरी दरों में अन्तर पाया जाता है। वास्तविक मजदूरी दर इन दोनों मजदूरी दरों के मध्य में कहीं भी निर्धारित हो सकती है। इसलिए मजदूरी दर मनिर्धारणीय कही जायेगी। वास्तव में क्या मजदूरी दर निर्धारित होती है। यह दोनों की सौदा करने की शक्ति (Barganic Power) पर निर्भर करता है।

Q. **Price Discrimination** (कीमत विभेद)।

Ans. जब एकाधिकारी द्वारा एक ही प्रकार की वस्तु के लिए भिन्न–भिन्न क्रेताओं से भिन्न–भिन्न कीमतें वसूल की जाती हैं, तो इसे कीमत विभेद कहा जाता है।

कांट सोयियानीस के अनुसार, "जब एक ही वस्तु भिन्न–भिन्न क्रेताओं को भिन्न–भिन्न कीमतों पर बेची जाती है तो उसे कीमत विभेद कहते हैं।" (Price discrimination exists when the same product is sold at different prices to different buyers).

कीमत विभेद की आवश्यक शर्तें
(Essential Conditions for Price Discrimination)

कीमत विभेद की कुछ आवश्यक शर्तें निम्न हैं –

1. **एकाधिकार का अस्तित्व (Existance of Monopoly) :** इसका अर्थ यह है कि कीमत विभेद तभी हो सकता है जबकि बाजार में एकाधिकार है।
2. **पृथक् बाजार (Separate Market) :** कीमत विभेद के लिए यह जरूरी है कि एकाधिकारी बाजारों को एक दूसरे से separate रखने में समर्थ है। ऐसा तभी हो सकता है जब वस्तु की एक इकाई सस्ते बाजार से मंहगे बाजार में हस्तांतरित न हो तथा दूसरे, क्रेता मंहगे बाजार से सस्ते बाजार में नहीं आ सके अर्थात् मांग की इकाई को सस्ते बाजार से मंहगे बाजार में नहीं जानी चाहिए। यदि ऐसा न हुआ तो वस्तु कम कीमत के बाजार में पुनः बेच दी जाएगी। इससे कीमत का वह अन्तर समाप्त हो जाएगा जिसे एकाधिकारी बनाये रखना चाहता है।
3. **बाजार के विभाजन और उपविभाजन पर खर्चा न्यूनतम हो :** एकाधिकारी वस्तु को बेचने के लिए बाजार को जो विभिन्न वर्गों में बांटता है, उस पर खर्चा कम से कम होना चाहिए।
4. **आज्ञा द्वारा वस्तु उत्पादन (Commodity to Order) :** यदि कोई उपभोक्ता किसी उत्पादक या विक्रेता से वस्तु आज्ञा देकर बनवाता है तो विक्रेता के लिए कीमत विभेद सम्भव हो सकता है।
5. **कानूनी स्वीकृति (Legal Sanction) :** कुछ दशाओं में कीमत विभेद को कानूनी स्वीकृति मिली होती है। उदाहरण के लिए बिजली कम्पनी औद्योगिक उपयोग के लिए बिजली सस्ती दर पर और घरों में प्रयोग के लिए मंहगी दर पर प्रदान करती है। अब यदि ग्राहक सस्ती बिजली घरेलू उपयोग में लगता है तो उस पर जुर्माना हो सकता है।
6. **वस्तु विभेद (Product Differentiation) :** एकाधिकारी एक वस्तु की पैकिंग, नाम, लेबल आदि में परिवर्तन करके विभिन्न किस्मों के रूप में बेच सकता है। यदि उनकी क्वालिटी एक जैसी ही होती है।
7. **उपभोक्ताओं का व्यवहार (Behaviour of Consumers) :** कई बार उपभोक्ताओं के व्यवहार के कारण भी कीमत विभेद करना सम्भव होता है। उदाहरण के लिए कुछ उपभोक्ता केवल चण्डीगढ़ की sector-22 की दुकानों से ही वस्तु खरीदना सम्मानजनक समझते हैं। ऐसी अवस्था में यदि किसी विक्रेता की दुकान sector-22 में तथा दूसरी sector-30 में है तो वह एक ही वस्तु की sector-22 वाली दुकान पर अधिक कीमत में तथा sector-30 वाली दुकान दर अपेक्षाकृत कम कीमत पर बेचेगा।

कीमत विभेद प्रकार
(Types of Price Discrimination)

1. **व्यक्तिगत कीमत विभेद (Personal Price Discrimination) :** जब एकाधिकारी वस्तु की भिन्न व्यक्तियों से विभिन्न कीमत लेता है तो उसे व्यक्तिगत कीमत विभेद कहते हैं। जब एक डाक्टर एक ही प्रकार के आप्रेशन के लिए धनी व निर्धन व्यक्ति से अलग–अलग फीस लेती है वह व्यक्तिगत कीमत विभेद कहलाता है।
2. **भौगोलिक कीमत विभेद (Geographical Price Descrimination) :** जब एक एकाधिकारी एक वस्तु की विभिन्न स्थानों विभिन्न कीमत लेता है तो उसे भौगोलिक कीमत विभेद कहते हैं। उदाहरण के लिए भारतीय खाद्य निगम द्वारा चावल काश्मीर तथा हिमालय प्रदेश में अलग कीमत पर बेचा जाता हैं।
3. **उपभोग कीमत विभेद (Price Descrimination According to Use) :** जब एकाधिकारी एक वस्तु के विभिन्न उपयोग के लिए विभिन्न कीमतें लेता है तो उसे उपयोग कीमत विभेद कहते हैं। जैसे–बिजली के घरेलू उपयोग के लिए प्रति यूनिट दर अधिक होती हैं। परन्तु व्यापारिक उपयोग के लिए बिजली की दर कम होती है।

एकाधिकार विभेद में कीमत निर्धारण
(Price Determination Under Monopaly Discrimination)

एकाधिकारी द्वारा कीमत विभेद नीति अपनाने का उद्देश्य कुल आय तथा लाभ में वृद्धि करना है। कीमत विभेद की स्थिति में कीमत निर्धारण के विश्लेषण को हम दो या दो से अधिक बाजार की दशाओं द्वारा व्यक्त कर सकते हैं। प्रत्येक monopolist अपने लाभों को अधिकतम करने के लिए उत्पादन वहां तो करेगा जहां पर उसकी सीमान्त आय (MR) सीमान्त लागत (MC) के बराबर हो जाती है। एकाधिकारी अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए सीमान्त आय और सीमान्त लागत वाली शर्त को प्रत्येक बाजार में अपनाएगा। यदि सीमान्त आय लागत से अधिक है तो वह उत्पादन करता रहेगा। हमारी यह मान्यता है कि एकाधिकारी अपने उत्पादन को जो विभिन्न बाजारों में बेचेगा, जिनकी मांग अलग–अलग हैं। एकाधिकारी को अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए दो शर्तें पूरी होनी चाहिए :

1. दोनों बाजारों की सीमान्त आय बराबर होनी चाहिए। यदि हम बाजार A की सीमान्त आय को MR_1 तथा B बाजार की सीमान्त आप को MR_2 से व्यक्त करते हैं तो दोनों बाजारों की सीमान्त आय बराबर होनी चाहिए अर्थात प्रत्येक बाजार से प्राप्त MR कुल उत्पादन की MC के बरावर होनी चाहिए। $MR_1 = MR_2$
2. MC और MR भी बराबर होने चाहिए। यदि बाजार A में सीमान्त आय MR_1 तथा बाजार B की MR_2 द्वारा व्यक्त की जाए तथा सीमान्त लागत MC द्वारा व्यक्त की जाए तो इस सन्तुलन की दशा को इस प्रकार लिखा जा सकता है : $MR_1 = MR_2 = MC$

   इसको हम निम्न चित्र द्वारा व्यक्त कर सकते हैं।

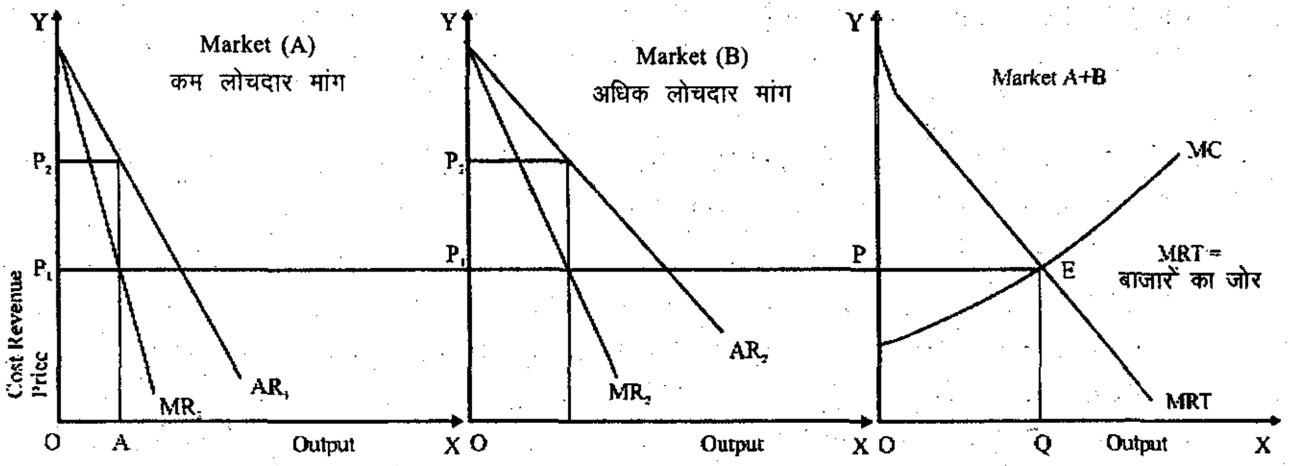

इस चित्र में कीमत विभेद में एकाधिकारी के सन्तुलन की स्थिति को प्रकट किया गया है। माना कि बाजार को दो भागों में बाट दिया गया है A और B में। जैसा कि AR_1 तथा AR_2 के अपेक्षा कम मूल्य सापेक्ष (less elastic) है। चित्र AR_1 वक्र बाजार A और AR_2 वक्र बाजार B के मांग वक्र हैं। दानों बाजारों की सामूहिक स्थिति (A+B) को तीसरे चित्र में प्रकट किया गया है। स्पष्ट है कि एकाधिकारी का सन्तुलन E बिन्दु पर होगा जहां सामूहिक सीमान्त आय (Aggrecycle MR) MC के बरावर हैं। एकाधिकारी की कुल उत्पादन मात्रा OQ है। वह इस उत्पादन को दो बाजारों में इस प्रकार बांटेगा कि प्रत्येक बाजार में सीमान्त आय MR के समान हो जाए। यदि एक बाजार में उनकी सीमान्त आय कम है और दूसरे बाजार में अधिक है, तो ऐसी दशा में कम सीमान्त आय वाले बाजार उत्पादन को अधिक सीमान्त आय वाले बाजार में स्थानान्तरण करना लाभदायक होगा। इस सीमान्त आय को प्राप्त करने के लिए एकाधिकारी बाजार A में OA मात्रा तथा बाजार B में OB मात्रा बेचेगा। वह बाजार A में वस्तु की OP_2 कीमत पर कम मात्रा तथा बाजार B में वस्तु की कम कीमत अर्थात् OP_2 कीमत पर अधिक मात्रा बेचेगा तथा उत्पादन की कुल मात्रा OA+OB एकाधिकारी के कुल उत्पादन OQ के बराबर होंगी।

राशिपातन (Dumping) में कीमत विभेद

जब कोई (एकाधिकार)घरेलू बाजार की तुलना में विदेशी बाजार में अपना उत्पादन नीची कीमत पर बेचता है तब उसे राशिपातन कहते हैं। घरेलू बाजार में वह एकाधिकारी होने के कारण ऊँची कीमत ले सकता है जबकि विदेशी बाजार में वह प्रतियोगी फर्म होता है अतः नीची कीमत पर अपना रोज सारा उत्पादन जो घरेलू बाजार में नहीं बिकता प्रतिस्पर्धी अन्तराष्ट्रीय बाजार की कीमत पर बेचने में सफल हो जाता है, विभेदात्मक एकाधिकारी निम्नांकित उद्देश्यों से राशिपातन करता है :

i) मांग की लोच में अन्तर का फायदा उठाने के लिए

ii) अपनी वस्तु का विदेशी बाजार बनाने के लिए

iii) अपने सयंत्र की क्षमता का प्रयोग अनुकूलम स्तर पर करने के लिए

iv) आधिक्य उत्पादन की बिक्री के लिए

v) विदेशी बाजार के प्रतियोगियों का सामना करने के लिए, आदि–आदि।

निम्न रेखाचित्र की सहायता से राशिपातन में कीमत विभेद को समझ सकते हैं

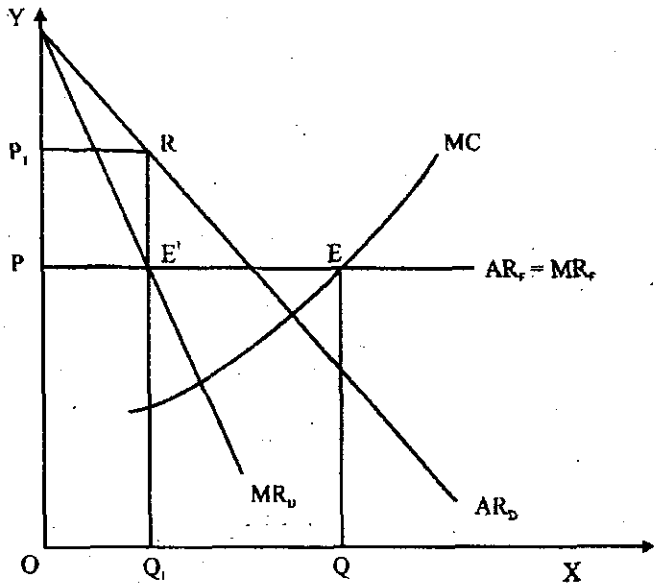

MR_D = Mariginal Revenue in Domestic Market.
AR_D = Average Revenue in Domectic Market

F = Foreign Market

रेखाचित्र में AR_D एवं MR_D स्वदेशी एकाधिकारी बाजार में फर्म की औसत आय एवं सीमान्त आप की रेखाएं हैं। इसी प्रका AR_F=MR_F विदेशी प्रतियोगी बाजार उसके उत्पादन की मात्र रेखा है। क्योंकि विदेशी बाजार में पूर्ण प्रतिस्पर्धा है। अतः वहां कीमत मांग और पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होती है और इस प्रकार निर्धारित कीमत पर उसकी मांग पूर्णयता लोचदार होती है। अब E बिन्दु पर एकाधिकारी का सन्तुलन है। अतः वह OQ मात्रा का उत्पादन करेगा जिसमें से OQ_1 मात्रा घरेलू एकाधिकारी बाजार में ऊँची अर्थात Q_1R अथवा OP^1 कीमत पर एवं शेष Q_1Q मात्रा विदेशी बाजार में नीची प्रतियोगी कीमत QE अथवा OP पर बेचेगा। कुल उत्पादन के इस प्रकार दोनों बाजारों में विभाजन से उसे दोनों बाजारों में समान कीमत सीमान्त आय मिलती है। क्योंकि $QE=Q_1E_1$ है। QE विदेशी प्रतियोगी एवं Q_1E_1 घरेलू एकाधिकार की सीमान्त आय हैं।

कीमत विभेदीकरण का प्रभाव
(Effects of Price Descrimination)

कीमत विभेदीकरण का समाज पर लाभ और हानि दोनों प्रकार का प्रभाव पड़ता है, जिसकी व्याख्या निम्न है :

1) **लाभदायक प्रभाव (Beneficial Effects)** : कीमत विभेद के लाभदायक प्रकरण निम्नलिखित हैं।

A. **निर्धन वर्ग को लाभ (Beneficial to the Poor) :** यदि किसी वस्तु की कीमत इसलिए कम रखी जाए कि निर्धन लोग उसका लाभ उठा सकें और कीमत को कम करने से जो हानि होती है, उसको धनी ग्राहकों से अधिक कीमत वसूल करके पूरा किया जाए तो ऐसी दशा में कीमत विभेद समाज के लिए लाभप्रद होगा।

B. **जनउपयोगी सेवाएं (Public Utility Services) :** बहुत सी साधारण सेवाएं ऐसी होती है जो कीमत विभेद की नीति को अपनाये बिना उपलब्ध नहीं हो सकती जैसे–रेलवे विभाग की सेवाएं अथवा एक क्षेत्र में डाक्टर की सेवा (ऐसी सेवाएं समाज के लिए अनिवार्य है और सामाजिक कल्याण में वृद्धि लाती हैं)।

C. **साधनों का पूर्ण उपयोग (Full Utilisation of Resources) :** कीमत विभेद का राशिपातन (Dumping) रूप भी समाज के लिए लाभदायक हो सकता है। इसके अन्तर्गत विदेशों में वस्तुएं सस्ती बेचकर उत्पादक अपनी अतिरिक्त क्षमता का प्रयोग कर सकते हैं। इसके फलस्वरूप देश के साधनों का पूर्ण उपयोग हो पाता है।

2) **हानिकारक प्रभाव (Harmful Effects)**

A. **साधनों का उचित प्रयोग न होना (No Proper use of Factors of Production) :** कीमत विभेद के फलस्वरूप उत्पादन के साधनों का उचित प्रयोग नहीं हो पाता। एकाधिकारी विलासिता की वस्तुओं का अधिक उत्पादन करते है क्योंकि इनमें कीमत विभेद की अधिक सम्भावना होती है। इसके फलस्वरूप जरूरत की वस्तुओं का कम उत्पादन होता है तथा देश के निर्धन वर्ग को हानि उठानी पड़ती है।

B. **कम उत्पादन (Less Production) :** कीमत विभेद उस स्थिति में भी हानिकारक होता है जब एकाधिकारी अपने लाभ अधिकतम करने के लिए वस्तु कम उत्पादन करता है तथा कीमत अधिक लेता है। इसका लोगों के आर्थिक कल्याण पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

C. **राशिपातन (Dumping) :** राशिपातन की अवस्था में विदेशियों से वस्तु की कम कीमत लेना और घरेलू बाजार में देशवासियों से ऊँची कीमत लेना, देशवासियों के लिए घोर अन्याय है।

संक्षेप में एकाधिकारी द्वारा किया कीमत विभेद समाज के लिए लाभदायक तथा हानिकारक दोनों ही हो सकता है।

प्र. **पूर्व प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत निर्धारित की व्याख्या कीजिए, कीमत सिद्धान्त में समय तत्व क्या महत्व हैं?**

उ. कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार वस्तु की कीमत मांग पर निर्भर करती ही कुछ के अनुसार वस्तु की कीमत पूर्ति पर निर्भर करती है लेकिन मार्शल के अनुसार यह मांग और पूर्ति दोनों पर निर्भर करती हे। उन्होंने इस सम्बन्ध में कैंची का उदाहरण दिया है। उनके अनुसार जिस प्रकार हम कैंची के एक ब्लेड से कपड़ा या कागज नहीं काट सकते, ऐसे ही केवल माँग या पूर्ति से कीमत का निर्धारण नहीं हो सकता और जिस प्रकार लागत या कपड़ काटने के लिए कैंची के दोनों ब्लेडों की आवश्यकता होती है ऐसे ही कीमत निर्धारण करने के लिए मांगे व पूर्ति दोनों की आवश्यकता होती है। एंक विक्रेता सीमान्त लागत से कम कीमत नहीं देना चाहेगा। अत कीमत इन दोनों शक्तियों के बीच मांग या पूर्ति के द्वारा निर्धारित होगी।

कीमत का निर्धारण : कीमत के निर्धारण की व्याख्या तालिका और रेखाचित्र द्वारा की जाती है।

कीमत	मांग	पूर्ति
5	100	500
4	200	400
3	300	300

2	400	200
1	500	100

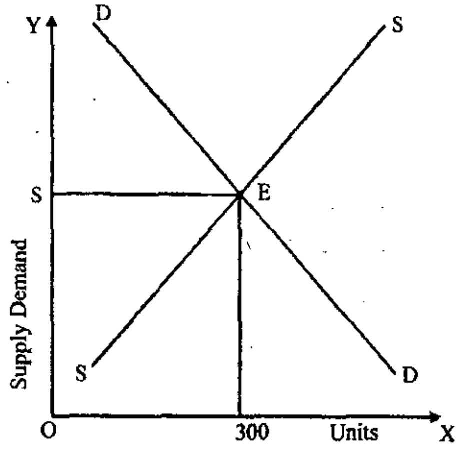

तालिका और रेखाचित्र में मांग और पूर्ति के सन्तुलन द्वारा 3 रुपये कीमत निर्धारित होती है। 4 रुपये इसलिए नहीं होती, क्योंकि पूर्ति मांग से अधिक ही इसलिए कीमत कम होने की प्रवृत्ति पाई जाएंगी। 2 रुपयों कीमत इसलिए नहीं हो सकती, क्योंकि मांग पूर्ति से ज्यादा थे इसलिए अधिक होने की प्रवृत्ति पाई जाएंगी। अतः कीमत 3 रुपये निर्धारित होगी।

1. **मांग व पूर्ति के परिवर्तन का कीमत पर प्रभाव**: मांग में परिवर्तन का प्रभाव (पूर्ति स्थिर रहने पर) यदि पूर्ति स्थिर मान की जाती हो तो माँग में वृद्धि से कीमत अधिक होगी और मांग की कमी से कीमत कम होगी) जैसा कि रेखाचित्र में दिखाया गया है।

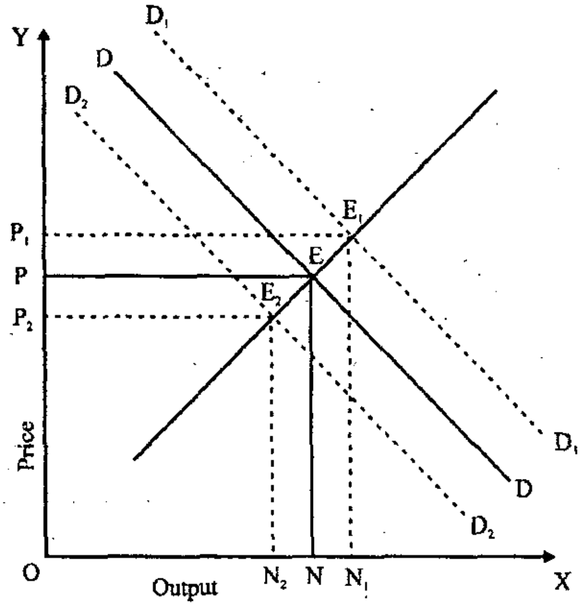

चित्र

रेखाचित्र में दिखाया गया है कि आरम्भ में सन्तुलन E बिन्दु जहां मांग और पूर्ति दोनों वक्र समान ही मांग में वृद्धि होने से वक्र $D_1 D_1$ और सन्तुलन E_1 तथा कीमत OP हो जाती है और कम होने से मांग वक्र $D_2 D_2$ तथा सन्तुलन E_2 और कीमत हो जाती है। इस प्रकार यदि पूर्ति स्थिर रहें तो मांग बढ़ने से कीमत बढ़ती है और मांग से कम होने से कीमत कम होती है।

2. **पूर्ति में परिवर्तन :** (मांग स्थिर रहने पर) : यदि मांग स्थिर रहने पर पूर्ति में परिवर्तन किया जाएं, तो भी कीमत में परिवर्तन आता है। जिसे रेखाचित्र में दिखाया गया है।

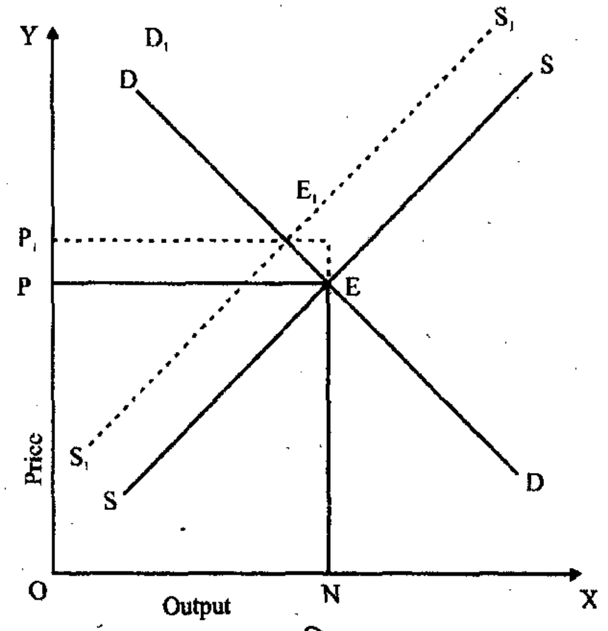

चित्र

अब सन्तुलन E बिन्दु पर है। पूर्ति में कमी होने पर पूर्ति $S_1 S_1$ है जो कीमत में वृद्धि करके OP_1 तथा सन्तुलन E_1 होगा। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि पूर्ति के बढ़ने से कीमत कम और पूर्ति के कम होने पर कीमत अधिक होती है।

I. **कीमत में परिवर्तन**

रेखाचित्र में दिखाया है कि प्रारम्भ में सन्तुलन E बिन्दु पर है कीमत OP है। मान लो मांग में वृद्धि होती है तथा पूर्ति में कमी होती है जिसमें पूर्ति वक्र $S_1 S_1$ हो गया और सन्तुलन E_1 पर होगा न कीमत OP_1 होती है। इसलिए यह दर्शाया गया है कि मांग और पूर्ति में एक साथ परिवर्तन होने से कीमत में परिवर्तन आ गया।

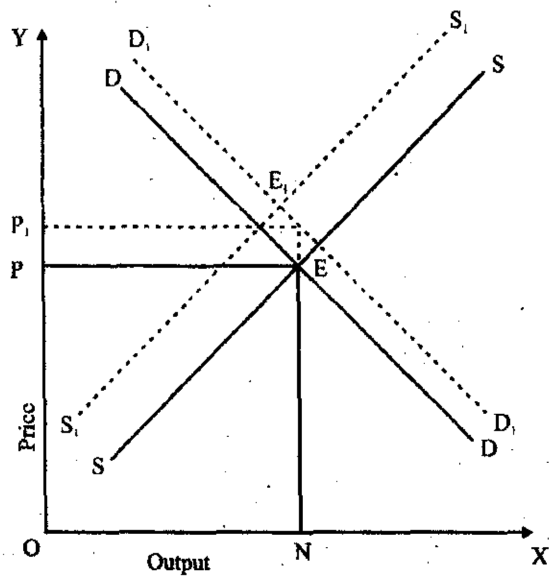

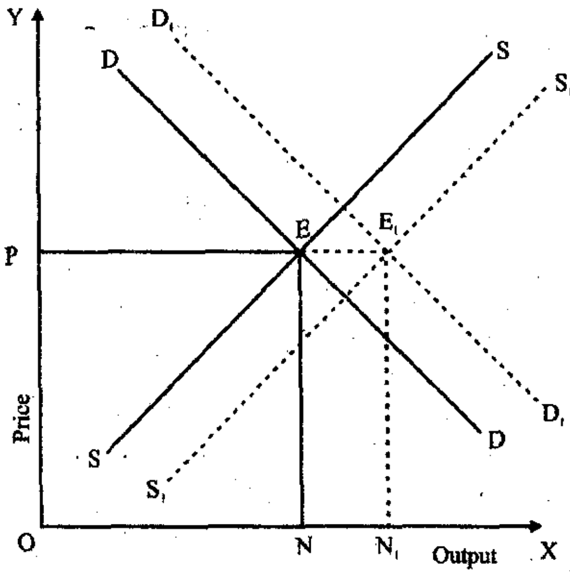

कीमत में परिवर्तन नहीं : ऐसा भी हो सकता है कि मांग और पूर्ति में परिवर्तन आ भी जाएं और इसके बावजूद भी कीमत में परिवर्तन न हों। इसकी व्याख्या रेखाचित्र द्वारा की गई हो रेखाचित्र में आरम्भ में सन्तुलन E बिन्दु पर हो पर कीमत OP हो। मागें और पूर्ति में परिवर्तन आते ही माँग बढ़ कर D_1D_1 हो जाती है, पूर्ति बढ़कर S_1S_1 हो जाती है। जिससे सन्तुलन E_1 बिन्दु पर होता है। कीमत OP ही रहती है, इस प्रकार माँग पूर्ति के परिवर्तन से कीमत में कोई परिवर्तन नहीं होता।

मूल्य सिद्धान्त में समय तत्त्व का महत्त्व : समय के अनुसार पूर्ति में परिवर्तन आता है क्योंकि अति अल्पकाल में पूर्ति स्थिर रहती है, अल्पकाल में उपलब्ध साधनों की सहायता से उत्पादन बढ़ाया जा सकता है दीर्घकाल में सभी प्रकार के परिवर्तन सम्भव होते हैं। समय के अनुसार पूर्ति निम्न होती है, पूर्ति के अनुसार कीमत निम्न होती है इसलिए समय के कारण कीमत पर प्रभाव पड़ेगा। अतः समय तत्त्व का कीमत निर्धारण में महत्त्व हैं।

अति अल्पकाल : इसके अन्तर्गत दो वस्तुओं का अध्ययन करते हैं इसे बाजार कीमत भी कहते हैं।

1. **नाशवान पदार्थ :** रेखाचित्र में SS अल्पकालीन पूर्ति वह है जो OY अक्ष के समानान्तर है जिसका अर्थ यह है कि कीमत में परिवर्तन का पूर्ति पर कोई Price में प्रभाव नहीं पड़ेगा। जब माँग DD है तो कीमत OP है। परन्तु जब माँग चक्र बढ़कर D_1D_1 हो जाती है तो कीमत बढ़कर OP_1 और सन्तुलन E_1 बिन्दु पर ही जब माँग DD से कम होकर DD_2 हो जाती है तो कीमत कम होकर OP_2 हो जाती हैं। सन्तुलन E_2 बिन्दु पर होता है। स्पष्ट है अति अल्पकाल में वस्तु की कीमत पर माँग का अधिक प्रभाव पड़ता है।

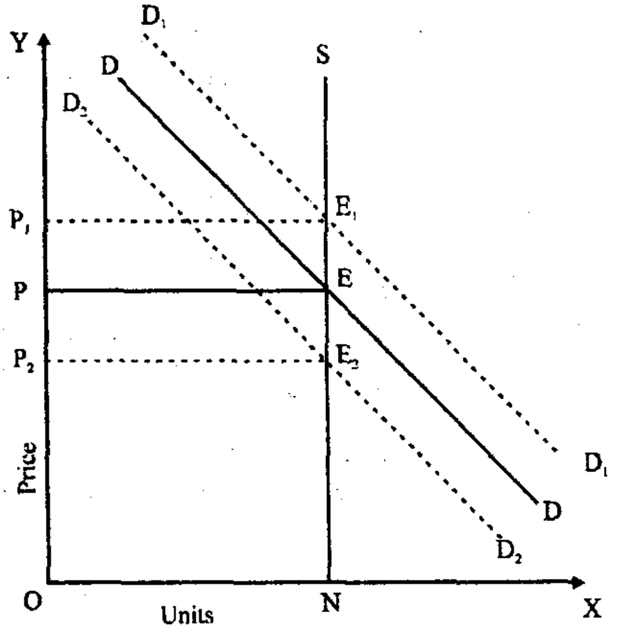

2. **टिकाऊ पदार्थ :** टिकाऊ वस्तुओं के संन्दर्भ में पूर्ति वक्र SS होगा। और कीमत माँग के अनुसार निधारित होगी, दर यदि माँग D_1D_1 द्वारा दिखाई जाती है तो कीमत OP_1 होगी, और विक्रेता पूरी वस्तुओं को बेचने के लिए तैयार ही होगी।

   यदि माँगें D_2D_2 हो जाती है तो कीमत OP_2 होगी। और विक्रेता ON_1 इकाइयों की पूर्ति करता है और NN_1 बचा लेता है। यदि कीमत OS हो तो पूर्ति शून्य होगी। और सारी वस्तु बचा लेता है तो इसे आरक्षित कीमत कहते हैं।

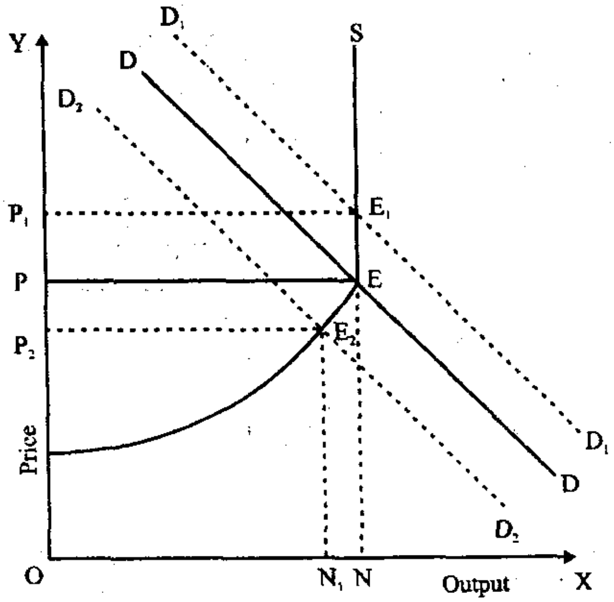

II. **अल्पकाल**

अल्पकाल में उपलब्ध साधनों की सहायता से केवल उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। अतः अधिक उत्पादन या पूर्ति अधिक कीमत पर ही ली जाएँगीं। तो इसलिए पूर्ति वक्र नीचे से ऊपर की ओर जाता हुआ होगा और कीमत माँग के अनुसार निर्धारित होगीं।

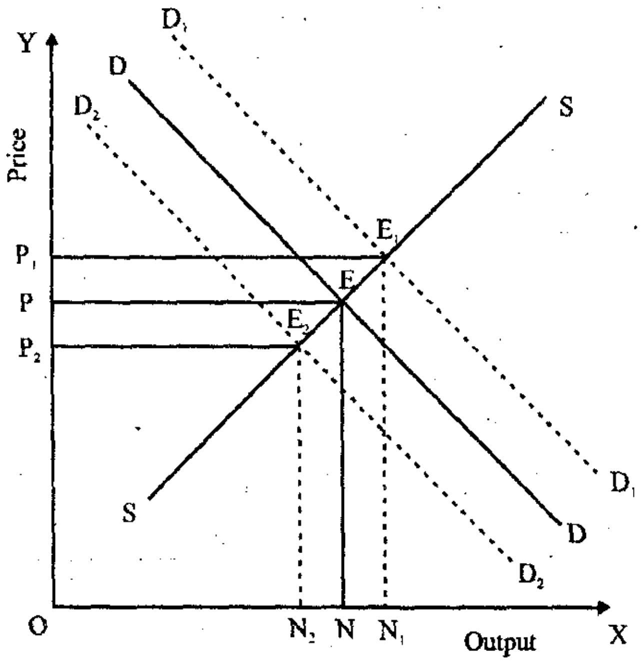

III. **दीर्घकाल**

इसमें उत्पादन के नियमों का प्रभाव पड़ता है। दीर्घकालीन कीमत को सामान्य कीमत कहते हैं, अलग–अलग उत्पादन के नियमों के अनुसार यह अलग–अलग होगीं। इस प्रकार उत्पादन के नियमों की सहायता से दीर्घकाल में कीमत का निर्धारण होगा। जिनकी व्याख्या रेखाचित्र की सहायता से भी की जा सकती है।

A. घटते प्रतिफल या बढ़ती लागतों का नियम –

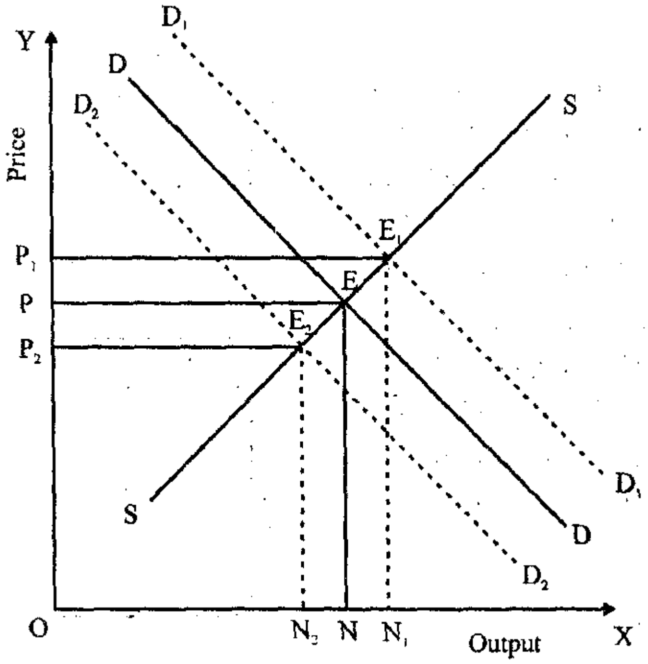

B. समान लागत या समान–प्रतिफल का नियम –

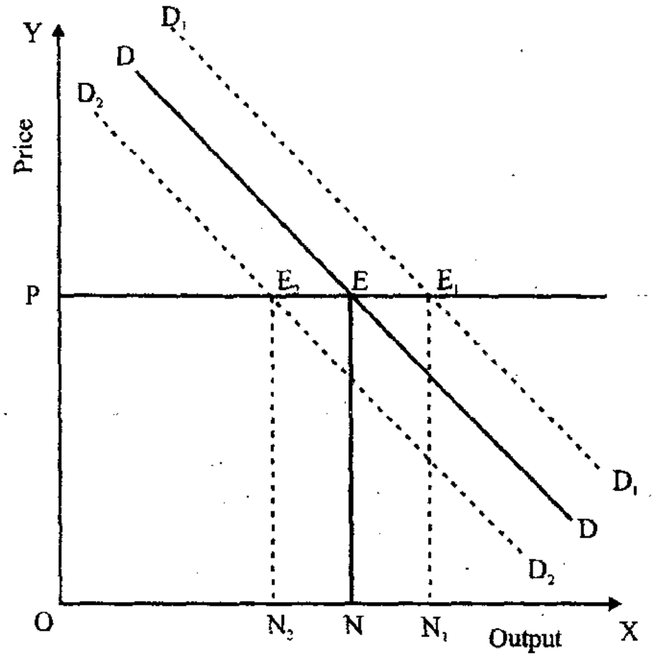

C. बढ़ते प्रतिफल या घटती लागत का नियम –

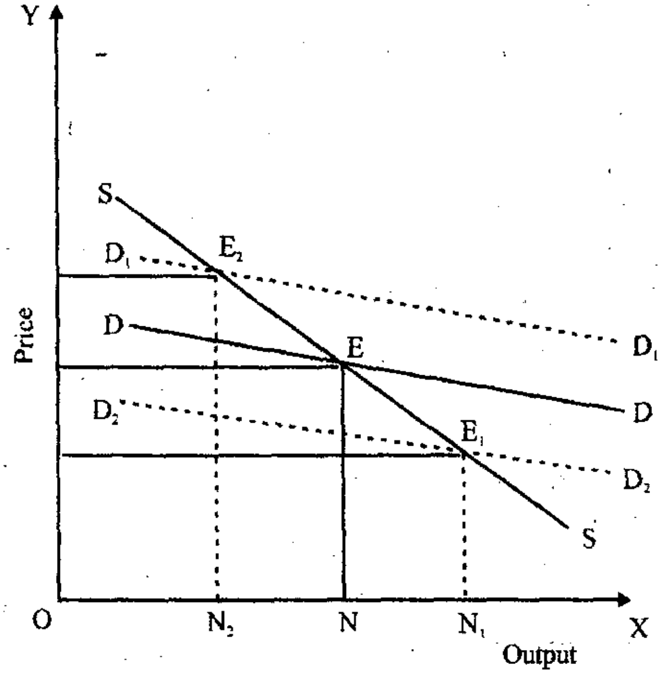

अध्याय - 17
अल्पाधिकार – विकुंचित मांग वक्र
(Oligopoly)

अल्पाधिकार एक ऐसा बाजार है जिसमें किसी वस्तु का उत्पादन और बिक्री करने वाली कुछ ही फर्में होती हैं अर्थात् जब वस्तु को बेचने वाली दो या दो से अधिक लेकिन बहुत फर्में नहीं होती, इसे अल्पाधिकार कहा जाता है। Oligopoly को कुछ के बीच में प्रतियोगिता कहा जाता है। अधिकार भी इसका एक रूप ही जहाँ वस्तु को बेचने वाली दो फर्में होती हैं।

अल्पाधिकार (oligopoly) की विशेषताएं

अल्पाधिकार की विशेषताऐं इस प्रकार हैं।

1. **परस्पर निर्भरता :** क्योंकि इस बाजार में वस्तु को बेचने वाली कुछ फर्में होती है। इसलिए एक फर्म के निर्णयों का दूसरी फर्म पर प्रभाव होता है। जब एक फर्म अपने उत्पादन या कीमत में परिवर्तन लाती है। तो इससे दूसरी फर्में प्रभावित होती हैं। इसलिए ये फर्में भी प्रतिक्रिया करेंगी और इन फर्मों के उत्पादन या कीमतों में भी परिवर्तन होगा। इसलिए प्रतिभोगी फर्मों की प्रतिक्रिया के सम्बन्ध में अनिश्चितता पाई जाती है।
2. **इस बाजार में विज्ञापन और विक्रय लागतों का बहुत महत्व होता है :** विज्ञापन बिक्री को बढ़ाने के लिए एक शक्तिशाली औजार के रूप में प्रयोग किया जाता है। पूर्व प्रतियोगिता में फर्मों की कीमत समान और वस्तु समरूप होने के कारण विज्ञापन की आवश्यकता नहीं पड़ती। एकाधिकारी को भी विज्ञापन की अधिक आवश्यकता नहीं होती। लेकिन इस बाजार में फर्मों के लिए विज्ञापन जीवन–मरण का प्रश्न बन जाता है। विज्ञापन के बिना फर्म प्रतियोगिता में नहीं टिक सकता।
3. इस बाजार में फर्मो के समूह के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। किसी एक विशेष फर्म का नहीं, क्योंकि फर्म मिलकर Collusive बना लेती।
4. अल्पाधिकारी का मांग वक्र अनिर्धारित होता है। क्योंकि फर्मों को काफी अनिश्चतता का सामना करना पड़ता है। इसलिए फर्म कितना उत्पादन बेच पाएगी, यह निश्चित नहीं कर पाती। क्योकि फर्में अपने प्रतिद्वन्द्वी की प्रतिक्रिया के बारे में नहीं जानती।

विकुंचित (मोड़ वाली) मांग व सिद्धान्त
(The Kinked Demand Curve Model)

बहुत से अल्पाधिकारी उद्योगों में कीमत स्थिर अथवा अपरिवर्तित होती है अर्थात् अधिक दशाओं में परिवर्तन हो जाने पर भी अल्पाधिकारी अपनी कीमत में परिवर्तन नहीं करना चाहते। अल्पाधिकार में कीमत स्थिरता की बहुत सी व्याख्याएं प्रस्तुत की गई परन्तु सबसे लोकप्रिय व्याख्या विकुंचित (Kinked) मांग वक्र परिकल्पना है। इसका प्रतिपादन पाल एम. स्वीजी (Paul M. Sweezy) ने जो कि, आक्सफोर्ड (Oxford) अर्थशास्त्री हैं, स्वतन्त्र रूप से किया है। इस परिकल्पना के अनुसार अल्पाधिकारी जिस मांग वक्र का सामना करता है, उसमें वर्तमान कीमत के स्तर पर विंकुचन (Kink) होता है, Kink वर्तमान कीमत स्तर पर इसलिए होता है, क्योंकि मांग व का वह भाग जो वर्तमान कीमत स्तर से ऊपर है, अत्यन्त लोचदार (more elastic) होता है और वर्तमान कीमत के मांग

व का नीचे का भाग बेलोचदार (Inelastic) होता है और वर्तमान कीमत के मांग वक्र का नीचे का भाग बेलोचदार (Inelastic) होता है। इसे निम्न चित्र की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है –

निम्न चित्र में dD एक Kinked demand curve है जिसमें P बिन्दु पर Kink (विंकुचन) है। वर्तमान कीमत स्तर M P है तथा फर्म O M मात्रा का उत्पादन व बिक्री कर रही है। dD मांग वक्र का ऊपर वाला भाग dD सापेक्षतः अधिक लोचदार है तथा निचला भाग PD सापेक्षतः बेलोचदार है। इस सिद्धान्त में यह कल्पना की गई है कि प्रत्येक अल्पाधिकारी का यह विश्वास है कि यदि वह अपनी कीमत को वर्तमान कीमत स्तर से नीचे गिरा देता है तो उसके प्रतिद्वन्द्वी भी ऐसा ही करेगें और अपनी–अपनी कीमतों को गिरा देगें। परन्तु यदि वह कीमत में वृद्धि कर देता है (वर्तमान स्तर की तुलना में), तो उसके प्रतिद्वन्द्वी ऐसा नहीं करेगें। अर्थात् वे अपनी–अपनी कीमतों में वृद्धि नहीं करेगें। इसकी व्याख्या इस प्रकार से की जा सकती है

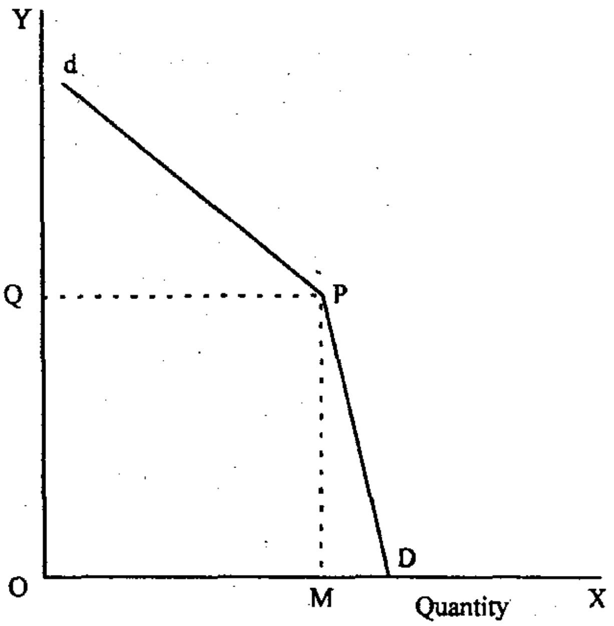

1. **कीमतो में कमी (Price Reduction) :** चित्र को ध्यान में रखकर, यदि अल्पाधिकारी अपनी बिक्री बढ़ाने के उद्देश्य से अपनी वस्तु की क़ीमत को वर्तमान कीमत स्तर M P से कम कर देता है तो उसके प्रतिद्वन्द्वियों को यह भय होता है कि उनके क्रेता उस अल्पाधिकारी की वस्तु खरीदना शुरू कर देगें जिसने कीमत कम कर दी है। अतः क्रेताओं को अन्य उत्पादकों के पास जाने से रोकने के लिए उनको भी अपनी कीमतों में उतनी कमी करनी पड़ेगी जितनी पहले वाले उत्पादक ने की है। इस प्रकार एक अल्पाधिकारी द्वारा उसका अनुकरण किये जाने के कारण उसकी बिक्री में कोई खास वृद्धि नहीं होगी। मांग व PD का मांग जो बेलोचदार है इसको दर्शाता है।
2. **कीमतो में वृद्धि (Price Increase) :** अल्पाधिकारी यदि अपनी कीमत को वर्तमान स्तर से बढ़ा देता है तो उसकी बिक्री बहुत घट जाऐगी। इसका कारण यह है कि उसकी कीमतों में वृद्धि के कारण उसके उपभोक्ता उसकी वस्तु को खरीदने के स्थान पर उसके प्रतियोगियों की वस्तु को खरीदने लगेंगे। उसके प्रतियोगी क्रेताओं का स्वागत करेंगे। और उनकी बिक्री में वृद्धि हो जाएगी। अतः इन प्रसन्न प्रतियोगियों में कीमत वृद्धि की कोई प्रेरणा नहीं होगी। जिस अल्पाधिकारी ने अपनी कीमत में वृद्धि की है वह केवल उन्हीं क्रेताओं को अपने पास रोक सकेगा जिनकी उसकी वस्तु के लिए मांग अधिक है या जो उसके प्रतियोगियों के उनकी सीमित उत्पादन क्षमता के कारण पर्याप्त मात्रा में वस्तु को प्राप्त नहीं कर पाते। मांग व dP भाग जो वर्तमान कीमत स्तर MP के ऊपर है लोचदार है ओर यह दर्शाता है कि यदि उत्पादक अपनी कीमतें बढ़ा देते हैं तो उनकी बिक्री में अधिक मात्रा में गिरावट आती है।

कीमत दृढ़ता का क्या कारण है?

(Why Price Rigidity?)

एक अल्पाधिकारी जो कि Kinked Demand Curve का सामना करता है, उसमें कीमत बढाने या कम करने की प्रेरणा का अभाव क्यों होता है यह समझना सरल है। अल्पाधिकारी क्योंकि वर्तमान कीमत स्तर से कीमत घटाकर मांग में अधिक वृद्धि नहीं कर सकता है और वर्तमान स्तर से कीमत बढ़ाने पर उसकी बिक्री बहुत कम हो जाने पर वह वर्तमान कीमत में परिवर्तन लाने का इच्छुक नहीं होता। अन्य शब्दों में चूंकि वर्तमान कीमत को

बदलने में को लाभ नहीं, इसलिए अल्पाधिकारी वर्तमान कीमत पर ही अपने पदार्थ को बेचता रहेगा। अतः कीमत दृढ़ता का यही कारण है।

विकुंचित मांग व तथा अल्पाधिकारी का सन्तुलन

(Kinked Demand Curve and the Equilibrium of the Oligopolist)

यह ध्यान देने की बात है कि Kinked Demand Curve की स्थिति में अल्पाधिकारी को वर्तमान कीमत स्तर पर अधिकतम लाभ होगा।

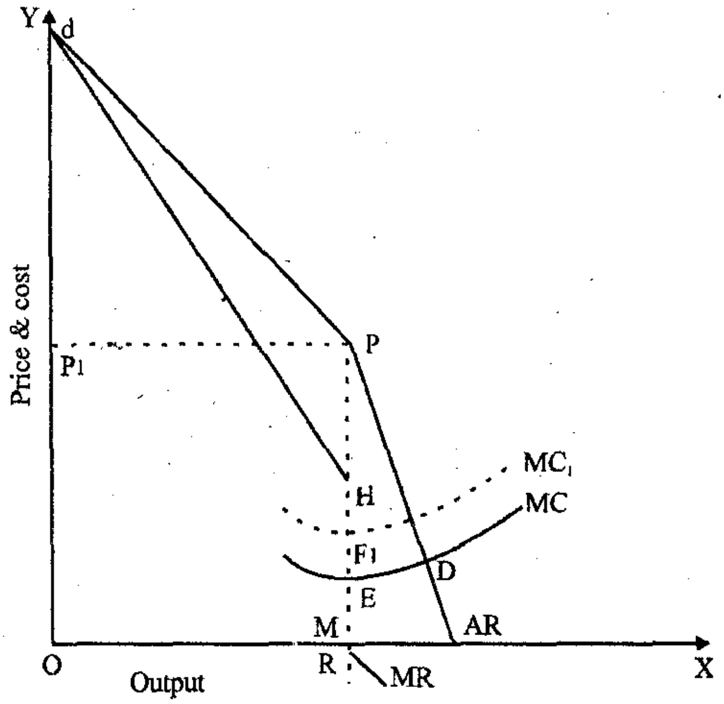

इस अधिकतम लाभ के संयोग का पता लगाने के लिए चित्र में Kinked Demand Curve के अनुसार सीमान्त आय वक्र बनाया गया है। इस सीमान्त आय वक्र (MR) में discontinuity होती है या अन्य शब्दो में Vertical Broken Portion है। इस discontinuity की लम्बाई इस बात पर निर्भर करती है कि मांग वक्र के P बिन्दु पर इस वक्र के दो भागों DP और dP की लोचों में क्या अन्तर है ? दोनों लोचो में अन्तर जितना अधिक होगा discontinuity की लम्बाई भी उतनी ही अधिक होगी। इस चित्र में dD मांग वक्र के अनुसार सीमान्त आय वक्र MR बनाया गया है जिसमें HR discontinuity भाग या अन्तराल है। अब यदि अल्पाधिकारी का सीमान्त लागत वक्र (MR) discontinuity भाग HR में से गुजरता है, जैसा कि चित्र में है, तो अल्पाधिकारी की वर्तमान कीमत स्तर MP पर ही अधिक लाभ प्राप्त होगें अर्थात् वह P बिन्दु पर अथवा MP वर्तमान कीमता पर सन्तुलन में होगा। अतः यहां पर उसके लिए कीमत में परिवर्तन करने की कोई प्रेरणा नहीं होगी। यदि लागतों में भी परिवर्तन हो जाता है तो जब तक सीमान्त लागत व (MC) सीमान्त आय वक्र के HR अन्तराल में से गुजरता रहेगा तब तक कीमत स्थिर रहेगी। चित्र में लागतों में वृद्धि होने के कारण सीमान्त लागत व MC_1 हो जाता है, इस अवस्था में भी कीमत तथा उत्पादन में कोई परिवर्तन नहीं होता क्योंकि लागत व MC_1 भी अन्तराल HR से गुजर रहा है।

इसी प्रकार Kink Demand Curve Theory यह स्पष्ट करती है कि मांग की दशाओं में परिवर्तन की स्थिति में भी कीमत स्थिर रहती है।

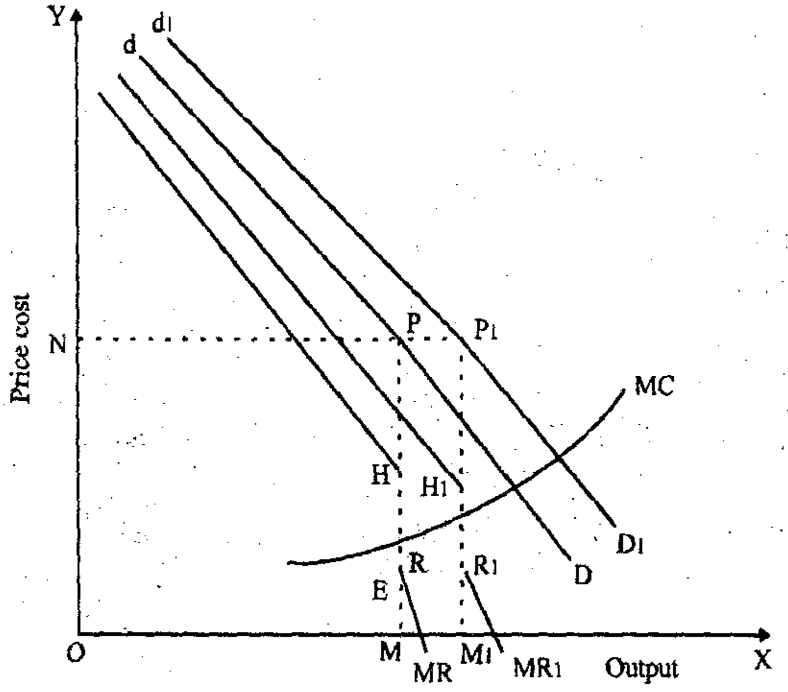

इस चित्र में यह स्पष्ट किया गया है जिसमें जबकि अल्पाधिकारी के पदार्थ की मांग dPD से बढ़कर $d_1P_1D_1$ हो जाती है तो दिया हुआ सीमान्त लागत व MC नए सीमान्त आय व MR_1 के अन्तराल से गुजरता है इसका अर्थ यह है कि मांग से परिवर्तन होने पर भी अल्पाधिकारी के अन्तर्गत कीमत $(MP = M_1P_1)$ ही प्रचलित रहेगी। इनकी स्पष्ट व्याख्या निम्न प्रकार से की जा सकती है।

1. **लागत में कमी (Decline in Costs) :** जब उत्पादन में कमी होती है तो कीमत के स्थिर रहने की सम्भावना रहती है। जब उत्पादन लागत गिरती है तो वर्तमान कीमत से मांग वक्र का ऊपर का मांग अधिक लोचदार हो जाएगा क्योंकि कम लागतों के साथ ही यह सम्भावना होती है कि अल्पाधिकारी द्वारा कीमत बढ़ाये जाने पर उसके प्रतिद्वन्द्वी अपनी कीमतों में वृद्धि नहीं करेगें और इससे अल्पाधिकारी की बिक्री बढ़ जाएगी। दूसरी ओर, लागतों में कमी होने पर वर्तमान कीमत के नीचे वाला भाग अधिक बेलोचदार बन जाएगा क्योंकि लागतों में गिरावट के कारण इस बात की सम्भावना है कि अल्पाधिकारी द्वारा कीमत कम कर दिए जाने पर इसके प्रतिद्वन्द्वी भी कीमत को कम कर देगें।

2. **लागतों में वृद्धि (Rise in Cost) :** यदि अल्पाधिकारी उद्योग की लागत में वृद्धि हो जाए तो कीमत स्थिर नहीं रहेगी। जब उद्योग की लागत बढ़ जाती है तो एक अल्पाधिकारी उचित रूप से यह सोच सकता है कि उसके द्वारा कीमत में वृद्धि करने पर उद्योग के अन्य उत्पादक भी उसका अनुसरण करेगें। परिणामस्वरूप वर्तमान कीमत स्तर से मांग वक्र का ऊपर का भाग कम लोचदार बन जाएगा और फलतः dPD कोण एक अधिक कोण बन जाएगा जिससे सीमान्त आय वक्र में अन्तराल कम हो जाएगा। यह अन्तराल छोटा होने पर नया सीमान्त लागत वक्र इसको H बिन्दु के ऊपर काटेगा, जिससे यह पता चलता है कि सन्तुलन कीमत बढ़ जाएगी तथा उत्पादन घट जाएगा।

3. **मांग में कमी (Descries in Demand) :** मांग में कमी होने से कीमत स्थिर ही रहेगी। जब मांग गिरती है तो यह निश्चित हो जाता है कि यदि कोई अल्पाधिकारी कीमत में कमी करने की प्रक्रिया शुरू करता है तो अन्य भी इसका अनुसरण करेगें जिसके परिणाम स्वरूप मांग व का निचला भाग अधिक बेलोचदार हो जाएगा। दूसरी ओर मांग कम होने की स्थिति में यह प्रायः निश्चित है कि एक अल्पाधिकारी द्वारा कीमत अधिक करने की स्थिति में अन्य अल्पाधिकारी उसका अनुसरण नहीं करेंगे। परिणामस्वरूप मांग वक्र

का ऊपर वाला भाग अधिक लोचदार बन जाएगा। इससे पता चलता है कि मांग के कम होने पर कीमत के अपरिवर्तन रहने की सम्भावना है।

4. **मांग में वृद्धि (Increase in Demand):** जब मांग में वृद्धि हो जाती है तो कीमत में स्थिर रहने की सम्भावना नहीं है। इसके स्थान पर कीमत में वृद्धि की सम्भावना है। मांग में वृद्धि की दशा में एक अल्पाधिकारी यह आशा करता है कि वह कीमतों में वृद्धि करता है तो उसके प्रतियोगी सम्भवतः उसका अनुसरण करेंगें। इसलिए मांग वक्र का ऊपर वाला भाग dP कम लोचदार बन जाएगा परिणामस्वरूप सीमान्त आय व में HR अन्तराल कम हो जाएगा और यदि यह अन्तराल बहुत कम हो जाता है इस बात की सम्भावना अधिक है कि सीमान्त लागत व सीमान्त आय व MR को H बिन्दु के ऊपर अर्थात् अन्तराल के ऊपर काटेगा इससे यह पता चलता है कि कीमत MP से अधिक हो जाएगी।

इस विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि अल्पाधिकारी का Kinked Demand Curve विश्लेषण गिरती लागतों या गिरती मांग की दशाओं में कीमत स्थिरता की व्याख्या करता है। जबकि लागतों के बढ़ने या मांग के बढ़ने पर कीमतों के बढ़ने की सम्भावना होती है।

Cartel's Aiming Joint Profit Maximization

Cartel से अभिप्राय प्रतियोगी oligopolitist के मध्य उस प्रत्यक्ष समझौते से है जो छुपे रूप से किया जाता है ताकि Mutual independence के कारण बाजार में जो अनिश्चितता उत्पन्न होती है, को कम किया जा सकें। यहा हम industry के joint profit को cartel के अन्तर्गत कैसे maximize किया जाता है, करेंगें। एक प्रकार से यह ऐसी अवस्था है जिसमें कई उत्पादन इकाइयों वाला एकाधिकारी अपने लाभ को अधिकतम करना चाहता है, यहा हम pur oligopoly अर्थात् जहां सभी फर्में homogenous product उत्पादित करती है हमारे अध्ययन का केन्द्र बिन्दु है। Differentiated oligopoly का अध्ययन बाद में किया जा सकता है।

Oligopoly एक central agency की स्थापना करती है किस को ये शक्तियां प्रदान की जाती है कि वह न केवल group या industry के profit को maximise करने के लिए कुल उत्पादन की मात्रा और कीमत का निर्धारण करती है बल्कि cartels के members के मध्य उत्पादन का बँटवारा, profit agency व्यक्तिगत् फर्मो के cost curves की जानकारी रखती है और इसके साथ ही वस्तु का market demand curve और उससे सम्बन्धित MR curve की भी उसे जानकारी होती है। व्यक्तिगत् फर्मों के MC curves का Horizental Summation किया जाता है ताकि market MC प्राप्त किया जा सके। इसके बाद *central agency industry marginal revenue* और *marginal cost* के काटने पर कीमत का निर्धारण करती है और उत्पादन का भी निर्धारण करती है।

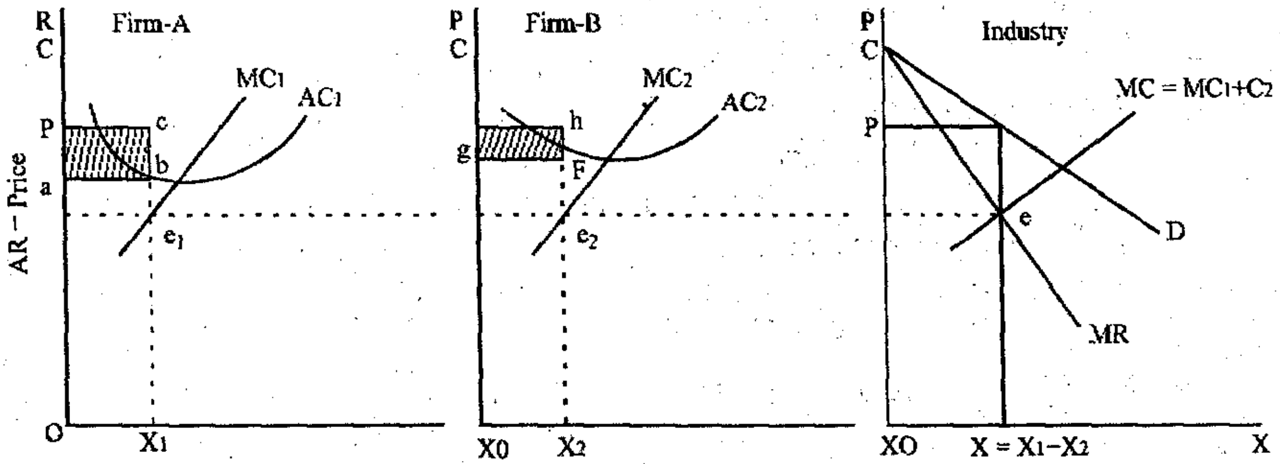

मान लीजिए cartel में दो फर्में हैं। उनके cost structure चित्र 1 व 2 में दर्शाये गये हैं। MC curve के Horizantal summation के आधार पर market MC curve प्राप्त किया जाता है क्योंकि cartel का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है इसलिए इस उद्योग का उत्पादन वहां निर्धारित किया जाएगा जहां MC MR को काटता है।

स्पष्ट है कि cartel central agency कम से कम सम्भावित लागत पर उत्पादन करती है। इस प्रकार A और B फर्में कुल उत्पादन का इतना–इतना मांग उत्पादित करेगी जहां उनके marginal cost market MR के बराबर हो सकें जैसा कि निम्न चित्र में दर्शाया गया है कि फर्म A X_1 का उत्पादन फर्में B X_2 का जो दोनो को जमा करने से उद्योग के output X के बराबर होता है।

यह कुल उत्पादन (X) P कीमत पर बेचा जाएगा। इसके बाद central agency उत्पादन का फर्म A और B में इस प्रकार से बटंवारा करेगी ताकि उद्योग का MR व्यक्तिगत MC के बराबर हो। इस प्रकार फर्म A Product X_1 and firm B Produces X_2 ध्यान देने की बात यह है कि निम्न लागत वाली फर्म अधिक मात्रा का उत्पादन करती है परन्तु कुछ भी हो इसका अर्थ ये नहीं है कि A कुल लाभ का अधिक भाग प्राप्त करेगी क्योंकि industry का कुल लाभ दोनों फर्मो के मिले जुले उत्पादन के आधार पर प्राप्त होता है जिसको चित्र में Shaded Area से दर्शाया गया है। परन्तु इन दोनों फर्मो का Shaded Area के बराबर ही लाभ प्राप्त हो ऐसा नहीं है। Profit का बटँवारा वास्तव में cartel की central agency द्वारा किया जाता है।

Critical Evaluation

सैद्धान्तिक तौर पर monopoly solution प्राप्त करना बड़ा सरल है। परन्तु व्यवहार में cartels कभी–कभी ही maximum joint profit प्राप्त करते हैं इसके बहुत से कारण है जो निम्न प्रकार से है –

1. उपरोक्त विश्लेषण में फर्म की cost and demand को identical माना गया है परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं होता।
2. Market Demand का भी सही–सही अनुमान नहीं लगाया जा सकता। फर्मे विश्वास करती है कि उनकी अपनी मांग व अधिक लोचशील होती है। क्योंकि वे समझते है कि प्रतियोगियों की वस्तुएं Project Substicate है। परन्तु व्यवहार में देखने से पता चलता है कि उद्योग की मांग बहुत कम लोचशील होती है।
3. MC का भी सही–सही अनुमान नहीं लगाया जा सकता । Industry का MC को जोड़ कर प्राप्त किया जाता है। परन्तु भिन्न–भिन्न उत्पादन स्तरों पर फर्मो की MC कितनी–कितनी होगी के बारे में सही सूचना प्राप्त नहीं हो सकती।
4. Cartels उत्पादन व कीमत निर्धारण से सम्बन्धित निर्णय करने में बहुत समय लेते है क्योंकि उनकी लागतें उत्पादन costs में अन्तर पाया जाता है। यदि लगभग 20 फर्मे cartel के सदस्य बनती हैं, तो पहले तो उनमें समझौता होना ही कठिन है और यदि हो भी जाता है तो शीघ्र टूट जाता है।
5. सौदाबाजी की प्रक्रिया (Bragaining Process) में सदस्यों का दृष्टिकोण धोखेबाजी वाला होता है। कुछ फर्मे कीमत घटाने का प्रयास करती है ताकि उनकी बिक्री अधिक हो सके और वे बाजार का अधिक बड़ा हिस्सा प्राप्त करने की कोशिश करती है।
6. कुछ फर्मे high cost वाली होती है यदि एक फर्म ऐसी परिस्थिति में उत्पादन कर रही है जिससे सन्तुलन वाली MC से अर्थ है। स्पष्ट है ऐसी फर्मे को उत्पादन बन्द कर देना चाहिए यदि उद्योग का Profit अधिकतम करना है तो जैसा निम्न चित्र में फर्म C की अवस्था। परन्तु कोई भी फर्म cartel को प्रवेश नहीं करेगी यदि उसे अपना उत्पादन बन्द करना पड़े। जैसा निम्न चित्र से स्पष्ट है।

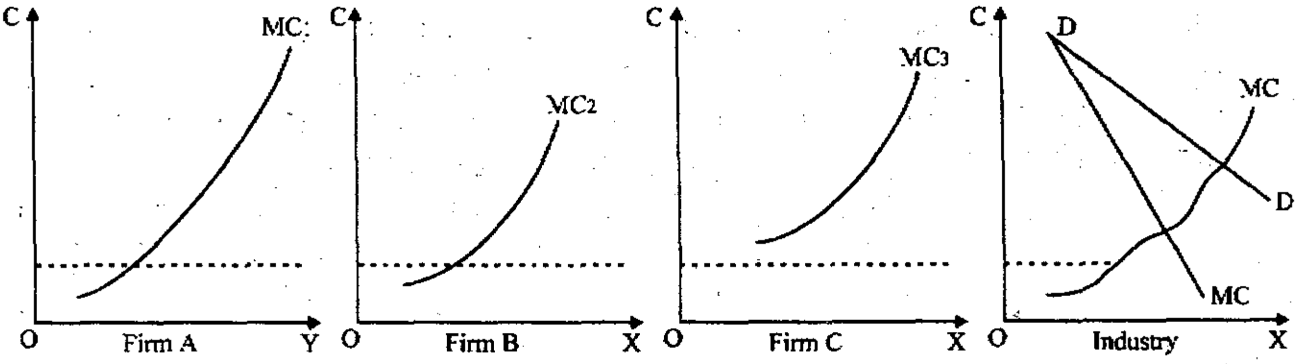

7. यदि cartel members को बहुत अधिक लाभ प्राप्त हो रहा है तो सरकारी हस्तक्षेप का डर उत्पादन रहता है।
8. Cartel के सदस्य अपनी good public image बनाने के लिए हो सकता है कि maximum profit उद्देश्य ही न रखे इसलिए उपरोक्त maximization of profit like monopoly का विश्लेषण उचित नहीं माना गया।
9. यदि cartel member बहुत अधिक लाभ कमा रहे हैं तो यह डर भी उत्पन्न होता है कि बाहर से फर्में प्रवेश कर सकती हैं।

विलिन होना (Marger of the firms)

एक जैसी वस्तु का उत्पादन करने वाली विभिन्न फर्में प्रतियोगिता से बचने के लिए एक दूसरे में merge हो जाती हैं।

भारत में और अन्य दूसरे देशों में कमजोर बैंको को बड़े बैंकों के साथ merging कानूनी मान्यता प्राप्त है। cartel और merging में यह अन्तर है कि merging को कानूनी मान्यता प्राप्त होती है जबकि cartel को कानूनी मान्यता प्राप्त नहीं होती क्योंकि cartel का उद्देश्य सदस्य फर्म के लाभ को अधिकता करना होता है इसलिए ऊँची कीमत व कम उत्पादन सामाजिक कल्याण के विरूद्ध है। इसलिए cartel को कानूनी मान्यता नहीं दी जाती।

Market Sharing Cartels

Market Sharing Cartels अधिक popular होने के कारण व्यवहार में अधिकतर अपनाया जाता है। फर्में Market के हिस्से पर सहमति कर लेती है कि फर्म को मांग का मांग कितना भाग सन्तुष्ट करना है। परन्तु बहुत सी अन्य क्रियाएं जैसे कि उत्पादन में भिन्नता, advertisment आदि में स्वतंत्रता अपना सकती है।

Market Sharing के दो Basic method हैं : Non Price Comptetion and Determination of Quotas (कोटाश) copy

1. **Non Price Competition Agreements :** इस प्रकार की cartel की रचना के अन्तर्गत फर्में एक common price पर सहमत हो जाती है। इस पर वो मांगी गई वस्तु की कितनी ही मात्रा बच सकती है। इसके अन्तर्गत कीमत का निर्धारण Low Cost Firm की सहमति से होता है। Low Cost फर्म कम कीमत के लिए दबाव डालती है और High Cost Firms ऊँची कीमत के लिए। इस प्रकार की सहमति से जो कीमत तय की जाती है वो ऐसी होनी चाहिए जो ऊँचे Profit दिलवा सके। फर्में cartel price से भिन्न कीमत पर बेचने के लिए सहमत हो जाती है परन्तु अपनी वस्तु की style और वस्तु को बेचने के ढंग Advertising cost के सम्बन्ध में स्वतन्त्र होती है। दूसरे शब्दों में the firm compet on the non price basis। अपनी वस्तु के रूप व गुण और Advertising के सम्बन्ध में अनुमान लगाते हुए प्रत्येक फर्म आशा करती है कि वह market का बड़ा हिस्सा प्राप्त कर सकती है। Cartel की इस प्रकार की संरचना वास्तव में ढीली (Loose) होती है अर्थात यह अधिक Unstable होती है। उस complete cartel से जिसका उद्देश्य joint profit maximization होता है। यदि सभी फर्में समान लागते वाली होती तो वे monopoly price पर सहमति कर लेती है। परन्तु फर्मो के cost differences के कारण low cost firm के लिए cartel से अलग हटने की प्रेरणा काफी अधिक होती है और ये फर्म lower price रखना चाहती है या ये फर्म अपने ग्राहको को secret price concession देकर एक दूसरे सदस्य को धोखा देती हैं। परन्तु इस प्रकार की धोखाधड़ी (Cheeting) cartel के अन्य सदस्यों को तुरन्त मालूम हो जाती है क्योंकि उनके ग्राहक कम होने लग जाते हैं और उनके मध्य price war के कारण instability का माहौल उत्पन्न होता है और यह बना रहता है जब तक धोखा देने वाली फर्म business से बाहर नहीं हो जाती। इस प्रकार की नीति सफल होती है या नहीं, कई बातों पर निर्भर करता है जैसे कि उनकी लागतों में अन्तर, liquidity position और price war के दौरान आज्ञाकारी सदस्यों (obident member) की हानि उठाने की योग्यता आदि।

निम्न चित्र में दर्शाया गया है कि फर्म B फर्म A से कम लागतों पर उत्पादन करती है इसलिए B को प्रेरणा प्राप्त होती है कि cartel price से कीमत को नीचे रखा जाए और अधिक market को छीन लिया जाए।

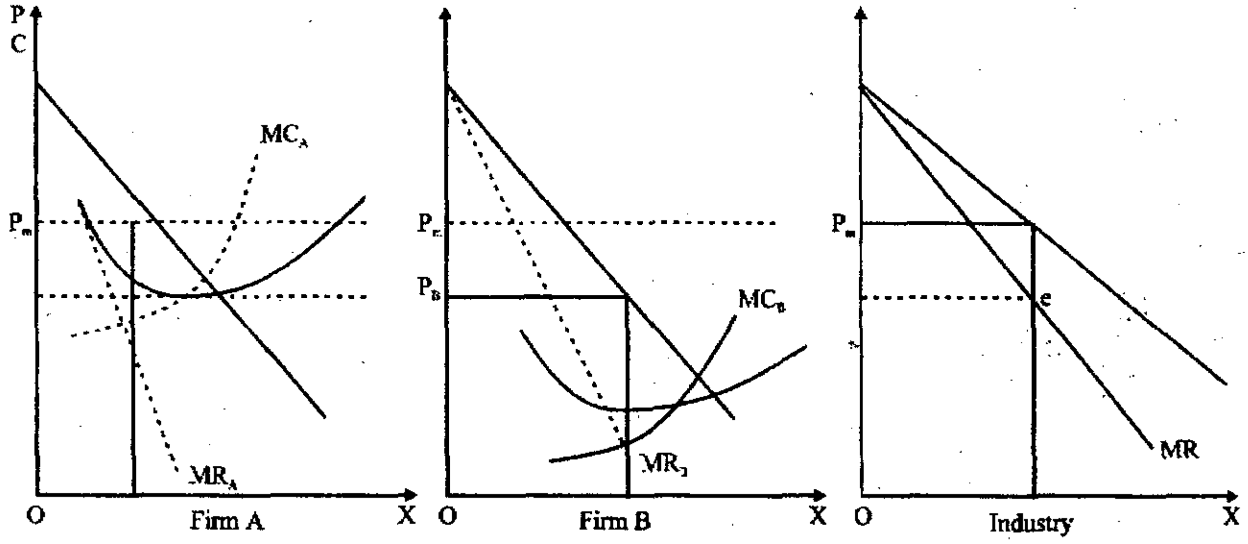

यदि सभी फर्मों के cost structure समान भी हो, तभी भी ये cartel अस्थिरता में निहित है (inherently unstable) क्योंकि यदि एक भी फर्म cartel से अलग होकर कीमत कम निर्धारित करती है और अन्य फर्में cartel में बनी रहे तब अलग होने वाली फर्म काफी मात्रा में ग्राहकों को आकर्षित करेगी और दूसरे के ग्राहक कम होने के कारण उनकी मांग गिर जाएगी। अलग होने वाली फर्मों के लाभ बढ़ेगें सभी फर्में cartel को छोड़ने की वैसी ही प्रेरणा रखते हैं. इसलिए cartel में हमेशा unfit unstability का माहौल बना रहता है, जब तक सख्त कानून न बना दिये जाए। open collusion क्योंकि गैरकानूनी है। यह कहना गलत नहीं होगा कि cartel प्रायः short lived होते हैं।

Sharing of the Market by Agreement on Quotas

इस प्रकार के curve के अन्तर्गत सहमति से निर्धारित की गई कीमत पर सदस्य कितनी–कितनी मात्रा बेचेगें, पर भी सहमति की जाती है। यदि सभी फर्मों की indentical cost है तो monopoly solution प्राप्त होगा और सभी member market को बराबर–बराबर बांटेगे। उदाहरणतः यदि केवल दो ही फर्में है और उनकी लागतें भी समरूप (identical) हैं तो प्रत्येक फर्म बाजार की कुल मांग का आधा भाग monopoly price पर बेचेगी। निम्न चित्र में दर्शाया गया है कि P/M (monopoly price) पर प्रत्येक फर्म का agreed quota $X_1=X_2= ½ X m_1$परन्तु यदि लागतों में भिन्नता हो तब एक फर्म का हिस्सा दूसरी फर्म से भिन्न होगा परन्तु Market के हिस्से का बंटवारा जो लागतों के आधार पर किया जाता है, भी unstable होगा। क्योंकि cost में भिन्नता होने पर market में हिस्सा सौदाबाजी के आधार पर निर्धारित होता है। इस प्रकार प्रत्येक फर्म का final quota उस फर्म की लागतों के स्तर और सौदाबाजी (bargaining power) पर निर्भर करता है। सौदाबाजी की प्रक्रिया के दौरान मुख्य statistical criteria अपनाये जाते हैं।

i) प्रत्येक फर्म का quota उनकी past level of sales के आधार पर निर्धारित होता है।

ii) प्रत्येक फर्म का quota (हिस्सा) उनकी production capacity के आधार पर निर्धारित हो सकता है।

Market के हिस्सों को निर्धारित करने का दूसरा महत्त्वपूर्ण तरीका क्षेत्र की सीमा निर्धारित करना जिसमें firm is allowed to sell his product। इस प्रकार के बाजार की geographical sharing के अन्तर्गत वस्तु की कीमत और वस्तु की kind quality अलग–अलग हो सकते हैं। क्षेत्रानुसार market sharing cartel के बहुत से उदाहरण हैं उनमें कुछ अन्तराष्ट्रीय स्तर पर भी काम कर रहे होते हैं। चाहे कुछ भी हो, क्षेत्रों के विभाजन भी अस्थिरता जनित है (inherently unstable)। क्योंकि व्यवहार में regional agreements का भी उल्लंघन होता है। यह गलती से भी हो सकता है और जानबुझ कर भी। यह low cost firm द्वारा किया जाता है जो हमेशा अपने बाजार का विस्तार करना चाहती है और खुले आम कम कीमत में बेचती है। ये फर्में साथ लगे बाजारों में खुले या छुपे रूप में वस्तुएं बेचने लग जाती है।

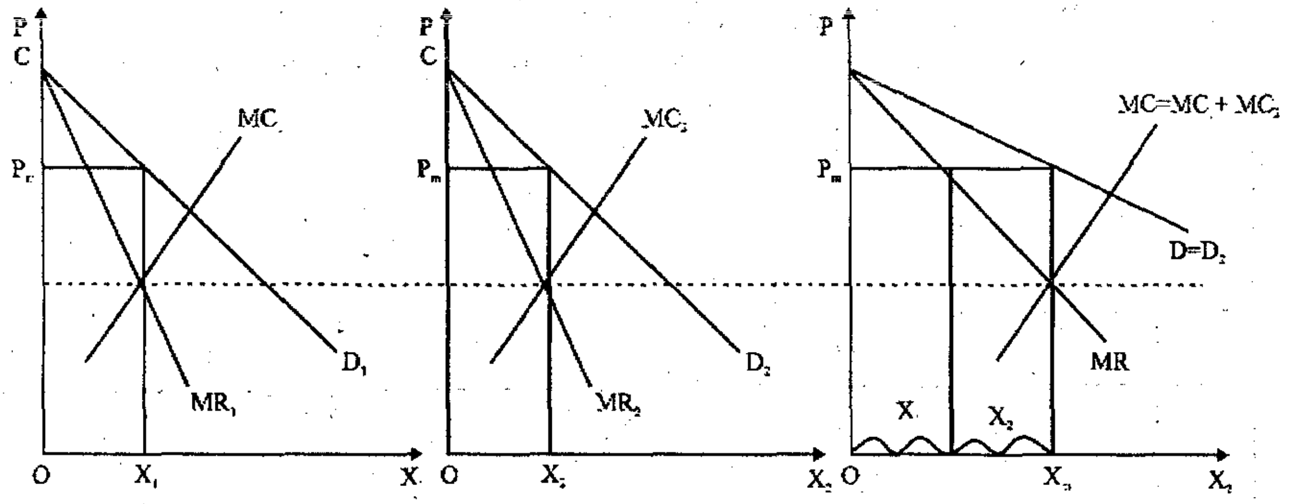

Cartel बाहर की फर्मों के प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए सामान्यता कम कीमत पर बस्तुए बेचती हैं क्योंकि उन्हें भय होता है कि बाहर की फर्में लालायित होकर प्रवेश कर जाती है तो cartel उस फर्म के साथ price war शुरू कर देता है। New comer survive करता है या नहीं यह उसकी आर्थिक अस्थिरता पर निर्भर करता है। Oliyopoly में हमेशा अस्थिरता का माहौल बना रहता है।

Price Leadership

Price Leadership collusion की ही एक संरचना है। इसके अन्तर्गत एक फर्म कीमत निर्धारित करती है। अन्य फर्में उस कीमत का अनुकरण करती है। अनिश्चितत और अस्थिरता से बचने के लिए oligopolistic फर्मों के मध्य इस सफाई का समझौता हो जाता है। Business world में price leadership से सम्बन्धित समझौता छुपे रूप में होता है क्योंकि open collosive agreement गैर कानूनी होते हैं।

Price Leadership cartel की अपेक्षा अधिक अपनाया जाता है क्योंकि price leadership के अर्न्तगत सदस्यों को वस्तु और selling activities के प्रति पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। इसलिए सदस्यों को पूर्ण cartel की अपेक्षा यह ज्यादा स्वीकार्य होती है जबकि cartel के अन्तर्गत सभी तरह के निर्णय central agency द्वारा किये जाते हैं और सदस्यों को मानने होते हैं।

यदि वस्तुए समरूप है और सभी फर्में एक ही स्थान पर केन्द्रित हैं, और परिस्थिति में price leadership व्यवस्था के अन्तर्गत एक ही कीमत अपनाई जाएगी। परन्तु, यदि उन की वस्तुओं में विभेद पाया जाता है तो कीमतों में अन्तर होगा। परन्तु कीमतों में परिवर्तन की दिशा एक जैसी होती हैं।

Price Leadership की विभिन्न आकृतियां हो सकती हैं परन्तु उनकी मुख्य किस्में (प्रकार) तीन प्रकार की हैं जैसे कि

a) Price leadership by a low cost firm
b) Price leadership by a large (dominant) firm
c) Barmometric price leadership

Price leadership की ये आकृतियां traditional theory के अन्तर्गत आती हैं और इनका प्रतिपादन Fellner आदि अर्थशास्त्रियों ने किया। Traditional theory की विशेषता सर्वविदित है कि फर्म इसके अन्तर्गत marginalistic rules को कीमत और उत्पादन के निर्धारण में अपनाती हैं अर्थात् सन्तुलन वहां पर होता है, जहां MC, MR को नीचे से काटता है। price leadership के लिए जो नियम अपनाया जाता है वह है $MC = MR_1$ अन्य फर्में price takers होती है और सामान्यतः वे अपने लाभ को अधिकतम नहीं कर पाती। यदि वे अधिकतम लाभ प्राप्त करती हैं तो यह आकस्मिक घटना होगी।

A. **The Model of Low Cost Price Leader :** इस Model को duopoly के मद्देनजर रखते हुए व्यक्त किया गया

है। यह कल्पना की गई है कि दो फर्में है जो homoioneous product को विभिन्न लागतों पर उत्पादित कर रही हैं। स्पष्ट है, समरूपता के कारण वे एक ही कीमत पर अपने उत्पादन को बेचती हैं। दोनों फर्में समझौता कर सकती है कि वे बाजार में बराबर–बराबर मात्राएं बेचेगी जैसा निम्न चित्र – I में दर्शाया गया है या वे समझौता कर सकती है कि उनका बाजार का हिस्सा भिन्न–भिन्न होगा जैसा निम्न चित्र – II में दर्शाया गया है। ध्यान रहे कि Model की महत्वपूर्ण शर्त यह है कि फर्मों की cost समान नहीं है।

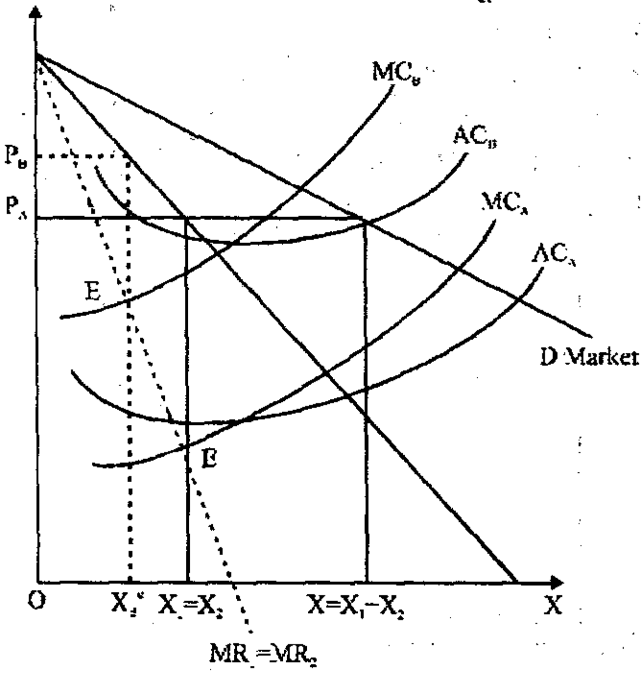

चित्र - I
Low-cost Price leader Firms with equal market shares

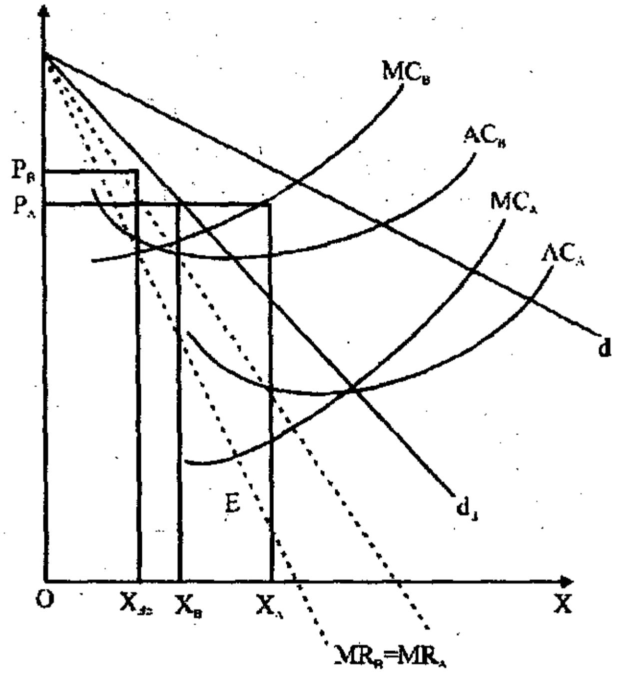

चित्र - II
Low-cost Price Leader Firms with equal market shares

चित्र – I में lowest cot फर्म A निम्न कीमत (P_A) निर्धारित करती है और high cost firm इसका अनुसरण करती है। यद्यपि इस कीमत पर अधिकतम लाभ प्राप्त नहीं करती। फर्म B अधिकतम लाभ प्राप्त ऊँची कीमत P_B और निम्न उत्पादन X_B पर प्राप्त कर सकती है जहां उसको Marginal Cost MR को काटता रहा है। परन्तु यह फर्म leader को follow करती है और price war से बचने के लिए अपने कुछ लाभ का त्याग करती है। यदि price leader A कीमत को इतना नीचे रखता है जो B की LAC भी कम है तो B को बाजार छोड़ना पड़ सकता है। leader को अपने लाभों को अधिकतम करने के लिए कीमत P_A पर स्थापित करता है और X_A उत्पादन को बेचता है। इसका अर्थ यही हुआ की कि follower चित्र – II के अनुसार OX_B या चित्र – I में $OX_1 = OX_2$ वस्तु की मात्रा अवश्य supply करे ताकि leader द्वारा निर्धारित कीमत को कायम रखा जा सके। यद्यपि price leadership model निर्धारण करे और follower उसे अपनाये। इतना ही नहीं बल्कि फर्म को समझौते के अनुसार इतना उत्पादन करना हो जो उसके बाजार के हिस्से को पूरा कर सके अन्यथा ये हो सकता है कि follower leader की कीमत को तो अपना लेता है परन्तु कम मात्रा उत्पन्न करता है ताकि कीमत बढ़ सके और price leader को उसकी अधिकतम लाभ की स्थिति से विचलित किया जा सके। यहां पर Price fully passive (निष्क्रिय) नहीं है क्योंकि वह एक ऐसी स्थिति उत्पन्न कर सकती है जो leader को non-maximising स्थिति में स्थापित कर देती है इसलिए समझौते में quota share agreement स्पष्ट रूप से किया जाना चाहिए।

B. **The Model of the Dominant Firm Price Leader :** इस model में यह कल्पना की गई है कि एक large dominant firm है जो market का काफी मांग पूरा करती है और कुछ छोटी फर्में हैं जो Market का छोटा–छोटा हिस्सा पूरा करती है। भिन्न चित्र – I में market demand curve को दर्शाया गया है और यह कल्पना की गई

है कि इसकी जानकारी dominant फर्म को होती है। यह भी कल्पना की गई है कि dominant leader को छोटी फर्मों की MC curve की जानकारी भी होती है। इन छोटी फर्मों की Mariginal Cost को वह Horizontely add कर सकता है और इस प्रकार जानकारी प्राप्त करता है कि विभिन्न कीमतों पर छोटी फर्में कितनी–कितनी मात्रा supply करती है या अपने या Past Experience के आधार पर अनुमान लगा सकती है कि विभिन्न कीमतों पर ये फर्में कितना–कितना उत्पादन supply करती हैं। इतनी जानकारी होने पर leader निम्न प्रकार से अपना मांग वक्र प्राप्त कर सकता है। प्रत्येक कीमत पर यह larger firm total market के उस मांग फर्मों द्वारा supply नहीं किया गया अर्थात् प्रत्येक कीमत पर leader की वस्तु की मांग total demand (D) और उसी कीमत पर total supply के मध्य अन्तर होगा। उदाहरणतः P_1 कीमत पर leader की वस्तु की मांग शून्य होगी क्योंकि कुल मांगी गई मात्रा (D_1) samller फर्म द्वारा पूरी कर दी जाती है। अब ज्यों कीमत P_1 से नीचे गिरती है तो leader की मांग बढ़ती है जैसा निम्न चित्र में दर्शाया गया है।

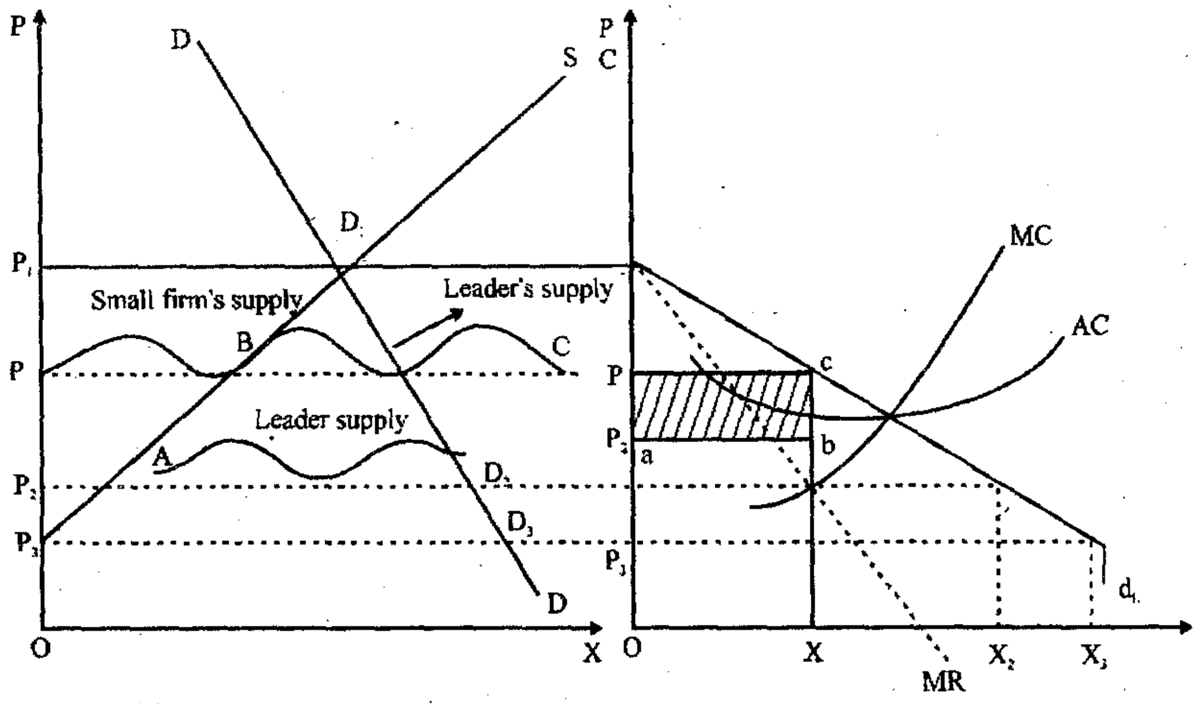

चित्र – I　　　　चित्र – II

P_2 कीमत पर कुल मांग D_2 है। कुल मांग का P_2A मांग small firms द्वारा supply किया जाता है और बाकी AP_2 मांग leader फर्म द्वारा किया जाता है। P_3 कीमत पर कुल मांग D_3 है और सारी मांगी गई मात्रा leader firm द्वारा पूरी की जाती है क्योंकि उस कीमत पर small firm कोई मात्रा की पूर्ति नहीं करती। P_3 से नीचे leader का मांग वक्र और Market का मांग वक्र एक ही होता है।

Leader फर्म की मांग व चित्र – II में D_2 के द्वारा दर्शायी गई है और इसका MC व MR के बराबर होकर P कीमत पर निर्धारण करता है P कीमत पर कुल बाजार मांग PC है और PB मांग छोटी फर्मों द्वारा supply किया जाता है जबकि PC = OX leader फर्म द्वारा supply किया जाता है।

Dominant फर्म अपने profit को अधिकतम कर जाती है क्योंकि उनके MC बराबर है जबकि smaller firm price takers हैं और वे अपने लाभ को अधिकतम कर सकती है और नही भी, वह उनके cost structure पर निर्भर करता है। यह कल्पना की गई है smaller firm S_t पूर्ति से अधिक supply नहीं कर सकती। परन्तु leader firm को यह निश्चित करना होगा यदि वह अधिकतम लाभ कमाना चाहती है कि small फर्म न केवल उसकी कीमत का अनुकरण करेगी परन्तु वे सही मात्रा भी, जैसा कि P_D मात्रा P कीमत पर उत्पादित करती है। इस प्रकार

यदि market के हिस्से ठीक प्रकार से उत्पादित समझौते अनुसार नहीं किये जाते तब small फर्म कम उत्पादन कर सकती है P_B की अपेक्षा, और इस प्रकार leader को Maximising position से विचलित कर देगी।

Criticism of the Price Leadership Model

Leader फर्म अपनी कीमत दूसरों पर तभी impose कर सकती है जब वह low cost फर्म भी हो और एक large फर्म भी हो। यद्यपि दो अलग–अलग Model विकसित किये गये हैं एक वह जिसमें low cost firm leader और दूसरी जिसमें dominant फर्म leader है। व्यवहार में leader की शक्ति इन दोनों पर निर्भर करती है यदि एक फर्म low cost है परन्तु अपने leader की तुलना में बहुत छोटी है। उस परिस्थिति में वह छोटी फर्म dominant फर्म का मुकाबला नहीं कर सकती, यदि dominant फर्म price war या advertising या product war शुरू कर देती है। दूसरी तरफ यदि dominant फर्म की लागतें ऊँची है तब भी यह अपनी कीमतों को अन्य पर impose नहीं कर सकती। उदाहरणतः यदि dominant firm price बढ़ाना चाहती है तो छोटी फर्में जिनकी लागतें कम है सामान्यतः कीमतें नहीं बढ़ाएगी।

जब तक leader फर्म एक low cost और large फर्म नहीं है तब तक वह कीमतों के निर्धारण में मनमानी नहीं कर सकती। उस परिस्थिति में वह कीमत न घटा पाती है और न बढ़ा पाती है अर्थात् मांग वक्र पर एक प्रकार का kink उत्पन्न हो जाता है।

वस्तविक जगत में सामान्य तर्क यह दिया जाता है कि ऐसी बहुत सी अवस्थाएं है जहां कीमत में परिवर्तन न तो large firm द्वारा किया जाता है और न low cost firm द्वारा। मन्दी की अवस्था में जिस फर्म के नकदी जल्दी समाप्त हो जाते हैं वह कीमत में कटौती करना शुरू कर देती है ताकि तुरन्त नकदी प्राप्त हो सके। इस प्रकार price निर्धारण में leader का कोई महत्त्व नहीं रहता।

यदि dominant फर्म हताश (desperate) होने के कारण कुछ नकदी प्राप्त करना चाहती है। और इसके लिए कीमत कम कर देती है तब निश्चित रूप से यह फर्म price leader नहीं कही जा सकती क्योंकि price cutting फर्म की खराब स्थिति के कारण की गई है न कि इसलिए कि उसको ऐसा करने की power है और वह as price leadership वह सही कदम उठा रही है।

A Dominant firm अपनी leadership की स्थिति को खो देता है, यदि वह low cost फर्म नहीं रहती या बाजार का बड़ा हिस्सा उसके हाथों से निकल जाता है। वास्तव में leadership वास्तविक जगत में समय–समय पर बदलती रहती है। इस प्रकार competing oligopolist के अन्तर्गत उनकी product में innovation या अन्य कारण से घूमती रहती है।

बुत सी परिस्थितियों में अनेक फर्म हो सकती है जिनका size और cost एक जैसे हैं। उस अवस्था में leadership कठिन हो जाती है। आम सहमति से leadership चुना जा सकता है न कि low cost या dominant firm होने के नाते।

यदि leader firm असामान्य लाभ कमा रही है तो बाहर से फर्म प्रवेश करती हैं और leader फर्म अपनी position को खो सकता है। इसलिए dominant फर्म अपने लाभ को अधिकतम न रखकर वास्तविक जगत में केवल इतना लाभ कमाती है कि बाहर की फर्मों की entry को रोका जा सकें।

अन्तिम आलोचना यह की जा सकती है कि new entrant फर्म प्रारम्भ में छोटी हो सकती है परन्तु अन्य फर्मों कर अपेक्षा उसकी *cost* निम्न हो सकती है, ऐसी *dynomic low cost firm* बाजार में अपना हिस्सा बढ़ाती चली जाती है और leader बन जाती है।

C. **Barometric Price Leadership :** इस model में इस बात पर सहमति होती है कि सभी फर्में एक फर्म द्वारा की गई कीमत में परिवर्तन का अनुकरण करती है जो फर्म प्रचलित बाजार की स्थितियों का अधिकतम

ज्ञान रखती होगीं और जो बाजार में होने वाले भविष्य में परिवर्तनों को दूसरों से अधिक अच्छी प्रकार भविष्यवाणी (forecast) कर सकती हो। संक्षिप्त में हम कह सकते हैं कि जिस फर्म को leader चुना जाता है वे इसको एक Barometric समझा जाता है जो economic envirorment को प्रतिबिम्बित करता (दर्शाता) है, The barometric firm may be neither a low cost nor a large firm. प्रायः यह एक ऐसी फर्म होती है जो अपने past behaviour के आधार पर आर्थिक परिवर्तनों पर अच्छी भविष्यवाणी की स्थिति स्थापित कर चुकी है। एक फर्म जो अन्य उद्योग से सम्बन्धित है, को भी barometric firm चुना जा सकता है। उदाहरणतः steel industry में एक फर्म motor car industry में कीमत परिवर्तन के लिए Baremetric स्वीकार किया जा सकता है। ऐसे price leadership के अनेक कारण हो सकते हैं

1. एक उद्योग में अनेक बड़ी फर्मों के मध्य प्रतिद्वन्द्विता (Rivalry) होने के कारण किसी एक को उनमें से एक leader स्वीकार करना असम्भव बना देती है।

2. अनुकरण करने वाली फर्म costes की गणना करती रहती है और ज्यों आर्थिक हालात बदलते हैं, से लागतें बदलती है तो कोई और फर्म low cost फर्म बन अपनी और वे किसी अन्य को price leader चुन लेती हैं।

3. Baromatric फर्म प्रायः किसी विशेष उद्योग में cost और demand condition में होने वाले परिवर्तनों को अच्छी प्रकार से forcast करने में सक्षम हो चुकी होती है और उसका अनुकरण करने में अन्य फर्में ये महसूस कर सकती है कि वे स्वयं correct price का चयन करती हैं।

अध्याय -18
एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता
(Monopolistic Competition)

Q. **Monopolistic Composition.**

Ans. एकाधिकारी प्रतियोगिता उस स्थिति को कहते हैं जिसमें किसी वस्तु के अनेक विशेषता अथवा उत्पादक होते हैं। किन्तु इन सब उत्पादकों की वस्तुओं में कुछ न कुछ अंतर पाया जाता है। इसके कारण वे एक दूसरी की पूर्ण स्थानापन्न न होकर अपूर्ण स्थानापन्न सिद्ध होती हैं। बाजार के इस रूप में प्रायः प्रत्येक फर्म का आधार इस प्रकार का होता है कि उसकी क्रियाओं का सम्पूर्ण बाजार पर प्रभाव न के बराबर होता है।

Assumptions

1. Large number of firms
2. Product differentiation (वस्तु विभेद)

   वस्तु विभेद वस्तु की किस्म, रंग रूप, आकार, ट्रेडमार्क लेबल, पैकिंग, विषय शर्तें आदि के आधार पर हो सकता है। वस्तु विभेद सभाधिकारी प्रतियोगी बाजार की सबसे प्रमुख विशेषता है।
3. Non price competition (गैर कीमत प्रतिस्पर्धा)

   प्रत्येक फर्म अपने ट्रेडमार्क या ब्राण्डनाम को ज्यादा से ज्यादा लोकप्रिय बनाने के लिए प्रचुर मात्रा में प्रचार एवं विज्ञापन व्यय करता है जिसे गैर कीमत प्रतिस्पर्धा कहते हैं।

   उपयोग के स्थान पर 'समूह' शब्द का प्रयोग किया गया है।
4. Concept of group in place of Industry
5. Preference of buyers and sellers
6. Freedom of entry and exit of firms.
7. Price policy (प्रत्येक फर्म की अपनी कीमत नीति होती है)
8. Selling cost.
9. Less mobility (स्थानों को छोड़ना)
10. Imperfect knowledge.
11. The price of factors and technology are given
12. Demand and cost comes of all producer are uniform throughout the group एक जैसे हैं।

Costs : एक अधिकारी प्रतियोगिता में लागतों का सम्बन्ध मुख्यतः विक्रय लागतों (Selling Costs)) से है क्योंकि एकाधिकारी प्रतियोगिता वाली फर्मों को अपना उत्पादन बनाने के लिए विज्ञापन तथा प्रचार पर वस्तु की बिक्री बढ़ाने के लिए उसके विज्ञापन तथा प्रचार पर जो कुछ धन खर्च किया जाता है उसे Selling cost कहा जाता

है। विक्रय लागत की आवश्यकता एकाधिकारी प्रतियोगिता में अधिक महसूस होती है। पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में तो सभी वस्तुएं समान (Homogeneous) होती हैं। अतः उन्हें वस्तु के विज्ञापन की कोई आवश्यकता नहीं होती है। एकाधिकारी की अवस्था में भी एक ही उत्पादन होता है। जब वह वस्तु का उत्पादन आरम्भ करता है तो ग्राहकों को उत्पादन की सूचना देने के लिए हो सकता है कि वह विज्ञापन आदि पर कुछ धन खर्च केवल सूचना मात्र (Information) होता है जब ग्राहकों को वस्तु के बारे में सूचना मिल जाती है तो विज्ञापन पर धन व्यय करने की जरूरत नहीं होती। अपूर्ण प्रतियोगिता में ग्राहकों को केवल वस्तु के संबंध में ही सूचना देना काफी नहीं होता बल्कि बार–बार उन्हें वस्तु के गुणों के विषय में याद दिलाना आवश्यक हो जाता है। अतः एकाधिकारी प्रतियोगिता में विक्रय लागत केवल सूचना मात्र ही नहीं होती बल्कि वह भाग परिवर्तन (Manipulative) तथा बिक्री की उन्नति (Sales promotion) के लिये आवश्यक होती है। अतः विक्रय लागतें वे लागतें हैं जो किसी वस्तु की बिक्री बढ़ाने के लिए विज्ञापन, प्रचार, सैल्समैन, प्रदर्शन, दुकानदारों को दिये जाने वाले कमीशन उपहार (Gift), रियायतें आदि के रूप में दी जाती है।

Assumptions : विक्रय लागतें दो मान्यताओं पर आधारित है –

i) विक्रेताओं की मांग तथा रुचि में परिवर्तन किया जा सकता है।

ii) Buyers को वस्तु की विभिन्न किस्मों का ज्ञान नहीं होता।

इन लागतों के फलस्वरूप फर्म अपने उत्पादन को लोकप्रिय बना सकती है और अधिक ग्राहकों को अपनी ओर आकर्षित कर सकती है।

प्रो० चेम्बरलिन के अनुसार विक्रय लागत U आकार (U-Shaped) होती है। इस चित्र में SS औसत विक्रय लागत वक्र है। यह वक्र पहले नीचे की ओर तथा फिर ऊपर की ओर उठ रहा है। इससे सिद्ध होता है कि आरंभ में विक्रय लागतों के अनुपात से बिक्री में अधिक वृद्धि होती है। परन्तु एक सीमा के बाद विक्रय लागत में होने वाली वृद्धि के अनुपात में वस्तु की बिक्री में कम वृद्धि होने लगती है। इसका अभिप्राय यह है कि एक सीमा तक प्रति इकाई विक्रय लागत कम होती है। परन्तु एक सीमा के बाद प्रति इकाई बिक्री लागत बढ़ने लगती है।

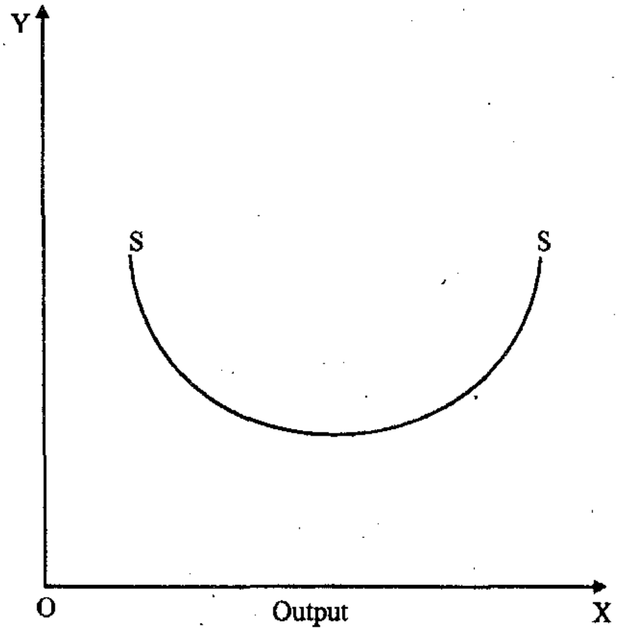

Product Differentiation

वस्तु विभेद एकाधिकारी प्रतियोगी बाजार की विभेदकारी एक प्रमुख विशेषता है। इस बाजार स्थिति में प्रत्येक उत्पादक या विक्रेता अपने उत्पादन का एक नया नाम, ब्राण्ड या ट्रेडमार्क लेकर प्रवेश करता है। इसीलिए एक ओर जहां उसे समूह की दूसरी फर्मों के उत्पादों (Products) से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है वहां उसी समय दूसरी ओर अपने ब्राण्ड या ट्रेडमार्क के कारण उसे आंशिक रूप से एकाधिकारी शक्ति भी प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए एटलस साइकिल निर्माताओं को अन्य साइकिल निर्माताओं से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है किन्तु देश की अन्य कोई फर्म एटलस नाम से साइकिल का उत्पादन करके बिक्री नहीं कर सकती। अतः यह नाम इसे अन्य साइकिलों से भिन्न कर देता है। वस्तु विभेद उसकी अथवा नकली हो सकता है। उदाहरण के लिए नहाने के साबुन एक दूसरे से काफी भिन्न भी हो सकते हैं और उनमें मात्र बनावटी अंतर भी हो सकता है। पेटेन्ट अधिकार, ट्रेडमार्क, ब्राण्ड, लेबल, पैकिंग साइज, डिजाइन, रंग–रूप, सुगन्ध, विपणन सुविधा आदि के आधार

पर फर्में वस्तु विभेद कर देती है। वस्तु विभेद से फर्में एक ही उत्पाद की अलग–अलग कीमतें वसूल कर अपना लाभ बढ़ा लेती है। वर्तमान में एक ही फर्म अपने उत्पाद में वस्तु विभेद कर लेती है और टी.वी. और अन्य उत्पादक अलग अलग मॉडलों की अलग–अलग कीमत वसूल करते हैं जबकि उनके बीच अंतर नाम मात्र का होता है। वस्तु विभेद में लोगों को अपनी पसंदगी के अनुसार वस्तु लेने का अवसर मिल जाता है। अतः इससे उपभोक्ताओं का संतुष्टि स्तर बढ़ जाता है।

Demand Curve

साधारणतया यह कहा जाता है कि एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में एक फर्म आवश्यकता को पूरा करने वाली विभेदीकृत वस्तुओं का उत्पादन करने वाली फर्में होती हैं, उनके उत्पाद आपस में निकट स्थानापन्न होते हैं।

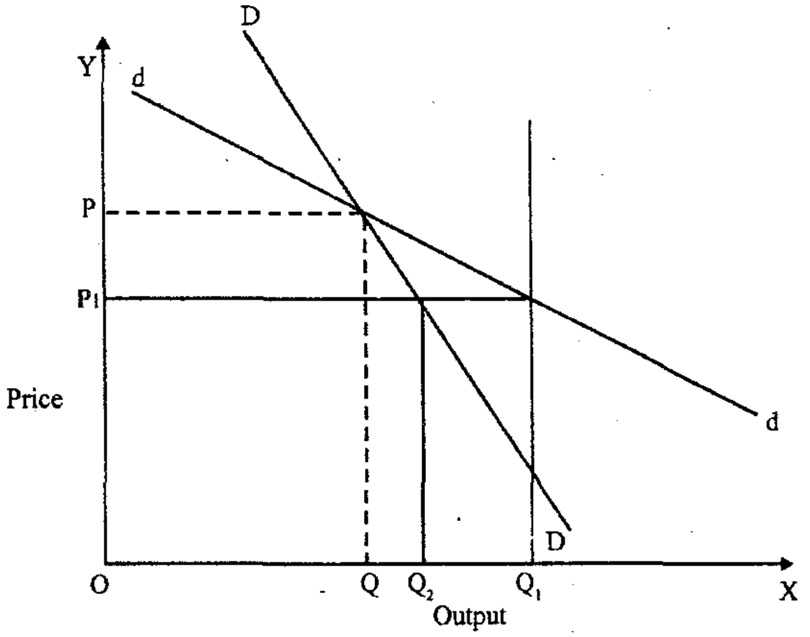

अतः फर्म विशेष के उत्पादन का मांग वक्र काफी लोचदार होता है। अर्थात् जब फर्म अपने उत्पाद की कीमत थोड़ी घटा देती है तब उसकी मांगी जाने वाली मात्रा में काफी वृद्धि हो जाती है और विपरीत स्थिति में जब कीमत बढ़ा देती है तो मांग – मात्रा काफी कम हो जाती है। क्योंकि ग्राहक उन फर्मो के उत्पादों की मांग करने लग जाते हैं जिनकी कीमत में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। ऐसा तब होता है जब फर्में आपस में कोई प्रतिस्पर्धा नहीं करती हैं। इस स्थिति में फर्म के मांग व को अपेक्षित मांग वक्र (anticipated demand curve) कहते हैं जिसे रेखाचित्र में dd द्वारा दिखाया गया है। परन्तु जैसाकि चैम्बरलिन ने बताया फर्में एक दूसरी की क्रियाओं पर नजर रखती हैं। अतः जैसे ही एक फर्म अपने उत्पाद की कीमत कम करती है, दूसरी फर्में भी प्रतिक्रियास्वरूप अपने उत्पादों की कीमतें घटाकर पहली फर्म के मंसूबों पर पानी फेर देती है। रेखाचित्र के अनुसार फर्म ने यह सोचकर कीमत में PP कमी की कि मांग–मात्रा वक्र OQ से बढ़कर OQ_1 हो जाएगी। किन्तु दूसरी फर्मो की प्रतिक्रिया के कारण अपेक्षित मांग वक्र dd से भिन्न फर्म का वास्तविक मांग वक्र DD हो जायेगा जो यह बताता है कि कीमत में PP_1 की कमी से मांग मात्रा में OQ_1 की वृद्धि न होकर वास्तव में केवल QQ_2 वृद्धि ही हो सकेगी।

समूह संतुलन

(Group Equilibrium)

जैसाकि एकाधिकारात्मक प्रतिस्पर्धा की परिभाषा से स्पष्ट है, इस बाजार स्थिति में विभिन्न फर्मों का उत्पाद पूर्ण प्रतिस्पर्धा की भांति समरूप एवं परस्पर पूर्ण स्थानापन्न नहीं होता बल्कि उत्पादन में वस्तु विभेद पाया जाने

के कारण वस्तुएं घटिया अथवा बढ़िया स्थानापन्न होती है। इसी कारण प्रो० चेम्बरलिन ने इन फर्मों के बारे में उद्योग शब्द का प्रयोग उचित नहीं समझा और उद्योग के स्थान पर 'समूह' की अवधारणा का स्पष्टीकरण एवं विकास किया। अर्थात् एकाधिकारात्मक प्रतिस्पर्धा में जब विभिन्न फर्में परस्पर स्थानापन्न वस्तुओं का उत्पादन करती हैं तब सामूहिक रूप से इन फर्मों को उद्योग न कहकर एक समूह का नाम दिया जाता है। इस समूह में सम्मिलित फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुओं में विभेद लागतों में अंतर, कीमतों में विभिन्नताएं और उपभोक्ता की पसन्दगियों एवं मांग मात्राओं में अंतर पाया जाता है। इन भिन्नताओं के बावजूद चैम्बरलिन ने समूह का विश्लेषण यह मानकर किया कि सब फर्में एक ही कार्य करती हैं अथवा एक ही आवश्यकता की वस्तु बनाती हैं। अतः कोई समूह तब संतुलन में होता है जब

i) समूह में नयी फर्मों का प्रवेश रुक जाये और चालू फर्मों का बहिर्गमन भी न हो।
ii) समूह में सम्मिलित सभी फर्में सामान्य लाभ अर्जित करने लगें और उनके उत्पादों की बाजार कीमत उनकी औसत लागतों के बराबर हो जाये।

उपर्युक्त दोनों शर्तों के आधार पर समूह के संतुलन को निम्न चित्र की सहायता से समझा जा सकता है–

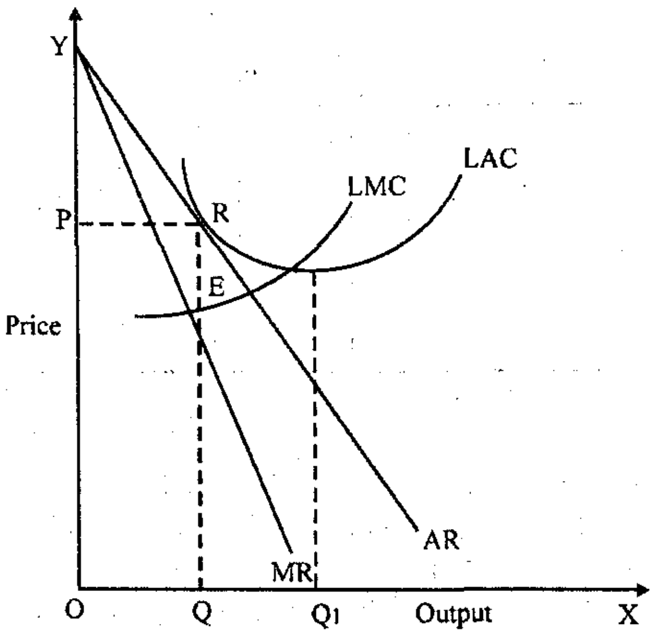

रेखाचित्र में LAC एंव LMC दीर्घकाल में फर्मों के संयंत्रों की उत्पादन लागतें हैं जो एक समान हैं। E बिन्दु पर फर्म का संतुलन है जो OQ उत्पादन की QR या OP कीमत पर बिक्री कर दीर्घकाल में केवल सामान्य लाभ कमाती है। यह फर्म एक प्रतिनिधि फर्म है अर्थात् दीर्घकाल में दूसरी सभी फर्मों की स्थिति भी ऐसी ही है। एकाधिकारी प्रतियोगी फर्म के दीर्घकाल संतुलन में जैसाकि रेखाचित्र में दर्शाया गया है। QQ^1 अधिक्षमता अप्रयुक्त रहने के अलावा $P = AR = AC > MC = MR$ है इस स्थिति में समूह में नयी फर्मों का प्रवेश रुक जाता है।

Non Price Competition

वर्तमान में फर्में अपने उत्पादों के प्रचार एवं विज्ञापन पर भारी राशि व्यय करती है इसे गैर कीमत प्रतिस्पर्धा कहते हैं। फर्में विज्ञापनों द्वारा दूसरी फर्मों के उत्पादों के ग्राहकों को अपनी ओर मोड़ना चाहती हैं वे कीमत घटाकर अपनी वस्तु का उपभोक्ताओं के हाथों में नीची कीमत पर बेचने का कदम नहीं उठातीं। इसके दो संभावित खतरे हैं – एक तो कीमत कम करने से फर्मों का लाभ मार्जिन कम हो जाता है। दूसरे, कीमत घटाकर बिक्री बढ़ाने का दूसरी फर्में जबरदस्त प्रतिकार कर सकती हैं। इसीलिए कोई भी फर्म कीमत–युद्ध शुरू करना नहीं चाहती अथवा इससे बचना चाहती हैं।

एकाधिकारी प्रतियोगिता का आधार वस्तु विभेद होता है। यह विभेद वास्तविक या बनावटी हो सकता है। वस्तु विभेद के कारण ही फर्में गैर कीमत प्रतिस्पर्धा करती हैं। इसके द्वारा वे अपने उत्पाद के गुण बताती हैं ताकि विक्रता उसके ग्राहक बन जायें। इस प्रकार गैर कीमत प्रतिस्पर्धा की एकाधिकारात्मक प्रतियोगी स्थिति में बहुत महत्ता है। इसे विक्रय या विपणन लागत भी कहते हैं जिसके द्वारा नये एवं पुराने ग्राहकों की वस्तु की अधिक मात्रा खरीदने के लिए उकसाया जाता है। इस प्रकार गैर–कीमत प्रतिस्पर्धा से एकाधिकारी प्रतियोगी फर्म का मांग व विवर्तित 'बदल' हो जाता है। इसीलिए प्रो० चैम्बरलिन ने गैर कीमत प्रतिस्पर्धा में केवल उन्हीं विपणन लागतों को सम्मिलित किया जो फर्म के मांग वक्र में विवर्तन कर देती है। उन्होंने यह भी बताया कि प्रारंभ में गैर–कीमत प्रतिस्पर्धा से फर्म के उत्पाद की मांग में तेजी से वृद्धि होती है। किन्तु धीरे–धीरे इसका प्रभाव कम होने लगता है और प्रचार एवं विज्ञापन से बिक्री की मात्रा में होने वाली वृद्धि रुक जाती है। रेडियो एवं टी.वी. पर आने वाले निरमा एवं वीडियोकान वाशिंग मशीन के कर्णप्रिय विज्ञापन गैर–कीमत प्रतियोगिता के प्रतीक हैं किन्तु इनसे इन फर्मों के उत्पादों की बिक्री में वृद्धि की एक सीमा है।

एकाधिकारी फर्म कितनी गैर कीमत प्रतियोगिता करेगा अथवा प्रचार एवं विज्ञापन पर कितनी राशि खर्च करेगी, यह उसके उद्देश्य पर निर्भर करेगा। सामान्यतया फर्मों का उद्देश्य अपना लाभ बढ़ाना होता है। इसे निम्न चित्र से स्पष्ट किया जा सकता है–

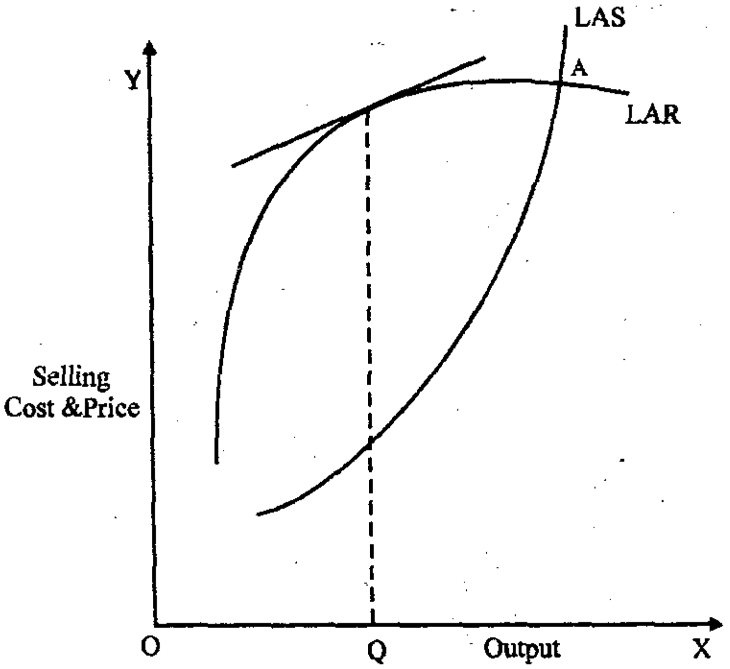

रेखाचित्र में LAS दीर्घकालीन औसत एवं LAR दीर्घकालीन औसत आगम, जो विक्रय लागतों में वृद्धि से बढ़ता है, की रेखाएं हैं जिस बिन्दु पर LAS पर LAR का आधिक्य सबसे ज्यादा होता है, उस बिन्दु की विक्रय लागतें फर्म के लिए सबसे ज्यादा लाभ देती है। LAR का ढाल सीमांत विज्ञापन आय एवं LAS का ढाल सीमान्त विज्ञापन व्यय का सूचक होता है। इसीलिए रेखाचित्रानुसार जब फर्म OQ उत्पादन का विक्रय करती है तब उसे गैर कीमत प्रतिस्पर्धा से मिलने वाला लाभ अधिकतम होता है। A बिन्दु पर LAR = LAS है। इससे आगे प्रचार एवं विज्ञापन व्यय से फर्म की बिक्री में कोई वृद्धि नहीं होती। अतः उसे हानि होने लगती है।

Equilibrium of Firm under Monopolistic Competition

एकाधिकारी प्रतियोगिता में विभिन्न फर्मों के समूह के ग्रुप कहते हैं उनको उद्योग का नाम नहीं दिया जाता।

कीमत व उत्पादन का निर्धारण

अल्पकाल में – अल्पकाल में फर्म को असामान्य, सामान्य लाभ और हानि भी हो सकती है।

(a) **असामान्य लाभ :** जब (AR) औसत आय (AC) औसत लागत से ज्यादा हो तो फर्म को असामान्य लाभ मिलते हैं।

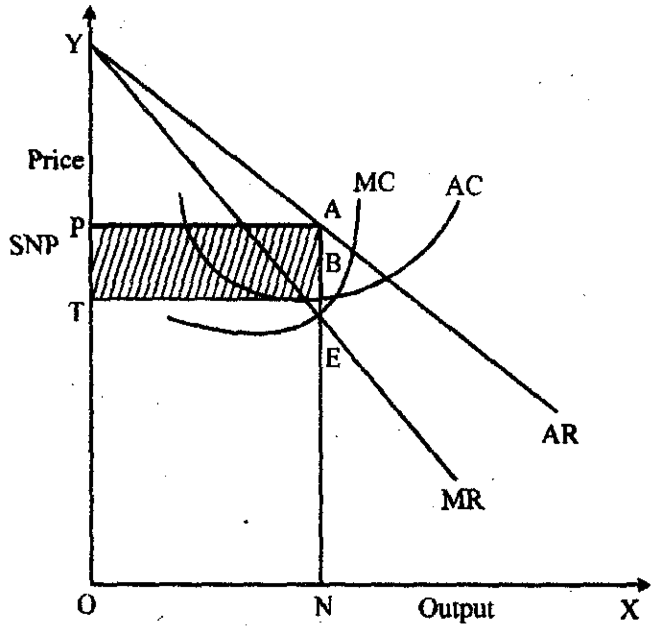

रेखाचित्र में संतुलन E बिन्दु पर ही उत्पादन ON होता है। औसत आय AN ही औसत लागत BN है लाभ प्रति इकाई AB है कुल लाभ ON x AB अर्थात् – TP x AB = ABTP

(B) **सामान्य लाभ :** एकाधिकार प्रतियोगिता में सामान्य लाभ तब प्राप्त होते है जब AR = AC हो।

रेखाचित्र में संतुलन E बिन्दु पर ही उत्पादन ON है AC = AR है। इसलिए सामान्य लाभ PA x ON होता है।

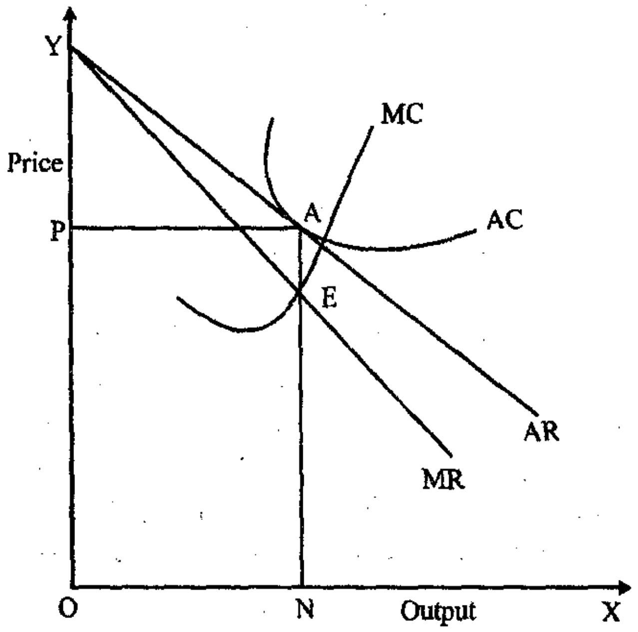

(C) **हानि :** एकाधिकारी प्रतियोगिता में फर्म को हानि उस समय होती है जब औसत आय औसत लागत से कम हो रेखाचित्र में संतुलन E बिन्दु पर ही उत्पादन ON होता है। AR = BN है और AC = NA है। हानि प्रति इकाई AB है इसलिए कुल हानि ON × AB अर्थात् AB x TP = ABTP है।

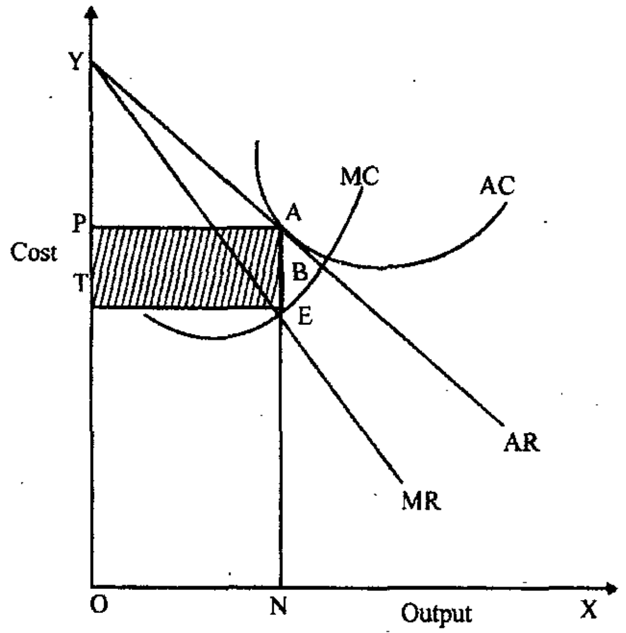

दीर्घकाल में एकाधिकारी प्रतियोगिता का कीमत व उत्पादन का निर्धारण : दीर्घकाल में एकाधिकारी प्रतियोगिता को केवल सामान्य लाभ मिलते हैं जो इस प्रकार दिखाए जाते हैं।

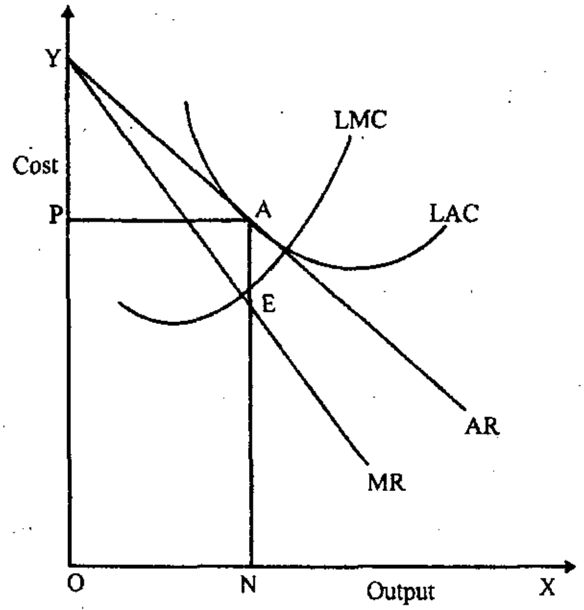

रेखाचित्र में संतुलन E बिन्दु पर ही उत्पादन ON होता है। AC = AR है। इसलिए लाभ प्रति इकाई AP × ON है।

समूह संतुलन : एकाधिकारी प्रतियोगिता में समूह संतुलन की धारणा पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग संतुलन की धारणा स्थान पर समूह शब्द का प्रयोग किया है।

समूह का अर्थ : इसका अर्थ उन फर्मों से है जो समरूप वस्तुओं का उत्पादन नहीं करती बल्कि उन वस्तुओं का उत्पादन करती है जो कि एक दूसरे से भिन्न होती है परन्तु एक दूसरे की निकट स्थानापन्न होती है।

समूह संतुलन का अर्थ : समूह संतुलन का अर्थ उस अवस्था में परिवर्तन की कोई संभावना नहीं है अतः न पुरानी फर्म समूह को छोड़कर जाना चाहती है। यह अवस्था तभी संभव होगी जब समूह की सभी फर्मों को सामान्य लाभ प्राप्त होंगे।

मान्यताएं

(i) समूह की सभी फर्मों की लागतें वक्रें समान होती हैं जिनमें समूह के विस्तार एवं संकुचन होने से कोई अंतर नहीं आता।

(ii) किसी फर्म के व्यक्तिगत निर्णयों का अन्य फर्मों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

(iii) विभिन्न फर्मों के उत्पादन की मांग पूरे समूह में सर्वत्र समान रहती है।

समूह संतुलन की व्याख्या : प्रो० वाटंसन ने समूह संतुलन की व्याख्या रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट की है।

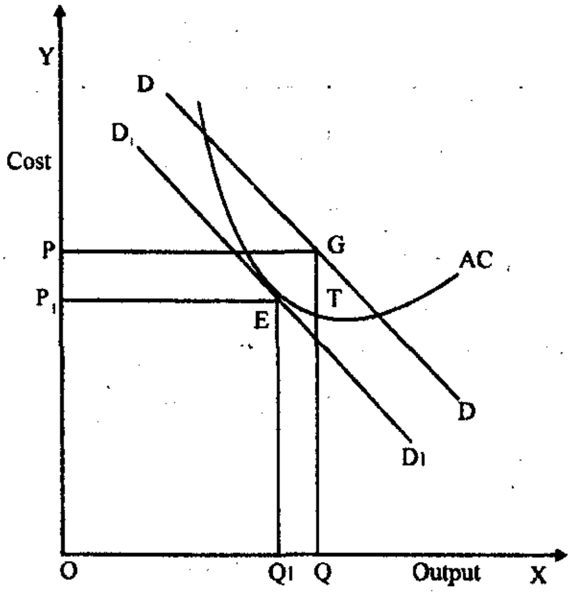

चित्र में DD प्रारम्भिक मांग वक्र है तथा AC औसत लागत वक्र है मान लो समूह की प्रत्येक फर्म OP कीमत निर्धारित फर्म है जिस पर OQ उत्पादन किया जाता है इस अवस्था को प्रति इकाई GT असामान्य लाभ प्राप्त हो रही है। इस असामान्य लाभ को देखकर दीर्घकाल में नई फर्में समूह में प्रवेश कर जाएंगी। नई फर्में मिलती जुलती वस्तुओं का उत्पादन करेंगी। परिणामस्वरूप फर्म की मांग व नीचे को सरककर D_1D_1 हो जाएगी। अब वर्तमान तथा नई फर्मों को अपनी बिक्री बढ़ाने के लिए कीमतें कम करनी होंगी। इस प्रकार बिन्दु E नया संतुलन बिन्दु है। इस पर कीमत OP_1 है तथा संतुलन OQ_1 है यहां समूह की प्रत्येक फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त हो रहे हैं इस अवस्था में कीमत और औसत लागत दोनों ही EQ_1 के बराबर है अतः अब न कोई नयी फर्म प्रवेश करना चाहती है और न कोई पुरानी फर्म उत्पादन बंद करके जाना चाहती है। अतः समूह संतुलन स्थिति में है।

क्रय लागतें

वस्तु की बिक्री बढ़ाने के लिए उसके विज्ञापन विक्रय कला पर जो कुल धन खर्च किया जाता है उसे विक्रय लागतें कहा जाता है।

विक्रेताओं की मांग और रुचि में परिवर्तन लाया जा सकता है।

वस्तु की विभिन्न किस्मों का पूर्ण ज्ञान नहीं होता।

विक्रय की विशेषतायें : विक्रय लागतों की मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित हैं।

विक्रय लागतों के परिणामस्वरूप वस्तु की बिक्री में होने वाली वृद्धि को मापना काफी कठिन होता है। इसका कारण यह है कि किसी वस्तु की बिक्री में होने वाली वृद्धि विक्रय लागतों के और भी बहुत सी बातों पर निर्भर करती है। जैसे कि राष्ट्रीय आय, आय का वितरण तथा जनसंख्या आदि। फर्म की विक्रय लागत पर

दूसरी फर्म के विक्रय लागतों का प्रभाव पड़ता है यदि सभी फर्में अत्यधिक विज्ञापन कर दें, तो विज्ञापन का प्रभाव नष्ट हो जाता है।

3. विक्रय लागतों का प्रभाव केवल उसी फर्म की बिक्री पर ही नहीं पड़ता, बल्कि अन्य फर्मों की बिक्री पर भी पड़ता है।
4. विक्रय लागतें परिवर्तनशील और स्थिर दोनों तरह की हो सकती हैं। यदि ग्राहकों में स्थाई वृद्धि हो तो यह स्थिर लागत होती है और यदि अस्थाई वृद्धि हो तो यह परिवर्तनशील लागत होती है।
5. प्रो० चैम्बरलिन के अनुसार औसत लागत वक्र 'U' के आकार की होती है।

विक्रय लागतें तथा फर्म का संतुलन

विक्रय लागतों का एकाधिकारी प्रतियोगिता में काम कर ही फर्म की संतुलन अवस्था उत्पादन तथा कीमतों पर क्या प्रभाव पड़ता है। इसे हम चित्र द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं।

हम यह मान लेते हैं कि विक्रय लागतों से वस्तु की मांग में वृद्धि होती है तथा उत्पादन के लाभ भी बढ़ते हैं। अतः विक्रय लागतों के कारण मांग वक्र ऊपर को उठ जाते हैं। परिणामस्वरूप उत्पादन तथा कीमतों में वृद्धि होती है। अब हम देखेंगे कि एकाधिकारी प्रतिगोगिता में एकाधिकारी को कितनी विक्रय लागतें सहन करनी चाहिए। ताकि उसका लाभ अधिकतम हो। जब कोई फर्म किसी वस्तु का विज्ञापन देती है तो उसे अतिरिक्त लागत लगानी पड़ती है। परन्तु साथ ही साथ बिक्री बढ़ जाने से अतिरिक्त आय भी प्राप्त होती है। फर्म इन दोनों में तुलना करती है। जब तक अतिरिक्त आय अतिरिक्त लागत से अधिक होगी, तब तक फर्म विज्ञापन पर खर्च बढ़ाती जाएंगी। वह वहां पर जाएंगी जहां पर अतिरिक्त आय = अतिरिक्त लागत होगी। इसे रेखाचित्र द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है।

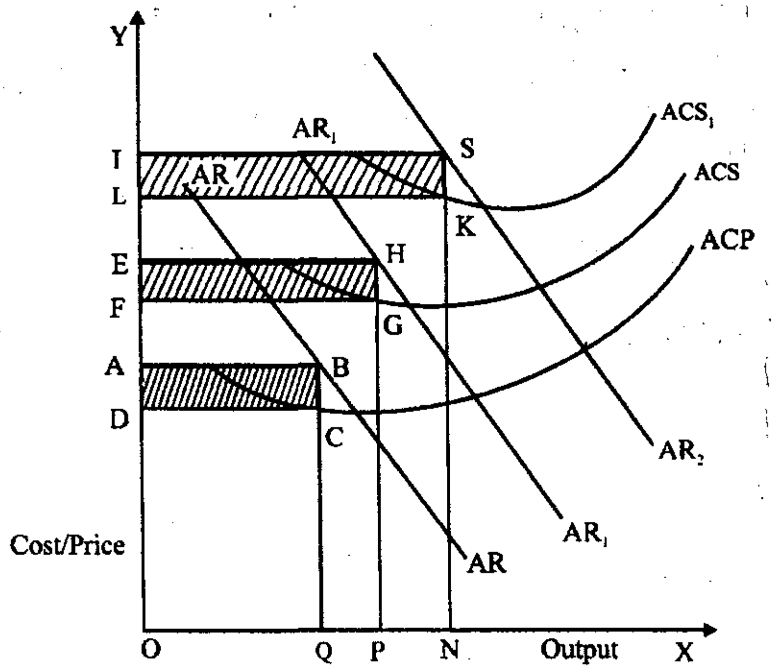

रेखाचित्र में ACP औसत उत्पादन लागत वक्र है। इसमें किसी प्रकार की विक्रय लागत शामिल नहीं है। इसका संबंधित मांग वक्र AR है। इस स्थिति में संतुलन उत्पादन OQ है। उत्पादन की इस मांग पर सीमांत लागत (MC) सीमांत आय (MR) के बराबर है। परन्तु रेखाचित्र में MC और MR व दिखाए नहीं गए हैं ताकि रेखाचित्र जटिल न हो जाए। इस अवस्था में फर्म को ABCD छायादार भाग के बराबर लाभ प्राप्त हो रहे हैं मान लो अब फर्म 500 रूपये की विक्रय लागत खर्च करती है। यह विक्रय लागत मिलकर अब नया औसत लागत वक्र

ACS बन जाता है। इस नये औसत लागत व ACS (जिसमें ACP + ACS शामिल हैं) के फलस्वरूप AR_1 हो जाता है। इस नयी लागत आय अवस्था में अब मान लीजिए फर्म का संतुलन (MC + MR) उत्पाद की OP मात्रा पर होता है। तथा कीमत OF हो जाती है। इस अवस्था में फर्म को EFGH छाया वाले भाग के बराबर लाभ प्राप्त हो रहा है। यह लाभ पहले वाले लाभ ABCD से अधिक ही स्पष्ट हो कि विक्रय लागत के फलस्वरूप उत्पादन की मात्रा, कीमत तथा लाभ में वृद्धि हुई है और फर्म का अतिरिक्त लाभ भी देखना होगा और वह लाभ 500 रू० से अधिक हो, इससे फर्म और दूसरा कदम उठाकर विक्रय लागत बढ़ जाएगी। इसलिए एक और नया औसत लागत व बनेगा जिसे रेखाचित्र में ACS_1 द्वारा दिखाया गया है। इसके अनुरूप मांग व AR_2 होगा। इस दूसरी अवस्था में संतुलन उत्पादन मांग ON होगी। और संतुलन कीमत OL होगी लाभ ISKL होगा। अर्थात् उत्पादन मात्रा, कीमत और लाभ पहले से अधिक हो गए हैं इसलिए फर्म का यह ISKL अधिकतम लाभ है और उत्पादन की संतुलन मात्रा ON है।

समूह संतुलन की आलोचना : प्रो० चैम्बरलिन के समूह संतुलन की आलोचना उनके अपने अनुयायियों ने ही की थी। जैसे राबर्ट ट्रिफिन, फ्रिज मैक्लप और आर्थर स्मिथीज।

1. ट्रिफिन ने तो 'समूह' के विचार को ही अस्वीकार कर दिया है। उसके अनुसार एकाधिकार प्रतियोगिता का सिद्धांत केवल फर्म के संतुलन की व्याख्या कर सकता है। यह स्थानापन्नों की श्रृखला में, अंतर को स्पष्ट किए बिना उद्योग के संतुलन की व्याख्या नहीं कर सकता। आश्चर्यजनक बात है कि चैम्बरलिन ने इस आलोचना का अनुमोदन किया है।
2. यह समझा जाता है कि चैम्बरलिन की मांग और लागत दोनों वक्रों की समरूपता की 'शौर्यपूर्ण' धारणा चैम्बरलिन द्वारा दी गई स्पर्श स्थिति से मेल नहीं खाती। सब फर्मों की मांग और लागत वक्रों की समरूपता का मतलब है कि वस्तु समरूप है और उस स्थिति में मांग वक्र क्षैतिज होता है तथा स्पर्श औसत लागत वक्र के न्यूनतम बिंदु पर होता है। इसलिए समरूपता की धारणा ठीक नहीं है।
3. इसी प्रकार एक फर्म के कीमत समायोजन के अन्य फर्मों पर नगण्य प्रभाव की संगति धारणा भी स्पर्श हल से मेल नहीं खाती। वास्तव में, विशुद्ध प्रतियोगिता के अंतर्गत, जहां मांग वक्र क्षैतिज हो, वहीं व्यक्तिगत फर्म की कीमत नीति का प्रभाव नगण्य हो सकता है। इसलिए स्पर्श बिंदु औसत लागत वक्र के न्यूनतम बिंदु पर होगा।
4. परन्तु सबसे कड़ी आलोचना 'फेलनर' ने की है जो एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के साथ–साथ चैम्बरलिन के वस्तु–विभेदीकरण विषयक दृष्टिकोणों पर भी आपत्ति करता है। विशुद्ध प्रतियोगिता की भांति, एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की दुर्लभ मार्किट स्थिति है।

अध्याय - 19
द्विधिकार मॉडल
(Duopoly Models)

Q. **Critically discuss any of the duopoly models. OR Discuss and compare any two models of duopoly from the point of view of price. OR Define Duopoly and explain in brief the various duopoly models.**

Ans. द्वयाधिकार एकाधिकारात्मक प्रतिस्पर्धा का अल्पाधिकार से भी छोटा रूप है जिसमें उद्योग अथवा बाजार में किसी वस्तु का उत्पादन करने वाली केवल दो फर्में होती हैं, जो वस्तु के संपूर्ण बाजार को दो बराबर भागों में बांट लेती हैं। दोनों फर्मों की वस्तु एक दूसरी की पूर्ण स्थानापन्न अथवा बहुत बढ़िया स्थानापन्न हो सकती है। संक्षेप में, द्वयाधिकार की मुख्य विशेषताएं निम्नांकित होती हैं –

i) द्वयाधिकारी द्विविक्रेताधिकारी स्थिति है जिसमें केवल दो फर्में होती हैं।
ii) दोनों फर्मों का उत्पादन बिल्कुल एक समान अथवा बहुत निकट स्थानापन्न होती है।
iii) फर्मों के मांग वक्रों का ढाल सामान्य मांग वक्र की भांति ऋणात्मक होता है।
iv) द्वयाधिकार कोई आदर्श स्थिति नहीं होती। इसे बाजार में देखा जा सकता है।
v) अल्पाधिकार की भांति द्वयाधिकारी समस्या का भी कोई निश्चित एवं मान्य समाधान नहीं है। अतः इसके अनेक मॉडल हैं।

द्वयाधिकार में मूल्य निर्धारण
(Pricing under Duopoly)

द्वयाधिकार तथा अल्पाधिकार में सैद्धांतिक दृष्टि से कोई अंतर नहीं। बहुत बार अल्पाधिकारी समस्या का समाधान भी केवल दो फर्मों की मान्यता के साथ प्रस्तुत किया जाता है। अधिकांश अर्थशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि जो मूल्य सिद्धांत दो फर्मों पर लागू हो सकता है वह दो से ज्यादा फर्मों पर भी लागू हो सकता है। अर्थात् द्वयाधिकारी एवं अल्पाधिकार की समस्या लगभग समान है इसीलिए विशुद्ध अल्पाधिकार में संतुलन विश्लेषण के लिए द्वयाधिकार का सहारा लिया जाता है।

उत्पादन की किस्म के आधार पर द्वयाधिकार के दो रूप हो सकते हैं – (i) जब वस्तु समरूप हो और (ii) जब वस्तु विभेद हो।

जब दोनों फर्मों का उत्पादन समरूप होता है अर्थात् जब दोनों फर्में एक ही वस्तु का उत्पादन करती हैं तो एक फर्म द्वारा वस्तु के मूल्य एवं उत्पादन मात्रा में परिवर्तन का प्रभाव दूसरी फर्म के उत्पाद के मूल्य एवं मात्रा पर पड़ेगा। अतः कोई भी फर्म इन दोनों में परिवर्तन से पूर्व उसके प्रभावों का पूर्वानुमान लगाने का प्रयत्न करेगी। अर्थात् एक फर्म दूसरी फर्म के हितों को ध्यान में रखे बिना अपना काम नहीं चला सकती है। जब दोनों फर्मों में पारस्परिक निर्भरता होती है तब संतुलन का निर्धारण एकाधिकार एवं पूर्ण प्रतिस्पर्धा की भांति

नहीं हो सकता बल्कि यह फर्मों द्वारा अपनायी गई नीति पर निर्भर करता है। इसके उपरांत भी द्वयाधिकारी समस्या के दो हल हो सकते हैं – (i) एकाधिकार जैसा और पूर्ण प्रतिस्पर्धा जैसा अर्थात् द्वयाधिकार में कीमत एवं उत्पादन निर्धारण के दो हल संभव हो सकते हैं –

1. आपसी संबंध या सांठ–गांठ अर्थात् एकाधिकारी समाधान
2. स्वतंत्र अर्थात् पूर्ण प्रतियोगिता जैसा समाधान

1. **एकाधिकारी की भांति मूल्य एवं उत्पादन का निर्धारण :** द्वयाधिकारी का एकाधिकारी समाधान निम्नांकित मान्यताओं पर आधारित है –
   i) दोनों फर्मों का उत्पादन एक समान है।
   ii) दोनों फर्मो की कार्यदक्षता समान है।
   iii) दोनों फर्मों की उत्पादन लागतें समान हैं।
   iv) दोनों फर्में समान मात्रा में वस्तु का उत्पादन एवं विक्रय करती है और दोनों एक कीमत वसूल करती हैं।

किन्तु अल्पाधिकारी की भांति द्वयाधिकारी का मांग वक्र भी अनिवार्य रहता है। अतः यह तय करना कठिन है कि दोनों के लिए एक कीमत क्या होती है। फर्में आपसी परामर्श अथवा स्वतंत्र परीक्षण से कोई संतोषप्रद कीमत ज्ञात कर सकती है। यदि द्वयाधिकारी फर्में कोई अन्य कीमत तय कर ले तो उन्हें कोई विशेष लाभ नहीं होगा क्योंकि एकाधिकारी सदैव वह मूल्य तय करता है जो उसे अधिकतम लाभ देता है। अतः द्वयाधिकारी भी ऐसा ही मूल्य करेंगे जिससे उन दोनों का लाभ बढ़कर अधिकतम हो जाये।

अर्थात द्वयाधिकारी के लिए यही सर्वोत्तम है कि दोनों फर्में संयुक्त रूप से एकाधिकारी की तरह कार्य करें और उसी के अनुसार अपने उत्पादन की कीमत निर्धारित कर अधिकतम लाभ कमायें।

2. **पूर्ण प्रतियोगी फर्म की भांति मूल्य एवं उत्पादन का निर्धारण :** द्वयाधिकारी फर्म आपस में प्रतिस्पर्धी कर प्रतियोगी स्तर पर मूल्य एवं उत्पादन का निर्धारण कर सकती है। जिसे द्वयाधिकार का पूर्ण प्रतियोगी समाधान कहा जाता है। किन्तु, ऐसा करना अहितकार होता है। अतः दोनों के फर्मे बुद्धिमानी से काम ले तो वे कभी भी प्रतियोगिता का रास्ता नहीं चुनेगी क्योंकि इस स्थिति में दोनों बर्बाद हो सकती है। लाभ घटकर एकाधिकारी प्रतिस्पर्धी फर्म से भी कम हो सकता है।

प्रतियोगिता के स्थान पर मूल्य एवं उत्पादन का निर्धारण करने पर दोनों फर्में मूल्य युद्ध में फंस जायेंगी और एक दूसरी की लागत पर लाभ उठाने की चेष्टा करेंगी। ए फर्म अपने उत्पादन की कीमत घटाकर बी के ग्राहकों और बी फर्म अपने उत्पादन को सस्ता कर A फर्म के ग्राहकों को तोड़ने की चेष्टा करने लगेगी उसमें यह करना कठिन होगा कि कीमत किस बिन्दु पर सन्तुलित होगी। इस स्थिति में तो वह अवस्था भी अच्छी समझी जा सकती है जिसमें द्वयाधिकारी फर्में सामान्य लाभ कमाने में सफल हो जाए। अन्ततः ऐसा ही होता है क्योंकि जब मूल्य युद्ध के करण किसी फर्म को हानि होने लग जाये तो वह मैदान छोड़ देगी। अतः द्वयाधिकार का पूर्ण प्रतियोगी समाधान असन्तोषजनक है जैसे ही मूल्य युद्ध में परास्त कोई एक फर्म बाजार छोड़ती है, दूसरी फर्म की प्रतिस्पर्धा के कारण द्वयाधिकारी फर्मो को प्राप्त असामान्य लाभ तो समाप्त हो जाता है किन्तु वे अनुकूलतम सन्तुलन स्थिति में आकर न्यूनतम औसत लागत पर उत्पादन नहीं कर सकती है। पूर्ण प्रतियोगी फर्म दीर्घकाल कर अनुकूलतम सन्तुलन स्थिति प्राप्त कर लेती है।

द्वयाधिकार में कीमत निर्धारण के ऊपर वर्णित दोनों समाधानों से स्पष्ट हो जाता है कि द्वयाधिकार में कीमत एकाधिकारी अथवा प्रतियोगी अथवा दोनों के बीच में कही हो सकता है। मूल्य युद्ध के कारण अल्पकाल में द्वयाधिकारी कीमत प्रतियोगी कीमत से भी नीचे हो सकती है। परन्तु इससे क्योंकि दोनों को ही हानि होती

है वे मिलकर एकाधिकारी समाधान की इच्छुक हो जाती है। अब हम संक्षेप में द्वयाधिकार के विभिन्न मॉडलों की विवेचन करेंगे–

1. कूर्नो मॉडल
(Cournot Model)

द्वयाधिकार में कीमत निर्धारण का कूर्नो मॉडल निम्नांकित मान्यताओं पर आधारित है।

i) दोनों फर्मो को उत्पादन समरूप है।

ii) फर्मो की कोई परिवहन लागत नहीं।

iii) फर्मो की कोई उत्पादन भी नहीं है।

iv) दोनों फर्मो के कुल उत्पादन की बाजार मांग स्थिर है।

v) प्रत्येक फर्म इस आशा से कीमत तय करती है कि दूसरी फर्म अपने उत्पादन स्तर में परिवर्तन नहीं करेगी।

vi) फर्मो के उत्पादन का बाजार मांग वक्र रेखिक है। Cournot model को निम्नांकित रेखाचित्र से समझा जा सकता है :

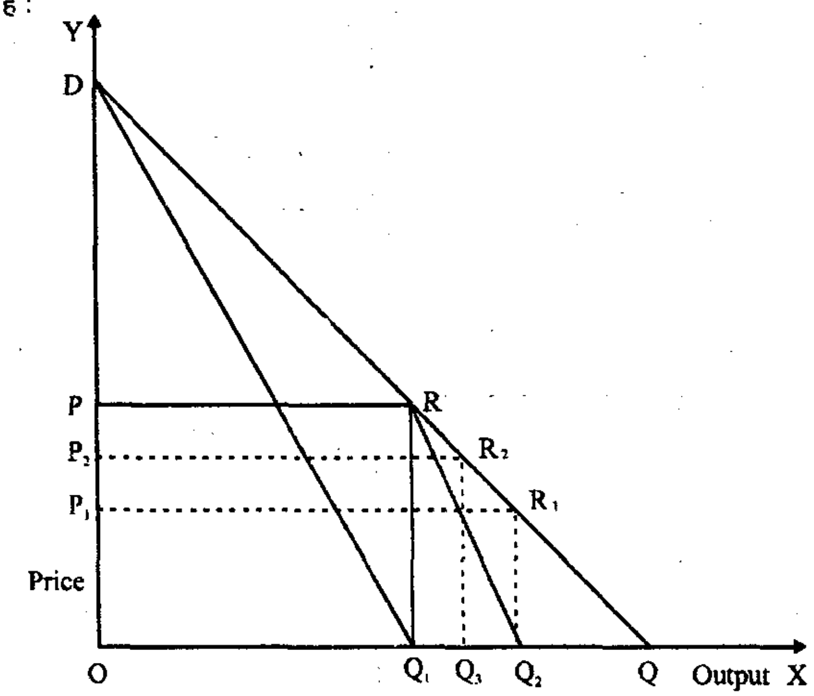

माना कि द्वयाधिकारी फर्में खनिज जल का उत्पादन एवं विक्रय करती है। DQ खनिज जल को बाजार मांग की रैखिक रेखा है। इस मांग का सीमान्त आय वक्र DQ_1 है। जब तक बाजार में एक ही फर्म है वह Q_1R अथवा OP कीमत पर खनिज जल की OQ_1 मात्रा बेचेगी। R बिन्दु पर MR = O होने के कारण फर्म का TR अधिकतम होता है। इस प्रकार यह बाजार मांग के आधे भाग की पूर्ति करती है। अब शेष आधे भाग RQ_1 को अपना मांग वक्र मानते हुए दूसरी फर्म बाजार में प्रवेश करती है। RQ_1 मांग वक्र का सीमांत आय वक्र RQ_2 है। R_1 बिन्दु पर दूसरी फर्म का सीमान्त आगम शून्य है अतः उसका TR अधिकतम है और वह Q_1Q_2 मात्रा को Q_2R_1 अथवा OP_1 कीमत पर बेचने लगेगा। अब पहली फर्म यह मानते हुए कि दूसरी फर्म केवल एक चौथाई बाजार मांग की पूर्ति करेगी, अपने मांग वक्र को संशोधित करेगी और अपने बाजार मांग का आधा भाग जहां उसका MR = O है, पूरा करेगा। अब दूसरी फर्म पुनः अपनी बाजार मांग का अनुमान लगाकर उसके आधे भाग को पूरा करेगी जिससे उसका कुल आय अधिकतम होता है।

ऐसी क्रिया–प्रतिक्रिया से पहली फर्म की बिक्री OQ_1 से कम एवं दूसरी की Q_1Q_2 से ज्यादा होती जाएगी। अंततः दोनों द्वारा बेची जाने वाली मात्राएं एक बराबर हो जाएगी और दोनों समान कीमत OP_2 वसूल करेगी। इस पर पहली फर्म एवं दूसरी फर्म मिलकर OQ_3 मात्रा बेचेंगी। यह model उत्पादन स्थिरता की मान्यता पर आधारित है।

2. बर्ट्राण्ड मॉडल
(Bertrand Model)

यह मॉडल पर निम्नांकित मान्यताओं पर आधारित है –

i) दोनों फर्मो का उत्पादन समरूप है।

ii) दोनों की उत्पादन लागत शून्य है।

iii) प्रत्येक फर्म इस आशा से कीमत तय करती है कि दूसरी फर्म अपनी कीमत स्थिर रखेगी। इस प्रकार जहां कर्नो मॉडल उत्पादन स्तर की स्थिरता की मान्यता पर आधारित है

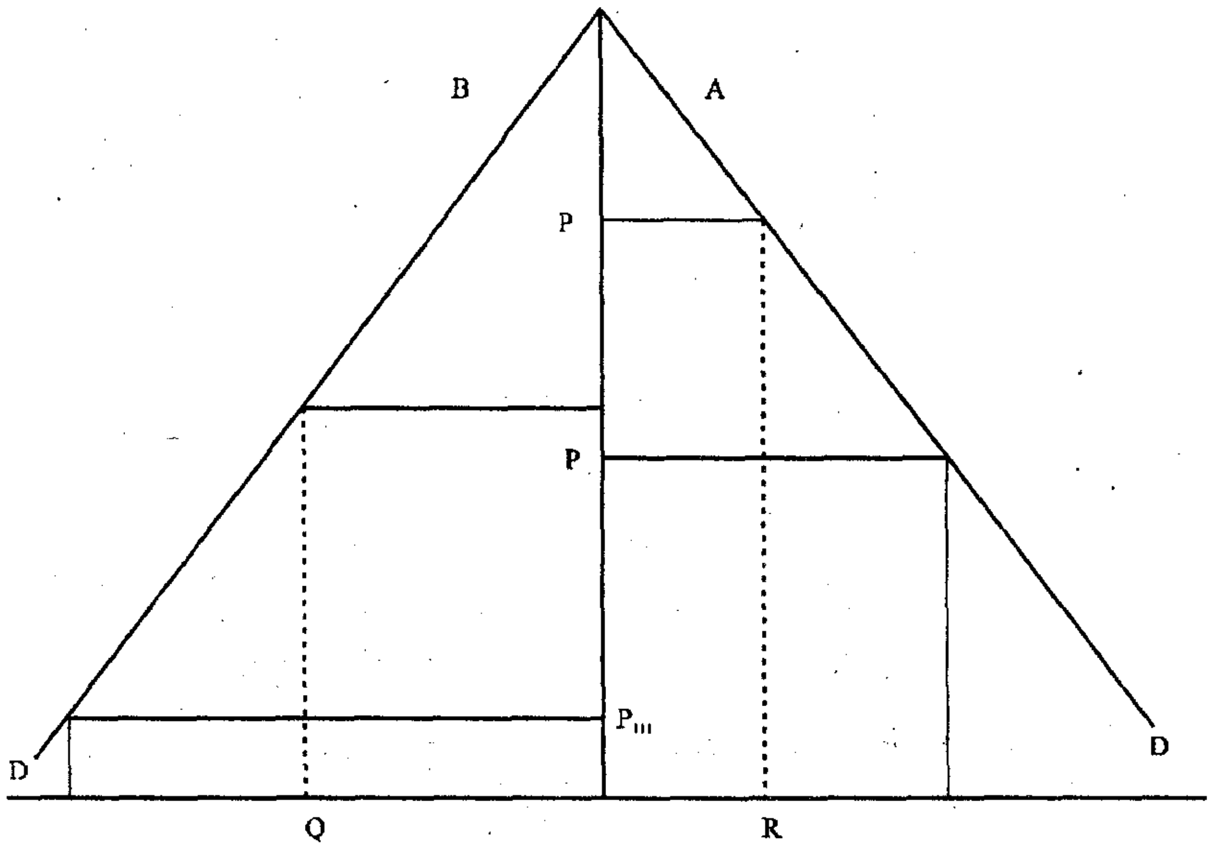

कूर्नो का मॉडल जहां बाजार सहभागी Model है, यह द्वयाधिकार पूर्ण प्रतियोगी समाधान प्रस्तुत करता है। अतः इसमें प्रत्येक फर्म अपने उत्पादन की कम कीमत रखकर बाजार में प्रवेश करती है और सम्पूर्ण बाजार मांग को पूरा करने की सोचती है। दोनों फर्मो की यही सोच रहने के कारण वे एक दूसरे के ग्राहक तोड़ने की चेष्टा में उत्पादन की बाजार कीमत गिराकर शून्य कर देती है और दोनों का असामान्य लाभ गिरकर शून्य हो जाता है। क्योंकि दोनों फर्मो के उत्पादन की सीमान्त लागत शून्य है और पूर्ण प्रतिस्पर्धा में कीमत सीमान्त लागत के बराबर होती है, द्वयाधिकार में कीमत गिरकर शून्य हो जाती है।

3. चैम्बरलिन मॉडल
(Chamberlin Model)

चैम्बरलिन मॉडल कूर्नो मॉडल जैसा ही है किन्तु चैम्बरलिन ने कूर्नो Model में यह संशोधन कर अपना Model प्रस्तुत किया कि जैसे ही दूसरी फर्म बाजार में प्रवेश करती है, पहली फर्म यह मान लेती है कि दोनों का हित प्रतिस्पर्धा में न होकर आपसी निर्भरता में है। अतः दोनों बाजार को बराबर बांटकर समान कीमत वसूल करने लग जाती है।

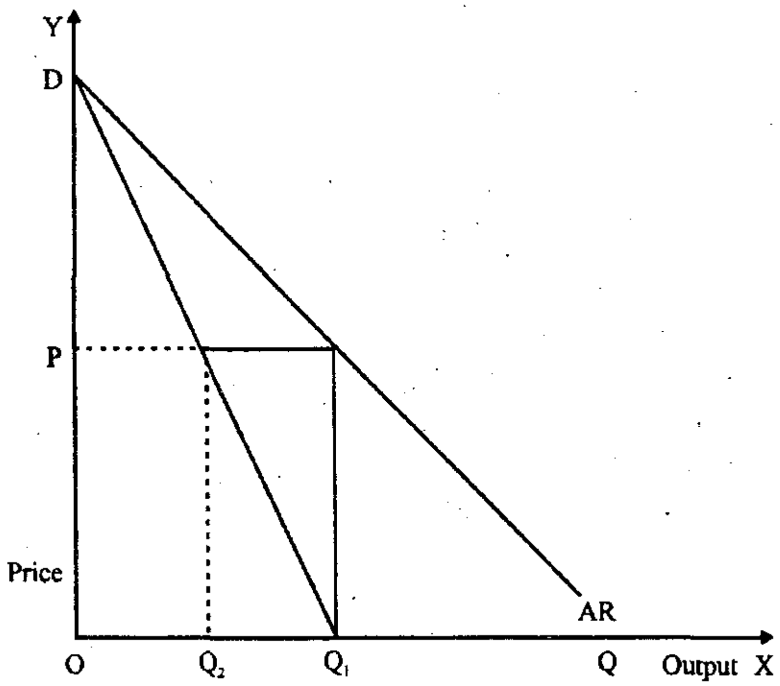

रेखाचित्रानुसार जब तक एक ही फर्म है वह O Q_1 मात्रा की O P कीमत पर बिक्री कर अपना कुल मांग OQ का आध OQ_1 पूरा करेगी। दूसरी फर्म के बाजार में आते ही पहली फर्म OP कीमत पर बाजार की OQ_2 मांग पूरी करने एवं शेष Q_2Q_1 दूसरी फर्म के लिए छोड़ने को तैयार हो जाती है।

4. स्टेकलबर्ग मॉडल
(Stackelberg Model)

स्टेकलबर्ग ने द्वयाधिकार का कीमत नेतृत्व का Model प्रस्तुत किया और कहा कि अन्ततः एक फर्म कीमत नेतृत्व करती है और दूसरी उसका अनुगमन करती है। इस स्थिति में प्रथम फर्म भी आश्वस्त रहती है कि दूसरी फर्म उसका अनुकरण कर रही है और कीमत नेतृत्व स्वीकार कर रही है। उन्होंने बताया कि दोनों ही फर्में कीमत नेतृत्व करना चाहती है। अतः पहले दोनों में कीमत युद्ध चलता है। इसी प्रकार फर्में इस बात का भी मूल्यांकन करती है कि उन्हें कीमत नेतृत्व करने में फायदा है अथवा दूसरी फर्म का अनुगमन करने में। अतः जहां उसे ज्यादा फायदा नजर आता है वह वही बनने का प्रयास करती है। इस प्रकार स्टेकलबर्ग मॉडल भी द्वयाधिकार का प्रतिक्रिया Model है। जिसका आधार कूर्नो Model हैं। स्टैकलबर्ग के अनुसार द्वयाधिकार में चार स्थितियां सम्भव है –

(i) जब दोनों फर्में अनुगमन ही करना चाहें तब द्वयाधिकार समस्या का समाधान कूर्नो Model से होगा।

(ii) जब प्रथम फर्म कीमत नेतृत्व की इच्छुक हो और दूसरी फर्म अनुगमन करे।

(iii) जब दूसरी फर्म कीमत नेतृत्व की आशा रखती हो और प्रथम फर्म अनुगमन करे।

(iv) जब दोनों ही कीमत – नेतृत्व करना चाहें।

दूसरी एवं तीसरी स्थिति में द्वयाधिकार की स्थिर समाधान होगा जबकि चौथी स्थिति में अस्थिरता की स्थिति बनी रहेगी और कीमत एवं उत्पादन मात्राएं अनिर्धारणीय हो जाएगी। अतः द्वयाधिकारी समस्या का तभी समाधान सम्भव है जब या तो एक फर्म अथवा दोनों फर्मे अनुगमन करने को राजी हो जायें।

ऐसी स्थिति में जबकि फर्म कीमत नेतृत्व एवं B उसका अनुगमन करती है तब B उतना उत्पादन करेगी जिस पर A का कुल लाभ अधिकतम हो अर्थात् ग A (Q_A Q_B) अधिकतम हो अथवा $dQ_A/dQ_B=0$ हो। इसी प्रकार जब B कीमत नेतृत्व एवं A उसका अनुगमन करती है तब A उत्पादन करेगी जिस पर B का कुल लाभ ग (लाभ) B (Q_A Q_B) अधिकतम हो अथवा dQ_B/dQ_A = O हो।

स्टैकलबर्ग ने कीमत नेतृत्व करने वाली फर्म की जिम्मेदारियों भी बतायी। उनके अनुसार जब A फर्म कीमत नेतृत्व करती है तो वह अपने उत्पादन (Q_A) का वह स्तर अपनायेगी जिस पर II A [Q_A, / B (Q_A)] अधिकतम हो। यहां / B (Q_A) फर्म B का प्रतिक्रिया फलन है।

उपयुक्त मॉडलों के विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि द्वयाधिकार में भी कीमत एवं उत्पादन निर्धारित का कोई एक मान्य सिद्धान्त नहीं होता है।

अल्पाधिकार एक ऐसा बाजार है। जिसमें किसी वस्तु का उत्पादन और बिक्री करने वाली कुछ ही फर्मे होती है। अर्थात् जब वस्तु को बेचने वाली दो या दो से अधिक लेकिन बहुत फर्मे नहीं होती इसे अल्पाधिकार कहा जाता है oligopoly को कुछ के बीच में प्रतियोगिता कहा जाता है। द्विधिकार भी इसका एक रूप है। जहां वस्तु को बेचने वाली दो फर्मे होती हैं।

अध्याय - 27
सीमांतक वाद-विवाद
(Marginalist Debate)

प्र. फर्म के सीमान्त सिद्धान्त या नवपराम्परावादी सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या –

Ans. 1939 ई० में इंग्लैंड में Hall और Hitch की रिपोर्ट के प्रकाशित होने के बाद आधुनिक फर्म के व्यवहार के बारे में काफी बहस शुरू हो गई, क्योंकि इस रिपोर्ट में फर्म के व्यवहार का जो वर्णन किया गया था वह नवपराम्परावादी सिद्धान्त से बहुत अलग था। अमेरिका में भी इसी तरह का विवाद शुरू हो गया। और इस विवाद में भाग लेने वाले मुख्य रूप से Lester, Machlup, Oliver, Gorden, and Frietman आदि थे। इन सभी रिपोर्ट में सीमान्त सिद्धान्त या नवपराम्परावादी सिद्धान्त की मुख्य मान्यताओं की आलोचना की गई इसलिए Marginalist controversy or debate को जानने से पहले नवपराम्परावादी सिद्धान्त की मुख्य मान्यताओं को जानना जरूरी है।

मान्यताएं : नवपराम्परावादी सिद्धान्त के मुख्य मान्यताएं –

1. उद्यमी फर्म का मालिक भी होता है।
2. फर्म का केवल एक उद्देश्य होता हो और वह हो अधिकतम लाभ कमाना।
3. फर्म इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए सीमान्त सिद्धान्त के अनुसार करती है अर्थात MC = MR
4. सीमान्त सिद्धान्त केवल वास्तविक प्रवेश को ही मानता है सम्भावित प्रवेश को नहीं।
5. फर्म एक निश्चित समय अवधि में करती है और फर्म इस अवधि में अपने लाभों को अधिकतम करने का प्रयास करती है।
6. समान अविधियों को स्वतन्त्र माना गया है और एक समय अवधि के लिए निर्णय किसी दूसरी समय अवधि में लिए निर्णयों से प्रमाणित करते हैं।

   आधुनिक अर्थशास्त्रियों जैसे Hell और Hitl frialam, mohfp आदि का मानना ही नवपराम्परावादी सिद्धान्त की ये मान्यताएं आधुनिक फर्म के व्यवहार में सही नहीं क्योंकि इस प्रकार इस सिद्धान्त के आलोचना निम्न है।

1. **उद्यमी ही फर्म का अकेला मालिक नहीं होता :** Traditional Theory में यह मानकर ही कि उद्यमी ही फर्म का अकेला मालिक होता है। प्रबन्धकर्ता और उद्यमी में कोई अन्तर नहीं होता। उद्यमी द्वारा ही सभी निर्णय लिये जाते हैं सभी समस्याओं का हल वही करता है। साधनों का वितरण भी उसी के द्वारा किया जाता है अर्थात् उसमें असीमित मान्यता पाई जाती है उद्यम सम्बन्धी जोखिम भी वही उठाता है अर्थात् उसमें असीमित योग्यता पाई जाती है वह बहुत बड़ा बुद्धिजीवी होता है और अधिकतम लाभ प्राप्त करना चाहता है इन सभी गुणों को Goalfel Ratinality कहा गया लेकिन वास्तविक में उपरोक्त

मान्यताएं अवास्तविक हो उद्यमी में geattel Rationality नहीं होती आधुनिक संसार में फर्म की atonesship और management में अन्तर होता है फर्म के मासिक share holder होते हैं जबकि फर्म का प्रबन्ध मैनेजरों द्वारा किया जाता है एक ही व्यक्ति को फर्म के समस्त कार्यो की जानकारी नहीं हो सकती एक ही व्यक्ति के पास इतने निर्णय लेने के लिए न तो इतना ज्ञान होता है और न ही जटिलताओं के कारण Traditional Theory की यह मान्यता सही नहीं उतरती है कि धर्म का स्वामित्व और प्रबन्ध एक ही व्यक्ति द्वारा होता है।

2. **Goal of Profit maximisation :** Traditional Theory की इस मान्यता पर भी प्रहार किया गया है Classical सिद्धान्त के यह माना गया कि फर्म का उद्देश्य अधिकतम प्राप्त करना है पहली बात ये है कि फर्म कभी भी अधिकतम लाभ प्राप्त नहीं कर सकती। क्योंकि फर्म को पूर्व ज्ञान तथा क्षमता नहीं होती। फर्म को उचित रूप में अपने लाभ वक्र तथा लागत वक्र का ज्ञान नहीं होता। और इस स्थिति में दो अपने marginoalist principal में mc जो apply कर पाते। इसके अतिरिक्त फर्म का उद्देश्य केवल लाभ को अधिकतम करना नहीं होता, बल्कि बिक्री को अधिकतम करना होता हो तथा लाभ उनमें से एक है।

   I. **Managerialism : अर्थात् Maximisation of the Managerial Utility Function :** Managerial Theory के अनुसार प्रबन्धकर्ता तथा मालिक अलग होते हैं Manager उनके उद्देश्य निर्धारित करता है। Manager का उद्देश्य लाभ को अधिकतम करना नहीं होता बल्कि वह अपनी Sales को अधिकतम करना चाहता है वास्तव में वह अपनी आय Prestige बाजार में हिस्से Job Security आदि भी चाहता है।

   II. **Behaviourism Satisficiting Behaviour :** वास्तविक संसार में अनिश्चितता पाई जाती है अपूर्ण जानकारी सीमित समय और मैनेजर सीमित योग्यता तथा अन्य दबाओं या बाधाओं के कारण फर्म Traditional Theory के अनुसार कार्य नहीं कर पाती। अनिश्चितता किसी भी चीज की Maximisation को असम्भव बना देती है और इन परिस्थितयों में फर्म लाभ बिक्री विकास या किसी चीज को अधिकतम नहीं कर पाती हो हालांकि वह अपनी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सारे साधन लगा देती हो किन्तु वह धर्म beundeed Ratinality के तहत कार्य करती है।

   III. **Longrun Survival Goal :** कुछ अर्थशास्त्रियों का मानना है कि फर्म का उद्देश्य बाजार मे लम्बी अवधि तक टिके होना होता है ही फर्म कर उद्देश्य दीर्घकाल में लाभ को अधिकतम करना होता है। फर्म चाहती है कि बाजार में उसका एक निश्चित भाग भी बना रहे तथा निश्चित लाभ होते रहें। फर्म बाजार में अपनी अच्छी साख बनाए रखने के लिए भी लाभों को अधिकतम करना नहीं चाहती।

   IV. **नई फर्मों के प्रश्नों को रोकने के लिए और जोखिम से बचने के लिए :** कई लेखकों का मानना है कि फर्म बाजार में नई फर्मों का प्रवेश नही चाहती क्योंकि इससे अनिश्चितता बढ़ती हो इसलिए फर्म इस तरह की कीमत को निर्धारित नहीं करती है। नई फर्मों के लिए आकर्षक ना हों। फर्म ऐसी कीमत निर्धारित करती। जिसमें उनके लाभ अधिक ना हो बल्कि ऐसी कीमत निर्धारित करती हैं जिससे नई फर्मों का प्रवेश ना हो, इसे Limit Price पहले हो और Entry Preventing Price कहते हैं।

   V. **Static Nature of Tradibional Theory :** Traditional सिद्धान्त की प्रकृति स्थेटिक है समय तत्व को दो भागों अल्पकाल और दीर्घकाल में बाँटा गया है यद्यपि Traditional Theory या नहीं बताती है कि दीर्घकाल कितनी लम्बी समय अविध होती है और यह फर्म के निर्णय स्वतन्त्र होते हैं। और एक समय के लिए गये निर्णय दूसरे समय के निर्णयों को प्रभावित नहीं करते। लेकिन वास्तविकता

में ऐसा नहीं हो फर्म के निर्णय स्वतन्त्र नहीं होते, बल्कि भूतकाल में फर्म के द्वारा लिए गए निर्णय भविष्य के निर्णयों को प्रभावित करते हैं।

VI. **प्रवेश सम्बन्धी मान्यता :** परम्परागत मॉडल में प्रवेश सम्बन्धी मान्यता हर मॉडल के साथ बदल जाती है। अर्थात यह Market के ढांचे पर निर्भर करती है। जैसे पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार ही प्रतियोगिता में प्रवेश स्वतन्त्र होता है जबकि एकाधिकार में प्रवेश पर प्रतिबन्ध होता है इस सिद्धान्त में प्रवेश के दो ही केवल वास्तविक प्रवेश को माना गया है संम्भावित प्रवेश की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया गया।

VII. प्रवेश केवल दीर्घकाल में होता है अल्पकाल में नहीं। लेकिन वास्तविकता में वास्तविक प्रवेश की बजाय सम्भावित फर्मों का प्रवेश बाजार के निर्णयों को प्रभावित करते हैं।

VIII. **सीमान्त सिद्धान्त :** परम्परागत सिद्धान्त के अनुसार फर्म के निर्णय सीमान्त सिद्धान्त के अनुसार लिए जाते है। अर्थात MC = MR और ऐसा अल्पकालीन सन्तुलन के लिए भी। लेकिन व्यवहार में फर्म MC = MR को बराबर करके निर्णय नहीं लेती है। और इन सीमान्त इकाईयों को बराबर करना बहुत फर्म का एक मात्र उद्देश्य नही होता इसलिए फर्म कीमत और उत्पादन सम्बन्धी निर्णय सीमान्त सिद्धान्त के अनुसार नही होता बल्कि औसत (सिद्धान्त) लागत के अनुसार लेती है इस उपरोक्त बाद विवाद को marginatist controversy कहा जाता है।

Hall and Hitch Report and Full Cost Pricing Principle

1939 oxford university के शोधकर्ताओं में Hall and Hitch ने 38 फर्मों कर शोध किया। जिनमें से 33 विनिर्माण फर्में ये तीन फर्में retail trading थी और दो फर्में building की यह random sample नहीं बल्कि सुप्रबन्धित और सुसंगहित फर्में थी Study के जो सबसे चौंकाने वाले परिणाम वे ये थे कि –

1. फर्म अपने लाभों को अधिकतम करने का प्रयास नहीं करती हैं और फर्म उत्पादन के सम्बन्ध में निर्णय MC = MR को बराबर करके नहीं लेती है। फर्म दीर्घकाल में लाभों को अधिकतम करना चाहती है।
2. फर्म मत का निर्धारण सीमान्त सिद्धान्त के आधार नहीं करती है। कीमत निर्धारण के लिए फर्म औसत को आधार बनाती है

   P = AVC + AFC + Profit Margin
3. फर्म स्वतन्त्र रूप से कार्य नहीं करती है। फर्मों में परस्पर निर्भरता पाई जाती है। एक फर्म के निर्णय दूसरी फर्म को निर्णयों को प्रभावित करती है।
4. Traditional Theory के अनुसार निर्णय स्वतन्त्र रूप से लिये जाते हैं। एक समय में लिए गए निर्णय दूसरे समय में लिए गए निर्णयों को प्रभावित नहीं करते। फर्मों को यदि अल्पकाल में लाभ होता है दीर्घकाल में भी लाभ होने चाहिए लेकिन hael और hitch रिपोर्ट इसे गलत मानती है इनका मानना है कि फर्म के द्वारा एक समय में लिए गए निर्णयों दूसरे समय में लिए गए निणयों को प्रभावित करते है है यदि फर्म अल्पकाल में लाभ कमा रहीं है तो जरूरी नहीं कि दीर्घकाल में भी उसे लाभ मिलते हैं।
5. फर्म को मांग व और लागत वक्र के बारे पूर्ण जानकारी नहीं होती इसलिए सीमान्त सिद्धान्त को लागू नहीं किया जा सकता है। क्योंकि वर्तमान आर्थिक वातावरण में बहुत तीव्रता से परिवर्तन आते ही इसलिए फर्म मांग और लागतों का सही अनुमान फर्म नहीं लगा सकती।
6. Tradtional Theory के अनुसार फर्म का मुख्य उद्देश्य उत्पादन का निर्धारण करना है लेकिन hitch report के अनुसार कीमत सबसे अधिक महत्वपूर्ण हो इसलिए फर्म पहले के अनुसार कीमत सबसे अधिक महत्वपूर्ण हो इसलिए फर्म पहले कीमत का निर्धारण करती।

7. Traditional Theoey मानती है कि मांग और लागतों में परिवर्तन आ जाएगा। लेकिन इस रिर्पाट के अनुसार उत्पादन काफी हद तक मांग और लागतों में परिवर्तन आने पर कीमत को दृढ रखना चाहते है। ऐसा वे अनिश्चिता से बचने के लिए कहते हैं।

8. अधिकतर फर्में ऐसा fair profit को प्राथमिक़ता देती हैं न कि maximum करेगा और ऐसा वे कई बातों को ध्यान में रखकर कहती हैं जैसे दीर्घकाल फर्मों के लिए अच्छी साख के लिए सम्भावित स्पर्धा को देखते हुए इत्यादि। इस प्रकार इस रिपोर्ट के निष्कर्षों ने सीमान्त सिद्धान्त पर एक तीखा प्रहार किया।

Attack on Marginalism : 1948 में Gordon ने Mariginal Theory की मान्यताओं पर तीखा प्रहार किया और Marginalist controversy का एक भागीदार बन गया। उसके द्वारा की गई आलोचना के आधार निम्न–लिखित थे –

1. आधुनिक संसार जिसमें फर्म operate कर रही हैं। वह बहुत जटिल हैं इसलिए फर्म लागत और मांग के बारे में सही अनुमान नहीं लगा सकती।

2. अनिश्चितता के कारण भी सीमान्त सिद्धान्त के निष्कर्ष लागू नहीं होते है। फर्म कीमत निर्धारण के लिए Average cost principle का अनुसरण करती है न कि Marginal principle का।

3. Ownership और Management अलग–अलग लोगों के हाथ में ही आर्थिक परिस्थितियों में तीव्रता से परिवर्तन आते हैं।

4. Traditional Model एक Static Model है इसमें आशंकाओं को ध्यान में नहीं रखा गया है जो कि फर्म के वर्तमान व्यवहार को बहुत अधिक प्रभावित करती है।

अध्याय - 21
औसत लागत कीमत सिद्धान्त
(Average Cost Pricing Principle)

Average cost Pricing Model बहुत सारे अर्थशास्त्रियों द्वारा विकसित किया गया है। इन सभी मॉडलों की मुख्य विशेषता यह है कि इन सभी में कीमत का निर्धारण औसत लागत सिद्धांत के अनुसार किया जाता है।

P = AVC + GPM

AVC = Average Variable Cost

GPM = Gross Profit Margin

फर्म कुल औसत लागत के बराबर कीमत निर्धारित करती है और लाभ इसी में शामिल होते हैं विभिन्न सिद्धांत औसत लागत को निर्धारित करने के विभिन्न तरीके बराबर होते हैं लेकिन इन सभी सिद्धांतों में कीमत औसत लागत के बराबर होती है जबकि Traditional Theory कीमत का निर्धारण सीमांत सिद्धांत के अनुसार मानती है।

फर्म का उद्देश्य

औसत लागत सिद्धांतों में यह स्पष्ट या अस्पष्ट रूप से माना गया है कि फर्म का उद्देश्य दीर्घकाल लाभों को अधिकतम करना होता है विभिन्न समय अवधियों को स्वतंत्र नहीं लिया गया। बल्कि एक समय में लिए गए निर्णय दूसरे समय में लिए गए निर्णयों को प्रभावित करते हैं अर्थात् फर्म अपनी पिछली भूलों से सीखती हैं और फर्म के भूतकाले के निर्णय भविष्य के निर्णयों को प्रभावित करते हैं।

Demand and Cost Curves

Traditional Theory मानती है कि फर्म से Market Demand और Cost Curves के बारे में पूर्ण ज्ञान होता है लेकिन Average Cost Pricing Theory मानती है कि फर्म को इनके बारे में पूर्ण ज्ञान नहीं होता है इसके बहुत सारे कारण हैं जैसे –

1. भविष्य के बारे में अनिश्चितता
2. उपभोक्ताओं की कीमतों में परिवर्तन
3. प्रतियोगी फर्मों की प्रतिक्रियायें

तीव्र तकनीकी परिवर्तन

इसलिए इन सिद्धांतों में यह माना गया है कि फर्म अपने निर्णय अल्पकालीन औसत लागत के आधार पर लेती हैं इन सिद्धांतों में यह माना गया है कि औसत लागत U आकार की नहीं होती जैसा कि Traditional Theory मानती है बल्कि एक प्लेट के आकार की होती है।

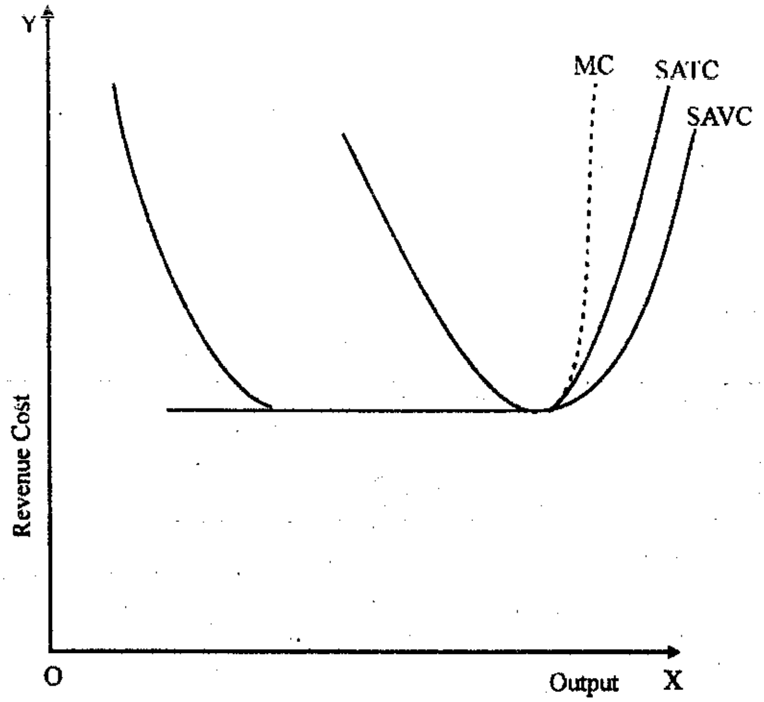

इन सिद्धांतों में यह माना गया है कि AVC काफी हद तक स्थिर रहती है इसलिए आकृति प्लेट जैसी होती है ऐसा इसलिए होता है कि फर्म अपने प्लांट में रिजर्व Capacity रखती है ताकि आवश्यकता पड़ने पर उत्पादन को बढ़ाया जा सके। रिजर्व Capacity के कई कारण हैं जैसे –

1. मांग में उतार होना
2. यदि किसी यंत्र में खराबी आ जाए तो उत्पादन पर बुरा प्रभाव ना पड़े।
3. बढ़ती हुई मांग के अनुसार उत्पादन के पैमाने को बढ़ाए बिना उत्पादन को बढ़ाना।
4. AVC का गिरता हुआ भाग बताता है कि उत्पादन में बढ़ने पर लागत गिर रही है जब तक SAVC गिर रही है MC इससे कम है जब SAVC स्थिर है तो MC भी स्थिर है और MC इसके बराबर है और जब SAVC बढ़ रही है तो MC भी बढ़ रही है इसलिए मांग के बढ़ने पर भी लागत नहीं बढ़ेगी। क्योंकि फर्म Plant में रिजर्व Capacity रखती है इसलिए कीमत भी स्थिर रहेंगी। क्योंकि कीमत AVC पर आधारित होती है।

Price Determination : कीमत निर्धारण के लिए फर्म Mark up Rule अपनाती है

Mark up Rule → P = AVC + GPM

AVC के बारे में फर्म निश्चितता से जानती है और GPM में स्थिर लागतें और सामान्य लाभ भी शामिल होते हैं।

GPM = AEC + NPM

AFC → Average Fix Cost

NPM → Net Profit Margin

NPM → generally 10%

$$AFC = \frac{TFC}{X}$$

x → output

वास्तविक कीमत निर्धारण Actual Price Setting : वास्तव में यह आवश्यक नहीं है कि कीमत का निर्धारण औसत लागत के बराबर ही है। Mark up Rule तो केवल कीमत के निर्धारण के लिए आधार प्रस्तुत करता है। वास्तविक कीमत इससे अधिक भी हो सकती है और कम भी हो सकती है। Actual Price पर कई तत्वों का प्रभाव पड़ता है जैसे – (i) संभावित फर्मों के प्रवेश की धमकी। (ii) सामान्य आर्थिक परिस्थिति या जैसे तेजी व मंदी।

यद्यपि उद्योग में विभिन्न फर्मों की लागतें अलग–अलग हैं फिर भी बाजार में कीमत के समान होने की प्रवृति पाई जाती है और इसके लिए फर्म collusive oligopoly की तरह व्यवहार करती है। फर्मों के बीच में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से समझौता होता है या फर्म एक Price Leader को चुन लेती है जैसे फर्म जिसकी उत्पादन लागत सबसे कम होती है और Price Leader Average cost Pricing के आधार पर निर्धारित करता है।

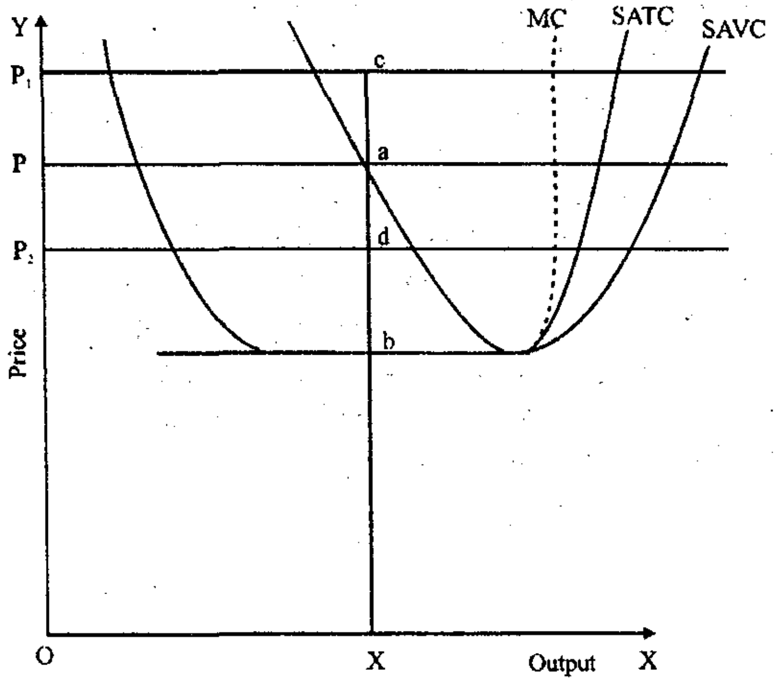

Ab → Gross Prift Margin (GPM)

GPM > AFC + NPM

Mark up Rule : के द्वारा निर्धारित कीमत है इसमें फर्म की औसत लागत और Profit Margin शामिल है यदि कई फर्मों के प्रवेश की संभावना नहीं है और बाजार में तेजी की स्थिति हो तो फर्म OP_1 कीमत भी वसूल कर सकती है और और ऐसी स्थिति में फर्म के लाभ बढ़ेंगे। जोकि bc के और भी के फर्म को कई फर्मों के प्रवेश का डर है या फिर बाजार में मंदी के कारण मांग कम हो तो फर्म कम कीमत वसूल करेगी, और फर्म के (1) न होंगे। OP_2 कीमत पर फर्म को bd लाभ प्राप्त हो रहे हैं इस मॉडल में मांग वक्रों को स्पष्ट रूप से नहीं लिया गया है। कीमत का निर्धारण अल्पकालीन औसत लागत के आधार पर होता है। दीर्घकालीन औसत लागत के आधार पर नहीं, क्योंकि दीर्घकाल औसत लागतों में काफी निश्चितता पाई जाती है।

Effect of Changing Market Condition on Average Cost

Pricing Theory : कीमत को कई तत्व प्रभावित कर सकते हैं –

1. लागतें
2. मांग
3. कर

1. **लागतों में परिवर्तन :** यदि लागतों में बहुत कम परिवर्तन आता है तो फर्म कीमत में परिवर्तन नहीं करेगी। ऐसी स्थिति में फर्म वस्तु (की) के गुण या मात्रा में थोड़ा सा परिवर्तन करके लागत में होने वाले परिवर्तन को सहन कर सकती है। यदि लागतों में बहुत भारी परिवर्तन हो रहें हैं तो कीमतों में उनके अनुसार परिवर्तन कर दिया जाता है यदि लागतों में साधन लागत गिरने या तकनीकी उन्नति होने के कारण बहुत अधिक कमी आ गई है। ऐसी स्थिति में यदि फर्म वस्तु की कीमत को कम नहीं करेगी और अधिक लाभ कमाएगी तो इससे नई फर्में आकर्षित होंगी इसलिए नई फर्मों के प्रवेश को रोकने के लिए फर्म लागत के गिरने पर कीमत को कम कर देगी।

2. **मांग में परिवर्तन :** यदि मांग में अल्पकाल में वृद्धि होती है तो फर्म कीमत को नहीं बढ़ाएंगी क्योंकि ऐसी स्थिति में कीमत को बढ़ाने से फर्म की प्रतिष्ठा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा, लेकिन यदि मांग में वृद्धि लंबे समय तक होती ही रहे तो फर्म Plant Size के आकार को बढ़ा सकती है और जरूरी नहीं कि कीमत को बढ़ाए। लेकिन यदि मांग में कमी आ जाती है तो फर्म कीमत को कम कर देती है।

3. **करों में परिवर्तन :** यदि सभी फर्मों पर एक ही प्रकार का कर लगा दिया जाता है और जो एकमुश्त कर होता है। *(Lumpsum Tax)* जैसे *Scale Tax* या *Profit Tax* ऐसी स्थिति में सभी फर्में समान रूप से प्रभावित होंगी, क्योंकि सभी फर्मों की लागत बढ़ेगी और इसलिए सभी फर्में कीमत को बढ़ा देंगी। और इस प्रकार कर को उपभोक्ता पर बल दिया है और यदि एक विशिष्ट कर लगा दिया जाता है तो वस्तुओं की इकाई के अनुसार लगता है तो फर्म की AVC बढ़ जाएगी, ऐसी स्थिति में फर्म कीमत को बढ़ाकर Tax की मात्राओं को उपभोक्ताओं से वसूल करेगी। इसलिए इस मॉडल में कीमत इतनी दृढ़ नहीं होती है जैसी कि Kinked Demand Analysis में है कीमत Average Cost के आधार पर निर्धारित की जाती है। बाजार की परिस्थितियों में अंतर आने से कीमतों में अंतर आ सकता है लेकिन औसत लागत कीमत के निर्धारण के लिए एक शक्तिशाली आधार प्रस्तुत करती है।

अध्याय -22

बेन्त का सीमा कीमत मॉडल

(Baint's Limit Pricing Model)

Baint ने Limit Price का सिद्धान्त 1949 में दिया था। इस सिद्धान्त में Bain ने यह स्पष्ट किया था कि फर्म वस्तु की कीमत को माँग वक्र के ऐसे बिन्दु पर निर्धारित करती है। जहाँ पर मांग की मूल्य सापेक्षता इकाई से कम होती है। अर्थात् फर्म ऐसी कीमत निर्धारित नहीं करती जहाँ पर फर्म के लाभ अधिकतम हो जाएँ। Bain के ये सिद्धान्त परम्परागत सिद्धान्त के विपरीत थे। क्योंकि परम्परागत सिद्धान्त फर्मो के केवल वास्तविक प्रवेश को मानना है सम्भावित प्रवेश की नहीं।

Baint के अनुसार वर्तमान फर्मों Limit price इसलिए निर्धारित करना चाहती है कि वे सम्भावित प्रवेश को नहीं चाहती। क्योंकि सम्भावित फर्मों की क्रियाओं के बारे में वर्तमान फर्मों को पता नहीं होता। इसलिए ये फर्मे अनिश्चित्ता से बचने के लिए Limit Price का निर्धारण करती है और Limit Price वह अधिकतम कीमत होती है। **जिसे वर्तमान फर्मे सम्भावित फर्मों के बिना आकर्षित किए वसूल कर सकती है।** यह कीमत पूर्ण प्रतियोगी कीमत से अधिक होती है और एकाधिकारी कीमत से कम होती है।

Baint's Model की मान्यताएँ: इसकी मुख्य मान्यताएँ निम्नलिखित हैं:

1. उद्योग का दीर्घकालीन माँग वक्र निश्चित होता है इसलिए सीमान्त आय वक्र भी निश्चित होता है।
2. वर्तमान फर्मो के बीच में प्रभावी कपट संधि पाई जाती हैं।
3. वर्तमान फर्मे एक Limit Price निर्धारित कर सकती हैं और इससे कम कीमत कई तत्वों पर निर्भर करती हैं।
   (i) सम्भावित फर्मो की लागत पर।
   (ii) बाजार माँग मूल्य सापेक्षता पर।
   (iii) दीर्घकालीन औसत लागत के आकार और स्तर पर।
   (iv) बाजार के आकार पर।
   (v) उद्योग में फर्मों की मात्रा पर।
4. Limit Price से ऊपर कीमत होने पर नई फर्मो का प्रवेश होगा और इससे वर्तमान फर्मो के लिए अनिश्चितता बढ़ जाएँगी।
5. वर्तमान फर्म अपने दीर्घकालीन लाभों को आधिकतम करना चाहती है।

रेखाचित्र में Limit Price P_L है। जिसको फर्म प्राप्त कर सकती है और इसको वर्तमान फर्मे भी जानती है और सम्भावित फर्मे भी जानती है। LAC की दीघकालीन फर्म का दीर्घकालीन औसत लागत कम हैं। इसलिए प्रतियोगी कीमत P_C होगी। क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत दीर्घकालीन औसत लागत के बराबर होती है। एकाधिकारी कीमत

The Model

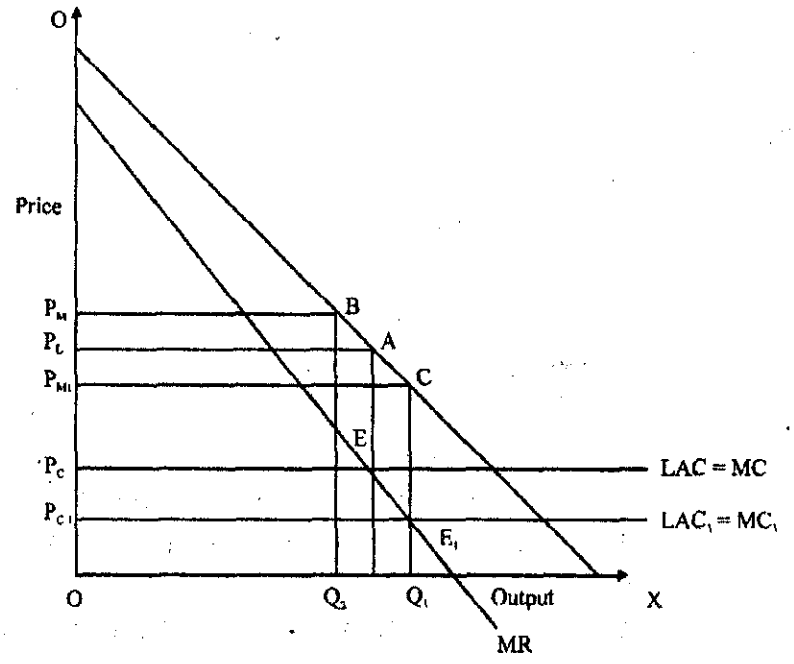

$P_M > P_L$ → Limit price operative

$P_M < P_L$ → Limit price non-operative

Pm होगी। जहाँ M_C और MR बराबर हो जो E बिन्दु पर है। Limit price monopoly price Pm से कम है और प्रतियोगी कीमत P_C से ज्यादा है। फर्म के सामने तीन विकल्प है। इनमें से फर्म को जहाँ पर अधिकतम कम होगें, वही विकल्प फर्म चुन सकती है।

(1) फर्म PL कीमत वसूल करें और सम्भावित फर्मों के प्रवेश को रोकें।

(2) PL से कम कीमत वसूल करें और सम्भावित फर्मो के प्रवेश को रोके और ऐसा तब हो सकता हैं। जब $P_M < P_L$ जैसाकि रेखचित्र में Monopoly price limit price से कम हो तो फर्म एकाधिकारी कीमत ही वसूल करेगी और ऐसी स्थिति में नई फर्मो का प्रवेश नहीं होगा।

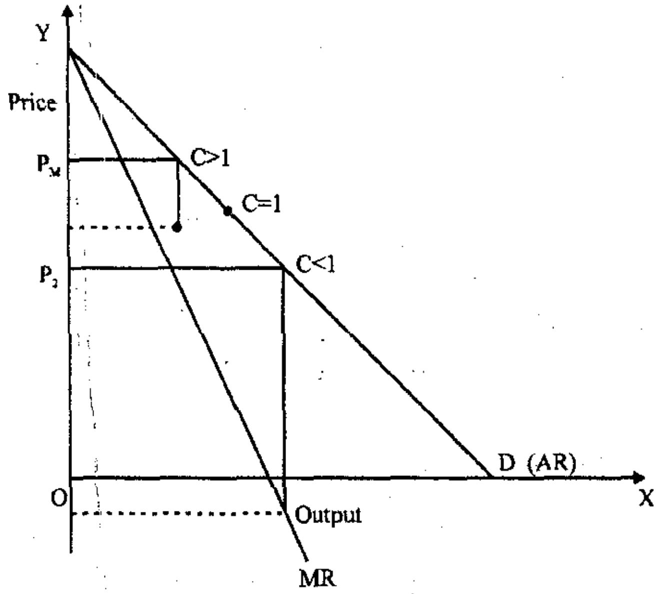

(3) फर्म PL से अधिक कीमत वसूल करें और नई फर्मो का प्रवेश होने दे। ऐसी स्थिति में फर्म नई फर्मो के प्रवेश

से उत्पन्न होने वाली अनिश्चितता की कटौती करके शुद्ध कम निकालती है। यदि Risk discounted profit limit price से ज्यादा होगें तो फर्म PL से अधिक कीमत वसूल करेगी।

Limit price ऐसे बिन्दु पर निर्धारित होती हो जहाँ पर माँग की मूल्य सापेक्षता इकाई से कम होती है और Monopoly price ऐसे बिन्दु पर निर्धारित होती हो जहाँ पर माँग की मूल्य सापेक्ष इकाई से ज्यादा होती है।

Baint की प्रवेश और प्रतियोगिता की धारणा : Baint ने दो प्रकार की प्रतियोगिता के बारे में बताया है।

(i) वर्तमान फर्मों के बीच मे वास्तविक प्रतियोगिता।

(ii) उद्योग के बाहर वाली फर्मों के प्रवेश करने से सम्भावित प्रतियोगिता।

इनमें वास्तविक प्रतियोगिता बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि फर्मों में काफी हद तक परस्पर निर्भरता पाई जाती है। लेकिन सम्भावित फर्मों के प्रवेश का डर भी वर्तमान फर्मों की कीमत नीति को बहुत अधिक प्रभावित करता है। इसलिए Bain केवल वर्तमान फर्मों में ही प्रतियोगिता नहीं मानता बल्कि सम्माावित फर्मों के प्रवेश से उत्पन्न प्रतियोगिता को भी मानता है। परम्परागत सिद्धान्त के अन्तर्गत वास्तविक प्रवेश को मान्यता दी गई है सम्भावित प्रवेश को नहीं। Cournet, Bertrond, Edge worth & charmberting closed.

Mode ही इनमें फर्मों के प्रवेश को प्रतिबन्धित माना गया है। Collusive digopology Model भी Close Model है क्योंकि नई फर्मों के आने से Costel में अस्थिरता उत्पन्न हो जाती है। Price Leadership Model भी सम्भावित प्रवेश को नहीं मानते। ने सबसे पहले बताया था कि सम्भावित फर्मों के प्रवेश के डर के कारण ही Collusive oligopoly में एकाहीकारी कीमत को वसूल नहीं किया जाता है।

Baint के सिद्धान्त में प्रवेश की धारणा : Bain ने प्रवेश शब्द का अर्थ दो प्रकार से लिया है।

(i) नई धर्म को स्थापित करना

(ii) उद्योग में नई उत्पादन क्षमता का निर्माण करना।

Barrier to entry प्रवेश के लिए रुकावट : Bain में Condition of entry की धारणा दी है। इसका अर्थ है कि जब वर्तमान फर्म कीमत को दूसरी फर्मों को बिना आकर्षित किए प्रतियोगी कीमत स्तर से जितना अधिक बढ़ा सकती है उस Margin को Condition of Entry कहा गया है।

$$E = \frac{P_L - P_L}{P_C}$$

E = Condition of entry

P_L = Limit price

P_C = Competitive price = LAC

$P_L = P_C(1 + E)$

इस प्रकार E वर्तमान फर्मों के लिए Premium होता है।

Baint : ने प्रवेश के लिए चार मुख्य रूकावटें बताई ही बाजार में प्रवेश के लिए नई फर्मों को मुख्य रूप से चार रूकावटों का सामना करना पड़ता है।

(i) वस्तु विभेद Product differentiation barier.

(ii) वर्तमान फर्मों को निरपेक्ष लागत लाभ Absolute cost advantage.

(iii) पैमाने की बचतें।

(iv) प्रारम्भिक चरण में पूंजी की भारी आवश्यकता।

1 **वस्तु विभेद अवरोधक :** परम्परावादी सिद्धान्त में वस्तु विभेद जो कि प्रवेश के लिए अवरोध का काम करता है कि तरफ ध्यान नहीं दिया गया, परन्तु वास्तव में उपभोक्ताओं कि प्राथमिकताएं जो कि एक विशेष प्रवेश के लिए अवरोध करती है। इसलिए नई प्रवेश करने वाली फर्म को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए भारी मात्रा में विज्ञापन करना पड़ता है, या अपनी वस्तु की कीमत को काफी कम करना पड़ता है। इससे नई फर्म की लागतें बहुत अधिक बढ़ जाएगी, जो कि फर्म के प्रवेश के लिए अवरोध का काम करेंगी।

2. **निरपेक्ष लागत लाभ अवरोध :** वर्तमान फर्मों की नई कारणों में निरपेक्ष लागत लाभ प्राप्त होते ही हैं जैसे–

(i) कुशल मैनेजरों के कारण

(ii) अच्छी तकनीक के प्रयोग से।

(iii) बचे माल की पूर्ति पर नियन्त्रण से।

(iv) बचे माल के सप्लायरों के साथ अच्छी जान–पहचान के कारण कम कीमतों पर जरूरी कच्चा माल उपलब्ध हो जाना।

(v) वर्तमान फर्मों के लिए पूंजी की कम लागत, क्योंकि ऐसी फर्मों को कम ब्याज दर पर पैसा उपलब्ध हो जाता है, जबकि नई आने वाली फर्मों को ये सब लाभ प्राप्त नहीं होते, इसलिए नई फर्मों की लागतें अधिक आती हैं।

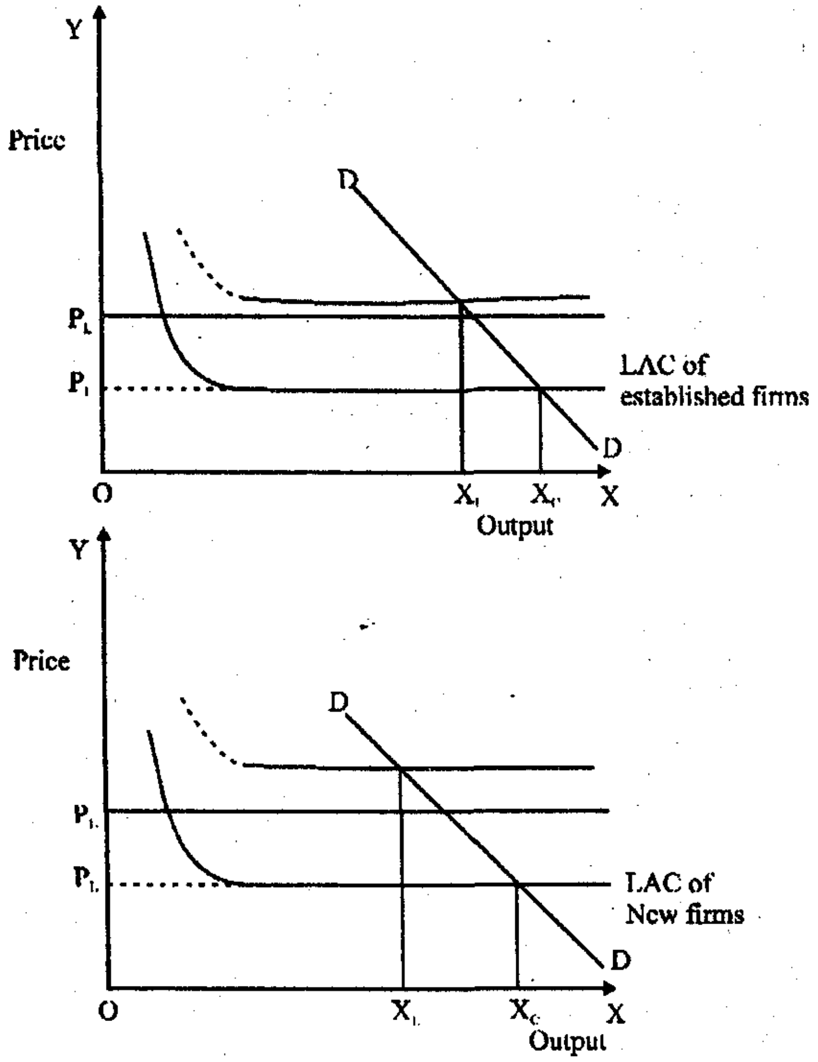

Absolute Cost Advantage Barrier

इस रेखाचित्र में वर्तमान फर्मों के औसत लागत नई फर्मों की आने वाली औसत लागत से काफी कम है। नई फर्मों की औसत लागत limit price P_L से भी अधिक है। इसलिए P_L कीमत पर नई फर्में बाजार में प्रवेश नहीं कर पाएंगी। क्योंकि कोई भी फर्म लागत से भी कम कीमत पर वस्तु को नहीं बेच सकती।

3. **प्रारम्भिक पूंजी की आवश्यकता का अवरोध :** किसी भी फर्म को स्थापित करने के लिए भारी मात्रा में पूंजी की आवश्यकता होती है, इसलिए नई फर्मों को पारम्भिक पूंजी को जुटाने के लिए समस्याओं का सामना करना पड़ता है। किसी भी नई फर्म या नए व्यापार को वित्त प्रदान करने के लिए बैंक हिचकिचाता है। Share Holder भी नई फर्म में पैसा नहीं लगाना चाहते। पूंजी की आवश्यकता होती है। यदि नई फर्म को पूंजी मिलती भी है तो वह काफी ऊंची ब्याज की दर पर उपलब्ध हो पाती है, इसलिए पूंजी की प्रारम्भिक चरण में आवश्यकता नए प्रवेशक के लिए अवरोध का काम करती है, जबकि इसी चरण में फर्म को अधिक पूंजी की आवश्यकता होती है।

4. **पैमाने की बचतों सम्बन्धी अवरोध :** वर्तमान फर्मों को कई प्रकार की आन्तरिक और बाहरी बचतें प्राप्त होती हैं, जैसे –

   (i) मैनेजरों सम्बन्धी बचतें।

   (ii) तकनीकी बचतें।

   (iii) श्रम सम्बन्धी बचतें जो कि कुशल श्रम, श्रम विभाजन और विशिष्टीकरण के कारण प्राप्त होती हैं।

   (iv) वर्तमान फर्मों को परिवहन और विज्ञापन सम्बन्धी बचतें भी प्राप्त होती है। ये सभी बचतें उत्पादन का पैमान बढ़ने के कारण प्राप्त होती है।

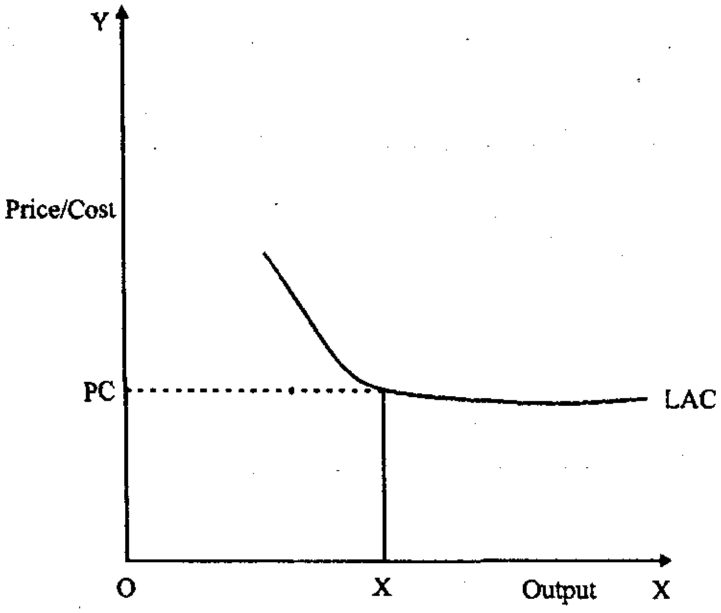

फर्मों के प्रवेश पर उत्पादन **के पैमाने का अवरोध होता** है – वर्तमान फर्म जो Limit Price Charge करती हैं। वह प्रवेश निषेध करने वाली कीमत होती है और यह कीमत प्रतियोगी कीमत से अधिक होती है, जिसको निम्नलिखित Condition से दर्शाया जाता है।

$$P_L = P_C (1 + E)$$

Limit Price के निर्धारक तत्व निम्नलिखित होते हैं –

(i) Minimum optimal scale (X)

(ii) Size of Market at Competitive price (X_C)

(iii) बाजार मांग की मूल्य सापेक्षता (E)

(iv) उद्योग में स्थापित फर्मों की संख्या।

(v) Limit price और X का सीधा सम्बन्ध होता है। X जितना अधिक होगा Limit price उतनी ही अधिक होगी।

(vi) बाजार के आकार और Limit price में विपरीत सम्बन्ध होता है। बाजार का आकार जितना बड़ा होगा Limit price उतनी ही कम होगी।

(vii) मांग की मूल्य सापेक्षता (e) और Limit price में भी विपरीत सम्बन्ध होता है (e) यदि अधिक हो तो Limit price कम होगी।

(viii) फर्मों की संख्या और Limit price में सीधा सम्बन्ध होता है। वर्तमान फर्में जितनी अधिक होगी, Limit price उतनी ही अधिक होगी।

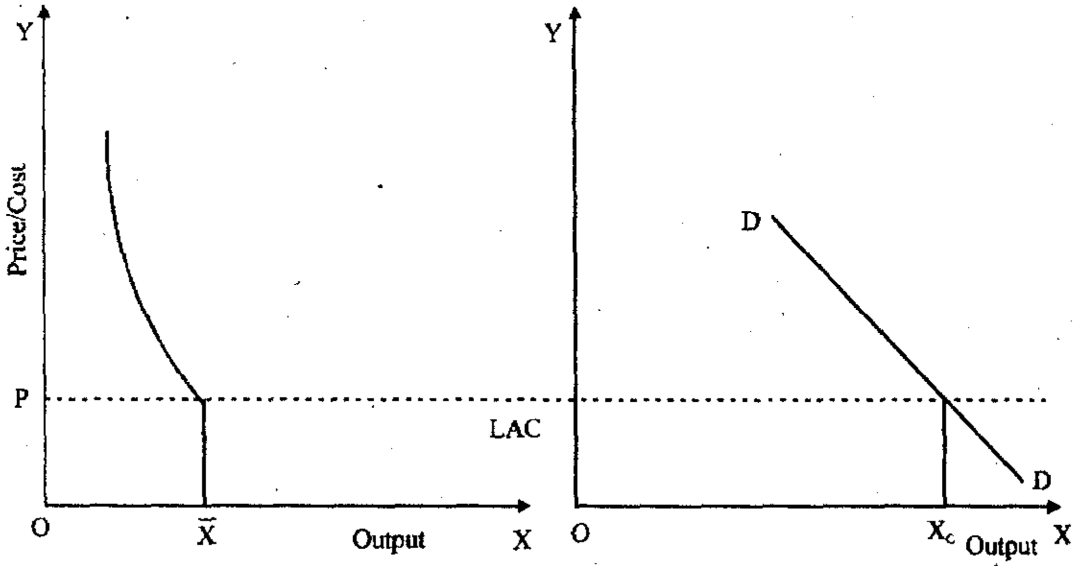

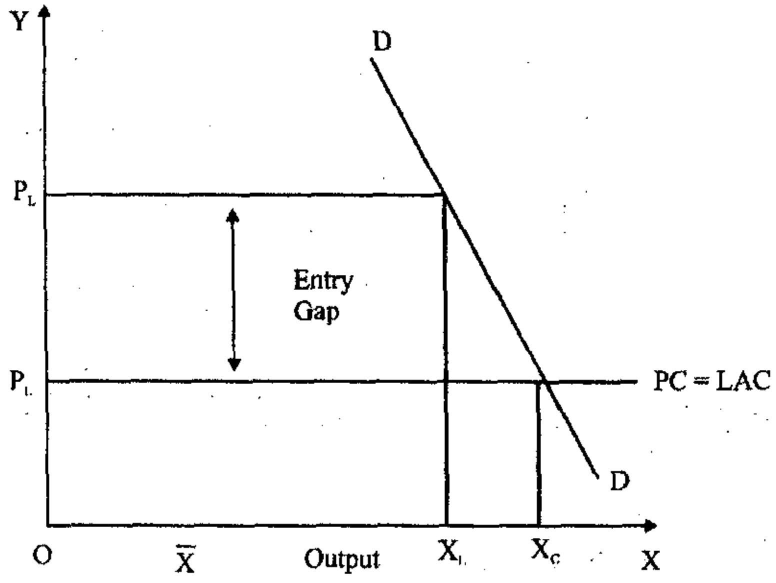

Q. **Model of Sylos Labini of Limit Pricing ?**

Ans. Sylos ने अपना Model प्रवेश के पैमाने के अवरोध पर विकसित किया है। (Scale Barrier to entry) इस Model

में Sylos ने बहुत सारे गणितीय उदाहरण लिए है। Sylos ने बताया है कि नई फर्म के प्रवेश पर सबसे बड़ा अवरोध पैमाने की बचतों का होता है, क्योंकि एक निश्चित मात्रा का उत्पादन किए बिना पैमान की बचतें प्राप्त नहीं हो सकती, और नई फर्में बाजार में प्रवेश करने में असमर्थ हो जाती है।

मान्यताएँ

1. बाजार मांग दी हुई है और इकाई लोचदार ही वस्तु समरूप है और बाजार में वस्तु की एक ही सन्तुलन कीमत है।
2. तीन प्रकार के Plant Size हैं एक छोटे आकार के Plant हैं जिसकी उत्पादन क्षमता 100 इकाई है। एक मध्यम आकार का Plant है जिसकी उत्पादन क्षमता 1000 इकाई है और एक बड़े आकार का Plant है जिसकी उत्पादन क्षमता 8000 इकाई है। Plant का आकार बढ़ने से पैमाने की बचतें प्राप्त होती हैं। सबसे बड़े पैमाने Plant की औसत लागत सबसे कम है, और सबसे छोटे Plant की औसत लागत सबसे अधिक है।
3. कीमत का निर्धारण Price Leader के द्वारा किया जाता है। और कीमत ऐसी होती है कि नई फर्मों का प्रवेश ना हो। सबसे बड़ी फर्म Price का निर्धारण करती है और छोटी फर्में उस कीमत को स्वीकार करती हैं। वस्तु की कीमत सबसे छोटी फर्म की औसत लागत से कम नहीं होती। इसलिए सबसे बड़ी फर्म द्वारा निर्धारित कीमत अन्य फर्मों को स्वीकार्य होती है और इस कीमत पर नई फर्म का प्रवेश नहीं हो सकता।
4. उद्योग में लाभ की सामान्य दर होती है। जिसको Sytos ने 5% माना है।
5. कीमत नेता को सभी Plants की लागत का ज्ञान हो और बाजार मांग के ज्ञान की भी जानकारी हो।
6. स्थापित फर्में और नई प्रवेश करने वाली फर्में सभी Sytos (Pastulate) मान्यता को ध्यान में रखकर व्यवहार करती हैं। वर्तमान फर्मों को पता है कि भावी फर्म के आने से उत्पादन बढ़ जाएगा और कीमत LAC से कम हो जाएंगी। इसलिए नई फर्म प्रवेश करना नहीं चाहेगी। और नई फर्म ये आशा करती है कि वर्तमान फर्में उतना ही उत्पादन करती रहेगी, इसलिए नई फर्मों के आने से उत्पादन बढ़ेगा और Price गिर जाएंगी।

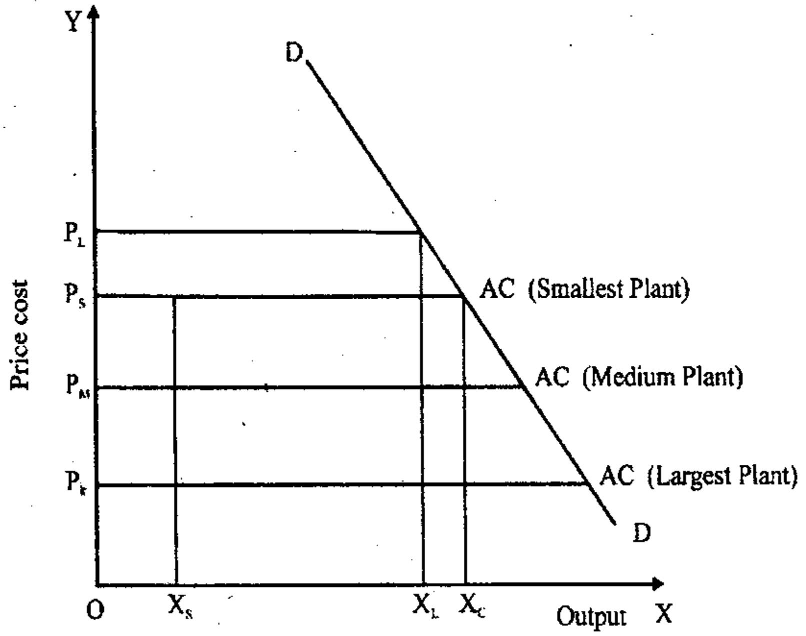

रेखांकित में DD बाजार मांग वक्र है जो दी हुई है और फर्म को इसके बार में ज्ञान है। Pl सबसे बड़ी फर्म की औसत लागत का AC है। इस लागत पर सबसे बड़ी फर्म की पूर्ति पूर्ण तथा लोचदार है। मध्यम Plant की औसत लागत इससे अधिक है और सबसे छोटे Plant की औसत लागत सबसे अधिक है। सबसे छोटा Plant Ds कीमत पर

वस्तु की पूर्ति कर सकता है। सबसे छोटे Plant का आकार OX_s है, इसलिए कोई भी नई फर्म इतने आकार के Plant के साथ ही प्रवेश कर सकती है। कुल उत्पादन में से सबसे छोटे Plant का उत्पादन X_S घटाने के बाद X_L उत्पादन बचता है और इस उत्पादन को ध्यान में रखते हुए वस्तु की कीमत P_L निर्धारित की जाती है। P_L Limit Price ही इस कीमत पर नई फर्मों का प्रवेश नहीं हो सकता, क्योंकि यदि नई फर्म आएंगी तो उत्पादन बढ़ जाएगा और कीमत गिरकर P_S से भी कम हो जाएंगी, इससे नए प्रवेशक का नुकसान होगा। इसलिए नई फर्में प्रवेश करना नहीं चाहेगी।

Sylos ने Entry Preventing price के चार मुख्य निर्धारक तत्त्व बताए हैं –

(i) बाजार का आकार (X)

(ii) बाजार मांग की मूल्य सापेक्षता (e)

(iii) उद्योग की तकनीक, जो Plant size के बारे में बताती है।

(iv) उत्पादन के साधनों की कीमतें जो कि फर्म की औसत लागत को निर्धारित करती है।

- (i) बाजार के आकार और P_L में उल्टा सम्बन्ध पाया जाता है। यदि बाजार मांग बढ़ जाती है तो P_L कम हो जाती है।
- (ii) Limit price और मांग की लोच में विपरीत सम्बन्ध होता है। मांग की लोच अधिक होने से Limit price कम हो जाती है।
- (iii) साधन कीमतों और Limit price में सीधा सम्बन्ध होता है। यदि साधन कीमतें बढ़ेंगी तो उत्पादन लागतें बढ़ेगी। इसलिए Limit price भी बढ़ जाएगी। और लागत के कम हो जाने से Limit price कम हो जाती है।
- (iv) Plant का आकार जितना बड़ा होगा, P_L उतनी ही अधिक होगी। Plant size यदि छोटा हो तो Limit price कम होगी।
- (v) यदि तकनीकी वृद्धि होती है तो इससे लागतें कम हो जाएंगी और Limit price कम होगी।

आलोचना

1. यह Model बहुत सी अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है।
2. Sylos ने बहुत सारे गणितीय उदाहरण लिए हैं जो Model को अधिक जटिल बना देते हैं।

अध्याय - 23

बॉमल का अधिकतम बिक्री आय सिद्धान्त

(Baumol's Sales Maximisation Hypothesis)

Baumol ने Sales Revenue Maximisation को फर्म के अधिकतम लाभ के उद्देश्य के विकल्प, के रूप में पेश किया अर्थात् Baumol के अनुसार फर्म बिक्री से प्राप्त आय को अधिकतम करना चाहती है न कि लाभ को अधिकतम करना। इसके सन्दर्भ में उन्होंने दो Basic Model प्रस्तुत किये जिनका वर्णन यहां किया गया है।

तर्कसंगतता

Rationalsation of the Sales Maximisation Hypothesis

Sales maximisation उद्देश्य का औचित्य –

आधुनिक फर्म के प्रबन्धक और मालिकों के बीच मध्य अन्तर पाया जाता है। मैनेजर ऐसे उद्देश्य रखते हैं जनसे उनका अपना तृष्टिगुण अधिक हो सके न कि अधिकतम लाभ का उद्देश्य। Baumol ने फर्म के लिए Sales Maximisation का उद्देश्य सुझाते हुए बताया कि इसके निम्न कारण हैं –

1. मैनेजर Sales Maximisation का उद्देश्य इसलिए रखते हैं क्योंकि उनकी आय का सम्बन्ध बिक्री से है न कि लाभ से।
2. बैंक और अन्य वित्तीय संस्थाएं फर्म लोग उधार देते समय उसकी बिक्री का ध्यान करती है न कि लाभ का।
3. कर्मचारियों की व्यक्तिगत समस्याएं भी तभी हल होती हैं जब बिक्री बढ़ रही हो क्योंकि यदि बिक्री घटने लगे तो कर्मचारियों की समस्या खत्म होने की बजाय और भी बढ़ेगी। यहां तक कि कुछ कर्मचारियों को नौकरी से निकाला जा सकता है। ऐसी परिस्थिति में कर्मचारियों के मध्य असन्तोष और अनिश्चिता बढ़ती है।
4. ज्यादा बिक्री होना मैनेजर की Prestige को बढ़ाता है जबकि अधिक लाभ मालिकों की जेब में जाते हैं। इसलिए अपने स्वार्थ का ध्यान रखते हुए मैनेजर बिक्री को बढ़ाना चाहते है न कि लाभ को।
5. मैनेजर सन्तोषजनक लाभ के हक में पाये जाते हैं क्योंकि किसी समय अधिकतम लाभ प्राप्त किया जाता है तो अगले समय यदि कम लाभ होता है तो मैनेजन को समस्या का सामना करना पड़ता है क्योंकि इस कारण हो सकता है मैनेजर को नौकरी से निकाल दिया जाए।
6. बिक्री बढ़ने से फर्म की सौदा करने की शक्ति अधिक हो जाती है और वह प्रतियोगिता का सामना सुदृढ़ता से कर सकती है।

आधुनिक फर्मो के लिए सन्तोषजनक लाभ उद्देश्य है। बिक्री से निरन्तर वृद्धि का उद्देश्य जोखिम भरे कार्यो से हतोत्साहित (discourage) करता है। परन्तु ऐसा होना आर्थिक विकास के लिए लाभप्रद नहीं है। यह कहना अपितु होना कि आधुनिक फर्मो निरन्तर विकास की राह पर चलने के लिए Research unit की स्थापना करती है जो उत्पादन की नई तकनीक और New Product की खोज करती रहती है। इसलिए आधुनिक फर्में विकास के मार्ग में रूकावटें नहीं बन सकती।

Interdependence and Oligopolistic Behaviour

Baumol मानता है कि oligolistic market के अन्तर्गत फर्मो के अन्दर Interdependence पाया जाता है। परन्तु Baumol के अनुसार फर्म के अपने रोजाना के Routine के decision बिना किसी दूसरी फर्मो की प्रतिक्रिया को ध्यान में रखकर लिए जाते हैं। जब फर्मे विज्ञापन सम्बन्धी बड़े निर्णय लेती है तब तो वे दूसरी फर्मो की प्रतिक्रिया का ध्यान रखती है अन्यथा नहीं।

इसका कारण यह है कि बड़ी फर्मो का आन्तरिक संगठन बड़ा जटिल है जो निर्णय लेने की प्रक्रिया को बहुत लम्बा बना देता है इसलिए निर्णय लेते समय अन्य फर्मो की प्रतिक्रिया का ध्यान नहीं रखा जा सकता।

इसी प्रकार बहुत से निर्णय फर्मो द्वारा पहले से बनाये गये नियमों के आधार पर लिए जाते हैं जैसे कीमत निर्धारण का निर्णय स्टाक सम्बन्धी निर्णय। इसलिए भी प्रतियोगी (Compititers) की प्रतिक्रिया का ध्यान नहीं रखा जाता है। इसका अर्थ यह नहीं कि फर्म अपने प्रतियोगियों की प्रतिक्रियाएं उस फर्म के बाजार को कम कर रही है तो अवश्य ही फर्म उनकी प्रतिक्रियाओं का ध्यान रखते हुए निर्णय लेती हैं।

The Basic Assumption of the Static Models

1. फर्म के सामने एक ही समय अवधि दी हुई होती है जिसमं उसे निर्णय करने होते हैं।
2. फर्म अपनी कुल बिक्री आय का अधिकतम करने का प्रयास करती है परन्तु सन्तोषजनक लाभ अवश्य प्राप्त होने चाहिए।
3. कम से कम लाभ की मात्रा Share Holder Bank आदि की आशाओं के अनुसार निर्धारित की जाती है। फर्म Share Holder को खुश रखने के लिए कम से कम लाभ अवश्य प्राप्त करें यदि लाभ इससे कम हो जाते हैं तो मैनेजर को नौकरी से निकाले जाने का जोखिम होता है।
4. Cost और Revenue curtes सामान्य आकृति के होते हैं।

A single Product model without advertisng

फर्म के Total Cost Curve और Total Revenue Curve नियम चित्र द्वारा दर्शाए गए हैं। हम जानते है कि Total Sales & Revenue Total Revenue Curve के उच्चतम बिन्दु पर अधिकतम होता है तो दो विशेष तथ्य सामने आते हैं। एक तो यहां TR Curve का Slope शून्य होता है। दूसरे यहां वस्तु की कीमत मांग की मूल्य सापेक्षता (Price easticity of Demand) इकाई के समान होता है।

Point method के माध्यम से हम जान सकते हैं कि जब भार शून्य होता है तो Price elasticity of Demand इकाई के समान हाती है और जब MR नकारात्मक होती है तो Price elasticity of Demand less than one और जब MR धनात्मक होता है तो Elasticity of Demand इकाई से अधिक होती है जैसा निम्न चित्र से स्पष्ट है —

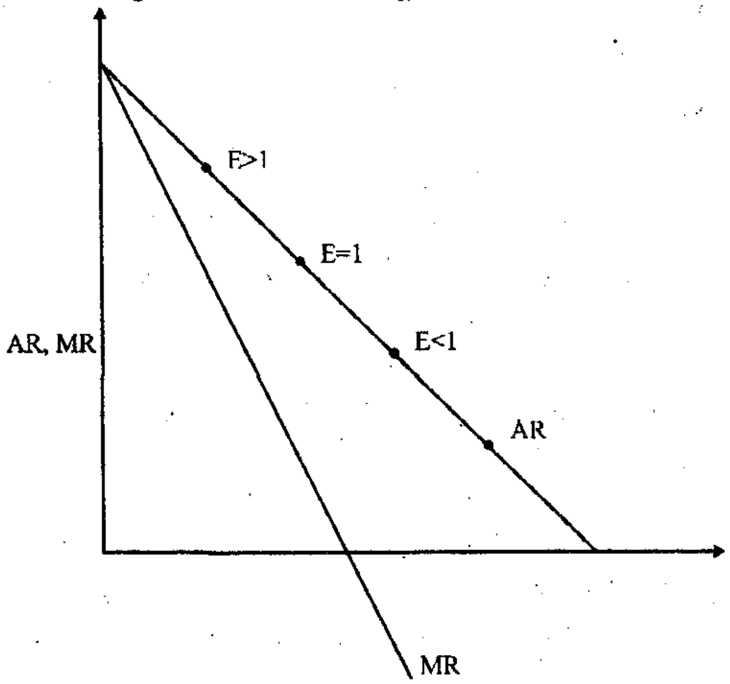

फर्म अधिकतम Sales Revenue प्राप्त कर रही है या नहीं यह Minimum acceptable level acceptable level of profit अधिकतम Sales Revenue प्राप्त करने के रास्ते में रूकावट बन सकता है। यदि *minimum* acceptable level of profit से है, तो फर्म के उत्पादन करेगी। कम से कम A लाभ प्राप्त करती हुई फर्म अपने Sales Revenue को अधिकतम करती है। यह A लाभ Minimum required profit से अधिक है ऐसी परिस्थिति में हम कह सकते हैं कि minimum profit बन्धक का कार्य नहीं करता जैसे निम्न चित्र में दर्शाया गया है –

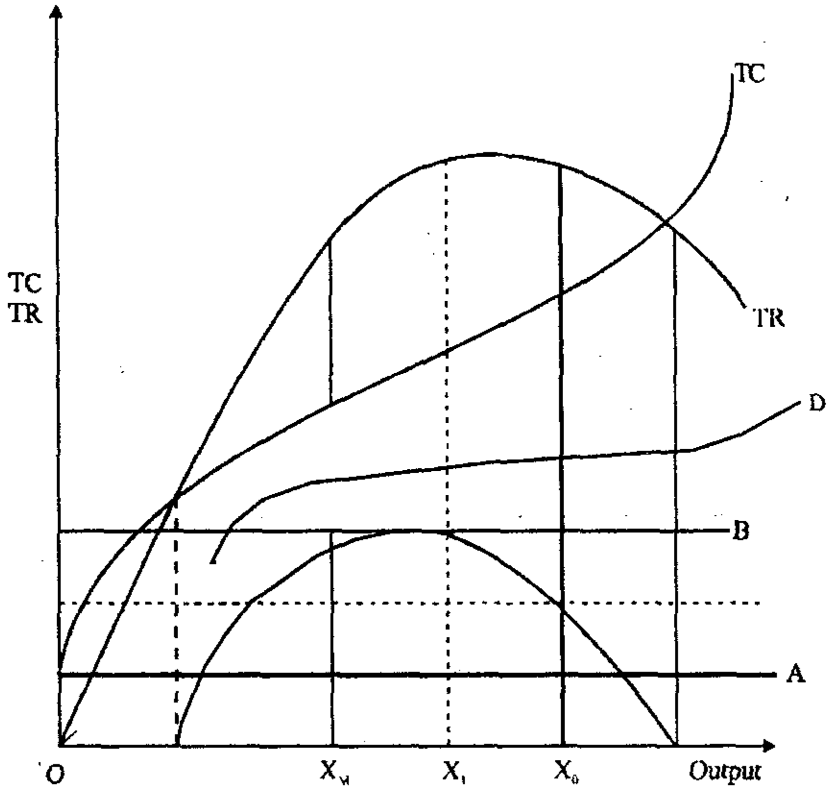

उपरोक्त चित्र में फर्म X उत्पादन करती हुई अपने उद्देश्य अर्थात कुल Sales Revenue को अधिकतम कर पाती है, और उत्पादकों को minimum required profit A से अधिक लाभ दे रही है। यदि फर्म का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता तो वह X_m ही उत्पादन करती। इसके साथ ही जब minimum required profit इसके साथ ही जब minimum required profit A से बढ़कर B होता है तो फर्म को B के बराबर लाभ उत्पन्न करना पड़ता है। जो तभी हो सकता है जब उत्पादन घटाकर X_1 के बराबर किया जा सकता है। यहां *minimum required profit* फर्म का Total sales revenue को अधिकतम करने में रूकावट है क्योंकि X_1 पर उत्पादन अधिकतम TR से कम होगा। परन्तु मैनेजर को इस Sales Revenue से ही सन्तुष्ट होना पड़ेगा क्योंकि कम से कम लाभ उत्पन्न करना अनिवार्य होता है।

उपरोक्त मॉडल में दो प्रकार के सन्तुलन सामने आते हैं। एक वह जिसमें Profit Constraint Sales maximisation में बाधा नहीं बनता और दूसरा वह जो Profit constraint sales maximisation करने में बाधा बनता है। दी हुई परिस्थितियों में फर्म स्वतन्त्र कीमत नीति अपनाती हैं ताकि वह कीमत इस प्रकार से निर्धारित करें कि Profit Constraint के रहते हुए Sales *maximisation* के उद्देश्य को प्राप्त कर सके। वह अपने प्रतियोगियों की प्रतिक्रिया की परवाह नहीं करती। एक single period model में जब फर्म advertisement भी नहीं करती और Profit Constraint की क्रियाशील होता है, निम्न परिणाम प्राप्त होता है।

Sales maximisation फर्म Profit maximisation फर्म की अपेक्षा अधिक उत्पादन करती है जैसे उपरोक्त चित्र में फर्म OX_m पर अधिकतम लाभ उत्पादन प्राप्त करती है यह उत्पादन का स्तर X_1 से कम है जो फर्म X_1 का उत्पादन करती

है जब उसका उद्देश्य Total Revenue को अधिकतम करना होता है और उसके सामने minimum profit constraint होता है।

Sales maximiser फर्म Profit maximiser की अपेक्षा निम्न कीमत पर बिक्री करती है। किसी उत्पादन स्तर पर वस्तु की कीमत उदगम् स्थान से निकलती हुई रेखा Total Revenue Curve तक का ढ़ाल होता है निम्न चित्र में Profit maximiser की कीमत निम्न प्रकार से प्राप्त की जा सकती है।

Maximum Profit प्राप्त करती हुई फर्म $P\pi m$ Slope of OA = $\frac{R\pi}{Xm}$

जबकि Sale Mid maxmiser की कीमत होगी –

Sale Mid Maximising Psm = slope of OB = $\frac{R_s}{X_s}$

स्पष्ट है कि OA रेखा का Slope OA के slope से अर्थात् Profit maximisr की कीमत Sales maximiser फर्म की कीमत से अधिक होगी।

इसी प्रकार Sales maximiser फर्म Profit maximiser फर्म की अपेक्षा कम लाभ प्राप्त करेगी। निम्न चित्र में Sales maximiser फर्म को लाभ $O\pi_{sm}$ है जो कि Profit maximiser फर्म के लाभ से $O\pi_m$ से कम है।

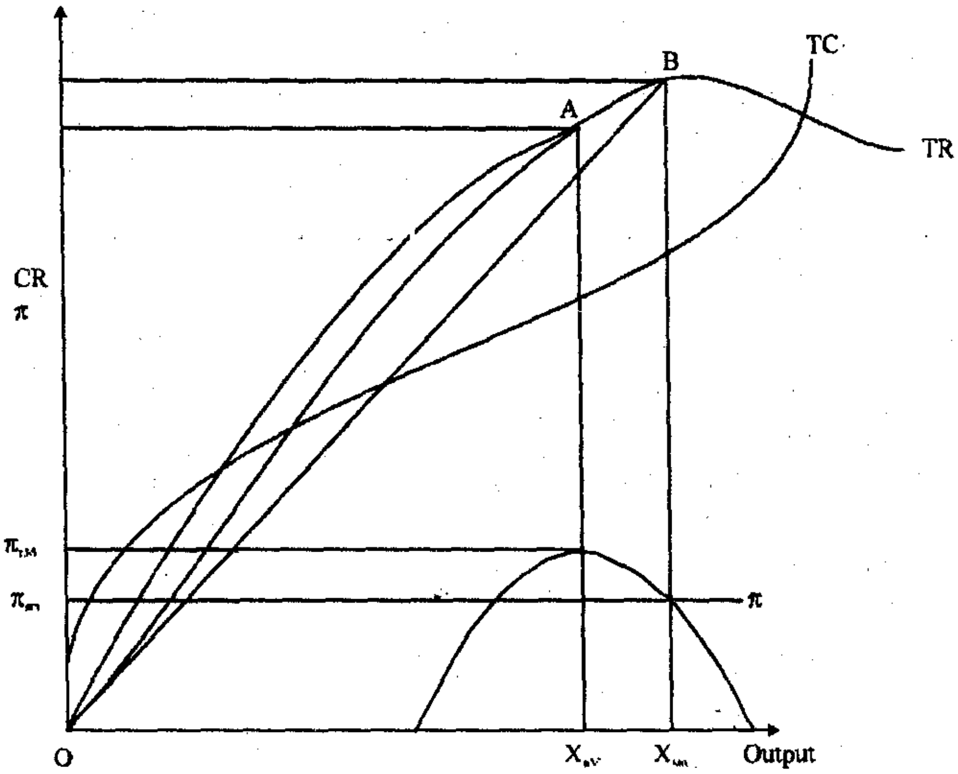

यह भी ध्यान रहे कि एक Sales maximiser फर्म उस उत्पादन स्तर को कभी नहीं चुनेगी। जहां पर Price elasticity of Demand इकाई से कम है क्योंकि MR CO होगा अर्थात् TR गिरता हुआ होगा।

Effect of Increase in Fixed cost in Equilibrium Position of a Sales Maximisr Firm

जब कभी फर्म की बंधी लागत में वृद्धि हो जाती है तो फर्म का Total cost curve उपर की तरफ सरक जाता है और इस प्रकार Total profit curve नीचे की ओर सरकता है Sales maximiser फर्म बढ़ी हुई लागत की कीमत बढ़ाकर ग्राहकों पर डाल देते है। ऐसा उस समय हो सकता है जब Sales maximiser फर्म पर जैसे कि Lump-sum Tax (इकट्ठा टैक्स) लगा दिया जाता है।

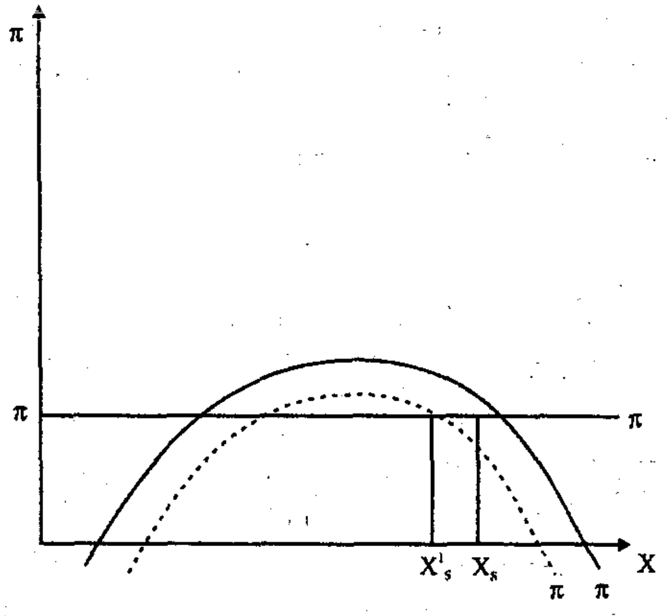

Lump-sum Tax बढ़ी लागत का रूप है। अल्पकाल में बंधी लागत ग्राहकों पर नहीं रखी जा सकती बल्कि फर्म को खुद ही बर्दाश्त करनी पड़ती है। जब एक फर्म Profit maximiser होती है तब उत्पादन और कीमत को प्रभावित नहीं करती है। अल्पकाल में बल्कि वह स्वयं Lump-sum tax के भाग को सहन करती है। परन्तु यदि एक फर्म Sales maximiser है। जैसा उपरोक्त चित्र में दर्शाया गया है। चाहे कुछ भी हो Lump-sum tax profit को नीचे की ओर सरका देगा और एक दिये हुए Profit Constraint फर्म उत्पादन के स्तर को कम करेगी। और कीमत को बढ़ा देगी। यह कीमत में वृद्धि उत्पादन में कमी होने के कारण भी होती है। जैसे चित्र में उत्पादन X_s में गिराकर X_{s1} हो जाती है परन्तु Baumol यह तर्क देता है कि अन्ततः फर्म Tax को ग्राहकों पर ही टालती है।

जब उत्पादन पर प्रति इकाई Tax लगाया जाये जिसके विशिष्ट–कर Specific tax कहते हैं। यह भी Profit को नीचे बाई आर सरका देगा। एक दिये हुए Profit Constraint पर Sales maximiser उत्पादन को X_s से घटाकर X_{s1} कर देगा ओर कीमत को बढ़ाएगा और इस प्रकार कुछ tax को ग्रहकों पर टाल देगा। एक profit maximiser firm ही चित्र में दर्शाये उत्पादन के अनुसार उत्पादन को XII से घटाकर Xs कर देगी और वस्तु की कीमत बढ़ाएगी।

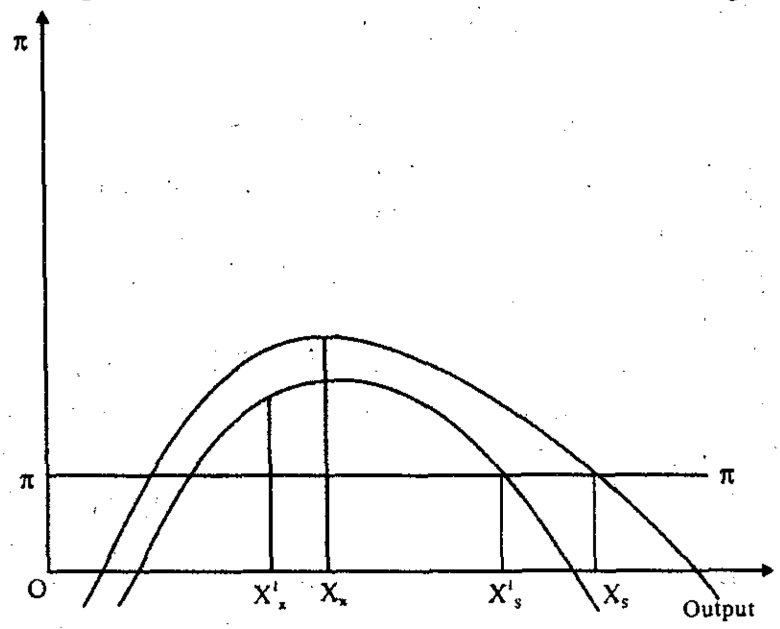

चाहे कुछ भी हो sales maximiser फर्म के उत्पादन में कमी profit maximiser firm की अपेक्षा अधिक है जैसे चित्र

से स्पष्ट है। मांग में परिवर्तन (Shift) उत्पादन में परिवर्तन एक sales revenue maximisation की अवस्था में अवश्य होगा परन्तु Baumol के model में यह निश्चित नहीं हैं कि कीमत में कितना परावर्तन होगा। कीमत मांग में परिवर्तन और फर्म की costs condictions पर निर्भर करती है।

Model 2 A Single Product Model with Advertising —

The Assumption of the Model —

Model की पूर्व कल्पनाएं :

1. फर्म का उद्देश्य minimum profit constraint के होते हुए अधिकतम sales revenue प्राप्त करना है।
2. Minimum Profit का निर्धारण बाहर (Exogenously determinent) होता है।
3. Baumol के अनुसार oligopolistic बाजारों में Non price compitition पाया जाता है जैसे कि advertising जिसका वर्णन यहां किया गया है, वस्तु परिवर्तन,वस्तु बिक्री की सेवा (quality) में सुधार आदि। इस सभी का फर्म की Total Revenue पर प्रभाव पड़ता है क्योंकि ये तत्व मांग को बदल डालते हैं। यह विश्लेषण विशेष रूप से advertising expenditure को लेकर किया गया है।
4. एक अन्य महत्वपूर्ण कल्पना इस model की यह है कि advertising expenditure बदलने के साथ sales revenue भी बढ़ते हैं।

   $\frac{\Delta R}{\Delta a} > 0$, (Where a = advertising expenditure)

   इसका अभिप्रायः यह हुआ कि विज्ञापन हमेशा फर्म की मांग वक्र को दाई ओर सरकाता है और फर्म वस्तु की अधिक मात्रा बेचकर अधिक Revenue प्राप्त करती है। कीमत को स्थिर माना गया है। कीमत को मानने की पूर्व कल्पना की छूट उन्होंने अपने सामान्य विश्लेषण में दी है।
5. Baumol ने एक ओर simplifing assumption यह दी है कि उसकी उत्पादन लागत विज्ञापन में स्वतन्त्र रहती है अर्थात् विज्ञापन लागत उत्पादन को प्रभावित नहीं करता।

Baumol यह बात जानता है कि वह एक अवास्तविक कल्पना है क्योंकि विज्ञापन खर्च करने से फर्म का उत्पादन बढ़ता है और बढ़े हुए उत्पादन पर cost structure अलग हो सकता है (cost may be rising) परन्तु वह तर्क देता है कि यह कल्पना विश्लेषण को सरल बनाने के लिए दी गई है जिसको यदि दूर भी कर दिया जाए तो विश्लेषण में कोई अन्तर नहीं आता।

उपरोक्त assumption के आधार पर निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं –

एक aligopolistic market में एक फर्म अपनी बिक्री बढ़ाने के लिए कीमत में कटौती करने की अपेक्षा विज्ञापन करना ज्यादा उचित समझती है। कीमत में कटौती करके भौतिक उत्पादन में वृद्धि करने से Sales Revenue में वृद्धि भी हो सकती है और नहीं भी क्योंकि यह इस बात पर निर्भर करता है कि वस्तु की मांग कीमत लोचशील है। परन्तु विज्ञापन में वृद्धि करके sales revenue में वृद्धि होना आवश्यक है। क्योंकि (यहां हमारी कल्पना यह है कि) विज्ञापन करने का marginal revenue हमेशा धनात्मक होता है। जब एक फर्म विज्ञापन कर रही है और वहां profit constraint कार्य नहीं कर रहा हो उस अवस्था में सन्तुलन प्राप्त करना सम्भव नहीं है जबकि अकेली कीमत प्रतियोगिता का सामना करती हुई एक फर्म सैन्तुलन प्राप्त कर सकती है। अर्थात् अपनी sales revenue को आधिकतम कर सकती है। जहां profit constraint कार्य नहीं कर रहा हो। गैर कीमत प्रतियोगिता के होते हुए बिना इस प्रकार के constraint के साथ सन्तुलन सम्भव नहीं है। हम जानते है कि विज्ञापन में वृद्धि हमेशा sales revenue को बढ़ाती है। परिणामतः sales maximiser की हमेशा इस बात में लाभ होता है कि वह विज्ञापन लागत बढ़ती रह जब तक profit constraint रास्ते में नहीं आता। Minimum Profit Constraint Model में Advertising के रहते हुए हमेशा क्रियाशील रहता है।

एक sales maximiser फर्म profit maximiser की अपेक्षा ज्यादा advertising expenditure करती है। जैसे कि निम्न चित्र में दर्शाया गया है –

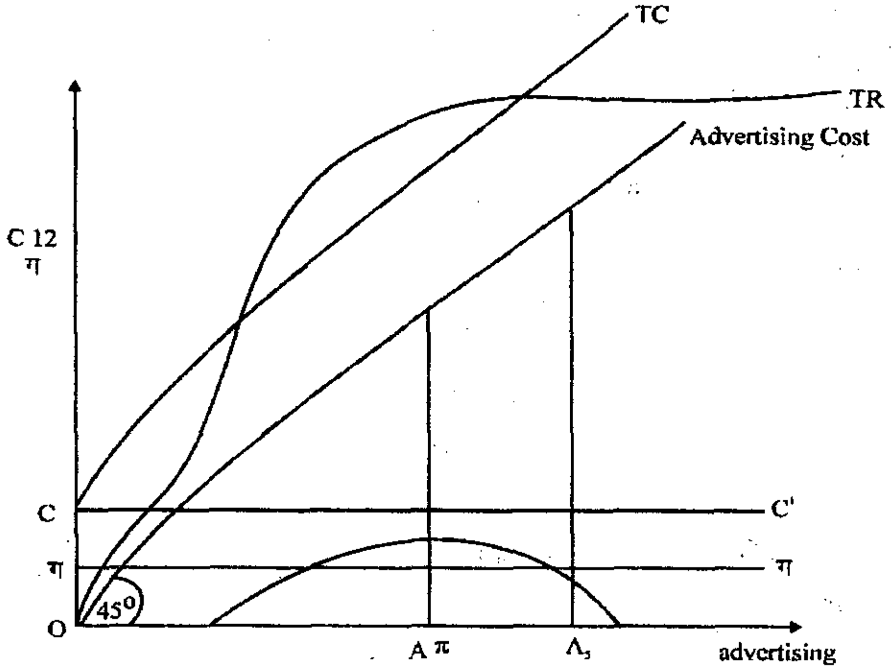

चित्र में Baumol का single product model with advertising दर्शाया गया है।

विज्ञापन खर्च horizontol axis पर दर्शाया गया है और advertising function 45° की रेखा द्वारा दर्शाया गया है। Total costs y-axis पर मापे गये हैं। उत्पादन लागत जो विज्ञापन से स्वतन्त्र रहती है CC' रेखा द्वारा दर्शायी गई है। यदि ये उत्पादन लागत advertising cost रेखा मे जमा कर दी जाये तो कुल लागत curve प्राप्त होता है जो विज्ञापन खर्च पर निर्भर करती है। Total profit curve प्राप्त होते हैं। उत्पादन और advertising के मध्य सम्बन्ध स्थापित करते हुए यह स्पष्ट होता है कि बिना profit cosntraint के sales maximisation सामान्यतः सम्भव नहीं है। sales maximisation इस परिस्थिति में इसलिए नहीं हो सकता क्योंकि advertising करने का marginal revenue हमेशा धनात्मक होता है (कल्पनानुसार) sales maximiser का advertising expentidute profit maximiser फर्म की अपेक्षा अधिक है और सन्तुलन की अवस्था में profit constraint क्रियाशील है।

Model की सीमाएं या आलोचना

उपरोक्त model को निम्न आधार पर आलोचित किया जा सकता है –

1. इस model में यह कल्पना की गई है कि विज्ञापन खर्च हमेशा sales revenue को बढ़ाता है अर्थात् $\frac{\Delta R}{\Delta a} > 0$

   परन्तु Baumol के model से असहमत होकर Haveman और Debarlolo ने एक model प्रस्तुत किया जिसको उन्होंने generalised Baumol model का नाम दिया। इस model में कीमत लागत उत्पादन और विज्ञापन खर्च सभी परिवर्तन–शील माने गये। आज भी बहुत सी फर्में अधिकतम लाभ का उद्देश्य रखे हुए हैं।

The cost curves - Assumptions

1. यह कल्पना की गई है कि उत्पादन लागतें उत्पादन के अनुपात में परिवर्तन होती है। इसलिए कुल उत्पादन लागत फलन उदगम से निकलता हुआ एक straight line function हैं।
2. विज्ञापन खर्च परिवर्तित हो सकती है और यह उत्पादन के स्तर से स्वतन्त्र है। इस प्रकार level of advertising expenditure line को X-axis के समानान्तर प्रस्तुत किया गया है।

3. The minimum profit constraint बाहर से निर्धारित हुआ माना गया है इसलिए इसको भी X-axis के समानान्तर रेखा द्वारा दर्शाया गया है।

The total cost function उत्पादन लागत (C) विज्ञापन लागत या खर्च (A) और minimum profit, constriant (TI) का योग है। दी हुई उत्पादन लागत फलन और दिये हुए minimum profit constraint पर advertising expenditure (A) के परिवर्तन करने से total cost curve था एक समूह प्राप्त किया जा सकता है जो उपर की तरफ उठते हुए होंगे जिनका ढ़ाल production cost function वाला होगा। Total cost curve का ऐसा समूह निम्न चित्र द्वारा दर्शाया गया है।

Representation उसके कथन से असंगत (inconsistent) है। [continuous with Appendix]

Appendix - II

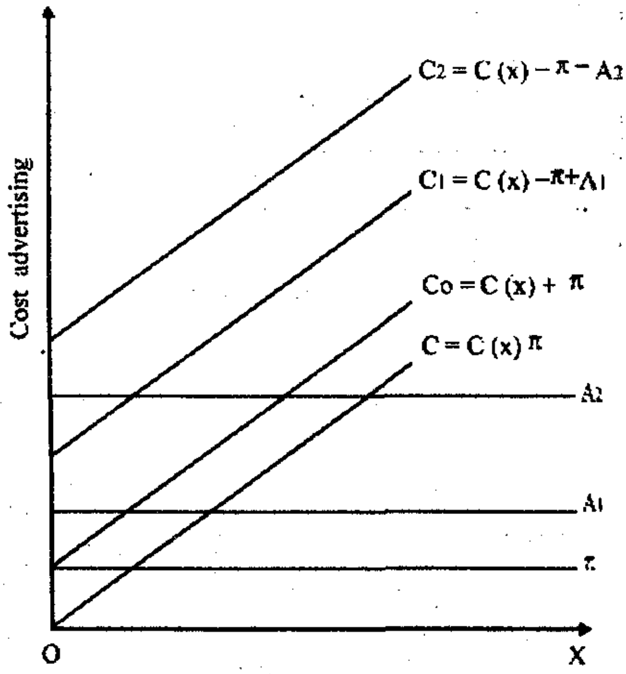

चित्र - A

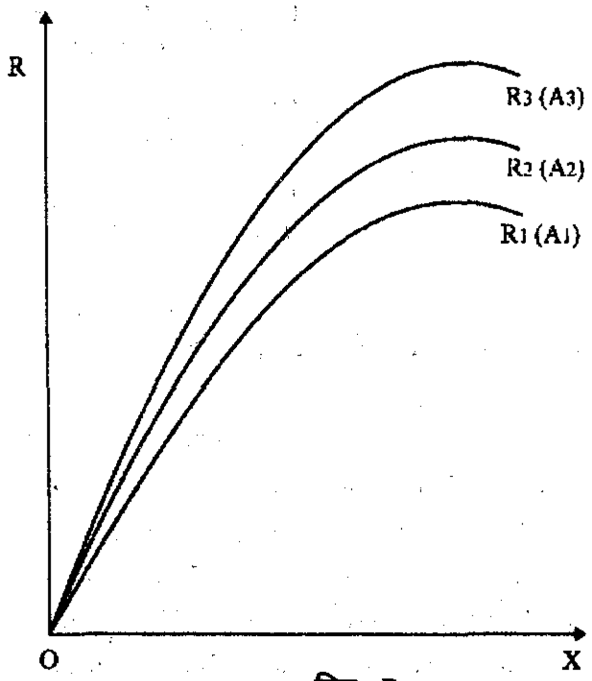

चित्र - B

The Revenue Curves : Total revenue curve की आकृति सामान्य होती है जो प्ररम्भ में बढ़ती दर पर बढ़ता है और फिर घटती दर पर बढ़ता है। किसी उत्पादन के स्तर पर यह अधिकतम सीमा (where dr/dx = 0) को प्राप्त करता है और उसके बाद यह घटने लगता है।

Total Revenue Curve विज्ञापन खर्च में वृद्धि के साथ upword shift होता है इस प्रकार विज्ञापन खर्च में परिवर्तन करते हुए Total revenue curve का समूह प्राप्त किया जा सकता है। जैसे उपरोक्त चित्र में दर्शाया गया है। प्रत्येक वक्र विभिन्न विज्ञापन खर्च स्तरों पर उत्पादन और कुल आय के मध्य सम्बन्ध दर्शाता है। R इस कल्पना पर आधारित है कि advertising expenditure 'A' है। इसी प्रकार Curve R_z पर advertising expenditure A_z पर आधारित है आदि–आदि।

Equalibrium of The Firm

यदि उपरोक्त चित्र A और चित्र B का समवेश करें और समान advertising expenditure वाले total revenue curve जहां एक दूसरे को काटते हैं, के बिन्दु को मिलायें करें तो हमें एक वक्र प्राप्त होगा जिसको Haveman और Debartolo ने TC = TR वक्र के नाम से जाना। निम्न चित्र में यह एक dotted curve हैं फर्म उस समय सन्तुलन में होगी जब वह इस वक्र के अध्ययन बिन्दु को प्राप्त करती है। चित्र में दर्शाया गया है कि फर्म के Total cost (C*) total revenue (R*), output (X*) advertising expenditure (A*) के होते हुए A* पर सन्तुलन प्राप्त करेगी। और वस्तु की कीमत OR*/OX* निर्धारित करेगी।

यह स्पष्ट होना चाहिए कि सन्तुलन के लिए दो **शर्तें अवश्य सन्तुष्ट हों** –

1. फर्म वहां उत्पादन कर रहीं हो जहां (TC=**TR**)
2. सन्तुलन बिन्दु पर MC>MR होना चाहिए।

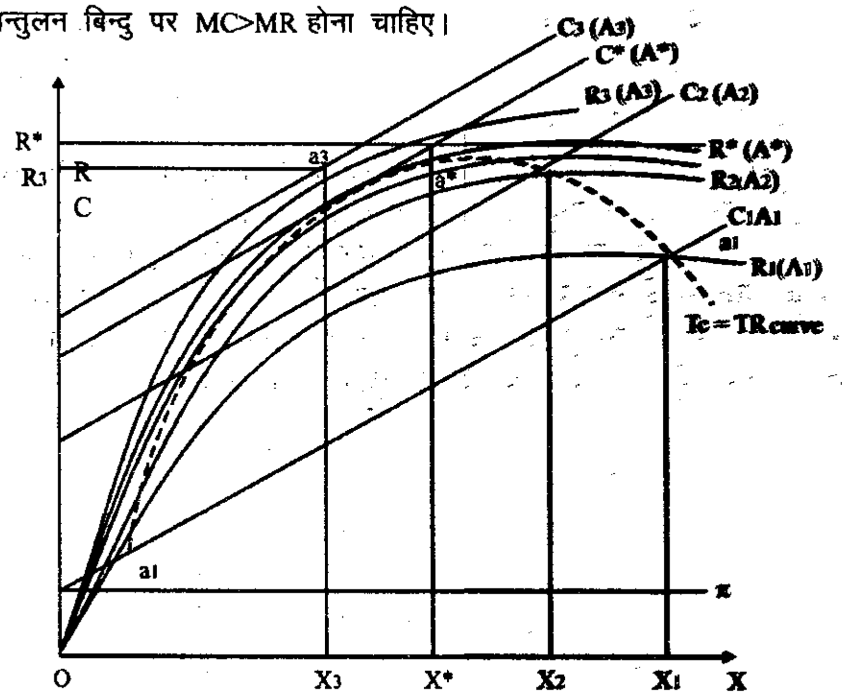

चित्र में दर्शाया गया है कि बिन्दु Representati**on उसके कथन से असंगत (inconsistent) है। [continuous with** Appendix)

Appendix – IV

1. a3 पर पहली शर्त सन्तुष्ट होती है ($C_3 = R_3$) **। परन्तु दूसरी शर्त का उल्लंघन होता है क्योंकि A_3 पर दोनों** चक्र एक दूसरे के Targent. हैं इसलिए उन**का ढ़ाल बराबर होने के कारण MC = MR होना। इस प्रकार यदि** Sales maximiser X_3 पर उत्पादन कर रहा है **तो वह advertising expenditure के स्थान पर Production expenditure** प्रतिस्थापित करेगा ताकि उत्पादन को बढ़ा **कर X3 तक किया जा सके। एक तरह से उत्पादन संविनों का** reallocation (पुनर्वितरण) इस प्रकार से कर **रहा है कि advertising expenditure घटाकर production expenditure** बढ़ रहा है। एक महत्वपूर्ण तथ्य ध्यान दे**ने का यह है कि कीमत गिरेगी। परन्तु less in revenue from this** curve would be more than offset by the **additional revenue from the increased output sold in figure we** see that R* > R3.
2. Baumol ने विज्ञापन और cost of producti**on के मध्य उचित सम्बन्ध स्थापित नहीं किया क्योंकि उन्हें cost of** production को विज्ञापन से स्वतन्त्र माना **है जो कि वास्तविक स्थिति का विवरण नहीं है।** यदि **Total pro**duction cost advertising से अभिप्रायः यह **होगा कि total output भी स्थिर होगा।** उस **परिस्थिति में फर्म का** total revenue उत्पादन के स्थिर रहते हुए त**भी बढ़ सकता है जब वस्तु की कीमत बढ़े। परन्तु Baumol ने अपनी** पुस्तक में यह व्यक्त किया है कि advertisi**ng expenditure के बढ़ने से वस्तु के बाजार मूल्य पर कोई प्रभाव** नहीं पड़ता।
3. **विज्ञापन, कीमत और उत्पादन के मध्य सम्बन्ध : Baumol के इस कथन को स्वीकारा जाये कि विज्ञापन करने** से वस्तु की बाजार कीमत स्थिर रहती है **तो जरूरी बात है कि TR बढ़ाने के लिए उत्पादन को बढ़ाना होगा** परन्तु यदि उत्पादन बढ़ता है तो उत्पादन की **total cost बढ़ेगी ज्यों–ज्यों विज्ञापन बढ़ाया जाता है क्योंकि marginal**

cost हमेशा positive होती है इसका अभिप्राय: यह हुआ total cost of production स्थिर नहीं रह सकती जैसा Baumol ने माना है और चित्रों में दर्शाया गया है।

इस प्रकार Baumole का Grphical representation उसके कथन से असगंत (in consistent) है। [continuous with Appendix)

Q. **Exuilibrium of a Multi Product Firm without Advertising.**

Ans. यहां यह कल्पना की गई है कि फर्म जो अपने sales revenue को अधिकतम करना चाहती है उसके पास साधनों की मात्रा (given cost C) दी हुई है और वह इन इन साधनों को विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में अपना उद्देश्य को पूरा करने के लिए बटंवारा करती है। ऐसी परिस्थिति में फर्म विभिन्न वस्तुओं का उतना ही उत्पादन करेगी जो एक profit maximiser firm करती है। विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में फर्म साधनों का बटंवारा इस प्रकार करके सन्तुलन प्राप्त करती है ताकि दो वस्तुओं के marginal reveneu का अनुपात उन वस्तुओं के marginal cost के बराबर हैं। सन्तुलन की शर्त को निम्न समीकरण द्वारा प्रस्तुत किया गया है –

$$\frac{\frac{\partial R}{\partial x_1}}{\frac{\partial r}{\partial x_j}} = \frac{\frac{\partial c}{\partial x_i}}{\frac{\partial c}{\partial x_j}}$$

$$\frac{MRi}{MCi} = \frac{MRj}{MCj}$$

उत्पादक के सन्तुलन के हल को उपरोक्त समीकरण के अतिरिक्त निम्न चित्र की सहायता से भी दर्शाया जा सकता है जिसमें यह माना गया है कि फर्म X और Y दो वस्तुएं ही उत्पादित करती हैं। जब फर्म अपने सीमित साधनों से X और Y वस्तुओं का उत्पादन करती है तो उसे Product transformation curve जो उदगम के प्रति concave होता है निकाला जा सकता है। यह वक्र concave इस कारण है क्योंकि जैसे कि X वस्तु की अतिरिक्त मात्रा उत्पादित करने के लिए फर्म को अधिक साधन लगाने पड़ते हैं अर्थात् Y की अधिकाधिक मात्रा छोड़ते रहना पड़ता है। दूसरे शहरों में X के उत्पादन से बढ़ती लागत का नियम लागु होता है। इसी प्रकार Y का उत्पादन भी एक सीमा से अधिक बढ़ाया जाए तो वहां भी बढ़ती लागत का नियम लागू होता है जिसका परिणाम यह होता है कि Product transformation Curve उदगम क प्रति Concave होता है।

इसी प्रकार फर्म के Isorevenue Curve प्राप्त किये जा सकते हैं फर्म का एक Isorevenue Curve दर्शाता है कि X और Y के विभिन्न संयोगों के बेचने के समय Revenue प्राप्त होता है। यह Isorevenue Curve Indifference Curve की तरह ही Convex होता है, ऊँचा Isorevenue Curve अधिक आय प्रदान करेगी जहां उच्चतम Isorevenue Curve Transformation Curve को छू रहा होगा जैसा निम्नलिखित चित्र में दर्शाया गया है।

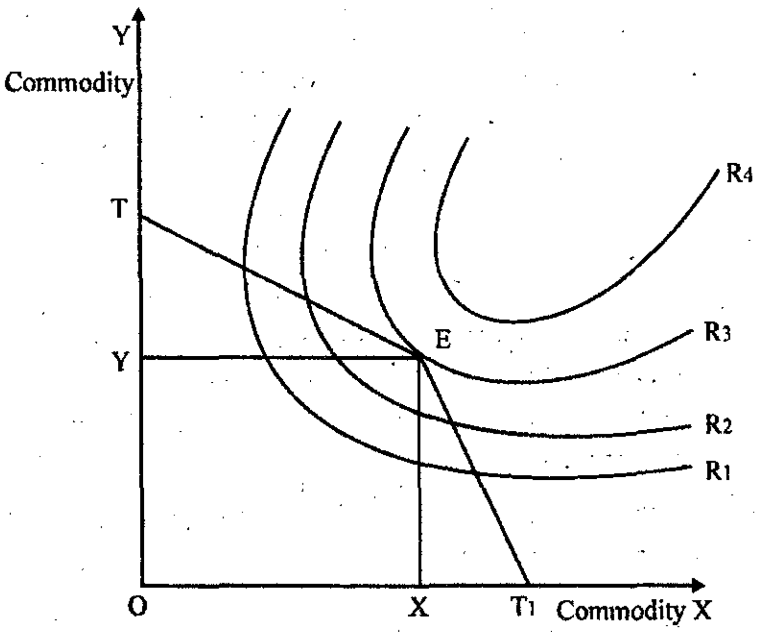

उपरोक्त चित्र से स्पष्ट है कि सन्तुलन E बिन्दु पर होगा। जहां R3 TT' Production Posibility Curve को छूता है। और इस प्रकार फर्म OX X वस्तु का उत्पादन और Oy y वस्तु का उत्पादन करती हैं। E बिन्दु पर यदि स्पर्श रेखा खींची जाएं तो R3 और Production Posibility Curve के ढाल को दर्शायगी, पर वस्तुओं से प्राप्त Marginal Revenue का अनुपात वस्तुओं पर खर्च की गई सीमान्त लागत के अनुपात के बराबर होगा जैसा उपरोक्त समीकरण में दर्शाया गया है।

सन्तुलन की अवस्था में फर्म अपने Sales Revenue को अधिकतम कर पाती है। परन्तु यदि फर्म का उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना होता तो भी फर्म के सन्तुलन की अवस्था E पर ही, स्थापित होती है। यह कोई आश्चर्यचकित निष्कर्ष नहीं है क्योंकि लागतों (C) के स्थिर रहने पर जब R बढ़ता है तो Profit भी बढ़ेगा जैसा कि निम्न समीकरण में दर्शाया गया है –

$\pi = R - \bar{C}$ स्थिर लागत

Clearly given $\bar{C}$ whatever output combination maximises R also maximises profit π.

परन्तु जब साधनों (C) की मात्रा नहीं दी हुई हो, और फर्म किसी वस्तु के उत्पादन में अधिक साधन लगा सकती हैं हो उस परिस्थिति में Profit maximiser का सन्तुलन Sale maximiser फर्म से भिन्न होगा। इसको Isorevenue और Isoprofit Curve का प्रयोग करते हुए निम्न चित्र की सहायता से दर्शाया जा सकता है। Isoprofit Curve का प्रयोग करते हुए निम्न चित्र की सहायता से दर्शाया जा सकता है। Isoprofit Curve उदगम के प्रति Concave होते हैं जो ये दर्शाते हैं कि X और Y का उत्पादन किसी निश्चित स्तर के उपरान्त बढ़ाने से Profitability गिरती जाती है और यह नकारात्मक भी हो सकती है क्योंकि हम जानते हैं कि वस्तुओं के मांग वक्र नीचे की ओर गिरते हुए होते हैं इसलिए ऊँचे उत्पादन स्तर को बेचने के लिए कम कीमत प्राप्त होते है जो Profit और Revenue को कम कर देती है।

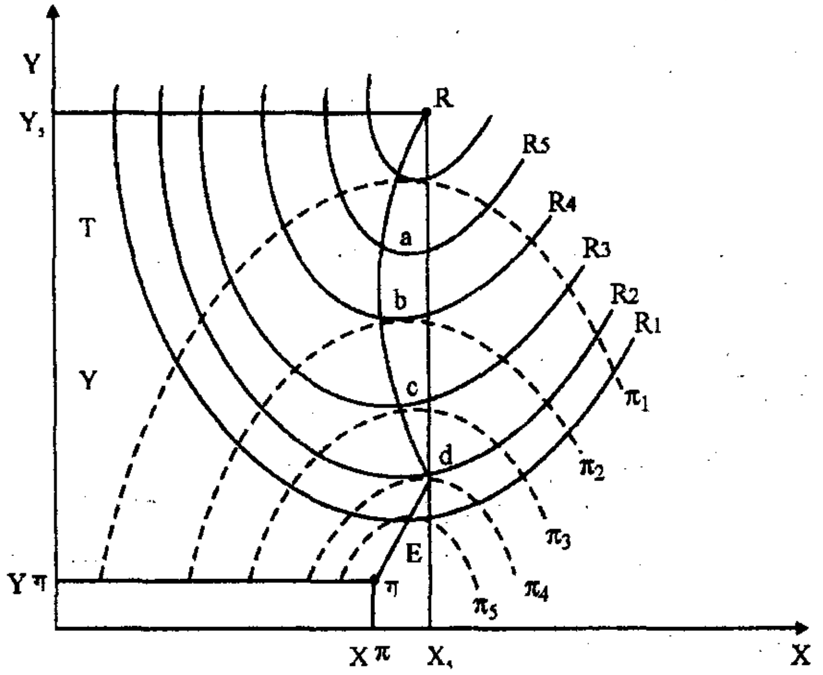

चित्र से स्पष्ट है कि फर्म का उद्देश्य यदि Sales Revenue maximise करना है और उसके सामने कोई Profit maximisation है तो फर्म ग पर सन्तुलन प्राप्त करेगी जो कि Sale Revenue maximising से भिन्न हैं। इसके अतिरिक्त यदि फर्म के सामने minimum profit constraint है तो फर्म वहां सन्तुलन प्राप्त करेगी जहां minimise profit constraint रेखा Isorevenue को स्पर्श करेगी। इस प्रकार चित्र में विभिन्न Profit constraint के अनुसार फर्म का सन्तुलन A,B,C,D और E पर होगा।

Baumel's Dynamic Model

अब से पहले हमने Baumol के static single period model का अध्ययन किया। इसके उपरान्त अब हम Baumol द्वारा प्रस्तुत multiperiod analysis का अध्ययन करेंगे। static model की सबसे बड़ी कमजोरी यह थी कि फर्म का Time horizen (समय अवधि) कम था और profit constraint को बाहर से हुआ (exogenality determined) माना गया था। Baumole in Dynamic model में Time horizon को विस्तार किया गया है और यह माना गया है कि Profit constraint का निर्धारण आन्तरिक अर्थात् model के अन्दर ही इसका निर्धारण होता है।

Assumption of the Dynamic Model

Dynamic model की पूर्वकल्पनाएं

1. फर्म अपने जीवन काल में Rate of growth of sales को maximise करना चाहती है।
2. Growthof sales के लिए वित्त (Finance) फर्म द्वारा अर्जित लाभ से ही प्राप्त होते हैं।
3. मांग वक्रों और लागत वक्रों की आकृति परम्परागत मानी गई है जैसे कि मांग नीचे की ओर गिरती हुई होती है और लागतें U-shaped होती हैं।
4. Profit एक (Unstrant) नहीं है जैसा कि static model में माना गया था बल्कि लाभ में परिवर्तन किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जा सकता है जैसे कि maximise rate of growth of sales के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए top management लाभ को साधन के रूप में प्रयोग कर सकती है। Growth के लिए आन्तरिक व बाह्य स्त्रोत वित्त प्रदान करते हैं परन्तु बाह्य स्त्रोत से एक सीमा तक ही वित्त प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए लाभ sales revenue की वृद्धि दर को वित्त प्रदान करने का मुख्य स्त्रोत है। सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि वास्तवः में फर्म के विकास के लिए केवल लाभ से ही वित्त प्राप्त होता है।

The Multiperiod Model

हम यह कल्पना करते है कि फर्म के Sales Revenue (R) में वृद्धि की दर (G) प्रतिशत (percent) द्वारा प्रकट की जाती है। फर्म अपने जीवन काल में stream of revenue प्राप्त करेगी। जिसको निम्न सूत्र द्वारा निकाला जा सकता है –

$$R,\ R(1+g),\ R(1+g)^2,\ \dots,\ R(1+g)^n$$

उपरोक्त सूत्र से जो stream of future revenues प्राप्त होते हैं उन सभी का वर्तमान मूल्य usual discount value formula से प्राप्त किया जाता है –

$$R,\ R\left(\frac{1+g}{1+i}\right),\ R\left(\frac{1+g}{1+i}\right)^2,\dots,\ R\left(\frac{1+g}{1+i}\right)^n$$

उपरोक्त सूत्र में फर्म का अपना rate of discount है और यह किसी भी बाजार ब्याज दर से ऊँचा होता है क्योंकि इसमें जोखिम उठाने का पुरस्कार होता है जो अलग-अलग फर्म का अलग-अलग हो सकता है और यह व्यक्तिगत अनुमान पर निर्भर करता है। The total persent (discount) value of all future revenues is :

$$\text{Sales Revenue } S = \sum_{t=0} R\left(\frac{1+g}{1+i}\right)^t \quad (t = 0, 1, \dots, n)$$

फर्म अपने जीवन काल में stream of sales revenues के वर्तमान मूल्य को अधिकतम करने का प्रयास करती है जिसके लिए उसे उचित R और G Rate of growth का चयन करना पड़ता है। समीकरण से स्पष्ट है कि S का सम्बन्ध R और G से धनात्मक है। अतः R और G के ऊँचे मूल्यों पर persent value (S) अधिक होगा, इसलिए Baumol कहता है कि फर्म को R और Y के ऊँचे से ऊँचे से ऊँचे सम्भव मूल्यों को चुनना होगा।

हम कल्पना कर चुके हैं कि G को आन्तरिक लाभों से ही वित्त प्रदान होता है तो प्रश्न किया जा सकता है कि क्या sales maximisation एक multiperiod analysis में फर्म का उद्देश्य हो सकता है? निश्चित रूप से एक फर्म लाभ को अधिकतम करके ऊँचे growth rate को वित्त प्रदान कर सकती है। इस समस्या का समाधान profits (ग) current sales (R), Rate of growth (G) के मध्य सम्बन्ध स्थापित करके किया जा सकता है। Growth function को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है।

Growth Function को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है –

$g = f, (\pi, R)$

उपरोक्त समीकरण में R वर्तमान sales revenue को प्रकट करता है और ग जो profit को दर्शाता है निम्न तथ्यों पर निर्भर करता है।

$\pi = f_2 (R, g, i, C)$ internal rate of return (discount rates) (where C denotes costs)

वास्तव में देखा जाए तो पता चलता है कि Growth function profit function से प्राप्त होता है। फर्म का विस्तार वर्तमान लाभ के स्तर पर निर्भर करता है क्योंकि लाभ का जो गुण प्राप्त होता है वही Growth के लिए वित्त का स्त्रोत बना है। परिणामतः highest attanable growth rate (G) उस बिन्दु पर होगा जहां लाभ भी अधिकतम होगी। अधिकतम लाभ प्रदान करने वाले sales revenue स्तर से अधिक revenue स्तर growth rate वृद्धि की दर गिरेगी क्योंकि profits गिरते चले जाते हैं, जैसा चित्र में RπM revenue profit maximiser स्तर पर growth rate अधिकतम है उसके उपरान्त ज्यों sales revenue बढ़ते हैं, growth rate गिरती चली जाती है। इस अवस्था में sales revenue और growth competing goals बन जाते हैं। फर्म को चुनाव करना पड़ता हैं कि या तो वो Hegher Current Revenue प्राप्त करें और growth rate निम्न स्वीकार करें या कम sales revenue प्राप्त करें और faster growth rate प्राप्त करें। स्पष्ट है कि G और R के ऐसे बहुत से संयोग बन सकते हैं। जिन संयोगो मे से फर्म को चयन करना होता है। इस सभी सम्भव संयोगो में से फर्म G और R के उस संयोग को चुनेगी जो उसके भविष्य में प्राप्त होने वाली sales से अधिकतम वर्तमान मूल्य maximise present value (S) प्राप्त होगा।

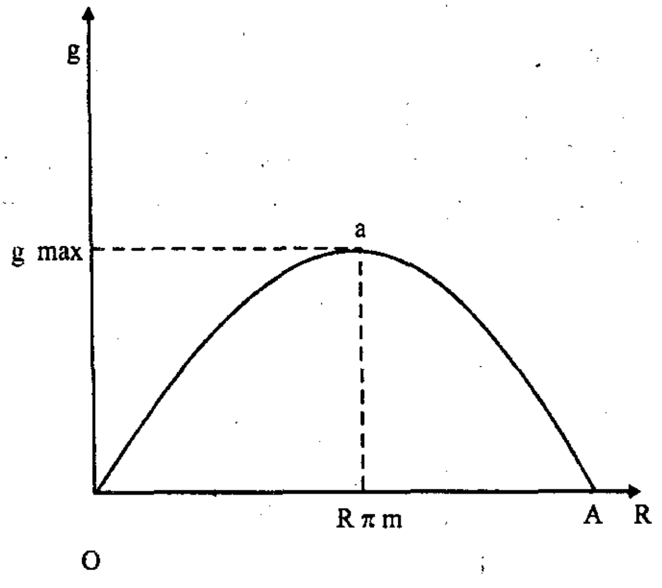

भविष्य से प्राप्त होने वाली Sales से जो वर्तमान मूल्य (S) प्राप्त होता है, को निम्न discount formula से प्राप्त किया जा सकता है–

$$S = \sum_{t=0}^{n} \pi \left(\frac{1+g}{1+i}\right)^{t\,(time)}$$

स्पष्ट है कि भविष्य में प्राप्त होने वाले Revenue का Discounted Value(S) R और G से घनात्मक सम्बन्ध रखता है। इसी प्रकार S और i (discount rate) से नकारात्मक सम्बन्ध है। अब R और G के ऐसे विभिन्न संयोग प्राप्त किये जा सकते हैं जिन पर S समान रहता है, यह जानते हुए कि G और R के मध्य नकारात्मक सम्बन्ध पाया जाता है इसलिए G और R के ऐसे विभिन्न संयोग तैयार किये जा सकते हैं जो समान वर्तमान मूल्य को दर्शाते हैं जैसा निम्न चित्र में दर्शाया गया है–

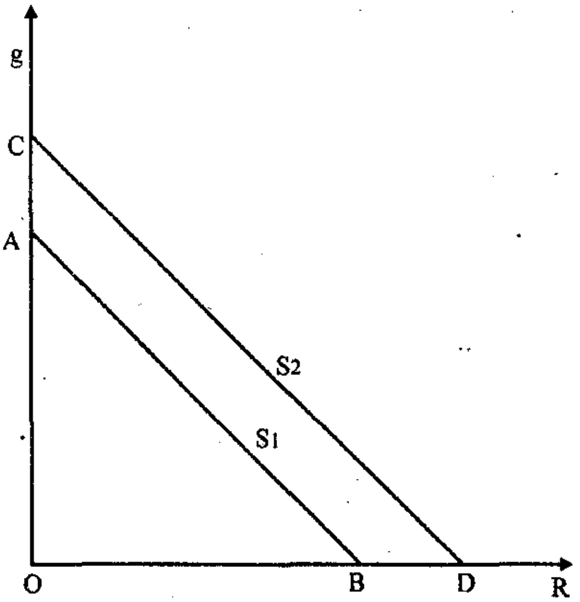

चित्र में दर्शाया गया है कि G और R के ऐसे अनेक संयोग हो सकते हैं जिन पर SD के बराबर Present Value प्राप्त होता है। इस वक्र को Iso-present value line कहा जाता है। ये रेखा जितनी ऊंची होगी उतना अधिक Present Value प्रदान करेगी, एक Present Value वक्र ISO-present Value Curve कहा जाता है। हम जानते है कि G और R में नकारात्मक सम्बन्ध होता है, जितना हम उदगम से दूर जाते हैं, उतना ही ऊँचा भविष्य में प्राप्त होने वाली आय का वर्तमान मूल्य दर्शाती है।

फर्म सबसे ऊँचे ISO-present value curve को चुनेगी अर्थात् फर्म वहां पर सन्तुलन में होगी जहां Growth Curve O_aA उच्चतम S Curve को स्पर्श करता है जहां G* और R* सन्तुलित Growth rate और Revenue प्राप्त होते हैं यह फर्म को भविष्य में प्राप्त होने वाली Sales Revenue से अधिकतम वर्तमान मूल्य प्राप्त होता है। ऐसा बिन्दु चित्र E द्वारा दर्शाया गया है।

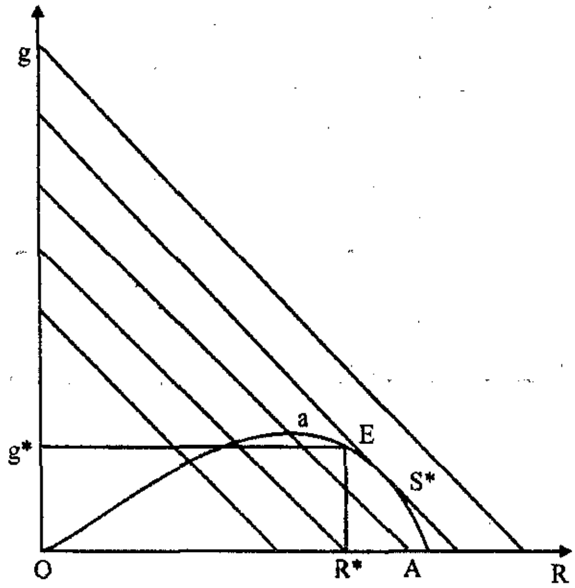

चित्र से स्पष्ट है क्योंकि growth को वित्त current profit से प्राप्त होता है इसलिए growth curve और profit curve में कोई अन्तर नहीं है। उदगम स्थान पर profit शून्य है इसलिए growth भी शून्य है। इसी प्रकार OB उत्पादन स्तर पर profit भी शून्य है और growth भी शून्य हो जाती है। sales maximiser फर्म X* उत्पादन करेगी और इस प्रकार लाभ अब endogenously determined आन्तरिक रूप से हुआ है जो IT* द्वारा दर्शाया गया है अर्थात् वह लाभ अवश्य प्राप्त हो जिस प्रकार growth rate g* के बराबर TC है।

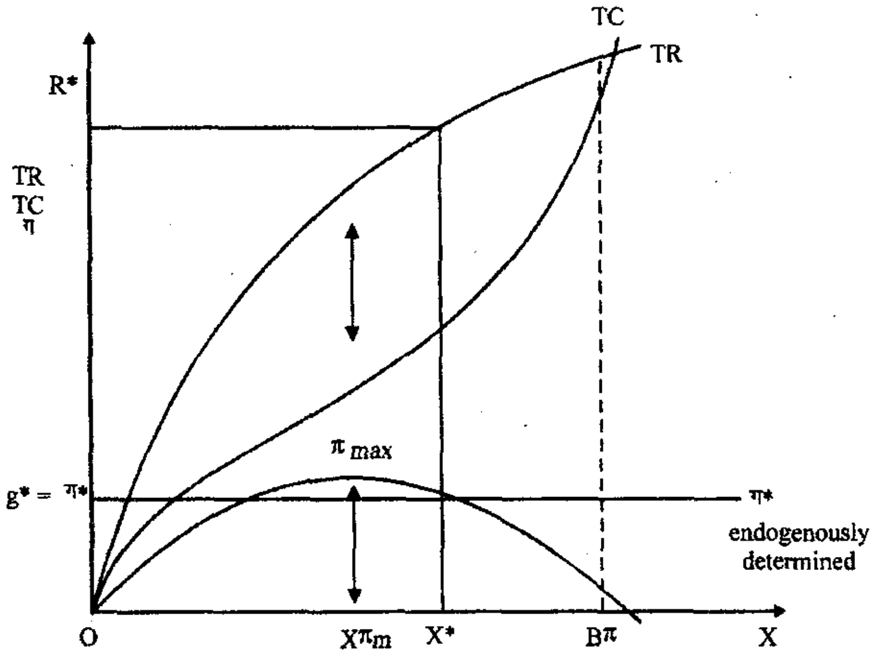

उपरोक्त multi period model को exogenously determined minimum acceptable of profit के अनुसार भी modify (संशोधित) किया जा सकता है। गहराई से देखने पर स्पष्ट होगा कि single period model और multi period model निम्न प्रकार से समान तथ्यों को दर्शाते हैं जैसे कि दोनों अवस्थाओं में यदि फर्म sales maximiser है तो उत्पादन अधिक होगा परन्तु कीमत कम। इसके साथ ही sales maximiser फर्म दोनों ही अवस्थाओं में advertisement expenditure अधिक करेगी। इसी प्रकार overhead cost जैसे कि Lump-sum tax के बढ़ने के परिणामस्वरूप उत्पादन को घटाएगी परन्तु कीमत को बढ़ाएगी।

Limitation or Criticism of the model : Baumol के sales maximisation Hypothesis की सीमाए या आलोचनाएं निम्न प्रकार से हैं –

1. Sales maximisation hypothesis इस बात पर निर्भर करती है कि firms उत्पादन में हुई लागतों और योग के बारें में पूरे आंकड़ों को प्रस्तुत करते हैं। इस सिद्धान्त की जाँच (परिक्षा) करना कठिन है क्योंकि फर्म (अनुसंधान विभाग को) इस प्रकार के आंकड़े प्रदान नहीं करती।
2. यह वक्र दिया जाता है कि दीर्घकाल में sales maximisation और profit maximisation सिद्धान्त दोनों के परिणाम समान होते हैं। क्योंकि दीर्घकाल में फर्म सामान्य लाभ ही कमाती हैं और यही सामान्य लाभ दीर्घकाल में आमतौर पर *minimum* acceptable profit होता है, इसलिए sales maximiser फर्म के लिए कोई constraint या प्रतिबन्ध नहीं कहा जा सकता।
3. Baumol का sales maximise सिद्धान्त एक फर्म के सन्तुलन को ही प्रकट करता है, परन्तु उद्योग में लगी अनेक फर्मो का सामूहिक रूप में सन्तुलन किस प्रकार होगा, इस बारे में यह सिद्धान्त मार्गदर्शन नहीं करता।
4. सिद्धान्त में यह मानकर विश्लेषण किया गया है कि फर्म वस्तु की कीमत और Sales expension स्वतन्त्र रूप

से कर सकता है। वास्तविक लागत में प्रतियोगिता का सामना करना होता है और उनकी प्रतिक्रिया सम्भावित होने के कारण कीमत और Sales को आसानी से परिवर्तित नहीं किया जा सकता।

5. Banmol ने Oligopolistic Firms के मध्य Interdependence को स्वीकार नहीं किया। इसलिए उसका सिद्धान्त वास्तविकता से परे है।

6. सिद्धान्त केवल वास्तविक प्रतियोगिता की ही अवहेलना नही करता बल्कि (सम्भावित) Potential Competition पोटेन्शियल (सक्षम) की भी अवहेलना करता है।

7. इस सिद्धान्त में यह भी व्याख्या की गई है कि MR of advertising expenditure हमेशा धनात्मक रहता है, परन्तु यह जरूरी नहीं है। यह नकारात्मक भी हो सकता है।

8. Peston ने आलोचना करते हुए कहा है कि Profit और Sales Revenue हमेशा प्रतियोगी (Competitive) नहीं होते जैसे अधिकतम लाभ प्राप्त करने से पहले Sales Revenue में वृद्धि लाभ में भी वृद्धि लाती है। परन्तु यह तर्क इतना महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि अधिकतम लाभ प्राप्त करने के बाद दोनों प्रतियोगी (Competitive) बन जाते हैं।

Q. **Critical Examine the Maximum Rate of Growth and Project Hypothesis of Marris?**

Ans. Meaning of maximum growth rate and projects or goals of the firm.

Marris के model में एक फर्म का उद्देश्य Balanced rate of growth को अधिकतम करना होता है। दूसरे शब्दों में फर्म अपने मांग में वृद्धि की दर और पूंजी की पूर्ति में वृद्धि की दर को अधिकतम करना चाहती है, अर्थात् –

maximise $g = g_d = g_c$

g = balanced growth rate

g_d = growth of demand for the products of the firm.

g_c = growth of th supply as capital

फर्म अपने सन्तुलित growth rate को अधिक करने के लिए दो प्रतिबन्धों (रूकावट पैदा करने वाले) (Constrant) का सामना करती है।

1. Maximum growth rate प्राप्त करने के लिए managerial team and its skills के उपलब्ध होने का Constrant सामने आता है।

2. दूसरा Constrant जो फर्म की उद्देश्य प्राप्ति में बाधा है, वह है— Financial constrant क्योंकि managers job security के लिए वित्त की उपलब्धता होना अनिवार्य समझते हैं।

वस्तु की मांग व पूर्ति की growth rate की सामूहिक तौर पर अधिकतम करने से Managers अपने और share holders दोनों की utility को अधिकतम कर पाते हैं।

Managers के utility function में जो तत्व शामिल होते हैं, वे हैं—Salaries, Status, Power and job security. जबकि share holders की utility function में जो तत्व सम्मिलित होते हैं, वे हैं—Profits, Size outputs, capital, share of the market and public image, इस प्रकार managers अपने utility function को अधिक करना चाहते हैं, जो निम्न प्रकार से किया गया है –

U_m = f (salaries, power, status, job security)

इसी प्रकार फर्म के अपने Utility function को अधिकतम करना चाहते हैं।

$U_o = S^x$ (Profits, capital, output, market share, public esteem)

Marri's तर्क देता है कि Managers के उद्देश्य और Owner के उद्देश्यों के मध्य अन्तर बहुत अधिक नहीं है जितना अन्य Management theories में बताया गया है, क्योंकि दोनों function में जो चर सम्मिलित हैं, वे केवल एक चर the size of the firm से सह सम्बन्ध रखते हैं। फर्म के size को विभिन्न प्रकार से मापा जा सकता है : Capital, output, revenue, market share. परन्तु इस बारे में कोई सहमति नहीं पाई गई कि इनमें से कौन सा माप सर्वश्रेष्ठ है। चाहे कुछ भी हो Marris ने अपने Model में निरन्तर वृद्धि की दर Steady rate of growth को फर्म का दीर्घकालीन उद्देश्य माना है जिसके प्राप्त होने पर उपरोक्त अन्य variable का maximisation स्वतः प्राप्त हो जाता है।

Marris तर्क देता है कि managers फर्म के obsolute size को अधिकतम करने की बजाय rate of growth को अधिकतम करना चाहते हैं, क्योंकि वे बड़े आकार वाली फर्म की अपेक्षा अधिक growth rate वाली फर्म को सम्पन्न नहीं समझते। यदि वो किसी बड़ी आकार वाली फर्म में जाकर नौकरी प्राप्त करते हैं तो उन्हें अधिक वेतन मिल सकता है। इसी प्रकार अपनी ही फर्म में growth rate अधिक होने के कारण भी उन्हें अधिक वेतन मिल सकता है। परन्तु वे बड़े आकार वाली फर्म में जाना पसन्द नहीं करते क्योंकि वहां नये लोगों से तालमेल नहीं होता और नये संगठन को समझने में समय लगता है। Job security को भी खतरा हो सकता है। इसलिए वे अपनी ही फर्म में growth rate बढ़ाना चाहते हैं न कि अपने फर्म के आकार को अधिक करना।

Marris तर्क देता है कि High growth rate managers और share holders दोनों के स्वार्थ को पूर्ण करता है। इसलिए *rate of growth as demand (जो managers के utility को अधिकतम करता है।)* और *rate as growth as supply of* capital (जो owner की utility को अधिकतम करता है।) के मध्य अन्तर स्थापित करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि सन्तुलन की अवस्था में ये दोनों growth rates समान होती है।

Marris के विवरण से पता चलता है कि Owners का utility function निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है।

$U_{owners} = f(g_c)$

g_c = rate of growth as capital

Marris के विश्लेषण में यह स्पष्ट नहीं होता कि owners profit की अपेक्षा growth को क्यों पसंद करते हैं, जब तक यह सिद्ध नहीं होता कि g_c और *profit* एक दूसरे से घनात्मक सम्बन्ध रखते हैं। Marris अपने लेख के अन्त में तर्क देता है कि g_c और profit हमेशा एक दूसरे से घनात्मक सम्बन्ध नहीं रखते हैं। Marris अपने लेख के अन्त में तर्क देता है कि g_c और IT Profit हमेशा एक दूसरे से घनात्मक सम्बन्ध नहीं रखते। कुछ विशेष परिस्थितियों में g_c और IT Competing goals बन जाते हैं। इसके साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि managerial utility function में जो variables सम्मिलित होते हैं, जैसे कि salaries, status and power of managers फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की मांग में वृद्धि से घनात्मक सम्बन्ध रखती है। Managers higher salaries और ऊंची prestige faster rate of growth of demand से प्राप्त करते हैं जिसको निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है।

$Um = f(g_D, S)$

g_D = rate of growth of demand for the products of the firm.

S = a measure of job security.

Marris तर्क देता है कि growth rate of demand पर Constraint (प्रतिबन्ध) managerial team की decision capacity द्वारा निर्धारित होता है अर्थात् यदि manager आदि उचित निर्णय देते हैं तो rate of growth उपर होगा। अन्यथा कम होगा। Marris यह भी सुझाव देता है कि liquidity ration, debt ration and the product retention ration को weighted average से मापा जा सकता है। Marris प्रारम्भ में S को बाहर से निर्धारित हुआ तत्व मानता है और Job security (S) का एक Saturation (संतृप्त) level होता है। इस saturation level से job security यदि अधिक होती है तो उससे प्राप्त marginal utility शून्य होगी। परन्तु saturation level से निम्न स्तर पर S में वृद्धि अन्ततः marginal utility प्रदान करती है। उस अवस्था में managerial utility function निम्न आकृति प्रदान करता है।

$Um = f(g_D)\,\bar{S}$

where $\bar{S}$ is the security constraint.

इस प्रकार प्रारम्भिक model में दो constraint सामने आता है–(i) Managerial team constraint (2) Job security constraint, जो फर्म के financial constraint से प्रकट होता है। इन constraint को कुछ विस्तार से अध्ययन किया जा सकता है।

1. **Managerial Constants :** किसी समय बिन्दु पर Top management की क्षमता स्थिर होती है। वैसे तो नए प्रबन्धकों की सेवाएं प्राप्त करके managerial capacity को बढ़ाया जा सकता है। परन्तु फिर भी एक निश्चित सीमा होती है, जो फर्म के श्रेष्ठतम निर्णय लेने की क्षमता रखती है। इसी प्रकार फर्म के पास research and development (R&D) विभाग होता है जो नए विचारों या पदार्थों का स्त्रोत होता है जो वस्तुओं की मांग वृद्धि को प्रभावित करता है। परन्तु इस विभाग की भी सीमा होती है।

   Managerial constraint और research & development capacity दोनों ही rate of growth of demand (g_D) and rate of growth of capacity supply (g_C) की सीमाएं निर्धारित करती है।

2. **Job Security Constraint :** Managers job security चाहते हैं और नौकरी हटने के जोखिम से खुश नहीं होते, जो कि इस बात से स्पष्ट होता है कि मैनेजर मिल मालिकों से service contracts करते हैं ताकि ऐसे जोखिम से बचा जा सके।

   Managers को नौकरी से हटाने के जोखिम से निम्न प्रकार से बचा जा सकता है, जैसे–

   (a) Risky Projects को न लेकर, भले ही ऐसे Projects में अधिक लाभ हो।

   (B) एक उचित वित्तीय नीति अपनाकर। उचित वित्तीय नीति तीन महत्वपूर्ण Financial ratios पर निर्भर करती है, जो निम्न प्रकार से हैं –

$$a_1 = \text{liquidity ratio}_2 = \frac{L}{A}$$

$$a_2 = \text{leverage ratio} = \frac{D}{A}$$

$$a_3 = \text{retention ratio}_3 = \frac{\pi r}{\pi}$$

Liquidity Ratio से अभिप्राय फर्म का तरलता अर्थात मुद्रा का कुल assets से अनुपात है। यह ratio अधिक होगी तो managers की job security भी अधिक होगी।

Average Ratio or Debt Ratio : यह फर्म के कुल ऋण का asset का भाग है। जिसके बढ़ने पर managers की job security कम होगी।

Retention Ratio : कुल लाभ का वह भाग या अनुपात जो फर्म अपने विकास के लिए रख पाती है। इन तीनों financial ratios को जमा करने से अर्थात financial security constraint प्राप्त होता है। यह Top management के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है, और बाहर से निर्धारित हुआ माना जाता है। Marris इस प्रक्रिया की व्याख्या नहीं करता जिस के आधार पर $\bar{a}$ का निर्धारण होता है। $\bar{a}$ बढ़ता है जब या तो फर्म की liquidity कम हो debt ratio बढ़े या retained profit का अनुपात बढ़े।

एक तरह से Marris परिकल्पना करता है कि Job Security (S) और financial constraints $\bar{a}$ के मध्य negative सम्बन्ध होता है। Thus a high value of $\bar{a}$ implies that managers are risk takers, white a slow value of $\bar{a}$ shows that managers are risk-avoiders.

निम्न व्याख्या से ज्ञात होगा कि financial security constraint capital supply की rate of growth की सीमा निर्धारित करता है।

The Model : Equilibrium of the Firm : Managers का उद्देश्य अपने तुष्टिगुण को अधिक करने का होता है। जो कि फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु के लिए growth of demand पर निर्भर करता है।

The Instrumental Variables : सबसे पहले फर्म अपनी वित्तीय नीति का निर्धारण करती है जो value of the financial constraint $\bar{a}$ द्वारा प्रकट होता है। इसके बाद फर्म rate of diversification जो कुल वस्तु विभेद को प्रकट करती है, का चयन करती है और इसी प्रकार Profit margin (m) का। इन सभी का चयन इस प्रकार से करती है, ताकि balanced growth rate (g^*) को अधिकतम किया जा सकता है। Marris के model में निम्न policy variables पाये जाते हैं।

(1) $\bar{a}$ फर्म की वित्तीय नीति के चयन की स्वतन्त्रता देती है।

(2) फर्म अपने diversification (d) का चयन कर सकती है, या तो वर्तमान उत्पादित वस्तुओं के style में परिवर्तन करके या वस्तुओं की संख्या बढ़ाकर (by expanding the range of its products)

(3) Marris के model में वस्तु की कीमत दी हुई आती है, क्योंकि उद्योग में digopalistic होने के कारण प्रतियोगिता होती है। जिसमें वस्तु की कीमत को नहीं बदला जा सकता।

(4) Firm अपने का advertising (A) level का चयन कर सकती है और इसी प्रकार research and development activities (R&D) का चयन कर सकती है, क्योंकि वस्तु की कीमत (P) और उत्पादन लागत (C) दी हुई होती है, तब स्पष्ट है कि A and/or R&D expenditure के बढ़ने से average profit margin घटेगी and vice versel Marris के model में देखा जाए तो average cost pricing rule अपनाया गया है अर्थात् कीमत औसत लागत के समान रखी जाती है जिसको निम्न समीकरण से स्पष्ट किया गया है।

$$\bar{P} = \bar{C} + A + (R \& D) + M$$

Where $\bar{p}$ = price, given form the market

$\bar{C}$ = production costs, assumed given

A = advertising and other selling expenses

R&D = research and development expenses

M = average profit margin

स्पष्ट है कि m समीकरण में अवशेष residual है जिसे निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है –

$$m = \bar{p} - \bar{C} - (A) - (R\&D)$$

$\bar{p}$ और $\bar{C}$ दिया हुआ होने पर Average profit margin M, A और R&D व्यय से नकारात्मक सम्बन्ध रखता है। इस प्रकार m एक policy निर्धारण के लिए संकेत का कार्य करता है जब कभी A and R, D में परिवर्तन किया जाता है। संक्षिप्त में सभी नीति चरों को निम्न तीन उपकरणों में विभक्त किया जा सकता है –

$\bar{a}$, the financial security coefficient

d, the rate of diversification

m, the average profit margin.

अब हम rate of growth of demand (g_D) को निर्धारित करने वाले दरों को और rate of growth of supply (gc) को निर्धारित करने वाले चरों को परिभाषित करेंगे और इन दरों को नीति दरों ($\bar{a}$, d, m) के रूप में व्यक्त करेंगे।

The Rate of the Growth of the Demand (g_D)

यह कल्पना की गई है कि फर्म की प्रगति diversification द्वारा व्यक्त की गई है। फर्मों का परस्पर मिल जाना या सरकार द्वारा फर्म को अधिग्रहण कर लेना model के क्षेत्र के बाहर है।

फर्म की वस्तुओं के लिए मांग में वृद्धि की दर फर्म द्वारा की गई विभिन्नता दर (diversification rate, d) और सफल नई वस्तुओं (k) के प्रतिशत पर निर्भर करती है जिसको समीकरण में निम्न प्रकार से व्यक्त किया गया है।

$g_D = f, (d, k)$

where

d = the diversification rate, defined as the number of new products introduced time period, and k = the proportion of successful new products.

अनिश्चितता के होते हुए भी कि फर्म के प्रतिद्वन्द्वी (competiters) क्या प्रतिक्रिया करेंगे। फर्म नई–नई वस्तुओं का diversification करती है। और जितना d अधिक होगा उतनी मांग में वृद्धि की दर ऊंची होगी।

K diversification rate अर्थात d पर उन वस्तुओं की कीमतों पर विज्ञापन खर्च और R and D खर्च और इन वस्तुओं की कीमतों पर निर्भर करता है, जिसको निम्न समीकरण से बताया जा सकता है।

$K = f_3$ (d, P, A, R & D intrinsic value)

Marris के model में वस्तु की कीमत को बाजार में निर्धारित हुआ माना गया है। बेशक एक वस्तु नई वस्तु है। उपरोक्त समीकरण से स्पष्ट है कि k जिन पर निर्भर करता है जैसे कि A, R & D and d, m के समीकरण में प्रयोग किए गए दर ही हैं। Marris m को इन दो policy variables A, R & D और d के स्थान पर प्रयुक्त किया जा सकता है यदि M A और R, D से नकारात्मक सम्बन्ध रखता है तो successful new products का अनुपात भी m से नकारात्मक सम्बन्ध रखता है। A, R & D बढ़ते हैं तो K बढ़ते हैं और M गिरते हैं तथा A, R & D गिरता है तो K और M का भी विपरीत सम्बन्ध होगा।

अन्त में K model के d पर निर्भर करता है यदि बहुत से नये पदार्थ तीव्र गति से उत्पादित किए गए हैं तो Proportion of sales increases, K और d में इसलिए नकारात्मक सम्बन्ध प्रतीत होता है। इस प्रकार यद्यपि मांग में वृद्धि की दर (g_D) d से घनात्मक सम्बन्ध रखती है। परन्तु g_D में वृद्धि d के बढ़ने से घटती दर पर होती है, क्योंकि नई–नई वस्तुएं बाजार में आती रहती हैं और वस्तुओं की बिक्री पर व्यक्तिगत ध्यान नहीं दिया जा सकता है। फर्म के R और D Department से जो New ideas प्राप्त होते हैं। इस प्रकार यदि R और D से गति बढ़ाने को कहा जाए नयी–नयी वस्तुओं की बिक्री (Marketibility) उचित स्तर तक हो जाती है। इसी प्रकार Top management के पास कार्य अधिक होने के कारण the proportion of unsuccessful product bound to increase.

2n summary go = f_1 (d, m)

g_D Function को निम्न चित्र द्वारा दर्शाया जा सकता है –

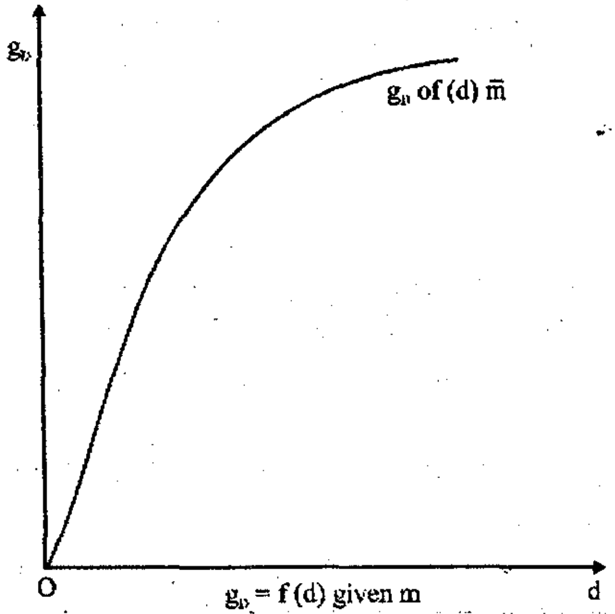

$g_D = f$ (d) given m

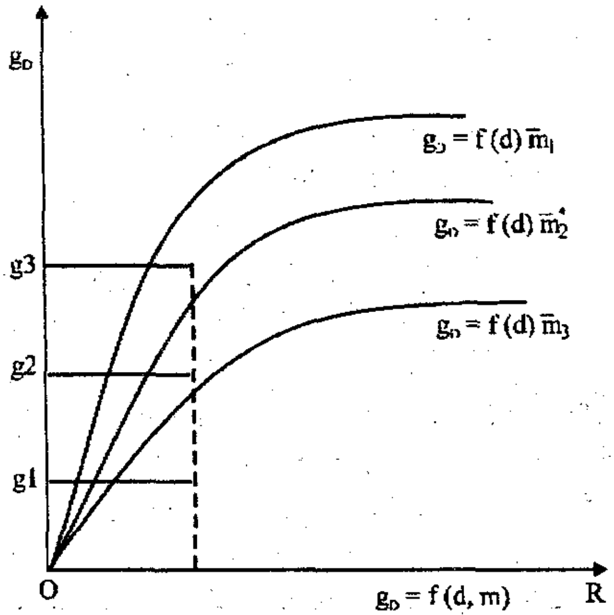

$g_D = f$ (d, m)

किसी भी g_D के साथ average rate of profit (m) स्थिर रहता है, परन्तु जब m में वृद्धि होती है तो यह वक्र नीचे सरकता है। ($M_1 < M_2 < M_3$ इसका कारण यह है कि g_D और m के मध्य नकारात्मक सम्बन्ध है। किसी दी हुई d (rate of diversification) जैसा कि उपरोक्त चित्र में d_1 दर्शायी गई है और वस्तुओं की दी हुई कीमतें जितना अधिक A and/or the R & D खर्च अधिक होगा उतना ही m कम होगा। इस प्रकार के अधिक व्यय के कारण successful products का अनुपात अधिक होगा और मांग में वृद्धि (g_D) अधिक होगी ($g_3 > g_2 > g_1$)।

The Rate of Growth of Capital Supply : gc

इस मॉडल में यह परिकल्पना की गई है कि फर्म के हिस्सेदार पूंजी की growth rate को अधिकतम करने का उद्देश्य रखते हैं। Corporate capital के अन्तर्गत fixed assets, intentories, short term assets और नकद जमा में (case reserves) होती है।

पूंजी की growth rate आन्तरिक व वाह्य स्त्रोंतों द्वारा वित्त प्राप्त करती हैं। विकास के लिए फर्म का आन्तरिक स्त्रोत profits है। बाह्य स्त्रोत जैसे कि नये bonds व shares जारी करके पूंजी एकत्रित की जा सकती है।

Marris के अनुसार growth को वित्त प्रदान करने वाला मुख्य स्त्रोत लाभ है। बाह्य स्त्रोतों से उधार लेना managers आदि financial security बनाए रखने के लिए उधार लेना कम से कम पसन्द करते हैं।

यद्यपि प्रगति के लिए फर्म के पास profits वित्त प्राप्त करने का मुख्य स्त्रोत है, फिर भी managers एक सीमा में ही फर्म के project को विकास के लिए with held और retain कर सकते हैं, क्योंकि उसे share holders को भी खुश रखना होता है। The three security ratios, जिनका विवरण ऊपर किया जा चुका है, security parameter ($\bar{a}$) के माध्यम से managers द्वारा निर्धारित करती है। इसलिए यह rate of growth of capital का determinant हुआ। Marris की परिकल्पना अनुसार rate of growth of capital supply के स्तर में अनुपातिक सम्बन्ध रखती है। जैसे कि :

$$g_C = \bar{a}\ (\pi)$$

$\bar{a}$ = the financial security coefficient

π = level of total output

The security coefficient माडल में स्थिर माना जाता है, जो बाहर से निर्धारित होता है। बाद में यह कल्पना त्याग दी जाती है। महत्वपूर्ण बात यह है कि जब तक $\bar{a}$ स्थिर है g_C और π एक दूसरे के प्रतियोगी नहीं हैं बल्कि घनात्मक सम्बन्ध रखते हैं। अर्थात् higher profit means higher rate of growth, हमारा अगला कदम g_C को $\bar{a}$ और m को policy variables के रूप में व्यक्त करना होगा।

फर्म के कुल लाभ स्तर (π) औसत लाभ दर (m) और फर्म की कार्यकुशलता जो फर्म की overall capital/output ratio (k/x) पर निर्भर करता है, को निम्न प्रकार से व्यक्त की गई है –

$$\pi = f_4\left(m, \frac{K}{X}\right)$$

यह स्पष्ट है कि π और m दोनों घनात्मक सम्बन्ध रखते हैं जबकि π और k/x के मध्य सम्बन्ध काफी जटिल है। The average k/x केवल एक सरल हिसाब किताब नहीं है, परन्तु यह diversification rate का फलन है, जैसे कि –

$$(k/x) = f_5\,(d)$$

किसी दी हुई पूंजी की मात्रा (k) पर x और d के मध्य सम्बन्ध किसी स्तर पर घनात्मक पाया जाता है और जब x अधिकतम होता है और इसके उपरान्त नई products की संख्या में वृद्धि करने (d) से कुल उत्पादन गिरने लग जाता है। प्रारम्भ में d में वृद्धि से x इसलिए बढ़ता है क्योंकि manager, R & D आदि स्थिर साधनों का better utilisation होता जाता है और जब d अपने इष्टतम स्तर को प्राप्त करती है, तो x अधिकतम होता है। इसके उपरान्त d में और अधिक वृद्धि करने से x (कुल उत्पादन) गिरता चला जाता है जो फर्म की efficiency को कम करना कहा जा सकता है।

k/x को profit function में सम्मिलित करते हुए –

$$\pi = f_4 (m, d)$$

π और d के मध्य प्रारम्भिक सम्बन्ध सकारात्मक होता है और d के बढ़ने के साथ अधिकतम सीमा प्राप्त कर जाता है। उसके उपरान्त d को यदि और आगे बढ़ाया जाता है तो कुल profit (कुल π) गिरता चला जाता है।

अब हम π को gc function में प्रतिस्थापित करते हैं –

$$gc = \bar{a} \; [f_4 (m, d)]$$

इस प्रकार rate of growth of c तीन तत्वों पर निर्भर करती है : The financial policies of the managers ($\bar{a}$), the average rate of profit (m) and the diversification rate (d).

Marris अपने प्रारम्भिक model में $\bar{a}$ को स्थिर मानता है और gc और m के मध्य घनात्मक सम्बन्ध होता है :

$$\frac{\partial gc}{\partial m} > \partial$$

Gc और d के मध्य सम्बन्ध monutonic (नीरस) नहीं है। gc R & D के इष्टतम प्रयोग तक d से घनात्मक सम्बन्ध रखता है। परन्तु gc d के उस स्तर के बाद नाकरात्मक सम्बन्ध रखती है क्यों : a higher d implies hastening up of the diversification process → inefficient decisions → fall in the average profit level → low availability on interned finance and consequently a lower rate of growth gc.

$\bar{a}$ और m को स्थिर रखते हुए gc और d के मध्य सम्बन्ध निम्न चित्र के बाईं ओर के भाग में दर्शाया गया है। m और $\bar{a}$ को स्थिर रखते हुए ज्यों d में वृद्धि की जाती है तो वस्तु की बिक्री अधिक होती है, उत्पादन बढ़ती दर पर बढ़ता है। इसलिए growth of capital curve उपर की तरफ उठता जाता है। परन्तु एक स्तर के बाद कार्य के अधिक बढ़ जाने के कारण manager इतना कुशल नहीं रहता। इसलिए g_c अर्थात् growth rate of capital कम होता जाता है। परन्तु यदि d और m दोनों को परिवर्तित माना जाए $\bar{a}$ को स्थिर रखते हुए तब हमें g_c और d के मध्य सम्बन्ध दर्शाने वाले वक्रों का समूह प्राप्त होता है जिसमें $g_c = f(d, m)$ जैसा कि चित्र के दाईं ओर भाग में दर्शाया गया है। स्पष्ट है कि average rate of profit (m) में वृद्धि होने से g_c वक्र उद्गम से ऊपर की तरफ सरकता जाता है जहां ($m_1 < m_2 < m_3$) लेकिन यह वक्र इस परिकल्पना के आधार पर खीचें गये हैं कि $\bar{a}$ स्थिर रहता है।

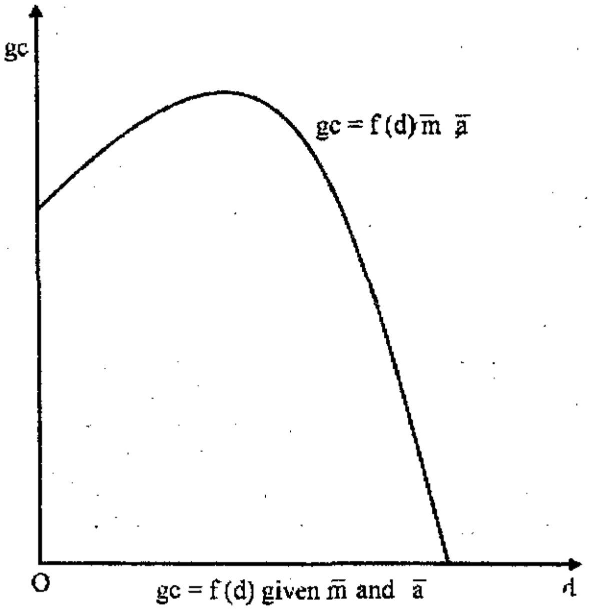

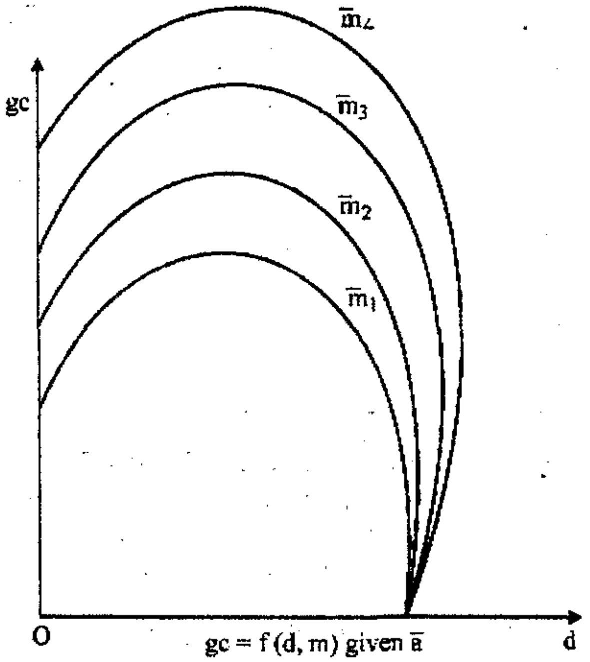

Equilibrium of the Firm

स्पष्ट है कि model अनिर्धारणीय रहेगा जब तक हम m या d variable को managers द्वारा निर्धारित हुआ न मानें। इसलिए या तो m को managers द्वारा निर्धारित हुआ मानें या d को, ताकि equilibrium of growth rate प्राप्त किया जा सके। यह किया जा सकता है जब g_C वक्रों को g_D वक्रों को एक ही साथ चित्रों में इकट्ठा किया जाए। उनकी आकृति के आधार पर g_D और g_C वक्र जो किसी न किसी m से सम्बन्धित है। एक दूसरे को कहीं न कहीं काटते हैं। जैसा निम्न चित्र में दर्शाया गया है।

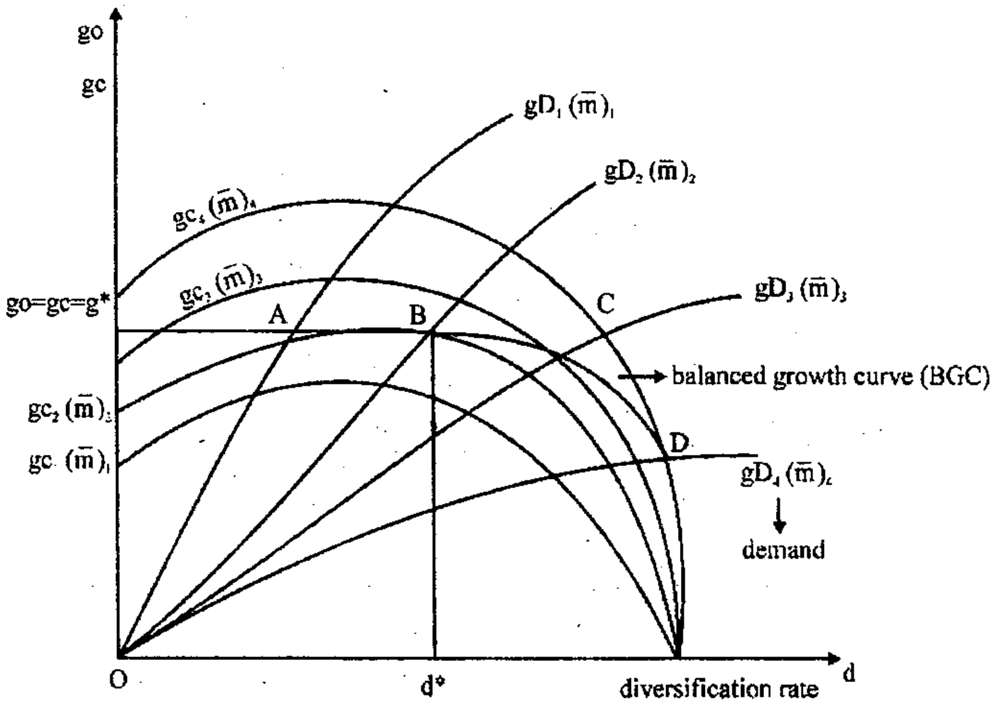

चित्र में दर्शाया गया है कि gd और gc वक्र जो m_1 से सम्बन्धित है। A बिन्दु पर एक दूसरे को काटते हैं। इसी प्रकार g_D और g_C वक्र जो m_2 से सम्बन्धित है, एक दूसरे को B बिन्दु पर काटते हैं, और इसी प्रकार अन्य वक्र भी। यदि हम g_D और g_C वक्रों द्वारा काटे गए बिन्दुओं को जोड़ दें तो हमें Marris द्वारा बताए गए balance of growth curve (BGC) किसी दिए हुए financial confficient ($\bar{a}$) पर प्राप्त होता है।

फर्म वहां पर सन्तुलन में होगी जब यह balanced growth curve के उच्चतम बिन्दु को प्राप्त करती है। फर्म अपनी वित्तीय नीति $\bar{a}$ का निर्धारण करने के बाद फर्म यह चुनाव करती है कि d या m का क्या मूल्य प्राप्त होगा। स्पष्ट है कि चित्र में B बिन्दु higher BGC को दर्शाता है, जिस पर फर्म highest growth rate और highest rate of profit (m), जो सम्भव है प्राप्त करती है। चित्र में किसी दिये हुए $\bar{a}$ पर ABCD balanced growth curve प्राप्त करती है। जिस पर high growth rate g* है जो BGC वक्र पर B बिन्दु द्वारा निर्धारित होता है। i.g.* की सहमति d और m* के साथ है।

Maximum Rate of Growth and Profits

Marris तर्क देता है कि वास्तविक जगत में financial confficient $\bar{a}$ जिसको अब तक हम स्थिर मानते आए हैं, स्थिर नहीं रहता। $\bar{a}$ में परिवर्तन स्पष्ट रूप से g_C वक्र को प्रभावित करता है जैसा निम्न समीकरण से दर्शाया गया है।

$$g_C = \bar{a}\ (\pi) = \bar{a}\ [\ f_4\ (m, d)]$$

जब कभी $\bar{a}$ में परिवर्तन होता है तो g_C वक्र shift होगा यदि $\bar{a}$ में वृद्धि होती है तो g_C वक्र ऊपर की

तरफ सरकेगा जबकि $\bar{a}$ में कटौती होने से g_C नीचे की ओर सरकेगा। The new set of g_C curves intersects the given set of gd curves at new points which form a new balanced growth curve.

चित्र में $\bar{a}$ में वृद्धि BGC वक्र को ऊपर सरका देती है। gd वक्रों के स्थिर रहने पर The highest point of BGC will be above the highest original BGC. फर्म को यह $\bar{a}$ में वृद्धि करते रहना चाहिए जब तक $\bar{a}$ अपने उच्चतम और इष्टतम मूल्य a* को प्राप्त नहीं कर जाती क्योंकि इसी अवस्था में balanced growth rate can be maximise. परिणामतः सन्तुलन की अवस्था में $\bar{a}$ = a* जैसा चित्र में दर्शाया गया है।

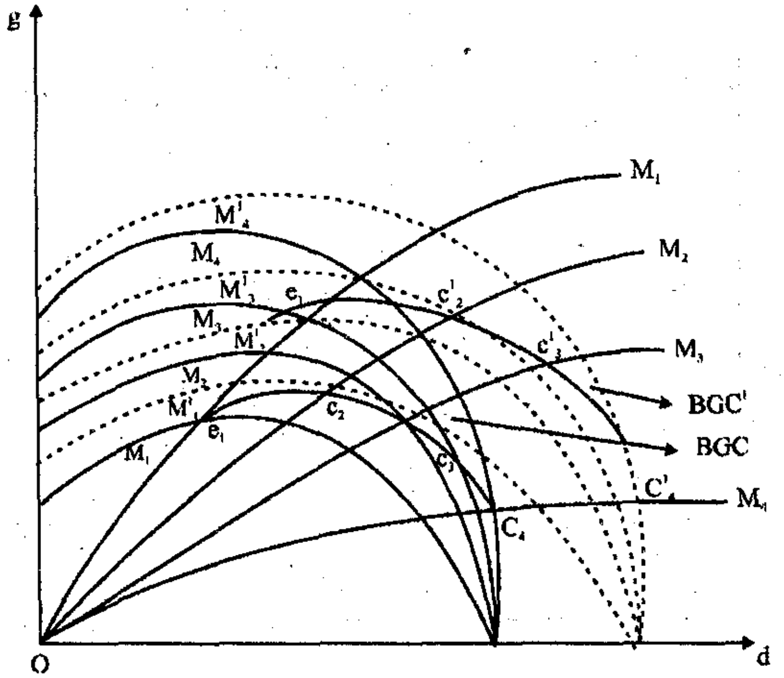

इससे आगे marris तर्क करता है कि यदि $\bar{a}$ को अपरिवर्तनशील माना जाए तब growth and profit एक दूसरे के प्रतियोगी हो सकते हैं। जैसे कि यदि $\bar{a}$ को a* से कम कर दिया जाए तो growth rate कम हो जाता है परन्तु profit level π बढ़ जाता है। परन्तु चाहे कुछ भी हो यदि $\bar{a}$ स्थिर रहे तो maximise growth rate होता है तो वहां profit भी maximum होगा।

Criticism and Critical Evaluation of Marris's Model

1) Marris का सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह है कि उसने फर्म की वित्तीय नीतियों को decision making process में शामिल किया। यह कार्य मॉडल में financial coefficient $\bar{a}$ = a* निर्धारित करके किया। परन्तु इस financial efficient का वास्तविक मूल्य क्या होगा, इस बारे में कुछ भी नहीं कहा गया। $\bar{a}$ को वह बाहर से निर्धारित हुआ मानता है, परन्तु बाद में आंशिक रूप से आन्तरिक दर मानता है।

2) Marris का model एक ऐसे solution की तलाश में है जहां managers और owners दोनों की तुष्टिगण अधिकतम हो सके, परन्तु ऐसा steady growth के अन्तर्गत तो हो सकता है, परन्तु जरूरी नहीं कि मन्दी (recession) की अवस्था में ऐसा हो।

3) निष्कर्ष रूप में profit और growth rate वास्तविक जगत में एक दूसरे के प्रतियोगी उद्देश्य (competing goals) हैं। मॉडल के अनुसार managers और owners दोनों यह जानते हैं कि फर्म maximum growth और maximum profit को एक साथ प्राप्त नहीं कर सकती। मॉडल में आगे कहा गया है कि owner

maximisation of the rate of growth को maximisation of the profit की अपेक्षा prefer करते हैं। परन्तु Marris इसका औचित्य नहीं बता सका कि owner ऐसा क्यों करते हैं।

4) Marris कल्पना करता है कि उत्पादन लागत और वस्तु की कीमत दी हुई होती है, इनकी निर्धारण कैसे होता है कि व्याख्या नहीं की गयी। इसी प्रकार marris ने model में यह स्पष्ट नहीं किया कि बाजार की व्यवस्था oligopelistic होते हुए interdependence की समस्या का क्या समाधान है ? अर्थात् एक उत्पादक द्वारा निर्धारित कीमत दूसरे उत्पादक द्वारा की जाने वाली कीमत को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार इस model में aligopolistic interdependence का सन्तोषजनक विवरण नहीं है।

5) Marris के model में पांच नीति सम्बन्धी उपरकण हैं : Price (p) the product (represented by d), advertising (A), research and development (R&D) and the financial variable (a*) model में कुछ भी हो p और a* बाहर से निर्धारित होते हैं जबकि A and R&D को एक ही दर, जिसको average profit margin (m) कहा जाता है, में संयुक्त रूप से प्रकट किए गए हैं। अन्ततः फर्म किसी एक दर m या d का निर्णय लेने में स्वतन्त्र है, न कि दोनों को निर्धारित करने में। क्योंकि एक निर्धारण करने से दूसरा साथ-साथ निर्धारित हो जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि फर्म को निर्णय लेने में बहुत स्वतन्त्रता दी गई है।

6) A and R&D expenses को model में सामूहिक रूप से प्रकट किया गया है और यह इस model की गम्भीर त्रुटि बन जाती है, क्योंकि वास्तव में इन दोनों का प्रभाव एक जैसा नहीं होता। इसलिए इनको एकत्रित नहीं किया जा सकता।

7) Marris के model में पूर्ण रूप से इस बात पर निर्भर किया गया है कि फर्म का अपना research and development department होता है। Actually, most firms do not have such department. बल्कि वे अन्य फर्मों द्वारा किये गये आविष्कार की नकल करती है।

Q. **The Managerial Discretion Model of O. Willianson.**

Ans. **The Manager Utility Function :**

Willianson के अनुसार manager के पास यह स्वतन्त्रता (discretion) होती है कि वह अपने तुष्टिगुण को अधिकतम करने सम्बन्धी नीतियों को अपना सकता है। Managers लाभ को अधिकतम करने का प्रयास जो share holders की utility को अधिकतम करता है, नहीं करता। परन्तु profit manager के लिए एक रूकावट या प्रतिबंध (constraint) का कार्य करता है कि share holders को कम से कम लाभ अवश्य होगा ताकि उसकी job security बनी रहे।

Mangerial utility function में जो variables सम्मिलित होते हैं वे हैं– Salary, security, power, status, prestige. इन सभी variables में से प्रथम (salary) को ही मापा जा सकता है। इसको खर्चा (expense) preference की धारणा द्वारा प्राप्त किया जा सकता है जो managers की उस सन्तुष्टि को दर्शाते हैं जिसको विशेष प्रकार के खर्च करके प्राप्त किया जा सकता है। विशेष रूप से कर्मचारियों पर व्यय करने की स्वतन्त्रता और managers को कुछ निवेश करने की स्वतन्त्रता भी धनात्मक सन्तुष्टि प्रदान करती है क्योंकि ये खर्चे managers की prestige, status, power and source of security होते हैं।

इसी प्रकार managers की prestige, power और status इस बात से भी स्पष्ट होता है कि salary से भी जो emoluments (आय), luxurious office, car etc. जो उपलब्ध होती हैं से भी स्पष्ट है। इसी प्रकार जब managers निवेश सम्बन्धी निर्णय एक निश्चित सीमा तक लेने में स्वतन्त्र होते हैं तो यह managers के अपने विचारों के अनुसार project अपनाने और निवेश करने का मौका फर्म को प्राप्त होता है जो managers की आत्म-सम्मान (self-respect) को बढ़ाता है।

Managers की power, status, prestige आदि का प्रतिनिधित्व (staff, expenditures, emoluments and discretionary

investment expenses, जिनको मुद्रा के रूप में मापा जाता है, के रूप में व्यक्त किया गया है जो Managers के utility function में सम्मिलित होते हैं। Managers का utility function निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है –

$U = f (S, M, I_D)$

S = Staff expenditure, including managerial

salaries (administrative and self salaries or advertisement expenditure)

M = Managerial emouluments

I_D = discretionary investment.

The Model : A Simplised Model of Managerial Discretion : इस model को दो भागों में बांटा गया है। पहली अवस्था में हम कल्पना करते हैं कि managerial emouluments (M) शून्य होते हैं। फर्म का actual profit निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाता है।

$\pi = R - C - S$

R = Sales Revenue

C = Production Cost

S = Staff expenditure

Actual profit प्राप्त करने के लिए Revenue (R) से केवल C और S घटाये गये हैं जैसा कि m यहां शून्य है। इस अवस्था में actual profit (वास्तविक लाभ) कर के उद्देश्य से reported profit के बाहर होता है।

$\pi = \pi_R$

Simplised model को निम्न समीकरण में व्यक्त किया जा सकता है –

maximise = $U = f (S, I_D)$

Subject to = $\pi = \pi_O + T$

π_O = minimum profit

T = tax

क्योंकि हमने managerial emaulments को शून्य माना है इसलिए discretionary investment (I_D) सारे discretionary profit के बराबर होता है। फर्म का discretionary investment $I_D = \pi_R - \pi_O - T$ इसलिए हम managers के utility function को निम्न प्रकार से लिख सकते हैं –

$U = f [S, (\pi - \pi_O - T)]$

सरलता के लिए model में यह परिकल्पना की गई है कि Lump sum tax नहीं होता इसलिए –

$\pi = t \pi$

t = marginal tax rate/marginal propensity to rate

इस प्रकार managerial otility function की आकृति निम्न प्रकार से बन जाती है –

$U = f [S, (l - t) \pi - \pi_0]$

यह उपरोक्त समीकरण का संशोधित रूप है जहां $(i - t) \pi - \pi_0 = \pi_D$ है dicretionary profit को दर्शाता है। williamson के model को निम्न चित्र में managers के indifference curve की सहायता से फर्म के सन्तुलन को दर्शाया जा सकता है। अर्थात् managers का indifference curve map होता है और एक indifference S और π_D के मध्य ऐसा सम्बन्ध दर्शाता है जिससे managers को समान सन्तुष्टि प्राप्त होती है। यह वक्र उपर से नीच झुकती हुई अर्थात् नकारात्मक ढ़ाल वाले इस प्रकार के बने है जो S और π_D के विभिन्न संयोग दर्शाते हैं जिन पर manager समान सन्तुष्टि प्राप्त करती है। निम्न चित्र में X-axis पर staff expenditure (S) मापा गया है और Y-axis पर discretionary profit (π_D) मापा गया है। Indifference Curve की आकृति सामान्य मानी गई है जो उदगम के प्रति convex है।

IC चक्र का ढाल diminishing marginal rate of substitution of S and π_D को दर्शाता है यह भी कल्पना की गई IC एक दूसरे को नहीं काटते। जैसे निम्न से प्रतीत होता है।

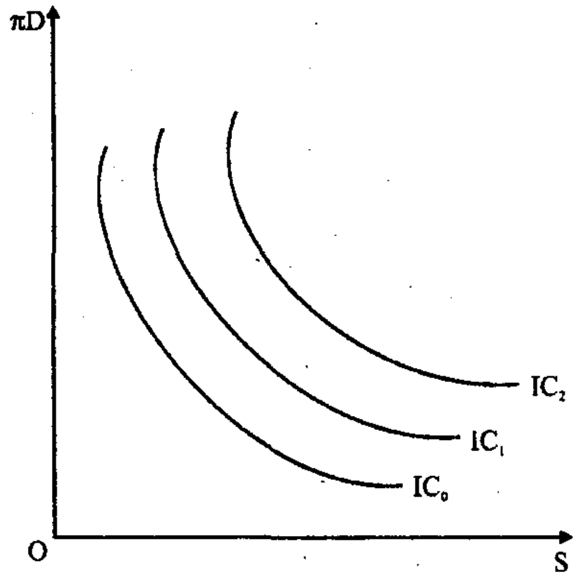

Staff expenditure (S) and discretionary profit (πD) के मध्य सम्बन्ध profit function के माध्यम से निर्धारित किया गया है जो निम्न प्रकार से दर्शाया गया है –

$\pi = f(x) = f(P, S, E)$

X = output

P = price

E = the condition of environment (यह वह तत्व है जो भाग वक्र को ऊपर नीचे सरका देता है क्योंकि t और π_0 बाहर से निर्धारित होते हैं। जैसा कि tax देश में लागू हुए tax laws पर निर्भर करता है। और π_0 shareholders को लाभ सम्बन्धी मांग पर निर्भर करता है।)

यहां कल्पना की गई है कि फर्म उत्पादन का चयन इष्टतम स्तर (optimum level) पर करती है, जहां mc = mr होते हैं। इसके साथ ही यह कल्पना की जाती है कि market environment (E) दिया होता है इसलिए S और πD के मध्य सम्बन्ध निम्न चित्र में दर्शाया गया है –

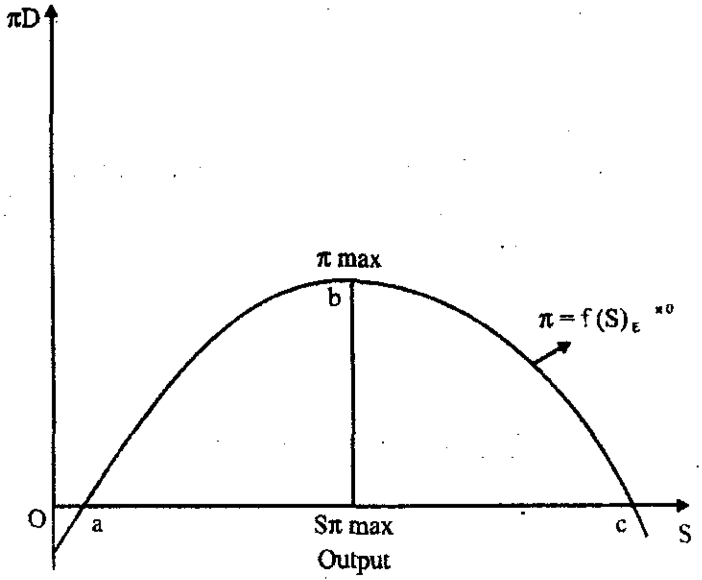

चित्र में दर्शाया गया है कि उत्पादन के प्रारम्भिक चरणों में जब तक उत्पादन अधिकतम स्तर पर नहीं पहुँच जाता है πD और S दोनों बढ़ते हैं परन्तु यदि उत्पादन अधिकतम लाभ के बाद भी बढ़ाया जाता है तो S बढ़ता रहता है परन्तु profit गिरने शुरू हो जाते हैं। S को केवल इतनी मात्रा में बढ़ाया जा सकता है ताकि profits minimum acceptable profit IT_0 के बराबर हो सके। निम्न चित्र में minimum profit (π_0) एक सरल रेखा द्वारा दर्शाया गया है जो कुल profit वक्र को E बिन्दु पर काटता है अर्थात् चित्र अनुसार S* तक ही बढ़ाया जा सकता है जहां उच्चतम indifference curve U_3 profit curve को E बिन्दु पर touch करता है। इसलिए फर्म यहां सन्तुलन में होगी और manager अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करेगा। यदि फर्म S* से अधिक staff expenditure करती है तो miniumum profit पूरा नहीं हो सकेगा। मैनेजर के लिए खतर उत्पन्न करेगा इसलिए S घटाकर S* ही करना होगा जैसा निम्न चित्र में दर्शाया गया है—

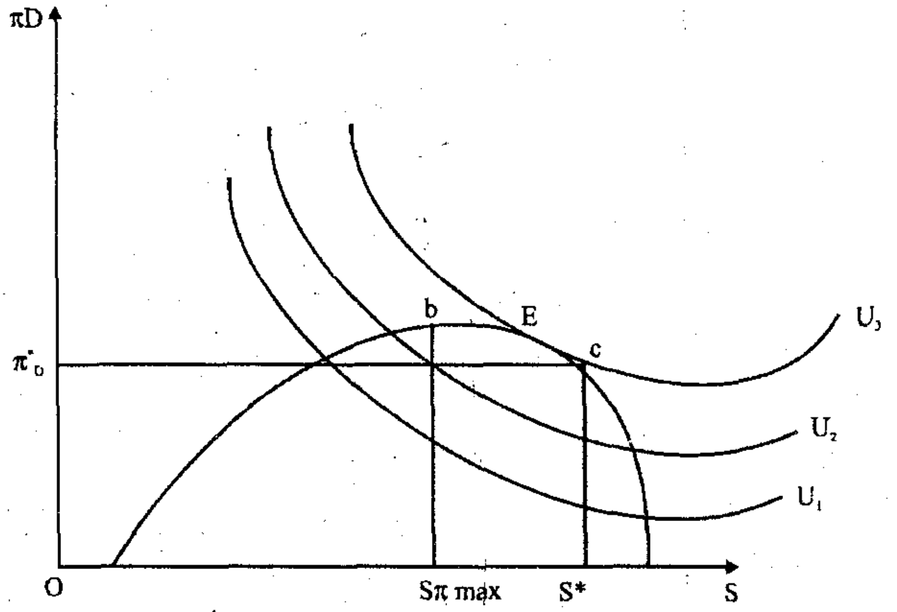

इस प्रकार Willianson के model में फर्म अधिक उत्पादन करेगी, कम कीमत रखेगी (क्योंकि उत्पादन अधिक होता है) और लाभ का स्तर भी कम होगा अपेक्षाकृत एक profit maximisation model में।

The General Model of Managerial Discretion

Model को निम्न समीकरण से दर्शाया जा सकता है—

Maximise : $U = f(S, M\ M, \pi r - \pi o - T)$

Subject to : $\pi r \geq \pi + T$

यह परिकल्पना की गई कि utility function के प्रत्येक component की managerial utility घटती जाती है। परन्तु सकारात्मक रहती है। अर्थात् इन सभी components (s,m, I_0) की positive values को लिया गया है। उपरोक्त परिकल्पना के आधार पर managers के सामने जो constraint (प्रतिबन्ध) थे वह बेकार हो जाते हैं और हमारे सामने सीधी समस्या maximisation की प्रस्तुत होती है—

π_R को प्रतिस्थापित करते हुए

$\pi_R = \pi - M = R - C - S - M$

और इसी प्रकार T को भी प्रतिस्थापित किया जा सकता है।

$T = \bar{T} + t(R - C - S - M)$

$\bar{T}$ = Lump-sum tax $\bar{T}$ को यहां पर शून्य माना गया है।

t = Rate of tax

इस प्रकार managers के utility function में उपरोक्त मूल्यों को प्रतिस्थापित करने से निम्न समीकरण प्राप्त हुआ।

$U = f [S, m, \{(1+t)(R-C-S-M) - \pi_o\}]$

उपरोक्त समीकरण से स्पष्ट है कि manager का total utility S पर, m पर और reported profit के उस भाग पर जो tax के रूप में नहीं दिया जाता और जिसमें से miniumum profit भी घटा दिया जाता है पर निर्भर करता है। Function में M को भी प्रतिस्थापित किया जा सकता है यदि reported profit (π_R) कुल Profit (π) का अनुपात हो अर्थात् $\pi_R = \pi_P$ तो P को निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है –

$$p = \frac{\pi r}{\pi}$$

उपरोक्त समीकरण को retained profit की परिभाषा के रूप में व्यक्त करते हुए निम्न rearrangement किया जा सकता है।

$\pi r = \pi - M = \pi p$

$\therefore m = (1-p)\ \pi = (1-p)(R-C-S)$

Thus the managerial utility becomes :

$U = f [s, (1-P)(R-C-S), (1-t)(R-C-S) - \pi o)]$

Model में tax rate (t) और minimum profit requirement (π_0) बाहर से दिए हुए होते हैं। इसलिए utility function तीन variables पर निर्भर करता है : output (X), staff expenditure (S) and the proportion (P). ये तीनों फर्म के policy variables हैं और managers अपने utility function को maximise करने के लिए X, S और P के मूल्यों का चयन करेगा।

संक्षिप्त में एक profit maximiser firm की अपेक्षा एक फर्म जो managers की utility को maximise करती है, का staff expenditure और discretionary investment अपेक्षाकृत कम होगा। उत्पादन स्तर के सम्बन्ध में दोनों model में कोई निष्कर्ष प्राप्त नहीं होगा।

Critical Evaluation : Williamson costs और price को स्थिर मानता है तथा बाहर से दी हुई मानता है। परन्तु संख्यात्मक संसार में जहां मुद्रास्फीति और मन्दी की अवस्था होती है ये तत्व स्थिर नहीं रह सकते।

Williamson का model एक oligopolistic फर्म का अध्ययन है। Interdependence उत्पादकों के मध्य oligopolistic एक महत्वपूर्ण समस्या है परन्तु यह model इस समस्या का अध्ययन नहीं करता। फिर भी यह model managerial bahaviour का उत्तम विश्लेषण है।

अध्याय - 24
व्यवहारिक सिद्धान्त – सिरट तथा मार्च मॉडल
(Behavioural Approach — Ceyrt and March Model)

Q. The Behavioural Model of Ceyrt and March.

Ans. The firm as a Coalition with Conflicting goods (goods of the firm) — Ceyrt और March द्वारा विकसित फर्म का व्यवहारिक सिद्धांत imperfect market में अनिश्चितता के अंतर्गत एक संतहम large multi-product firm किस प्रकार की dicision making प्रक्रिया अपनाती है, का अध्ययन करता है। यह large multi-product firm ऐसी है जिसमें ownership और management भिन्न है। Cyert और March का सिद्धांत फर्म की संगठनात्मक समस्याओं से संबंध रखता है। ये समस्याएं फर्म के आंतरिक दावों से उत्पन्न होती है। इनका प्रभाव decision making process पर क्या पड़ता है इसका अध्ययन किया गया है।

इस behavioural सिद्धांत में फर्म के जटिल स्वरूप को व्यवहारिक बना दिया गया। फर्म को इस सिद्धांत में एक single goal, single decision unit नहीं माना गया है जैसा परंपरावादी सिद्धांतों में माना गया है बल्कि इसे एक multi goal, multi decision organisation coalition माना गया है। फर्म को एक विभिन्न समूह coalition (गठबंधन) माना गया है। जो इस फर्म की क्रियाओं से विभिन्न प्रकार से जुड़े है जैसे कि managers, workers, shareholders, customers, suppliers, bankers, tax, inspector and so on प्रत्येक समूह के अपने उद्देश्य और मांगें होती हैं। उदाहरणतः workers want high wages, good pension, schemes. जबकि Managers want high salaries, power, prestige. The shareholders want high profit, growth growing capital and market size. The customers want low prices and good quality service. चाहे कुछ भी हो behavioural theory में सबसे अधिक महत्वपूर्ण ये तत्व हैं जो प्रत्यक्ष रूप से फर्म की क्रियाओं से जुड़ें हैं—managers, workers and the shareholders. हमारा अगला कद उस प्रक्रिया की जांच का है जिसके माध्यम से विभिन्न समूहों के demand goals निर्मित होते हैं।

The Process of Goal Formation : The Concest of the 'aspiration level' :

Behavioural theory स्पष्ट रूप से यह मानती है कि फर्म के दो आधारभूत भाग होते हैं एक तरफ तो coalition firm के व्यक्तिगत सदस्य होते हैं दूसरी तरफ organisation-coalition होती है जिसे फर्म कहा जाता है। फर्म का इन दिनों भागों में बंटना conflict of goals को उत्पन्न करता है क्योंकि व्यक्ति अलग उद्देश्य रखते हैं और फर्म का उद्देश्य कुछ और होता है।

Behavioural theory का उद्देश्य उनकी key variables का निर्धारण करता है जा फर्म के निर्णयों का निर्धारण करते हैं। यह सिद्धांत फर्म के उद्देश्यों में रूचि नहीं रखती बल्कि विभिन्न निर्णय संबंधी प्रक्रिया के उद्‌गम और उनके निर्माण से संबंध रखती है। Cyert and March तर्क देते हैं कि फर्म के उद्देश्य समूहों के सदस्यों पर निर्भर करते हैं जबकि इन सदस्यों की मांग विभिन्न तत्वों पर निर्भर करती है। जैसे कि साधनों

की आकांक्षाएं (aspirations) भविष्यकाल में उनकी कितनी मांगे संपन्न होंगी उनकी आशाएं आदि से संबंधित अन्य सदस्यों के समूह चाहे उसी फर्म के या किसी अन्य फर्म के समूहों की सफलता पर आदि आदि।

प्रत्येक सदस्य या सदस्यों का समूह (firm) अनेक मांग रखते है। ये मांगे दूसरे सदस्यों की मांगों या कुल मिलाके फर्म के उद्देश्यों से प्रायः टकराती है क्योंकि प्रत्येक समूह की मांगे बहुत अधिक होती है और किसी एक समय में उन्हें संतुष्ट नहीं किया जा सकता, जबकि फर्म के पास साधन सीमित होते हैं। इसलिए किसी विशेष समय अवधि में विभिन्न सदस्य या समूह management के सामने अपने मांगों का केवल एक ही भाग रखते हैं जिनकों वे बहुत अधिक महत्वपूर्ण समझते है। Firms के विभिन्न समूह अपने मांगों को प्राप्त करने के लिए निरंतर सौदेबाजी करते रहते हैं।

भूतकाल में मनवाई गई मांगें और वर्तमान की मांगों को मध्य storing relation पाया जाता है Demands take the form of aspiration levels. वातावरण और फर्म के परिवर्तन के परिणाम स्वरूप मांगों में निरंतर परिवर्तन होता रहता है। किसी समय अवधि में किसी विशेष समूह द्वारा management के सामने रखी गई मांग वास्तव में उस विशेष Group द्वारा पहले रखी गई मांगों की सफलता पर निर्भर करता है, उसी फर्म में अन्य समूह द्वारा मांगों को स्वीकार करवाने पर निर्भर करता है, अन्य फर्मो में ऐसे ही समूहों द्वारा प्राप्त की गई सफलता, past aspiration levels, on expectations and on available information.

Cyert and March तर्क देते हैं कि व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह की मांगें और past achievement के मध्य संबंध environment में परिवर्तन और फर्म की performance में actual and expected changes पर निर्भर करती है।

1. जब environment में कोई परिवर्तन नहीं होता तो लोगों के या फर्म के समूहों के aspirations (demands) उतने ही होते हैं जितनी मांगें उन्होंने past में मनवाई थी।
2. एक गत्यात्मक स्थिति में जिसमें प्रगति हो रही हो, उस अवस्था में लोगों की आगें उनकी achievement से पीछे रह जाती है। Behavioural theory में time-log बहुत महत्वपूर्ण है इस समय के दौरान फर्म अत्यधिक लाभ कमाती है। इस समय के दौरान फर्म अत्यधिक लाभ कमाती है जिनको फर्म के झगडों का निदान करने के लिए किया जाता है और यह लाभ फर्म की क्रियाओं को स्थायित्व प्रदान करती है।
3. एक ऐसे समय के अंतर्गत जिसमें फर्म की क्रियाएं कम हो रही हो उस परिस्थिति में लोगों की मांगें सफलता से अधिक होती है क्योंकि समूहों के सदस्यों का aspiration level नीचे की ओर धीरे–धीरे adjust करता है।

Goals of the Firm : Satisfying Behaviour

अंततः फर्म के उद्देश्य management द्वारा किये जाते हैं। फर्म के मुख्य पांच उद्देश्य हैं:

(a) Producation goal (b) Inventory goal (c) Sales goal (d) Share-of-the-market goal (e) Profit goal

(a) **Production Goal :** Producation goal का निर्धारण Producation department करता है। Producation manager का मुख्य उद्देश्य उत्पादन प्रक्रिया को निरंतर बनाये रखना होता है। ताकि कर्मचारी बेरोजगार ना हो और ना ही excess idle capital capacity रह सकें।

(b) **Inventory Goal :** Inventory goal का निर्धारण inventory department से होता है। Inventory or sales department ग्राहकों के लिए वस्तुओं का प्रयाप्त भंडार रखना चाहते है। इसी प्रकार Producation department raw material पर्याप्त भंडार रखना चाहता है ताकि उत्पादन प्रक्रिया निरंतर कायम रह सकें।

(c) **Sales Goal :** Sales goal फर्म के Sales department द्वारा निर्धारित होता है यही department सामान्यतः 'sales strategy' का निर्धारण करता है। विज्ञापन खर्च निर्धारित करता है और market research भी करवाता है।

(d) **Share-of-the-Market Goal :** Shareholders की मांग बैंकों की आशाओं को संतुष्ट करने के लिए profit

goal का निर्धारण Top management द्वारा ही किया जाता है इसी उद्देश्य के अंतर्गत फर्म के funds उत्पन्न किये जाते हैं जिनका प्रयोग करके फर्म अपने विभिन्न उद्देश्य पूरा करती है।

फर्म के goals और समूह व व्यक्तियों के goals गत्यात्मक होते हैं अर्थात बदलते रहते हैं। उद्देश्यों में यह परिवर्तन फर्म के भूतकाल में प्राप्त किये गये उद्देश्यों, बाह्य वातावरण और संगठन के अंदर ही समूह की आकांक्षाओं पर निर्भर करते हैं।

जब फर्म के goals की संख्या बढ़ती है तो निर्णय लेने की प्रक्रिया जटिल बनती चली जाती है। यहां भी law of diminishing returns managers के level लिए लागू होते हैं।

अंततः फर्म के goals फर्म के Top management द्वारा निर्मित (decide) किये जाते हैं और यह निर्णय लेने की प्रक्रिया विभिन्न व्यक्तियों या समूह की मांगों को अधिक से अधिक संतुष्ट करने का प्रयास करती है।

कुछ उद्देश्य सभी व्यक्ति या समूह को स्वीकृत हो सकते है जैसे कि Sales goasl यह सभी समूहों को स्वीकृत होता है जबकि कुछ उद्देश्य कुछ एक को ही स्वीकृत होते हैं जैसे कि Profit maximisation का उद्देश्य shareholders को ही स्वीकृत होता है।

फर्म के उद्देश्य किसी विशेष समूह या व्यक्तियों के उद्देश्यों की तरह आकांक्षा का ले लेते हैं बजाय इसके कि strick maximisation का उद्देश्य प्राप्त करें। Behavioural theories में फर्म कुल मिलाकर **satisfactory overall performance** को प्राप्त करने का उद्देश्य रखती है **न कि profit, sales** आदि को **maximise** करने को। The firm is a satisfying organisation rather than a maximising entrepreneur. Firm satisfactory level of production, satisfactory share of the market, to earn a satisfactory level of profit. और इसी प्रकार R & P department पर satisfactory percentage खर्च करना और satisfactory public image आदि प्राप्त करना चाहती है परंतु चाहे कुछ भी हो सिद्धांत में यह व्यक्त नहीं किया गया कि satisfactory level क्या होता है।

Cyert and March तर्क देते हैं कि आंतरिक और बाह्य सीमाओं के अंदर जिनके अंतर्गत एक फर्म क्रिया करती है और उसमें उसका जो विवेक पूर्ण व्यवहार होता है satisficing behaviour कहलाता है। सामान्यतः Top management द्वारा अंतिम निर्णय लिये जाते हैं जो अधिक से अधिक लोगों के aspiration level को संतुष्ट करते हैं उसे ही satisficing behaviour का कहा जाता है। फर्म वास्तव में किसी एक को maximise नहीं कर रही होती बल्कि संगठन को अधिक से अधिक संतुष्ट कर रही है।

यह स्पष्ट होना चाहिए कि behaviour सिद्धांत के उत्पादकों ने rationality को पुनः परिभाषित किया। Traditional theory के अनुसार वह फर्म rational कही गई जो अल्पकालिन और दीर्घकालीन लाभ को अधिकतम करती है। Behaviourist school केवल अकेला सिद्धांत है जो फर्म के satisficing behavioural के कल्पना करता है या का उद्देश्य रखता है।

A. Simple Model of Bheaviourism

यह model duopoly की अवस्था से संबंध रखता है जिसमें निर्णय लेने की प्रक्रिया उत्पाद के निर्धारित करने की होती है ताकि बाजार में एक ही कीमत प्रचलित रह सकें जब दोनों फर्में अपने अपने उत्पादन का निर्णय कर चुकी होती है तब कीमत बाजार में निर्धारित होती है। यह माना गया है कि inventory स्तर में कोई परिवर्तन नहीं होता फर्म द्वारा उठाये गये कदम निम्न प्रकार से व्यक्त किये जा सकते हैं।

1. **Forecast of Competiters Reactions :** फर्म प्रतियोगियों की प्रतिक्रिया के बारे में अनुमान उनके भूतकाल में की गई प्रतिक्रियाओं पर मुख्यतः निर्भर करते हैं।
2. **Forecast of Firms Demand :** इसी प्रकार फर्म की वस्तुओं की मांग के लिये अनुमान भी past में की गई बिक्री पर निर्भर करता है।

3. **Estimation of Costs :** वर्तमान की लागतों, जो कि वही होती है जो भूतकाल में थी, के संबंध में अनुमान लगाया जाता है कि उनमें वृद्धि बहुत कम होगी।
4. **Specification of Goals of the Firm :** इस model में लाभ को फर्म का केवल भाग उद्देश्य माना गया है जो भूतकाल में प्राप्त किए गए profit का औसत होता है।
5. **Evaluation of Results by Comparing them to the Goals :** एक से तीन तक जो कदम उठाये गये है उनके आधार पर हम level of output, price, cost and profits का अनुमान लगा सकते हैं। यदि इस हल से goals संतुष्ट होते है तो फर्म उसे अपना लेती है यदि नहीं होते तो फर्म छठें *step* पर पहुंच जाती है।
6. If goals are not attaimned the firm re-examines the estimate of its costs.
7. Evaluation of the new solution by comparing it to goals अर्थात फर्म जिन निर्णयों पर पहुंचती है, goals को ध्यान में रखते हुए उनमें संशोधन करती है।
8. If goals are not met the firm readjusts downwards its aspiration levels.

   अर्थात यदि लागतों में परिवर्तन से भी उद्देश्य प्राप्त न हो सकें तब फर्म अपनी आकांक्षा स्तर को नीचे सरका देती है।

आलोचना (Critique)

1. Behavioural theory का महत्वपूर्ण aspect (पहलू) यह है कि फर्म के अंदर ही साधनों का पुर्नःबंटवारा करती रहती है जबकि goals satisfy नहीं होते। जबकि परंपरागत सिद्धांत में यह कमी पाई जाती थी। वास्तव में देखा जाए तो traditional theory साधनों के बंटवारों के लिए सारी अर्थव्यवस्था में market (price) mechanism पूर्ति की सहायता की। इस प्रकार ये दोनों सिद्धांत एक दूसरे के पूरक है। प्रतिस्थान नहीं।
2. व्यय करने में ढील (slack) केवल manager को प्रदान की गई है जिसको managerial slack कहते हैं। परंतु फर्म के अन्य सदस्यों को भी slack payments किस सुविधा भी प्रदान की जाती है। जिसके प्रभावों की व्याख्या सिद्धांत में नहीं की गई।
3. वास्तव में यह फर्म के व्यवहार की व्याख्या नहीं करती क्योंकि किसी फर्म के particular action की व्याख्या किये बिना ही उसके व्यवहार का अध्ययन किया गया है।
4. Cyert and March ने Industry equilibrium का अध्ययन नहीं किया इसलिए फर्म के interdependance की अवहेलना की गई है।
5. इस सिद्धांत में बाहर से प्रवेश करनेवाली फर्मो की धमकी को भी ध्यान में नहीं रखा गया है।
6. इस सिद्धांत में एक फर्म वास्तविक जगत में किस प्रकार अल्पाधिकार के अंतर्गत कीमत और उत्पादन का निर्धारण करती है। कि व्याख्या पूर्ण रूप से छोड़ दी गई है।
7. Behavioural theory का short sighted (अल्पकालीन) अध्ययन करती है यद्यपि यह निश्चित है कि uncertainty of the market का ध्यान term planning में भी रखा जाता है। परंतु अधिकतर निर्णय long term planning के अंतर्गत ही लिये जा सकते हैं। इसलिए फर्म की आलोचना की गई है। कि केवल अल्पकालीन planning का ही ध्यान किया गया है।

——§§§§§§§§§§§§§§§——

अध्याय-25

सूचना की खोज का अर्थशास्त्र तथा असमान सूचनाओं का बाजार
(Economics of Search for Information and Markets with Asymmetric Informations)

सूचना की खोज का अर्थशास्त्र
(Economics of Search for Information)

हम जानते हैं कि सूचनाएँ मुफ्त में उपलब्ध नहीं होती है। उत्पादन तथा व्यवसाय में सूचनाएँ अति महत्त्वपूर्ण होने के कारण इनकी खोज की जाती है तथा इस खोज पर कम या अधिक धन खर्च किया जाता है। निवेशक निवेश सम्बन्धी निर्णय होने से पहले विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ एकत्रित करना चाहता है ताकि निवेश सम्बन्धी उचित निर्णय लिया जा सके। एक निवेशक के सामने निवेश करने के लिए विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियाँ उपलब्ध होती हैं। वह उस प्रतिभूति में निवेश करना चाहेगा जिससे भविष्य में अधिकतम लाभांश तथा परिपक्व मूल्य प्राप्त हो सकें इसके लिए जरूरी है कि वह सभी प्रतिभूतियों से सम्बन्धित भविष्य में होने वाले परिवर्तनों के बारे में सूचनाएँ प्राप्त कर सके। महत्त्वपूर्ण सूचनाओं पर उसे अधिक धन भी खर्च करना पड़ सकता है। इसी प्रकार नई फर्मों, कम्पनियों, निगमों आदि को अपना व्यवसाय स्थापित करने से पहले विभिन्न प्रकार की महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ लेनी पड़ती हैं। यदि गलत सूचनाओं के आधार पर ये इकाईयाँ अपनी स्थापना कर देती हैं तो उनको काफी हानि उठानी पड़ती है। इस प्रकार की हानि से बचने के लिए तथा व्यवसाय में अधिक से अधिक लाभ कमाने के लिए यह जरूरी है कि सही सूचनाएँ एकत्रित की जाएं। सूचनाओं की खोज में खर्च होने वाले धन से यदि इनको अधिक लाभ प्राप्त होता है तो ऐसा करना उचित कहा जाएगा।

पूर्ण प्रतियोगिता वाले बाजार में उत्पादकों को सम्पूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होती हैं, इसकी कल्पना की जाती है। परंतु वस्तुतः सभी क्रेता और विक्रेताओं को वस्तु के गुण सम्बन्धी पूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। पूर्ण प्रतियोगिता की यह कल्पना सही सिद्ध हो सकती है यदि सूचनाओं की खोज करना बहुत सरल तथा व्यय रहित हो। यदि गुणवत्ता (Quality) सम्बन्धी सही सूचनाएँ प्राप्त करना महंगा पड़ता है तो यह संभव नहीं है कि सभी क्रेता तथा विक्रेताओं को समान सूचनाएँ प्राप्त हो।

इसकी स्थापना श्रम बाजार के उदाहरण से स्पष्ट की जा सकती है। श्रम बाजार में श्रम एक समरूप वस्तु या साधन है। सभी उत्पादकों को वही श्रम प्राप्त होता है परंतु कौन सा श्रमिक अधिक उत्पादक है, इसका निर्धारण करना कठिन कार्य है। इसी प्रकार की समस्या उपभोक्ता वस्तुओं के बाजार में उत्पन्न होती है। जब एक ग्राहक पुरानी कार को खरीदता है तो उसके लिए यह निर्धारित करना कठिन होता है कि कार अच्छी है या खराब है। इसके विपरीत पुरानी कार का विक्रेता उस कार के गुण के बारे में अच्छी प्रकार से जानकारी रखता है। हम देखेंगे की यह असमान सूचनाएँ (asymmetric information) एक बाजार की कुशल कार्यप्रणाली के लिए महत्वपूर्ण समस्याओं का कारण बन जाता है।

सूचनाओं की खोज का बाजार
(Market for Search for Information)

विभिन्न आर्थिक इकाईयों के पास विभिन्न विषयों से सम्बन्धित सूचनाओं का असमान बँटवारा हुआ होता है। जो व्यक्ति सूचनाओं की कमी महसूस करते हैं वे सूचना बाजार में सूचनाओं की माँग उत्पन्न करते हैं। सूचनाएँ मूल्यवान होने के कारण

इनकी मांग करने वाले इनकी कीमत देने को तैयार होते हैं। जैसे लोग विश्वस्त सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए जासूसों तथा ऐसी एजेन्सियों को सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए उनकी सेवाएँ खरीदते हैं। जैसे पाकिस्तान की आई.एस.आई. (I.S.I.) भारत के महत्वपूर्ण दस्तावेजों व ठिकानों से सम्बन्धी सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए सूचनाओं की पूर्ति (supply) करने वालों को काफी धन देती हैं। सूचनाओं के मांगकर्ता (Demanders) यह तुलना करते हैं कि कोई सूचना प्राप्त करने से अतिरिक्त लाभ कितना होगा तथा इसके लिए उन्हें कितनी कीमत देनी पड़ेगी? यदि यह अतिरिक्त लाभ सूचना पर खर्च की गई कीमत से ज्यादा होता है तो वह सूचनाओं की मांग को बढ़ा सकता है। इसके विपरीत यदि सूचनाओं की कीमत प्राप्त होने वाले लाभ से अधिक है तो इस सौदे में उसे हानि उठानी पड़ेगी इसलिए वे सूचनाओं की माँग को घटा देते हैं।

सूचनाओं के मांगकर्ता उस समय संतुलन में होते हैं जब सूचनाओं पर खर्च की गई कीमत अतिरिक्त लाभ तथा सीमान्त लाभ के बराबर हो जाती है।

सूचनाओं की पूर्ति करने वाले लोग सूचना एकत्रित करने में अपना समय तथा धन खर्च करते हैं तथा जोखिम भी उठाते हैं। किसी सूचना पर यदि यह खर्च अधिक होता है तो इसकी ऊँची कीमत लेते हैं। इसके विपरीत जिन सूचनाओं पर कम खर्च होता है, उनकी कम कीमत ली जाती है परंतु कई बार सूचना प्रदान करने वाले उपरोक्त खर्च को देखकर कीमत निर्धारित नहीं करते बल्कि सूचना के महत्व को देखकर कीमत निर्धारित करते हैं।

अतः सूचनाओं की सामान्य कीमत निर्धारित करना अति कठिन कार्य है क्योंकि यह सूचनाओं के महत्त्व, उनकी आवश्यकताओं तथा सूचना लेने व देने वालों के आर्थिक हित आदि पर निर्भर करती है। सूचना बाजार में प्रतियोगिता का विशेष अभाव देखा जा सकता है। इसमें एकाधिरात्मक तत्वों तथा द्विपक्षीय बाजार का अधिक बोलवाला रहता है।

असमानात्मक सूचना
(Asymmetric Information)

वास्तविक जगत में यह देखा जा सकता है कि कृषि में नकद मजदूरी देकर कार्य करवाना अच्छा मानते हैं या भूमि को लगान पर देना अच्छा मानते हैं परंतु साझे की खेती करवाना पसंद नहीं करते। यह कहना गलत नहीं होगा कि हजारों सालों से विश्व के किसी न किसी भाग में सांझे की खेती भू–स्वामी करवाते रहे हैं क्योंकि सांझे की खेती भी हमारी किसी न किसी जरूरत को पूरा कर रही होती है। इन दोनों तरह की बातों की सच्चाई क्या है? इस विश्लेषण के शीर्षक को ध्यान में रखते हुए उपरोक्त समस्या का समाधान कठिन नहीं है।

उपरोक्त कथनों में हमने अपूर्ण सूचना से सम्बन्धित समस्याओं की अवहेलना की। हमने यह मान लिया है कि भू–स्वामी मजदूर के कार्यों की पूर्ण रूप से देखभाल कर सकता है परंतु बहुत सी परिस्थितियों उनके कार्यों की देखभाल करना असंभव होता है। भू–स्वामी ज्यादा से ज्यादा उसके द्वारा किये गये प्रयासों व कार्यों के संकेतों को ही देख पाता है जैसे कि उत्पादन की मात्रा। एक किसान द्वारा उत्पादित किये गये उत्पादन की मात्रा आंशिक रूप से श्रमिक के प्रयासों पर निर्भर कर सकती है परंतु यह मौसम, उपादानों की गुणवत्ता (Quality of inputs) तथा अन्य बहुत से तत्वों पर निर्भर करता है। इस कारण से मालिक उत्पादन पर आधारित जो श्रमिक को भुगतान करता है, वह सामान्यतः श्रमिक के कार्यों या प्रयासों पर आधारित भुगतान के समरूप नहीं होता।

यह वस्तुतः असमानात्मक सूचना (asymmetric information) की समस्या है : श्रमिक किस स्तर तक कार्य करता है, इसका वह चयन कर लेता है परंतु स्वामी उसको पूर्ण रूप से नहीं देख सकता। स्वामी कृषि में हुए उत्पादन को देखकर उसके कार्यों का अनुमान लगता है। श्रमिक को प्रेरणा देने के लिए आदर्श स्कीम (Incentive scheme) की रचना इस समस्या को व्यक्त करता है।

प्रेरणादायक स्कीमों में यदि श्रमिक के कार्यों को पूर्ण रूप से उत्पादन के साथ नहीं जोड़ा जाता है तो क्या गलती हो सकती है? इसकी व्याख्या निम्न प्रकार से की जा सकती है:

1. **लगान (Rent):** यदि स्वामी श्रमिक को तकनीकी (Technology) किराये या लगान पर दे देता है तो श्रमिक भूमि पर लगान देने के बाद सारे उत्पादन को ले लेगा अथात् श्रमिक को सारा जोखिम अपने ऊपर लेना होगा। यदि श्रमिक जोखिम से अधिक बचने वाला है तो स्वामी कम कार्य कुशल कहा जाएगा क्योंकि स्वामी स्वयं जोखिम लेने के लिए

तैयार नहीं होता। सामान्यतः श्रमिक शेष लाभ के कुछ हिस्सों को छोड़ने को तैयार होगा ताकि वह कम जोखिमपूर्ण आय प्रवाह को प्राप्त कर सके।

2. **मजदूरी श्रम (Wage Labour):** मजदूरी श्रम के साथ यह समस्या है कि इसमें श्रम उत्पादन की मात्रा कितनी लगाई है? इसको जांचने या देखने की आवश्यकता होती है। मजदूरी उत्पादन में किये गये कार्यों या प्रयासों पर निर्भर करनी होती है कि उत्पादन प्रक्रिया में खर्च किये गये घण्टों पर। यदि मालिक श्रम उपादान की मात्रा को नहीं जाँच पाता तो कार्य के अनुसार दी जाने वाली मजदूरी सम्बन्धी प्रेरणात्मक स्कीम (Incentive Scheme) को लागू करना एक असम्भव कार्य होगा।

3. **सांझे की खेती (Share Cropping):** यह दोनों अर्थात् श्रमिक तथा मालिक के लिए खुशनुमा माध्यम (medium) है। श्रमिक को किया गया भुगतान हुए उत्पादन पर निर्भर करता है परंतु श्रमिक तथा मालिक दोनों उत्पादन में होने वाले उतार–चढ़ाव के जोखिम को वहन करते हैं। इससे श्रमिक को उत्पादन बढ़ाने की प्रेरणा (Incentive to produce output) मिलती है तथा उसको सारा जोखिम भी वहन नहीं करना पड़ता।

प्रेरणादायक तरीकों के मूल्यांकन करने में असामान्यत्मक सूचना काफी परिवर्तन कर देती है। यदि मालिक श्रमिक के कार्यों की देख–रेख नहीं कर सकता तो मजदूरी श्रम अपनाना अव्यवहारिक (Infeasible) है। श्रमिक को भूमि लगान पर देने की स्कीम उसको (श्रमिक) बहुत अधिक जोखिम में डाल देती है। सांझे की खेती इन दोनों अन्तिम छोरों (Two extremes) के मध्य एक समझौता है क्योंकि यह श्रमिक को उत्पादन करने के लिए कुछ प्रेरणा देती है तथा उसको सारा जोखिम भी नहीं उठाना पड़ता।

UNIT-III

अध्याय-26

प्रतियोगी मार्किट में साधन-कीमत निर्धारण का मॉडल (Determination of Factor prices in Competitive Market)

पूर्ण प्रतियोगिता में साधन (श्रम) के प्रयोग सम्बन्धी फर्म का सन्तुलन (Factor Employment Equilibrium of a Firm in Perfectly Competitive Factor Market)

हम यह मान लेते हैं कि न केवल श्रम मार्किट में अपितु श्रम द्वारा उत्पादित पदार्थ की मार्किट में भी पूर्ण प्रतियोगिता प्रचलित है। जब पदार्थ मार्किट में पूर्ण प्रतियोगिता प्रचलित होती है तो कोई भी व्यक्ति पदार्थ की कीमत को प्रभावित नहीं कर सकता और इसे दिया हुआ मान लेते हैं। परिणामस्वरूप पूर्ण प्रतियोगिता में AR तथा MR बराबर होते हैं। इसके साथ–साथ पूर्ण प्रतियोगिता मे MRP तथा VMP भी समान होते है क्योंकि

$$MRP = MR \times MP$$

$$VMP = AR \times MP \qquad \text{where } MR = AR$$

श्रम के रोजगार अथवा प्रयोग के सम्बन्ध मे फर्म के सन्तुलन की व्याख्या करने से पहले यह उल्लेख करना आवश्यक है कि श्रम मार्किट में पूर्ण प्रतियोगिता तब पाई जाती है जब निम्न शर्तें पूरी होती हो:

1. श्रमिक बिल्कुल एक समान हो।
2. क्रेताओं तथा विक्रेताओं को वर्तमान साधन की कीमत के सम्बन्ध मे पूर्ण जानकारी प्राप्त हो।
3. साधन के क्रेता तथा विक्रेता बड़ी संख्या में हों।
4. साधन के क्रेता तथा विक्रेता दोनों मार्किट मे प्रवेश करने तथा उससे बाहर जाने में स्वतंत्र हों।

श्रम मार्किट में पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कार्यशील फर्म के लिए श्रम का पूर्ति वक्र प्रचलित मजदूरी की दर पर पूर्णतः लोचदार होगा।

एक फर्म का उद्देश्य लाभ अधिकतम करने का है तो वह अतिरिक्त श्रमिकों को काम पर लगाती जाएगी जब तक कि सीमान्त आय उत्पादन (MRP) मजदूरी की दर से अधिक है। उसके लाभ वहां अधिकतम होंगे और वह साधनों के प्रयोग की उस मात्रा पर सन्तुलन में होगी जहां साधन सीमान्त आय उत्पादन (MRP) साधन की सीमान्त साधन लागत (MFC) के समान होगा। अर्थात्

$$MRP = MFC$$

पूर्ण प्रतियोगित की स्थिति मे साधन का सीमान्त आय उत्पादन (MRP) उसके सीमान्त उत्पादन के मूल्य (VMP) के समान होता है। इसके अतिरिक्त श्रम मार्किट मे पूर्ण प्रतियोगिता को अन्तर्गत श्रम की सीमान्त लागत (MFC) मजदूरी दर (Wage Rate) के समान होती है। अतः श्रम के प्रयोग की सन्तुलन मात्रा पर श्रम की सीमान्त उत्पादन का मूल्य = मजदूरी की दर अथवा

$$VMP = \text{Wage Rate } (W)$$

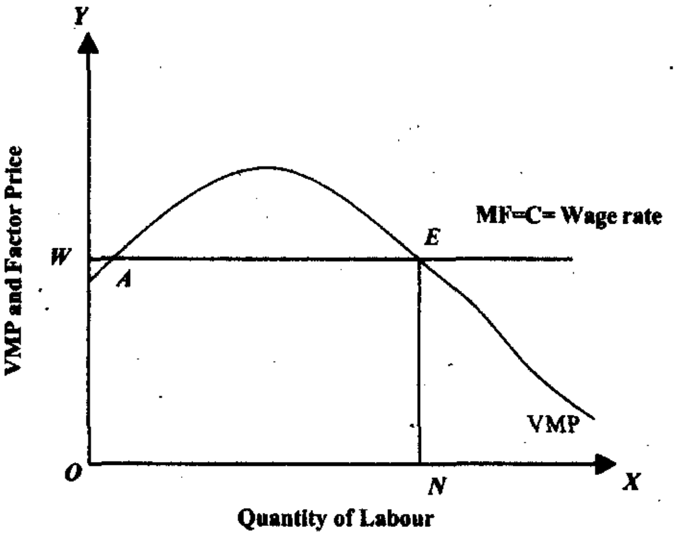

रेखाचित्र से ज्ञात होता है कि श्रम की सीमान्त साधन लागत (MFC तथा श्रम के सीमान्त उत्पादन के मूल्य (VMP) का वक्र A बिन्दु पर काट रहे हैं किन्तु बिन्दु A पर फर्म का सन्तुलन नहीं होगा क्योंकि बिन्दु A के पश्चात् श्रम की अधिक मात्रा प्रयोग करने पर उसके सीमान्त उत्पादन का मूल्य (VMP) मज दूरी की दर से अधिक है और यह फर्म के लिए लाभकारी होगा। किन्तु बिन्दु E पर श्रम के सीमान्त उत्पादन के मूल्य (VMP) का वक्र सीमान्त साधन लागत (MFC) से कम हो जाता है।

परिणामस्वरूप बिन्दु E अथवा श्रम की मात्रा ON मात्रा से अधिक श्रम का प्रयोग फर्म के लिए लाभकारी नही होगा। अतः पूर्णप्रतियोगिता की अवस्था मे फर्म के सन्तुलन के सम्बन्ध में निम्न शर्तों की पूर्ति होना आवश्यक हैं:

(i) साधन का सीमान्त उत्पादन मूल्य (VMP) मजदूरी की दर (Wage Rate)

(ii) VMP (अथवा MRP) वक्र सीमान्त साधन लागत (MFC) वक्र को ऊपर से काटे।

परिवर्तनशील साधन होने की स्थिति में मांग वक्र (Demand Curve for Variable Factor)

श्रम मार्किट मे पूर्ण प्रतियोगिता की दशा में नियोक्ता (Employer) द्वारा किसी साधन की मांग उस साधन की सीमान्त आय उत्पादन पर निर्भर करती है। हम पहले पढ़–चुके हैं कि फर्म मजदूरी की दर के अनुसार ही श्रम की मात्रा प्रयोग करेगी।

रेखाचित्र में साधन की कीमत OW है तो सन्तुलन E बिन्दु पर होता है तथा साधन की ON मात्रा की मांग होती है। उसी प्रकार OW 'मजदूरी पर ON' और OW "पर ON" मात्रा की मांग है। अतः MRP वक्र इस फर्म द्वारा उपयोग हो रहे साधन का मांग–वक्र है।

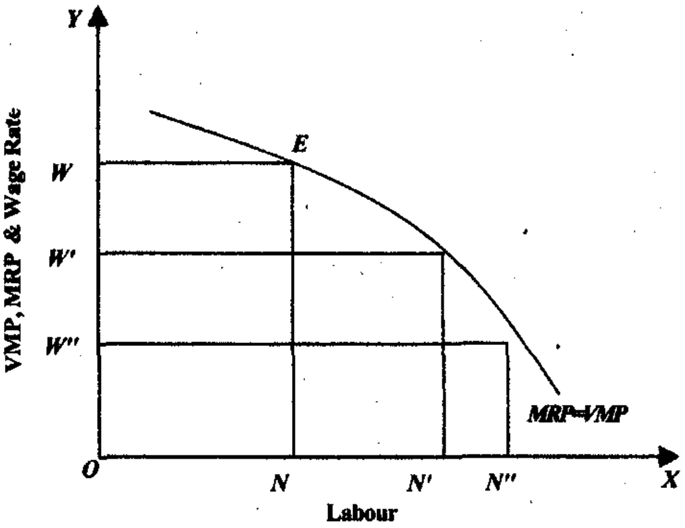

"फर्म द्वारा श्रम का मांग वक्र"

साधनों की मांग के निर्धारक तत्व (Factors Determining Demand for Factors)

अब हम उन कारणों की व्याख्या करेंगे जो साधन की मांग में परिवर्तन करते हैं। अन्य शब्दों में, हमें उन तत्वों की विवेचना करनी है जो सम्पूर्ण VMP वक्र या साधन की मांग वक्र में परिवर्तन कर देते हैं। साधन मांग के इन मूल निर्धारक तत्वों की व्याख्या नीचे की गई है जिनमे परिवर्तन साधन मांग वक्र में विवर्तन कर देंगे।

1. **पदार्थ की मांग (Demand for the Product):** किसी साधन की मांग उस पदार्थ की मांग से व्युत्पादित की जाती है जिसके उत्पादन में वह सहायता करता हैं जैसाकि पहले ही व्याख्या की जा चुकी है VMP वक्र साधन के लिए फर्म का मांग वक्र हैं अतः जब पदार्थ की मांग में वृद्धि के परिणामस्वरूप कीमत बढ़ती है तो सीमान्त भौतिक उत्पादन तथा कीमत के गुणनफल से प्राप्त सम्पूर्ण VMP वक्र बाहर दाहिनी ओर विवर्तित हो जाएगा।

2. **साधन की सीमान्त भौतिक उत्पादकता (Marginal Physical Productivity of a Factor):** एक साधन की मांग के अन्य निर्धारक तत्व उसकी उत्पादकता होती है। पदार्थ की कीमत में परिवर्तन के समान सीमान्त भौतिक उत्पादकता

में परिवर्तन भी सम्पूर्ण MPP या साधन मांग वक्र में विवर्तन कर देगा। साधन की सीमान्त भौतिक उत्पादकता मे वृद्धि करने के केवल तीन प्रमुख तरीके होते हैं। प्रथम साधन की गुणवता में परिवर्तन किया जा सकता है द्वितीय किसी साधन की सीमान्त भौतिक उत्पादकता इसके साथ उपयोग किए गए स्थिर सहयोगी साधनों की मात्रा पर निर्भर करता है। तृतीय तकनालॉजी में प्रगति द्वारा सीमान्त भौतिक उत्पादकता में वृद्धि हो जाती है।

3. **अन्य साधनों की कीमतें (Prices of other Factors):** जिस प्रकार एक वस्तु की कीमत अन्य सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतों पर निर्भर करती है उसी प्रकार साधन की मांग भी अन्य सम्बन्धित साधनों की कीमतों पर निर्भर करती है। किन्तु समबन्धित साधनों की कीमत में परिवर्तनों का किसी दिए गए साधन की मांग पर प्रभाव अलग–अलग डालेगा जो इस बात पर निर्भर करेगा कि ये सम्बन्धित साधन दिए हुए साधन के स्थानापना अथवा पूरक है।

श्रम की पूर्ति
(Supply of Labour)

यह जानना बहुत आवश्यक है कि विभिन्न मजदूरी दरों पर एक श्रमिक कितने घण्टे काम करने के लिए तैयार होगा। अन्य शब्दों में, विभिन्न मौद्रिक मजदूरी दरों पर एक श्रमिक की श्रम–क्रिया में मजदूरी दरों में परिवर्तन होने पर परिवर्तन होगा। एक व्यक्तिगत श्रमिक की श्रम की पूर्ति के सम्बन्ध में सामान्य सिद्धान्त का प्रतिपादन करने के लिए यह मान लेंगे कि एक श्रमिक सप्ताह में काम के घण्टों में परिवर्तन करने के लिए पूर्णतया स्वतन्त्र है।

मजदूरी निवेद वक्र तथा श्रम का पूर्ति वक्र
(Wage offer Curve and Supply Curve of Labur)

मजदूरी दर में परिवर्तन से श्रम क्रिया या व्यक्ति श्रमिक द्वारा श्रम पूर्ति का वक्र किस प्रकार व्युत्पादित किया जाता है? रेखाचित्र (a) को देखिए। प्रारम्भ में, मजदूरी रेखा AW है और इस मजदूरी मजदूरी रेखा की ढ़ाल यह बताती है कि प्रति घण्टे मजदूरी दर कितनी है। मजदूरी रेखा AW होने पर व्यक्ति अनधिमान वक्र I1 के बिन्दु Q पर सन्तुलन में है और वह सप्ताह में AL_1 घण्टे काम कर रहा है। मान लो मजदूरी दर में रेखा AW2 होने पर व्यक्ति अनधिमान वक्र I_2 के R बिन्दु पर सन्तुलन में है और अब वह AL_2 घण्टे प्रति सप्ताह काम कर रहा है जो पहले से अधिक है। यदि मजदूरी पुनः बढ़ जाती है और नई मजदूरी रेखा AW_3 है तो व्यक्ति अनधिमान वक्र I_3 के S बिन्दु पर सन्तुलन में है और Al_3 घण्टे काम करता है जो AL_1 और AL_2 से अधिक है, यदि Q, R, S, तथा T बिन्दुओं को मिला दिया जाए तो जो वक्र बनता है। उसको मजदूरी निवेद वक्र (Wage offer Curve) कहते हैं।

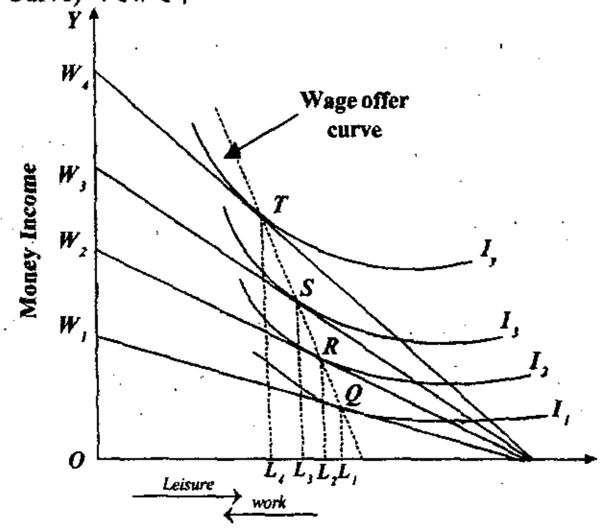

(a) Wage offer curve

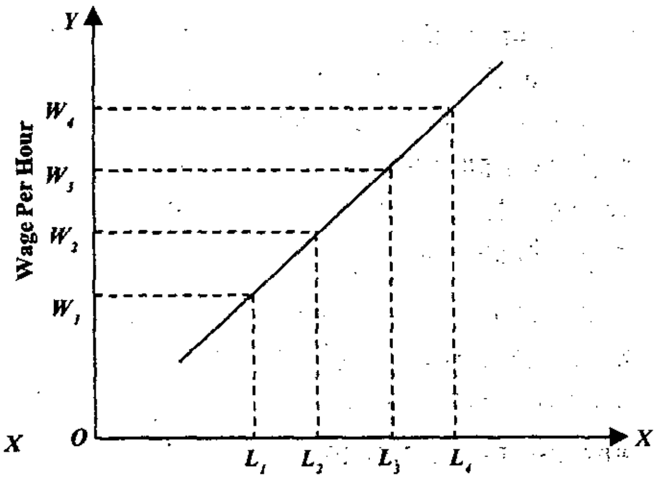

(b) Upward sloping supply curve of labour

श्रम के पूर्ति वक्र का व्युत्पादन

यह वक्र बताता है कि विभिन्न मजदूरी दरों पर व्यक्ति कितने घण्टे काम करने को तैयार होगा। रेखाचित्र (a) में श्रम के पूर्ति वक्र को खीचा गया है। मान लो AW_1 मजदूरी रेखा W_1 के बराबर मजदूरी दर दर्शाती है, AW_2 मजदूरी रेखा W_2 के बराबर

मजदूरी दर तथा इसी प्रकार AW_3 तथा AW_4 मजदूरी रेखाएं क्रमशः W_3, W_4 के बराबर मजदूरी को दर्शाती है। इसके परिणामस्वरूप रेखाचित्र (b) में श्रम का पूर्ति वक्र ऊपर की ओर उठता है। रेखाचित्र (a) में प्रदर्शित अनधिमान चित्र यह बताता है कि मजदूरी दर में वृद्धि का प्रतिस्थापन प्रभाव इसके आय प्रभाव से शक्तिशाली है जिसके परिणामस्वरूप मजदूरी दर में वृद्धि होने पर श्रम कार्य की पूर्ति में वृद्धि हो जाती है।

पूर्ण प्रतियोगिता की दशा मे मजदूरी का निर्धारण
(Wage Determination under Perfect Competition)

जैसे किसी साधन की कीमत मांग और पूर्ति की शक्तियों के सन्तुलन द्वारा निर्धारित होती है, उसी प्रकार इन्हीं दो शक्तियों द्वारा मजदूरी का निर्धारण होता है। अब हम श्रम की मांग और पूर्ति की शक्तियों की व्याख्या करेंगे।

श्रम की मांग
(Demand for Labour)

जिस प्रकार किसी दूसरे साधन की मांग उस साधन द्वारा बनाए गए पदार्थों की मांग पर निर्भर करता है, इसी प्रकार श्रम की मांग भी इन पदार्थों की मांग में निहित है जो ये श्रमिक उत्पादित करते हैं। श्रम की मांग, दूसरे साधनों, जो इसके साथ मिलकर पदार्थ उत्पादित करते हैं, की कीमतों पर निर्भर करते है, यदि कपड़ा बुनने वाली मशीनें सस्ती हो जाती है तो नियोक्ता श्रम की अपेक्षा मशीनें अधिक प्रयोग करेंगे और श्रम की मांग घट जाएगी इसके विपरीत यदि मशीनों की अपेक्षा श्रम सस्ता हो जाता है, तो श्रम की मांग बढ़ जाएगी।

श्रम की मांग प्रयोग की गई तकनॉलोजी पर निर्भर रहती है। कई उत्पादन क्रियाओं में यन्त्र और श्रम एक निश्चित अनुपात में प्रयुक्त होते है तो जितनी खड्डियाँ लगाई जाएगी उतने ही श्रमिकों की मांग होगी। यदि तकनीकी उन्नति हो जाए जैसे स्वचालित खड्डियां कपड़ा बुनने में प्रयुक्त होने लगें और एक श्रमिक दो या तीन खड्डियों को चला सके, तो उस अवस्था में श्रम की मांग घट जाएगी। परन्तु वास्तव में इन सब बातों, अर्थात् तकनीकी तथा पदार्थों की कीमतें, अब साधनों की कीमतें आदि देखकर उद्यमकर्ता श्रम को एक मूलभूत तथ्य के अनुसार काम पर लगाता है। यह आधारभूत तथ्य 'सीमान्त आय उत्पादकता' का है। अतः श्रम की मांग सीमान्त आय उत्पादकता पर निर्भर करती है।

श्रम की पूर्ति
(Supply of Labour)

पहले तो श्रम की पूर्ति का अर्थ समझना आवश्यक है। किसी पदार्थ की पूर्ति का अर्थ है कि विभिन्न कीमतों पर विक्रेता पदार्थ की कितनी–कितनी मात्रा बेचने को तैयार है, इसी प्रकार श्रम की पूर्ति है। इसका अर्थ है कि विभिन्न मजदूरी की दरों पर कितने श्रमिक अपने श्रम को बेचने को तैयार हैं। श्रम की पूर्ति के तीन भाग हैं: (क) किसी एक फर्म के लिए श्रम की पूर्ति (ख) किसी एक उद्योग के लिए श्रम की पूर्ति (ग) समस्त अर्थव्यवस्था के लिए श्रम की पूर्ति। श्रम मार्किट में पूर्ण प्रतियोगिता में किसी एक फर्म के लिए श्रम का पूर्ति वक्र प्रचलित मजदूरी की दर पर पूर्णतया मूल्य सापेक्ष होता है परन्तु ऐसा केवल श्रम मार्किट में पूर्ण प्रतियोगिता की दशा में होता हैं।

परन्तु श्रम की पूर्ति सम्पूर्ण उद्योग के लिए पूर्णतया मूल्य सापेक्ष नहीं होती। यदि कोई एक उद्योग अधिक श्रम की मात्रा प्राप्त करना चाहता है तो उसे मजदूरी की दर को बढ़ाना पड़ेगा क्योंकि वह अधिक मजदूरी देकर श्रमिकों को दूसरे उद्योगों से अपनी ओर खींच सकता है। इसलिए एक उद्योग के लिए श्रम की पूर्ति का वक्र बाएं से दाएं ऊपर को चढ़ता है।

मांग और पूर्ति में सन्तुलन
(Equilibrium between Demand and Supply)

ऊपर हमने मांग और पूर्ति के पक्षों की अच्छी प्रकार जानकारी प्राप्त कर ली है। अब हम देखेंगे कि श्रम की मांग और पूर्ति की शक्तियों के सन्तुलन द्वारा मजदूरी की दर किस प्रकार निर्धारित होती है। यहां पर किसी एक उद्योग अथवा किसी विशेष व्यवसाय के लिए श्रम की पूर्ति का वक्र ही लिया गया है।

क्योंकि केवल इसी की हमें यहां पर आवश्यकता है। रेखाचित्र मे SS एक उद्योग के लिए श्रम का पूर्ति वक्र है जो बाएं से दायीं ओर ऊपर को चढ़ता है तथा DD आरम्भिक मांग वक्र है। DD मांग वक्र और SS पूर्ति वक्र बिन्दु E पर या OW मजदूरी की दर पर एक दूसरे को काटते हैं।

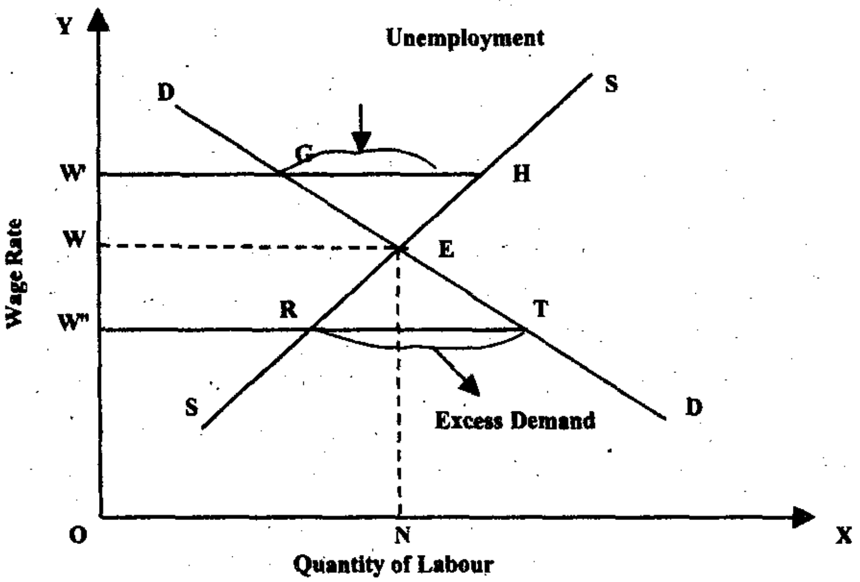

'श्रम मार्किट में मजदूरी दर का निर्धारण'

मजदूरी की दर OW से अधिक OW' स्तर पर नहीं हो सकती क्योंकि OW' मजदूरी की दर पर श्रम की पूर्ति की मात्रा बढ़कर W'H हो गई है तथा उसकी मांग मात्रा घटाकर W'G पूर्ति की मात्रा W'H श्रम की मांग मात्रा से अधिक है। परिणामस्वरूप बेरोजगार व्यक्तियों में रोजगार पाने के लिए प्रतियोगिता के कारण मजदूरी की दर घट जाएगी और पुनः OW दर पहुंच जाएगी। इसके विपरीत यदि मजदूरी की दर सन्तुलन स्तर OW से कम है, यदि यह OW" है तो श्रम की मांग मात्रा बढ़कर W"T हो जाएगी तथा पूर्ति घटकर W"R परिणामस्वरूप मजदूरी की दर OW" पर श्रम के लिए RT के समान अतिरिक्त मांग उत्पन्न हो जाएगी। कम मजदूरी दर पर अतिरिक्त मांग के कारण मजदूरी की दर बढ़कर पुनः OW सन्तुलन स्तर पर पहुंच जाएगी।

यद्यपि मजदूरी की दर श्रम के लिए मांग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है, यह श्रम के सीमान्त उत्पादन के मूल्य के बराबर होगी। अतःएव श्रम के मांग व पूर्ति वक्र जिस श्रम की मात्रा पर परस्पर काटते है उस मात्रा पर श्रम के सीमान्त उत्पादन क मूल्य (VMP) के समान ही सन्तुलित मजदूरी की दर निर्धारित होगी।

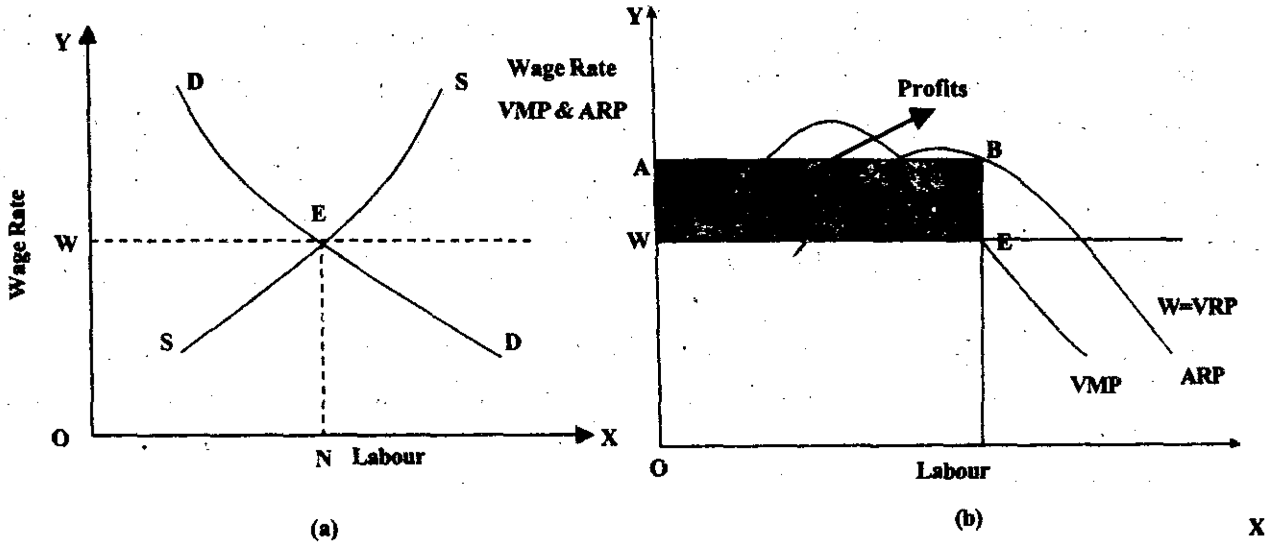

(साधन की कीमत (श्रम की मजदूरी) उसकी मांग और पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है और यह उसके सीमान्त उत्पादन के मूल्य के समान होती है।)

रेखाचित्र से पता चलता है कि श्रम की मांग DD तथा उसकी पूर्ति SS द्वारा सन्तुलन मजदूरी की दर OW तथा सन्तुलन रोजगार की मात्रा ON निर्धारित होती हैं। जब प्रचलित मजदूरी की दर OW है, तो किसी एक फर्म के लिए श्रम का पूर्ति वक्र OW स्तर पर पूर्णतया लोचदार होगा और उसकी X अक्ष क समानान्तर रेखा बनेगी। फर्म को अधिकतम लाभ उतने श्रमिक लगाने से होगा जहां पर श्रम की साधन लागत (MFC) और सीमान्त उत्पादन का मूल्य (VMP) समान है। OW मजदूरी की दर पर बिन्दु F फर्म का सन्तुलन बिनदू है और इस सन्तुलन की अवस्था में फर्म OM श्रम की मात्रा अपने यहां नियुक्त करेगी। अतः सन्तुलन मजदूरी की दर OW श्रम की सीमान्त उत्पादन के मूल्य के बराबर है। उद्योग की सभी फर्में ऐसा ही करेगी।

इसके अतिरिक्त सन्तुलन की स्थिति में श्रम की औसत आय उत्पादकता MB है जो औसत मजदूरी MF (OW) से अधिक है। इसलिए रेखाचित्र में दिखाई गई फर्म OW मजदूरी दर पर असामान्य लाभ अर्जित कर रही है। फर्म द्वारा अर्जित कुल असमान्य लाभ ABFW के बराबर हैं। क्योंकि सभी फर्में एक जैसी हैं। इसलिए OW मजदूरी की दर पर उद्योग में सभी फर्में असामान्य लाभ अर्जित कर रही होंगी। इस असामान्य लाभों को देखकर बाहर से और फर्में इसमें प्रवेश करने लगेगी जिससे श्रम की मांग अधिक हो जाएगी और मजदूरी की दर बढ़ जाएगी। इसका परिणाम यह होगा कि असामान्य लाभ घट जाएंगे। बाहर से फर्में तब तक आती रहेगी जब तक की असामान्य लाभ समाप्त नहीं हो जाते।

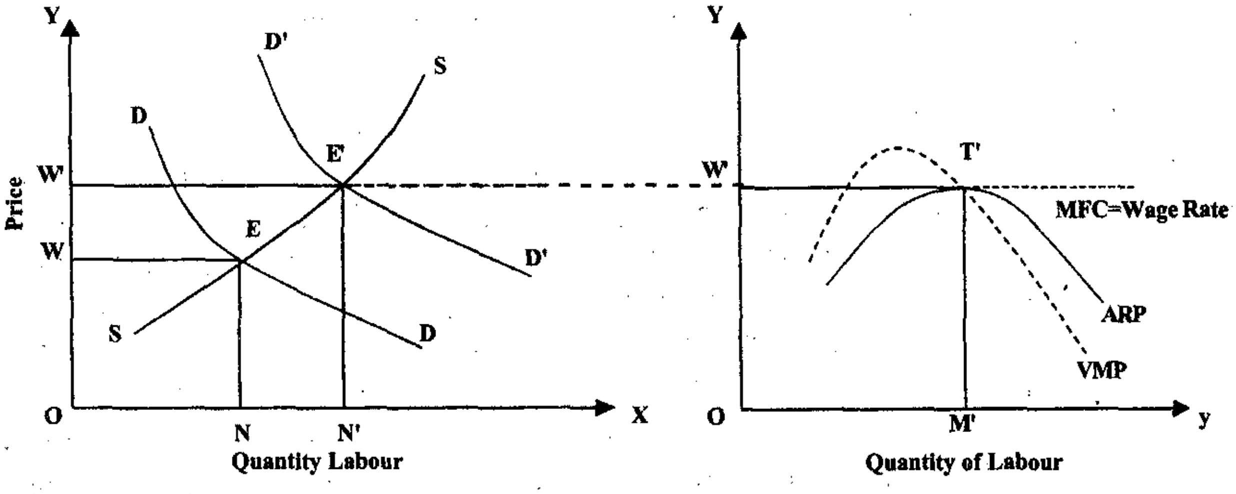

(a) (b)

(श्रम मार्किट में पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत दीर्घकाल में श्रम की मजदूरी तथा रोजगार का निर्धारण)

रेखाचित्र में नया मांग वक्र D'D' है जो पहले मांग वक्र से ऊपर की तरफ है और उस समय की श्रमिकों की मांग को व्यक्त करता है। यह नया मांग वक्र D'D' पूर्ति वक्र SS को E' बिन्दु पर काटता है और OW मजदूरी दर निर्धारित होती है। रेखाचित्र (a) से स्पष्ट है कि OW' मजदूरी की दर पर फर्म का सन्तुलन T' बिन्दु पर होता है और इस दशा में औसत मजदूरी और औसत आय उत्पादकता परस्पर समान है। रेखाचित्र (b) से स्पष्ट है कि OW' मजदूरी की दर पर फर्म के सन्तुलन की अवस्था में मजदूरी OW' सीमान्त आय उतपादकता (MRP) के समान तो है परन्तु साथ ही औसत आय उत्पादकता (ARP) के भी समान है।

अतएवः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में दीर्घकाल में मजदूरी की दर श्रम की सीमान्त आय उत्पादन अथवा उत्पादकता तथा औसत आय उत्पादन अथवा उत्पादकता दोनों के बराबर होती है। दीर्घकाल में श्रम मार्किट में पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत :

मजदूरी की दर = MRP or VMP' = ARP

अध्याय-27

वस्तु तथा साधन बाजार में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता तथा द्विपक्षीय एकाधिकार के अन्तर्गत साधन कीमत निर्धारण

(Determination of Factor Price under Monopolitic Power and Bileteral Monopoly in Product and Factor Market)

पूर्व अध्याय में हमने व्याख्या की है कि जब वस्तु बाजार तथा साधन बाजार दोनों में पूर्ण प्रतियोगिता होती है तो उत्पादन के साधन की कीमत किस प्रकार निर्धारित होती है। इस अध्याय में वस्तु बाजार तथा साधन बाजारों में अपूर्ण प्रतियोगिता होने पर हम साधन की कीमत निर्धारण की व्याख्या करेंगे। पिछले अध्याय की तरह ही हम श्रम तथा उसकी मजदूरी दर के निर्धारण का उदाहरण लेकर पूर्ण रूप से प्रतियोगी बाजारों में साधन कीमतों के निर्धारण की व्याख्या करेंगे। अपूर्ण रूप से प्रतियोगी मार्केट में श्रम के मजदूरी दर निर्धारण की व्याख्या उस स्थिति में करेंगें जब वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता तथा साधन (श्रम) बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है।

वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता तथा साधन बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में मजदूरी निर्धारण

(Wage Determination in case of imperfect competition in the product market and perfect competition in labour market):

क्योंकि यहाँ श्रम बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता के अस्तित्व को माना गया है अत: मजदूरी दर श्रम की माँग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित होगी। अब उत्पादन के साधन की माँग उसकी सीमान्त उत्पादन के मूल्य (VMP) द्वारा नहीं बल्कि सीमान्त आय उत्पादन (MRP) के बराबर किन्तु साधन के सीमान्त उत्पादन के मूल्य (VMP) की अपेक्षा कम होगी। श्रम बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता मानते हुए वस्तु बाजार एकाधिकार या अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं के अन्तर्गत, श्रम को उसके सीमान्त उत्पादन के मूल्य की अपेक्षा कम मजदूरी दर प्राप्त होगी।

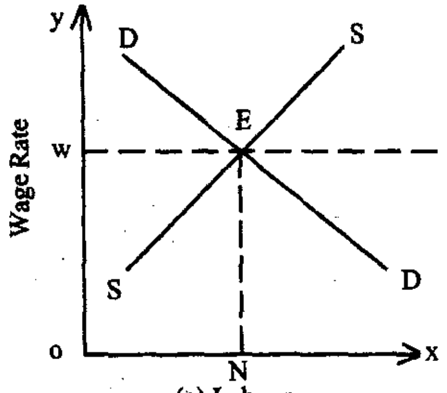

(a) Labour

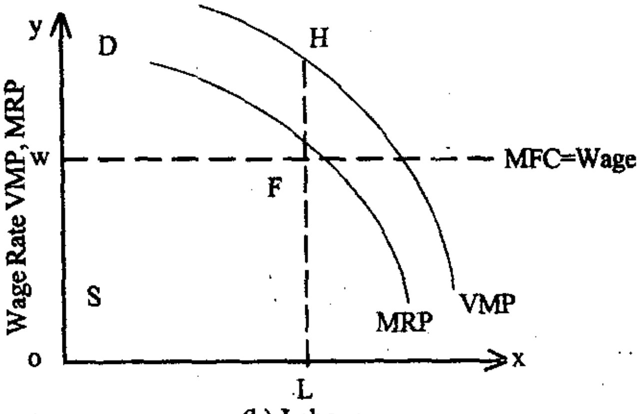

(b) Labour

श्रम बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता तथा वस्तु बाजार मे अपूर्ण प्रतियोगिता की दशा में मजदूरी का निर्धारण रेखाचित्र (a) से देखा जा सकता है कि श्रम के मांग तथा पूर्ति वक्र OW के बराबर मजदूरी दर निर्धारित करते हैं। रेखाचित्र (b) जब वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है तो फर्म की सांझा स्थिति प्रदर्शित करता है। जब वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है तो फर्म की साम्य स्थिति प्रदर्शित करता है जब वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता होती है तो चूंकि श्रम का VMP उसके MRP की अपेक्षा अधिक होता है अतः VMP वक्र MRP वक्र के ऊपर स्थित है। सुविधा के लिए हमने MRP तथा VMP के केवल नीचे की ओर गिरते हुए भाग को प्रदर्शित किया है। फर्म F बिन्दु पर साम्य में होगी जहां पर मजदूरी दर को श्रम के सीमान्त आय उत्पादन (MRP) के बराबर कर रही है। एक फर्म द्वारा साधन का साम्य रोजगार OL है। चित्र में श्रम की मजदूरी दर OW, सीमान्त आय उत्पादन FL के बराबर है किन्तु सीमान्त उत्पादन के मूल्य HL की अपेक्षा कम है। अतः श्रम को उसके सीमान्त उत्पादन के मूल्य की अपेक्षा HF कम प्राप्त होता है।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि जब वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है तो पहले किया गया साम्य का विस्तारपूर्वक विश्लेषण भी वर्तमान स्थिति में सत्य सिद्ध होगा। दीर्घकाल में फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होंगे तथा साम्य उस बिन्दु पर होगा जहाँ मजदूरी दर MRP = ARP.

किन्तु चाहे अल्पकालीन साम्य हो या दीर्घकालीन वस्तु बाजार में एकाधिकार या अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत श्रम के सीमान्त उत्पादन के मूल्य (VMP) की अपेक्षा मजदूरी दर कम होगी यह निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है:

जब वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता (एकाधिकार) तथा श्रम बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता होती है।

$$W = MRP_L$$

या $$W = MR.MPP_L \quad .....(i)$$

अब AR, MR तथा मांग की लोच के बीच सम्बन्ध से यह स्मरणीय है कि

$$MR = AR\left(1-\frac{1}{e}\right)$$

MR के मूल्य को (i) में रखने पर

$$W = AR\left(1-\frac{1}{e}\right)MPP_L \text{ --- } (ii)$$

$\therefore$ AR = कीमत (P) अतः समीकरण (ii) को पुनः रखने पर

$$W = \left(1-\frac{1}{e}\right)P.MPP_L$$

क्योंकि $VMP_L = P.MPP_L$

अतः $W = \left(1-\frac{1}{e}\right)VMP_L \text{ --- } (iii)$

जब वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता के समान एक फर्म के वस्तु की माँग की मूल्य लोच अनन्त (infinite) होती है, $\frac{1}{|e|} = 0$ तथा

$\left(1-\frac{1}{|e|}\right) = 1$ तो

$MR = P\left(1-\frac{1}{e}\right)$ से निष्कर्ष निकलता है कि MR=कीमत या P होती है। इस प्रकार वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत श्रम–रोजगार के विषय में सन्तुलन की दशा में

$$W = \left(1-\frac{1}{e}\right) P.MPP_L$$

$$= 1.P.MPP_L = VMP_L$$

किन्तु जब वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकार होता है माँग की कीमत–लोच इकाई से कम होती है, अतः इसके अन्तर्गत $\left(1-\frac{1}{|e|}\right)$ का मूल्य 1 से कम होगा। अतः पदार्थ बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता की दशा में–

$$W = \left(1-\frac{1}{e}\right) VMP$$

चूंकि वस्तु मार्किट में अपूर्ण प्रतियोगिता अथवा एकाधिकार की दशा में $\left(1-\frac{1}{e}\right)$ एक से कम होता है। अतः इसके अन्तर्गत $W<VMP$.

अतः यह स्पष्ट है कि माँग की कीमत लोच जितनी कम होती है, मजदूरी दर तथा श्रम के सीमान्त उत्पादन के मूल्य के बीच अन्तर उतना ही अधिक होता है।

जोन राबिन्सन के अनुसार एक साधन का शोषण तब होता है। जब उसे सीमान्त उत्पादन के मूल्य (VMP) से कम भुगतान किया जाता है। अतः जोन रोबिन्सन के अनुसार जब वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता प्रचलित होती है, तो श्रम तथा अन्य साधनों (अर्थात् उद्यमी के अतिरिक्त अन्य साधन) का उद्यमी द्वारा शोषण किया जाता है। किन्तु अनेक अर्थशास्त्री विशेषकर ई० एच० चैम्बरलिन श्रम के शोषण की रोबिन्सन की परिभाषा से सहमत नहीं है। चैम्बरलिन के अनुसार एक साधन का शोषण तभी होता है तब उसे उसकी सीमान्त आय उत्पादन (MRP) से कम भुगतान किया जाता है।

श्रम का शोषण
(Exploitation of Labour)

एक श्रमिक तब शोषित होता है जब पदार्थ या वस्तु बाजार में एकाधिकार अथवा अपूर्ण प्रतियोगिता प्रचलित होती है तथा जब श्रम बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता होती है। अनेक अर्थशास्त्रियों विशेषतया चैम्बरलिन द्वारा रोबिन्सन की श्रमिक के शोषण की परिभाषा मान्य नहीं है।

पीगू राबिन्सन का शोषण का विचार
(Pigon-Robinson's Concept of Exploitation)

ए० सी० पीगू का अनुसरण करते हुए श्रीमती जोन राबिन्सन ने श्रमिक के शोषण को श्रमिक के सीमान्त उत्पादन के मूल्य, की अपेक्षा उसे कम भुगतान करने के रूप में परिभाषित किया तथा सीमान्त उत्पादन का मूल्य, सीमान्त भौतिक उत्पादन को पदार्थ की विक्रय–कीमत के गुणनफल द्वारा प्राप्त किया जाता है। जोन रोबिन्सन के अनुसार श्रमिक का शोषण तब होता है जबकि श्रम को खरीदने (श्रम बाजार) में अपूर्ण प्रतियोगिता होती है तथा जब पदार्थ बाजार में अपूर्ण या एकाधिकारिक प्रतियोगिता होती है। इस प्रकार इस परिभाषा के आधार पर श्रमिक का शोषण तब नहीं हो सकता जबकि श्रम तथा पदार्थ बाजार दोनों में पूर्ण प्रतियोगिता होती है। श्रीमती जोन राबिन्सन तथा चैम्बरबिन द्वारा अपूर्ण तथा एकाधिकार प्रतियोगिता सिद्धान्तों के विकास से पूर्व यह विश्वास किया जाता था कि जब श्रम बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता होती है। तो श्रमिक शोषित होगा क्योंकि इस दशा में मजदूरी सीमान्त भौतिक उत्पादन तथा पदार्थ या वस्तु बाजार के सम्बन्ध में अपूर्ण तथा एकाधिकारिक प्रतियोगिता सिद्धान्तों के विकास से यह स्पष्ट हो गया है यदि श्रम बाजार (अर्थात् श्रम खरीदने में) में पूर्ण प्रतियोगिता प्रचलित भी होती

है तो भी श्रमिकों को पदार्थ या वस्तु बाजार में अपूर्णताओं के कारण शोषण होगा।

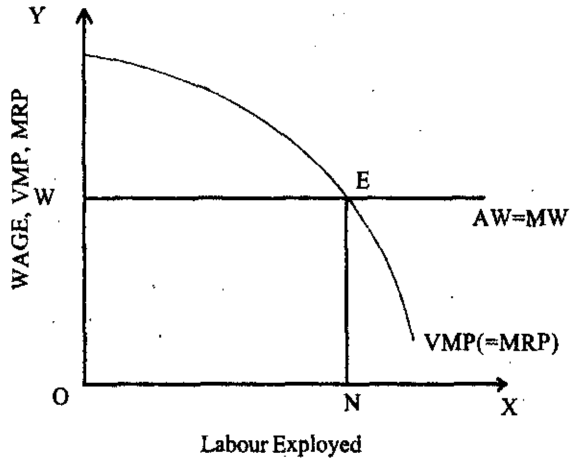

(a) जब श्रम तथा पदार्थ मार्किट में पूर्ण प्रतियोगिता हो तो श्रम का शोषण नहीं होता।

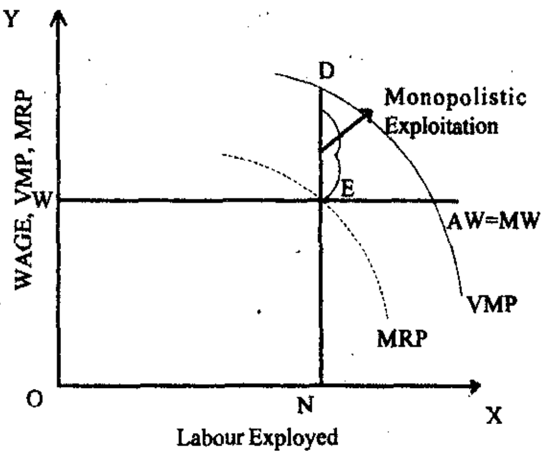

(b) जब पदार्थ की मार्किट में अपूर्ण प्रतियोगिता हो ता श्रम का शोषण होता है।

रेखाचित्र (a) से स्पष्ट होगा कि फर्म श्रमिकों के ON रोजगार पर सन्तुलन में होगी जहाँ पर वह मजदूरी दर को सीमान्त उत्पादन के मूल्य (VMP) के बराबर कर रही है जो सीमान्त आय उत्पादन (MRP) के बराबर है। इस प्रकार श्रम तथा पदार्थ बाजार दोनों में पूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं के अन्तर्गत यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रमिक को उसके सीमान्त उत्पादन के मूल्य के बराबर मजदूरी दर भुगतान की जाती है।

पीगू रोबिन्सन की परिभाषा के आधार पर जब श्रम तथा पदार्थ बाजार दोनों में पूर्ण प्रतियोगिता प्रचलित होती है तो कोई शोषण विद्यमान नहीं होता है।

अब रेखाचित्र (b) पर ध्यान दे जहाँ उस दशा को प्रदर्शित किया गया है जबकि पदार्थ बाजार मे अपूर्ण प्रतियोगिता प्रचलित होती है किन्तु श्रम बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता होती है। रोबिन्सन–पीगू की परिभाषा के आधार पर इस दशा में श्रमिक शोषित होगा। क्योंकि श्रम बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता है अतः औसत तथा सीमान्त मजदूरी वक्र एक दूसरे से मिल जाते हैं तथा प्रचलित मजदूरी दर पर पूर्णतया लोचदार होते हैं। पदार्थ बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता के कारण सीमान्त आय, पदार्थ की कीमत से कम है और इसलिए सीमान्त आय उत्पादन (MRP) सीमान्त उत्पादन के मूल्य (VMP) की अपेक्षा कम है और इसलिए इन दोनों के वक्र एक दूसरे से विचलित हो जाते हैं; MRP वक्र, VMP वक्र के नीचे स्थित होता है। इस परिस्थिति में सन्तुलन में होने के लिए एक फर्म मजदूरी को सीमान्त आय उत्पादन (MRP) के बराबर करेगी।

रेखाचित्र (b) में श्रमिकों की ON नियुक्त की जाती है जहाँ उत्पादन का मूल्य ND है जबकि उसे सीमान्त आय उत्पादन NE(NE=OW) के बराबर मजदूरी भुगतान किया जा रहा है। मजदूरी OW या NE सीमान्त उत्पादन के मूल्य NE=(NE-OW)के बराबर मजदूरी भुगतान किया जा रहा है। मजदूरी OW या NE सीमान्त उत्पादन के मूल्य ND की अपेक्षा कम है अर्थात् सीमान्त उत्पादन के मूल्य की अपेक्षा ED कम मात्रा में भुगतान किया जा रहा है जो रोबिन्सन–पीगू की परिभाषा के आधार पर श्रमिक के शोषण को प्रदर्शित करता है। क्योंकि श्रमिक को भुगतान की गई मजदूरी तथा श्रमिक के सीमान्त उत्पादन के मूल्य का अन्तर पदार्थ बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता (एकाधिकार को सम्मिलित करते हुए) के कारण उत्पन्न हुआ है। अतः इसे श्रीमती जोन राबिन्सन द्वारा एकाधिकारिक शोषण कहा गया है।

सामूहिक सौदाकारी के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण द्विपक्षीय एकाधिकार मॉडल
(Wage Determination under Collective Bargaining: Bilateral Monopoly Model)

श्रम संघ द्वारा एक नियोजक (Exployer) से या सम्पूर्ण उद्योग की स्थिति मे नियोक्ता संघ से सामूहिक सौदाकारी उस स्थिति को प्रदर्शित करती है जिसमें अकेला विक्रेता अकेले क्रेता का सामना करता है। फर्म या उद्योग का श्रम–संघ श्रमिकों के प्रतिनिधि

के रूप में एकमात्र स्वर के रूप में कार्य करता है। अतः श्रम संघ नियोजक को श्रम का विक्रेता हो जाता है। अन्य शब्दों में श्रम संघ को श्रम बेचने का एकाधिकार प्राप्त होता है। दूसरी ओर, नियोक्ता क्रेता एकाधिकारी है या नियोक्ता संघ श्रम का अकेला क्रेता होता है। इस प्रकार सामूहिक सौदाकारी के अन्तर्गत श्रम का अकेला क्रेता श्रम के अकेले विक्रेता का सामना करता है। अतः हमारे सामने द्विपक्षीय एकाधिकार की एक विशिष्ट स्थिति है तथा श्रम संघ अथवा सामूहिक सौदाकरी के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण द्विपक्षीय एकाधिकार के अन्तर्गत कीमत निर्धारण की ही एक विशिष्ट स्थिति है। द्विपक्षीय एकाधिकार का विश्लेषण केवल दो सीमाएँ–संघ द्वारा माँगी जाने वाली उच्चतम सीमा तथा नियोक्ता द्वारा निर्धारित निम्नतम सीमा निर्धारित करता है। इन सीमाओं के बीच मजदूरी निर्धारित होगी। सामूहिक सौदाकारी के अन्तर्गत वास्तविक मजदूरी दर उन सीमाओं के मध्य स्थित होगी। सैद्धान्तिक रूप से ऊपरी तथा निचली सीमा के बीच सामूहिक सौदाकारी के मजदूरी अनिर्धारणीय (Indeterminate) होती है। दो सीमाओं के अन्तर्गत मजदूरी किसी भी स्तर पर निर्धारित की सकती है।

विश्लेषण के प्रारम्भ में जो समस्या उत्पन्न होती है वह श्रम संघ के व्यवहार से सम्बन्धित है। इस सम्बन्ध में मूल प्रश्न यह है कि श्रम संघ क्या आर्थिक या राजनीतिक या राजनीतिक–आर्थिक संस्थाएँ होती है? पुनः यदि श्रम संघों के उद्देश्य विशुद्ध रूप से *आर्थिक है तो वे कौन सी आर्थिक नीति अपनायेंगे या वे किन मात्राओं को अधिकतम करना चाहेंगे। इस प्रकार क्या* श्रम संघ उस मजदूरी की माँग करने का प्रयास करेगा जो उसके सदस्यों की संख्या को अधिकतम करती है? पुनः क्या श्रम संघ अपनी गतिविधि के रोजगार प्रभाव की अपेक्षा करते हुए मजदूरी दर को अधिकतम सम्भव स्तर तक वृद्धि करने का भरसक प्रयास करेगा या वह मजदूरी दर तथा रोजगार के किसी अनुकूलतम संयोग का प्रयास करेगा।

द्विपक्षीय एकाधिकार बाजार का वह रूप है जिसमें एक एकाधिकारी अर्थात् पदार्थ का सेवा का अकेला विक्रेता किसी पदार्थ या सेवा के अकेले क्रेता अर्थात् क्रेता–एकाधिकार को बेचता है। वर्तमान स्थिति में श्रम संघ श्रम का अकेला विक्रेता होता है जबकि क्रेता एकाधिकारी फर्म श्रम की अकेली क्रेता होती है। मजदूरी निर्धारण के द्विपक्षीय एकाधिकारी मॉडल को नीचे दिखाये गये रेखाचित्र से स्पष्ट किया गया है।

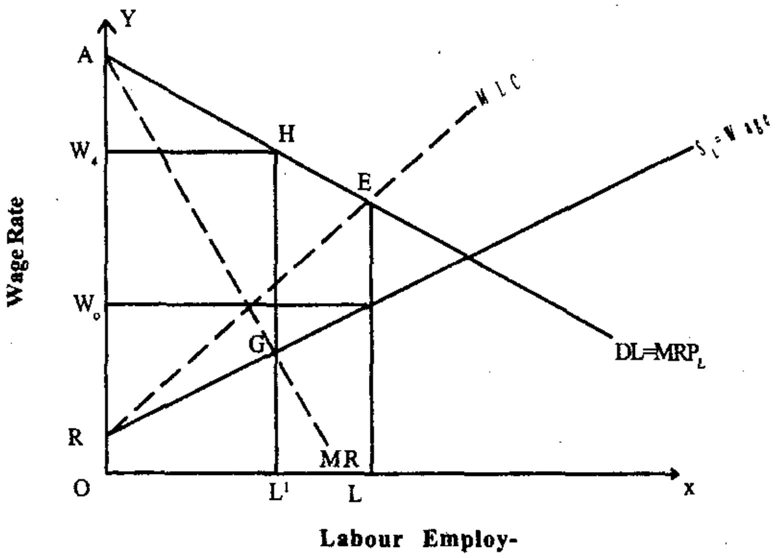

सामूहिक सौदाकारी के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण

रेखाचित्र में श्रम माँग D_L=(=MRP_L) का सीमान्त आय वक्र भी खींचा गया है जो यह प्रदर्शित करता है कि जब अधिक श्रमिकों को रोजगार दिया जाएगा तो श्रम संघ को कितनी अधिक अतिरिक्त आय प्राप्त होगी। क्योंकि श्रम का माँग वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ होता है अतः सीमान्त आय वक्र (MR) इसके नीचे स्थित होता है। अतः यदि क्रेता एकाधिकारी नियोक्ता को स्वतन्त्र छोड़ दिया जाए तो वह W_0 मजदूरी तथा श्रमिकों की OL मात्रा का रोजगार निर्धारित करना चहेगा जिस पर उसका सीमान्त श्रम लागत (MLC), सीमान्त आय उत्पादन (MRP_L) के बराबर होता है। दूसरी ओर यदि श्रम संघ का उद्देश्य विशुद्ध आय या आर्थिक लगान अधिकतम करना है तो वह W_4 के बराबर मजदूरी दर के लिए दबाव डालेगा जिस पर श्रम की OL^1 मात्रा को रोजगार मिलेगा। यह ध्यान देने योग्य है कि आर्थिक लगान या अतिरेक रोजगार के L^1 स्तर पर अधिकतम किया जाता

है। जिस पर श्रम की अवसर लागतों को प्रदर्शित करने वाला पूर्ति वक्र S_L श्रम संघ के सीमान्त आय वक्र का प्रतिच्छेद करता है।

इस प्रकार श्रम संध द्वारा माँगी जाने वाली मजदूरी दर की ऊपरी सीमा W_4 है जबकि W_0 निचली सीमा है। किस मज़दूरी दर तथा रोजगार पर दो पक्षों के बीच समझौता होगा यह उनकी सौदाकारी शक्तियों तथा युद्ध नीतियों पर निर्भर करता है। यदि श्रम संघ हड़ताल की प्रबल धमकी दे सकता है तो वह W_4 के निकट मजदूरी प्राप्त करने मे सफल हो सकता है। दूसरी ओर नियोक्ता तालाबन्दी की घोषणा करने अथवा श्रम संघ के बाहर के श्रमिकों को रोजगार देने की विश्वसनीय धमकी दे सकता है तो वह W_0 के निकट मजदूरी निर्धारित कर सकता है, अतः परिणाम अनिर्धारणीय होता है।

अध्याय-28

वितरण का नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त और तकनीकी प्रगति व आय में अंश

(Neo-Classical Theory of Distribution Technological Progress and Factor Shares)

श्रम व पूँजी के सापेक्ष भाग
(Relative Shares of Labour and Capital)

वितरण का नव–प्रतिष्ठत व्यष्टिपरक सिद्धान्त साधनों की सीमान्त उत्पादकता के आधार पर साधनों के पुरस्कार की व्याख्या करता है। नव प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अनुसार सीमान्त नियम को सभी साधनों पर उन्हें परिवर्तनशील साधन मानते हुए प्रयुक्त किया जा सकता है। इस प्रकार श्रमिक सीमान्त उत्पादन के बराबर वास्तविक मजदूरी दर प्राप्त करता है, पूँजी अपने सीमान्त उत्पादन के बराबर लगान प्राप्त करती है। इस प्रकार राष्ट्रीय में श्रम का निरपेक्ष भाग उत्पादन में प्रयुक्त श्रम की मात्रा (L) और उसके सीमान्त उत्पादन MP or $\frac{\Delta Q}{\Delta L}$ (अर्थात् वास्तविक मजदूरी की दर) द्वारा निर्धारित होता है।

राष्ट्रीय आय में श्रम का सापेक्ष भाग = $\frac{\text{निरपेक्ष भाग}}{\text{कुल राष्ट्रीय उत्पादन}}$ नव–प्रतिष्ठित सिद्धान्त में सभी साधनों की पूर्ति, कीमत से स्वतन्त्र रूप में दी हुई तथा स्थिर मानी जाती है तथा सभी सीमित साधन एक दूसरे के स्थानापन्न समझे जाते हैं। श्रम की दशा को ले जिसकी मात्रा हम L से प्रदर्शित करते हैं। Q उत्पादन की कुल मात्रा है। श्रम का सीमान्त उत्पादन $\frac{\Delta Q}{\Delta L}$ तथा प्रयुक्त श्रम की दी हुइ कुल मात्रा होने पर श्रम का निरपेक्ष भाग–

$$= \frac{\Delta Q}{\Delta L} . L \text{ होगा।}$$

निरपेक्ष भाग को कुल राष्ट्रीय उत्पादन (Q) से विभाजित करने पर हमें श्रम का सापेक्ष भाग प्राप्त हो जाएगा जिस हम λ से प्रदर्शित करते हैं। अतः राष्ट्रीय उत्पादन में श्रम का सापेक्ष भाग–

$$= \frac{\Delta Q}{\Delta L} . \frac{L}{Q}$$

$$= \frac{\Delta Q}{Q} . \frac{L}{\Delta L}$$

$$= \frac{\Delta Q}{Q} \div \frac{\Delta L}{L}$$

$\frac{\Delta Q}{Q} \div \frac{\Delta L}{L}$, श्रम के कारण उत्पादन की लोच को प्रदर्शित करता है।

इसी प्रकार पूँजी का सापेक्ष भाग जिस हम K से प्रदर्शित करते हैं निश्चित किया जा सकता है।

$$K = \frac{\Delta Q}{\Delta K} \cdot \frac{K}{Q} = \frac{\Delta Q}{Q} \cdot \frac{K}{\Delta K}$$

$$= \frac{\Delta Q}{Q} \div \frac{\Delta K}{K}$$

जो पूँजी के कारण कुल उत्पादन की लोच की अभिव्यक्ति है।

श्रम व पूँजी के निरपेक्ष भागों में परिवर्तन
(changes in Absolute Shares of Labour and Capital)

राष्ट्रीय आय में श्रम के निरपेक्ष भाग तथा श्रम की मात्रा में परिवर्तन सीमान्त उतपादन वक्र (MP) की सहायता से अच्छी तरह समझा जा सकता है।

रेखाचित्र से स्पष्ट है कि यदि OL श्रम की दी हुई मात्रा है तो उसका सीमान्त उत्पादन OW होगा। राष्ट्रीय उत्पादन में श्रम का निरपेक्ष भाग OW×OL अर्थात् OLEW आयत का क्षेत्रफल है।

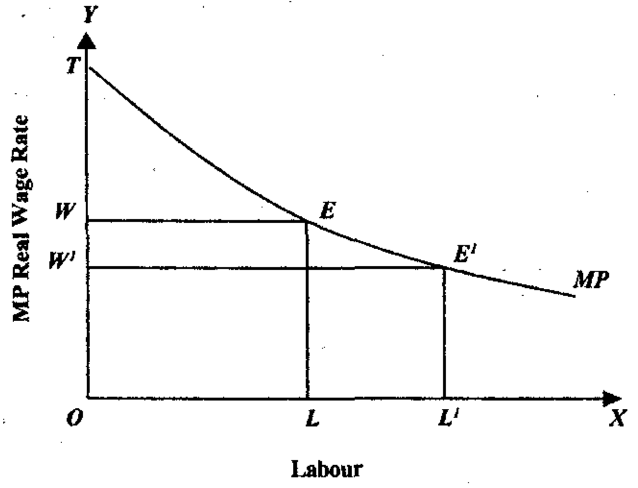

(श्रम के निरपेक्ष भाग में परिवर्तन तथा सीमान्त उत्पादकता वक्र की लोच)

अब माना की श्रम का मात्रा OL' तक बढ़ जाती है तो सीमान्त उत्पादन कम होकर OW' हो जाती है। अब राष्ट्रीय आय में श्रम का निरपेक्ष भाग नये आयत OL' E' W' के क्षेत्रफल के बराबर होगा। अब इसे नये आयात OL' E' W' का क्षेत्रफल पहले के आयात की अपेक्षा अधिक कम या समान होगा। इस बात पर निर्भर करता है कि सीमान्त उत्पादन वक्र की लोच एक से अधिक, एक से कम या एक के बराबर है।

इस प्रकार यदि सीमान्त उत्पादन वक्र की लोच एक से अधिक है तो श्रम की मात्रा में वृद्धि होने से राष्ट्रीय आय में श्रम का भाग पूँजी की अपेक्षा बढ़ेगा और यदि लोच एक से कम है तो श्रम का भाग कम होगा तथा यह एक के बराबर है तो पूँजी की मात्रा को स्थिर रखते हुए श्रम की मात्रा के वृद्धि करने पर श्रम का भाग पूर्ववत् रहेगा।

नव प्रतिष्ठित सिद्धान्त का आलोचनात्मक मूल्यांकन
(Critical evaluation of the Neo-Classical theory)

श्रम तथा पूँजी के मध्य प्रतिस्थापन लोच वाले उत्पादन फलन के स्वभाव पर बल देकर नवप्रतिष्ठित सिद्धान्त निश्चित रूप से सबसे महत्त्वपूर्ण तत्व को स्पष्ट करता है।

कैल्डर ने नव प्रतिष्ठित सिद्धान्त की इस आधार पर आलोचना की है कि श्रम तथा पूँजी की सीमान्त उत्पादकता ज्ञात करने के लिए नव प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अन्तर्गत आवश्यक पूँजी का माप करना कठिन है। इसके अतिरिक्त कैल्डर के अनुसार पूँजी तथा श्रम के मध्य प्रतिस्थापन की सीमान्त दर की माप तभी ज्ञात की जा सकती है, यदि लाभ पहले से ज्ञात हो।

साधन अंशो के स्थैतिक विश्लेषण से सम्बन्धित होने के कारण अब तक हमने यह माना हे कि एक समयावधि के अन्तर्गत उत्पादन फलन स्थिर बने रहते हैं किन्तु वास्तविक जीवन में तकनीक में परिवर्तन निरन्तर होता रहता है जो उत्पादन फलन में परिवर्तन करता है तथा उसके द्वारा साधनों के सीमान्त उत्पादन और इसलिए श्रम तथा पूँजी के बीच तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर में परिवर्तन करता है।

विभिन्न प्रकार की तकनीकी प्रगति
(Various Types of Technological Progress)

तकनीकी प्रगति को जे० आर० हिक्स द्वारा (i) पूँजी का उपयोग करने वाली (ii) तटस्थ तथा (iii) श्रम का उपयोग करने वाली की श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है।

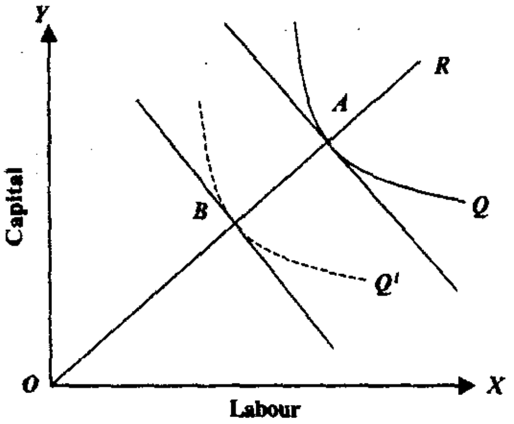

(a) तटस्थ तकनीकी प्रगति

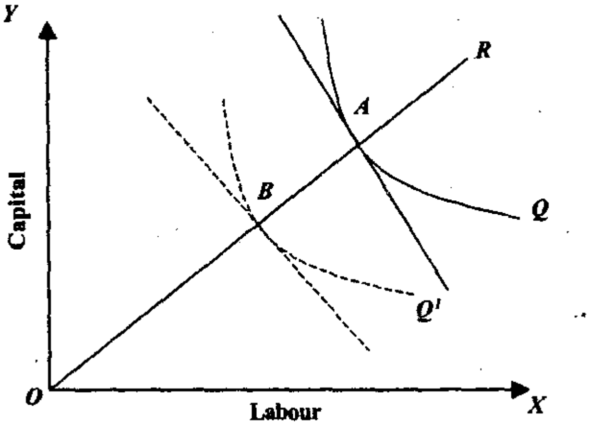

(b) पूँजी उपयोग करने वाली तकनीकी प्रगति

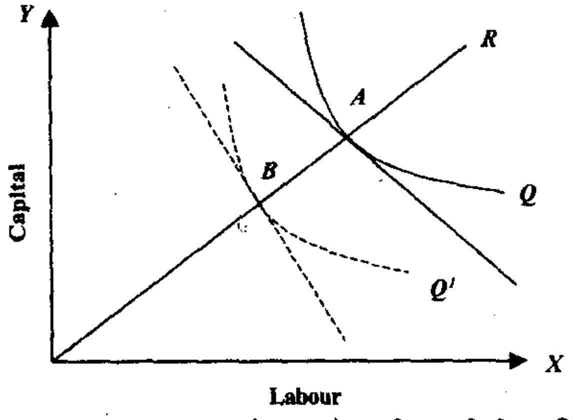

(c) श्रम का उपयोग करने वाली तकनीकी प्रगति

यह ध्यान देने योग्य है कि तकनीकी प्रगति का अभिप्राय यह होता है कि पदार्थ के दिये हुए स्तर को उत्पादन–साधनों की अपेक्षाकृत कम मात्राओं की सहायता से उत्पन्न किया जा सकता है और इसलिए इसके परिणामस्वरूप समोत्पाद वक्र नीचे की ओर विवर्तित हो जाते हैं।

खण्ड (a) से स्पष्ट होता है कि प्रारम्भ में फर्म Q उत्पादन का स्तर उत्पादित करती हुई समोत्पाद वक्र Q पर है। OR मूल बिन्दु से एक रेखीय किरण है जो स्थिर पूँजी श्रम अनुपात $\left(\frac{K}{L}\right)$ की किरण के साथ फर्म B बिन्दु पर पहुँचती है। यह स्पष्ट

है कि नये समोत्पाद वक्र के B विन्दु $MRTS_{KL}$ प्रदर्शित करने के लिए खींची गई स्पर्श रेखा का ढाल प्रारम्भिक समोत्पाद वक्र Q पर QR किरण के A विन्दु के समान है. ऐसा तब होता है जब तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर $(MRTS_{KL})$ समान बनी रहे जो $\frac{MP_L}{MP_K}$ के अनुपात के बराबर होती हैं।

पूँजी का उपयोग करने वाली तकनीकी प्रगति
(Capital Using Technological Progress)

हिंक्स के अनुसार यदि तकनीकी प्रगति श्रम की अपेक्षा पूँजी के सीमान्त में वृद्धि कर देती है तो वह पूँजी का उपयोग करने वाली होती है। इसका अर्थ है कि पूँजी प्रधान तकनीकी प्रगति के कारण उत्पादन फलन को प्रदर्शित करने वाले समोत्पाद वक्र में परिवर्तन के साथ $MRTS_{LK}$ जो श्रम के सीमान्त उत्पादन तथा पूँजी के सीमान्त उत्पादन का अनुपात $\frac{MP_L}{MP_K}$ होता है, कम हो जाएगा।

रेखाचित्र का खण्ड (b) पूँजी उपयोग करने वाली तकनीकी प्रगति को स्पष्ट करता है। स्थिर पूँजी–श्रम अनुपात $\left(\frac{K}{L}\right)$ को प्रदर्शित करने वाली मूल विन्दु से OR रेखीय किरण प्रारम्भिक समोत्पाद वक्र Q को A विन्दु पर तथा तकनीकी प्रगति के कारण नवीन समोत्पाद वक्र Q' के नीचे की ओर विवर्तित हो जाने के बाद B बिन्दु पर प्रतिच्छेद करता है। B बिन्दु पर खींची गई स्पर्श रेखा का ढाल प्रारम्भिक समोत्पाद वक्र Q के A विन्दु की अपेक्षा कम है।

श्रम का उपयोग करने वाली तकनीकी प्रगति
(Labour using Technological Progress)

श्रम का उपयोग करने वाली तकनीकी प्रगति तब होती है जबकि इसके कारण पूँजी के सीमान्त उत्पादन की अपेक्षा श्रम के सीमान्त उत्पादन में अधिक वृद्धि कर देती है जिसके कारण स्थिर पूँजी–श्रम अनुपात होने पर श्रम का पूँजी के लिए तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर बढ़ जाती है। रेखाचित्र (C) श्रम का उपयोग करने वाली तकनीकी प्रगति को स्पष्ट करता है। तकनीकी सुधार के कारण समोत्पाद वक्र Q से Q' विवर्वित हो जाता है। OR किरण के B बिन्दु पर यह देखा जा सकता है कि नये समोत्पाद वक्र Q' का ढ़ाल प्रारम्भिक समोत्पाद वक्र Q के A बिन्दु पर ढाल की अपेक्षा अधिक है।

तकनीकी परिवर्तन तथा सापेक्षा साधन अंश
(Change and Relative Factor Shares)

तकनीकी प्रगति की प्रकृति का श्रम तथा पूँजी के स्वामियों के बीच आय वितरण पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है चाहे यह तटस्थ हो या पूँजी उपयोग करने वाली अथवा श्रम उपयोग करने वाली हो।

1. जब तकनीकी प्रगति तटस्थ होती है तो श्रम तथा पूँजी के सापेक्ष अंश स्थिर बने रहते हैं। जैसा कि हम जानते है कि साम्य की स्थिति मे श्रम की पूँजी के लिए तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर, साधन–कीमत अनुपात $\frac{w}{r}$ के बराबर होती है। यहाँ $MRTS_{LK}$ एक स्थिर पूँजी श्रम अनुपात $\left(\frac{K}{L}\right)$ पर पूर्ववत् बना रहता है। इसका अर्थ है कि साधन कीमत अनुपात $\frac{w}{r}$ भी पूर्ववत् बना रहेगा। जो साम्य की स्थिति $MRTS_{LK}$ के बराबर होता है। इस प्रकार हिक्स के तटस्थ तकनीकी परिवर्तन में साधन कीमत अनुपात (w/r) तथा श्रम–पूँजी अनुपात $\left(\frac{K}{L}\right)$ दोनों स्थिर बने रहते हैं।

2. जब पूँजी उपयोग करने वाली तकनीकी प्रगति होती है तो एक स्थिर पूँजी श्रम अनुपात $\left(\frac{K}{L}\right)$ पर श्रम का पूँजी के लिए तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटती है। इसका अर्थ है कि साम्य की स्थिति में श्रम तथा पूँजी की कीमतों के अनुपात $\left(\frac{w}{r}\right)$ कम होगें अर्थात् पूँजी श्रम अनुपात स्थिर $\left(\frac{K}{L}\right)$ बने रहने पर (W) की अपेक्षा (r) में अधिक वृद्धि होती है। इस प्रकार श्रम का सापेक्ष अंश कम होगा जबकि पूँजी के सापेक्ष अंश में वृद्धि होगी।

3. जब श्रम उपयोग करने वाली तकनीकी प्रगति होती है तो एक स्थिर पूँजीश्रम अनुपात $\left(\frac{K}{L}\right)$ पर तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर ($MRTS_{LK}$) और इसलिए $\frac{w}{r}$ अनुपात बढ़ जाता है। इसका अर्थ है कि जब तकनीकी परिवर्तन श्रम उपयोग करने वाली होती है तो श्रम का सापेक्षिक अंश बढ़ता है तथा पूँजी का सापेक्ष अंश कम हो जाता है।

संक्षेप में श्रम का सापेक्ष अंश (i) जब तकनीकी प्रगति स्थिर रहती है तो स्थिर रहता है (ii) जब तकनीकी प्रगति पूँजी उपयोग वाली होती है तो कम होता है तथा (iii) जब तकनीकी प्रगति श्रम उपयोग करने के पक्ष में होती है तो बढ़ जाता है।

अध्याय-29
लगान
(Rent)

अर्थ
(Meaning)

साधारण बोलचाल की भाषा में किसी वस्तु या सेवा का प्रयोग करने के बदले दिया जाने वाला भुगतान किराया या लगान कहलाता है। जैसे, बस का किराया, मकान का किराया, टैक्सी का किराया आदि। लेकिन अर्थशास्त्र मे इसे भिन्न तरीके से परिभाषित किया जाता है। जोकि निम्नलिखित है:

1. **पुराने (परम्परावादी व नवपरम्परावादी)** अर्थशास्त्रियों के अनुसार भूमि की सेवाओं के प्रयोग के लिये भूस्वामियों को दी जाने वाली आय, लगान कहलाती है। अर्थात् लगान सिर्फ भूमि को ही मिलता है। उत्पादन के अन्य साधनों को नहीं। उनके अनुसार लगान भूमि की मौलिक व अविनाशी शक्तियों के कारण पैदा होता है। जैसा कि रिकार्डो सिद्धान्त में विस्तार से दर्शाया गया है, यह भूमि की औसत उत्पादकता व सीमान्त उत्पादकता का अन्तर होता है।
2. आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान उत्पादन के हर साधन (भूमि, श्रम, पूँजी, भूमी व उद्यमी) से प्राप्त होता है। यह वास्तविक आय व हस्तान्तरण आय का अन्तर होता है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार किसी भी साधन के अनेक प्रयोग हो सकते हैं। सर्वश्रेष्ठ प्रयोग व दूसरे श्रेष्ठ प्रयोग से मिलने वाली आय के अन्तर को लगाना कहा जाता है। मान लो आपके अध्यापक को 15000 रूपये महीने मिलते हैं। अगर उनको यहाँ से हटा दिया जाये, तथा उनके सामने सबसे बेहतर उपाय एक कम्पनी में लगाना है जो उन्हें 10000 रुपये महीना देती है। ऐसे अध्यापक को वर्तमान आय में 5000 रुपये लगान के रूप में मिल रहे हैं।

1.1 कुल लगान
(Gross Rent)

किसी भूस्वामी को उसकी भूमि, उस पर निवेश की गई पूँजी, प्रबन्धन वे जोखिम उठाने के पुरस्कार के रूप में दी गई राशि कुल लगान कहलाती है। अर्थात् कुल लगान भूमि की सेवाओं के साथःसाथ अन्य सेवाओं का पुरस्कार भी है।

कुल लगान = आर्थिक लगान + भूमि पर लगाई पूँजी का ब्याज+प्रबन्धक पुरस्कार + जोखिम का पुरस्कार

1. **आर्थिक लगानः** सिर्फ और सिर्फ भूमि के प्रयोग की कीमत
2. **भूमि पर लगाई पूँजी का ब्याजः** भूमि सुधार पर लगी पूंजी जैसे टयूबवैल पक्की नालियाँ, चारों तरफ कांटेदार तार, समतल करवाना आदि का ब्याज।
3. **प्रबन्ध का पुरस्कारः** भूमि की देख--रेख व उचित प्रबन्धक का पुरस्कार
4. **जोखिम का पुरस्कारः** काश्तकार द्वारा लगान न चुकाने, भूमि न छोड़ने व भूमि की कीमत कम होने आदि का पुरस्कार कुल लगान को ढेका लगान भी कहा जाता है।

1.2 आर्थिक लगान
(Economic Rent)

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है सिर्फ भूमि की सेवाओं के प्रयोग की कीमत आर्थिक लगान कहलाती है। अर्थशास्त्र में लगान

शब्द का प्रयोग आर्थिक लगान के लिये ही होता है। यह निम्न कारणों से पैदा हो सकता है:

1. **भेदात्मक लगानः** भूमि की उपजाऊ शक्ति भिन्न–भिन्न होती है। अधिक उपजाऊ व सीमान्त उपजाऊ में उपज का अन्तर भेदात्मक लगान कहलाता है।
2. **स्थिति लगानः** जब भूमि को प्रयोग करने की कीमत में अन्तर उसकी स्थिति के कारण हो जैसे शहर के आसपास जमीन के प्रयोग की कीमत शहर से दूर जमीन के प्रयोग की कीमत से ज्यादा होती हैं।
3. **दुर्लभता लगानः** जब किसी साधन की पूर्ति माँग की अपेक्ष दुर्लभ हो तो उसकी कीमत बढ़ जाती है। अतः बेलोच पूर्ति कारण पैदा हुा लगान दुर्लभता लगान कहा जाता है उपरोक्त अध्ययन के आधार पर कुल लगान तथ अर्थिक लगान में निम्न अन्तर हैं

   i कुल लगान एक व्यापक धारणा है जिसमे शुद्ध लगान के साथ–साथ पूँजी, प्रबन्धन व जोखिम के पुरस्कार भी शामिल होते हैं। जबकि आर्थिक लगान एक संकुचित धारण है जो सिर्फ भूमि की सेवाओं का फल हैं।

   ii कुल लगान भूस्वामी व प्रयोगकर्त्ता में पहले ही तय हो जाता है जबकि सीमान्त भूमि की उपज पर निर्भर करता है।

   iii ठेका लगान अपेक्षाकृत स्थिर रहता है।

2. लगान के निर्धारण का रिकार्डियन सिद्धान्त (Ricardian Theory of Determination or Rent)

आर्थिक लगान के निर्धारण के दो मुख्य सिद्धान्त हैं।

1. रिकार्डो का सिद्धान्त
2. आधुनिक सिद्धान्त

हम पहले रिकार्डो के सिद्धान्त की व्याख्या करेगें। रिकार्डो ने लगान का सिद्धान्त सन् 1817 में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Principles of Pocitical Economy and Taxnation' में दिया। रिकार्डो के अनुसार भूमि के भिन्न–भिन्न टुकड़ें में उपजाऊ शक्ति भिन्न होती है। समान मेहनत व लागत से इनसे अलग–अलग मात्रा में उत्पादन मिलता है। रिकार्डो के अनुसार बढ़िया भूमि की उपज तथा सीमान्त भूमि की उपज के अन्तर को लगान कहा जाता है।

अर्थात्

लगान = बढ़िया भूमि का उपज— सीमान्त भूमि की उपज

यह भूमि की उपजाऊ शक्ति में अन्तर के कारण पैदा होता है। रिकार्डो के शब्दों में "लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो भूमि के स्वामी को भूमि की मौलिक व अविनाशी शक्तियों के प्रयोग के लिया दिया जाता है।"

लगान की व्याख्या तीन परिस्थितियों के अर्न्तगत की जा सकती है।

1. विस्तृत खेती में लगान
2. गहन खेती में लगान
3. भूमि की स्थिति के कारण लगान

1. **विस्तृत खेती में लगान**–विस्तृत खेती का अर्थ है, उत्पादन में वृद्धि कृषि योग्य जमीन की मात्रा बढ़कार। मान लो कुछ लोग नई जगह आ कर बसते हैं। वे अपनी जरूरत पूरा करने के लिये खेती का बढ़िया टुकड़ा छाँट कर उत्पादन करने लगेगें। जनसंख्या बढ़ने पर, उसकी जरूरतों को पूरा करने के लिये जब दूसरे, तीसरे व चौथे टुकड़े का भी प्रयोग किया जाता है तो उसे विस्तृत खेती कहते हैं।

   समान मेहनत व खर्चा करने पर भी जमीन के टुकड़े भिन्न–भिन्न उपज देते हैं। जैसा निम्न तालिका में दर्शाया गया है।

तालिका न० 1

भूमि की किस्म	उपज की मात्रा (क्विंटल में)	लगान (क्विंटल में)
A } बढ़िया भूमियाँ	10	10 - 4 = 6
B	8	8 - 4 = 4
C	6	6 - 4 = 2
D } सीमान्त भूमि	4	4 - 4 = 0

तालिका न० 1 में A भूमि से 10 क्विंटल उपज होती है तथा सीमान्त भूमि (D) से 4 क्विंटल उपज होती है। इसलिये

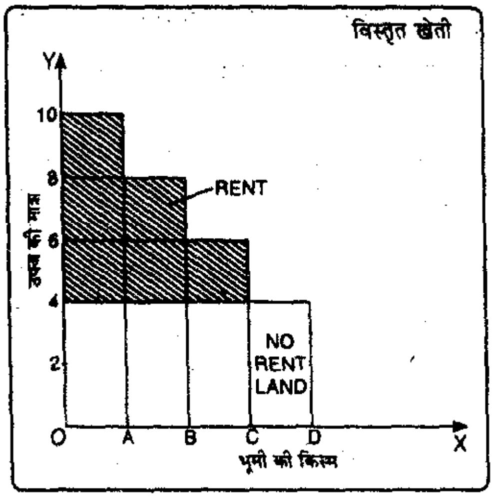

चित्र 1

A भूमि से 6 क्विंटल लगान पैदा होता है। इसी प्रकार B तथा C भूमि से क्रमशः 4 तथा 2 क्विंटल लगान मिलता है। सीमान्त भूमि से कोई लगान नहीं मिलता। रिकार्डो के विस्तृत खेती में लगान की व्याख्या निम्न चित्र के माध्यम से भी की जा सकती है।

रेथाचित्र न० 1 में OX अक्ष पर भूमि का किस्त ली गई हैं तथा OY अक्ष पर उपज की मात्रा ली गई है। रेखाचित्र में D सीमान्त भूमि है। इसलिये इसे कोई लगान नहीं मिलता है। इस पहले वाली (A, B, C) भूमियाँ हैं। इनके तथा सीमान्त भूमि की उपज का अन्तर लगान कहलाता है। जिसे छायादार भाग के रूप में दिखाया गया है।

2. **गहन खेती में लगानः** जब भूमि की मात्रा को स्थिर रखते हुए, पूँजी व श्रम की मात्रा को बढ़ाकार उत्पादन में वृद्धि की जाती हैं तो उसे गहन खेती कहा जाता है। रिकार्डो के अनुसार भूमि पर घटते प्रतिफल का नियम लागू होता है। अर्थात् श्रम व पूँजी की हर अगली इकाई से कम उत्पादन प्राप्त होगा। श्रम व पूँजी की पहले वाली तथा आखिरी इकाई के उपज के अन्तर को गहन खेती में लगान कहा जाता है। इसे निम्न तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है।

तालिका न० 1

भूमि की किस्म	उपज की मात्रा (क्विंटल में)	लगान (क्विंटल में)
1 } पूर्व सीमान्त	10	10 - 4 = 6
B } इकाईयाँ	8	8 - 4 = 4
C } सीमान्त	6	6 - 4 = 2
D } इकाई	4	4 - 4 = 0

तालिका न० 2 के अनुसार श्रम व पूँजी की पहली इकाई से 10 क्विंटल उपज पैदा होती है जबकि चौथी इकाई से 4 क्विंटल उपज पैदा होती है। इसलिये पहली इकाई से मिलने वाला लगान 6 क्विंटल उपज के समान होगा। इसी प्रकार श्रम व पूँजी की दूसरी व तीसरे इकाइयों से 4 व 2 क्विंटल लगान पैदा होगा। सीमान्त इकाई से लगान नहीं मिलेगा।

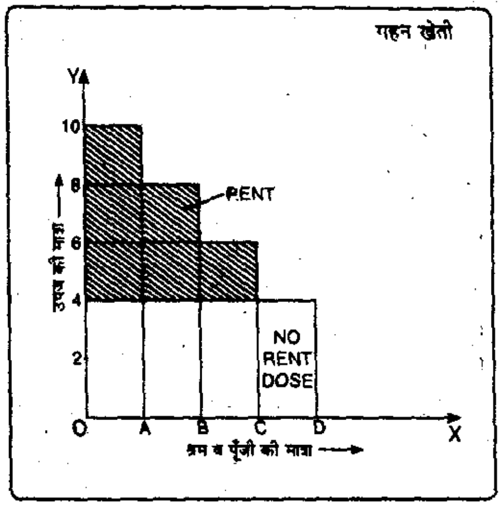

चित्र 2

गहन खेती. में लगान की व्याख्या रेखाचित्र न० 2 की मदद से भी की जा सकती है।

रेखाचित्र नं० 2 में OX अक्ष पर श्रम व पूँजी की मात्रा तथा OY अक्ष पर उपज की मात्रा ली गई है। भूमि के उसी टुकड़े पर जब श्रम व पूँजी की बढ़ती मात्रा में इकाईयों लगाई जाती हैं तो उनसे घटकी मात्रा मे उपज मिलती है। श्रम व पूँजी की पहली इकाई से 10 क्विंटल उपज पैदा होती है। जबकि आखिरी इकाई से 4 क्विंटल उपज पैदा होती है। इसलिये श्रम व पूँजी की पहली इकाई से 6 क्विंटली लगान मिलेगा। इसी प्रकार दूसरी व तीसरी इकाइयों से क्रमशः 4 व 2 क्विंटल लगान मिलेगा। आखिरी इकाई से मिलने वाला लगा शून्य होगा। पहली, दूसरी व तीसरी इकाईयों से मिलने वाला लगान

रेखाचित्र में छायादार भाग के रूप मे दिखाया गया है।

3. **भूमि की स्थिति के कारण लगानः** रिकार्डो के अनुसार भूमि पर लगान सिर्फ उपजाऊ शक्ति में अन्तर के कारा ही पैदा नहीं होता। यह भूमि का स्थिति के कारण भी पैदा हो सकता है। माल लो भूमि के दा टुकड़े A तथा B हैं इनकी उपजाऊ शक्ति समान है। परन्तु A भूमि बाजार के पास है तथा B भूमि बाजार से दूर मान लो दोनों टुकड़ों से मिलने वाली उपज 10 क्विंटल है। परन्तु A भूमि से उपज बाजार तक लाने का किराया 1 क्विंटल तथा B भूमि से उपज बाजार तक लाने का किराया 2 क्विंटल है। ऐसी स्थिति में A भूमि की शुद्ध उजप 9 क्विंटल तथा B भूमि की शुद्ध उपज 8 क्विंटल होगी। इस प्रकार A भूमि पर (9-8) 1 क्विंटल अधिक उत्पादन हुआ (बचा) यही लगान है जो भूमि की स्थिति के काराण पैदा होता है। इसे निम्न चित्र से स्पष्ट किया गया है।

बाजार से दूरी

B भूमि	A भूमि	बाजार
कुल उजप = 10 क्विंटल	कुल उपज = 10 क्विंटल	
यातायाज पर खर्च = 2 क्विंटल	यातायात पर खर्च = 1 क्विंटल	
शुद्ध उपज = 8 क्विंटल	शुद्ध उपज = 9 क्विंटल	

A भूमि पर स्थिति लगान = 9-8=1 क्विंटल

रिकार्डो क लगान सिद्धान्त की व्याख्या लागत वक्रों के रूप में भी की जा सकती है।

रिकार्डो ने इस रूप में सिद्धान्त की व्याख्या अपनी पुस्तक में नही की। सीमान्त विश्लेषण (Marginal Analysis) रिकार्डो के

निधन से काफी समय बाद विकसित हुआ। चूंकि कीमत निर्धारण हमने सीमान्त विश्लेषण के आधार पर किया है। इसलिये रिकार्डो के सिद्धान्त की विस्तृत खेती में इस हम इस रूप में भी कर रहे हैं। इसे रेखाचित्र न० 3 की मदद से दर्शाया जा सकता है।

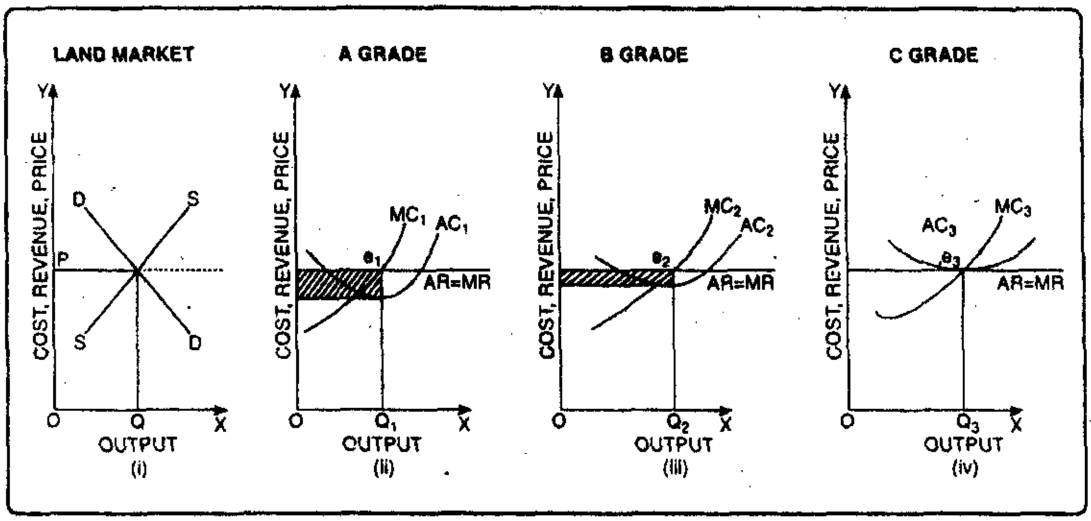

चित्र 3

रेखाचित्र नं० 3 में OX अक्ष पर उत्पादन की मात्रा तथा OY अक्ष पर लागत, आय तथा कीमत लिये गये हैं। चित्र में

AC = Average Cost Curve (औसत लागत वक्र)

MC = Marginal Cost Curve (सीमान्त लागत वक्र)

चूँकि पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता ली गई है। इसलिये AR = MR तथा ये वक्र OX अक्ष के समानान्तर हैं। रेखाचित्र (i) भूमि बाजार में भूमि की माँग व पूर्ति दर्शाता है। इसके द्वारा भूमि की कीमत तय होती है। रेखाचित्र (ii) A Grade भूमि के लिये है। MC_1 वक्र MR_1 वक्र को नीचे से e_1 बिन्दु पर काटता है। इसलिये यही सन्तुलन बिन्दु है। सन्तुलन बिन्दु पर $AR>AC_1$ है। यही लगाना है। चित्र में यह छायादार भाग के रूप में दर्शाया गया है। इसी प्रकार B Grade भूमि में भी लगान पैदा होता है। लेकिन यह A Grade भूमि से कम है। C Grade भूमि सीमान्त भूमि है। इसमें सन्तुलन (e_3) की स्थिति में $AC_3 = AR$ हैं। इसलिये इसमें कोई लगान पैदा नहीं होता।

उपलिखित व्याख्याओं के आधार पर रिकार्डो के लगान सिद्धान्त के मुख निष्कर्ष इस प्रकार है।

- लगान भूमि की मौलिक और अविनाशी शक्तियों के कारण पैदा होता है।
- भूमि के टुकड़ों की उपजाऊ शक्ति भिन्न–भिन्न होती है। लगान सीमान्त व पूर्व सीमान्त भूमि की उपज का अन्तर होता है। अतः हम कह सकते हैं कि लगान एक भेदात्मक बचत है।
- सीमान्त भूमि लगान हीन होती है।
- हम यह भी कह सकते हैं कि लगान प्रकृति की कंजूसी (Niggardliness of Nature) के कारण पैदा होता हैं क्योंकि प्रकृति ने बढ़िया भूमि की पूर्ति में कंजूसी की है।
- लगान कीमत में शामिल नहीं होता।

सिद्धान्त की मान्यतायें

अर्थशास्त्र में मान्यताओं के आधार पर अर्थव्यवस्था का सरलीकरण करके मुख्य तत्वों में सम्बन्ध खोजन रिकार्डो की देन है। रिकार्डो का लगान सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधरित है।

- भूमि में कुछ मौलिक व अविनाशी शक्तियां होती हैं।

- ये शक्तियां हर भूमि में अलग–अलग होती हैं। अर्थात् भूमि की उपजाऊ शक्ति में भिन्नता पाई जाती है।
- अच्छी भूमि प्रायः सीमित होती है।
- भूमि अवरोही क्रम में की जाती है। अर्थात् पहले अच्छी भूमि पर तथा माँग बढ़ने पर घटिया भूमि पर भी खेती की जाती है।
- अर्थव्यवस्था में सीमान्त भूमि होती है जिस पर कोई लगान नहीं होता है।
- भूमि पर घटते प्रतिफल का नियम लागू होता है।
- भूमि का केवल एक ही उपयोग है। अर्थात् इस पर सिर्फ खेती की जाती है।
- जनसंख्या में लगातार वृद्धि हो रही है।
- वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता होती है।
- श्रम व भूमि की सभी इकाईयाँ समान रूप से कार्यकुशल हैं।

आलोचनायें

रिकार्डो का सिद्धान्त अर्थशास्त्र में लगान के बारे में पहली महत्त्वपूर्ण व गहन व्याख्या है। ऐसा भी कहा जा सकता है कि यह लगान की सैद्धान्तिक व्याख्याका प्रारिभिक बिन्दु है। लेकिन रिकार्डो के बाद अर्थशास्त्र के सिद्धान्त काफी विकसित हुए है। इनके आधार पर रिकार्डो सिद्धान्त की आलोचनायें निम्नलिखित हैं।

- **भूमि में मौलिक व अविनाशी शक्ति जैसी कोई चीज नहीं:** अर्थात् बेहतर खाद, पीना, बीज व दबाईयों से भूमि की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाया जा सकता है। दलदल वे रेही (Salintiy) भूमि की उपजाऊ शक्ति को नष्ट कर देती है।
- **सीमान्त भूमि की गलत् मान्यता:** अर्थव्यवस्था में कोई सीमान्त भूमि नहीं होती। हर भूमि पर कुद न कुछ कुछ लगान अवश्य मिलता है।
- **लगान का कारण भूमि की सीमितता है:** आधुनिक अर्थशास्त्रीयों के अनुसा लगान भूमि की सीमितता के कारण पैदा होता है न कि उत्पादकता में अन्तर के कारण। भूमि की पूर्ति सीमित है तथा इसके उपयोग अनेक। लगान श्रेष्ठ व पूर्व श्रेष्ठ प्रयोग का अन्तर होता है।
- **लगान सिर्फ भूमि से ही नहीं मिलता है:** आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार उत्पादन के हर उस साधन को लगान मिलता है जिसकी पूर्ति सीमित है तथा प्रयोग अनेक। इसलिये लगान का सिद्धान्त सिर्फ भूमि का सिद्धान्त न होकर एक सामान्य सिद्धान्त है।
- **दीर्घकाल की मान्यता:** यह सिद्धान्त दीर्घकाल की मान्यता पर आधरित है। यह अल्पकालीन लगान (आभास लगान) की व्याख्या नहीं करता।
- **घटते प्रतिफल की मान्यता:** विज्ञान ने घटते प्रतिफल की मान्यता को एक सीमा तक झुठला दिया है। वैज्ञानिक खेती ने उत्पादकता को काफी बढ़ाया है।
- **व्यावहारिक स्तर पर खरा नहीं:** यह जरूरी नहीं कि सबसे पहले सबसे उपजाऊ भूमि तथा उसके बाद घटते क्रम में भूमि के टुकड़ों पर खेती की जाये। सुविधा या सुरक्षा आदि की दृष्टि से पहल कम उपजाऊ भूमि पर भी खेती की जा सकती है।
- **पूर्ण प्रतियोगिता की अवास्तविक मान्यता:** पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की धारण एक काल्पनिक धारण है। वास्तविक जीवन में ऐसा बाजार कहीं नहीं मिलता।
- **लगान का समष्टि सिद्धान्त:** रिकार्डो का सिद्धान्त पूरी समष्टि अर्थव्यवस्था में उत्पन्न होने वाले लगान की व्याख्या करता है, उद्योग या फर्म (व्यष्टि) के स्तर पर नहीं।
- **अलग सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं:** आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने लगान के सामान्य सिद्धान्त की व्याख्या की है जिसमें उत्पादन के हर साधन से मिलने वाले लगान की व्याख्या की गई है। इसलिये उनके अनुसार भूमि से मिलने वाले लगान के लिये अलग सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि लगान का रिकार्डियन सिद्धान्त अर्थशास्त्र को एक महत्त्वपूर्ण देन होते हुए भी अनेक कमियों से ग्रसित है। इसलिये अर्थशास्त्रियों ने लगान के आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या की है।

लगान निर्धारण का आधुनिक सिद्धान्त
(Modern Theory of Determination of Rent)

उत्पादन के परिवर्तनशील (जैसे श्रम) की सीमान्त उत्पादकता होती है। इसलिए सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त के आधर पर इनकी कीमत निर्धारण किया जा सकता है। परन्तु स्थिर साधनों (जैसे भूमि) की सीमान्त उत्पादकता नहीं होती है। इसलिये इनका कीमत निर्धारण अगल तरीके से किया जाता है।

स्थिर साधनों की कीमत निर्धारण अर्थिक लगान पर आधारित हैं।

आर्थिक लगान उत्पादन के साधन की वास्तविक आय व हस्तांतरण आय का अन्तर होता है। जब किसी साधन की पूर्ति सीमित तथा उपयोग अनेक हों तो अर्थिक लगान पैदा होता है। मान लो भूमि के एक टुकड़े के अनेक उपयोग हैं। फर्म A इसके लिये 10000 रुपये देने के लिए तैयार है। फर्म B किसी दूसरे काम के लिये 8000रुपये तथा फर्म C किसी तीसरे काम के लिये 6000 रुपये देने के लिये तैयार है। स्पष्ट है कि भूस्वामी अपना टुकड़ा फर्म A को देगा। भूस्वामी की वास्तविक आय 10000 रुपये होगी। मान लो अब फर्म A भूमि के टुकड़े के लिये दस हज़ार रुपये से कम देने की कोशिश करे। ऐसी स्थिति में भी भूस्वामी तब तक अपनी भूमि फर्म A को देना पसन्द करेगा जब तक वह 8000 रुपये से ज्यादा देगा। फर्म A द्वारा 8000 रुपये से कम कीमत लगाने पर भूस्वामी अपनी जमीन फर्म B को दे देगा। हम कह सकते हैं कि 8000 रुपये भूमि की हस्तान्तरण आय या अवसर लागत (Opportunity Cost) अर्थात् इस कीमत पर भूस्वामी अपनी भूमि का हस्तान्तरण फर्म B को कर देता है। अतः हम कह सकते हैं कि वास्तविक आय किसी साधन की वह आय है, जो उसे अपने वर्तमान (सर्वश्रेष्ठ) उपयोग से प्राप्त होती है। हस्तान्तरण आय व अवसर लागत साधन की वह आय है, जो उसे अपने दूसरे सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक उपयोग से प्राप्त होती है।

उपरलिखित व्याख्या से स्पष्ट है जिस साधन को कोई वैकल्पिक प्रयोग नहीं होता, उस साधन को मिलने वाली सारी आय लगान कहलाती है।

लगान उत्पादन के किसी भी साधन को मिल सकता है बशर्ते उसकी पूर्ति बेलोचदार हो।

आधुनिका सिद्धान्त की चित्रात्मक व्याख्या निम्न प्रकार से की जा सकती हैं लोच के आधार पर किसी साधन की पूर्ति तीन प्रकार की हो सकती है। इसलिये हम तीन परिस्थितियों में लगान के आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या करेगें।

1. पूर्ण लोचदार पूर्ति
2. बेलोचदार पूर्ति
3. पूर्ण बेलाचदारे पूर्ति

1. **पूर्ण लोचदार पूर्ति:** किसी साधन की पूर्ति पूर्ण लोचदार उस समय कही जायेगी जब किसी एक कीमत पर तो साधन अनन्त मात्रा मे उपलब्ध होता है परन्तु उससे थोड़ी सी भी कम कीमत पर उसकी एक इकाई भी नहीं मिलती। अर्थशास्त्र के शब्दों में उसकी वास्तविक आय (Actual Earning = AE) तथा हस्तान्तरण आय (Transfer Earning = TE) बराबर होती हैं। इसलिये लगान (AE—TE) शून्य होता है। इसे रेखाचित्र नं० 4 की मदद से दर्शाया गया है।

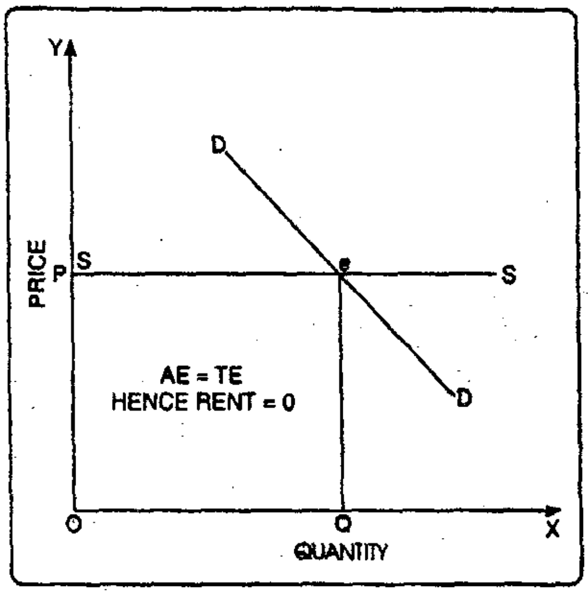

चित्र 4

रेखाचित्र नं० 4 OX अक्ष पर साधन की मात्रा तथा OY अक्ष पर साधन की कीमत ली गई है। DD साधन की मांग वक्र है तथा SS साधन की पूर्ति वक्र है। चूंकि पूर्ति पुर्ण लोचदार है इसलिये SS वक्र OX अक्ष के समानान्तर हैं। चित्र में

वास्तविक आय = Op *e*Q

हस्तान्तरण आय = OP*e*Q

इसलिये लगान = O*pe*Q-OP*e*Q=O है।

2. **कम लोचदार पूर्ति**-उत्पादन के साधन की पूर्ति कमलोचदार उस समय कही जाती है जब उत्पादन के साधन की हर अगली इकाई ज्यादार कीमत पर ही उपलब्ध होती है। इसका अर्थिक प्रमाव यह पड़ता है कि साधन की वास्तविक आय तथा हस्तान्तरण आय में अन्तर आ जाता है। मान लो किसी साधन की पहली इकाई की कीमत 5 रुपये है। दूसरी इकाई मांग करने पर प्रति इकाई कीमत 6 रुपये है। इससे पहली इकाई की वास्तविक आय तथा हस्तान्तरण आय में अन्तर आ जाता है। पहली इकाई की AE 6 रुपये हो जाती है तथा TE 5 रुपये। इसलिये पहली इकाई को 1 रुपये लगान मिलता है जो उसकी कीमत में शामिल होता है। इसे रेखाचित्र द्वारा दर्शाया जा सकता है।

रेखाचित्र न० 5 में

वास्तविक आय = O*pe*Q

हस्तान्तरण = OS*e*Q

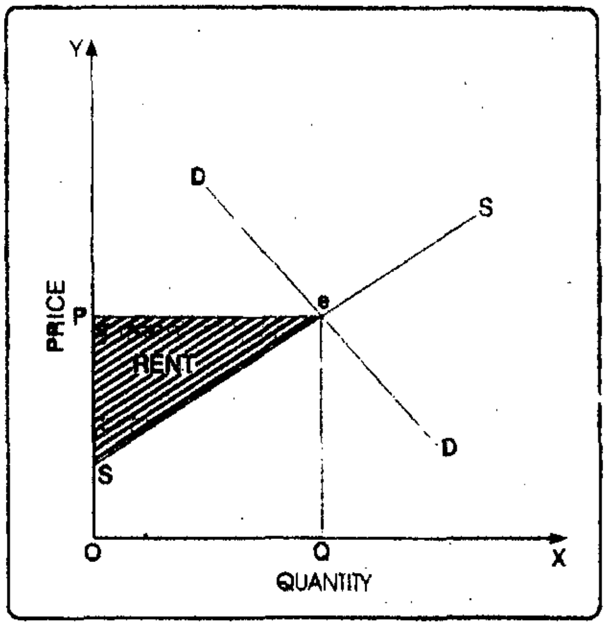

चित्र 5

इसलिये लगान = OpeQ—शून्य =OPeQ है। रेखाचित्र मे इसे छायादार भाग के रूप में दर्शाया गया है।

2. **पूर्ण बेलोचदार पूर्ति**—जब साधन कीमत का साधन पूर्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता अर्थात् कीमत चाहे कितनी ही बढ़ी दी जाये अथवा शून्य कर दी जाये साधन की पूर्ति वही रहेगी। ऐसा तब होता है जब साधन का कोई वैकल्पिक प्रयोग नहीं होता है। साधन की हस्तान्तरण आय शून्य होती है इसलिये साधन की सारी की सारी वास्तविक आय लगान होती हैं। इसे निम्न रेखाचित्र द्वारा दर्शाया गया है।

रेखाचित्र 6 में चूंकि पूर्ति पूर्ण बेलोचदार है। इसलिये SS वक्र OY अक्ष के समान्तार है। चित्र में

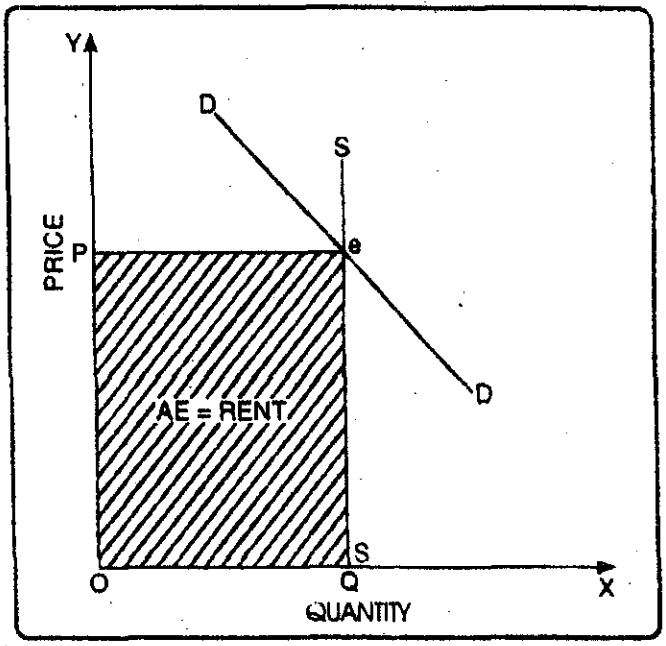

चित्र 6

वास्तविक आय = OpeQ

हस्तान्तरण = शून्य

इसलिये लगान = OpeQ—शून्य =OPeQ है। रेखाचित्र मे इसे छायादार भाग के रूप में दर्शाया गया है।

अतः हम कह सकते हैं कि साधन का पूर्ति वक्र जितना ज्यादा बेलाचदार होगा, उसे मिलने वाला लगान उतना ही ज्यादा होगा।

उपरलिखित व्याख्या के आधार पर आधुनिक लगान सिद्धान्त के निष्कर्ष निम्नलिखित हैं।

- लगान साधन की सीमितता व विशिष्टता के कारण पैदा होता है।
- चूंकि हर साधन की पूर्ति सीमित हो सकती है इसलिये लगान हर साधन पर मिल सकता है न सिर्फ भूमि पर लगान, वर्तमान आय व हस्तांरण आय का अन्तर होता है। अर्थात् लगान = AE-TE
- जब साधन की पूर्ति पूर्ण लोचदार हो तो साधन को कोई लगान नहीं मिलता क्योंकि ऐसे में AE = TE होता हैं।
- जब साधन की पूर्ति पूर्ण बेलोचदार हो सारी आय लगान होती हैं क्योंकि TE = O होती हैं।

रिकार्डो के लगान सिद्धान्त व आधुनिक लगान सिद्धान्त की तुलना (Comparison Between Ricardian and Modern Theory of Rent)

लगान के रिकार्डियन (परम्परावादी) व आधुनिक सिद्धान्त में निम्नलिखित अन्तर हैं।

- **सामान्य सिद्धान्तः** लगान का आधुनिक सिद्धान्त एक सामान्य सिद्धान्त है अर्थात् इसके द्वारा उत्पादन के हर साधन से मिलने वाले लगान का निर्धारण किया जा सकता है। जबकि रिकार्डियन सिद्धान्त एक संकुचित सिद्धान्त है। यह सिर्फ भूमि से मिलने वाले लगान की व्याख्या करता है।
- **लगान सीमितता व विशिष्टता का परिणामः** लगान के आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार लगान साधन की सीमितता विशिष्टता का परिणाम है जबकि रिकार्डो के अनुसार यह भूमि की उपजाऊ शक्ति में अन्तर के कारण पैदा होता है।
- **लगान कीमत में शामिल होता हैः** आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार फर्म के स्तर पर साधन की कुल कीमत में लगान भी एक हिस्सा होता है। अर्थात् लगान कीमत में शमिल होता है। परन्तु रिकार्डो के अनुसार लगान कीमत में शमिल नहीं होता।
- **मान्यतायें:** रिकार्डो का सिद्धान्त विभिन्न काल्पनिक मान्यताओं पर आधारित है जबकि आधुनिक सिद्धानत में ऐसी काल्पनिक मान्यतायें नहीं हैं।

क्या लगान कीमत में शामिल होता है? (Does Rent Enter in to Price?)

इस विषय में अर्थशास्त्रियों में राय एक जैसी नहीं रही है। हम दोनों मतों की व्याख्या यहाँ कर रहें हैं।

1 **रिकार्डो का मतः** 19वीं शताब्दी के शुरू में, (जब रिकार्डो ने अपनी किताब लिखी) इंग्लैण्ड में यह मुद्दा गर्मागर्म बहस का विषय था कि अनाज की कीमत ज्यादा क्यों हैं अर्थशास्त्रियों के एक दल की यह राय थी कि चूंकि भूस्वामी लगान ज्यादा लेते हैं, इसलिये किसान लगान चुकाने और कुछ अपनी कमाई करने के लिये अनाज की कीमत ज्यादा कर देते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि लगान कीमत में शामिल होता है। परन्तु प्रमुख अर्थशास्त्री रिकार्डो जो उस समय ब्रिटिश संसद के सदस्य भी थे, का मत इसके विपरीत था। उनके अनुसार ब्रिटेन के नेपोलियन के साथ युद्ध के कारण अनाज की मांग काफी ज्यादा बढ़ गई। जिससे अनाज की कीमतें बढ़ने लगी। कीमतें ज्यादा मिलने के कारण किसानों को इससे मुनाफा ज्यादा होने लगी। इसलिये उनमें जमीन लेने की होड़ बढ़ गयी जमीन की मांग बढ़ने के परिणामस्वरूप लगान बढ़ गया। अतः रिकार्डो के अनुसार अनाज की कीमत इसलिये ज्यादा नहीं हैं क्योंकि लगान ज्यादा है। बल्कि स्थिति इसके विपरीत है। लगान इसलिये ज्यादा है क्योंकि किन्हीं कारणों से (माँग बढ़ने से) अनाज की कीमत ज्यादा हो गई हैं। अर्थात् लगान कीमत को प्रभावित नहीं करता बल्कि कीमत लगान को प्रभावित करती हैं। दूसरे शब्दों में लगान कीमत में शमिल नहीं होता।

2. **आधुनिक मतः** आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार आर्थिक लगान एक व्यापक धारणा है, अर्थात् यह उत्पादन के हर साधन लगान एक व्यापक धारणा है, अर्थात् यह उत्पादन के हर साधन को प्राप्त होता है। यह साधन की वास्तविक

आय तथा हस्तान्तरण आय का अन्तर होता है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान साधन की सीमितता व विशिष्टता के कारण पैदा होता है। सीमितता के कारण साधन की हर अगली इकाई ज्यादा कीमत पर उपलब्ध होती है। अर्थात् साधन की पूर्ति वक्र बायें से दायें ऊपर उठता हुआ होता है। इसे निम्न रेखाचित्र की मदद से स्पष्ट किया जा सकता है।

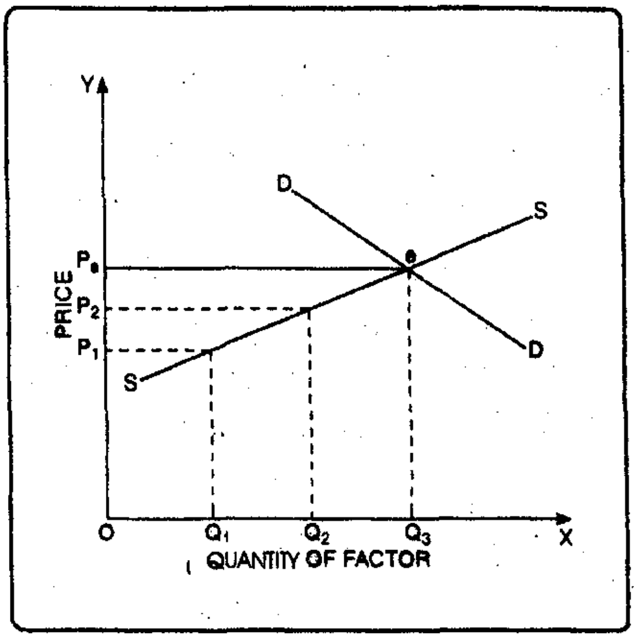

चित्र 7

रेखाचित्र न० 7 में OX अक्ष पर साधन की मांग व पूर्ति की मात्रा ली गई है तथा OY अक्ष पर साधन की कीमत ली गई है। SS तथा DD साधन के क्रमशः पूर्ति व मांग वक्र है। E बिन्दु साधन का सन्तुलन बिन्दु है। सन्तुलन स्तर पर साधन की कीमत OP*e* तय होती है।

यही साधन की वास्तविक आय है। साधन की Q*e* वीं इकाई की हस्तांतरण आय भी OP*e* है। चूंकि साधन की Q*e* वीं इकाई की वास्तविक आय तथा हस्तान्तरण आय बराबर होती है। इसलिये इसको मिलने वाला लगान (वास्तविक आय—हस्तांतरण आय) शून्य होता है।

Q_2 की इकाई की हस्तान्तरण आय OP_2 है। जबकि इसकी वास्तविक आय OP*e* है। इसलिये इसको $P_2 P_2$ के समान लगान मिलता है, जो इसकी कीमत में शामिल होता है।

Q_1 की इकाई की हस्तान्तरण आय OP_1 है। जबकि इसकी वास्तविक आय OP*e* है। इसलिये इसको $P_1 P_e$ के समान लगान मिलता है, जो इसकी कीमत में शामिल होता है।

अतः हम कह सकते हैं कि आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान साधन की कुल कीमत का हिस्सा है। साधन की हस्तान्तरण कीमत से ऊपर मिलने वाली आय ही लगान है अर्थात् लगान कीमत में शामिल होता है।

ऊपरलिखित व्याख्या से एक तथ्य और स्पष्ट हो जाता है कि पूर्ति वक्र जितना ज्यादा लोचदार होता, वास्तविक आय तथा हस्तांतरण आय में अन्तर उतना ही कम होगा। (इसका रेखाचित्र विद्यार्थी स्वयं बना कर देख सकते हैं) अर्थात् लगान उतना ही कम होगा। इसके विपरीत जब पूर्ति वक्र ज्यादा बेलोचदार होगा तो लगान ज्यादा होगा। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि किसी साधन को एक उद्योग के अन्तर (अर्थात जब साधन विभिन्न फर्मो में हस्तांन्तरित होता है) लगान कम मिलता हैं। क्योंकि उद्योग के अन्दर साधन का पूर्ति वक्र ज्यादा लोचशील होता है। इसके विपरीत अर्थव्यवस्था के स्तर पर (जब साधन एक उद्योगों से दूसरे उद्योग में जाता है)। साधन का पूर्ति वक्र कम लोच वाला (बेलोचदार) होता है। इसलिये अर्थव्यवस्था के स्तर पर साधन को ज्यादा लगान मिलता है।

आधुनिक सिद्धान्त, रिकार्डो के सिद्धान्त का विकसित तथा विस्तृत हुआ रूप है।
(Modern Theory is Modified and Amplified form of Ricardian Theory)

ऊपरलिखित वाक्य की व्याख्या हम दो हिस्सों में करेगें।

1. **आधुनिक सिद्धान्त, रिकार्डो के सिद्धान्त का विस्तृत रूप है:** रिकार्डो के अनुसार लगान सिर्फ भूमि से पैदा होता है, उत्पादन के किसी अन्य साधन से नहीं। उनके अनुसार भूमि के अन्दर कुछ ऐसी मौलिक व अविनाशी शक्तियां होती है। जिनके कारण भूमि की उपजाऊ शक्ति में अन्तर पाया जाता है। उपजाऊ शक्ति में ये अन्तर ही लगान को जन्म देता है। पूर्व सीमान्त व सीमान्त भूमि के उपज के अन्तर की लगान कहा जाता है।

   इसके विपरीत आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान भूमि के साथ–साथ उत्पादन के अन्य साधनों (श्रम, पूंजी व उद्यमी) को प्राप्त होता है। इनके अनुसार लगान साधन पूर्ति की सीमितता तथा साधन की विशिष्टता के कारण पैदा होता है। यह साधन की वास्तविक आय तथा हस्तान्तरण आय का अन्तर होता है। जब भी किसी साधन की पूर्ति सीमित हो़ी है तो वास्तविक आय तथा हस्तान्तरण आय में अन्तर आ जाता है, इसलिये इसे रिकार्डो के सिद्धान्त का विस्तृत रूप कहा जाता है।

2. **रिकार्डो के सिद्धान्त का विकसित रूप:** आधुनिक सिद्धान्त, रिकार्डो के सिद्धान्त का विकसित रूप निम्न प्रकार से है।

   i **लगान का अनुमान:** रिकार्डो के सिद्धान्त के अनुसार लगान का अनुमान पूर्व सीमान्त भूमि व सीमान्त भूमि की उपज के अन्तर के आधार पर लगाया जाता है। परन्तु सीमान्त भूमि को ढूंढना एक मुश्किल कार्य है।

   ii **लगान की उत्पत्ति के कारण:** रिकार्डो के अनुसार लगान भूमि की उपजाऊ शक्ति में अन्तर के कारण पैदा होता है जबकि आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार यह किसी भी साधन की सीमितता व विशिष्टता के कारण पैदा होता है। साधन की सीमितता व अनेक उपयोगों के कारण साधन की पूर्ति में लोच पैदा हो जाती है। जिसके फलस्वरूप वास्तविक आय व हस्तान्तरण आय में अन्तर उत्पन्न हो जाता है। यह अन्तर ही लगान कहलाता है। साधन पूर्ति की लोच जितनी कम होगी लगान उतनी ही ज्यादा होगा। अतः हम कह सकते हैं कि आधुनिक सिद्धान्त लगान की उत्पत्ति की ज्यादा वास्तविक धारणा है।

   iii **लगान तथा कीमत में सम्बन्ध:** रिकार्डो के अनुसार लगान कीमतों का फल है, यह कीमत में शामिल नहीं होता। परन्तु आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार कीमत में शामिल होता है। उत्पादन के साधन को हस्तान्तरण आय से ऊपर जितनी भी आय प्राप्त होती है वह लगान कहलाता है। लगान की यह धारणा ज्यादा वैज्ञानिक धारणा है।

ऊपरलिखित व्याख्या के आधार पर हम कह सकते हैं कि आधुनिक सिद्धान्त लगान निर्धारण का ज्यादा विस्तृत व विकसित रूप हैं।

लगान एक बड़ी प्रजाति की उपजाति है
(Rent is the Leading Specie of a Large Genus)

रिकार्डो (व अन्य परम्परावादी) अर्थशास्त्रियों का मत था कि लगान सिर्फ भूमि से प्राप्त होता हैं, परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार जिस प्रकार शेर, चीता, बघेरा आदि बिल्ली प्रजाति की उपजातियाँ है उसी प्रकार भूमि को मिलाने वाला लगान भी एक प्रजाति की उपजाति है अर्थात् सिर्फ भूमि पर ही नहीं मिलता यह उत्पादन के सभी साधनो को मिलता है बशर्ते उनकी प्रर्ति की बीच अनन्त से कम हो। भूमि के अलावा अन्य साधनों को मिलने वाले लगान की व्याख्या निम्न प्रकार से की जा सकती है।

1. **श्रम को लगान:** आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार श्रमिक को भी लगान मिल सकता है, अगर उसकी वास्तविक आय व हस्तान्तरण आय में अन्तर हो तो। मान लो एक उद्योग में 10 फर्मे हैं। उनकी से फर्म A अपने श्रमिक को 5000 रूपये महीन देती है तथा बाकि फर्मे अपने श्रमिकों को 4000 रुपये महीन देती है। ऐसी स्थिति में फर्म A के श्रमिकों की वास्तविक आय 5000 रुपये तथा हस्तांतरण था 4000 रुपये (अर्थात् अगर फर्म A अपने श्रमिकों की आय 4000 रुपये से कम कर दे तो उसके सारे श्रमिक दूसरी फर्मो को हस्तांतरित हो जायेगें) ऐसे में एक उद्योग के अन्दर A फर्म के श्रमिकों को 1000 रुपये लगान के रूप में मिल रहे हैं।

अब माल लो कि दूसरे उद्योग में श्रमिकों को 2500 रुपये महीना मिलते हैं। किन्हीं कारणों से पहले उद्योग में मन्दी आ जाती है, इसलिये ये अपने श्रमिकों की आय घटा कर 2500 रुपये से कम कर देते हैं। ऐसी स्थिति में पहले उद्योग के सारे श्रमिक दूसरे उद्योग में हस्तांतरित हो जायेगें। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि पहले उद्योग के श्रमिकों की वास्तविक आय 4000 रुपये है तथा हस्तांतरण आय 2500 रुपये है। इसलिये अर्थव्यवस्था के स्तर पर पहले उद्योग को मिलने वाले लगान का स्तर 15000 रूपये होगा।

2. **पूंजी को मिलने वाला लगानः** मान लो एक फर्म में एक मशीन लगाई जाती है तथा यह मालिक को 1000 रुपये महीने के कमा कर देती है। यह इस मशीन की वास्तविक आय होगी। अल्पकाल में फर्म इस मशीन से कोई दूसरा काम नहीं ले सकती इसलिये इस मशीन की हस्तान्तरण आय शून्य है। अतः हम कह सकते हैं कि ऐसी स्थिति में मशीन को मिलने वाली सारी आय लगान कहलायेगी। दीर्घकाल में फर्म इस मशीन को दूसरे फर्म को किसी कीमत पर हस्तान्तरित कर सकती है। इसलिये दीर्घकाल में मशीन का हस्तान्तरण मूल्य शून्य से ज्यादा हो जाता है। ऐसी स्थिति में लगान का मूल्य वास्तविक आय तथा हस्तान्तरण आय के अन्तर के समान होगा।

3. **उद्यमी को मिलने वाला लगानः** मान लो एक उद्यमी को सर्वश्रेष्ठ प्रयोग में 20000 रुपये महीना आय मिलती है जबकि दूसरे श्रेष्ठ प्रयोग में उसे 15000 रुपये महीना आय मिलती है तो उद्यमी को सर्वश्रेष्ठ प्रयोग में 5000 रुपये महीना लगान के रूप में मिलते हैं।

ऊपरलिखित व्याख्या से स्पष्ट है कि लगानल सिर्फ भूगि को ही नहीं उत्पादन के अन्य साधनों को भी मिलता है। इसलिये मार्शल ने भूमि से मिलने वाले लगान को एक बड़ी प्रजाति की उपजाति कहा है।

आभास लगान
(Quasi Rent)

जैसा कि हमने अध्याय की शुरुआत में कहा कि उत्पादन के उन साधनों की कीमत जिनकी पूर्ति दीर्घकाल में स्थिर होती है, उनके आर्थिक लगान के आधार पर निकाली जाती है क्योंकि उत्पादन के स्थिर साधनों की सीमान्त उत्पादकता नहीं होती ह। इसलिये इनकी कीमत निर्धारण में सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

लेकिन उत्पादन के कुछ साधन ऐसे होते हैं जिनकी पूर्ति अल्पकाल में तो स्थिर होती है परन्त दीर्घकाल में परिवर्तनशील होती है। अल्पकाल में पूर्ति स्थिर होने के कारण साधन को जो कीमत मिलती है उसे आभास लगान कहा जाता है।

लगान की तरह आभास चिरस्थाई नहीं होता यह दीर्घकाल में पूर्ति बढ़ने के कारण समाप्त हो जाता है। आभास लगान का व्याख्या दो तरीकों से की जा सकती है।

1. **आभास लगान की नवपरम्परावादी व्याख्याः** अर्थशास्त्र को आभास लगान की धारणा देने का श्रेय नवपरम्परावाद अर्थशास्त्र के जनक अल्फ्रेड मार्शल (Alfred Mershall) को जाता है। उनके अनुसार कुछ साधन ऐसे होते हैं जिनकी मांग बढ़ने पर उनकी पूर्ति एक दम (अल्पकाल) नहीं बढ़ाई जा सकती है, परन्तु दीर्घकाल में बढ़ाई जा सकती है। ऐसे साधनों का अल्पकाल में तो लगान मिलता है परन्तु दीर्घकाल में नहीं। अल्पकाल में मिलने वाले इस लगान को आभास लगान कहा जाता है।

लगान तथा आभास लगान में अन्तर स्पष्ट करने के लिये मार्शल ने हीरे से कठोर पत्थरों की वर्षा का उदाहरण दिया है। उनके अनुसार माल लो कि किसी देश में आसमान से हीरों से भी कठोर पत्थरों की वर्षा होती है। लोग इन्हें इक्ट्ठा करके अपने पास रख लेते हैं। बाद में उन्हें पता चलता है कि इन पत्थरों का किसी उद्योग में प्रयोग हो सकता है। इसलिये इनकी मांग एकाएक बढ़ जाती है। ऐसे में तीन परिस्थितियां हो सकती हैं।

(i) **पत्थरों की वर्षा दुबारा न होः** ऐसी स्थिति में दीर्घकाल में भी पत्थरों की पूर्ति नहीं बढ़ सकती। इसलिये मांग बढ़ने से जो आय बढ़गी, वह लगान कहलायेगी। इसे निम्न रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता हैं।

रेखचित्र नं० 8 OX अक्ष पर पत्थरों (साधन क्योंकि वे उत्पादन में प्रयोग होते हैं) की मात्रा तथा OY अक्ष पर उनकी कीमत ली गई है। SS वक्र पत्थरों की पूर्ति वक्र है जो पूर्णतः बेलोचदार है। DD तथा D_1 D_1 क्रमशः पहले व बाद के मांग वक्र हैं।

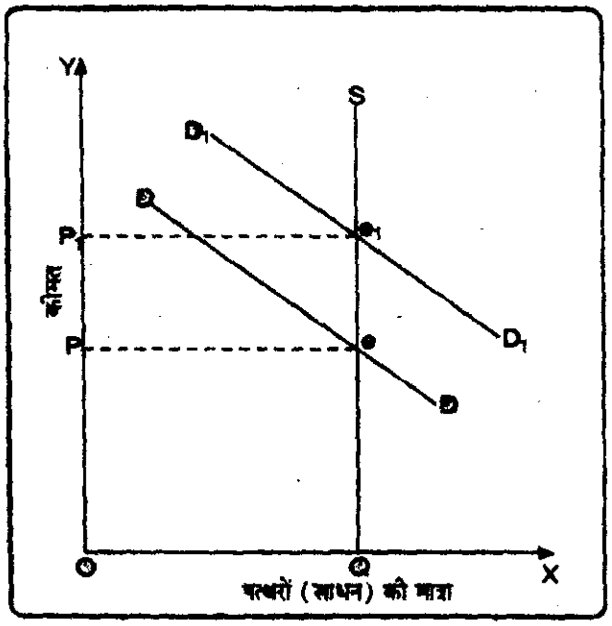

चित्र 8

मांग बढ़ने से साधन कीमत P से बढ़ कर P_1 हो जाती है। बढ़ी हुई आय Pee_1p_1 लगान कहलाती है।

(ii) **पत्थरों की वर्षा थोड़े समय बाद हो जाये:** ऐसी स्थिति में साधन की पूर्ति अल्पकाल में तो स्थिर रहती है परन्तु दीर्घकाल में यह परिवर्तनशील होती है। जिसे अल्पकाल में उत्पन्न हुआ लगान (आभास लगान) दीर्घकाल में

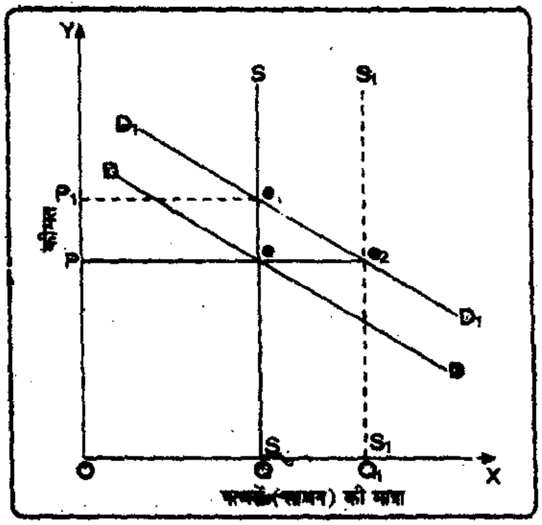

चित्र 9

समाप्त हो जाता है। इसे रेखाचित्र नं० 9 में दर्शाया गया है। रेखाचित्र में अल्पकाल में Pee_1P_1 के समान अधिक आय (आभास लगान) मिलती है जो दीर्घकाल में पूर्ति बढ़ने के कारण खत्म हो जाती है।

3. **पत्थरो की वर्षा बार-बार हो:** बार–बार होने के कारण पत्थरों की पूर्ति पूर्णतः लोचशील (अल्पकाल में भी परिवर्तनशील) हो जाती है। इसलिये मांग बढ़ने पर साधन को न तो लगान मिलता है तथा न ही आभास लगान। इसे निम्न रेखाचित्र की मदद से दर्शाया गया है।

रेखाचित्र नं० 10 से स्पष्ट है कि मांग बढ़ने से साधन की कीमत नही बढ़ती। इसलिये ऐसी स्तिति में उसे आभास लगान तथा लगान में से कुछ भी नहीं मिलता।

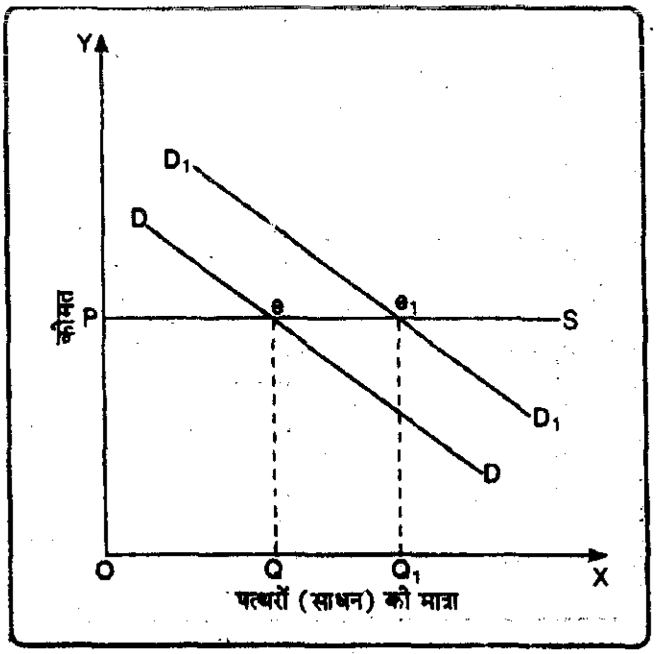

चित्र 10

2. ***आभास लगान की आधुनिक व्याख्या:*** *आभास लगान की आधुनिक व्याख्या आय तथा लागत वक्रों पर आधारित है।* फर्म को चलाये रखने के लिय परिवर्तनशील साधनों को लगान देनी ही पड़ती है, अन्यथा ये इस फर्म को छोड़कर किसी दूसरी फर्म के पास चले जायेगें। परन्तु स्थिर साधन फर्म को एक दम छोड़ नहीं सकते।

सन्तुलन की स्थिति में औसत आय में परिवर्तनशील लागतें घटाने के बाद जो बचता है वह औसत आभास लगान कहलाता है।

Average Quasi rent = AR—AVC

औसत आभास लगान को सन्तुलन स्तर पर उत्पादित होने वाली उत्पादन की मात्रा से गुणा करके कुल आभास लगान निकाल जाता है।

Total Quasi rent - Av. Quasi rent X. Q

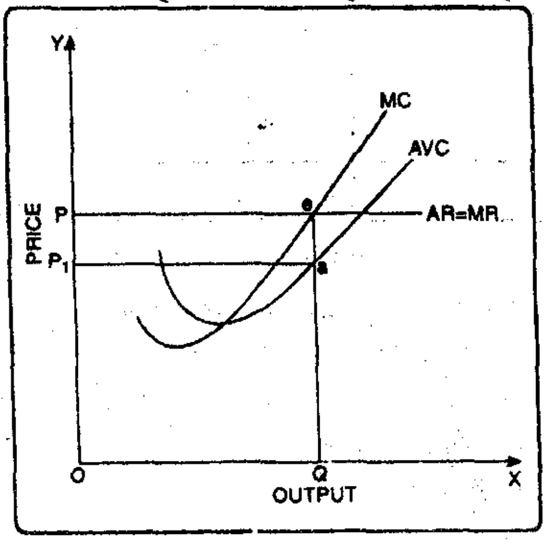

चित्र 11

आभास लगान को रेखाचित्र नं० 11 मद से दर्शाया जा सकता है। रेखाचित्र नं० 11 में OX अक्ष पर उत्पादन की मात्रा तथा OY अक्ष पर कीमत ली गई है। क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता है इसलिये AR=MR है। *e* फर्म का सन्तुलन बिन्दु है। इस बिन्दु पर औसत आभास लगान *ea* के बराबर है तथा कुल आभास लगान *eapp* है।

लगान तथा आभास लगान में तुलना

लगान तथा आभास लगान में कुछ समानताये तथा कुछ असमानतायें पाई जाती हैं।

1. **समानतायें:** दोनों में पाई जाने वाली समानतयें निम्नलिखित हैं:

- दोनों ही स्थिर साधनों की पूर्ति में सीमितता के कारण पैदा होते हैं। जहाँ लगान की दीर्घकालीन स्थिर पूर्ति वाले साधनों को मिलता है वहीं आभास लगान अल्पकालीन स्थिर पूर्ति वाले साधनों को मिलता है।

दोनों ही आधिक्य (surplus) हैं। एक दीर्घकाली स्थिर पूर्ति वाले साधन पर मिलने वाला आधिक्य तो दूसरा अल्पकाली स्थिर पूर्ति वाले साधन पर मिलने वाला आधिक्य।

दोनों कीमत से निर्धारित होते हैं: मांग के पूर्ति पर आधिक्य के कारण जितनी ज्यादा कीमत होगी, उतने ही ज्यादा लगान व आभास लगान होगें। आधुनिक सिद्धान्त में दोनों का अनुमान हस्तान्तरण आय के आधार पर लगाया जाता है।

2. **अन्तर:** दोनों में अन्तर निम्नलिखित हैं।

- लगान उस साधन पर मिलता है जिसकी पूर्ति दीर्घकाल में भी स्थाई हो। ये प्रकृति निर्मित साधन होते हैं। आभास लगान उस साधन पर मिलता है। जिसकी पूर्ति अल्पकाल में तो स्थाई हो परन्तु दीर्घकाल में परिवर्तनशील हो। ये मानवनिर्मित साधन होते हैं।
- लगान अल्पकाल व दीर्घकाल दोनों में ही मिलता है। जबकि आभास लगान सिर्फ अल्पकाल में ही मिलता है। दीर्घकाल में यह समाप्त हो जाता है। हम कह सकते हैं लगान स्थाई होता है। जबकि आभास अस्थाई होता है।
- कुछ अर्थशास्त्री लगान को एक अनार्जित आय (Uneramed Income) मानते हैं। जबकि आभास लगान एक अनिवार्य भुगतान (Necessary Payement) है।
- लगान सिर्फ उस स्थिति उस स्थिति में शून्य होता है। जब साधन की पूर्ति पूर्णतः लोचशील हो। यह एक काल्पनिक स्थिति है। इसलिये लगान कभी शून्य नहीं होता। परन्तु आभास लगान उस समय शून्य हो सकता है जब अल्कालीन कीमत पर सिर्फ परिवर्तनशील लगातें पूरी होती हैं।

आर्थिक लगान का प्रतिपादन सबसे पहले डेविड रिकार्डो ने किया था जबकि आभास लगान का प्रतिपादन सर्वप्रथम अल्फ्रेड मार्शल ने किया था।

प्रश्न
(Questions)

1. लगान से क्या अभिप्राय है? रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
2. रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की आलोचनात्मक समीक्ष कीजिए।
3. लगान के आधुनिक सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिए। यह रिकार्डो के लगान सिद्धान्त कैस श्रेष्ठ है?
4. "अनाज की कीमत इसलिए ऊंची नहीं होती है कि लगान दिया जाता है, बल्कि लगान इसलिए दिया जाता कि अनाज की ऊंची होती है।" (रिकार्डो) व्याख्या कीजिए।
5. "लगान कीमत द्वारा निर्धारित होता है कि कीमत को निर्धारित करता है।" समझाइए।
6. "लगान एक बड़ी प्रजाति की उपजाति है। व्याख्या कीजिए।
7. हस्तान्तरण आय किसे कहते हैं? लगान के निर्धारण में इसकी क्या भूमिका हैं?
8. आभास लगान क्या? लगान तथा आभास लगान में अन्तर कीजिए।

9. "लगान तब उत्पन्न होता है जब किसी साधन की पूर्ति लोच से कम होती है।" विवेचना कीजिए।

10. आर्थिक लागन कैसे निर्धारित होता है? क्या आर्थिक लगान फिर भी होगा जब:
    (i) भूमि के सभी टुकाड़ों की उपजाऊ शक्ति एक समान हो।
    (ii) भूस्वामी स्वयं ही खेती करता हो।

[**संकेत:** पहले बताइए कि आर्थिक लगान क्या है? फिर रिकार्डो और आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार बताइए कि लगान का निर्धारण किस प्रकार होता है? (i) लगान उत्पन्न होगा क्योंकि लगान तो घटते ही सीमान्त उत्पादन के नियम के कारण होता है। (ii) लगान उत्पन्न होगा परन्तु तब किसानों उसे स्वयं रखेगा।]

अध्याय-30

ब्याज (Interest)

अर्थ
(Meaning)

पूँजी (मुद्रा) के प्रयोग के बदले दी जाने वाली कीमत को ब्याज कहा जाता है। यह सही है कि मुद्रा अपने आप में उत्पादन का साधन नहीं है, लेकिन मुद्रा की मदद से मशीनें, भवन बिजली, कच्चा माल आदि सब खरीदे जा सकते हैं। जो उत्पादन प्रक्रिया की जरूरत होती है। ये जरूरतमन्द लोग (ऋणी–Borrower) कुछ समय के लिए अतिरिक्त मुद्रा वाले लोगों (ऋणदाता–Lender) से पैसा लेकर अपना काम चलाते हैं। मुद्रा की इन सेवाओं के बदले वे ऋणदाताओं को जो कीमत या पुरस्कार देते हैं वही ब्याज है। वही ब्याज शब्द का प्रयोग दो रूपों में किया जाता है।

कुल ब्याज

शुद्ध ब्याज

1.1 कुल ब्याज

आम व्यापार में ब्याज शब्द का प्रयोग कुल ब्याज के लिये ही किया जाता है। ऋणी द्वारा ऋणदाता को पूँजी के प्रयोग के बदले दिये जाने वाले भुगतान को कुल ब्याज कहा जाता है। इसमें पूँजी की सेवाओं की कीमत के साथ–साथ, ऋणदाता द्वारा उठाये जाने वाले जोखिम, प्रबन्धन व असुविधाओं के पुरस्कार भी शामिल होते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि कुल ब्याज निम्नलिखित तत्त्वों से मिल कर बनता है।

1. **शुद्ध ब्याजः** यह मुद्रा की सेवाओं के पुरस्कार का फल है।
2. **जोखिम का पुरस्कारः** पूँजी वापिस न मिलने का जोखिम हर वक्त ऋणदाता के सिर पर रहता है। यह जोखिम दो तरफ से हो सकता है।

   ऋणी का व्यवसाय ही चौपट हो जाये। इसलिए वह चाहते हुए भी ऋण वापिस न दे पाये।

   ऋणी की नीयत बदल जाये। वह क्षमता होते हुए भी पैसे वापस न करे।

हालाँकि इस तरह के जोखिमों को कम करने की ऋणदाता द्वारा कई तरह से कोशिश की जाती है। लेकिन फिर भी कुछ न कुछ जोखिम बना ही रहता है।

3. **प्रबन्धन का पुरस्कारः** ऋणदाता ऋण का हिसाब किताब रखने के लिये दफ्तर, मुनीम, स्टेशनरी आदि, ऋण उगाही पर आने वाले कानून व अन्य प्रकार की गतिविधियों के प्रबन्धन पर खर्च करता है। कुल ब्याज के रूप में मिलने वाली कुल राशि का एक अंश उसके प्रबन्धन का पुरस्कार भी होता है।
4. **असुविधाओं का पुरस्कारः** ऋणदाता अगर पैसे उधार न दे तो उस पैसे से अपने लिये अनेक सुविधायें खरीद सकता है। ऋण देने पर उसे इन सुविधाओं का त्याग करना पड़ता है अर्थात् वर्तमान में असुविधा उठानी पड़ती है। कुल ब्याज में एक अंश इन असुविधाओं का परुस्कार भी होता है।

1.2 शुद्ध ब्याज

सिर्फ और सिर्फ मुद्रा के प्रयोग के लिए चुकाई जाने वाली राशि शुद्ध ब्याज कहलाती है।

अर्थात् पूँजी के उस ऋण का पुरस्कार जिसमें न कोई जोखिम हो, न असुविधा तथा न ही प्रबन्धन की जरूरत। अतः हम कह सकते है कि

शुद्ध ब्याज=कुल ब्याज–जोखिम का पुरस्कार–प्रबन्धन का पुरस्कार–असुविधा का पुरस्कार

मान लो एक आदमी ने 10,000 रुपये का ऋण दिया। उसके बदले उसे ब्याज के रूप में 1000 रुपये मिलते हैं। यह कुल ब्याज है। अब माना लो

जोखिम का पुरस्कार = 150 रुपये

असुविधा का पुरस्कार = 200 रुपये

प्रबन्धन का पुरस्कार = 100 रुपये

तो

शुध ब्याज = 1000–150–200–100=550

1.3 कुल व शुद्ध ब्याज में अन्तर

ऊपरलिखित व्याख्या के आधार पर कुल ब्याज व शुद्ध ब्याज में निम्नलिखित अन्तर हैं:

1. **व्यापक/संकुचितः** कुल ब्याज की धारणा व्यापक है। शुद्ध ब्याज तो इसका एक अंश मात्र है। कुल ब्याज में शुद्ध ब्याज के अलावा जोखिम, असुविधा व प्रबन्धन के पुरस्कार भी शामिल होते हैं।
2. **दरों में अन्तरः** कुल ब्याज अनेक तत्त्वों पर निर्भर करता है। इसलिए विभिन्न व्यवसायों व विभिन्न व्यक्तियों तथा विभिन्न परिस्थितियों में कुल ब्याज की दरें भिन्न होती है। शुद्ध ब्याज मुद्रा की माँग व पूर्ति के ऊपर निर्भर करता है। इसलिये शुद्ध ब्याज की दर लगभग समान रहती है।
3. **निर्धारणः** कुल ब्याज का निर्धारण अनेक तत्त्वों पर निर्भर करता है। जैसे जोखिम, असुविधा, प्रबन्धन, समय, बाजार की अपूर्णता आदि जबकि शुद्ध ब्याज का निर्धारण मुद्रा की माँग व पूर्ति के द्वारा होता है।
4. **सैद्धान्तिक/व्यावहारिकः** आम व्यवहार में हम ब्याज की जिस धारणा का प्रयोग करते हैं, वह कुल ब्याज की धारणा है। जबकि अर्थशास्त्र में या सैद्धान्तिक तौर पर हम जिस धारणा का प्रयोग करते हैं। वह शुद्ध ब्याज की धारणा है।

1.4 (कुल) ब्याज की दरों में भिन्नता

कुल ब्याज अनेकों तत्त्वों पर निर्भर करता है। इसलिये कुल ब्याज विभिन्न व्यवसायों में, विभिन्न समय में, विभिन्न व्यक्तियों के लिये व विभिन्न परिस्थितियों में अलग–अलग पाया जाता है।

(कुल) ब्याज में भिन्नता के निम्नलिखित कारण हैं:

1. **जोखिम में भिन्नताः** जिस व्यवसाय में ज्यादा जोखिम है या जिस व्यक्ति की साख कम है ऐसे व्यवसाय या व्यक्ति को ऋण देने पर ज्यादा ब्याज मिलेगा अन्यथा कम।
2. **प्रबन्धन पर खर्चाः** अगर राशि बहुत संख्या में व कम साख वाले आदमियों को दी जाती है तो प्रबन्धन पर ज्यादा खर्चा आता है इसलिये ब्याज की दर ऊंची होती है। इसके विपरीत अगर यही राशि कुछ गिने चुने अच्छी साख वाले व्यक्तियों को दी जाती है तो प्रबन्धन पर कम खर्च आता है। इसलिये ब्याज की दर कम होगी।
3. **समय में अन्तरः** जो ऋण लम्बी अवधि के होते हैं उनकी ब्याज की दर कम होगी। ऐसा इसलिये होता है क्योंकि छोटी समय अवधि के ऋणों पर प्रबन्धन का खर्च ज्यादा आता है तथा लम्बी अवधि के ऋणों पर प्रबन्धन का कम खर्च आता है।
4. **असुविधा में अन्तरः** ऋणदाता को ऋण देने में जितनी ज्यादा असुविधा उठानी पड़ेगी, उतनी ही ब्याज की दर ज्यादा होगी।
5. **पूँजी बाजार में बाज़ार की अपूर्णताः** अगर पूँज़ी बाजार में एकाधिकार है तो ब्याज की दर पूर्ण प्रतियोगिता पूँजी बाजार से ज्यादा मिलेगी।

6. **जमानत:** जमानत जितनी सुरक्षित होगी, ऋण पर ब्याज की दर उतनी ही कम होगी।
7. **जमानत की तरलता:** जमानत जितनी तरल होगी ऋण पर ब्याज की दर उतनी ही कम होगी। जैसे सोने, चांदी की जमानत पर ब्याज की दर कम होगी जबकि मकान, फैक्टरी आदि की जमानत पर ब्याज की दर ज्यादा होगी।
8. **ऋणी की साख:** जिस ऋणी की साख बढ़िया होगी सस्ती दरों पर भी ब्याज मिल जायेगा जबकि जिस ऋणी की साख कम होगी उसे मंहगी दरों पर ब्याज मिलेगा।
9. **ऋण लेने का उद्देश्य:** अगर ऋण उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए लिया जाता है तो उस पर ब्याज की दर कम होगी। क्योंकि ऐसा ऋण सुरक्षित माना जाता है। उसके समय पर वापस आने की सम्भावना ज्यादा होती है। इसके विपरीत उपभोग के लिये ऋण पर ब्याज की दर ज्यादा होती है।
10. **बैंकों की सुविधायें:** जिस देश में बैंकिंग सेवा पूरी तरह विकसित हो उस देश में ब्याज की दरों में ज्यादा भिन्नता नहीं पाई जाती है। अन्यथा ब्याज की दरों में भिन्नता ज्यादा होगी।
11. **पूँजी की गतिशीलता:** जिस देश में पूँजी बाजार विकसित होता है। वहाँ पूँजी के एक उद्योग से दूसरे उद्योग व एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने में गतिशीलता पाई जाती है। ऐसी जगह पर ब्याज की दरों में समान होने की प्रवृति पाई जाती है। अन्यथा ब्याज की दरों में भिन्नता अपेक्षाकृत ज्यादा होगी।

ब्याज के सिद्धान्त
(Theories of Interest)

ब्याज के अनेक सिद्धान्त हैं। मोटे तौर पर उन्हें तीन हिस्सों में बाँटा जा सकता है। अर्थशास्त्र के इतिहास में 1776 (एडम स्मिथ की पुस्तक के प्रकाशन के बाद) से लेकर 100 साल बाद तक का युग परम्परावादी युग माना जाता है। फिर 1936 (केन्ज की प्रसिद्ध पुस्तक के प्रकाशन का समय) तक समय नवपरम्परावादी युग माना जाता है। इन्हीं कालों से सम्बन्धित ब्याज निर्धारण के सिद्धान्त भी अलग–अलग हैं। ये निम्नलिखित हैं।

i. ब्याज का परम्परावादी सिद्धान्त

ii. ब्याज का नवपरम्परावादी सिद्धान्त

iii. ब्याज का तरलता अधिमन (केन्ज़ियन) सिद्धान्त

हालांकि सभी सिद्धान्तों के अनुसार ब्याज, पूँजी की कीमत है तथा इसका निर्धारण पूँजी की मांग व पूर्ति के द्वारा निर्धारित होता है। परन्तु पूँजी की मांग व पूर्ति को निर्धारित करने वाले तत्त्वों पर इनमें वैचारिक अन्तर पाया जाता है। ब्याज के विभिन्न सिद्धान्तों की व्याख्या निम्न प्रकार से है।

2. ब्याज का परम्परावादी सिद्धान्त

ब्याज का परम्परावादी सिद्धान्त, जे.बी. से (J.B. Say), जोन स्टुवर्ट मिल (J.S. Mill) आदि परम्परावादी अर्थशास्त्रियों ने दिया है। उनके अनुसार ब्याज, पूँजी की मांग व पूर्ति पर निर्भर करती है।

पूँजी की पूर्ति वास्तविक तत्त्वों जैसे त्याग, उपभोग स्थगन, समय अधिमान पर निर्भर करती है। इसलिये इसको ब्याज का वास्तविक सिद्धान्त कहा जाता है। पूँजी की मांग उसकी उत्पादकता के लिये की जाती है। पूँजी की मांग पूर्ति की विस्तृत व्याख्या निम्नलिखित है।

पूँजी की माँग

पूँजी (धन) अपने आप में कोई उत्पादन नहीं करती। परन्तु पूँजी (धन) की मदद से मशीनें फेक्टरी आदि खरीदी जा सकती है। जो उत्पादन प्रक्रिया में सहयोग करती है। परम्परावादी अर्थशास्त्रियों की यह मान्यता है कि पूँजी की माँग निवेश के लिये की जाती है। दूसरे शब्दों में पूँजी की माँग उसकी उत्पादकता के कारण की जाती है। इन अर्थशास्त्रियों की दूसरी मान्यता यह है कि अन्य साधनों की मात्रा स्थिर रहने पर पूँजी की मात्रा बढ़ाने पर पूँजी की सीमान्त उत्पादकता गिरती जाती है। अर्थात् पूँजी वक्र बायें से दायें नीचे की ओर झुका हुआ होता हैं।

एक उद्यमी पूँजी की मांग उस मात्रा तक करता है जिस मात्रा पर पूँजी की सीमान्त इकाई को उधार लेने का खर्चा (ब्याज) पूँजी की सीमान्त इकाई द्वारा पैदा की जाने वाली आय पूंजी की सीमान्त उत्पादकता के बराबर न हो जाये। इसे निम्न रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

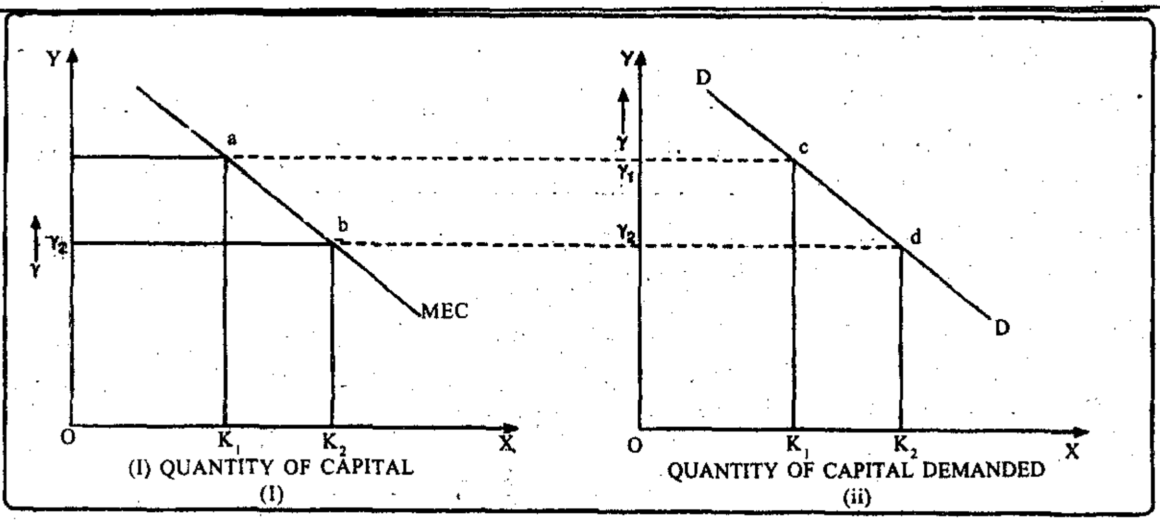

रेखाचित्र 1 में Ox अक्ष पर ब्याज की दर ली गई है।

MEC = Marginal Efficiency of Capital (पूँजी की सीमान्त उत्पादकता)

DD = Demand Curve of Capital (पूँजी का माँग वक्र), रेखचित्र (1) में ब्याज के r_1 में स्तर पर MEC तथा r_1 में समानता *a* बिन्दु पर होती है। इस बिन्दु पर k_1 मात्रा में पूँजी की माँग की जाती है। अगर ब्याज घटा कर r_2 कर दिया जाये तो MEC के साथ समानता b बिन्दु पर होती है। *b* बिन्दु पर k_2 मात्रा में पूँजी की मांग की जाती है। रेखाचित्र 1 के आधार पर रेखाचित्र 2 में पूँजी का माँग वक्र खीचाँ गया है। स्पष्ट है कि यह बायें से दायें नीचे की ओर झुका हुआ होता है।

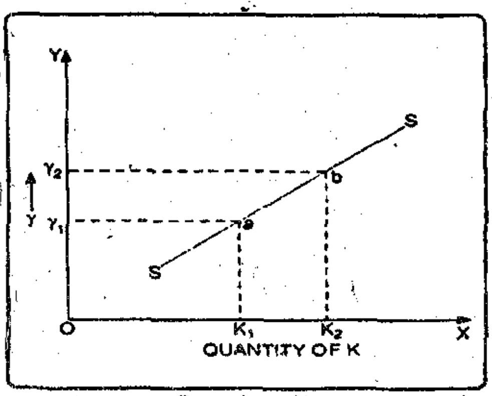

Quantity of k

चित्र 2

Quantity of k

पूँजी की पूर्ति

परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार कोई भी मनुषय अपनी आय में से कुछ धन बचा कर इसकी पूर्ति उद्यमी को सिर्फ इसलिये करता है कि इसके लिये उसे ब्याज के रूप में पुरस्कार मिलता है। धन की बचत करने पर उसे अपने वर्तमान उपभोग में से कुछ त्याग करना पड़ता है। जिसे वह भविष्य के लिये स्थागित कर देता है। पुरस्कार (ब्याज) की मात्रा जितनी ज्यादा मनुष्य उतना ही ज्यादा त्याग करने को तैयार हो जायेगा। अर्थात् पूँजी की पूर्ति का वक्र बायें से दायें ऊपर उठता हुआ होगा। इसे निम्न रेखाचित्र द्वारा दर्शाया गया है।

रेखाचित्र नं 2 में Or_1 ब्याज की दर पर OK_1 मात्रा में पूँजी की पूर्ति की जाती है। इस a बिन्दु द्वारा दर्शाया गया हैं। Or_2 ब्याज की दर पर OK_2 मात्रा में पूँजी की पूर्ति की जाती है, जिसे बिन्दु b द्वारा दर्शाया गया है। a तथा b बिन्दुओं को मिलाते हुए जो रेखा खींची जाती है। वह पूँजी का पूर्ति वक्र (SS) होता है। स्पष्ट है कि दायें से बायें ऊपर उठती हुई रेखा है।

ब्याज का निर्धारण

ब्याज की दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जिस पर पूँजी की माँग व पूर्ति बराबर हो जाती है। ब्याज दर का निर्धारण निम्न रेखाचित्र से दर्शाया जा सकता है।

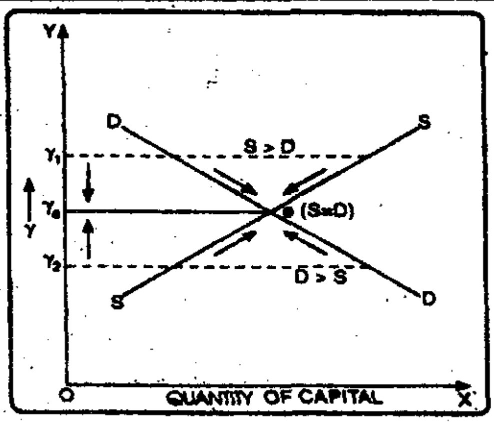

Quantity of Capital
चित्र 3

रेखाचित्र नं 3 में DD तथा SS क्रमशः पूँजी के माँग तथा पूर्ति वक्र हैं। ये दोनों वक्र ऐक दूसरे को e बिन्दु पर काटते हैं। इस बिन्दु पर पूँजी की मांग तथा पूर्ति बराबर होते हैं। इसलिये सन्तुलन ब्याज का स्तर r_e होगा। अगर ब्याज r_e न होकर r_l हो तो पूँजी की पूर्ति, पूँजी की माँग से कम (S<D) हो जाती है। इसलिये ब्याज बढ़ कर r_e हो जाता है। अतः हम कह सकते है कि ब्याज की दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होगा जहाँ की माँग व पूर्ति बराबर होते हैं।

आलोचायें

ब्याजब निर्धारण के परम्परावादी सिद्धान्त की निम्न आधारों पर आलोचना की जाती हैः

1. **पूर्ण रोज़गार की गलत धारणाः** परम्परावादी सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित हे कि अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोज़गार की स्थिति है। यह मान्यता उन अर्थशास्त्रियों के समय में तो सत्य हो सकती है। लेकिन आधुनिक युग में किसी भी अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोज़गार की स्थिति नहीं है।
2. **बचत (पूर्ति) ब्याज पर निर्भर नहीं करतीः** इस सिद्धान्त के अनुसार पूर्ति (बचत) पर निर्भर करती है ताकि इनका सीधा सम्बन्ध है अर्थात् ब्याज ज्यादा होगा तो पूर्ति ज्यादा होगी, तथा ब्याज कम होगा तो पूर्ति भी कम होगी। परन्तु आधुनिक

अर्थशास्त्रियों के अनुसार बचत (पूँजी की पूर्ति) आय पर निर्भर करती है। अर्थात् ज्यादा आय होगी तो ज्यादा बचाया जायेगा तथा आय कम होगी तो कम बचाया जायेगा।

3. **मौद्रिक तत्त्वों की अवेहलना:** इस सिद्धान्त के अनुसार पूर्ति वास्तविक तत्त्वों जैसे त्याग, उपभोग स्थगन तथा समय अधिमान आदि पर निर्भर करती है। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार ब्याज निर्धारण में मौद्रिक तत्त्वों जैसे आय का स्तर, बैंकिंग का विकास आदि का ज्यादा प्रभाव पड़ता है।

4. **मुद्रा तटस्थ नहीं है:** इस सिद्धान्त के अनुसार मुद्रा सिर्फ विनिमय का माध्यम मात्र है। यह ब्याज की दर आदि को प्रभावित नहीं करती। परन्तु यह सत्य नहीं है। मुद्रा की मात्रा ज्यादा होने पर ब्याज की दर कम हो जाती है अर्थात् मुद्रा तटस्थ नहीं है। इसकी मात्रा में होने वाले परिवर्तन अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव डालते हैं।

5. **अनिर्धारित सिद्धान्त:** इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर का निर्धारण नहीं किया जा सकता क्योंकि इसमें आय के स्तर का कोई जिक्र नहीं है। आय के बगैर बचत ज्ञात नहीं होती और बचत के बिना ब्याज का निर्धारण नहीं किया जा सकता।

6. **माँग की संकुचित धारणा:** परम्परावादी सिद्धान्त के अनुसार पूँजी की माँग सिर्फ निवेश के लिये की जाती है। परन्तु पूँजी की माँग उपभोग व्यय तथा सरकारी व्यय के लिये भी की जाती है।

7. **पूर्ति की संकुचित धारणा:** इस सिद्धान्त के अनुसार बचत वर्तमान आय में से ही की जाती है परन्तु यह बचत (पूर्ति) की संकुचित धारणा है क्योंकि आज के युग में बैंक साखा पूँजी की पूर्ति का मुख्य स्रोत है। बैंक अपने पास उपलब्ध कोष से कोई गुणा पूँजी की पूर्ति कर देते हैं। इसके अलावा पहले से जमा रकम, पूँजी की पूर्ति का अन्य साधन है।

ब्याज का नवपरम्परावादी सिद्धान्त
(Neo-Classical Theory of Interest)

अथवा

ब्याज का ऋण योग्य सिद्धान्त
(Supply of Loanable Funds)

ऋण योग्य कोष की पूर्ति निम्न चार स्रोतों से होती है:

1. **बचत (Saving):** बचत आय में से की जाती है। जितना ज्यादा ब्याज होगा, उतनी ज्यादा बचत होगी अर्थात् ब्याज तथा बचत में सीधा सम्बन्ध है।

2. **बैंक साख** (Bank Credit-B): बैंक अपने आरक्षित कोष से कई गुणा साख का निर्माण करते हैं। साख की मात्रा ब्याज पर निर्भर करती है अर्थात बैंकों द्वारा कम ब्याज पर कम साख तथा ज्यादा ब्याज पर ज्यादा साख उपलब्ध कराई जायेगी। स्पष्ट है कि बैंक साख तथा ब्याज का भी सीधा सम्बन्ध है।

3. **असंचय** (Dishoarding-Dh): इसका अर्थ है पहले से संचित (जमा किये गये) धन में से पूर्ति करना। असंचय का भी ब्याज की दर से सीधा सम्बन्ध है।

4. **अनिवेश** (Dis-investment-Di): हर साल मशीनों में घिसावट व टूट–फूट होती रहती है। इसकी मुरम्मत व रखरखाव पर उद्यमी को खर्चा करना पड़ता है। अगर वह इस खर्चे को न करे तो यह अनिवेश कहलायेगा। इस धन को ब्याज पर दे दिया जाता है। अनिवेश व ब्याज में भी सीधा सम्बन्ध है।

ऊपरलिखित चारों स्रोतों से होने वाली पूर्ति का जोड़ ही ऋण योग्य कोष की पूर्ति होगी।

अर्थात

Supply of Loanable Funds-SLF=S+B+Dh+Di

इसे अग्र रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

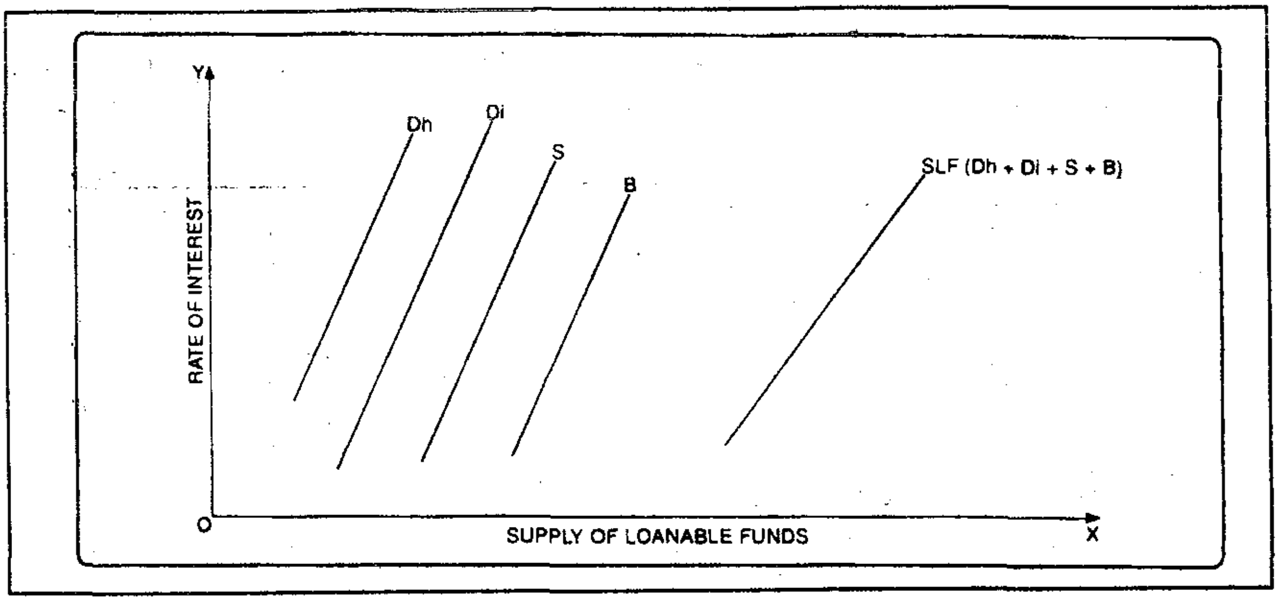

Supply of Loanable Funds

चित्र 4

रेखचित्र नं० 4 में ऋण योग्य कोष की पूर्ति के विभिन्न स्रोतों (Dh, Ds, S, B) दर्शाये गये हैं। इन सबका जोड़ ही ऋण योग्य कोष का पूर्ति वक्र है, जिसे SLF के नाम से दर्शाया गया है। चूँकि S, B, Dh तथा Di सबकी ढलान धनात्मक है। इसलिये ऋण योग्य मुद्रा कोष की पूर्ति (SLF-Supply of Lonable Funds) की ढाल भी धनात्मक होगी। अर्थात् SLF तथा r का सीधा सम्बन्ध होता है।

ऋण योग्य कोष की माँग
(Demand for Loable Funds)

परम्परावादी अर्थशास्त्रियों का ये मत था कि पूँजी की माँग सिर्फ निवेश के लिये की जाती है। परन्तु नवपरम्परावादियों के अनुसार इस माँग का आधार विस्तृत है। इसकी व्याख्या निम्न प्रकार से है।

1. **निवेश के लिये माँग** (Demand for investment-I): ऋण योग्य कोष की माँग मुख्य तौर पर निवेश के लिये की जाती है। यह माँग उस मात्रा तक की जाती है तब तक ऋण की आखिरी इकाई से मिलने वाली आय (सीमान्त उत्पादकता) ऋण की आखिरी इकाई के खर्चे (ब्याज) के बराबर न हो जाये। जैसे–जैसे पूँजी मी मात्रा बढती है उसकी सीमान्त उत्पादकता घटती जायेगी। इसलिये अधिक ऋण की माँग कम ब्याज पर ही की जा सकती है अर्थात् ब्याज तथा ऋण योग्य कोष की निवेश के लिये माँग का विपरीत सम्बन्ध $\left(r \times \frac{1}{r}\right)$ है।

2. **उपभोग के लिये माँग** (Demand for Consumption-C): नवपरम्परावादियों के अनुसार उपभोग वस्तुओं (जैसे स्कूटर, कार, फ्रिज, टी०वी आदि) के लिये भी ऋण योग्य कोष की माँग की जा सकती है। अगर ब्याज कम होगा तो यह माँग ज्यादा होगी अन्यथा कम अर्थात् उपभोग माँग व ब्याज का विपरित सम्बन्ध है। hoarding $\left(C \times \frac{1}{r}\right)$ है।

3. **संचय के लिये माँग** (Demand for - H): मुद्रा से कोई भी वस्तु किसी भी समय खरीदी जा सकती है परन्तु प्लाट, मकान, कुर्सी मेज आदि से नहीं। मुद्रा के इसी गुण के कारण संचय के लिये इसकी माँग की जाती है। ब्याज जब कम होता है तो लोग खुश होकर ज्यादा संचय करते हैं। अन्यथा उल्टा होता है। अर्थात् संचय तथा ब्याज में विपरीत सम्बन्ध $\left(H \times \frac{1}{r}\right)$ है।

ऋण योग्य कोष के उपरोक्त तीनों स्रोतों को मिलाकर कुल ऋण योग्य कोष की माँग (Demand for Loanable Funds-DLF) निकाली जा सकती है। चूँकि स्रोतों (I,C,H) की ढलान ऋणात्मक (विपरीत सम्बन्ध होने के कारण) है इसलिये DLF की ढलान भी ऋणात्मक होगी। इसे निम्न रेखाचित्र द्वारा दर्शाया जा सकता है।

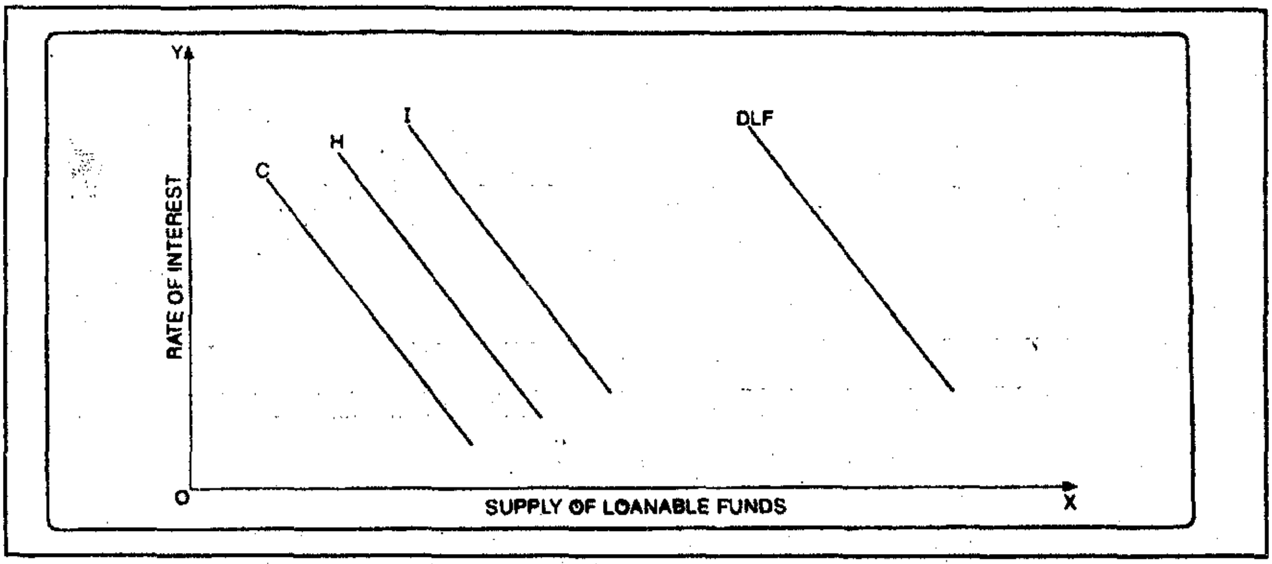

Demand for Loanable Funds

चित्र 5

ब्याज दर का निर्धारण
(Determination of Interest Rate)

इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज का निर्धारण ऋण योग्य कोष की माँग व पूर्ति के आधार पर निकाला जाता है। जहाँ ये दोनों बराबर होते हैं अर्थात् जहाँ ये दोनों वक्र एक दूसरे को काटते हैं वही स्तर सन्तुलन ब्याज का स्तर होता है। इसे निम्न रेखाचित्र द्वारा दर्शाया जा सकता है।

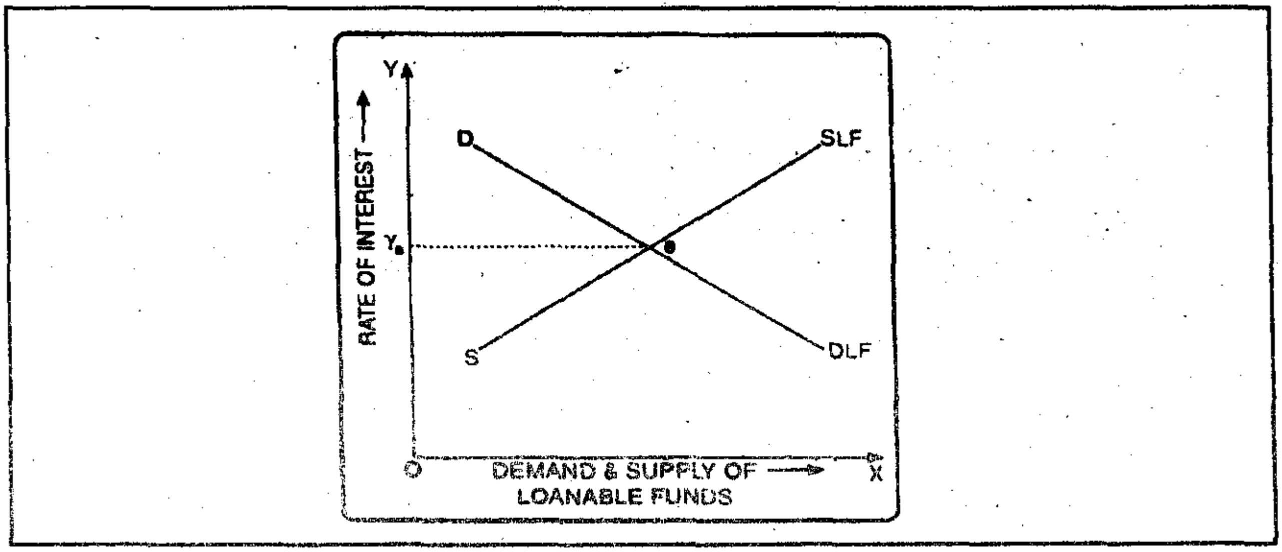

चित्र 6

रेखाचित्र नं० 6 में

SLF = Supply of Loanable funds curve
(ऋणयोग्य कोष पूर्ति वक्र)

DLF = Demand for loanable funds curve
(ऋणयोग्य कोष माँग वक्र)

e = Equilibrium point
(सन्तुलन बिन्दु)

R_e = Equilibrium rate of interest हैं।
(सन्तुलन ब्याज दर)

ब्याज दर में परिवर्तन
(Change in Rate of Interest)

रेखाचित्र नं० 6 से यह अन्दाजा लगाया जा सकता है कि ब्याज की दर में परिवतर्तन SLF या DLF में परिवर्तन के कारण हो सकता है। SLF तथा DLF में परिवर्तन S, D*i*, D*h*, B, C, I, H आदि तत्त्वों में परिवर्तन के कारण होता है। अतः हम कह सकते है कि ब्याज की दर में परिवर्तन बचत, अनिवेश, अंसचय, बैंक साख, उपभोग, निवेश, संचय आदि की मात्रा में परिवर्तन के कारण होता है।

नवपरम्परावादी सिद्धान्त की व्याख्या से स्पष्ट है कि यह परम्परावादी सिद्धान्त से बेहतर सिद्धान्त है क्योंकि यह ब्याज निर्धारण में वास्तविक तत्त्वों (बचत निवेश, उत्पादकता आदि) के साथ–साथ मौद्रिक तत्त्वों (मुद्रा का संचय, असंचय, बैंक मुद्रा आदि) को भी ध्यान में रखता है। लेकिन अनेक अर्थशास्त्रियें ने इस सिद्धान्त की विभिन्न बिन्दुओं पर आलोचना की है।

ऋणयोग्य सिद्धान्त की आलोचनायें
(Criticisms of Lonable Funds Theory)

इस सिद्धान्त की आलोचनायें निम्नलिखित हैं:

1. **सामान्य सिद्धान्त नहीं** (Not a general theory): यह सिद्धान्त सिर्फ पूर्ण रोजगार की अवस्था में ही लागू होता है अपूर्ण रोज़गार की स्थिति में नहीं। अर्थात् यह हर स्थिति में नहीं। अर्थात् यह हर स्थिति मे लागू नहीं होता। यह सामान्य सिद्धान्त न होकर एक आंशिक सिद्धान्त है।
2. **अनिर्धारित सिद्धान्त** (Indeterminate Theory): इस सिद्धान्त ब्याज निर्धारण करने में बचत एक मुख्य तत्त्व है। बचत, आय पर निर्भर करती है जिसका इस सिद्धान्त में कोई जिक्र नहीं है। अतः यह सिद्धान्त अनिर्धारित है।
3. **ऋणयोग्य कोष की माँग ब्याज पर निर्भर नहीं करती** (Demand for loanable funds does not depend on interest): इस सिद्धान्त की यह धारणा गलत है कि ऋणयोग्य कोष की माँग ब्याज की दर पर निर्भर करती है वास्तव में यह लाभ की आशा पर निर्भर करती है अगर अर्थव्यवस्था में तेजी है तो लाभ की आशा ज्यादा होती है। ऐसी स्थिति में ब्याज ज्यादा होने पर ऋणयोग्य कोष की माँग ज्यादा की जाती है। अन्यथा इसके विपरित होता है।
4. **बचत की गलत धारणा** (Wront notion of saving): इस सिद्धान्त के अनुसार बचत, ब्याज पर निर्भर करती है। यह उचित धारणा नहीं है। वास्तव में बचत आय के स्तर पर निर्भर करता है जो वास्तविकता नहीं है। सरकारी निवेश तो सामाजिक कल्याण से प्रेरित होता है तथा निजी निवेश पर पूँजी की सीमान्त उत्पादकता का ब्याज से ज्यादा प्रभाव पड़ता है।
5. **अवास्तिविक** (Unreal): इस सिद्धान्त के अनुसार निवेश, ब्याज की दर पर निर्भर करता है जो वास्तविकता नहीं है सरकारी निवेश तो सामाजिक कल्याण से प्रेरित होता है तथा निजी निवेश पूँजी की सीमान्त उत्पादकाता का ब्याज से ज्यादा प्रभाव पड़ता है।

6. **वास्तविक व मौद्रिक तत्त्वों का स्पष्ट मिश्रण नहीं** (Not a clear integeration of real monetary factors): वैसे तो यह सिद्धान्त मौद्रिक व वास्तविक दोनों तत्त्वों को ध्यान रखता है लेकिन इनकी अन्तः क्रिया यह उतनी स्पष्ट नहीं कर पाता, जितनी कि केन्ज ने की है।

ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त
(Liquidity Preference Theory)

ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त अर्थशास्त्र को लॉर्ड केन्ज की देन है। इस सिद्धान्त की व्याख्या उन्होंने सन् 1936 में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *"The General Theory of Employment, Interest and Money" में की।*

उनके अनुसार ब्याज बचत के त्याग का पुरस्कार नहीं है बल्कि यह तरलता से अलग होने का पुरस्कार है। धन के अनेक रूप हैं जैसे मकार, खेत, फैक्टरी व मुद्रा आदि। इनमें से मुद्रा को धन का तरल रूप माना जाता है। क्योंकि मुद्रा से बिना किसी समय गंवाये कुछ भी वस्तु खरीदी जा सकती है परन्तु मकान व खेत आदि से नहीं इसलिए अल्पकाल में मनुष्य अपने धन का कुछ भाग तरलता मुद्रा के रूप में रखना चाहता है। अल्पकाल में कुछ धन को मुद्रा के रूप में रखने की इच्छा तरलता अधिमान (Liquidity Preference) कहा जाता है। इसी तरलता से अलग होन का पुरस्कार ब्याज है। अन्य शब्दों में हम कय सकते हैं कि ब्याज मुद्रा की मांग व पूर्ति के द्वारा निर्धारित होता है अर्थात् केन्ज के अनुसार ब्याज निर्धारण एक वास्तविक क्रिया (Real phenomenon) न होकर, एक मौद्रिक क्रिया (Money Phenomenon) है। तरलता अधिमान सिद्धान्त की व्याख्या निम्न प्रकार से की जा सकती है।

तरलता अधिमान (मुद्रा) की माँग
[Demand for Liquidity Preference (Money)]

केन्ज के अनुसार मुद्रा की माँग तीन उद्देश्यों के लिये की जाती है:

1. **क्रय-विक्रय उद्देश्य** (Transaction Mative)
2. **सावधानी उद्देश्य** (Precautionary Motive)
3. **सट्टा उद्देश्य** (Speculative Motive)

इन तीनों उद्देश्यों के लिये की गई मुद्रा की माँग को जोड़ को कुल माँग कहा जाता है। इसलिये कुल माँग निकालने के लिये हम इन तीनों का अलग–अलग अध्ययन करेंगे।

1. **क्रय-विक्रय उद्देश्य** (Transaction Mative): उद्योगपति, व्यपारी व आम आदमी अपनी जरूरत की वस्तुओं को खरीदने–बेचने के लिये मुद्रा की माँग करते हैं। इस उद्देश्य के लियु मुद्रा की माँग निम्न तत्त्वों पर निर्भर करती है।

   (i) **आय** (Income-Y): जिसकी जितनी ज्यादा आय होगी उतने ही ज्यादा उसके खर्चे होंगे। इसलिए वह क्रय–विक्रय के लिये ज्यादा मुद्रा अपने पास रखना चाहेगें। इसी प्रकार अगर आय कम होगी तो क्रय–विक्रय के लिये मुद्रा की माँग कम होगी। हम कह सकते हैं कि $Lt=F(Y)$

   यहाँ Lt=Liquidity (Money) demanded for transcation motive (क्रय–विक्रय उद्देश्य के लिये मुद्रा की माँग)

   f=function (निर्भर करती है)

   y= Income (आय)

   अर्थात Mt, आय की मात्रा पर निर्भर करती है।

   (ii) **आय मिलने के बीच समय अवधि** (Time Gap between the Receipts of Income): जितनी ज्यदा आय मिलने के बीच की अवधि होगी, उतनी ही ज्यदा लेन–देन का काम चलाने के लिये नकदी ही अपने पास रखनी पड़ेगी। इसके विपरीत यह अवधि जितनी कम होगी उतनी ही कम नगदी की जरूरत पड़ेगी।

   (iii) **आदतें** (Habits): कुछ आदमी स्वभाव से खर्चीले होते हैं उन्हें खर्चे का काम चलने के लिए ज्यादा नकदी चाहिये। इसके विपरीत कँजूस कम नकदी की माँग करेगा।

ऊपरलिखित व्याख्या से स्पष्ट है कि क्रय–विक्रय उद्देश्य के लिये नकदी आय तथा अन्य तत्त्वों पर ता निर्भर करती है परन्तु ब्याज का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसे निम्न रेखाचित्र द्वारा दर्शाया जा सकता है।

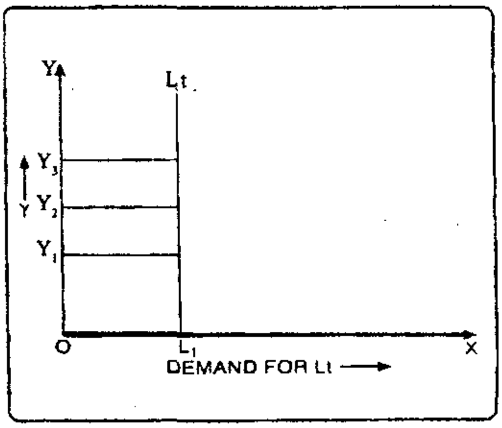

चित्र 7

रेखाचित्र नं० 7 से स्पष्ट है कि ब्याज (r) के कम या ज्यादा होने से Lt की माँग पर कोई प्रभव नहीं पड़ता।

2. **सावधानी उद्देश्य** (Precautionary Motive-Lp): नगदी की माँग बीमारी, दुर्घटना आदि से निपटने के लिये भी की जाती है क्योंकि ये सब बिना बताये आते हैं। इनसे निपटने के लिये कुछ न कुछ नगदी रखनी पड़ती है *Lp* निम्न तत्त्वों पर निर्भरर करती है।

   (i) आय (Income-Y): अमीर सावधानी उद्देश्य के लिये जयादा नगदी रख सकते हैं जबकि गरीब कम। अर्थात्

   $$Lp=f(y)$$

   (ii) **व्यवहार** (Nature): कुछ मनुष्य भविष्य के बारे में बुरा ज्यादा सोचते हैं। ऐसे लोग नगदी ज्यादा बचा कर रखते है। जो लोग भविष्य के उज्जवल पहलू को ज्यादा देखते हैं वो सावधानी उद्देश्य के लिये कम नगदी रखते हैं।

   (iii) **दूरदर्शिता** (Parsightedness): दूरदर्शिता के आधार पर सावधानी उद्देश्य के लिये कम या ज्यादा नगदी की माँग की जा सकती है।

ऊपरलिखित व्याख्या से स्पष्ट है कि *Lp* पर अन्य तत्त्वों का तो प्रभाव पड़ता है परन्तु ब्याज का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। अर्थात् ब्याज (r) कम हो या ज्यादा, Lp उतनी ही रहती है। इसे निम्न रेखाचित्र के द्वारा दर्शाया जा सकता है।

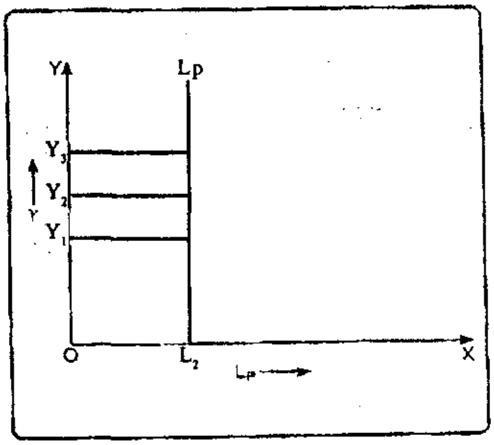

चित्र 8

रेखाचित्र नं० 8 से स्पष्ट है कि ब्याज में परिवर्तन का L*p* पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ब्याज की विभिन्न दरों r_1, r_2, r_3 आदि पर L*p* की मात्रा वही (oL_2) रहती है।

3. **सट्टा उद्देश्य** (Speculative methods-Ls): आधुनिक युग में मनुष्य बहुत सी मुद्रा शेयर व बाँड आदि खरीदने में लगाता है। इन सबके लिये नगदी की माँग, सट्टा उद्देश्य के लिये नगदी की माँग कहलाती है। जब ब्याज ज्यादा हो तो सट्टे के लिये नगदी की माँग कम की जाती है। लेकिन जब ब्याज कम हो जाये तो लागे सट्टे (शेयर) बाज़ार के लिए ज्यादा नकदी की माँग करने लगते हैं। अर्थात ब्याज की दर व सट्टे के लिये नगदी में विपरित सम्बन्ध है।

$$Ls \times 1/r$$

इसे निम्न रेखाचित्र द्वारा दर्शाया गया है

रेखाचित्र नं० 9 से स्पष्ट है कि जब ब्याज r_1 से r_2 तथा r^2 में r_3 बढ़ता है तो Ls (सट्टा उद्देश्य के लिये नकदी) Ls_1 से Ls_2 तथा Ls_2 से Ls_3 घट जाती है।

रेखाचित्र से एक बात और स्पष्ट है कि ब्याज की दर r_L (Lowest interest rate) से नीचे नहीं जाती है। L*s* वक्र इस ब्याज *की दर पर* ox *के समानान्तर हो जाती है। केन्ज ने इसे (Liquidity trap) तरलता बन्ध का नाम दिया है।* इस प्रकार केन्ज के अनुसार ब्याज की दर कभी भी शून्य नहीं हो सकती। यह भी केन्ज व नवपरम्परावादी सिद्धान्त में एक मुख्य अन्तर है परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार ब्याज की दर शून्य हो सकती है। केन्ज के अनुसार यह कभी शून्य नहीं हो सकती। केन्ज ने तरलता बन्ध की धारणा के माध्यम से इस बात का जवाब देने की कोशिश की है कि एक खास ब्याज की दर से नीचे मौद्रिक नीतियाँ क्यों फेल हो जाती हैं। ऐसा इसलिये होता है क्योंकि मौद्रिक नीति के कारण ब्याज में कोई परिवर्तन नहीं हो पाता ।

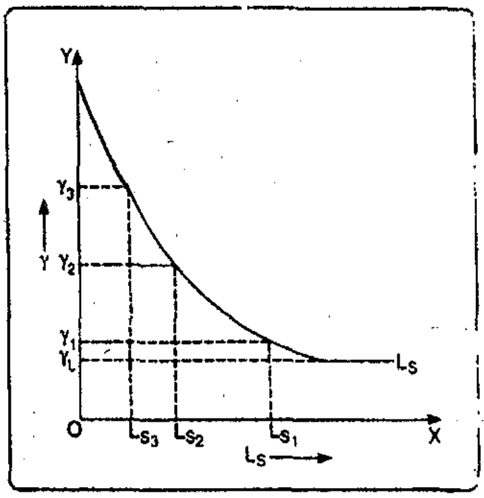

चित्र 9

तरलता अधिमान (नकदी) की कुल माँग (L_D) $L_t L_p$ तथा L_s का जोड़ होगी। इस निम्न रेखाचित्र से दर्शाया जा सकता है।

रेखाचित्र से स्पष्ट है कि तरलता अधिमान की कुल माँग, लेन–देन, सावधानी तथा सट्टा उद्देश्यों के लिये कुल माँग का जोड़ होती है।

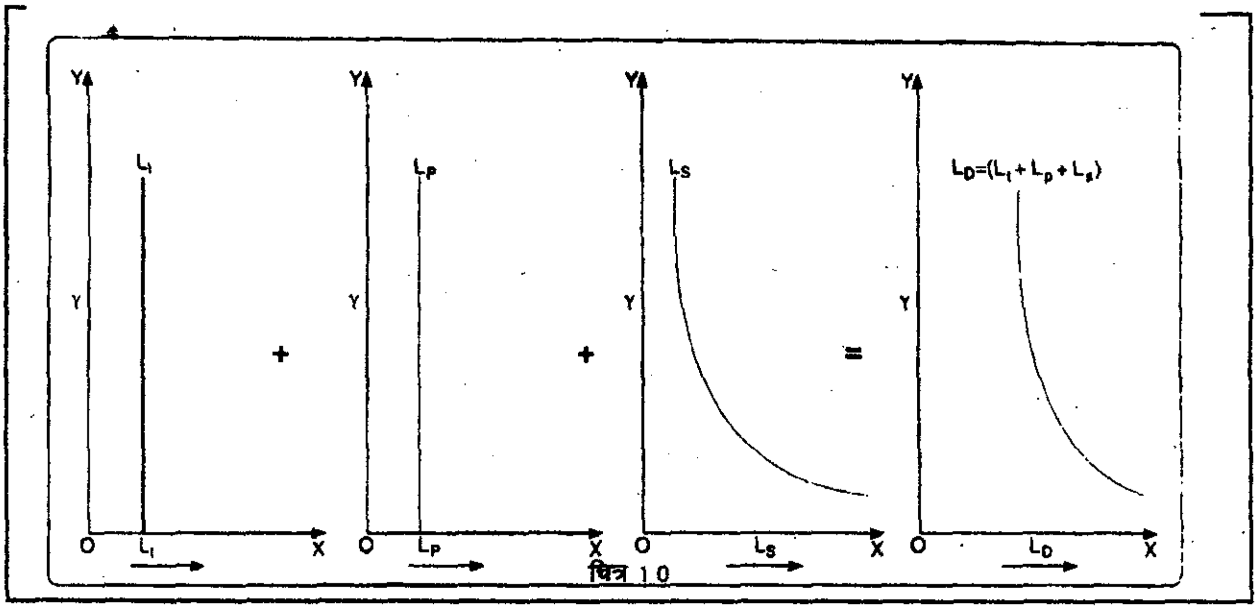

चित्र 10

तरलता अधिमान (नगदी/मुद्रा) की पूर्ति
[Supply of Liquidity Preference (Money)]

केन्ज के अनुसार अल्पकाल में एक देश की मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहती है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि सरकार कितने नोट छापती है तथा सरकार की मौद्रिक व बैंकिंग नीतियाँ क्या हैं।

वैसे दीर्घकाल में मुद्रा की पूर्ति बदल जाती है। क्योंकि दीर्घकाल में सरकार की नीतियाँ बदल जाती है।

इसे रेखाचित्र नं० 11 में दर्शाया गया है।

रेखाचित्र में Ms मुद्रा का पूर्ति वक्र है। यह *oy* अक्ष के समानान्तर है अर्थात् यह अल्पकाल में स्थिर रहती है।

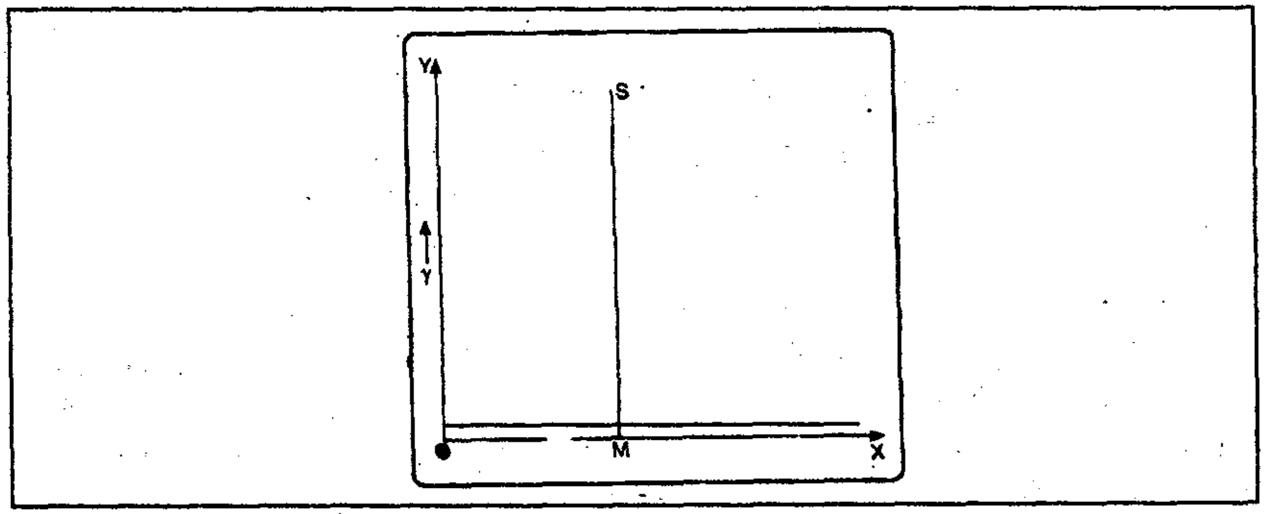

चित्र 11

सन्तुलन ब्याज दर
[Equilibrium Rate of interest]

केन्ज के अनुसार सन्तुलन ब्याज दर का निर्धारण तरलता अधिमान की कुल माँग व पूर्ति के आधार पर होता है। यहाँ ये दोनों बराबर होती हैं वहीं सन्तुलन ब्याज की दर होती है। इसे निम्न चित्र की मदद से दर्शाया जा सकता है।

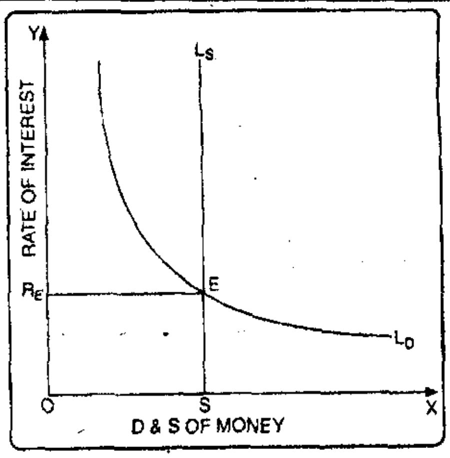

चित्र 12

रेखाचित्र नं० 12 में

L_D = *Demand for Liquidity*

तरलता अधिमान की माँग

L_s = Supply of Linquidity

तरलता अधिमान की पूर्ति

e = सन्तुलन बिन्दु

r_e = सन्तुलन ब्याज दर

चूँकि *e* बिन्दु पर मुद्रा की माँग मुद्रा की पूर्ति के बराबर है। इसलिए r_e सन्तुलन ब्याज की दर होगी।

सन्तुलन ब्याज की दर में परिवर्तन
(Changes in Equilibrium Rate of Interest)

सन्तुलन ब्याज की दर में परिवर्तन दो कारणों से आ सकता है।

1. **मुद्रा की माँग में परिवर्तन के कारण:** जब अर्थव्यवस्था में मुद्रा की माँग बढ़ जाती है तो ब्याज की दर बढ़ जाती है। इसके विपरीत जब मुद्रा (तरलता अधिमान) की माँग घट जाती है तो ब्याज की दर घट जाती है। इसे निम्न रेखाचित्र की मदद से दर्शाया गया है।

रेखाचित्र नं० 13 में जब मुद्रा की माँग LD_1 है तो बयाज की दर r_1 होती है। मुद्रा की माँग जब बढ़ कर LD_2 हो जाये तो ब्याज की दर बढ़ कर r_2 हो जाती है। अर्थात् मुद्रा की माँग व ब्याज की दर में विपरीत सम्बन्ध है।

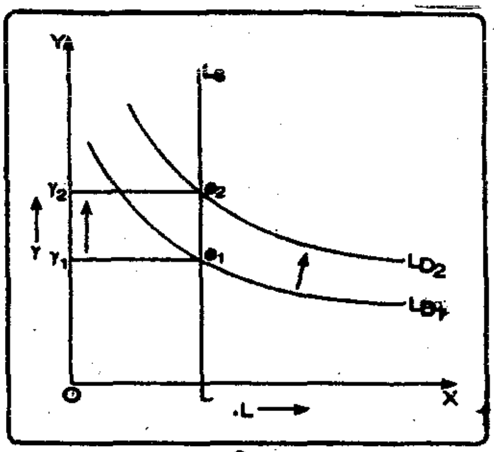

चित्र 13

2. **मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन के कारण:** किसी एक अल्पकाल में तो मुद्रा की स्थिर रहती है। परन्तु दीर्घकाल में इसमें परिवर्तन आ जाते हैं। इस कारण ब्याज में परिवर्तन हो जाता है। इसे निम्न रेखाचित्र की मदद से दर्शाया गया है।

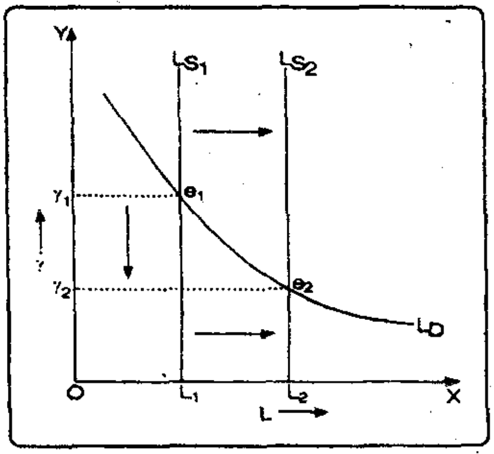

चित्र 14

रेखाचित्र नं० 14 से स्पष्ट कि जब मुद्रा की पूर्ति Ls_2 हो जाती है तो ब्याज की दर r_1 से घट कर r_2 हो जाती है अर्थात् मुद्रा की पुर्ति व ब्याज की दर में सीधा सम्बन्ध है।

$$Ls \times r$$

केन्ज के ब्याज के तरलता अधिमान सिद्धान्त ने मुद्रा, ब्याज व उत्पादन के सिद्धान्त में एक नये युग का सूत्रपात किया है। इस सिद्धान्त के माध्यम से केन्ज ने यह दर्शाया कि किस प्रकार मुद्रा ब्याज की दर को प्रभावित करती है तथा ब्याज की दर उत्पादन को प्रभावित करती है (ब्याज कम होने से निवेश बढ़ता हैं तथा निवेश बढ़ने से उत्पादन व रोज़गार बढ़ता है। ब्याज बढ़ने से इसके विपरीत क्रिया होती है।) इस प्रकार से केन्ज ने कभी से अलग चले आ रहे मौद्रिक क्षेत्र व उत्पादन क्षेत्र को आपस में जोड़ दिया है। अतः हम कह सकते है। कि केन्ज का ब्याज निर्धारण का तरलता अधिमान सिद्धान्त अर्थशास्त्र के विकास की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। परन्तु विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने केन्ज के सिद्धान्त की अनेक बिन्दुओं पर आलोचना की है।

तरलता अधिमान सिद्धान्त की आलोचनायें
(Criticisms of Liqidity Preference Theory)

तरलता अधिमान सिद्धान्त की निम्न आधार पर आलोचनायें की गई हैं:

1. **वास्तविक तत्त्वों की अवेहलना** (Real factors Ignored): निःसन्देह मौद्रिक तत्त्व (मुद्रा की माँग व पूर्ति) ब्याज निर्धारण में सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं। लेकिन इस पर वास्तविक तत्त्वों जैसे बचत, पूँजी की सीमान्त उत्पादकता का भी प्रभाव पड़ता हैं। जिसकी केन्ज ने अवेहलना की है।
2. **अनिर्धारणीय सिद्धान्त** (Indeterminate theory): मुद्रा की माँग व पूर्ति के आधार पर ब्याज का निर्धारण किया जाता है। जबकि मुद्रा की माँग (सट्टा उद्देश्य) खुद ब्याज पर निर्भर करती है। इस प्रकार यह सिद्धान्त भी अनिर्धारणीय है।
3. **कई ब्याज दरों की व्याख्या नहीं** (Does not explain multiple interest rates): अर्थव्यवस्था में एक समय में ही विभिन्न व्यक्तियों स्थानों तथा व्यवसायों में ब्याज की दर भिन्न–भिन्न होती है। यह सिद्धान्त इसकी व्याख्या नहीं करता।
4. **तरलता त्याग किये बिना ब्याज** (Interest recieved without sacrificing liquidity): बैंकों में समय जमा, बचत जमा आदि पर ब्याज मिलता है जबकि मनुष्य इन्हें बैंक से कभी भी निकलवा सकता है। अर्थात् इस नकदी को त्यागे बगैर ही ब्याज मिलता है।
5. **बचत के बिना तरलता नहीं** (No liquidity without saving): केन्ज के अनुसार ब्याज बचत त्यागने का पुरस्कार नहीं है। बल्कि तरलता त्यागने का पुरस्कार है। लेकिन वे भूल जाते है। कि यह तरलता (नकदी बचत से ही सम्भव हो पाती है।
6. **वास्तविकता के विपरीत** (Contrary of reality): वास्तविक जगत् में मन्दी के दिनों में लोगों का तरलता अधिमान ज्यादा होता है परन्तु ब्याज की दर बहुत कम होती है। ये केन्ज के सिद्धान्त के बिल्कुल उलटा है। तेजी के दिनों में इसके विपरीत होता है।
7. **तरलता की माँग की संकुचित धारणा** (Narrow Concept of demand for liqidity): केन्ज के अनुसार तरलता की माँग तीन उद्देश्यों के लिये की जाती है। वे हैं लेनदेन, सावधानी व सट्टा उद्देश्य। लेकिन इसकी माँग इनके अलावा मन्दी, सुविधा, व्यापार विस्तार आदि उद्देश्यों के लिये भी की जा सकती है। अतः हम कह सकते हैं कि केन्ज की तरलता माँग की धारणा संकुचित धारणा है।
8. **अल्पकाल की व्याख्या** (Explanation of short run): यह सिद्धान्त अल्पकाल में ब्याज निर्धारण की व्याख्या करता है दीर्घकाल में नहीं।
9. **तरलता बन्ध की आलोचना** (Criticism of liquidity trap): कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार तरलता बन्ध जैसी अवस्था वास्तविक जीवन में पूर्ण रूप से कभी नहीं आती।

उपरोक्त आलोचनाओं के बावजूद केन्ज का तरलता अधिमान सिद्धान्त अर्थशास्त्र के विकास में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है।

केन्ज व परम्परावादी ब्याज सिद्धान्तों में अन्तर
(Differences in Keynsian & Classical Theories of Interest)

केन्ज व परम्परावादी ब्याज सिद्धान्त के मुख्य अन्तर निम्नलिखित हैं:

1. **ब्याज की धारणा** (Notion of Interest): परम्परावादियों के अनुसार ब्याज पूँजी की कीमत है। परन्तु केन्ज के अनुसार यह तरलता से अलग होने का पुरस्कार है।
2. **ब्याज का कारण** (Casuse of interest): परम्परावादियों के अनुसार ब्याज वास्तविक कारणों जैसे बचत, त्याग आदि से पैदा होता है। परन्तु केन्ज के अनुसार ब्याज मौद्रिक कारणों जैसे मुद्रा की माँग पूर्ति के कारण पैदा होता है।
3. **सिद्धान्त की व्यापकता** (Extent of theory): केन्ज का सिद्धान्त एक सामान्य सिद्धान्त है। अर्थात् वह रोज़गार की हर अवस्था में लागू होता है। परन्तु परम्परावादी सिद्धान्त सिर्फ पूर्ण रोज़गार की अवस्था में लागू होता है।

4. **दृष्टिकोण में अन्तर** (Difference in view point): परम्परावादियों ने ऋणी के दृष्टिकोण से सिद्धान्त की व्याख्या की है जबकि केन्ज ने ऋणदाता के दृष्टिकोण से।
5. **बचत व निवेश में समानता** (Equility in saving & Investment): परम्परावादियों के अनुसार बचत व निवेश में समानता ब्याज में परिवर्तन के कारण होती है जबकि केन्ज के अनुसार यह आय में परिवर्तन के कारण होती है।
6. **मुद्रा की भूमिका** (Role of money): परम्परावादी सिद्धान्त में मुद्रा की कोई भूमिका नहीं है। यह तटस्थ है। केन्ज के सिद्धान्त में मुद्रा केन्द्रीय भूमिका अदा करती है।
7. **समय अवधि** (Time period): परम्परावादी सिद्धान्त दीर्घकाल में ब्याज निर्धारण की व्याख्या करता है जबकि केन्ज का सिद्धान्त अल्पकाल में इसकी व्यख्याा करता है।
8. **ब्याज का निम्नतम स्तर** (Minimum level of interest rate): परम्परावादियों के अनुसार ब्याज की दर किसी खास स्थिति में शून्य हो सकती है परन्तु केन्ज के अनुसार यह कभी भी शून्य नहीं हो सकती।

ऋणयोग्य कोष व तरलता अधिमान सिद्धान्तों में अन्तर
(Difference between loanable & liquidity preference theories)

ऋणयोग्य व तरलता अधिमान सिद्धान्तों में अग्रलिखित अन्तर हैं।

1. **ब्याज की धारणा** (Notion of interest): नव–परमपरावादी ऋणयोग्य सिद्धान्त के अनुसार ब्याज ऋणयोग्य कोष की माँग व पूर्ति से तय होता है जबकि केन्ज के अनुसार यह मुद्रा की माँग व पूर्ति से तय होता है।
2. **ब्याज का कारण** (Cause of interest): नव–परम्परावादियों के अनुसार ब्याज मौद्रिक व वास्तविक दोनों तत्त्वों का फल है जबकि केन्ज के अनुसार यह सिर्फ और सिर्फ मौद्रिक तत्त्वों के कारण पैदा होता है।
3. **मुद्रा की पूर्तिः** नव–परम्परावादी सिद्धान्त ऋणयोग्य कोष की पूर्ति को ब्याज सापेक्ष मानते हैं। अर्थात् उनके अनुसार ब्याज कम ज्यादा होने से मुद्रा की पूर्ति भी कम ज्यादा हो जाती है। जबकि केन्ज के अनुसार मुद्रा की पूर्ति ब्याज निरपेक्ष है अर्थात् ब्याज कम ज्यादा होने का मुद्रा की पूर्ति के ऊपर कोइ प्रभाव नहीं पड़ता।
4. **स्टाक तथा प्रभाव** (Stock & Flow): नव–परम्परावादी सिद्धान्त में मुद्रा की पूर्ति प्रवाह तत्त्व है। अर्थात् यह एक समय अवधि में मापी गई है। जबकि केन्ज के सिद्धान्त में मुद्रा की पूर्ति एक स्टॉक तत्त्व है अर्थात यह एक समय बिन्दु पर मापी गई है।
5. **न्यूनतम ब्याज की धारणा** (Notion of lowest interest rate): केन्ज के अनुसार ब्याज कभी शून्य नहीं हो सकता। नव–परम्परावादी सिद्धान्त ने इनकी अवेहलना की है।
6. **समय अवधि** (Time period): केन्ज ने अल्पकाल में ब्याज निर्धारण की व्याख्या की है जबकि नव–परमपरावादियों ने दीर्घकाल में इसकी व्याख्या की है।

प्रश्न
(Questions)

1. ब्याज से क्या अभिप्राय है? सकल ब्याज तथा शुद्ध ब्याज में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
2. ब्याज के परम्परावादी सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
3. ब्याज के ऋण–योग्य कोष सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
4. तरलता अधिमान सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
5. ब्याज के नव–परम्परावादी सिद्धान्त की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।
6. "ब्याज तरलता के त्याग का पुरस्कार है।" –केन्ज। कथन की व्याख्या कीजिए।

अध्याय-31
लाभ
(Profit)

अर्थ
(Meaning)

पूँजी, भूमि और श्रम उत्पादन प्रक्रिया के लिए जरूरी हैं। परन्तु इनको किसी खास वस्तु का उत्पादन करने के लिए इकट्ठा करके इनका उचित प्रबन्धन करना उद्यमी का काम होता है। उद्यमी उत्पादन प्रक्रिया मे नित्य नवप्रवर्तन करता है। हर समय उसे अनिश्चितता तथा जोखिम का सामना करना पड़ता है क्योंकि किन्हीं कारणों से उसे हानि भी उठानी पड़ सकती हैं। विभिन्न उद्यमियों की योग्यता में भिन्नता होती है। इसी के साथ–साथ उसे आकस्मिक तथा एकाधिकारी लाभ भी मिल सकते हैं। उद्यमी द्वारा प्रबन्धन, नव प्रवर्तन, अनिश्चितता व जोखिम, योग्यता, व एकाधिकार के फलस्वरूप जो पुरस्कार मिलता है उसे लाभ कहा जाता है।

कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार "एक फ़र्म की कुल आय तथा कुल लागत के अन्तर को लाभ कहा जाता है।"

अर्थात

γ = TR-TC

γ = Profit (लाभ)

यहाँ

TR = Total Revenue (कुल आय)

TC = Total Cost (कुल लागत)

कुल लागत मे लगान, ब्याज व मज़दूरी शामिल होती है। ऐसा भी सम्भव है कि किसी समय फ़र्म की कुल आय, कुल लागत से कम रह जाए अर्थात् फ़र्म को हानि उठानी पड़े।

परिभाषाएं (Definitions):

(1) **प्रो.जे.एल. हैल्सन के शब्दों में,** "लाभ एक अवशेष भुगतान है, जो उद्यमी को अन्य सभी भुगतान करने के बाद आय के रूप मे प्राप्त होता है।"

(2) **प्रो. उल्मर के विचार में,** "फ़र्म की कुल आय तथा कुल लागत का अन्तर लाभ कहलाता है।"

(3) **प्रो. जैकब औसर के अनुसार,** "लाभ के व्यवसाय की बहारी तथा आन्तरिक मज़दूरी, ब्याज तथा लगान देने क बाद बचने वाली आय है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि लाभ की निम्नलिखित विशेषताएं या प्रकृति (Nature) होती है।

लाभ एक **अवशेष (Residual)** आय है। अर्थात् उत्पादक द्वारा ब्याज, लगान तथा मज़दूरी का भुगतान करने पर जो बचता है वही लाभ है।

लाभ एक अनिश्चितता (uncertain) आय है अर्थात् दूसरे भुगतान (ब्याज, लगान तथा मजदूरी) तो पहले ही तय कर लिए जाते हैं, परन्तु लाभ तो काफ़ी ज्यादा भी हो सकता है, शून्य भी तथा ऋणात्मक भी।

लाभ में अत्यधिक उतार चढ़ाव (Fluctuations) आते हैं। दूसरी साधन कीमतें अपेक्षाकृत स्थिर होती हैं।

1.1 कुल लाभ (Gross Profit)

कुल लाभ की धारणा व्यापारियों या उत्पादकों की लाभ के बारे में धारणा है। यह अर्थशास्त्रियों की धारणा नहीं है।

कुल आय में से कुल बाहरी लागतें घटाने से जो आय बचती है वह कुल लाभ कहलाता है।

मान लो कोई किसा एक खेत में 1,00,000 रुपए कमाता है। इसके लिए वह मज़दूरों, कच्चे माल (बीज आदि) व पूंजी (ट्रेक्टर, टयूबवैल आदि) पर 60,000 रुपए खर्च कर देता हैं तो उसकी गणना के अनुसार उसे 40,000 रुपए का लाभ होगा। इसे ही कुल लाभ कहा जाता है।

अर्थात्

कुल लाभ = कुल आय – कुल बाहरी खर्चे

या

कल लाभ = कुल आय – (बाहरी ब्याज + बाहरी लगान + बाहरी मजदूरी)

आम उत्पादक या व्यापारी की यह धारणा अर्थशास्त्रियों की लाभ की धारणा से मेल नहीं खाती। क्योंकि अर्थशास्त्रियों के अनुसार कोई भी उत्पादक या व्यापारी जैसे हमारे उदाहरण में किसान खुद की मज़दूरी, अपनी पूंजी (औज़ार), भूमि (बीज, खाद आदि) तथा अन्य खर्चे (घिसावट, बीमा आदि) नहीं जोड़ता। अगर ये सब चीजें उसकी अपनी न होतीं तो उसे यह खर्च दूसरों को देना पड़ता। मान लो किसान की ये भीतरी लागतें 20,000 रुपए के बराबर है तो उसका लाभ 40,000 न होकर 20,000 रुपए हीं रह जाएगा। अर्थशास्त्रीयों की यह धारणा शुद्ध लाभ कहलाती हैं। अतः हम कह सकते हैं कि

कुल = शुद्ध लाभ + भीतरी खर्चे (अपनी पूंजी, भूमि व श्रम की कीमत तथा अन्य खर्चे)

1.2 शुद्ध लाभ (Net Profit)

शुद्ध लाभ की धारणा अर्थशास्त्रियों की धारणा है। इनके अनुसार उत्पादन के अन्य साधनों (भूमि, पूंजी व श्रम) चाहे वो बाहर से खरीदे गए हों या अपने घर के हों का खर्चा निकाल कर जो बचता है वही शद्ध लाभ है। अर्थात् शुद्ध लाभ उद्यमी की सेवाओं का पुरस्कार है। एक उद्यमी उत्पादन प्रक्रिया में निम्नलिखित सेवाएं डालता,

प्रबन्धन – उद्यमी उत्पादन व उत्पादित माल को बेचने का प्रबन्धन करता है।

जोखिम – लाभ तो एक अवशेष है जो अन्य साधनों के भुगतान के बाद बचता है। ऐसा भी हो सकता है कि लाभ बचे ही न या हानि ही हो जाए। उद्यमी को यह जोखिम उठाना पड़ता है।

अनिश्चितता – बाज़ार में हर समय उतार चढ़ाव आते रहते हैं। सरकारी नीतियां भी बदलती रहती हैं। जिससे बाज़ार में अनिश्चितता बनी रहती है। उद्यमी को हमेशा इसका सामना करना पड़ता है।

नवप्रवर्तन– हर काम को और ज्यादा बेहतरी से किया जा सकता है। इस कला को नवप्रवर्तन कहा जाता है। उद्यमी नित्य नवप्रवर्तन करके उत्पादन प्रक्रिया में अपना योगदान डालता है।

इस सब सेवाओं के लिए उद्यमी को जो पुरस्कार मिलता है उसे शुद्ध लाभ कहते हैं। इसके अलावा उद्यमी को कई बार किस्मत से आकस्मिक लाभ (Windfall Gains) या एकाधिकार के कारण भी लाभ मिल जाते हैं।

इन दोनों के लाभों को भी शुद्ध लाभ में जोड़ा जाता है।

अतः हम कह सकते हैं कि कुल लाभ की धारणा एक विस्तृत धारणा है। इसमें कुल आय में से सिर्फ बाहरी लागतें ही उठायी जाती है। जबकि शुद्ध लाभ की धारणा एक संकुचित धारणा है जिसमें कुल आय में से बाहरी तथा भीतरी दोनों लागतें ही उठायी जाती हैं। कुल लाभ की धारणा आम आदमी (उत्पादक या व्यापारी) की धारणा है। मार्शल ने इसे वाणिज्यक लाभ (Commercial Profit) की संज्ञा दी है। जबकि शुद्ध लाभ की धारणा अर्थशास्त्रियों की धारणा है, जो उद्यमी की सेवाओं का पुरस्कार है तथा उत्पादन के अन्य साधनों का पुरस्कार देने के बाद बचता है।

2. लाभ की विभिन्न व्याख्याएं
(Various Explanations of Profit)

लाभ कई कारणों से पैदा होता है। अर्थात् लाभ के उद्‌गम की अनेक व्याख्याएं हैं। इन व्याख्याओं को हम लाभ के उद्‌गम के सिद्धान्त भी कह सकते हैं। लाभ के (Theories of origin of Profits) उद्‌गम के सिद्धान्त (व्याख्याएँ) अग्रलिखित हैं।

2.1 रिकार्डो का लाभ का सिद्धान्त
(Ricardian Theory of Profit)

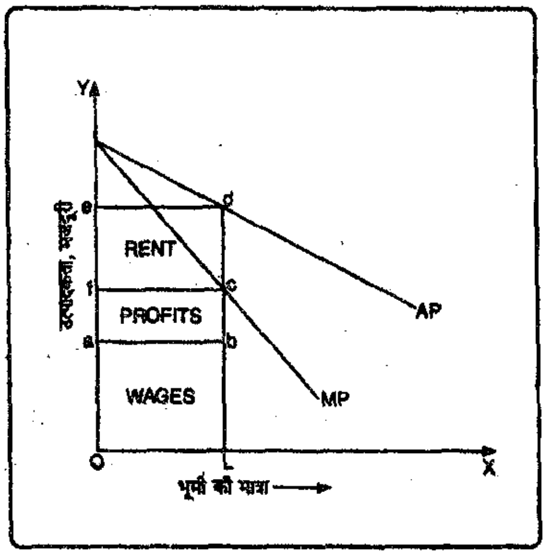

चित्र 1

प्रमुख परम्परावादी अर्थशास्त्री डेविड रिकार्डो ने सन् 1817 में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में लाभ के बारे में अपने विचार दिए। रिकार्डो के अनुसार लाभ एक अवशेष है जो लगान व मज़दूरी का भुगतान करने के बाद बचता है (उस समय में उत्पादन के तीन ही साधन माने जाते थे भूमि, पूंजी व श्रम। इनकी सेवाओं के बदले पुरस्कार में क्रमशः लगान, लाभ व मज़दूरी मिलने की धारणा प्रचलित थी।)

रिकार्डो का मत था कि कुल आयमें से सबसे पहले लगान का भुगतान किया जाता है। जो औसत उत्पादकता व सीमान्त उत्पादकता का अन्तर होता है। उसके बाद मज़दूरी दी जाती है। मज़दूरी की दर इतनी होती है कि मज़दूर इसके सहार जिन्दा मात्र रह सकें। इसे Subsistence Wages कहा जाता है। बाकी जो बचता है। वही लाभ है। जो पूँजीपतियों को मिलता है। रिकार्डो के लाभ के सिद्धान्त को निम्न चित्र की मदद से दर्शाया जा सकता है।

रेखाचित्र नं 1 में OX अक्ष पर भूमि की मात्रा तथा OY अक्ष पर उत्पादकता तथा मज़दूरी ली गई हैं। चित्र में AP = Average Productivity (औसत उत्पादकता) तथा MP = Marginal Productivity (सीमान्त उत्पादकता। वक्र हैं। OL अर्थव्यवस्था मे कुल काश्त की गई भूमि पर (AP-MP) के बराबर लगान मिलता है जो चित्र में edcf के बराबर है। मज़दूरों को जीवन निर्वाह लायक मज़दूरी दी जाती है जो चित्र में oLBa के बराबर है। बाकी जो बचता है। वह लाभ है। चित्र मे यह abcf के बराबर है।

अतः हम कह सकते हैं कि रिकार्डो के अनुसार लाभ एक अवशेष है जो पूंजीपतियों के पास लगान व मज़दूरी का भुगतान करने के बाद बचता है।

2.2 लाभ की निश्चितता व सिद्धान्त
(Uncertainity theory of Profits)

लाभ के रिकार्डियन सिद्धान्त के बाद लाभ के उद्‌गम की अनेक व्याख्याएं दी गई। उनमें से एक व्याख्या अनिश्चितता की धारणा है। इस पर प्रतिपादन अमेरिकन अर्थशास्त्री प्रो. नाइट द्वारा किया गया ।

एक उद्यमी हमेशा भविष्य की अनिश्चितताओं में घिरा रहता है। अनिश्चितता ही जोखिम को जन्म देती हैं किसी हानि का जोखिम भी दिशा में कदम उठाने पर उसे हानि या जोखिम हो सकता हैं। ये अनिश्चितताएं कई प्रकार की हो सकती है। जैसे:

- आग लगना
- चोरी
- बाढ़
- ओले
- कर्मचारियों की दुर्घटना
- कोई भी उद्यमी

कोई भी उद्यमी इस तरह की अनिश्चितताओं की परवाह नहीं करता क्योंकि इस तरह की अनिश्चतताओं का बीमा कराया जा सकता है। इनके कारण होने वाले नुकसान की भरपाई बीमा कम्पनी कर देती हैं लेकिन कुछ अनिश्चितताएं ऐसी होती हैं जिनकी परवाह उद्यमी को करनी ही पड़ती है क्योंकि इनकी वजह से होने वाले लाभ या हानि का असार सीधा उद्यमी के ऊपर पड़ता है। ये निम्नलिखित हैं:

सरकार की नीतियां: सरकार समय–समय पर अपनी मौद्रिक, राजकोषीय, व्यापार, निवेश, कर नीति आदि बदलती रहती हैं इन नीतियों से किसी उद्योग का फायदा हो सकता है तो किसी को हानि।

तकनीक: आज का युग तकनीकी युग है। इसमें तकनीक इतनी तेजी से बदलती है कि वर्तमान तकनीक एकदम ज्यादा खर्चीली व पुरानी लगने लगती है। पुरानी तकनीक वाले उद्यमियों के सामने हानि या, अस्तित्व का खतरा मंडराने लग जाता है।

व्यापार चक्र: पूंजीवादी अर्थव्यवस्था तेजी व मंदी के चक्रों में आगे बढ़ती है। इन्हें व्यापार चक्र कहा जाता है। तेजी के दिनों में अर्थव्यवस्था में मांग बढ़ती है जिससे उद्यमियों का माल ज्यादा बिकता है तथा उन्हें माल की अच्छी कीमत मिलती है। परन्तु मन्दी के दिनों में इसके विपरीत होता है। हानि इतनी भी हो सकती है कि उद्यमी को अपनी फैक्टरी ही बन्द करनी पड़ जाए।

नये प्रतियोगी: उद्यमी के सामने नित्य नए प्रतियोगी पैदा होने की अनिश्तिता रहती है। जो बेहतर प्रबन्धन, Marketing Skills व नव प्रवर्तन के आधार पर उसे बाज़ार से बाहर कर सकते हैं।

रुचियां: लोगों की रुचियां (Taste) वैसे तो धीरे–धीरे बदलती हैं परन्तु रुचियों में होने वाला परिवर्तन बाज़ार के ऊपर गहरा प्रभाव डाल सकता है। एक अध्ययन के अनुसार चीन (130 करोड़ की आबादी वाला देश) में अगर दो इंच लमबे कपड़े सिवाले का फैशन चल निकाले तो कपड़े की इस बढ़ी हुई मांग की भरपाई इग्लैण्ड के सारे कारखाने मिलकर भी पूरी नहीं कर सकते।

एक उद्यमी को हर वक्त इन अनिश्चितताओं का सामना करने का जोखिम उठाना पड़ता है। और उसी जोखिम का पुरस्कार है लाभ।

आलोचनाएं

अर्थशास्त्रियों के अनुसार लाभ जोखिम उठाने का पुरस्कार न हो कर जोखिम कम करने का पुरस्कार है।

अपूर्ण: यह सिद्धान्त लाभ के उदगम के एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त की तो व्याख्या करता है परन्तु यह कई अन्य कारणों जैसे नवप्रर्वतन, गत्यात्मकता, एकाधिकार आदि के कारण पैदा होने वालो लाभ की अनदेखी करता है।

2.3 लाभ का नवप्रर्वतन सिद्धान्त (Innovation Theory of Profit)

विभिन्न प्रकार की अनिश्चितताओं जिनका अभी विस्तार से अध्ययन किया गय है 'फ़र्म से बाहर की बातें है'। ये किसी एक फ़र्म या उद्योग के नियन्त्रण से परे होती हैं। लेकिन पूँजीवादी अर्थव्यवस्था एक बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू ऐसा है जो शुरू ही उद्यमी की तरफ से होता है। वह महत्वपूर्ण पहलू है, नवप्रवर्तन।

लाभ के नवप्रवर्तन सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रोफेसर शुम्पीटर ने किया था। उनके अनुसार एक उद्यमी एक सोची समझी रणनीति के तहत ऐसे कदम उठाता है। जिससे या तो उत्पादन की लागत कम हो जाती है या वस्तु की मांग बढ़ जाती है। दोनों ही स्थितियों में उद्यमी को लाभ प्राप्त होता है। ये कदम या तरीके निम्न प्रकार के हो सकते हैं:

- किसी वस्तु का उत्पादन करने का नया व बेहतर तरीका जो या तो लागत घटाए या गुणवत्ता बढ़ाए।
- उत्पादन के प्रवन्धन का तरीका जिससे लागत घटे तथा उत्पादन की मात्रा तथा गुणवत्ता बढ़े।
- बाज़ार के प्रबन्धन का तरीका जिससे बेचने की लागत घटे तथा बिक्री बढ़े।
- किसी नई वस्तु की खोज (पुरानी वस्तुओं में थोड़ा सा या ज्यादा परिवर्तन करके), जिससे उपभोक्ता इसकी ओर आर्कषित हो सके तथा वस्तु की मांग बढ़ सके।
- नये कच्चे माल की खोज (जैसे कुर्सी को लोह या लकड़ी की जगह प्लास्टिक से बनाना) करके भी लागत घटाई जा सकती है या और गुणवत्ता बढ़ाई जा सकती है।

ऊपर लिखे गए सभी तरीके ऐसे है जो उद्यमी की कला पर निर्भर करते हैं। उद्यमी की इन कलाओं को ही नवप्रवर्तन कहा जाता है। जो उद्यमी इस कला में ज्यादा पारंगत तथा चुस्त होगा वो ज्यादा कमाएगा। यो सुस्त होगा वो पीछे रह जाएगा।

लेकिन नवप्रवर्तन के कारण उत्पन्न होने वाले लाभ चिरस्थायी (Permanent) नहीं होते। दूसरे उद्यमी जल्द ही नवप्रवर्तन की नकल कर लेते हैं। जिससे वे नव प्रवर्तन करने वाले उद्यमी के बराबर आकर उसके लाभ (कम लागत व गुणवता के कारण होने वाले) खत्म कर देते हैं? शुम्पीटर के अनुसार साहसी उद्यमी इस बीच और कोई नया रास्ता (नवप्रवर्तन) निकाल लेते हैं। इस प्रकार यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। यही पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के निरन्तर विकास का आधार है। इस प्रक्रिया को निम्न चित्र की मदद से दर्शाया जा सकता है।

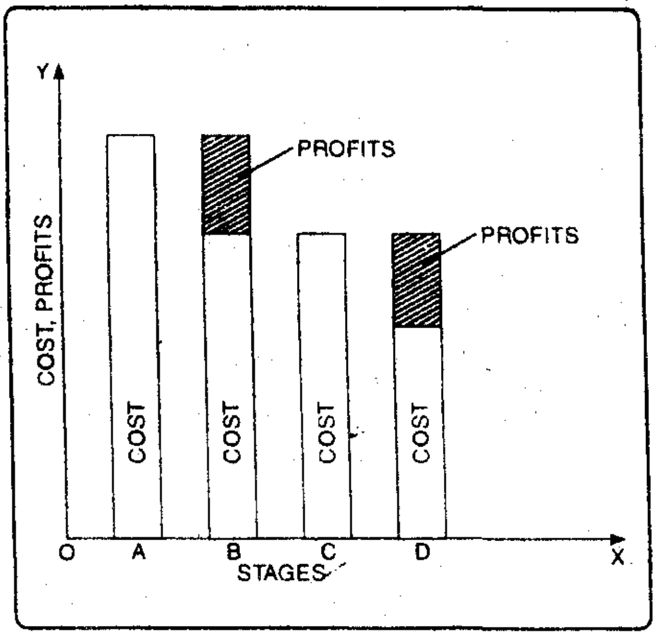

चित्र 2

रेखाचित्र न. 2 मे OX अक्ष पर उत्पादन की विभिन्न अवस्थाएं (Stages) दिखाई गई हैं तथा OY अक्ष पर लागत तथा लाभ दिखाएं गए हैं।

(i) **Stage A:** में सभी उद्यमियों की वस्तु को उत्पादित करने की लागत दिखाई गई हैं।

(ii) **Stage B:** नवप्रवर्तन करने वाला उद्यमी वस्तु का उत्पादन करने की लागत को घटा लेता है। जिस कारण उसे लाभ प्राप्त होने लगते हैं। लाभ को छायादार भाग से दिखाया गया है।

(iii) **Stage C:** सभी उद्यमी नवप्रवर्तन की नकल कर लेते हैं। इससे नवप्रवर्तन करने वाले उद्यमी के लाभ खत्म हो जाते हैं।

(iv) **Stage D:** इसमें कोई साहसी उद्यमी फिर कोई नवप्रवर्तन कर देता है तथा लाभ कमाने लग जाता है। इस प्रकार या प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है।

आलोचनाएं

अवूर्णः यह सिद्धान्त नवप्रवर्तन की तो बढ़िया तरीके से व्याख्या करता है परन्तु लाभ के उद्‌गम के अनय महत्वपूर्ण कारणों जैसे अनिश्चितता, जोखिम, एकाधिकार, गत्यात्मकता आदि को अनदेखा कर देता है।

नवप्रवर्तन व अनिश्चितता में गहरा सम्बन्ध होता है क्योंकि हर नवप्रवर्तन के साथ अनिश्चितता जुड़ी होती है।

2.4 लाभ का गत्यात्मक सिद्धान्त
(Dynamic Theory of Profit)

लाभ के गत्यात्मक सिद्धान्त का प्रतिपादन अमेरिकी अर्थशास्त्री (Prof. J.B. Clark) प्रोफेसर जे.वी. क्लार्क ने किया था। इस सिद्धान्त को लाभ के नवप्रवर्तन तथा लाभ के अनिश्चितता व जोखिम सिद्धान्त का मिश्रित रूप कहा जा सकता है। क्लार्क ने इसे निम्न तरीके से व्याखित किया है।

मान लो एक काल्पनिक स्थैतिक (Static) अर्थव्यवस्था है। ऐसी अर्थव्यवस्था में सब कुछ स्थिर रहता है जैसे

- सरकार की नीतियां स्थिर रहती हैं।
- तकनीक स्थिर रहती है।
- अर्थव्यवस्था में प्रतियोगी फर्में पैदा नहीं होती।
- लोगों की रुचियां (Taste) नहीं बदलते।
- जनसंख्या का स्तर (इसलिए मांग का स्तर) स्थिर रहता है।
- नवप्रर्वतन आदि नहीं होते, क्योंकि अर्थव्यवस्था स्थिर रहती है।

उपरोक्त कारणों से अर्थव्यवस्था में अनिश्चितता रूपी कोहरे छंट जाते हैं। उद्यमी को कोई जोखिम नहीं उठाना पड़ता न ही नवप्रवर्तन करना पड़ता तथा न ही उसके प्रबन्धन की ही जरूरत रहती। इसलिए लाभ खत्म (शून्य) हो जाते हैं।

अगर हम स्थैनिक अर्थव्यवस्था की मान्यता खत्म कर दें और अर्थव्यवस्था को गत्यात्मक मानें जो कि सत्य भी है तो ऐसी स्थित में अर्थव्यवस्था में उपरलिखित तत्वों मे सतत् परिवर्तन परिवर्तन होगा रहेगा। इन परिवर्तनों के कारण अनिश्चितता, जोखिम, नवप्रवर्तन, प्रबन्धन की जरूरत आदि सब अपनी जगह बना लेंगे। ये सभी चीज़ें लाभ को जन्म दे देंगी। अतः हम कह सकते हैं कि गत्यात्मक अर्थव्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों के फलस्वरूप जो अनिश्चितता, जोखिम, नवप्रवर्तन व प्रबन्ध की जरूरत पैदा होती है, उसी से लाभ पैदा होता है अन्यथा लाभ अपने आप खत्म हो जाएगा।

आलोचनाएं

परिवर्तन से पैदा होने वाली हर अनिश्चितता लाभ को जन्म नहीं देती क्योंकि कुछ अनिश्चितताओं का बीमा करवा के उनसे होने वाले लाभ या हानि को टाला जा सकता है।

यह सिद्धानत नई बोतल में पुरानी शराब के समान है अर्थात् यह अनिश्चितता सिद्धान्त वाली बातों को ही दूसरे तरीके से कहने की कोशिश है।

लाभ का लगान सिद्धान्त
(Rent Theory of Profit)

यह सिद्धान्त रिकार्डो के सिद्धान्त का विस्तृत रूप है। रिकार्डो के सिद्धान्त में भूस्वामियों को लगान भूमि की उर्वरता में अन्तर के कारण मिलता है। जैसे मान लो दो भूमि के टुकड़े हैं जिसमें से पहला टुकड़ा दूसरे टुकड़े से ज्यादा उत्पादक है। अब

अगर दोनों पर उत्पादन एक ही तरीके से किया जाता है तो पहले टुकड़े में अपेखाकृत ज्यादा फसल होगी। उत्पादकता का यही अन्तर रिकार्डो के अनुसार लगान कहलाता है।

इसी प्रकार अर्थव्यवस्था में सभी उद्यमी एक जैसे योग्य नहीं होते। इनमें सबसे कम योग्य उद्यमी के मुकाबले बाकी सभी उद्यमियों की कुछ न कुछ ज्यादा कमाई होती है। कमाई का यह अन्तर ही लाभ कहलाता है।

लाभ के लगान सिद्धान्त की हम रेखाचित्र न. 3 की मदद से व्याख्या कर सकते हैं।

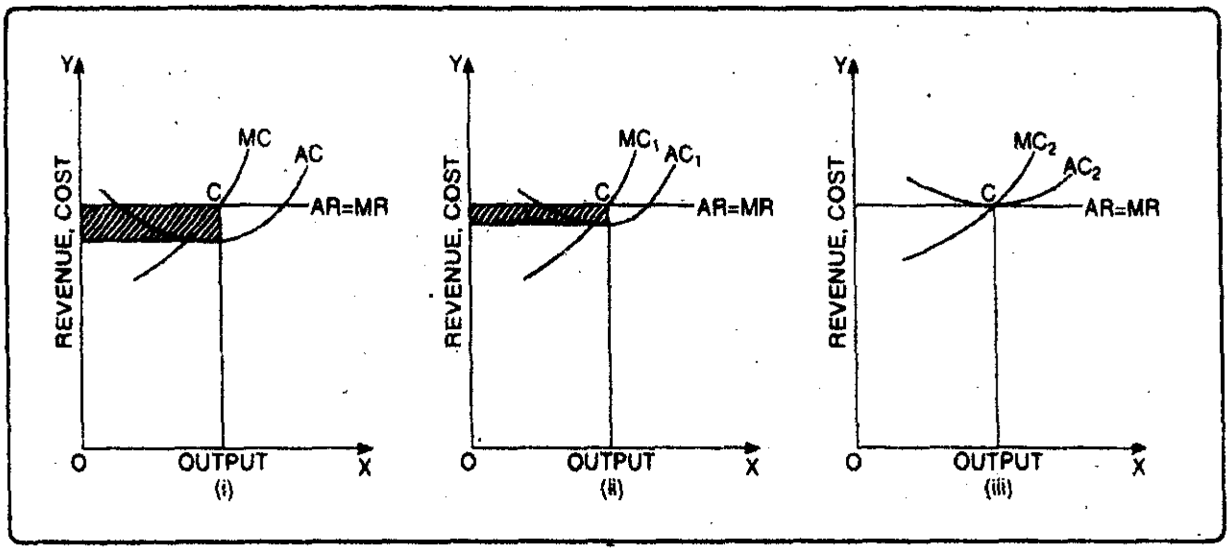

चित्र 3

रेखाचित्र नं. 3 में OX अक्ष पर उत्पादन की मात्रा तथा OY अक्ष पर लागत तथा आय लिए गए हैं। तीन चित्र तीन अलग–अलग उद्यमियों के हैं। उद्यमी नं. (iii) सबसे कम योग्य है, न. (ii) उससे ज्यादा तथा नं. (i) सबसे ज्यादा है। सबसे कम योग्य उद्यमी को कोई लाभ नहीं मिलता जबकि अन्य उद्यमियों को छायादार भाग के बराबर लाभ मिलता है। लाभ का कारण योग्यता के कारण घटी हुई लागतें हैं।

आलोचनाएं

लगान भूमि की उत्पादकता में अन्तर के कारण पैदा होता है। भूमिहार का इसमें योगदान नहीं होता इसलिए लगान एक अनर्जित आय है।

लाभ शून्य या नकारात्मक (Negative) हो सकता है परन्तु लगान हमेशा घनात्मक (Positive) होता है।

यह सिद्धान्त योग्यता के अलावा अन्य कारणों जैसे एकाधिकार, अनिश्चितता, जोखिम व नवप्रवर्तन आदि।

लाभ का एकाधिकारी सिद्धान्त
(Monopoly Theory of Profit)

एकाधिकार बाज़ार की वह स्थिति है जिसमें किसी वस्तु के उत्पादन पर एक ही व्यक्ति का अधिकार होता है। चूँकि एकाधिकारी का कोई प्रतियोगी नहीं होता इसलिए उत्पादन की मात्रा उसके पूर्ण नियन्त्रण में रहती है। वह जानबूझ कर कम उत्पादन करता हैं जिसके कारण पूर्ति, मांग की अपेक्षा कम रह जाती है। इस कारण वस्तु की कीमतें बढ़ जाती हैं। इन बढ़ी हुई कीमतों का एकाधिकारी को फायदा होता है।

उत्पादन के किसी क्षेत्र मे एकाधिकारी शक्ति जितनी ज्यादा होगी, लाभ की मात्रा भी उतनी ही ज्यादा होगी। एकाधिकारी शक्ति को निम्न सूत्र से मापा जा सकता है।

$$L1 = \frac{p-m}{p}$$

यहां L1 = एकाधिकारी शक्ति की मात्रा (Degree of Monopoly Power)

P = कीमत

M = सीमान्त लागत

एकाधिकार कई कारणों से पैदा होता है।

पेटेन्ट (Patent): यह एकाधिकार की कानूनी मान्यता है। किसी वस्तु या प्रक्रिया का पेटेन्ट करवाने पर कोई अन्य उत्पादक इस वस्तु या प्रक्रिया का प्रयोग नहीं कर सकता। अगर करे तो उसे पेटेन्ट धारक को कीमत चुकानी पड़ेगी।

कृत्रिम दुर्लभता: कई बार वस्तु होने पर भी उसकी पूर्ति रोक दी जाती है। पूंजीपति वस्तु को अपने गोदामों में जमा कर लेते हैं। इससे कृत्रिम लुर्लभता पैदा हो जाती है। इससे कीमतें बढ़ती हैं तथा एकाधिकारी को फायदा होता है।

नई तकनीक के कारण: आज के तकनीकी युग में नई तकनीकें, पुरानी तकनीकों को बड़ी तेज़ी से चलन से बाहर कर देती है। इससे भी एकाधिकार पैदा हो जाता है।

नवप्रवर्तन के कारण: कुछ नवप्रवर्तन प्रतियोगियों को मुकाबले से बाहर कर देते हैं और एकाधिकार को जन्म देते हैं।

कच्चे माल पर एकाधिकार: कच्चे माल पर एकाधिकार के कारण भी उससे बनाई जाने वाली वस्तु पर एकाधिकार हो सकता है।

सरकारी नीतियों के कारण: सरकार हुक्म जारी करके किसी वस्तु या सेवा उत्पादन को अपने हाथ में ले सकती है तथा और प्रतियोगियों के प्रवेश पर रोक लगा सकती है। जैसे भारतीय रेल सेवा।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की यह खास पहचान होती है कि इसमें आर्थिक शक्ति कुछ हाथों में केन्द्रित होती जाती है अर्थात् यह धीरे–धीरे एकाधिकार की ओर बढ़ती है। वर्तमान युग में तो यह प्रक्रिया कुछ तेज हो गई है। पेटेन्ट तन्त्र इसका ज्वलन्त उदाहरण है, इसलिए आने वाले दिनों में एकाधिकार लाभ का प्रमुख कारण बन जाएगा।

उपरोक्त सिद्धान्तों के आधार पर हम कह सकते हैं कि लाभ की उत्पत्ति का कोई एक विशिष्ट कारण नहीं है। वरन् यहां कई कारणों से पैदा होता है जैसे अनिश्चितता, जोखिम, योग्यता नवप्रवर्तन व एकाधिकार आदि।

3. लाभ में भिन्नता के कारण (Causes of Difference in Profits)

लाभ की उपरोक्त व्याख्याओं के आधार पर अब इस बात का जवाब देना काफी आसान हो गया है कि उद्यमियों को मिलने वाली लाभ की दर भिन्न–भिन्न क्यों होती है।

(1) **अनिश्चितताओं व उनसे जुड़े जोखिम में भिन्नता के कारण:** भिन्न–भिन्न व्यवसायों में अनिश्चितता व जोखिम का स्तर अलग–अलग होता हैं इस कारण इन व्यवसायों से मिलने वाले लाभ की मात्रा भिन्न होती है। ये अनिश्चितताएं अनेक कारणों से पैदा हो सकती हैं जैसे:

- सरकार की नीतियों के कारण
- तकनीक में परिवर्तन से जुड़ी अनिश्चितता।
- व्यापार चक्र से जुड़ी अनिश्चितता।
- नए प्रतियोगिता से जुड़ी अनिश्चितता।
- रुचियों में परिवर्तन से जुड़ी अनिश्चितता।

(ii) **नवप्रवर्तन में भिन्नता के कारण:** उद्यमियों में नवप्रवर्तन करने के साहस में अन्तर पाया जाता है। इसलिए उन्हे मिलने वाले लाभों में भिन्नता होती है। ये नवप्रवर्तन अनेक प्रकार के हो सकते हैं।

- किसी वस्तु को बनाने के तरीके मे नवप्रवर्तन।
- उत्पादन के प्रबन्धन के तरीके में नवप्रवर्तन।
- बाजार के प्रबन्धन के तरीके में नवप्रवर्तन नहीं।
- किसी नई वस्तु की खोज।
- नए कच्चे माल की खोज।

(iii) **गत्यात्मकता में भिन्नता के कारण:** प्रत्येक उद्योग में गतयात्मकता (निन्तर परिवर्तनशील रहना) में अन्तर पाया जाता है। जिस उद्योग में परिवर्तनशीलता ज्यादा होगी, उतनी ही ज्यादा उससे जुड़ी अनिश्चितता होगी। जितनी ज्यादा *अनिश्चितता होगी, उतना ही ज्यादा पुरस्कार के रूप में लाभ मिलने की आशा होगी। अर्थव्यवस्था में गत्यात्मकता कई* कारणों से हो सकती है जैसे:

- सरकार की नीतियों में परिवर्तन के कारण।
- *तकनीक मे परिवर्तन के कारण।*
- रुचियों में परिवर्तन के कारण।
- जनसंख्या के स्तर मे परिवर्तन के कारण।
- नवप्रवर्तन के कारण।

इन परिवर्तनों का असर विभिन्न उद्योगों पर भिन्न–भिन्न पड़ता है। इसलिए इनसे मिलने वाले लाभ भी भिन्न होते हैं।

(iv) **एकाधिकार के स्तर मे भिन्नता के कारण:** एकाधिकार लाभ को जन्म देता है परन्तु विभिन्न उद्योगों में एकाधिकार का स्तर विभिन्न होता हैं इसलिए विभिन्न उद्योगों मे लाभ का स्तर भी भिन्न होता है।

(v) **योग्यता में अन्तर के कारण:** विभिन्न उद्यामियों की योग्यता में अन्तर होता है। इसलिए विभिन्न उद्यमियों को मिलने वाले लाभ का स्तर अलग–अलग होता है।

4. क्या शुद्ध लाभ शून्य हो सकता है?
(Can Net Profits be Zero)

शुद्ध लाभ की विभिन्न व्याख्याओं का अध्ययन करने के बाद हम इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि शुद्ध लाभ अनिश्चितता, जोखिम, नवप्रवर्तन, योग्यता में अन्तर के कारण तथा एकाधिकारी स्थिति के कारण पैदा होता है। शुद्ध लाभ शून्य तभी हो सकता है जब अर्थव्यवस्था में अनिश्चितता, जोखिम, नवप्रपवर्तन आदि बिल्कुल न हो। अर्थात् अर्थव्यवस्था में परिवर्तनशीलता न हों। यह स्थैतिक हो, उद्यमियों की योग्यता में अन्तर न हो, उद्योग में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति हो।

परन्तु वास्तविक जीवन में यह सम्भव नहीं है। परिवर्तन जीवन का नियम है। इस परिवर्तनशीलता/गतयात्मकता से अनिश्चितता व जोखिम पैदा होते हैं। जिससे शुद्ध लाभ स्वतः ही पैदा होने लगता है। मनुष्य मे लाभ की ललक उसे नित्य नवप्रवर्तन करने के लिए प्रेरित करती है। इससे भी शुद्ध लाभ पैदा होता है। उपरोक्त कारणों व योग्यता में अन्तर के कारण कुछ न कुछ एकाधिकारी तत्व उद्योग में स्वतः ही पैदा हो जाता है जो और ज्यादा शुद्ध लाभ पैदा होता है। अतः हम कह सकते हैं कि शुद्ध लाभ एक काल्पनिक स्थैतिक, पूर्ण प्रतियोगी अर्थव्यवस्था में ही शून्य हो सकता हैं वास्तविक जीवन में गत्यात्मकता, योग्यता में अन्तर व एकाधिकारी तत्वों के कारण शुद्ध लाभ दीर्घकाल में कभी शून्य नहीं हो सकता। वास्तव में यह लाभ ही पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में गति व विकास का आधार है। ठीक उसी तरह जिस प्रकार ईंधन, कार की गति का आधार है।

5. क्या लाभ कीमत में शामिल होता है?
(Does Profit Enters in to Cost)

लाभ कीमत में शामिल होता है या नहीं, इस सवाल का जवाव देने से पहले हमें सामान्य व असामान्य लाभ में अन्तर को समझना होगा। सामान्य लाभ वे होते हैं जो दीर्घकाल मे पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में मिलते हैं। इसमें उत्पादन के सभी साधनों की लागत जिसमें उद्यमी को मिलने वाला लाभ भी होता है, शामिल होते हैं।

परन्तु अल्पकाल में पूर्णप्रतियोगिता में भी असामान्य लाभ मिल सकते हैं। एकाधिकार में तो दीर्घकार मे भी असामान्य लाभ मिलते हैं। ये असामान्य लाभ अन्य कारणों से पैदा होते हैं तथा लागत का हिस्सा नहीं होते। इसलिए इन्हें कीमत मे शामिल नहीं किया जाता।

प्रश्न
(Questions)

1. Differentiate between gross and net profits. To what extent is profit a reward for unertainty and risk bearing?
   कुल तथा शुद्ध लाभ के अन्तर को प्रकट करें लाभ किस सीमा तक जोखिम उठाने तथा अनिश्चितता का पुरस्कार है।
   (M.D.U. B.Com. I 1994)

   Or

   Differentiate between gross profit and net profit and discuss the uncertainty bearing theory of profit.
   कुछ लाभ तथा शुद्ध लाभ मे भेद कीजिए साथ ही लाभ के अनिश्चितता सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
   (K.U. 1997)
2. Explain the role of risk and uncertainty into the Theory of Profit.
   लाभ के सिद्धान्त में जोखिम तथा अनिश्चितता के महत्व का वर्णन करें।
3. Examine the nature of Profits. Do profits enter into price? Explain.
   लाभ की प्रकृति का वर्णन करें। क्या लाभ कीमत में शामिल हैं?
4. Profit originates in uncertainty, profits are a reward of innovation. Explain the above two statements.
   लाभ अनिश्चितता के कारण पैदा होता है। लाभ नवप्रवर्तन का पारितोषिक है। ऊपर लिखे दो कथनों की व्याख्या करें।
5. Examine the Knight's Theory of Profit.
   नाईट के लाभ सिद्धान्त का वर्णन करें।
6. Critically explain the dynaimc and incertainty bearing theories of profits.
   लाभ के गत्यात्मक तथा अनिश्चितता वहन सिद्धान्तों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
   (K.U. 1993)

अध्याय -32
सामान्य सन्तुलन विश्लेषण के मुद्दे
(Issues in General Equilibrium Analysis)

General Equilibrium Theory and Partial Equilibrium Theory

आंशिक संतुलन के अंतर्गत एक फर्म, एक उद्योग या एक उपभोक्ता का अध्ययन किया जाता है। अर्थात् अप्रत्यक्ष रूप से यह Micro Economics से संबंधित होता है? इसमें हम एक variable को study करते ही बाकि variables को स्थिर मानते हैं। Partial Equilibrium Approach के "Marshaltion Report" नाम से भी जाना जाता है स्टिगलर के अनुसार आंशिक संतुलन वह हो जो केवल सीमित आंकड़ों पर आधारित है? इसमें एक वस्तु की कीमत का विश्लेषण किया जाता है जबकि अन्य वस्तुओं की कीमतों को स्थिर मान लिया जाता है इसके अंतर्गत एक फर्म को आर्थिक व्यवहार से संबंधित विशेष समस्याओं का अध्ययन किया जाता है और अन्य वस्ुओं पर कीमतों के प्रभाव को ignore किया जाता है।

1. **उपभोक्ता का संतुलन :** एक उपभोक्ता उस समय संतुलन की स्थिति में होता है जब वह अपनी समस्त आय को इस प्रकार व्यय करता है कि उससे अधिकतम संतुष्टि प्राप्त हो। उपभोक्ता के संतुलन की स्थिति

   $$\frac{MU_a}{P_a} = \frac{MU_b}{P_b} = \frac{MU_c}{P_c}$$

2. **एक फर्म का संतुलन :** एक फर्म उस समय संतुलन की स्थिति में होती है जब वह वर्तमान उत्पादन मैं किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं चाहती अर्थात जब फर्म के लाभ अधिकतम होते हैं। फर्म के संतुलन की दो शर्ते होती है।

   (i) MC = MR

   (ii) MC = MR को नीचे से उपर से काटती है।

3. **साधन बाजार में संतुलन :** जब एक साधन को पारिश्रमिक उसकी सीमांत उत्पादकता के बराबर मिलता है तथा साधन उस रोजगार से कहीं और जाने की प्रवृति नहीं रखता।

   साधन बाजार में संतुलन = MRP = MFC

   सीमांत आय उत्पादकता = सीमांत साधन लागत।

मान्यताएं

1. [illegible] उपभोक्ता के लिए स्थिर है।
2. आय, रुचि, प्राथमिकता व फैशन सभी स्थिर हैं।
3. उत्पादन के साधन गतिशील हैं तथा आसानी से उपलब्ध है।

4. पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता है।
5. अलपकाल में साधन को MRP से कम मजदूरी प्राप्त होती है लेकिन दीर्घकाल में साधन को MRP के बराबर पुरस्कार मिलता है।

सीमाऐं

1. इसका क्षेत्र संकुचित है क्योंकि यह पूरी अर्थव्यवस्था की समस्या का अध्ययन नहीं करता। यह केवल एक वस्तु या एक फर्म या अर्थव्यवस्था के किसी एक क्षेत्र का अध्ययन है।
2. यह विभिन्न इकाइयों के सहसंबंध की अवहेलना करता है और यह अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है जैसे कि पूर्ण प्रतियोगिता।

सामान्य संतुलन

अर्थव्यवस्था में संतुलन की परंपरागत व्याख्या आंशिक संतुलन में की जाती है। जिसमें दो variables के संतुलन को प्रभावित करने वाले अन्य कारकों को स्थिर मान लिया जाता हैं परंतु वास्तविकता में अर्थव्यवस्था में तत्व एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। और इसमें परस्पर निर्भरता पाई जाती है। वस्तु बाजार, साधन बाजार, मुद्रा बाजार एक दूसरे से जुड़े होते हैं। परस्पर निर्भरता को बताने के लिए उदाहरण लिया गया है जिसमें दो क्षेत्र हैं जिसमें एक House-Hold-sector और दूसरा है फर्म।

1. सारे का सारा उत्पादन business sector द्वारा किया जाता है जिसमें फर्में होती है उत्पादन के साधन House-Hold-Sector के पास होते है। उत्पादन के सभी साधन पूर्ण रोजगार प्राप्त होते हैं।
2. सारे की सारी आय खर्च कर दी जाती है।

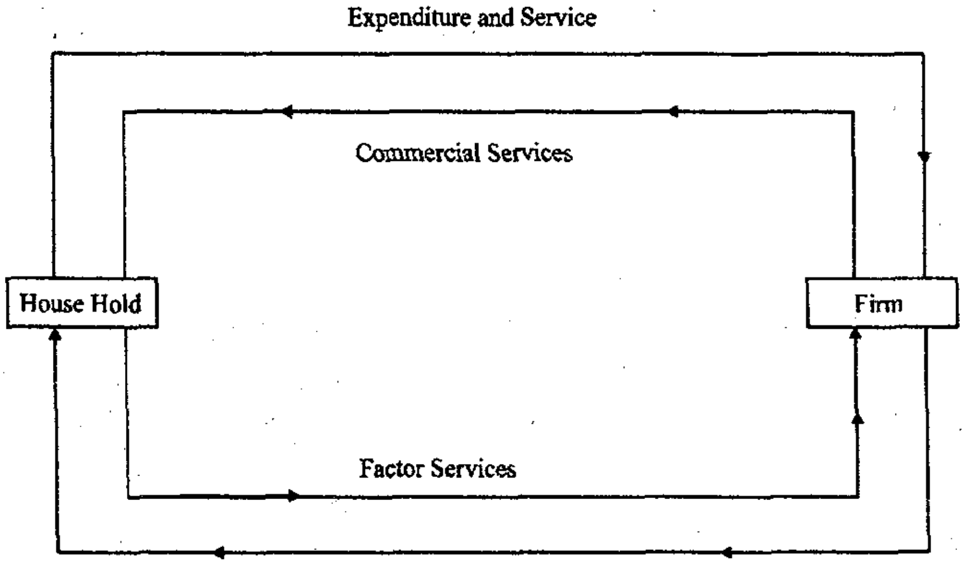

Factor Payment
Circular Flows in Two Sector Economy

सामान्य संतुलन आर्थिक इकाईयों के परस्पर संबंध और निर्भरता का विस्तृत अध्ययन करता है जिससे अर्थव्यवस्था की कार्य प्रणाली को पूर्ण रूप से समझा जा सकें। यह समस्त अर्थव्यवस्था में कीमतों और वस्तुओं व सेवाओं की मात्रा में परिवर्तन उनकी कार्य प्रणाली और कारणों और परिणामों के संबंध की व्याख्या करता है। सारी अर्थव्यवस्था उस समय संतुलन में होती है। जब सभी उपभोक्ताओं को अधिकतम संतुष्टि और सभी उत्पादों को अधिकतम लाभ होते हैं। सामान्य संतुलन के अंतर्गत एक ऐसी अर्थव्यवस्था होती है जिसमें सभी बाजार व सभी

निर्णय लेने वाली इकाइयों के साथ संतुलन में होती है। एक आर्थिक प्रणाली में अधिक निर्णय लेने वाली लाखों इकाई होती हैं जो कि स्वहित के लिए कार्य करती है प्रत्येक इकाई के अपने उद्देश्य होते हैं और अपना संतुलन होना ही परंपरागत सिद्धांत में हम केवल एक संतुलन इकाई का अध्ययन करते हैं।

लेकिन सामान्य संतुलन में सभी आर्थिक क्रियाओं की परस्पर निर्भरता और इन समस्त इकाइयों के एक साथ संतुलन का अध्ययन किया जाता है। सामान्य संतुलनों में लाखों Simantations equation किया जाता है का equations होती है और इतने ही unknown होते हैं सभी साधनों और सभी वस्तुओं की कीमतें unknown ही वस्तुओं और साधनों की खरीदी और बेची जाने वाली मात्राएं unknown इस system में equation को उपभोक्ताओं और उत्पादकों के maximising behaviour द्वारा दिखाया जाता है। equation दो प्रकार की होती हैं।

1. **Behaviour Equation.** वह equation है जो कि सभी बाजारों के मांग और पूर्ति पालनों का अध्ययन करती है।
2. **Clearing the Market Equation :** ये Equation उस स्थिति को बताती है जब मांग और पूर्ति समान होती है।

   सामान्य संतुलन Model के अनुसार संतुलन वहां होता है जहां equations और unknowns बराबर होते हैं।

   Equations = Unknowns

सामान्य संतुलन के अंतर्गत wabas ने अपना 2 × 2 × 2 का Model दिया है। Walras ने सामान्य संतुलन Model अपनी पुस्तक Element of pour economics में दिया। Walras ने सभी बाजारों विक्रेताओं और विक्रेताओ की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करने के लिए Simaltinuting equation का प्रयोग किया और वह मानता है कि सभी unknown जैसे कि वस्तुओं सेवाओं और उत्पादन के साधनों की कीमतें व मात्राएं इस system के solution द्वारा एक साथ निर्धारित की जाती हैं। Watrasion Model में प्रत्येक निर्णय लेने वाली इकाई का व्यवहार समीकरणों के एक सेंट द्वारा प्रस्तुत किया है उदाहरण के तौर पर प्रत्येक उपभोक्ता दोहरी भूमिका निभाता है। वह वस्तुओं की मांग करते हैं और दूसरी तरफ वह अपनी सेवाएं फर्मो के प्रदान करता है। ताकि वस्तुओं का उत्पादन किया जा सकें। अर्थात जब उपभोक्ता वस्तु और सेवाएं खरीदता हो तो वहां demand equation प्राप्त होती है ओर जब फर्म को उत्पादन से सावधान, सेवाएं प्रदान हो तो supply equation प्राप्त होती है Walras ने बताया कि जिनकी वस्तुएं न उत्पादन के साधन, उतने ही बाजार प्रत्येक बाजार में तीन प्रकार के function होते हैं।

1. Demand function
2. Supply function
3. Clearing the market function : जहां मांग व पूर्ति बराबर होती है।

सामान्य संतुलन के लिए एक आवश्यक शर्त यह है कि अर्थव्यवस्था में उतने ही स्वतंत्र समीकरण होने चाहिए, जितने कि unknnown हो अतः अर्थव्यवस्था में equation को प्राप्त करने के पश्चात ही unknown को प्रकट करना चाहिए। अर्थात unknown को प्राप्त करने के लिए हो जितनी equation चाहिए। इसी को सिद्ध करने के लिए Walras ने 2 × 2 × 2 Model दिया है।

quantities demand of x and y by consumers 2 × 2 = 4

quantities supplied of K and L by consumers 2 × 2 = 4

quantities demand of K and L by firms 2 × 2 = 4

quantities of Y and X supplied by firms = 2

Prices of commodities y and x = 2

Prices of factors K and L = 2

Total number of unknown = 18

To find these unknowns we have the following number of equations :

Demand function of consumers 2 × 2 = 4

Supply function of factors 2 × 2 = 4

Demand function for factor 2 × 2 = 4

Supply function of commodities = 2

Clearing the market of commodities = 2

Clearning the market of factors = 2

Total number of equations = 18

क्योंकि equation की संख्या और unknowns की संख्या बराबर है इसलिए ऐसा समझा जाता है कि सामान्य संतुलन पाया जाता है लेकिन ऐसा हमेशा नहीं होता। Walras कभी भी सामान्य संतुलन के अस्तित्व को सिद्ध करने में सफल नहीं हो सके। क्योंकि इस system में एक ncadent equation होती है जो कि सामान्य संतुलन को स्थापित नहीं होने देती। इसलिए unknowns की संख्या equation से ज्यादा होती है न हो सामान्य संतुलन सिद्धांत दाताओं ने एक वस्तु की कीमत को अपनी इच्छा से चुना है और इसको उन्होंने unit of account माना है और दूसरी समस्त वस्तुओं के मूल्य इसे numerator के द्वारा व्यक्त किए हैं। सामान्य संतुलन solution को निर्धारित बनाने के लिए इस system में मुद्रा बाजार का समावेश किया गया है जिसमें मुद्रा केवल unit of account काम ही नहीं करती बल्कि विनिमय के माध्यम और धन के संचय का भी काम करती है।

यदि equation और unknowns की मात्रा बराबर हो वहां तो भी इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि सामान्य संतुलन का प्रत्यक्ष प्रमाण देना बहुत की कठिन कार्य है। Walras के अनुसार Arrow और Hohn ने भी सामान्य संतुलन को स्थापित करने का प्रयास किया है। लेकिन हमारे ज्ञान की वर्तमान अवस्था हमें इस योग्य नहीं बनाती है कि वास्तव में सामान्य संतुलन solution स्थापित हो सकेगा इसलिए सामान्य संतुलन के संबंध में तीन समस्याएं उत्पन्न हैं।

1. क्या सामान्य संतुलन solution वास्तव में भी होता है। (existence problems)
2. यदि ऐसा संतुलन स्थापित होता हो तो क्या यह 'यूनिक' (पर्याप्त होता है।) (uniquensss problem)
3. यदि संतुलन स्थापित होता है तो क्या यह स्थाई होता है (stability problem)

इन तीनों समस्यों को आंशिक संतुलन के मांग पूर्ति Model की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है।

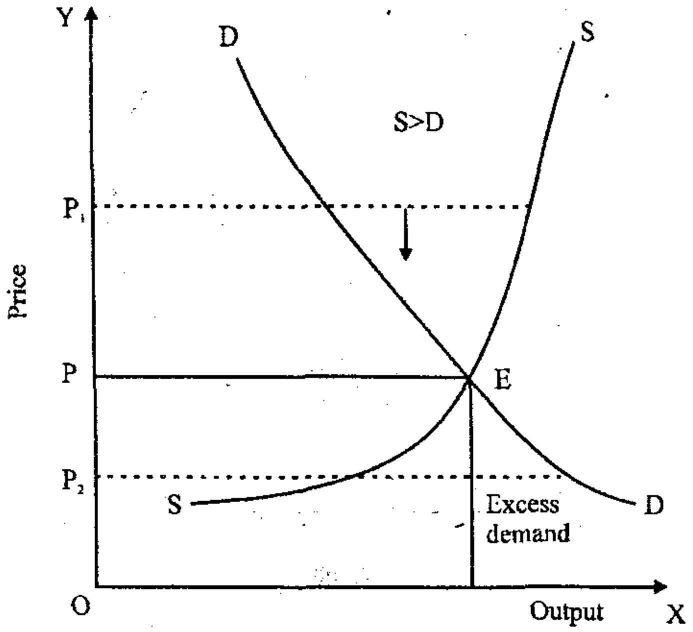

Unique & Stable equl.

चित्र (1) में E बिंदु पर संतुलन है। यह संतुलन unique है। क्योंकि और कहीं भी संतुलन की स्थिति नहीं है और यह संतुलन स्थाई भी है क्योंकि यदि कीमतों में परिवर्तन किया भी जाये तो मांग और शर्तें में इस प्रकार परिवर्तन होगा कि दोबारा E बिंदु को प्राप्त किया जा सकता है यदि मांग वक्र पूर्ति वक्र को उपर से नीचे को काटता है तो संतुलन स्थाई होता है।

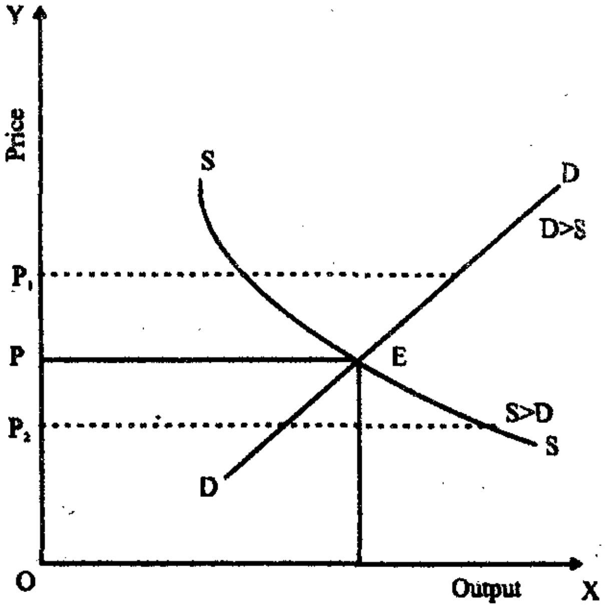

Unique, Unstable equl.

चित्र दो में संतुलन unique तो है लेकिन अस्थाई है क्योंकि यदि कीमत में परिवर्तन हुआ तो कीमत दोबारा जांच कर E बिंदु पर नहीं जायेगी, कीमत E बिंदु से दूर हटती चली जाएगी क्योंकि मांग वक्र पूर्ति वक्र को नीचे से ऊपर को काट रहा है।

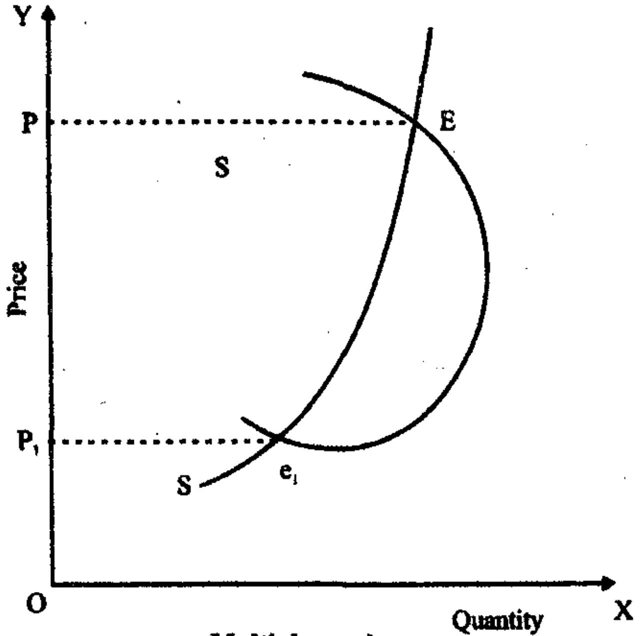

Multiple equl.

चित्र (iii) में unique संतुलन नहीं है बल्कि बहुसंतुलन है एक E बिंदु तथा आदि दूसरा e_1 है। बिंदु पर संतुलन है।

at e - stable eq.

at e^1 - unstable qu.

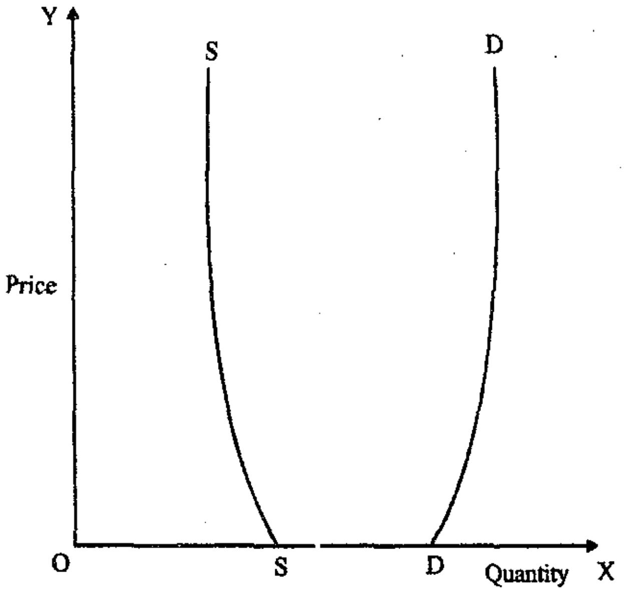

चित्र (iv) में कोई संतुलन नहीं है क्योंकि लाभ और क्षति दूसरों पर बराबर नहीं है इसलिए चित्र एक में ही संतुलन है तीनों समस्याओं का समाधान हो रहा है। अतः यह संतुलन स्थाई है और अस्थाई भी है।

A. Graphical illustration of the problem to general equilibrium

मान्यताएं :

(i) दो स्थानापन्न वस्तुएं X और Y हैं जिनका उत्पादन पूर्व प्रतियोगी बाजारों में हो रहा है।

(ii) उत्पादन के दो साधन पूंजी (u) और श्रम (l) हैं, जिनके बाजार पूर्ण प्रतियोगी है और इन साधनों की पूर्ति स्थिर है।

(iii) उत्पादन पर घटते प्रतिफल का नियम लागू होता है।

(iv) X वस्तु का उत्पादन करने वाला उद्योग श्रम प्रधान है और Y वस्तु का उत्पादन करने वाला उद्योग पूंजी प्रधान है अतः उद्योग X में पूंजी श्रम अनुपात कम है।

(v) उपभोक्ता उपयोगिता को अधिकतम करना चाहते हैं और फर्म लाभ को अधिकतम करती है।

(vi) पूर्ण प्रतियोगिता की सभी मान्यताएं लागू होती हैं।

(vii) प्रारभ में अर्थव्यवस्था की प्रणाली संतुलन में है सभी बाजारों में मांग पूर्ति के बराबर है।

मान लो कि उपभोक्ताओं की रूचि में परिवर्तन आ जाता है जिससे X वस्तु के लिए मांगें बढ़ जाती है और मांगों फलन D_0 से D_1, हो जाता है और अल्पकाल में कीमत बढ़कर p_0 से p_1 हो जाती है और मात्रा X^0 से बढ़कर X_1 हो जाती है क्योंकि X और Y स्थानान्न वस्तुएं हैं। इसलिए यह आशा की जाती है कि x की मांग बढ़ जाने पर Y की मांग कम हो जाएंगी इसलिए X की मांग कम होने से इसकी कीमत गिरेगी। और Y की मात्रा Y_0 से कम होकर Y_1 रह जाएगी। क्योंकि दोनों वस्तुएं स्थानापन्नत है इसलिए एक की मांग बढ़ने से दूसरी की मांग गिरेगी।

X वस्तु की कीमत बढ़ने पर X वस्तु के उत्पादकों के लाभ बढ़ेंगे। और Y वस्तु के उत्पादकों को हानि होगी। इस फर्म Y वस्तु से साधनों को हटाकर X वस्तु के उत्पादन में लगाएंगी इस Movement को Production probability curve पर बिंदु A से बिंदु B पर दिखाया गया है।

(i)

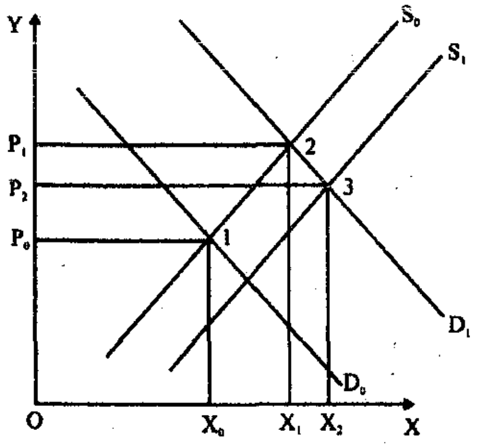

X Industry

(ii)

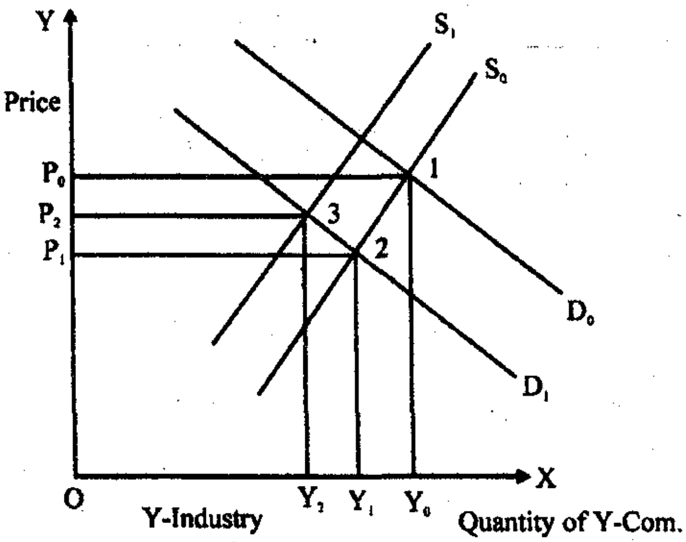

(iii)

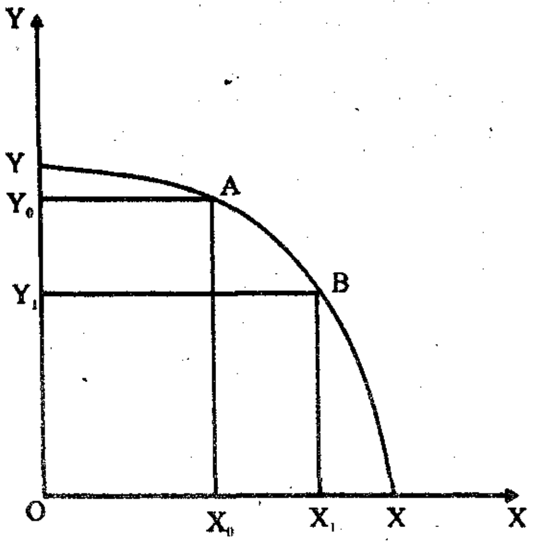

Production possibility curve

(iv)

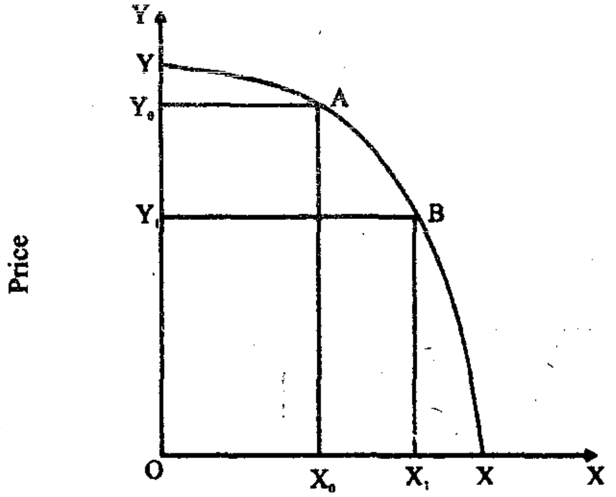

Production possibility curve

(v)

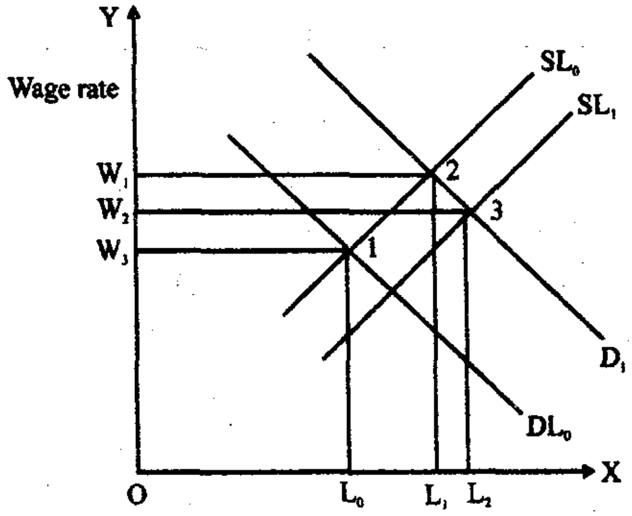

Labour Market for Industry Y

(vi)

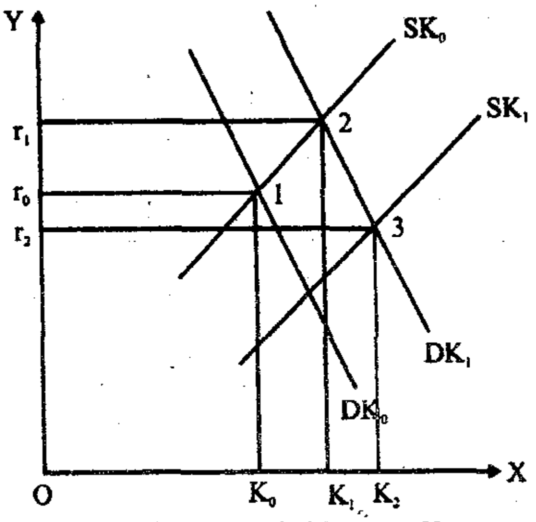

Market for Capital Industry X

(vi)

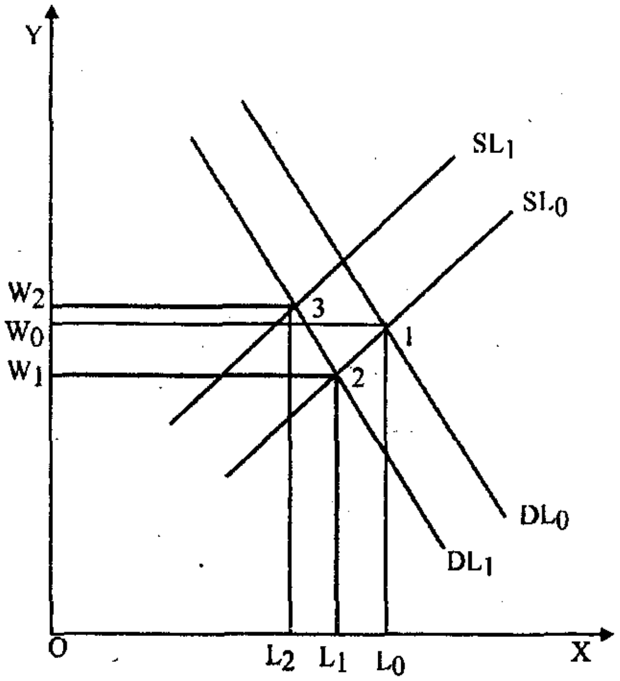

Labour market for industry y

(vii)

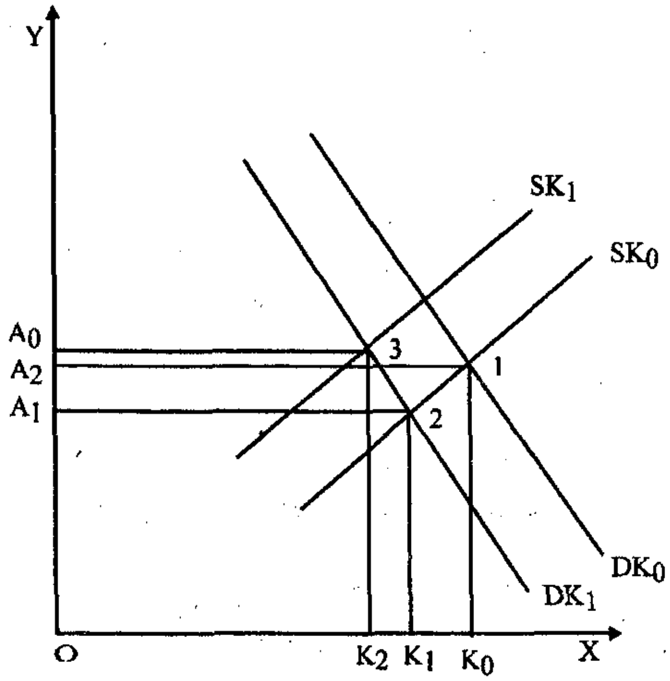

Capital

चित्र 4 और 5 में 2 वस्तु के उत्पादन के लिए श्रम और पूंजी को दर्शाया गया है X वस्तु में उत्पादन बढ़ने के कारण और नई फर्मो के प्रवेश के कारण श्रम और पूंजी की मांग बढ़ेगी। इसलिए श्रम और पूंजी के मांग वक्र उपर की ओर shift हो रहे हो इसलिए X उद्योगों में श्रम की मांग बढ़ जाने के कारण मजदूरी दर बढ़ जाएंगी। जोकि W_3 से बढ़कर W_1 हो जाएंगी। लेकिन दीर्घकाल में श्रम की पूर्ति बढ़कर SL_0 से SL_1 हो जाएंगी और मजदूरी दर W_1 से गिरकर W_2 हो जाएंगी लेकिन यह मजदूरी W_3 से ऊँची रहेगी।

चित्र 5 में उद्योग के लिए पूंजी बाजार को दर्शाया गया है इस उद्योग में ब्याज की दर r_6 से गिरकर R_2 हो जाएंगी क्योंकि X उद्योग श्रम प्रधान उद्योग ही इसलिए इस उद्योग में पूंजी की मांग अधिक नहीं होती। इसलिए ब्याज की दर गिरेगी।

चित्र 6 में उद्योग के लिए श्रम बाजार को दर्शाया गया है इस उद्योग में भी मजूदरी दर बढ़ेगी। और ब्याज की दर कम हो जाएंगी। क्योंकि चित्र 7 से स्पष्ट है कि बाजार में पूर्व प्रतियोगिता के कारण सभी उद्योगों में साधनों की कीमतों के समान होने की प्रवृति पाएंगी। उद्योग श्रम प्रधान उद्योग होने के कारण श्रम की मांग अधिक है जबकि Y उद्योग में उत्पादन कम होने के कारण दोनों ही साधनों श्रम और पूंजी को काम से हटाया जाएगा। लेकिन 2 उद्योग पूंजी प्रधान उद्योग होने के कारण पूंजी अधिक मात्रा इस उद्योग से निकलेगी। जबकि X उद्योग पूंजी की अधिक मांग नहीं करेगा, क्योंकि X उद्योग श्रम प्रधान उद्योग है इसलिए पूंजी की कीमत जो कि ब्याज होती है गिरेगी और श्रम की कीमत मजदूरी बढ़ जाएगी और अर्थव्यवस्था दोबारा संतुलन की स्थिति में होगी कि सामान्य संतुलन की स्थिति होगी, लेकिन इस स्थिति में मजदूरी यह अधिक और ब्याज की दर कम होगी।

2 × 2 × 2 Model : Two factor, two commodity, two consumer (2 × 2 × 2) general equi. model :

इस model में पूर्व प्रतियोगी बाजार को माना गया है क्योंकि हमने water system में भी देखा ही है कि सामान्य संतुलन केवल पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में ही संभव है।

2 x 2 x 2 Model की मान्यताएं

1. उत्पादन के दो ही साधन श्रम L और पूंजी K है
2. साधन समरूप है और पूर्ण तथा विभाज्य है।
3. केवल दो वस्तुओं X और Y का उत्पादन हो रहा है। तकनीक स्थिर ही समान प्रतिफल का नियम लागू होता है दो वस्तुओं के उत्पादन फलन स्वतंत्र है अर्थात एक दूसरे को प्रभावित नहीं करते।
4. अर्थव्यवस्था मे दो उपभोक्ता A और B है जिनकी प्राथमिकता को तटस्थ वक्र से दर्शाया जाता है दोनों उपभोक्ताओं के उपयोगता फलतः स्वतंत्र ही अर्थात एक उपभोक्ता की उपयोगिता दूसरे उपभोक्ता को प्रभावित नहीं करती।
5. प्रत्येक उपभोक्ता का उद्देश्य अपनी संतुष्टि को अधिकतम करना है।
6. प्रत्येक फर्म का उद्देश्य अपने लाभ अधिकतम करना है।
7. उपभोक्ता उत्पादन के साधनों के मालिक होते हैं।
8. साधनों का पूर्ण रोजगार है।
9. वस्तु बाजार और साधन बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता है।

   इस Model में सामान्य संतुलन तब होता है जब चारों बाजार और (दो साधन बाजार) संतुलन कीमत (P_X, P_Y, W,r) हो जाते है और अधिक प्रमाण में भी Ecomomic ऐजेंट। दो फर्म और दो उपभोक्ता। एक संतुलन में होते है इसलिए सामान्य संतुलन के हल के लिए निम्नलिखत चरों के मूलें को निर्धारित करना आवश्यक है।

   1. दोनों वस्तुओं X और Y की कुल मात्रा, जिनका फार्मो द्वारा उत्पादन किया जाएगा और जिन्हें उपभोक्ताओं द्वारा खरीदा जाएगा।
   2. प्रत्येक वस्तु के उत्पादन के लिए आवंटित की गई पूंजी और श्रम की मात्रा। (K_X, K_Y, L_X, L_Y).
   3. दोनों वस्तुओं X और Y की मात्रा, जिन्हें उपभोक्ताओं के द्वारा खरीदा जाएगा। (X_a, X_B, Y_a, Y_B)
   4. वस्तुओं की कीमतें (P_X, P_Y) और साधनों की कीमतें (W, R)

Static Properties of a General Equi State :

पूर्व प्रतियोगिता की अवस्था से सामान्य संतुलन की तीन स्वैधनिक विशेषताएं पाई जाती हैं।

1. फर्मों के बीच में साधनों का अध्ययन आवंटन (उत्पादन में संतुलन)
2. वस्तुओं का दो उपभोक्ताओं के बीच में उच्चतम आवंटन (उपयोग का संतुलन)
3. वस्तुओं का इष्टतम संयोग (प्रयोग और उत्पादन का एक साथ संतुलन)

ये विशेषताएं Pareto optimality की सीमांत पूर्ति कहलाती हैं Parito optimal एक ऐसी स्थिति है जिसके अंतर्गत किसी एक व्यक्ति की स्थिति को बुरा बनाए बिना किसी दूसरे व्यक्ति की स्थिति में सुधार नहीं लाया जा सकता।

(A) साधन प्रतिस्थापन्न में कुशलता (Equilibrium of Production)

उत्पादन में कुशलता से अभिप्राय है कि उत्पादन के साधनों का फर्मों के बीच में कुशलतम बंटवारा किया जाएं। एक फर्म उस समय संतुलन में होती है जब वह साधनों के उस संयोग को चुनती है जिससे उसकी लागत न्यूनतम हो। इसलिए फर्म के संतुलन के लिए आवश्यक होती है।

$MRTSKL = \frac{W}{r}$ W → Wage rate

r → Interest rate

MRTS → Marginal rates

$\frac{W}{r}$ = Factor Price ratio

अर्थात, साधनों के सीमांत प्रतिस्थापना की दर साधनों के कीमत अनुपात के बराबर होनी चाहिए।

Slope of isoquoant = Slope of isoqunt cost. Edgeworth की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है।

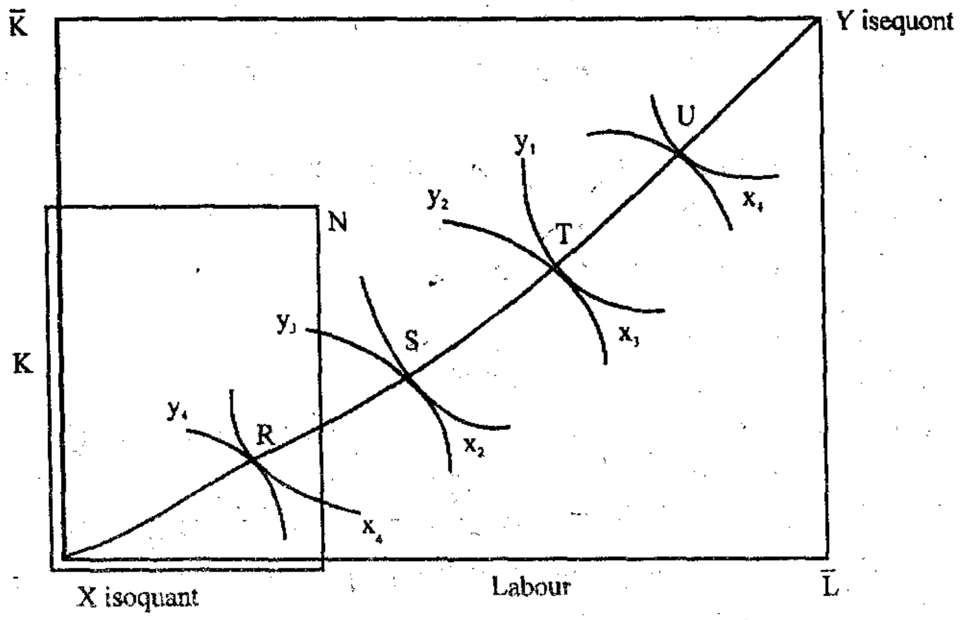

Slope of X isoquant = Slope of Y isoquant

$MRTS^{X}LK = MRTS^{y}_{KL}$

$MRTS^{X}_{LK} = MRTS^{y}_{KL} = \frac{W}{r}$

हमारे model में दो फर्मो के उत्पादन के संतुलन को दर्शाया गया है जिसको Edgeworth box diagram की सहायता से दर्शाया गया। इसकी सहायता से हम दो उत्पादन के साधनों K, L की मात्रा को माप सकते हैं origin O_X वस्तु के लिए है और origin O_Y वस्तु के लिए ही कहां पर X और Y वस्तु के isoquant आपस में छू रहे हैं उन सब बिंदुओं R,S,T,U को मिलने से उत्पादन में control curve बन रहा है। यह curve फर्मो के बीच में K और L के इष्टतम बंटवारे के दर्शन रहा है Edgeworth box दो वस्तुओं X और Y के उत्पादन में दो साधनों capital और Labour के बंटवारे को दर्शा रहा है यद्यपि Edgeworth box के सभी इष्टतम बिंदु साधनों को इष्टतम पर बंटवारे के नहीं दर्शाते। साधनों का इष्टतम बंटवारा केवल contract होता है Point Z पर इष्टतम उत्पादन नहीं हो रहा यदि हम इस बिंदु से चलकर contract curve के किसी भी बिंदु T या S पर पहुंचे तो वहां पर दोनों या किसी एक वस्तु का अधिक उत्पादन होगा।

उत्पादन के Edgeworth contract curve की सहायता से Production possibility curve को दर्शाया जाता है ताकि System में Production side और Demand side को एक–दूसरे के साथ लाया जा सके। Edgeworth contract curve के हर एक बिंदु से एक वस्तु की मात्रा से दिया होने पर दूसरी वस्तु की अधिकतम प्राप्त करने योग्य मात्रा का पता लगाया जा सकता है जैसे Diagram No. 1 के बिंदु 1 से पता चलता है कि यदि X वस्तु की मात्रा S_2 हो तो Y की अधिकतम मात्रा Y_2 होगीं। इसी तरह से R_1S,U आदि बिंदु भी दो वस्तुओं के मात्रा को दर्शा रहे हैं Production contract curve पर इन सभी बिंदु की सहायता से Possibility curve बनाया गया है।

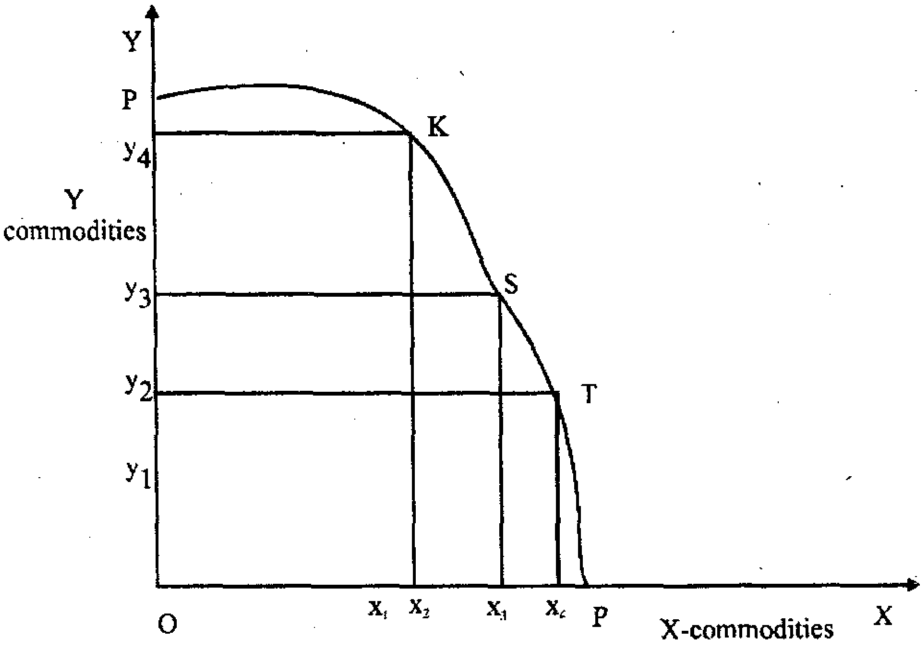

एक अर्थव्यवस्था का PPC curve सभी Parets optimal point को मिलाने से बनता है। जबकि अर्थव्यवस्था के साधन पूंजी और श्रम दिए हुए है और तकनीक स्थिर है, यह curve हमें एक वस्तु की अधिकतम मात्रा को बताता है जबकि दूसरी वस्तु की मात्रा दी हुई हैं। इस curve के भीतर का कोई भी बिंदु इष्टतम नहीं होता। अर्थात साधनों की बेरोजगारी को दर्शाता है और इस curve के बाहर का कोई भी बिंदु प्राप्त नहीं किया जा सकता है। PPC को Product Transfermation curve भी कहा जाता है क्योंकि यह बताता है कि एक वस्तु को दूसरी वस्तु में किस प्रकार बदला जाता है।

Production possibility curve का slpope X और Y वस्तुओं के कीमत अनुपात के बराबर होता है और पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में वस्तु की कीमत दीर्घकालीन सीमांत लागत के बराबर होती है।

$$MRPT_{XY} = \frac{P_X}{P_Y} = \frac{MC_x}{MC_y}$$

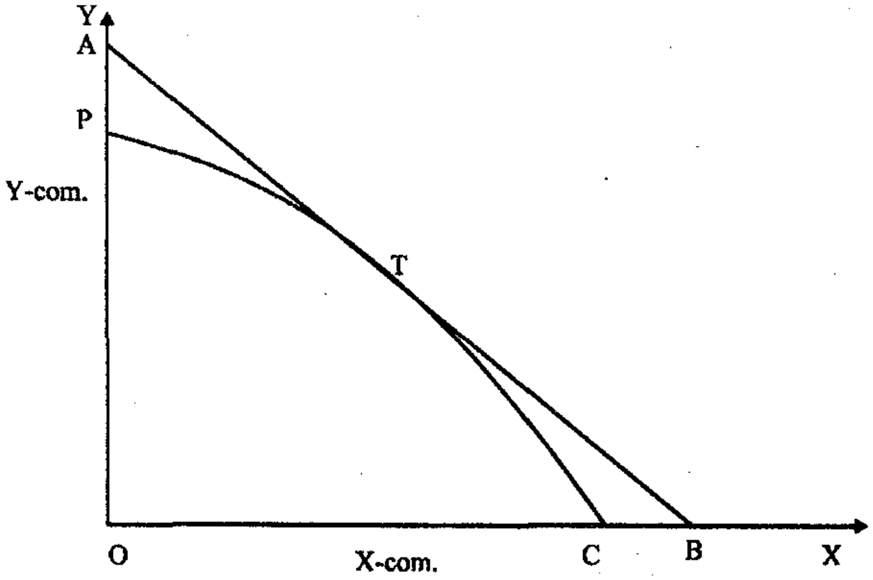

बिंदु T पर PPC का stope जो कि MRTS को बता रहा है ओर रेखा AB commodity Price Ratio को बता रही है इसलिए उत्पादन के सामान्य संतुलन की शर्त पूरी हो रही है।

उपभोक्ता का संतुलन

जब दो वस्तुओं की कीमतें P_x दी हुई है तो एक उपभोक्ता किस प्रकार अपनी संतुष्टि अधिकतम करता है उपभोक्ताओं के व्यवहार से हम यह है कि उपभोक्ता उस समय संतुलन की स्थिति में हो दो वस्तुओं की सीमांत प्रतिस्थापना की दर और इन वस्तुओं के कीमत अनुपात बराबर हों अर्थात उपभोक्ता संतुलन के लिए निम्नलिखित शर्त पूरी होनी चाहिए।

$$MRS_{xy} = \frac{Py}{Py}$$

क्योंकि पूर्व प्रतियोगिता में दोनों उपभोक्ताओं को एक जैसी कीमतों का सामना करना पड़ता है इसलिए दोनों उपभोक्ताओं के सामान्य संतुलन के लिए निम्न शर्त पूरी होनी चाहिए।

$$MRS^{A}xy = MRS^{B}xy = \frac{Py}{Py}$$

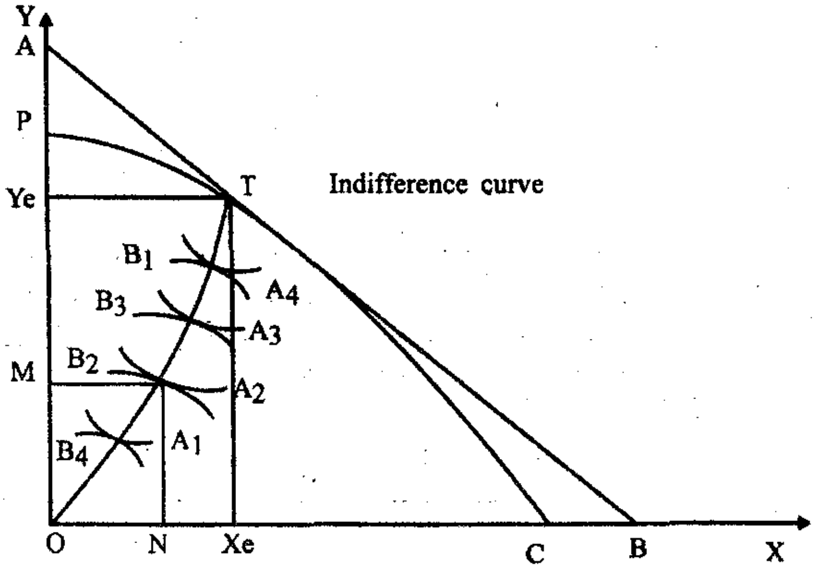

Indifference curve

उपभोक्ता Edgeworth contract curve सभी Pareto optimal point को दर्शा रहा है वस्तुओं का Pareto optimal बंटवारा उस समय होता है जब एक उपभोक्ता की संतुष्टि को घटाए बिना दूसरे उपभोक्ताओं के उदासीन वक्र के स्पर्श बिंदु Pareto efficient distribution को दर्शा रहे हैं। इस curve के पर बिंदु निम्न लिखित शर्त पूरी हो रही है।

$$MRS^{A}xy = MRS^{B}xy = \frac{Py}{Py}$$

किंतु T' उपभोक्ता के संतुलनों की दर्शा रहा है जब उपभोक्ता X वस्तु की Y मात्रा और OM वस्तु मात्रा खरीद रहा है।

उपयोग और उत्पादन में एक साथ संतुलन

सामान्य संतुलन के लिए एक तीसरी शर्त की भी आवश्यकता होती है। कि Marginal rate of production अर्थात slope of PPC Marginal Rate of substitution के बराबर होनी चाहिए।

$$MRPT_{xy} = MRS^{A}xy = MRS^{B}xy$$

यह Pareto की तीसरी शर्त है। क्योंकि MRPT उस पर बताता है जब उत्पादन में एक वस्तु को दूसरी में परिवर्तित किया जाता है जबकि MRS उस दर को बताता है जिस दर पर एक उपभोक्ता एक वस्तु को दूसरी वस्तु में परिवर्तित करने को तैयार होता है, यह system तब तक संतुलन में नहीं होगा जब तक ये दोनों अनुपात बराबर न हों। संतुलन के लिए उत्पादन क्षेत्र की योजनाएं उपभोक्ता की योजनाओं से मिलनी चाहिए। मान लो

$$MRPT_{xy} = \frac{2y}{x}$$

जबकि $MRS = \frac{y}{x}$

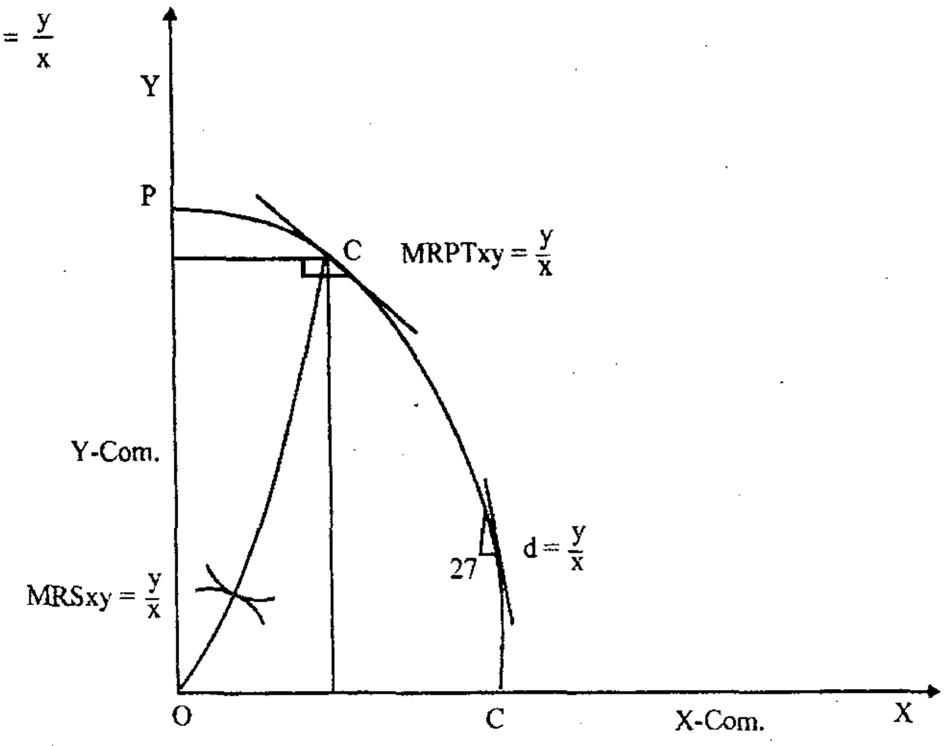

यदि $MRPT = \frac{2y}{x}$ और $MRS = \frac{y}{x}$ है तो अर्थव्यवस्था में एक इकाई X को त्यागने से इकाई Y का उत्पादन

किया जा सकता है। जबकि उपभोक्ता एक Y के लिए X देने को तैयार है इन दो अनुपातों की असमानता को बिंदु 'C' और 'D' से दर्शाया गया है इसका अर्थ है कि फर्म Y की कम मात्रा और X की अधिक मात्रा का उत्पादन कर रही है जबकि उपभोक्ताओं की प्राथमिकता एक Y के लिए एक X की ही इसलिए फर्म को X वस्तु का उत्पादन घटाकर Y वस्तु के उत्पादन को बढ़ाना चाहिए। तभी सामान्य संतुलन को प्राप्त किया जा सकता है इसका अर्थ है कि उत्पादन संयोग उत्पादकों और उपभोक्ताओं दोनों के लिए इष्टतम होने चाहिए। और यह बिंदु C पर ही जहां MRPT का Slope MRS के Slope के बराबर है।

निष्कर्ष

एक दो साधन, दो वस्तु और दो उपभोक्ता प्रणाली में पूर्ण प्रतियोगिता को मानते हुए सामान्य संतुलन को प्राप्त किया जा सकता है जिसमे तीन Pareto optimal condition पूरी हो रही है।

1. दोनों उपभोक्ताओं के लिए दो वस्तुओं के बीच MRS बराबर है अर्थात उपभोक्ताओं के बीच वस्तुओं का इष्टतम बंटवारा हो रहा है।
2. सभी फर्मों के लिए यो साधनों के बीच MRTS बराबर हो अर्थात फर्मो के बीच साधनों का इष्टतम बंटवारा हो रहा है।
3. दोनों वस्तुओं के लिए MRS और MRPT बराबर है अर्थात् अर्थव्यवस्था में साधनों का इष्टतम बंटवारा हो रहा हो और अर्थव्यवस्था में उत्पादन की बनावट इष्टतम है।

——§§§§§§§§§§§§§§§——

अध्याय -33
कल्याण का अर्थशास्त्र
(Welfare Economics)

सामाजिक कल्याण की धारणा – कुछ प्रारम्भिक मान
(Concept of Social Welfare – Some Early Criterion)

Ans. Welfare economies का सम्बन्ध वैकल्पिक (alternative) आर्थिक परिस्थितियों को समाज कल्याण के दृष्टिकोण से जांच करने से है। प्रत्येक समाज किसी न किसी आर्थिक परिस्थिति से गुजर रहा होता है। किसी आर्थिक परिस्थिति में एक देश में कुल समाज कल्याण को मान लीजिए w द्वारा दर्शाया गया है। परन्तु देश में उपलब्ध साधनों और तकनीक का कोई स्तर होते हुए उनके प्रयोग से मान लीजिए समाज कल्याण को बढ़ाया जा सकता है जिसको w* द्वारा दर्शाया गया है। Welfare economics के सामने निम्न प्रश्न है –

1. यह दर्शाना कि वर्तमान कल्याण की अवस्था अधिकतम कल्याण (जो हो सकता है) से कम है अर्थात् W = W*।
2. ऐसे परामर्श या सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना जिनके द्वारा W को W* तक बढ़ाया जा सकता है।

Value Judgements in Welfare Economics : आर्थिक कल्याण के दृष्टिकोण से वैकल्पिक आर्थिक परिस्थितियों की जांच value judgement के आधार पर की जा सकती है। विभिन्न आर्थिक परिस्थितियों में मुख्य समस्या कल्याण को मापने की होती है जो निम्न दो प्रकार से मापा जा सकता है –

1. Objective value judgement method
2. Subjective value judgement method

1. **Objective Value Judgement Method :** Social welfare को मापने के लिए कोई – आदर्शात्मक पैमाना (ethical standard) चाहिए जो सभी को मान्य हो परन्तु हर व्यक्ति का आदर्श या उद्देश्य भिन्न होता है इसलिए कोई भी आदर्शात्मक पैमाना सभी को मान्य नहीं हो सकता। किस आर्थिक परिस्थिति में कितना कल्याण है, वह व्यक्तियों की सोच पर निर्भर करता है जो समान नहीं हो सकता। विभिन्न या वैकल्पिक आर्थिक परिस्थियों में कितना–कितना कल्याण है कि जों Inter personal comparison (अन्तर व्यक्ति तुलना) अर्थात् उनकी परस्पर तुलना करके की जा सकती है परन्तु इसके लिए भी Utility की सहायता लेनी पड़ेगी जिसको मापा नहीं जा सकता। कुछ अर्थशास्त्रियों जैसे एडम स्मिथ आदि ने Welfare को मापने के लिए Objective value judgement method अपनाया जिसकी व्याख्या निम्न प्रकार से की गई है –

   Growth of GNP as a Welfare Criterion : एडम स्मिथ के अनुसार यदि एक देश की GNP में वृद्धि होती है तो उसे समाज कल्याण में वृद्धि माना जा सकता है। ज्यों ही एक देश में GNP बढ़ती है अर्थात् आर्थिक विकास होता है तो देश में पहले की अपेक्षा अधिक वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं इसलिए व्यक्तियों के कल्याण में वृद्धि आर्थिक तरक्की के साथ–साथ निश्चित है इसलिए एडम स्मिथ के अनुसार आर्थिक उन्नति का अर्थ है– समाज कल्याण को W से W* तक पहुंचना।

Criticism : यह growth criterion वर्तमान आय वितरण को आदर्श मानता है और कल्पना करता है कि यह आप वितरण भविष्य में भी वैसा बना रहेगा। परन्तु ये दोनों मान्यता दोषपूर्ण है क्योंकि वर्तमान आय वितरण आदर्श है या नहीं, कैसे मापा जा सकता है। इसी प्रकार यह कल्पना करना कि आय वितरण यथावत् रहेगा, सही नहीं है क्योंकि यह हो सकता है कि देश की आय (GNP) में वृद्धि कुछेक लोगों की आय में वृद्धि करे और अन्य की आय कम कर दे ऐसा होने से समाज कल्याण सुधरेगा नहीं बल्कि कम होगा। यह सही है कि GNP में वृद्धि देश में (कार्यकुशलता और राष्ट्रीय आय का वितरण) दोनों पर निर्भर करता है न केवल कार्यकुशलता पर। इसलिए growth of GNP एक वस्तुगत या Objective value Judgement method है परन्तु, स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि इससे आय का वितरण और ज्यादा असमान हो सकता है।

2. **Subjective value Judgement method :** इस method में utility को कल्याण के मापने का साधन माना गया है। परन्तु Utility subjective है न कि Objective। इस method के अन्तर्गत विभिन्न आर्थिक परिस्थितियों के मध्य inter-personal comparison of utility किया गया है। इसके अन्तर्गत Welfare Function or Curves निकाले गये हैं। Grand utility curve के माध्यम से कल्याण को अधिकतम करने का प्रयास किया गया है जो आगे विवरण से स्पष्ट होगा।

Utility and Welfare : बहुत से अर्थशास्त्रियों ने सम सीमान्त तुष्टिगुण के नियम को welfare criterian के रूप में प्रयोग किया है। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार यदि आय का redistribution इस प्रकार किया जाए कि सभी को बराबर आय प्राप्त हो तो समाज का कुल तुष्टिगुण Total utility बढ़ेगा ओर W से W* की ओर अग्रसर होगा। उदाहरणतः यदि X व्यक्ति की आय 50,000 रुपये वार्षिक है जबकि Y और Z व्यक्ति की आय 25,000 रुपये प्रत्येक की वार्षिक है। इस अवस्था में Y की Utility के योग से अधिक होगा। इस कारण यह है कि X व्यक्ति के पास आय अधिक होने के कारण X के लिए आय का सीमान्त तुष्टिगुण कम हो जाता है परन्तु Y और Z के पास आय कम होने के कारण आय का सीमान्त तुष्टिगुण कम हो जाता है परन्तु Y और Z के पास आय कम होने के कारण आय का सीमान्त तुष्टिगुण अधिक होगा। इसलिए यदि आय का पुनर्वितरण इस प्रकार किया जाए कि सभी के पास समान आप हो तो समाज का कुल कल्याण W से W* (समाज का अधिकतम कल्याण) को प्राप्त होगा।

Criticism : Utility criterion की बहुत सी कमजोरियां है जिनके आधार पर उसे आलोकित किया गया है –

1. **Utility Cannot be Measured :** उपरोक्त सिद्धान्त इस बात पर आधारित है कि Utility को मापा जा सकता है परन्तु वास्तव में एक ही आर्थिक स्थिति में विभिन्न व्यक्ति अलग–अलग तुष्टिगुण प्राप्त कर सकते हैं। इतना ही नहीं बल्कि इनके तुष्टिगुण स्तर को मापा भी नहीं जा सकता, क्योंकि तुष्टिगुण मानसिक दशा का द्योतक है। इसलिए यह सिद्धान्त गलत पूर्व कल्पना पर आधारित है।

2. **Wealth may Differ :** ये सिद्धान्त आय के समान बंटवारे पर बल देता है परन्तु धन का बंटवारा समान न होने के कारण मौद्रिक आय की एक इकाई सभी के लिए समान महत्व नहीं रख सकती, इसलिए इस सिद्धान्त की आलोचना की गई है कि आय के समान बंटवारे से सभी व्यक्तियों के तुष्टिगुण समान हो सकेंगे जो कुल तुष्टिगुण को अधिकतम करेगा परन्तु धन का समान बंटवारा नहीं होने के कारण ऐसा नहीं हो सकता।

3. **कार्य करने की प्रेरणा पर प्रभाव [Effect on inducement to work] :** यह सम्भव है कि आय का समान बंटवारा कुछ व्यक्तियों की आय को पहले की अपेक्षा काफी बढ़ा देगा जो उनको कार्य न करने की प्रेरणा देगा क्योंकि वे आय को और अधिक नहीं बढ़ाना चाहेंगें ऐसा आर्थिक दृष्टिकोण से कमजोर लोगों के मामले में हो सकता हैं जैसे कि श्रमिक वर्ग। कल्याण का सम्बन्ध लोगों की मानसिक दशा का द्योतक हैं जो सभी व्यक्तियों की अलग–अलग होती हैं इसलिए कल्याण को सही–सही नहीं मापा जा सकता।

अध्याय - 34

पैरेटो का ईष्टतम मान तथा कार्यकुशलता की शर्ते (Pareto Optimality Criterion and Efficiency Conditions)

इस सिद्धान्त के अनुसार यदि उत्पादन के साधनों को reallocate करके, उपभोग में वस्तुओं का पुनर्वितरण करके यदि कुछ व्यक्तियों को पहले से अच्छी स्थिति प्राप्त होती है, बिना किसी व्यक्ति के कल्याण को कम किये, तब ऐसा करना समाज कल्याण को बढ़ाने वाला होगा। यह प्रक्रिया उस समय तक जारी रखनी चाहिए जब तक किसी व्यक्ति के कल्याण में वृद्धि बिना किसी दूसरे व्यक्ति के कल्याण को कम किये सम्भव हो जायें। यह तभी सम्भव है जब Pareto की निम्न शर्तें पूरी हो जाये।

1. उपभोक्ताओं के मध्य वस्तुओं का वितरण कुशल होना चाहिये (Efficiency in distribution of commodities among consumers)।
2. उत्पादक और फर्म के मध्य साधनों का बंटवारा कुशल होना चाहिए (Efficiency of allocation of factors among firms — Producers)।
3. उत्पादन की संरचना में कुशलता (Efficiency in the composition of output)।

यदि अर्थव्यवस्था में उपरोक्त तीनों शर्तें विद्यमान है तो सामान्य सन्तुलन स्थापित हुआ कहा जाएगा। इन शर्तों को marginal conditions of Pareto Optimality or Pareto efficiency conditions कहा जाता है। एक स्थिति जिसको सामान्य सन्तुलन की अवस्था कहा जा सकता है, में उपरोक्त तीनों शर्तें निम्न प्रकार से सन्तुष्ट होनी चाहिए –

Pareto सर्व प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होंने उपयोगिता के क्रमवाचक विचार (Ordinal concept of utility) के आधार पर कल्याणकारी अर्थशास्त्र का विचार प्रस्तुत किया। परेटो ने उपयोगिता की मापनीयता तथा उसकी अन्तर्वैयक्ति तुलना (Inter personal comparison) के विचार को गलत सिद्ध किया और स्पष्ट किया कि पूर्ण प्रतियोगिता समाज को अनुकूलम कल्याण की स्थिति को प्राप्त करने में सहायक होती है। अतः परेटो ने सामान्य अनुकूलतम General Optimum का विचार प्रस्तुत किया।

Assumptions

1. उपयोगिता क्रमवाचक अवधारणा है और प्रत्येक उपभोक्ता का क्रमवाचक फलन दिया हुआ है एवं निश्चित है।
2. उपभोक्ता का उद्देश्य अपनी सन्तुष्टि अधिकतम करना है।
3. प्रत्येक उत्पादक या फर्म का उद्देश्य न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन कर अपना लाभ अधिकतम करना होता है।
4. फर्म का उत्पादन फलन एक निश्चित अवधि में दिया हुआ एवं स्थिर रहता है।
5. वस्तुएँ एवं उत्पत्ति के साधन स्वतंत्र पर्याप्त एवं विभाज्य है।
6. साधन एवं वस्तुएं गतिशील हैं।

7. पूर्ण प्रतिस्पर्धा की स्थिति विद्यमान है प्रयोग कर्त्ताओं एवं साधनों की कीमतें इनके प्रयोग कर्त्ताओं के लिए बाह्य निर्धारित होती है।
8. समाज का कुल कल्याण फलन $W = f(U_1 + U_2 + U_3 + \ldots + U_n)$ है जब वैयक्तिक इकाईयों को प्राप्त उपयोगिताएं ($U_1 + U_2$ आदि) अधिकतम होगी तो सामाजिक कल्याण अधिकतम होगा।
9. उपभोक्ताओं एवं फर्मों को बाजार दशाओं का पूर्ण ज्ञान रहता है, अतः उनके प्रत्याशित एवं वास्तविक लाभ बराबर होते हैं।

पैरेटो मानदण्ड (Parto Criterion)

पैरेटो मापदण्ड को Baumal को इस प्रकार व्यक्त किया है कि "कोई परिवर्तन जो किसी को नुकसान नहीं पहुंचता तथा अन्यो को श्रेष्ठतर, बनाता है, अनिवार्यतः सुधार समझा जाना चाहिए।" "Any change which harms no one and which makes some people better off must be considered an improvement".

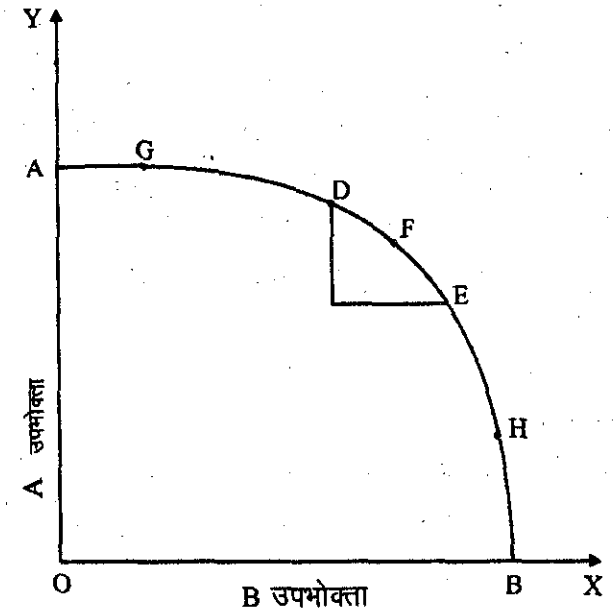

इसे उपयोगिता सम्भावना चक्र (Utility possibility curve) की सहायता से समझा जा सकता है। रेखाचित्र में AB ऐसा ही वक्र है जो दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों से दो उपभोक्ताओं को प्राप्त उपयोगिताओं का सूचक है। दोनों उपभोगताओं को दोनों वस्तुओं के (संयोग से जो कुल उपयोगिता मिलती है उसकी तुलना में D, E एवं F संयोगों से जो कुल उपयोगिता मिलने वाली कुल उपयोगिता ज्यादा होती है। D संयोग में उपभोक्ता A, संयोग E में उपभोक्ता B एवं F संयोग में दोनों को पहले से अर्थात् C संयोग की तुलना में ज्यादा उपयोगिता मिलती है अर्थात् या तो एक का सन्तोष घटाये बिना दूसरे के सन्तोष में वृद्धि अथवा दोनों की सन्तुष्टि बढ़ जाती है। अतः DE के मध्य स्थित प्रत्येक संयोग पैरेटो (और) अनुकूलतम / उत्तमावस्था का सूचक है। इसके बाहर स्थित संयोग G और H में कल्याण पर प्रभावों को पैरेटो मानदण्ड से नहीं मापा जा सकता।

Efficient Allocation of Resources : कार्य कर रही फर्मों के मध्य उपलब्ध उत्पादन के साधनों का allocation अनिवार्य है। हम जानते हैं कि फर्म इस समय सन्तुलन में होती है जब साधनों के उन संयोगो को चुनती है जो उत्पादन को अधिकतम कर सकें अर्थात् लागत को कम से कम कर सके। यह तभी सम्भव है जब निम्न समीकरण सन्तुष्ट हो।

slope of isoquant = slope of ISO = Cost line

$MRTS_{LK} = W/r$

w = wage of labour

r = interest rate on capital

दोनों फर्मों का संयुक्त उत्पादन फलन Edgeworth box of production का प्रयोग करके प्राप्त किया जा सकता है, निम्न चित्र मं दी हुई labour की मात्रा को horizential axis पर और Capital को vertical axis पर मापा गया है। X वस्तु से iso-quants नीचे से ऊपर उठते हुए और Y वस्तु से के isoquants ऊपर से नीचे आते हुए दर्शाये गये हैं। X और Y वस्तु के isoquants जिन बिन्दुओं पर एक दूसरे को छूते है, को मिलाने से जो वक्र प्राप्त होता है उसे Edgeworth contract curve of production कहा जाता है। यह वक्र विशेष महत्व रखता है क्योंकि यह फर्मों के महत्व Capital (K) और Labour (L) का efficient allocation दर्शाता है। इस वक्र के अनुसार हुए साधनों के बटवारे पर एक वस्तु के उत्पादन में वृद्धि करना बिना किसी दूसरी वस्तु के उत्पादन में कमी किये सम्भव होता है जैसा कि यदि हम Z बिन्दु पर स्थित हैं तो यह सम्भव है कि साधनों का पुनर्वितरण करके एक वस्तु के उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है बिना दूसरी वस्तु के उत्पादन को कम किये। क्योंकि हम या तो Z से सरक कर b बिन्दु पर पहुंचेगे या a बिन्दु पर। यदि b को प्राप्त करते हैं तो Y का उत्पादन उतना ही अर्थात् Y_2 ही रहता है परन्तु X का उत्पादन बढ़कर X_3 से बढ़कर X_4 हो जाता है यदि a पर पहुंचते हैं तो X का उत्पादन X_3 पर ही रहता है परन्तु Y का उत्पादन Y2 से Y3 पहुंच जाता है।

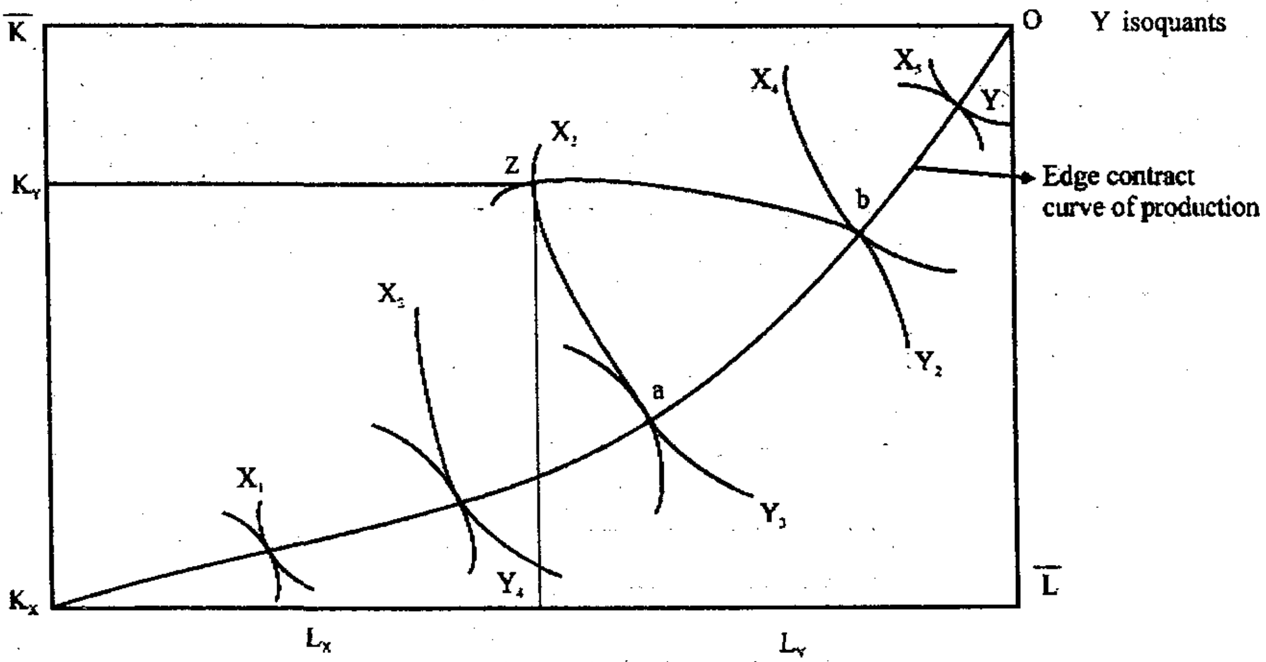

स्पष्ट है कि Edgeworth box में सभी बिन्दु उपलब्ध साधनों का efficient allocation नहीं बताते। K और L सीमित मात्रा में है इसलिए इनका उपयोग अधिकतम सम्भव उत्पादन देने वाला होना चाहिए। साधनों का X और Y के मध्य बटवारा कुशलतम् तब होगा जब एक वस्तु का उत्पादन बिना दूसरी वस्तु के उत्पादन को घटाये सम्भव हों। चित्र में efficient production Edgeworth in efficient production का बिन्दु है क्योंकि K और L का reallocation करके या तो किसी एक वस्तु का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है या दूसरी का, जैसे कि a और b बिन्दु या दोनों को ही बढ़ाया जा सकता है। जब हम उत्पादन a और b बिन्दु के मध्य कहीं स्थापित करते हैं क्योंकि Contract curve X और Y iso-quants जहां एक दूसरे को छूते हैं, के बिन्दुओं को मिलाकर प्राप्त किया गया है। प्रत्येक बिन्दु पर ISO-quant Curve का slope समान है।

slope of x isoquant = slope of Y isoquants.

$MRTS^{x}_{LK} = MRTS^{Y}_{L,K}$

फर्म क्योंकि profit maximist होती है इसलिए प्रतियोगी बाजारों में वे केवल वहाँ सन्तुलन में होगीं जब वे Edgeworth contract Curve पर होगी। इसका अर्थ यह हुआ कि ये perfect competition होने के कारण उत्पादकों के लिए साधनों की कीमतें वहीं रहती है और वे न अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए प्रत्येक $MRTS_{LK}$ को साधनों की कीमतों के अनुपात के बराबर करते हैं इसके लिए निम्न शर्त पूरी होनी चाहिए।

$$MRTS^{x}_{LK} = MRTS^{Y}_{LK} = \frac{w}{r}$$

फर्म के $MRTS^{x}_{LK}$ विभिन्न बिन्दुओं पर बराबर हो सकते हैं जब वे X और Y का उत्पादन करते है जैसे Contract Curve पर दर्शाया गया है लेकिन ये सभी बिन्दु सन्तुलन बिन्दु नहीं हो सकते क्योंकि सन्तुलन बिन्दु वहीं होगा जहां पर उनके $MRTS_{LK}$ साधनों की कीमतों के अनुपात (W / r) के समान होगा। इसलिए पूर्ण प्रतियोगिता में उत्पादन का सामान्य सन्तुलन वहां होगा जब उपरोक्त Condition, एक सन्तुष्ट हो रही हो।

यदि साधन कीमतें दी हुई है तो Edgeworth box से ज्ञात किया जा सकता है कि X और Y की वे कौन सी मात्राएं है जो फर्मों के लाभ को अधिकतम करती है। चाहे कुछ भी हो सामान्य सन्तुलन में वस्तु की ये मात्राएं उसके समान अवश्य होनी चाहिए जितनी उपभोक्ता अपने तुष्टिगुण को अधिकतम करने के लिए खरीदना चाहते हैं। उपभोक्ता अपने उपभोग अर्थात् खरीद को वस्तुओं की कीमतों (Px और Py) के आधार पर निर्धारित करते हैं इस प्रकार मांग पक्ष और उत्पादन पक्ष को एकत्रित करने के लिए फ़र्मों के सन्तुलन को Production possibility curve के माध्यम से व्यक्त किया जाना चाहिए। PPC को Contract curve से ज्ञात किया जा सकता है। Contract curve के प्रत्येक बिन्दु से यह ज्ञात किया जा सकता है कि एक वस्तु की अधिकतम कितनी मात्रा उत्पादित की जा सकती है जब दूसरी वस्तु की मात्र दी हुई हो। उदाहरणतः a बिन्दु दर्शाता है कि यदि X वस्तु की मात्रा X_3 है तो वस्तु की अधिकतम मात्र Y3 उत्पादित की जा सकती है। X3 और Y3 वस्तुओं की मात्रा का संयोग निम्न चित्र में a बिन्दु द्वारा दर्शाया गया है। इसी प्रकार b PP Curve पर b द्वारा दशार्या गया है।

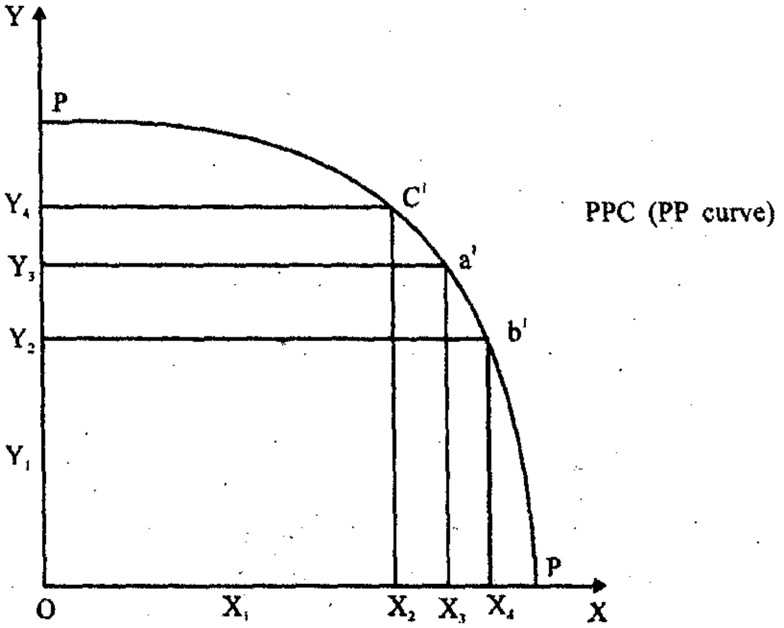

Production Possibility Curve

संक्षिप्त में किसी दी गई तकनीकी स्तर पर और दी हुई साधनों की मात्रा (K, L) पर एक अर्थव्यवस्था की PPC सभी Pareto efficient output को दर्शाती है। इस वक्र पर सभी साधन efficiency employed है। वक्र

से नीचे बिन्दु उत्पादन का inefficient level दर्शाते हैं और जहाँ साधन बेरोजगार पाये जाते हैं। Curve से ऊपर के उत्पादित स्तर या बिन्दु प्राप्त नहीं किये जा सकते जब तक या तो साधनों की मात्रा न बढ़ायी जाये या technology improvement न की जाए।

PPC को product transformation curve भी कहा जाता है क्योंकि यह दर्शाता है कि कैसे एक वस्तु दूसरी वस्तु में परिवर्तित की जा सकती है कुछ साधन एक वस्तु के उत्पादन से हटाकर दूसरी वस्तु के उत्पादन में लगाकर ऐसा किया जा सकता है। PPC का negative slope यह दर्शाता है कि X की एक अतिरिक्त इकाई प्राप्त करने के लिए Y की कितनी मात्रा छोड़नी पड़ती है या Y की एक अतिरिक्त इकाई प्राप्त करने के लिए X की कितनी मात्रा छोड़नी पड़ती है इसको निम्न प्रकार से प्रकट किया जा सकता है।

$$MRPTx,y = -\frac{dy}{dx}$$

Production transformation curve का ढाल negative होने से $\frac{dy}{dx}$ negative है परन्तु MRPT अपने आप में एक positive number है, यह दर्शाया जा सकता है कि $MRPT_{X,Y}$ दोनों वस्तुओं की सीमान्त लागतों के अनुपात के बराबर होता है

$$MRPTx, y = -\frac{dy}{dx} = \frac{MCx}{MCy}$$

हम जानते है कि पूर्ण प्रतियोगिता में एक उत्पादक जो अधिकतम लाभ कमाना चाहता है, वस्तु की कीमत को सीमान्त लागत के समान रखता है अर्थात्

$$MC_x = P_x; \; MC_y = P_y$$

इसलिए सन्तुलन की अवस्था में PPC का Slope X और Y की कीमतों के बराबर होगा।

MRTSxy = MCx

वस्तुओं की दी हुई कीमतों पर उत्पादन में सामान्य सन्तुलन वहाँ होना जहां $MRPT_{XY}$ अर्थात् PPC का slope उन वस्तुओं की कीमतों के अनुपात के बराबर होगा जैसा उपरोक्त समीकरण में दर्शाया गया है। यह सामान्य सन्तुलन निम्न चित्र में T बिन्दु द्वारा दर्शाया गया है। फर्मों के दृष्टिकोण से T बिन्दु general equilibrium product mix को दर्शा रहा है।

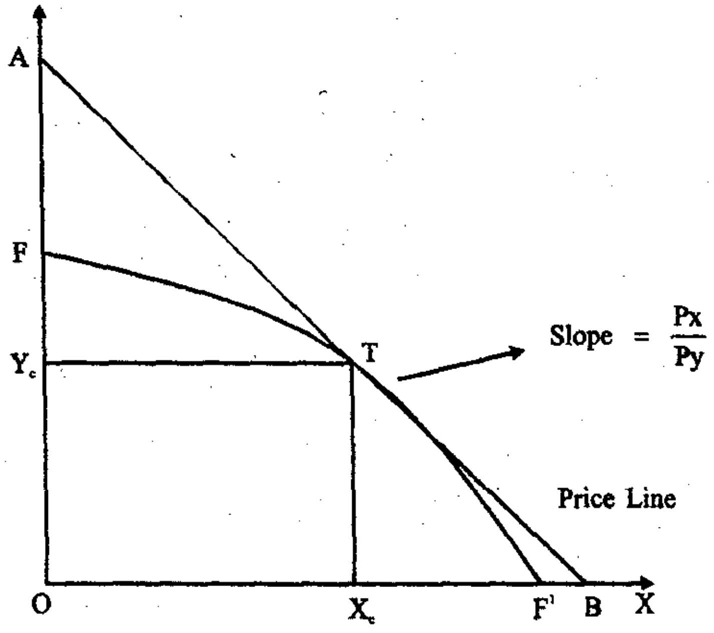

1. **General Equilibrium Product Mix in Perfect Competition :** T को सामान्य सन्तुलन बिन्दु इसलिए कहा गया क्योंकि यहां X और Y दोनों वस्तुओं को ही सन्तुलित उत्पादन निर्धारित होता है।

2. **Efficiency in Distribution of Commodities :** Pareto की शर्त (condition) से ज्ञात होता है कि उपभोक्ता वस्तुओं की दी हुई बाजार कीमतों (Px and Py) पर कैसे सन्तुलन प्राप्त कर सकता है? स्पष्ट है कि एक उपभोक्त उस समय अधिकतम तुष्टिगुण प्राप्त करता है जहां दो वस्तुओं का marginal rate of substitution वस्तुओं की कीमतों के अनुपात के बराबर हो अर्थात् consumer equilibrium की शर्त निम्न प्रकार से है :

$$MRSx,y = \frac{Px}{Py}$$

क्योंकि दोनों उपभोक्ता पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत बाजारों में समान कीमते पाते हैं। इसलिए general equilibrium की शर्त निम्न प्रकार से होगी।

$$MRSx^A,y = MRSx^B,y = \frac{Px}{Py}$$

X और Y वस्तु के उपयोग में उपभोक्ताओं का सामान्य सन्तुलन निम्न चित्र द्वारा दर्शाया गया है। चित्र में Edgeworth box उपभोग के लिए बनाया गया है। यह व्यवस्था इस प्रकार से की गई है कि उपभोक्ता B का स्थान Zero (शून्य) है। इन दोनों के indifference curve दर्शाये जा सकते हैं –

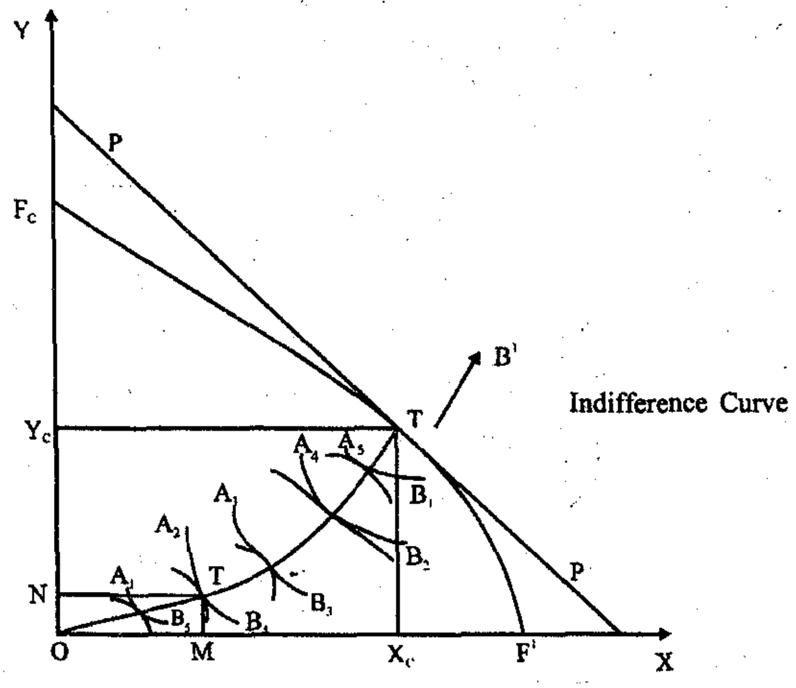

Indifference Curve

Egdgeworth consumption box में सभी बिन्दु जो वस्तुओं का विभाजन दर्शाते हैं। Paretoefficient नहीं हो सकते। वस्तुओं का वह विभाजन Pareto efficient कहा जाएगा। जहां एह उपभोक्ता के तुष्टिकरण में वृद्धि करना बिना दूसरे उपभोक्ता के तुष्टिगुण को कम किये असमय हों उपरोक्त के Indifference Curves एक दूसरे को स्पर्श करते हैं, वहीं points Pareto efficient distribution को दर्शाते हैं। इन Points को दर्शाने वाला वक्र Edgeworth contract curve of consumption कहा जाता है। स्पष्ट है कि इस वक्र का प्रत्येक बिन्दु निम्न equation को सन्तुष्ट करता है।

$$MRSx^A,y = MRSx^B,y$$

3. **उत्पादन की संरचना में कुशलता (Efficiency in the Composition of Output) :** उपरोक्त चित्र में T बिन्दु वस्तुओं की मिली जुली मात्रा दर्शाता है। उपभोक्ताओं का सन्तुलन बिन्दु एक ही बिन्दु पर स्थापित हो, ऐसा नहीं है क्योंकि यह उपभोग के Contract curve पर कहीं पर भी स्थापित हो सकता है। परन्तु general equilibrium system में केवल एक ही बिन्दु सन्तुलित बिन्दु हो सकता है। यह contract curve पर वह बिन्दु है जहां उपभोक्ताओं के MRS_{xy} एक दूसरे के बराबर तो है ही, वह वस्तुओं के कीमत अनुपात के बराबर भी है जो चित्र में T^1 बिन्दु द्वारा दर्शाया गया है T^1 बिन्दु पर शर्त सम्पन्न होती है जहां उपभोग और उत्पादन का सन्तुलन साथ–साथ स्थापित होती है। चित्र में उपभोक्ताओं के सन्तुलन को T1 द्वारा दर्शाया गया है। A उपभोक्ता A2 द्वारा दर्शाया गयी है Utility को प्राप्त करता है जिसमें वह X वस्तु की OM मात्रा और Y की ON मात्रा खरीदता है। B उपभोक्ता BY IC को प्राप्त होता है। जो दोनों वस्तुओं की बाकी मात्रा को खरीदता है। जैसे कि X वस्तु की MXA_c और Y वस्तु की NY_c खरीदता है।

Criticism

1. इस मॉडल में वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता मानी गई है। परन्तु वास्तविक जगत में ऐसा नहीं हो सकता।
2. यह कल्पना की गई है कि साधन बाजार में भी पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है। परन्तु यह भी अव्यवहारिक कल्पना है।
3. इस मॉडल में वस्तु व साधनों को विभाजनशील माना गया है। परन्तु कई बार ऐसा नहीं हो सकता।
4. उपभोक्ता को अपने उदासीन मानचित्र का ज्ञान नहीं होता परन्तु यहाँ कल्पना है कि उपभोक्ता को अपने मानचित्र का पूर्ण ज्ञान होता है।

अतः उपरोक्त तथ्यों के आधार पर इस सिद्धान्त की आलोचना कीं जा सकती है।

§§§§§§§§§§§§§§§§

अध्याय - 35
बर्गसन का सामाजिक कल्याण फलन
(Bergson's Social Welfare Functions)

Bergson and Samuelson ने Welfare economics को Social Welfare Function की धारणा प्रदान की जिसके माध्यम से समाज कल्याण को Ordinal method द्वारा मापा जा सकता है।

Social welfare is a function of the utility level of all individual constituting the society . इसको निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है –

$W = f(U_1, U_2, U_3, \ldots\ldots\ldots\ldots U_4)$

W = represent social welfare

$U_1\ U_2$ आदि किसी समय के विभिन्न व्यक्तियों की Ordinal Utility को दर्शाता है।

एक व्यक्ति का ordinal utility index इस बात पर निर्भर करता है कि वह कितनी वस्तुओं व सेवाओं का उपभोग करता है। Social welfare function की बनावट में Value Judgement स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है। Value Judgement एक आदर्शात्मक तत्व (ethical notion) है जिसका निर्धारण अर्थशास्त्र से बाहर होता है। उदाहरणत: Social Welfare Function प्रजातांत्रिक प्रक्रिया से vote के माध्यम से स्पष्ट हो जाता है जैसे कि लोग क्या चाहते हैं?

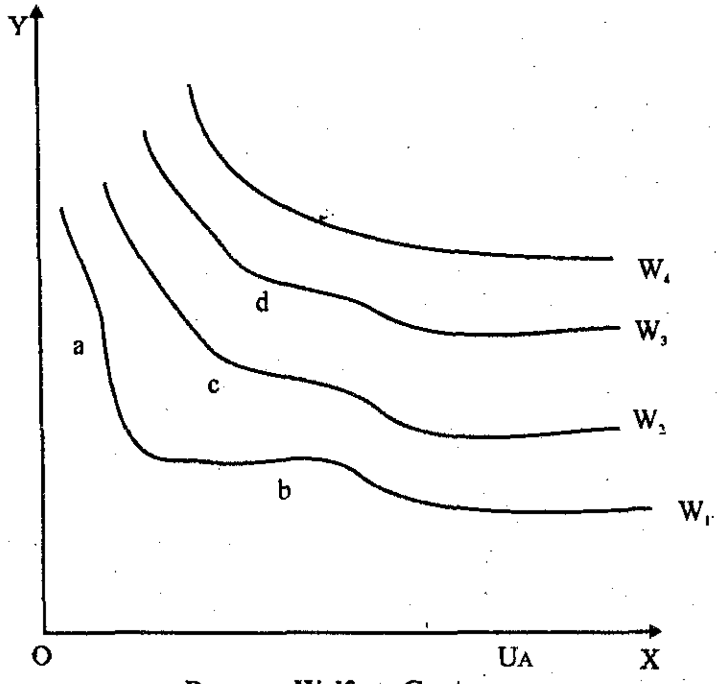

Bergson Welfare Contours

क्या नहीं चाहते? एक Social welfare function एक उपभोक्ता के utility function के सामान ही होता है। यह वैकल्पिक अवस्थाओं को rank अनुसार व्यवस्थित करता है जो विभिन्न व्यक्तियों को विभिन्न utility levels प्रदान करता है। यदि एक अर्थ व्यवस्था में केवल दो ही व्यक्ति हो तो social welfare function को एक set or social indifference contours के रूप में दर्शाया जा सकता है। जैसा निम्न चित्र में दर्शाया गया है। प्रत्येक वक्र A और B व्यक्तियों के तुष्टिगुण के संयोग को प्रकट करता है जो समान समाज कल्याणं प्रदान करते है। जितना ऊंचा social welfare contour होगा उतना ही समाज कल्याण का स्तर अधिक होगा।

जब इस प्रकार का indifference contrours map प्राप्त हो जाता है तो वैकल्पिक अवस्थाओं को आसानी से मूल्यांकित किया जा सकता है। उदाहरणः समाज में कोई भी परिवर्तन, जो समाज को b बिन्दु से C या d बिन्दु पर पहुंचा देता है तो इससे समाज कल्याण में वृद्धि होगी। परन्तु यदि कोई परिवर्तन समाज को a से b पर पहुंचा देता है तो इससे समाज कल्याण में कोई परिवर्तन नहीं होगा।

Problem of Constructing the Social Weflare Function

Social welfare function को अर्थव्यवस्था में कोई व्यक्ति या एजेन्सी विभिन्न वैकल्पिक अवस्थाओं की तुलना करके उन्हें rank प्रदान कर सकता है। प्रजातांत्रिक ढंग से चुनी हुई सरकार विभिन्न वैकल्पिक अवस्थाओं के मध्य इस प्रकार प्राथमिकता या क्रम से रख सकता है जो समाज को स्वीकार्य होते हैं।

Features of Social Welfare Function :

Social welfare function की कुछेक विशेषताएँ निम्न प्रकार से हैं।

1. Social Welfare Function के अन्तर्गत Ordinal पद्धति अपनाकर inter-personal comparison of utility किया जाता है अर्थात् व्यक्तियों को प्राप्त होने वाला utility level की तुलना दूसरी अवस्थाओं से प्राप्त होने वाली Utility level से की जाती है जिसमें pretence को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जाता है।
2. ये functions सामान्य आकृति के हैं जिनके आधार पर मार्शल और पीगू के social welfare सम्बन्धी सिद्धान्तों को भी व्यक्त किया जा सकता है। अन्तर केवल यह है कि ordinal method की जगह cardinal method अपनाना होगा।
3. Social welfare function का निर्माण किसी एक Value judgement के आधार पर होता है परन्तु यदि सरकार बदल जाये जिसकी Value jdugement पहली सरकार से भिन्न हो तो Social welfare indifference curves भी बदल जाएंगे। यह सम्भव हैं क्योंकि एक सरकार कुछ नीतियों को महत्व देती है, दूसरी सरकार कुछ नीतियों को महत्व देती है।
4. Social welfare functions अपने आप में समाज का अधिकतम कल्याण निर्धारित नही करते परन्तु यदि इनके साथ Pareto Optimal condition का इस्तेमाल किया जाए तो साधनों का श्रेष्ठम बंटवारा और समाज के अधिकतम कल्याण की अवस्था ज्ञात की जा सकती है।

Q. Maximisation of Social Welfare. How can the Social Welfare Maximised?

Ans. इस प्रश्न को हल करने के लिए अर्थव्यवस्था में two factors, two commodities, two consumers model की शर्तों सम्बन्धी जानकारी लेनी होगी। इस विश्लेषण की assumption निम्न प्रकार से है –

1. Labour (L) और Capital (K) उत्पादन के दो साधन है जिनकी मात्राएं दी हुई है। ये साधन समझा है और पूर्ण रूप से विभाजनीय है।
2. केवल दो firms है जो दो वस्तुओं X औ Y का उत्पादन करती है। उत्पादन के ISO-quants समान प्रतिफल का उद्गम के प्रति Convex है और Constant returns to scale लागू हो रहा होता है। उत्पादन प्रक्रिया में indivisibility नहीं होती अर्थात् पैमाने की बचते नहीं होती। अर्थात् मशीन की भी बचतें नहीं होती। अर्थात मशीन की भी Fixed Quantity नहीं होती।

3. दो उपभोक्ता A और B है जिनकी पसन्दगी (preference) को indefference curve द्वारा दर्शाया गया है। ये indifference वक्र उद्‌गम के प्रति convex होते हैं जो एक दूसरे को नहीं काटते।
4. उपभोक्तओं का उद्देश्य Utility Maximisation होता है जबकि फर्मों का उद्देश्य profit maximisation होता है।
5. Production function, एक दूसरे से स्वतन्त्र होते हैं। वस्तुओं का संयुक्त उत्पादन नहीं होता।
6. उपभोक्ताओं के तुष्टिगुण स्वतंत्र होते हैं।
7. साधनों का स्वामित्व अर्थात् L और K का दो उपभोक्ताओं में बंटवारा पहले से ही निर्धारित होता है।

अब समस्या Welfare Maximisation values को निर्धारित करने की है जो निम्न प्रकार से है –

A. X और Y की कुल मात्रा जिससे कल्याण सबसे अधिकतम हो सकता है, को welfare maximisation चुके saction commodity. Mix का निर्धारण करना कहेंगे। **(production problem)**।

B. दूसरी समस्या वस्तुओं के विभाजन की है अर्थात् X और Y वस्तु का A और B उपभोक्ताओं के मध्य किस प्रकार से वितरण किया जाए ताकि अधिकतम कल्याण प्राप्त हो (distribution problem)।

C. X और Y वस्तु के उत्पाद में दिये हुए साधनों L और K का बटवारा किस प्रकार हो ताकि अधिकतम कल्याण प्राप्त हो। (Allocation Problem).

संक्षिप्त में यह कहा जा सकता है कि 2 x 2 x 2 model में 10 unknown है और समस्या इन unknown के मूल्य को जानने की है जो समाज कल्याण को अधिकतम करते हैं।

10 Unknown = (दो कर्म, X_A, Y_A, X_B, Y_B और Lx, Ly, Ky, Ky.

Social welfare function जिनका अध्ययन हम कर चुके हैं अधिकतम कल्पना की स्थिति प्राप्त करने के लिए औजार की काम करते हैं। (परन्तु social welfare को अधिकतम करने के लिए दूसरे औजार की भी frontier के नाम से जाना जाता है।

Derivation of the Grand Utility Possibility Frontier

Grand utility from possibility frontier दर्शाता है कि यदि A की Utility दी हुई हो तो B अधिकतम कितनी Utility प्राप्त कर सकता है। pareto Conditions में हम देख चुके हैं X और Y का प्रत्येक संयोग दो उपभोक्ताओं के मध्य कुशलतापूर्वक विभिन्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है जिनको Edgeworth contract curve of exchange के विभिन्न बिन्दुओं द्वारा दर्शाया गया है और वे उस विशेष उत्पादन संयोग से ही सम्बन्धित होते हैं। उदाहरणतः निम्नचित्र में Y_0, X_0 का संयोग है जिसको production possibale curve ff' पर a बिन्दु द्वारा दर्शाया गया है। यह स्थिति निम्न चित्र में स्पष्ट हो गई है Oa contract curve का प्रत्येक बिन्दु दो उपभोक्ताओं के महय दो वस्तुओं के विभिन्न विभाजन को दर्शाते हैं। इसलिए यह तुष्टिगुणों के विभिन्न संयोगों को भी दर्शाता है। उदाहरणतः C बिन्दु Utilities के ऐसे संयोग को दर्शाता है कि उपभोक्त IC_2 पर होता है और $BICb_5$ पर होता है। उपभोक्ताओं का यह Utility Combination अगले चित्र द्वारा दर्शाया गया है जिसमें दोनो उपभोक्ताओं के तुष्टिगुणों को X-axis और Y-axis पर मापा गया है। C विन्दु को इस दूसरे चित्र में g^1 द्वारा दर्शाया गया है जो बताता है कि a द्वारा प्राप्त Utility a_2 है तब b द्वारा अधिकतम Utility जो प्राप्त हो सकती है, b_s होगी।

अर्थात C जिसका measurement उत्पादन क्षेत्र मे होता या दूसरे चित्र में g^1 द्वारा पुष्टिगुण क्षेत्र में दर्शाया गया है। इस प्रक्रिया का अनुकरण करते हुए हम Production possibility curve के किसी बिन्दु को लें जो X और Y के उत्पादन संयोग को दर्शाता है, उसके बाद X और Y की यह मात्रा A और B^1 उपभोक्ताओं में किस प्रकार से विभक्त होती है, को Edgeworth diagram का प्रयोग करके हल किया जा सकता है। A और B उपभोक्ता दोनों वस्तुओं को विनिमय

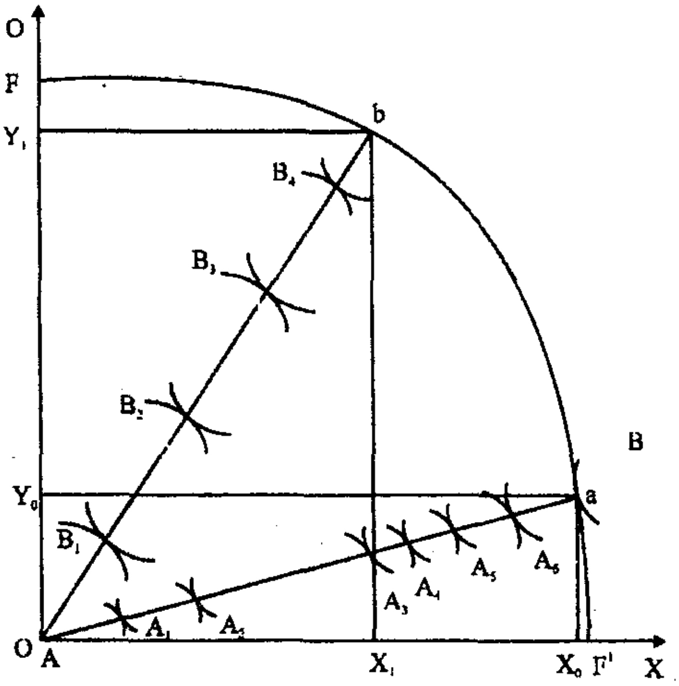

इस आधार पर कर सकते है जिससे उनका marginal rate of substitution X for (MRS_{X4}) समान हो जब दोनों उपभोक्ताओं के Iso-quamis एक दूसरे को स्पर्श कर रहे हो इन विन्दुओं को मिलाने से जो वक्र प्राप्त हुआ उसे Utility possibility curve कहा जा सकता है। इस प्रकार production possibility curve के प्रत्येक बिन्दु से सम्बन्धित अलग Utility possibility curve है जिनकों Utility frontier diagram में दर्शाया गया है। इन सभी के मिलाने से जो वक्र प्राप्त हुआ उसे grand utility possibility Curve कहा गया जिसे चित्र में VV¹ द्वारा दर्शाया गया है।

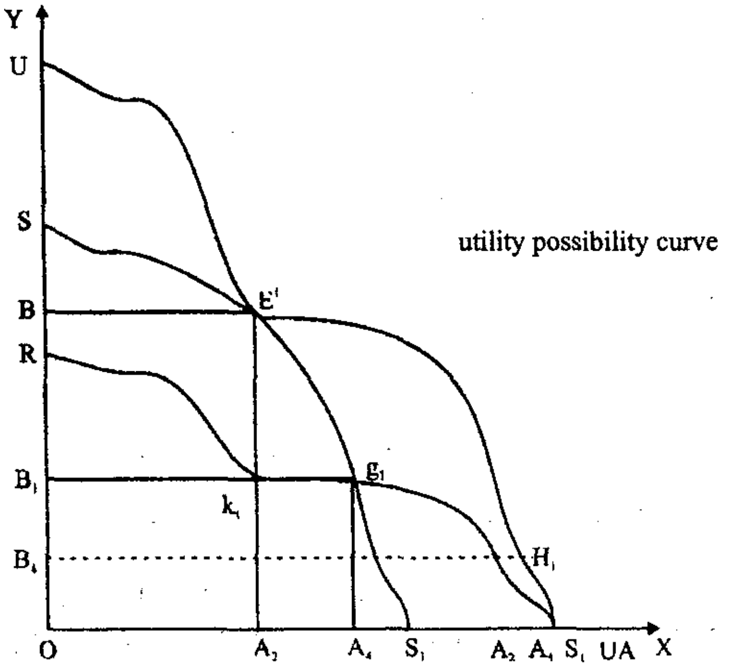

The grand utility possibility frontier

Production possibility curve के प्रत्येक बिन्दु से यह प्रक्रिया दोहराते हुए दोनों वस्तुओं को दोनों उपभोक्ताओं में आदर्श वितरण प्राप्त किया जा सकता है जिसकां पहले वाले चित्र में h द्वारा और utility frontier diagram में

h' द्वारा दर्शाया गया है। इस h विन्दु पर **MRPT = MRS** होगा। इस प्रकार **grand utility frontier दोनों** उपभोक्ताओं के utility combination को दर्शाता है। यह envelope या grand utility curve (GUC) एक उपभोक्ता की हुई सन्तुष्टि स्तर पर B उपभोक्ता द्वारा प्राप्त की गई अधिकतम Utility को दर्शाता है।

उपरोक्त विश्लेषण से सपष्ट है कि grand utility possibelity frontier पर **सभी बिन्दु सभी Pareto marginal conditions को सन्तुष्ट करते हैं :** efficiency in production, efficiency in distribution and efficiency in product combination.

अधिकतम कल्याण की स्थिति का निर्धारण (Determination of the welfare maximising state) : आनन्द का बिन्दु (The point of bliss) :

यदि grana utility possibelity curve के साथ social welfare function का मेल किया जाय तो अधिकतम सामाजिक कल्याण की स्थिति प्राप्त की जा सकती है। **सामाजिक कल्याण की अधिकतम अवस्था (चरमसीमा) उस बिन्दु पर प्राप्त होता है जहां highest social walfare function grand utility possibility curve को छूता है** जिसको चित्र में W* द्वारा दर्शाया गया है इसको point of bliss भी कहा गया है। यह social welfare function W_3 पर प्राप्त होता है। इस बिन्दु पर A उपभोक्ता को V_A* तुष्टिगुण प्राप्त होता है और B उपभोक्ता को V_B* तुष्टिगुण प्राप्त होता है जैसा चित्र में स्पष्ट किया गया है :

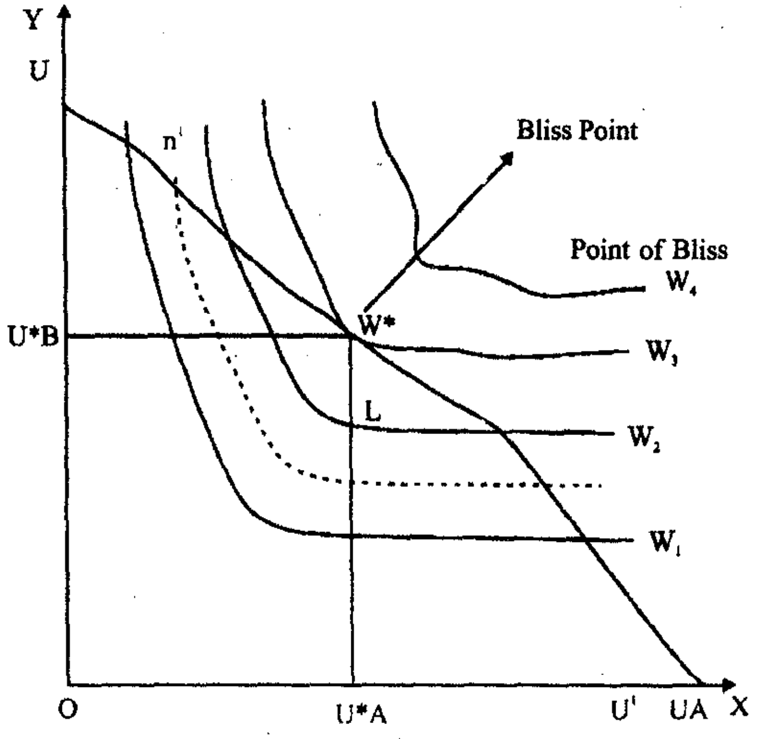

चित्र से स्पष्ट है कि अधिकतम कल्याण प्राप्त कारने के लिए Pareto optimality एक अनिवार्य शर्त है। परन्तु यह पर्याप्त शर्त। नहीं है। Grand utility possibility frontier पर अधिकतम कल्याण उस बिन्दु पर होगा जहां highest welfare function इसे छूता है परन्तु grant utility possibelity curve के सभी संयोग या बिन्दु pareto optimality की तीनों शर्तें पूरी करते हैं परन्तु यह किसी एक बिन्दु पर ही अधिकतम कल्याण प्राप्त होता है जैसे कि W*। यह देखा जा सकता है कि grand utility possibility frontier से नीचे बहुत से बिन्दु हैं जो Paréto optimal तो नहीं हैं परन्तु फिर भी कुछेक pareto optimal बिन्दुओं से अधिक सामाजिक कल्याण प्रदान करते हैं। उदाहरणतः चित्र में n बिन्दु एक pareto optimal situation को दर्शाता है परन्तु L बिन्दु Pareto optimal नहीं है। फिर भी L बिन्दु n विन्दु से high social welfare function पर स्थापित होने के कारण अधिक कल्याण प्रदान करने वाला है। चित्र से स्पष्ट है कि कोई बिन्दु यदि वह grand utility possibelity curve या envalope utility frontier से नीचे पड़ता है, तथा grand utility frontier पर कोई बिन्दु अवश्य होगा जो social welfare में वृद्धि को प्रकट करता है। निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि social welfare

अधिकतम उस बिन्दु पर होगा जहां highest social welfare function, grand utility possibility curve को छूता है जैसा कि W* ।

आलोचनात्मक मूल्यांकन
(Critical Evaluation)

Welfare economics का उद्देश्य यह रहा है कि किसी आर्थिक परिवर्तन से social welfare में जो परिवर्तन होते हैं, उनको कैसे मापा जाए? Bergson और Samuelson ने इस समस्या का हल social welfare function प्रदान करके किया जो सामान्यतः सभी को स्वीकार्य है। कम से कम social welfare function एक अदभुत सैद्धान्तिक संरचना (Constraction) हैं जिसकी welfare economics को अत्यन्त आवश्यकता थी। Pareto optimal अधिकतम कल्याण की समस्या का कोई एक (Unique) solution नहीं दे पाती। Bergson-samuelson social welfare function निश्चित रूप से welfare में एक सुधार (improvement) हैं। फिर भी इस विश्लेषण की कुछ draubacks (कमियां) या limitations हैं :

1. कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार social welfare का व्यावहारिक उपयोग नगण्य (बहुत कम) है क्योंकि वास्तव में social welfae functions को निर्धारित या निकाला नहीं जा सकता।
2. दूसरी आलोचना यह की जाती है कि यह ordinal utility system पर आधारित है इसलिए interpersonal comparison as utility इस समस्या का सही समाधान नहीं करता।
3. स्पष्ट है कि social welfare function की संरचना किसी सरकार या authority के value judgement पर निर्भर करती है। परन्तु यह जरुरी नहीं कि value judgement निष्पक्ष हो इसलिए social welfare function को सही–सही निर्धारित करना असम्भव है।
4. Arrow ने majority के आधार पर सरकार द्वारा social welfare function निकालने की आलोचना की। उन्होंने सिद्ध किया कि majority rule हमें contradictory (विरोधी) निष्कर्ष पर पहुँचाता है।

अध्याय - 36

काल्डोर-हिक्स क्षतिपूर्ति सिद्धान्त

(Kaldor Hicks Compensation Criterion)

Edgeworth box चित्र के माध्यम से Paretl criterion यह व्यक्त करने में असमर्थ है कि जब contract curve पर किसी भी दिशा में की गई movement सामाजिक कल्याण को बढ़ाने वाला है या नहीं। केवल यह व्यक्त किया जाता है कि एक व्यक्ति की utility में कमी करके ही सम्भव है। परन्तु इस प्रकार के परिवर्तन से समाज कल्याण बढ़ती है या घटता है, वे सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त नहीं होती। ऐसा इस कारण से है क्योंकि Pareto criterion inter-personel comparison of utility नहीं करता इसलिए Pareto optimality द्वारा प्रस्तुत कल्याण सम्बन्धी विश्लेषण अनिर्धारणीय हैं क्योंकि contract curve पर बहुत से pareto optimum point है। **Kaldor-Scitousky** जैसे अर्थशास्त्रियों ने किसी आर्थिक पुनर्गठन से जो कुछेक को हानि प्राप्त होती है और कुछ को लाभ प्राप्त होता है, के परिणाम स्वरूप सामाजिक कल्याण में परिवर्तन होता है, का मूल्यांकन करने का प्रयास किया। इन अर्थशास्त्रियों ने Pareto optimality विश्लेषण में अनिर्धारणीयता को दूर करने की कोशिश की। उन्होंने एक criterion प्रस्तुत किया जिसको compensation principle के माध्यम से जाना जाता है। इस criterion के आधार पर अर्थव्यवस्था में कोई परिवर्तन या पुर्नगठन जो कुछेक को हानि पहुँचाता है और कुछेक को लाभ पहुँचाता है, के मूल्यांकन करने का दावा किया।

Assumption : इस सिद्धान्त की पूर्वकल्पनाएं निम्न प्रकार से हैं :

1. एक व्यक्ति की सन्तुष्टि दूसरे व्यक्ति की सन्तुष्टि से स्वतन्त्र है और एक व्यक्ति अपने कल्याण का सबसे श्रेष्ठ निर्णय स्वयं ले सकता है।
2. उत्पादन और उपयोग में किसी प्रकार की बाह्य बचतें नहीं होती।
3. उपभोक्ताओं की रुचि स्थिर रहती है।
4. उत्पादन व विनिमय की समस्या वितरण की समस्या से अलग की जा सकती है। Compensation principle इस बात को स्वीकार करता है कि सामाजिक कल्याण स्तर उत्पादन स्तर का फलन है।
5. तुष्टिगुण को कर्मवाचक (ordinal) पद्धति से मापा जा सकता है। Inter-Personal comparison सम्भव है। एक व्यक्ति के तुष्टिगुण की दूसरे व्यक्ति के तुष्टिगुण से तुलना की जा सकती है।

Kaldor - Hicks welfare criterion : Compersation Principle

Kaldor पहला अर्थशास्त्री था जिसने **क्षतिपूर्ति भुगतान (Compensation Payments)** के आधार पर welfare criterion प्रस्तुत किया। इस criterion की सहायता से contract curve किसी भी दिशा में Movement से जो कल्याण व अकल्याण उत्पन्न होता है, को मापा जा सकता है। इस critesion के अनुसार कोई आर्थिक परिवर्तन या पुनर्गठन या किसी नीति में परिवर्तन मे कुछ लोगों को लाभ होता है और दूसरों को हानि होती है तो यह परिवर्तन समाज कल्याण को बढ़ा देगा, लाभ प्राप्त करने वाले लोग हानि उठाने वाले लोगों की क्षतिपूर्ति कर देते हैं और फिर भी **पहले की**

अपेक्षा बेहतर स्थिति में होते हैं। Baumal के शब्दों में, "कोई परिवर्तन समाज कल्याण बढ़ाने वाला है, यदि लाभ उठाने वाले व्यक्ति हानि पर उठाने वाले व्यक्तियों से अपने लाभ को हानि की अपेक्षा उच्च जांचते हैं तो।" स्पष्ट है कि यदि किसी नीति परिवर्तन से समाज के किसी sector जो लाभ होता है वह उस हानि से अधिक है जो समाज के दूसरे section को उठानी पड़ती है तब यह परिवर्तन समाज कल्याण को बढ़ाने वाला कहा जाएगा।

Compensation criterion को utility possibility curve की सहायता से निम्नचित्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। उपभोक्ता A की utility को X-axis पर और उपभोक्ता B की utility को Y-axis पर मापा गया है। DE चित्र में utility possibelity curve है जो इन विभिन्न संयोगों का प्रकट करता है जिन्हें A और B प्राप्त कर सकते हैं। स्पष्ट है कि ज्यों हम वक्र के निचले भाग पर चलते है तो A की utility बढ़ती जाती है और B की कम होती जाती है।

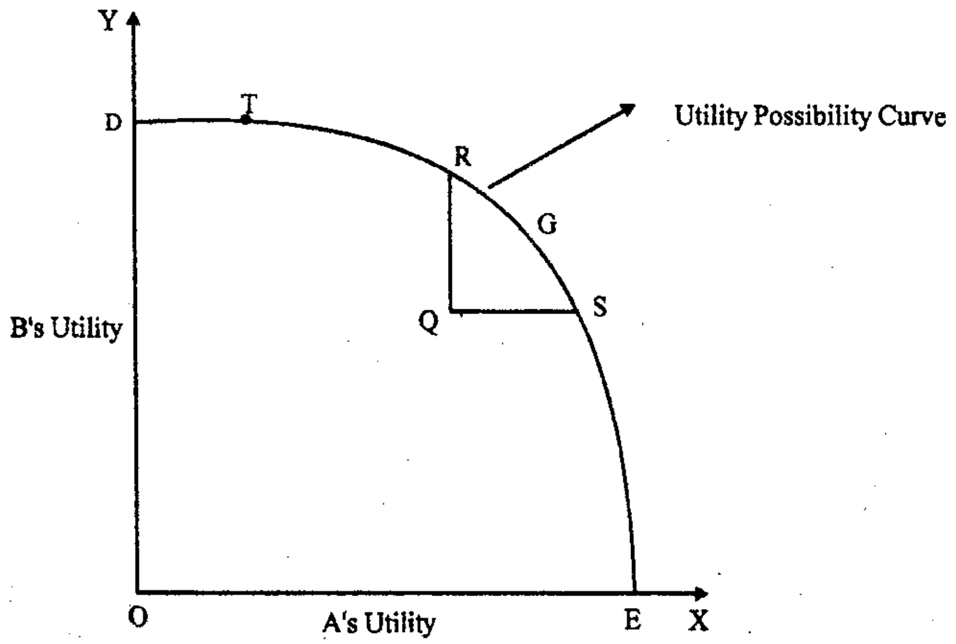

कल्पना कीजिए कि वर्तमान उत्पादन या आप के वितरण के आधार पर A और B का जो utilities प्राप्त है वे Q बिन्दु द्वारा दर्शाई गई है। परन्तु जब कोई आर्थिक परिवर्तन किया जाता है तो दोनों व्यक्ति Q बिन्दु से T बिन्दु पर पहुँच जाते हैं इससे B की utility वढ़ जाती है और A की utility कम हो जाती है, इसलिए यह परिवर्तन pareto criterion के आधार पर मूल्यांकित नहीं किया जा सकता। यद्यपि R.G.S आदि बिन्दु Q की अपेक्षा socially preferable हैं। परन्तु Q से T तक पहुँचने पर सामाजिक कल्याण का मूल्यांकन utility की व्यक्तिगत तुलना पर निर्भर करता है जो pareti criterion के आधार पर व्यक्त नहीं की जा सकती। परन्तु Kaldor-ticks द्वारा प्रस्तुत किया गया Compansation principle हमें इस योग्य बनाती है कि Q से T बिन्दु पर पहुँचने से समाज कल्याण बढ़ा है या नहीं इस criterion के अनुसार यह देखना होता है कि B को जो लाभ हुआ है क्या वह A को होने वाली हानि को पूरा करके भी पहले से अच्छी स्थिति में हो सकता है। चित्र में देखा जा सकता है कि आपके पुनर्वितरण से यदि B A को कुछ आय देता है ताकि A की समाप्त हो जाये, तब वे R बिन्दु पर पहुँच सकते हैं। चित्र से स्पष्ट है कि A उपभोक्ता R बिन्दु पर उसी स्थिति में है जैसा कि वह Q बिन्दु पर था इसका अर्थ यह हुआ कि नीति परिवर्तन के परिणामस्वरुप Q से R तक पहुँचने में उपभोक्ता A की क्षतिपूर्ति कर देता है और फिर भी Q की अपेक्षा बेहतर स्थिति में है इसलिए इस criterion के अनुसार Q से T पहुँचना समाज कल्याण को बढ़ाने वाला होगा जैसा कि वे आय के पुनर्वितरण से R,G,S आदि बिन्दुओं को प्राप्त कर सकते हैं।

Utility possibility curve के T बिन्दु से R पहुँचने के लिए B को A की हानि को compensate करना पड़ता है। परन्तु यह Compensation B उपभोक्ता A को प्रत्यक्ष नहीं करता बल्कि government आय के पुनर्वितरण द्वारा R या G बिन्दु

को प्राप्त करती है जिसके परिणाप स्वरूप A की क्षतिपूर्ति हो जाती है और समाज कल्याण में वृद्धि होती है। अब यह सरकार पर निर्भर करता है कि वह redistribution कितनी सुगमता और शीघ्रता से कर पाती है। यदि redistribution से G बिन्दु प्राप्त किया जाता है तो Q बिन्दु की अपेक्षा A और B दोनों बेहतर स्थिति में होंगे।

यदि किसी आर्थिक नीति में परिवर्तन के परिणाम स्वरूप utility possibelity curve ऊपर की तरफ सरक जाए तो समाज कल्याण पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा?

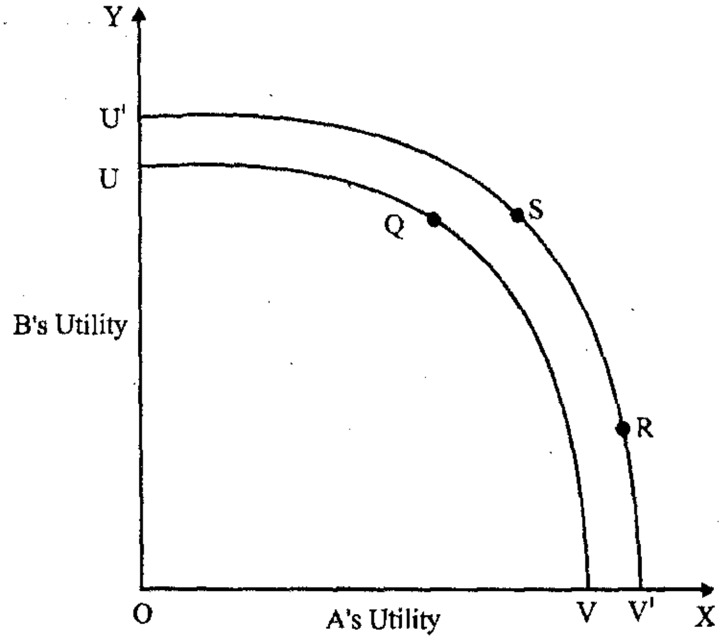

चित्र में प्रारम्भिक utility possibility curve UV द्वारा दर्शाया गया है। कल्पना की गई है कि दोनों व्यक्ति A और विन्दु Q पर स्थापित है। किसी आर्थिक नीति परिवर्तत के कारण utility possibility curve ऊपर की तरफ सरककर U'V' बन गई है जिस पर दोनों उपभोक्ता, कल्याण कीजिए कि R बिन्दु, को प्राप्त होते हैं। Q से R तक पहुँचने पर A की utility बढ़ी है और B की कम हो गई है। परन्तु R की स्थिति Compensation criterion के अनुसार Q की तुलना में अधिक सामाजिक कल्याण प्रदान करने वाली है क्योंकि केवल आप के पुनर्वितरण द्वारा U'V' utility possibility curve पर R से S स्थिति प्राप्त की जा सकती है जिस पद दोनों A और B उपभोक्ता बिन्दु Q की अपेक्षा बेहतर स्थिति में होंगे। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कोई भी आर्थिक परिवर्तन जो अर्थव्यवस्था को ऊँची **possibility curve पर पहुँचता है अधिक सामाजिक कल्याण प्रदान करने वाला होता है।**

Critical Evaluation

Compensation principle को निम्न आधारों पर आलोचित या मूल्यांकित किया जा सकता है

1. इस सिद्धान्त में यह कल्पना, की गई है कि व्यक्तियों की रुचि या पसन्द स्थिर रहती है। परन्तु यह कल्पना गलत है। वास्तव में व्यक्तियों की रुचि वस्तुओं के लिए बदलती रहती है।
2. सिद्धान्त की यह मान्यता कि उवभोक्ता और उत्पादन में बाह्य बचतें नहीं होती है, अव्यावहारिक है।
3. सिद्धान्त की कल्पना है कि आदर्श अपने कल्याण का निर्णय स्वयं करता है, सही नहीं है। क्योंकि एक व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों में अपने कल्याण का सही–सही मूल्यांकन नहीं कर सकता और उसके कल्याण पर बाहरी शक्तियों (सरकार) प्रभाव पड़ता है।
4. इस सिद्धान्त की यह मान्यता की utility को कर्मवाचक ढ़ग से मापा जा सकता और इस आधार पर एक व्यक्ति द्वारा प्राप्त की गई। Utility की तुलना दूसरे व्यक्ति द्वारा प्राप्त की गई utility से की जा सकती है। परन्तु अधिकतर व्यक्ति अपनी utility व्यक्त करने में असमर्थ रहते हैं, इसलिए Inter-personal comparison सम्भव नहीं है।

अध्याय - 37

सामाजिक कल्याण - पूर्ण व अपूर्ण प्रतियोगिता

(Social Welfare – Perfect and Imperfect Competition)

विभिन्न बाजार रूपों में समाजिक कल्याण कैसे निर्धारित होता है? इस प्रश्न को निम्न प्रकार से हल किया जा सकता है

Welfare Maximisation and Perfect Competition

वास्तव में पूर्ण प्रतियोगिता की सहायता से जो सामान्य सन्तुलन प्राप्त किया जाता है, वह (अधिकतम संतुष्टि का बिंदु) welfare Maximisation के bliss point की स्थिति है कैसे?

(a) व्यक्तिगत फर्म अधितम लाभ उस उत्पादन स्तर पर करती है जिसको निम्नतम लागतों पर उत्पादित किया जा सकता है। निम्नतम लागत उस समय प्राप्त होती है यदि फर्म साधनों के उस संयोग को चुनती है जिस पर साधनों (Labour and capital) का margmal rate of technical substitution (MRTS) साधनों के कीमत अनुपात के बराबर हो

$$MRTS_{L,K} = \frac{w}{r} = \frac{\text{मजदूरी}}{\text{ब्याज दर}}$$

क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता में सभी फर्मों के लिए साधन कीमत समान होती है इसलिए सभी फर्मों का विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में $MRTS_{L,K}$ साधनों की कीमतों के अनुपात के बराबर अवश्य होना चाहिए।

$$MRTS_{L,K}\ S^x = MRTS_{L,K}\ Sy = \frac{w}{r} \text{ (cost line)}$$

इसे निम्न क्रिया की सहायता से दर्शया जा सकता है

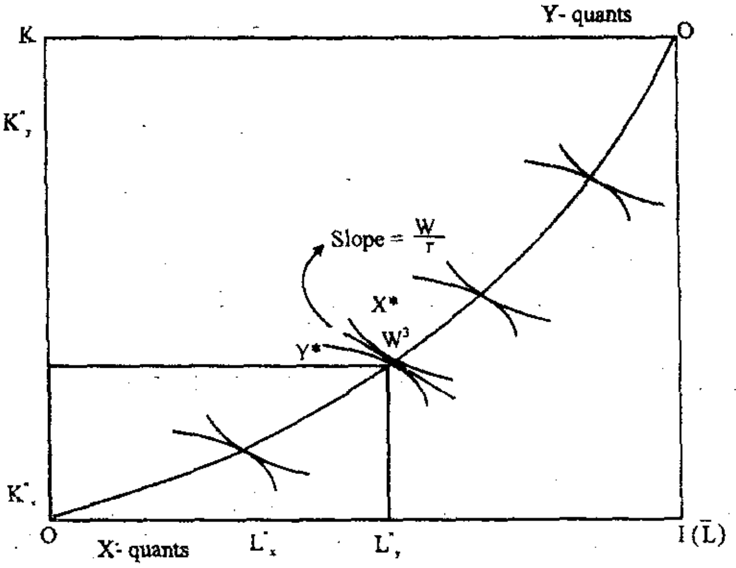

Optimal allocation of resources उपरोक्त चित्र के W_3 पर होता है। यहां पर Isoquant का slope एक दूसरे के बराबर केवल इतना ही नहीं बल्कि यहां विभिन्न वस्तुओं (X और Y) के Isoquants का slope पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत साधन कीमतों के slope के बराबर भी हैं।

(b) उपभोक्ता हमेशा अपने Total utility को अधिकतम करना चाहते हैं। प्रत्येक उपभोक्ता X और Y वस्तु का Product-Mix इस प्रकार चुनता है ताकि दानों वस्तुओं का MRS वस्तुओं की कीमतों के अनुपात के बराबर हो –

$$MRS_{x,y} = \frac{Px}{Py}$$

पूर्ण रोजगार के अन्तर्गत समान कीमतों पर वस्तुएं खरीदते हैं। इसलिए प्रत्येक उपभोक्ता का $MRS_{x,4}$ वस्तुओं की कीमतों के अनुपात के बराबर होना चाहिए। इससे समाज का तुष्टिगुण अधिकतम हो सकेगा

$$MRS_{xy}\ S^A = MRS_{xy}\ s^B = \frac{P_x}{P_y}$$

इस तथ्य को निम्न चित्र की सहायता से दर्शाया जा सकता है

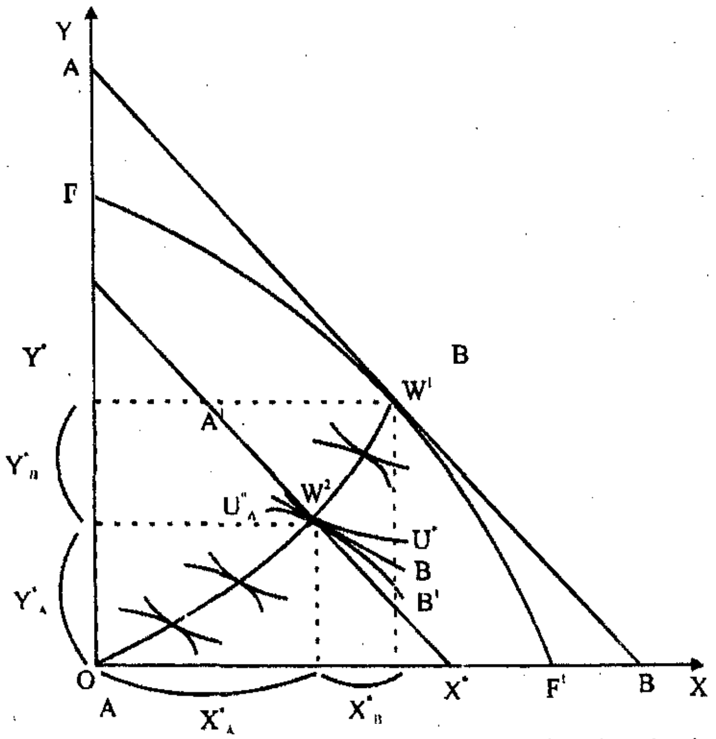

उपरोक्त चित्र के W² पर Slope indisserence curve का Slope वस्तुओं की कीमतों के बराबर होता है। इस स्थिति में उपभोक्ताओं को अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होती है और यह स्थिति पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था का दर्शाता है।

(C) Bliss Point या अधिकतम सामाजिक कल्याण के बिन्दु पर Indifference का Slope ($MRS_{x,y}$) production possibility के slope ($MRPT_{x,y}$) के समान होता है। जैसा कि उपरोक्त चित्र में W² द्वारा दर्शाया गया है। इस प्रकार W² जो सामाजिक कल्याण को अधिकतम करता है जिसमें दोनों वस्तुओं का मिश्रित उपभोग व उत्पाद प्रकट होता है। इस स्थिति को निम्न समीकरण द्वारा दर्शाया जा सकता है

$$MRPT_{x,y} = \frac{P_x}{P_y}$$

(d) अन्ततः पूर्ण प्रतियोगिता में उत्पादन कर रही एक फर्म उस समय अधिकतम लाभ प्राप्त कर रही होती

है। जब MC (marginal cast) वस्तु की कीमत के बराबर होती है। इस स्थिति को निम्न समीकरण द्वारा दर्शाया जा सकता हैं

$$MRPT_{x4} = \frac{P_x}{y} = \frac{MC_x}{MC_y} \quad \frac{P_x}{P_y} = \frac{MC_y}{MC_y} = \frac{MC_y}{P_y} = \frac{MC_x}{P_x}$$

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि perfectaly competitive market से हम आधिकतम कल्याण प्राप्त कर सकते हैं। इसके माध्यम से यह दर्शाया गया है कि न केवल उपभोक्ता अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करते हैं बल्कि उत्पादक की कम से कम लागतों पर उत्पादन करते हैं और अधिकतम लाभ प्राप्त करते हैं। इस प्रकार सभी लोगों का पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सामान्य कल्याण अधिकतम होता है।

Criticism

Perfect competition की सभी आलोचनाएं दी जा सकती हैं।

Social Welfare and Imperfect Market : अपूर्ण प्रतियोगिता वाले बाजारों में सामाजिक कल्याण अधिकतम नहीं हो सकता क्योंकि इसके अन्तर्गत उत्पादन ऊँची औसत लागत पर ही उत्पादित नहीं किया जाता बल्कि वस्तु की बाजार कीमत भी Perfect competition की अपेक्षा ऊँची रखी जाती हैं। एक अर्थव्यवस्था अधिकतम सामाजिक कल्याण से उतनी ही दूरी होगी जितना वहां बाजार की अपूर्णता (Impersection) होगी। एकाधिकार वाले बाजार में बाजार की अपूर्णता (imperfection) चरम सीमा पर होती है। इसलिए कीमत monopolistic competition से भी अधिक होती है और उत्पादन भी monopaly के अन्तर्गत perfect competition और imperfect competition से कम होता है। इसका विश्लेषण निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

Less Production and High Price : एकाधिकार वाले बाजार व अपूर्ण प्रतियोगिता वाले बाजार दोनों ही अपूर्ण प्रतियोगिता वाले बाजार है। इन अपूर्ण प्रतियोगिता वाले बाजारों में सामाजिक कल्याण को अधिकतम नहीं किया जा सकता क्योंकि इन परिस्थितियों में Perfect competition की अपेक्षा वस्तु की ऊँची कीमत निर्धारित की जाती हैं और वस्तु का कम उत्पादन किया जाता है। इस प्रकार समाज को ऊची कीमत और कम उत्पादन सहन करना पड़ता है जो सामाजिक कल्याण को कम कर देता है जैसा कि निम्न चित्र में दर्शाया गया है –

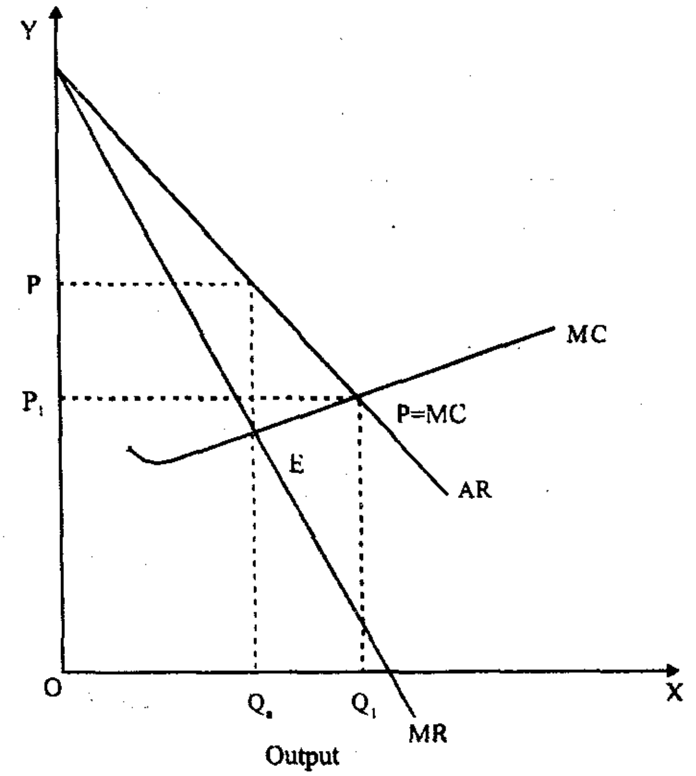

चित्र से स्पष्ट है कि monoploy के अन्तर्गत उत्पादक E बिन्दु पर सन्तुलन प्राप्त करेगा और Oa मात्रा वस्तु की उत्पादित की जाएगी। परन्तु यदि बाजार का रूप पूर्ण प्रतियोगिता वाला होता, जिसमें सन्तुलन की शर्त यह होती है कि P = MC = AR, उस स्थिति में उत्पादक E_1 बिन्दु पर सन्तुलन प्राप्त करेगें जिस पर उत्पादन का स्तर Q_1 निर्धारित होगा। और कीमत स्तर P_1 निर्धारित होता है। स्पष्ट है कि monopoly के अन्तर्गत वस्तु की ऊँची कीमत (OP) रखी जाती है और वस्तु का कम उत्पादन (OQ) किया जाता है जबकि पूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु की कम कीमत OP_1 और उत्पादन OQ_1 निर्धारित होता है। इससे सिद्ध होता है कि एकाधिकार वाले बाजार में समाज को ऊँची कीमत और कम उत्पादन का हानि उठानी पड़ती है इसलिए सामाजिक कल्याण अधितम नहीं हो सकता। बाजार की अपूर्णता जितनी अधिक होगी अर्थात monopoly power जितनी ज्यादा होगी उतना ही समाज का कल्याण भी कम होगा। बाजार जितना monopoly पूर्ण प्रतियोगिता की तरफ बढ़ता जाएगा जो एकाधिकार प्रतियोगिता या अपूर्ण प्रतियोगिता को दर्शाता है, उतना ही सामाजिक कल्याण बढ़ता जाएगा क्योंकि उस परिस्थिति में मात्र वक्र की लोचशीलता बढ़ती जाएगी जिस कारण उत्पादक कम कीमतों पर अधिक उत्पादन करेंगे।

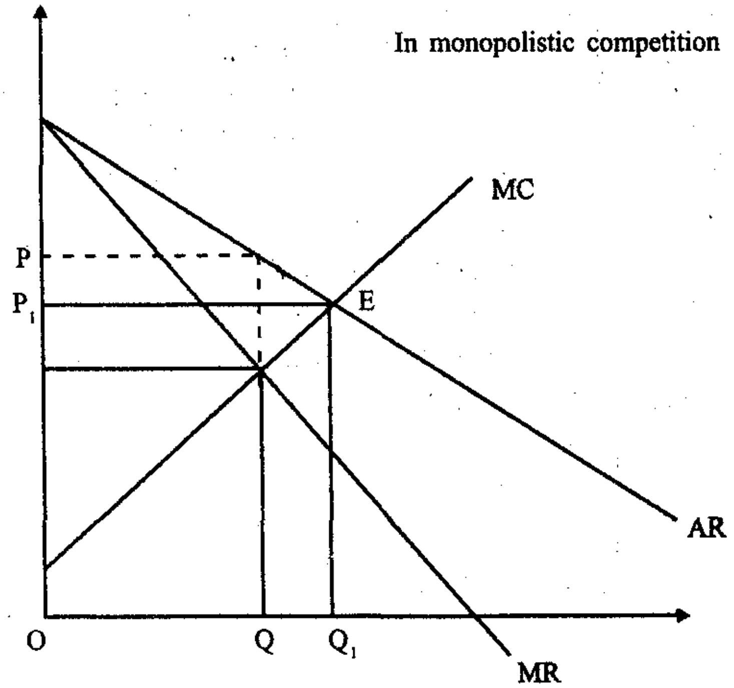

अन्तर केवल यह है कि अपूर्ण प्रतियोगिता में मांग वक्र एकाधिकार वाले बाजार की तुलना में अधिक लोचशीलता वाला होगा जैसा कि उपरोक्त चित्र में दर्शाया गया। इसमें एकाधिकार की तुलना में कीमत कम तथा उत्पादन अधिक पर सन्तुलन होता है। अर्थात् हम प्रतियोगी कीमत व उत्पादन के और अधिक निकट हो पाते हैं।

अध्याय - 38

द्वितीय सर्वश्रेष्ठ के सिद्धान्त का विचार

(Idea of the Theory of Second Best)

अर्थव्यवस्था में first best उस समय विद्यमान होता है जब सभी उद्योगों में Pareto optimum conditions सन्तुष्ट हो रही हैं। कल्पना कीजिए कि अर्थव्यस्था के कुछेक श्रेत्र में Pareto conditionsa का उल्लंघन किया गया है। ऐसी अवस्था में वस्तु की कीमत सीमान्त लागत (MC) के बराबर नहीं हो पाती जैसा कि एकाधिकार बाजार, एकाधिकार प्रतियोगिता व अल्पाधिकार बाजारों आदि में होता है। यहां यह भी कल्पना की गई है कि Public sector decision maker हैं जिसका distorted (टेढ़ा–मेढ़ा होना) sector (monopoly, monopolistoc competition etc.) पर कोई नियन्त्रण नहीं हैं।

Theory of the second best का सिद्धान्त कीमत निर्धारण का नियन्त्रण किए जा सकने वाले के लिए नियम स्थापित करने का प्रयास करता है।

Theory of the second best seeks to estabilish pricing rule for the controlable sector of the economy given that distortion (असली रूप बिगाड़ना) exist else where.

स्पष्ट है कि A first best optimum प्राप्त नहीं किया जा सकता तो फिर Second best optimum कैसा होगा? विशेष रूप से क्या authorities controlable sector में वस्तु की कीमत सीमान्त लागत के समान स्थापित करेगी। यद्यपि दूरे क्षेत्रों मे कीमत सीमान्त लागत के समान नहीं है? इन प्रश्नों का उत्तर सामान्यतः नकारात्मक होगा इस तथ्य को निम्न उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है

इस उदाहरण में अर्थव्यवस्था के अन्दर तीन वस्तुओं की तुलना की गई है। सार्वजनिक क्षेत्र X_1 वस्तु का उत्पादन करता है समान रखा गया है। X_2 वस्तु निजी क्षेत्र में उत्पादित की जाती है जहां कीमत को marginal cost के समान रखा गया है, एक सामूहिक वस्तु X_3 है जिसमें अन्य सभी वस्तुएं है और किसी प्रकार का distoration नहीं है। X_1 और X_2 वस्तुएं प्रतिस्थानापन मानी गई है।

मान लीजिए X_2 वस्तु की कीमत निजी क्षेत्र में marginal social cost से कम है। marginal social cost का कीमत से अधिक होने का कारण प्रदूषण फैलाना, भीड़ बढ़ाना, सड़क का प्रयोग करना आदि के कारण हो सकती है। इन कारणों से निजी क्षेत्र में उत्पादकों को social cost की हानि स्वयं नहीं उठानी पड़ती बल्कि समाज को वहन करनी पड़ती है इसलिए वे कीमत को social marginal cost से कम रख सकते हैं। एक अन्य कल्पना यह है कि constant cost पायी जाती है। इसको निम्न चित्रों से समझा जा सकता है।

$\bar{D}_1$ और $\bar{D}_2$, X_1 और X_2 वस्तुओं के लिए मांग वक्र है जो उस समय विधमान होती है जब Public sector में कीमत को marginal cost के बराबर रखा जाता है। Figure 1 में P^1 कीमत MC के बराबर रखी गई है जिससे X_1 मात्रा का उत्पादन तथा मांग की जाती है। Figure 2 में दर्शाया गया है कि निजि क्षेत्र में कीमत MC से कम $\bar{P}_2$ रखी गई है जिससे वस्तु का उत्पादन व मांग $\bar{X}_2$ स्थापित होता है.

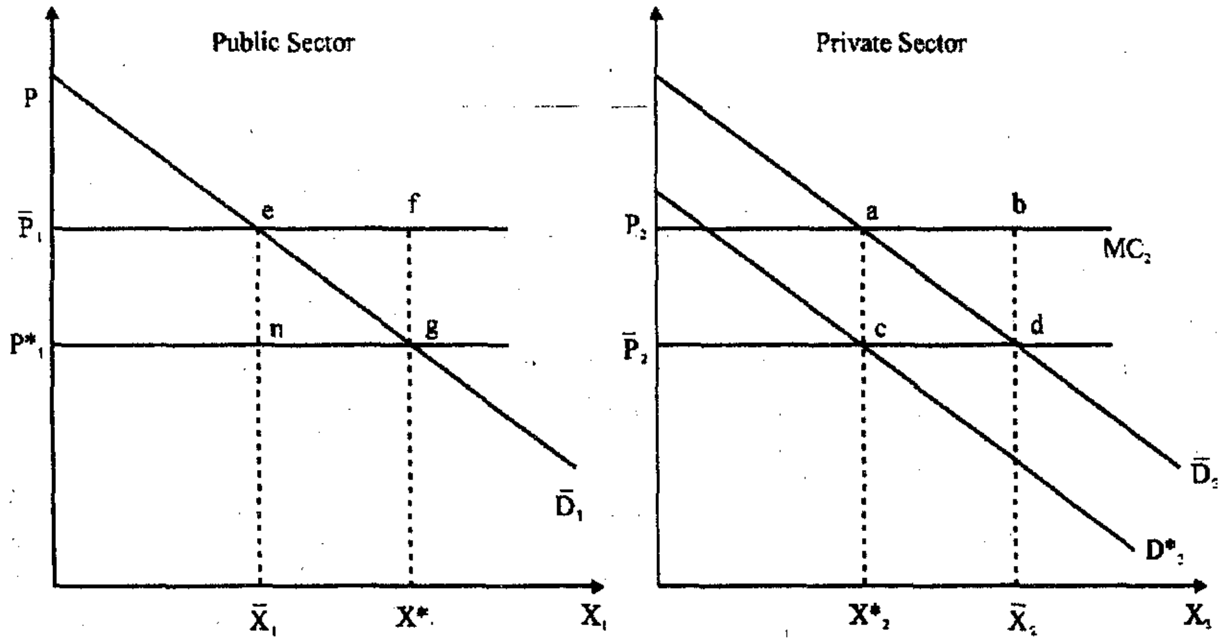

यह माना गया है कि वस्तु प्रतिस्थानापन्न हैं। इस कारण जब अन्य वस्तुओं की कीमत या आय में परिवर्तन होता है तो सामान्यतः अन्य वस्तुओं के भाग वक्र shift होते हैं। ऐसी परिस्थिति में second best agreement निम्न प्रकार से दिया गया है क्योंकि first best सम्भव नहीं है। जैसा कि निजीक्षेत्र में कीमत MC के बराबर charge नहीं की जाती, तब क्या सार्वजनिक क्षेत्र में कीमत को MC के बराबर रखा जाना चाहिए? second best solution के लिए सार्वजनिक क्षेत्र में कीमत MC से कम रखी जानी चाहिए। ऐसा करने से दूसरे या निजी उद्योग से कुछ साधन निकल कर सार्वजनिक क्षेत्र में स्थानान्तरित हो सकते हैं। जब सार्वजनिक क्षेत्र में कीमत MC से कम रखी जाती है। ऐसा करने से समाज कल्याण में वृद्धि होगी।

X_1 वस्तु की कीमत में कमी करने से ($P^*_1 < MC_1$) $\bar{D}_2$ जो X_2 वस्तु का मांग वक्र है। बायीं ओर सरक कर $\bar{D}_2$ बन जाता है। A Net reduction is e of g. eng अतिरिक्त लागत का भाग उपभोक्ताओं की Consumer surplus के रूप में प्राप्त होता है। परन्तु e of g welfare में net loss को प्रकट करता है। दूसरे उद्योग में वस्तु की मांग गिरकर X_2 रह जाती है जिसको resource की बचत X_2 AB X_2 के उत्पन्न हो जाती है और ये साधन X_1 वस्तु के उत्पादन में स्थानान्तरित हो जाते हैं । इसलिए समाज के लिए साधनों की net बचत और समाज कल्याण के लिए net gain abcd के समान होगा।

समाज कल्याण में यह शुद्ध वृद्धि abdc उद्योग one (figure 1) में उत्पन्न हानि e of g से अधिक है जो समाज के कल्याण में हुई net वृद्धि को दर्शाती है।

इसलिए second best policy एक साधारण अर्थव्यवस्था में निम्न नियमों का अनुसरण करती है

1. जब distorted sector (where price is not sect to MC) कीमत marginal cost से कम ($P < MC$) है तो second best optimum यह होगा कि contralable or public sector में P must be less than MC. परन्तु इस नियम के लिए दोनों वस्तुओं का प्रतिस्थापन होना आवश्यक है।
2. जब distorted sector में $P > MC$ हो तब second best sptimum यह होगा कि कीमत MC से अधिक होगी ($P > MC$) public sector में। यदि दोनों पदार्थ एक दूसरे से पूरक है तो public sector में P must less than MC.
3. Distorted and public sector में कीमत MC के बराबर होगी ($P = MC$) यदि दोनों वस्तुओं का परस्पर सम्बन्ध नहीं हैं।

अध्याय - 39
ऐरो का असम्भावना सिद्धान्त
(Arrow's Impossibility Theorem)

Arrow ने अपनी प्रसिद्ध impossible theorem को mathematics की सहायता से सिद्ध किया। Theorem के माध्यम से यह निष्कर्ष निकलता है कि व्यक्तिगत पसन्दगी (individual preferences) के आधार पर सामाजिक पसन्दी को मानना (ताकि social welfare का सामना किया जा सके) सम्भव नहीं। प्रजातांत्रिक प्रणाली में व्यक्तियों की पसन्दगी उन द्वारा डाले गये वोटों के माध्यम से स्वतन्त्र होती है जिसके द्वारा सामाजिक पसन्दगी का निर्णय किया जाता है। social choice is detemined by majority rule परन्तु Arrow general impossible theorem के माध्यम से दर्शाता है कि consistance social choices (तर्क पूर्ण सामाजिक पसन्दगी) बिना consistancy या transitivity conditions का उल्लंघन किये प्राप्त नही की जा सकती। majority rule पर आधारित social choice व्यक्तिगत पसन्दगी के consistence (संगत) होते हुए भी inconsistance हो सकती है। प्रारम्भ में Arrow दो वैकल्पिक choice के आधार पर सिद्ध करता है कि majority rule के द्वारा group decision या social choice को प्राप्त किया जा सकता है जो Arrow की Social choice सम्बन्धी निम्न पाँचों शर्तों को पूरा करता है।

Arrow's Conditions of Social Welfare

व्यक्तिगत पसन्दगी के आधार पर social choice और decision प्राप्त किये जा सकते हैं, यदि Arrow द्वारा निर्मित पाँचों अनिवार्य शर्तें सन्तुष्ट होती है। Arrow के अनुसार किसी भी स्वीकार्य social welfare function को प्राप्त करने के लिए निम्न पाँचों शर्तों का पूरा होना आवश्यक है

1. **Transitivity or Consistancy :** Arrow के अनुसार social choice consistance होनी चाहिए अर्थात यदि एक वैकल्पिक स्थिति में A को B से अधिक preser किया जाता है और एक अन्य स्थिति में B को C से सामाजिक तौर पर अधिक preser किया जाता है तब C किसी वैकल्पिक स्थिति में सामाजिक तौर पर A से अधिक preser नहीं किया जा सकता।

2. **Responsiveness to Individual Preferences :** इसका अर्थ यह है कि सामाजिक पसन्दगी उन्हीं व्यक्तियों की पसन्दगी होनी चाहिए जिनसे समाज बना है इसको एक उदाहरण से समझा जा सकता है Suppose an alternative A is socially preferred to B on the basis of a set of individuals ordrings. If change occured in the ordings of individual so that some individuals prefer alternative A more strongly than before and no one's prefer decline than A must remain socially preferred to B. (मान लिजिए एक विकल्प A सामाजिक तौर पर B की अपेक्षा अधिक पसंद किया जाता है। यदि व्यक्तिगत पसंदगी में परिवर्तन इस प्रकार होता है कि अब कुछ व्यक्ति A विकल्प को पहले से ज्यादा पसंद करने लग गये हैं तथा किसी की भी पसंदगी पहले से कम नहीं होती तब A अवश्य ही B की अपेक्षा अधिक पसंद किया जाता रहेगा।)

3. **शर्त को लादा नहीं जा सकता (The Condition of Non Imposition) :** इस शर्त के अनुसार social choices व्यक्तियों की पसन्दगी के बिना उन पर थोपी नहीं जानी चाहिए। उदाहरण के लिए यदि समाज में कोई

भी व्यक्ति A विकल्प की अपेक्षा B विकल्प को पसंद नहीं करता और कोई एक या कुछ एक व्यक्ति A को B की अपेक्षा पसंद करते हैं तब वे सामाजिक तौर पर A को B की अपेक्षा अधिक पसंद करेंगे।

If no individuals in the society prefers alternative B to alternative A and any one or few other individuals prefer altenative A to altenative B than society they must prefer A to B.

4. **गैर तानाशाह की शर्त (The Condition of Non Dictatorship) :** इस शर्त के अनुसार social choices समाज के किसी एक व्यक्ति द्वारा दिये गये निर्देश पर आधारित नहीं हो सकती। उदाहरण के तौर पर – विकल्प A B की अपेक्षा सामाजिक पसंदगी नहीं हो सकती केवल इस कारण क्योंकि कोई एक व्यक्ति इसको पसंद करता है यदि इस शर्त का उल्लंघन किया जाता है तो यह तानाशाही होगी।

A must not be socially preferred to B only because any one individual in the society preferes it irrespective to the preference of other mdividuals. If this condition is violated than it is a case of dictatorship.

5. इस शर्त के अनुसार दो वैकल्पिकों (alternatives) की social ranking स्पष्ट रूप से व्यक्तिगत ranking से निर्धारित होती है और यह अन्य वैकल्पिकों के प्रति व्यक्तिगत पसन्दगियों से बिल्कुल प्रभावित नहीं होती। for example : There are three alternatives : A, B, C available. The society prefer available than this condition implies that it must not be the case that society than prefer B to A. Thus, the social preference of A/B depends only on individual prefers of just two atlernatives A and B and not any other alternative. Which is not immediatly relevant

Arrow एक ऐसी स्थिति पेश करता है जिसके दो से अधिक विकल्प होते हैं। Arrow के अनुसार majority rule के आधार पर सामाजिक निर्णय (social choice) बिना कम से कम किसी एक शर्त को तोड़े या उल्लघंन किये नहीं हो सकता इसलिए जब दो से अधिक विकल्प होते है तो individual preferences के आधार पर social welfare function नहीं निकाल सकते हैं। इसका विवरण Arrow ने निम्न तालिका द्वारा दिया हैं।

Arrow कल्पना करता है कि समाज में केवल तीन व्यक्ति A, B और C हैं। और वे तीन वैकल्पिक अवस्थाओं सामाजिक अवस्थाओं X, Y and Z के लिए मतदान करते हैं। निम्न तालिका में most preferred alternative के लिए तीन तथा उसको कम prepered के लिए दो और सबसे कम preferred alternative के लिए एक का इस्तेमाल किया गया है।

Ranking of alternative by individuals and social choice

Individuals	Alternative social state		
	X	Y	Z
A	3	2	1
B	1	3	2
C	2	1	3

Table पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि A व्यक्ति X को Y से अधिक पसन्द करता है और Y को Z से अधिक पसन्द करता है। इसलिए वह X को Z से भी अधिक पसन्द करता है। B व्यक्ति Y को Z से और Z को X से अधिक पसन्द करता है। C व्यक्ति Z को X से अधिक और X को Y से अधिक पसन्द करता है। इसलिए Z को Y से अधिक पसन्द करता है। स्पष्ट है कि दो व्यक्ति A और B, Y का L से अधिक पसन्द करते हैं। इसी प्रकार दो व्यक्ति A और C X को Y से अधिक पसन्द करते हैं

और दो, व्यक्ति B और C Z का X से अधिक पसन्द करते है। इस लिए majority (two of the three individuas) X को Z से अधिक पसन्द करते हैं। परन्तु majority (B and C) Z को X से अधिक पसन्द करते हैं। इस प्रकार देखा जा सकता है Majority rule असंगत सामाजिक पसन्दगी (inconsistance social choices) को प्राप्त करता है, क्योंकि Majority rule द्वारा एक तरफ Z से अधिक पसन्द किया गया है। दूसरी तरफ X से अधिक पसन्द किया गया है जो कि स्पष्ट रूप से असंगत और स्वयं खण्डन (Self contractory) है। इसलिए प्रो. Arrow निष्कर्ष निकालते हैं कि व्यक्तिगत choices या ordering के आधार पर विभिन्न सामाजिक विकल्पों का social ordering निकालना असम्भव है। बिना किसी एक शर्त का उल्लंघन किये। यह Arrow का general impossibility theorem का सारांश है।

इस प्रकार Arrow सिद्ध करते है कि संगति की शर्त का उल्लघंन किये बिना व्यक्तिगत पसन्दगी के आधार पर social welfare function निकालना असम्भव है। यहां इस तथ्य की चर्चा करना उचित है कि निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए Arrow ने केवल ranking अर्थात ordemal preferences of individuals की कल्पना की है जिसका अर्थ ये हुआ कि intensity of preference (पसन्दगी की गहनता) को कोई महत्त्व (weight) प्रदान नहीं किया गया।

Criticism or Limitations

Majority rule के आधार पर यह निष्कर्ष, कि social preference प्राप्त नहीं किये जा सकतें, ज्यादा सही नहीं हैं क्योंकि यहां individual preference की गहनता (intensity) का अध्ययन नहीं किया गया क्योंकि कल्पना कीजिए कि majority X को Z से अधिक